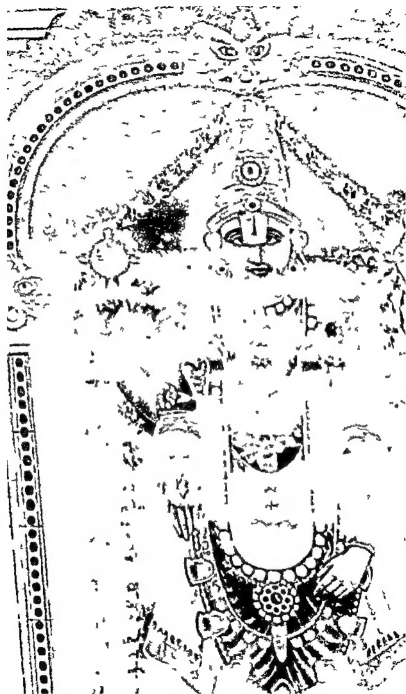
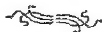




तन्मध्यस्थं दिव्यमूर्तिं वरेण्यं शङ्खं चक्रं धारयन्तं कराभ्याम् ।
सेव्यत्वेन स्वं पदाम्भोजयुग्मं सर्वेषां सन्दर्शयन्तं करेण ॥
स्वाङ्घ्रिद्वन्द्वं संश्रितानां जनानां संसाराब्धिर्जानुदघ्नः किलेति ।
न्यस्तेनोरौ वामतो दर्शयन्तं सव्यं चान्येनापि हस्तेन सम्यक् ॥
सर्वाभीष्टं दातुमुद्युक्तहेतिं भक्तानां श्रीवासवक्षःस्थलं च ।
मन्दस्मेरश्रीमुखं भूषणाढ्यं सर्वे श्रीमद्वेङ्कटेशं व्यपश्यन् ॥
(मार्क—अध्याय, ७)

* मन हरन *

सोहे दिव्य शंख चक्र, वाम उरु कर मानो,
जानु लौं भवाब्धि ताहि शरन जो आवे हैं ।
दायें कर सामुहे किये हैं मानो भाव इमि,
भक्त जनहित कटिबद्ध दिखरावे हैं ।
मृदु मुसकान उर थलमें रमाको वास,
भूषन सकल धारे, द्युति दमकावे हैं ।
ऐसे वेङ्कटेश देव राजत विमान मध्य,
चरन कमल ध्यान ऋषि मुनि लावे हैं ।





श्रीवाराह पुराणान्तर्गत
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः

सोरठा

शीश नवा, कर जोरि, वेङ्कटेश पदपद्ममें ।
होय पूर्ण रुचि मोरि, लिखउं महात्म प्रकाशयुत ॥
विश्वमूर्ति धरि ध्यान, पुनि पुनि करत प्रणाम मैं ।
करहु सदा कल्यान, पूर्ण होय सद्ग्रंथ यह ॥

हरिगीतिका

एकदा मुनिवृन्द बोले, सूतसों सिरनाइकै ।
विष्णुथल है श्रेष्ठ कहं, कहिये सकल समझाइकै ॥
सुनि होत आनंद उर महा, हरिगीतिका सुखदायिनी ।
अन्तमें सुरधाम है, भक्ती मिले अनपायिनी ॥
आदेश सुनि मुनिवृन्दका, श्री सूतजी बोले तबै ।
वाराहकल्प वृतान्तको, अब आदिसों कहिहौं सबै ॥
कल्पान्तमें सब सिन्धु मिलि, जलमय करैं इस सृष्टिको ।
शेष कछु रहिहैं नहीं, इक छाड़ि के हरि इष्टको ॥
मुनि गण चकित ह्वै तब कहे, पृथ्वी गई किस ओरको ।
आयो कहां ते जल कहो, बोर्‌यो सबै गिरि छोरको ॥
चालीस सत युगका सुनो, विधिको दिवस परमान है ।
दिन अन्तमें जरि जात सब, रवि ताप होत महान है ॥

मारुत वहै रवि ताप युत, घन व्योममें घिरि आवहीं ।
जलमय करैं इस सृष्टिको, यह बात सब श्रुति गावहीं ॥
निशि-अन्तमें वट-पत्रपर हरि, सृष्टिकी इच्छा करैं ।
भूलोक हित तब करि कृपा, वाराह वपु धारण करैं ॥
पैठे रसातलमें जबै, ढूंढ़े तहां चहुं ओर सों ।
युद्ध अति कीन्हों तितै हिरणाक्ष निशिचर घोर सों ॥
क्रोधित भये वाराह जब, निज दांत सों फारे तबै ।
दुष्ट रक्त प्रवाह सों, जल राशि लोहित भै सबै ॥
दंताग्र पै पृथ्वी लिये, जलराशि पै परगट भये ।
मुरज, मर्दल, वीण, दुंदुभि, बाजहीं सुर नभ छये ॥
अस्तुति करैं वाराहकी, सुरवृन्द आनँद पाइकै ।
कीजै धराकी थापना, दुख द्वन्द सब विनसाइकै ॥

कवित्त

थापि पुहुमी को ईश बोले वैनतेय प्रति, जाय निज धाम वेगि क्रोड़ाचल लाइये ।
सुनत सवेग गये पवन गवन सम, विमल अध्याय माँहि सोई कथा पाइये ॥
रत्न राशि युत सोई गिरि लाय धरि दीन, प्रभुको निवास तहां गुन गन गाइये ।
स्वामिपुष्करिणीके यम दिशि भाग माँहिं, विष्णु हैं विराजमान दर्शि स्वर्ग जाइये ॥

सिंहावलोकन

आये तबै मुनि वृन्द तहां हरि दर्श किये सब पाप भगाये ।
गाये महा महिमा तिनकी सब भांति मनोरम थान सजाये ॥
जाये सबै हिय कालिमा वेगि निरन्तर ज्ञान-प्रकाश लखाये ।
खाये नहीं यम यातना सो यहि थान पुनीत जबै नर आये ॥

दोहा

पुष्करिणी महिमा कहे, सूत मुनिन समझाय ।
पढ़े ज्ञान नर पाइहैं, यह तृतीय अध्याय ॥

सिंहावलोकन

वानी सुनो मुनि लोगन की तव सूत पुनीत कथा यों बखानो ।
खानी पदारथ चारिहुं को गिरि बृन्दनमें तेहिको सनमानो ॥
मानो वराह पुरान की बात सदा जेहि ध्यावत सज्जन ज्ञानी ।
ज्ञानी सोई है कथा जो पढ़े महिमा नित जाकी कहै बरवानो ॥

दोहा

जय जब जैसो नाम भो, कह्यो सूत समझाय ।
वेङ्कटेश महिमा विभव, यह चतुर्थ अध्याय ॥

सिंहावलोकन

धाराकुमार महातम गान किये मुनि यज्ञ अनेक उदारा ।
दारा वराङ्गना साथ गये जिमि, आये तहां हरि हर्ष अपारा ॥
पारा न पावत गावत वेद हूं भेद अभेद न जात विचारा ।
चारा यही हरि नाम जपौ कलिमें सब पुण्यको एक अधारा ॥
पाये स्वराज यथा नृप शङ्खण व्योमकि बानीमें ध्यान लगाये ।
गाये कियो तप वेङ्कट पै चलि देख्यो विमान महा सुख छाये ॥
छाये तहां हैं मुनीश अनेक करैं हरि दर्श सो हर्ष जनाये ।
नाये हैं मस्तक देखि नरेशको ईश दियो वर राज सो पाये ॥

कुण्डलिया

पाये आत्माराम धन, वेङ्कट पै जिमि जाय ।
दर्शन सनत्कुमारका, कह्यो सूत समुझाय ॥
कह्यो सूत समुझाय, मन्त्र पद्माको जपना ।
पायो हरिको दर्श, रही नहिं नेकु कलपना ॥
यहि सप्तम अध्याय, कथामें ध्यान लगाये ।
सो द्विजवरकी भांति, राज सुखसम्पति पाये ॥

छप्पय

विश्वक्सेना शक्र, आयुधी कपिल गिनाये।
अग्नि ब्रह्म सप्तर्षि, तीर्थकी महिमा गाये॥
पूरक सर्वाभीष्ट, तीर्थ सतरह तिन माहीं।
पाण्डु, जराहर, काय, जाय जहं पाप पराहीं॥
यहि भांति सूत वर्णन किये, तीर्थ महातम मन हरन।
कहि शुभ अष्टम अध्याय महं, जै जै जै असरन सरन॥
रावण वध हित आय, राम लछमनके साथहिं।
कथा कह्यो हनुमान, अञ्जनाकी रघुनाथहिं॥
गिरिवर पर विश्राम, सेन युत किये खरारी।
कीन्यों अस्तुति पूर्ण, अञ्जनाको दिय तारी॥
तहं कोटि कोटि वानर कटक, वेङ्कट गिरि भरि गे सुभट।
तिन अर्व खर्व युत को गिनै, बल प्रचण्ड अतिशय विकट॥

सरसी

कछु कपि गुहा बीच जब जाई, देख्यो श्रीभगवान।
रूप लखत पुलकित भै सबहीं, कियो ईश कल्यान॥
महिमा अपरम्पार को गावे, वेद न पावत भेद।
पढ़ै सुनै अध्याय पुनीता, तेहि न व्यापि भव खेद॥
दैत्यवंशसों जब दुख पायो, कश्यप अरु जाबालि।
रमानिवास बासमें आये, सुनि अस्तुति बनमालि॥
पुनि नारदको मिलन भयो तहं, जिमि भो निश्चिर नास।
चतुराननके धाम बहोरी, विनय करत सुर भास॥
वेङ्कटाद्रिपर मुनि जहं रहहीं, दशरथ नृप तहं जाय।
आशिष लह्यो पुत्र हित सोई, कहत पुरान बताय॥

निज इच्छा सब पूरण कीन्हा, दरस दिये भगवान ।
पढ़ै सुनै यह चरित जो गावे, सदा होय कल्यान ॥

सार

पुष्करिणी तट दशरथ आये, कथा सार यह जानो ।
करि प्रणाम नृप शुभवर पाये, विशद भक्ति अनुमानो ॥
मुनि गण मध्य बैठि चतुरानन, हरि पद ध्यान लगाये ।
अस्तुति कियो प्रणाम प्रेम सों, मन इच्छित फल पाये ॥
मुनि वशिष्ठ संग आये नृपवर, सुत इच्छा मन लागी ।
वेङ्कटाद्रि पर दोउ तप कीन्हें, महा भक्त अनुरागी ॥
जामे सुन्दर तेज विराजे, प्रभु मन्दिर दिखराये ।
विधि सँग सब प्रविश्यो तेहि माहीं,महा मोद मन छायो ॥
प्रथम मिल्यो हरिको गण द्वारे, तिन सब किये प्रणामा ।
लोकपाल गन्धर्व आदि सब, दरस किये अभिरामा ॥
सुनत मुदित मुनिवृन्द भये अति, सब विधि सूत बखानी ।
शुभ अध्याय पञ्चमें देखहु, सुनत होत अघ-हानी ॥
दरस लहत सब किये प्रणामा, जे मुनिगण तहं आये ।
मघवादिक सुर अस्तुति कीन्हीं, सुनत ईश हरषाये ॥
अगुन सगुनको सब गुन गाये, सनकादिक रह जेते ।
चतुराननकी विनय बखानी, जग कर्त्ता मन चेते ॥

विधाता

करौ भक्ती लहौ शक्ती, सदाही मुक्ति दाताकी ।
यही बातें सुनो मानों, कथा सुन्दर विधाता की ॥
जबै देखैं हरी चिन्ता, सबै दुख दूर कर देते ।
नहीं आते तहां पापी, जो हरिका नाम ना लेते ॥

कुरङ्ग

सबकी चिन्ता देख्यो हरि तहं आय ।
कुशल प्रश्न तब पूछेउ, प्रेम जनाय ॥
सुनहु कथा जग पावनि, हरि जस कीन ।
सनकादिक आश्वासन, नृप सुत दीन ॥

सुरभि

चारु देव चतुरानन राजैं, इक सँग लोकके काजा ।
सम्मति करत परस्पर नीकी, तहां सकल सुख साजा ॥
सुरमित वेङ्कट गिरि पर आये, चकहिं ईश पठायो ।
कियो शान्ति सब दुख विनसायो, भक्त लोग सुख पायो ॥
वेङ्कट उत्सव पूर्ण भयो तब, वैभव कौन गनावें ।
सगुण रूप प्रभु प्रगट्यो सत्वर, विधि शिव विनय सुनावें ॥
उत्सव करे, दान जो देवे, महा मुक्ति सो पावे ।
यह अध्याय उनीस पूर्ण भै, सुनत पाप कटि जावे ॥

त्रिभंगी

सबके रखवारे, अधम उधारे, वेङ्कट द्वारे जाय परौ ।
रचि फुलवारी, मुनिमनहारी, स्वर्ग दुवारी टेक धरौ ॥
तुलसी वन पावन, शोक नशावन, सरस सुहावन राजि रही ।
तहँ सब वर पाये, जो जन आये, कीरत गाये शुद्ध सही ॥

रोला

वेङ्कट वैभव गान किये सब देव विदाई ।
निज वाहन चढ़ि गये सबै मनमें हरषाई ॥
महिमा फाल्गुनि तीर्थ कहे जाबालि विचारी ।
असुर साथ संग्राम, भयो प्राची दिशि भारी ॥

कुंडलियाँ

धारयो कोप कृशानु जब, चक्र सुदर्शन पूर्ण ।
शांति धर्म थाप्यो तुरत, कियो दुष्ट-मद चूर्ण ॥
कियो दुष्ट मद चूर्ण भयो सब संत सुखारी ।
अग्नि दिशामें जाय, दैत्य की सैन्य विदारी ॥
न्याय धर्म प्रति पालि, सबै जन काज संवारयो ।
ताकी महिमा धन्य जासुको हरि कर धारयो ॥

पद्धरी

सब अंग, बंग, कलिंग घोर, भालुक, बिडाल, विकराल घोर ।
चक्रेश जब चमके महान, सूखे लखत सब शत्रु-प्रान ॥
सब शत्रु वेगि संहार कीन, तब सुखी भये मुनि देव दीन ।
वरुण दिशा तब चक्र जाय, सब शत्रु सेना दिय नशाय ॥

मोहनी

तब वरुण दिशाते आये । पूर्ण शान्ति जब छाये ॥
जब उत्तरको पग धारे । भैरुण्डा सुर संहारे ॥
सब दैत्य सैनको नासी । चहुं दिशि सुख को रासी ॥
मुनि वृन्द महा हरषाने । यह सुभ चरित बखाने ॥

सिंहावलोकन

गाई जो कीरति वेङ्कट की तब मुक्ति मिलै अपनी मन भाई ।
भाई भरोसो करो गिरि नाथको लैहैं तबै जनको अपनाई ॥
नाई जबै सिर सामुहे ह्वै दुख दीनता नेकु नहीं रहि जाई ।
जाई विमान चढ़े सुर धाम सदा तिनको हिय ध्यान लगाई ॥
गावें कहो गुरुकी महिमा किमि शारद शेष जो पार न पावें ।
पावें सबै सुर धाम तबै न बहोरि कवौं भव लोकमें आवें ॥
आवें तो धर्म पुनीत करैं नित संयम ध्यानमें जो मन लावें ।
लावें प्रसादको भोग सदा सत संगतिमें नित चित्त लगावें ॥

कुसुम विचित्रा

कठिन सुयोगा, कहत बखानी ।
करत निरूपा, सतत सुज्ञानी ॥
जटिल दुरूहा, विसद प्रमाना ।
सनक सनन्दौ, करत हैं ध्याना ॥
कुसुम विचित्रा, लखि हरषाते ।
सब जन आवें, हरि रस माते ॥

दोहा

काम रसायन तीर्थ सब, कुम्भक योग प्रमान ।
कहे सूत सब भांतिसो, सुनत होत उर ज्ञान ॥

नाक्षत्रिक

इक सत आठ नाम मुनि गाये, सुनत चित्त हरषाय ।
वेङ्कटेशके धाम सिधावे, नाम अमर हो जाय ॥
ताकहँ सब विधि शेष बखान्यों, सुन्यो सूत महराज ।
मुनि वृन्दन कहं तुरत सुनायो, सार्‍यो जगको काज ॥
आज भी हर्ष यही है ।
सुनत नाम वेङ्कट पर आये, सेवा किये सहर्ष ॥
ज्ञान ध्यानमें लगन लगाये, बीते केते वर्ष ।
मुनि गन अस्तुति विनय सुनायो, तुष्ट भये भगवान ॥
प्रभु गिरि सेवाको फल पायो, शौनक किय गुन गान ।
ध्यान भी पूर्ण सही है ॥

भ्रमर

विधि सुत सुमेर पर आये । तहं दर्श ईश को पाये ।
अरु यज्ञ वराह दिखाने । सब अमर देखि हरषाने ॥

शुभ संवाद बखानी। सब भूवराह वर वानी।
शेषाचल विभव बताये। पुष्करिणी गुन गाये॥
अवर कुमारहु धारा। तुम्बुरु महात्म विस्तारा।
नभगंगा गुन गाये। मुनि वृन्द सुने हरषाये॥
शुचि पाण्डव तीर्थ महाना। अरु पापनाश जग जाना।
कोउ देव तीर्थ गुन गाते। सब सुर भक्ती रस माते॥

सोरठा

अस्तुति विविध प्रकार, धरनी करी वराह की।
सुनत होत उद्धार, यह अध्याय पुनीत अति॥

त्रोटक

धरनी प्रति मन्त्र वराह कह्यो, सुनिके मनमें अति हर्ष गह्यो॥
तेहि नाहिं प्रकाश बखान करै, जब ध्यान धरै त्रय ताप हरै॥
जब अस्तुति कीन अगस्त महा, इमि मंजुल वैन वराह कहा॥
नृप नाम अकाश कुमार रह्यो, सब भांति सुमारग धर्म गह्यो॥
धरणी तिय नाम बखान कियो, हल जोति सुता इक पाइ लियो॥
पद्मावती नाम सुताको पर्यो, लखि दम्पति मङ्गल मोद भर्यो॥
धरणी सुत भै वसुदान तबै, अति बाढ़त बाल सुखी भै सबै॥

सरसी

इक दिन पद्मा सखि सँग माहीं, गइ उपवन हरषाय।
औचक नारद मिलो तहां पै, सखि सब गईं लजाय॥
लक्षण भाषि गये नारदजी, परी विपति यह आय।
कामातुर इक नृप सुत मिलेऊ, तेहि सब दईं भगाय॥

मनहर

सुन्दर वसनपर मोतीसे दसनपर नीवीके कसन पर चित्त ही लगा रहै।
फूलनकी माल पर गोरे गात लालपर आनन विशालपर लोचन पगा रहै॥

लोने युग नैनपर मंजु मृदु बैनपर नेकु बङ्क सैनपर धीर न तगा रहे ।
हंसनीसी चालपर कण्ठके प्रवालपर, श्यामबाल जालपर कौन जो भगा रहे ॥

दो॥

बकुल मालिका प्रश्न किय, कह्यो ताहि समुझाय ।
भेज्यो नृपति अकाश पै, मिलन हेतु हरषाय ॥
प्रथम रहीं सीता सनो, पुनि पद्मावति रूप ।
सज्जन सब सुनि मुद लहैं, है यह कथा अनूप ॥

मंगल

पहुंची बकुलमालिका बेगहिं, नृप अकाश जनवासा ।
हरि इच्छा कहि मंगलकारी, पुरवहु मनकी आसा ॥
धरनी गई नृपति पहं सुनिके, बोली विनय जनाई ।
सुता बिपाहो श्रीनिवास सों, कीर्ति रहै जग छाई ॥
सभा समेत नृपति हरषाने, शुकमुनि वेगि बुलाये ।
बकुलमालिका के संग पठये, मंगल बचन सुनाये ॥
विसकर्मा पुर साजन लागे, इन्द्र फूल बरसाये ।
है धनि धन्य जगतमें प्रानी, ईश चरित जो गाये ॥
बकुलमालिके के संग पहुंचे, शुक जो हरिके धामा ।
मंगल बचन कहे दिय माला, भो पूरन मन कामा ॥
तुलसी माल दिये पद्मा कहं, शुक मुनीश जो लाये ।
श्रीनिवासको साज बतायो, जो पुरान महं गाये ॥
लछिमी जीकी आज्ञा मानो, सखी तेल लै आई ।
श्रुति लै बसन निकट भै ठाढ़ी, स्मृति भूषण लाई ॥
धृति दरपन, कस्तूरी कान्ती, लज्जा उबटन कीने ।
कीर्ति हेम मय मुकुट लियां हैं, शची छत्र कर दीने ॥

बानी गोरी चमर डुलावें, जया व्यजन सुठि सोहें।
रमा तेल तब लावन लागी, लखि उत्सव सुर मोहें॥
यांध्यो केश सुखाय सामरो, शुभ असनान कराये।
कमर करधनी बांधि पिताम्बर, तन सुगन्ध लगवाये॥
भूषण मुकुट इन्दिरा दीन्यो, मंगल साज सजाये।
अंगुरिन पहिरि अंगूठी सोहे, धृति दरपन दिखराये॥
निज कर ऊर्ध्व पुण्ड्र हरि लाये, गरुड़ सवारी कीन्हे।
सुरगन की शुभ सजी बराता, तब पयान कर दीन्हे॥
जब मुहूर्त मंगल को आयो, कहत वृद्ध जन नीती।
नृप अकास सो सब करवाये, जस विवाह की रीती॥
दिये दहेज बरनि नहि जाई, हेम, बसन फल भूरी।
हय, गज, गऊ, दास अरु दासी, नृपति दियो भरपूरी॥
विदा किये नृप निज गृह आये, महा मोद रह छाये।
यह मंगल मय चरित सुनायो, सुनत पाप बिनसाये॥

किरीट

एक निषाद रह्यो वसुनाम सदा वन जात रह्यो मधु हेतहिं।
घोलेउ धान रखावन को सुत खाय लियो तेहि प्रेम समेतहिं॥
भोग लगाय लियो पहिले हरि देख्यो किरातको ताड़ना देतहिं।
ताते पितासों छुड़ाय लियो निज दर्श दियो जेहिते जन चेतहिं॥

सुन्दरी

जल क्रीड़ा विलोक्यो जबै रँग दास लबै मति पूरण काममें पागो।
हरि आशिष पाय भयो नृप सो यहु घोस रह्यो अतिशय बड़भागो॥
पच रङ्कको देख्यो सुग्र वनमें, गिरि शेष गयो तेहिके हित लागो।
वरदान दियो प्रभु ताको तहां जो कथाको सुनी मति कीरति जागो॥

मत्तगयन्द

तोण्डको राज पिताते मिल्यो सुचरित्र पढ़ौ यहिमें मन लाई ।
सौम्य किरात वराह कथा वसु स्वप्न वृतान्त भली विधि गाई ॥
अस्थि तड़ागहुकी महिमा द्विज नारि यथा विधि जीवन पाई ।
भोम कुँभार करो जिमि भक्ति लही शुभ मुक्ति है पाप नसाई ॥
नृप तोण्डको मोक्ष दियो जगदीश रह्यो जगमें तेहिको यश छाई ।
कीन प्रणाम अशीष लही तन त्यागि विमान चढ्यो हरषाई ॥
ईशके धाममें राजित भो जहं रोग न मोह न शोक दिखाई ।
जो पढ़िहैं सुनिहैं सो कथा हरि धाम लहै सब पाप नसाई ॥

इति श्रीवाराह पुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः ।

अथ श्रीभविष्योत्तर पुराणान्तर्गत
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः

सरसी

जनक नृपतिको कथा सुनायो, शतानन्द महराज ।
सो प्रसिद्ध है जगत पुरातन, भक्त जननके काज ॥
तिनके बन्धु गये सुरलोकहिं, तिया देह तजि दीन ।
मातु हीन सुत लखेउ जनक जब, शोकित भये मलीन ॥
सब प्रकार उपदेशेउ मुनिवर, कछू भयउ तब ज्ञान ।
सुरपुर केर महात्म बनावहु, कह्यो नृपति धीमान ॥
बोले शतानन्द तब नृपसों, क्रमशः सब कहि नाम ।
सतयुगमें वृषभाचल भाषैं, त्रेता अञ्जनाधाम ॥

द्वापरमें शेषाचल गाये, वेङ्कटाद्रि कलि नाम।
पूर्ण महातम जो कोइ सुनिहैं, पूर्ण होय मन काम॥
वृषभ नाम इक राक्षस रहई, मुनिन दुःख नित देय।
सब मिलि अस्तुति कियो ईशको, चरण कमल रज सेय॥
प्रभुवर रक्षा करहु हमारी, विनय किये धरि ध्यान।
कियो "तथास्तु" दुष्टपहं धायो, वधन हेतु भगवान॥
वृषभासुर शिर दे तप कीन्हो, वर्ष लों पांच हजार।
बड़ो प्रतापी भयो जगतमें, लख्यो न कबहूँ हार॥
भिक्षा युद्ध ईशसों मांग्यो, तब बल कीन्हो गर्व।
मरयो नाम वृषभाचल पायो, भयो गर्व को खर्व॥
पवन शेष संवाद बखानो, पर्वत दियो उड़ाय।
अस्तुति सुत हित मेरु कियो जब, तेहि दीन्यो लौटाय॥
शेषाचल तेहि नाम बखानो, कथा ग्रन्थ विस्तार।
नाम वेङ्कटाचल जिमि भयऊ, भाषहिं सुमति उदार॥
माधव द्विजको पाप नसायो, इमि पायो वरदान।
जगमाता तव सुता होइहैं, जामाता भगवान॥

सार

भृगु मुनि गये परीक्षा काजहिँ, एक बेर सुरलोका।
तहं देखेउ चतुरानन राजित, थिन जन्मा विन शोका॥
पुनि कैलाश धाम पर आये, जहं शंकर अविनाशी।
करत विहार शिवा सँग मिलिके पूर्ण ज्ञानके राशी॥
भृगु मुनि आवत सो नहिं जाने, काम विवश मतवारे।
शिवा वचन सुनि मारन धाये, लोहित नैन उघारे॥
मुनि तब शाप दियो शंकरको, पूजा करै न कोई।
केवल एक लिंग जग पूजै, मृषा शाप नहिं होई॥

पुनि भृगु क्षीरसिंधु में आये, देख्यो हरिहिं उदारा।
औचक छाती खुली देखिके, कीन्यों चरन प्रहारा॥
चरन थामि हरि पूछन लागे, कहिये श्री मुनिराई।
केहि कारन निज चरन प्रहारयो, तुरत कहहु समुझाई॥
कछुक चोट हमरे नहि लागो, तुम्हरो चरन पिराने।
ताते क्षमा करहु मुनि ज्ञानो, यहि विधि हरि सनमाने॥
तुष्ट भये मुनि लोकमें आये, तिनहिं श्रेष्ठ बतराई।
दूजी रमा, तीसरे विधि हैं, शिव चतुर्थ गुन गाई॥
रूठी रमा चरनके लागे, इमि बोली कटु बानी।
रहिहौं नाहिं सङ्गमें तुम्हरे सुनहु नाथ सुखदानी॥
मम आलिंगन थल पर स्वामी ताकि चरन भृगु मारयो।
ताते कोल पुरा सो गवनी, हरि मनायके हारयो॥
वेङ्कटेशपर हरि तब आये, कतहुँ ढूढ़ि नहिं पाये।
पूरण चरित ग्रन्थ महं देखहु, इत संक्षेप बताये॥
पढ़े सुने जो प्रेम समेता, सो सुरलोक सिधावे।
शारद शेष कहत थकि हारे, तबहुं पार नहिं पावे॥

पद्धरी

शुभ स्वामि तीर्थकी कीर्ति गाय, तब प्रभु दियांणमें गे समाय।
मुनि गाय रूप विधि रम्य कोन, शिव वत्स रूप निज धारि लीन॥
श्रीदेवि ग्वालिनी रूप धारि, लै गईं गऊ बेचौं विचारि।
इक नृपति ताहि जब मोल लीन, तबहि ग्वालके किय अधीन॥
सूंघे धरा हरि दर्श हेत, वलमीक एक देखो निकेत।
निज दूध सों ईशहि नहाय, तब सो गऊ निज थान आय॥
नृप ना लहे जब दूध रोज, यहि बातको तब कीन खोज।
ग्वाला लख्यो यह दृश्य जाय, मारयो कुठार तब सो रिसाय॥

घनाक्षरी

देखे वेङ्कटेश जब ग्वालको कुठार लीने,
अवशि है क्रोध माहिं गऊ कहं मारिहैं ॥
जग रखवारो मेरो भक्त भयहारा नाम,
दीनन पै काहे नाहीं दया व्रत धारिहैं ॥
इक तो गऊ है, दूजे देत नित क्षीर मृदु
तीजे मम भक्ति करै ताते क्यों बिसारिहैं ॥
लैहैं मैं कुठार घात निज शीश पर आज,
नेकु घबरावे नाहिं आशु ही उबारिहैं ॥

रूप घनाक्षरी

जबहिं कुठार हनि मार्‍यो ग्वाल गऊ शीश
ईश भे प्रगट तहं तुरत बचाय लीन ॥
रक्त पनारे तेहि थल बहि आये तब,
जबहिं कुठारपर निज शिर रोप दीन ॥
आयो नृप देख्यो तहं औचक चरित यह,
विसमय मानि कछु बचन सुनाय खीन ॥
क्रोधित भयेउ सुनि वेङ्कट बिभौर माहिं,
होहु जा पिशाच नीच शाप दाप पाय पीन ॥

पद्धरी

इमि लिय बचाय भगवान आप, सहि सिर कुठारको घोर घाय ।
नृपको तबै हरि दीन श्राप, गे औषधीके हेतु आप ॥
कह सुर गुरु इक बार आय, तुरत गूलरी दूध लाय ।
तेहि आक तूलमें लै भिगाय, इमि औषधी सो दिय बताय ॥

काव्य

तेहि औषधि सों कष्ट, ईशको गयो नसाई ।
औरहु कथा अनेक, सुनहु सज्जन चित लाई ॥

वेङ्कट गिरिको पूर्ण, अयोध्या हिय अनुमानी।
जान्यो मथुरा ईश, कियो क्रीड़ा सुख खानी॥
कौसल्या वल्मीक, तिंतिड़िहिं दशरथ मान्यो।
लखन अधित्यका रूप, प्रेम सो हिय में आन्यो॥
यहि विधि मथुरा केरि, कल्पना किय हिय माहीं।
करै जो दर्शन आय, ताहि को पाप पराहीं॥

पञ्चचामर

कहे वराह ईश सों गिरीश शेष जाइये।
बनै पुनीत तीर्थ नाथ भक्ति प्रेम पाइये॥
चलैगो पंच चामरो बखान ज्ञान को करै।
तरैगो वेगि आइके महान पाप जो करै॥
जो भूमिजा विवाह होय जाइहौं बरातमें।
पढ़ै सुनै गुनै जोई न कष्ट होत गातमें॥
भरै सुबुद्धि होय माहिं ज्ञानका विकास हो।
सो जाय वेगि स्वर्ग धाम पाप पुञ्ज नास हो॥

निश्चल

श्री हरि आये, बसन सुहाये, जागै भाग।
निश्चल सोहैं, मुनि मन मोहैं, प्रेमैं पाग॥
ईशहि ध्यावो, सुरपुर जाओ, गावो गीत।
नारद आये, भजन सो गाये, जैसी रीत॥

सार

एक समय मृगया हित लागो, किय चिन्ता भगवाना।
पवन भयो तब अश्व रूपमें, सुन्दर तीव्रसुपाना॥
रमा लगाम वागको डोरी, तुरत बनी हरषाई।
तेहि ऊपर चढ़ि रमानिवासा मृगया हित बन जाई॥

औरो किये सिंगार रमापति, सुनहु ताहि चित लाई ।
पंद्रह हाथ वसन वर पहिर्‌यो, कटि करधनी सुहाई ॥
पांच हाथको लिये दुपट्टा, दरपनमें मुख देखे ।
माथे मंजुल तिलक लगाये, कुङ्कुम विमल विशेखे ॥
पुङ्गीफल, ताम्बूल, चुनौटी, लाची, लवंग मंगाई ।
उत्तम लिए कपूर जाति फल, बीरा विमल लगाई ॥
कञ्चन पेटीमें रखि लीन्यो, मुकुर साथ लै लीने ।
चन्दन, कुङ्कुम, डिबिया साथे शुभ सुगन्ध रसभीने ॥
कञ्चन केर जनेऊ पहिरे, कण्ठ अभूषण सोहैं ।
कङ्कन सजे बाहुमें मंजुल, कोटि काम मद मोहैं ॥
रतन अंगूठी अंगुरिन पहिन्यो, कलँगी शीश संवारी ।
अरुण वसन सोहत अति तनमें, पुष्प माल उर धारी ॥
रतनपादुका चरनन सोहै, धनुष बान संग राजै ।
मनहुं कामके काम बने हैं, तन अपार द्युति छाजै ॥
चहुं दिशि करत अहेर घूमिके, मृग, गज, सिंह, सियारा ।
घोर, रसभ, भैंसा वन मारे, जबहिं धनुष कर धारा ॥
इक मतङ्गके पीछे धाये, जबै ईश वन माहीं ।
लख्यो अनिन्द्य सुन्दरी बाला, मनमाहीं मुसकाहीं ॥
नृप अकाशकी कन्या सोई, मनहुं रूपकी खानी ।
प्रथमहि ताको कथा बतायो, जनम चरित्र बखानी ॥
पूछे नाम धाम कन्या सों, अपनी कथा सुनाई ।
तेहि विधि नृपति-सुतासों भाख्यो, निज शुभ नाम बताई ॥
काम विवश जब बचन सुनायो, भरी क्रोधमें बाला ।
भयो बहुत संवाद तहां पर, औरि भये जो हाला ॥
नयन तरेरि लोष्ट हनि मार्‌यो, भग्यो अश्व तत्काला ।
बनि ऐय्याश गये हरि पैदल, गई गेह सो बाला ॥

वीर

बहुत पंवारा अबको गावे, संक्षेपै देत बताय ।
आशिक बने सेज पर लौटैं, सुन्दर बदन गयो कुम्हिलाय ॥
बकुलमालिका पूछन लागी यहिकर हाल बतावहु मोहिं ।
आंखि लगी है इक सुन्दरिसे, पूरी कथा सुनावहुं तोहिं ॥
पूरा हाल सुना बकुलाने तब घोड़ा चढ़ि भई तयारि ।
पहुंची सो मन्दिरके द्वारे, जहं शिव पूजि रही नृप नारि ॥
यह प्रसंग अब पूरन जानौ, औरहु सुनहु विमल इतिहास ।
जबै बकुलमाला गइ तहवां, नहीं ईशको भो विश्वास ॥
नारी रूप मनोहर धारे, बने पुल्कसी रमानिवास ।
एक पुत्रसे वंश न सोहै, एक नेत्र नहिं लहै विकास ॥
काम करैं जो तिया जायके, तामें फल कछु नहीं दिखाय ।
बनि पुल्कसी देखि धरनीको, निज नयननको लेउ जुड़ाय ॥
अब सो धरनी रूर ईशको, जस सुन्दर तन किये सिंगार ।
जालीदार कंचुकी सोहै, अरु गर लसैं नवलखा हार ॥
बालक बनिगे चतुराननजी, शिव लकुटी बनि भये तयार ।
यहि विधि सो बनि गयो पुल्कसी शोभा बरनि न पावों पार ॥
केश बिखेरि अधेड़ि नारि बनि, बांस टोकरिया लई उठाय ।
लम्बे कान अर्द्ध युग असनन, बिना दांत मुंह गयो सुखाय ॥
सब प्रकार से रूप बनायो, मानो बनी देवता रूप ।
सात मास को बालक रोवे, लगी भूख सो रहे न चुप ॥
लै बालक को बांधि पीठपर, यहि विधि पहुंची गांव मंझार ।
पति, सुत, बंधु आदि मैं देहौं, गलिनमें लागी करन पुकार ॥
गांव-नारि सुनि गईं रनवासे, रानी ते बोलीं विनय सुनाय ।
एक पुल्कसी इहवां आई, सब कर कारज देति बनाय ॥

कहीं रानि तेहि को बोलवावहु, कछुक पूछिहौं प्रश्न विचारि।
जाओ देवि तुरत रनवासे, या विधि बोली गांव की नारि॥
तुम हंसोड़ मैं दीन हीन हौं, बसन फटो मुख गयो सुखाय।
भरी घुंघुचिया यहि टोकरीमां, बालक भूंख भूंख चिल्लाय॥
हौं ना जैहौं रनियासे मां, कहो तहां का काम हमार।
इतना सुनो जबे धरनी ने, धर्म देवि पहं गई उदार॥
बोली धरनी धर्म देवि सों, पूरन करौ हमारौ काम।
धर्म देवता हौ तुम सांचे, हाथ जोरि मैं करौं प्रनाम॥
यहि विधि बोली तब धरनी सो, हमरो बचन करौ परमान।
जीभि काटिके मोरि भगावो, जो कछु करौं असत्य बखान॥
बोली धर्म देवि रानी सों, मेरी बात सुनो मन लाय।
नर नारायण स्वामी मेरे, तिन आज्ञा सों तुव ढिग आय॥
तीन कालको हाल मैं जानौं, यामे कछु संसय है नाय।
जो कुछ चाहो पूछि लेहु सब, तुम पै ठीके देउं बताय॥
इतनी बात सुनी रानीने, लागी मीठ मीठ बतलाय।
धीरे धीरे दईं सान्त्वना, तब अन्तः पुर गईं लिवाय॥
सोन सिंहासन बैठक दैके, हाथ जोरिके बोलीं रानि।
करि असनान बसन बर पहिरौ, सजहु अभूषन लीजै मानि॥
जस जस रानी बचन सुनाई, सो सब करि बोली मन भाय।
बायन चाहौं तुम्हरे कर सों, दीजै हमहिं चित्त हरषाय॥
कंचन सूप मोति को तंदुल, धरनी धर्म देवि को दीन,
बोली सुनहुं सत्य यह देवी, मोरहु कष्ट करहु अब छीन॥
बोली धर्म देवि धरनी सो, मेरो बालक गयो भुखाय।
सरस अन्न कुछु तेहि को दीजै, चुप ह्वै है जब जाय अघाय॥
कंचन पात्र खीर लै आई, मनुष्यान्न बालक ना खाय।

कंद मूल यह खाय दरिद्री, यहि कहि ताको दिय घुचियाय ॥
कछुक खिलाय दई माताने, बचो खोर अपनौ लिय खाय ।
बोली सत्य कहौं सुनु भामिनि, मोंको पान देहु मंगवाय ॥
मंजुल पान दियो रानी तब, औरहु हाल सुनौ मन लाय ।
सन्मुख टोकरी गोदमें बालक, बैठि पुल्कसी पैर बढ़ाय ॥
यह सब चरित लखहिं नभ सुर गण, गावें हरि यश ध्यान लगाय ।
पढ़ै चरित्र प्रेम से जोई, कलिके सो पापी तरि जाय ॥

मंगला

धर्म देवि रानी सो बोलीं, निज कुल देव मनाई ।
प्रथमैं सुमिरो श्री जगदीशहिं, पुनि लछिमी सिर नाई ॥
ब्रह्मा बानी सविनय पूजी, पुनः शची कहँ ध्यायी ।
यम, दिग्पाल, अगिनको सुमिरेउ, ऋषि, मुनि, पितर मनायी ॥
विश्वनाथ काशी के बासी, विष्णु चरन चित लाई ।
नृप गंधर्व और बिंदु माधव, जगन्नाथ जय लाई ॥
यहि विधि सकल देवता सुमिरेउ, यथा योग धरि ध्याना ।
पूरन कथा ग्रंथ महं देखहु, इत संक्षेप बखाना ॥

धीर

मोती ढेर तीन तब धरिकै, मध्य को अपने हियमें धारि ।
दंडी एक दई तब बोली, याते एक छुवौ नृप नारि ॥
मध्य ढेरि रानी छुइ लीनी, धर्म देवि मनमें हरषाय ।
बोली बचन प्रेम रस सानी, सुनिये रानी ध्यान लगाय ॥
जेहि कारन पुत्री तब सूखति, जस बिनु नीर कमल कुंभिलाय ।
सो सब कारन सुनहु सयानी, यामें कछुक झूठि है नाय ॥
गई हती जब बन विहार को, तहं देखेउ इक अश्व सवार ।
चढ़यो काम-ज्वर तब से जानो, तन की सुधि बुधि दई विसार ॥

सुत, टोकरी, बदरी बन वाले, पति, माता, पितु, गुरु सौगंध।
भाषौं कछुक झूठ जो रानी, तब हरि करहु हमहिं तुम अंध॥
यह इच्छा कन्याके मनमें, वेङ्कटेश हों मम भरतार।
बात होय सो सांची जानौं, हमहिं पानकी अब दरकार॥
पान खाय पुनि बोलन लागी, रानी वचन सुनत हरषाय।
सो किरात नहिं रमानिवासा, जो पद्मा चित लीन सुराय॥
जो हित चाहौ तुम कन्याको, तेहि संग करहु विवाह बुलाय।
तब धरनी इमि बोलन लागी, मोते ताकै देव बताय॥
काह नाम है कहांको वासी, धर्मदेवि तब कह मुस्काय।
घर वैकुण्ठ धनी बुध सुन्दर, श्रीनिवास श्रुति कहैं बुझाय॥
सुता तुम्हारि क्रोधमें परिके, तासु अश्वको डारयो मारि।
पूछि लेहु सखियन सो अबहीं, मम सन्मुख तुम तिनहिं पुकारि॥
भूल करी सो क्रोधित ह्वैके, जान्यो तेहिको राजकुमार।
सो अनादि अविनाशी वेङ्कट, होन चहैं तेहिको भरतार॥
क्षमेउ तदपि वह पुरुष दया करि, तिन कहं करौ जमाता रानि।
नतरु मरै तव पुत्री सांचहि, सहिहौ निशि दिन सदा गलानि॥
भाषहु तुम असत्य कटु बानी, इमि धरनी सिर नाइ।
बोली पुल्कसी झूठ न जानौं, तब रानी मन गई डेराइ॥
बिना याचना कन्या अपनी, उन संग कैसे देउँ बियाहि।
यहि प्रकार सों चिन्तित लखिकै, धर्मदेवि उपदेशेउ ताहि॥
धर्म कुशल वृद्धा इक आवे, धरनी करहु मोर विसवास।
करहु प्रेरणा तुम राजासे, सफल होइहै मनको आस॥
जीवित रहे सुता जेहि विधिसों, सोई देवि मैं करौं उपाय।
गई पुल्कसी तब उत्तर दिशि, धरनी सुता पहुंची जाय॥
बोली रानी तब कन्यासों, अपनो खेद देव बतराय।

नानौ विष मैं खाय मरौंगी, यह दुख मोते देखि न जाय ॥
निज अभिलाषा सुना कह्यो तव, मोहि सूतिका दुख नहिं माय ।
गुप्त रूपसे सुत ना जन्म्यो, औरौ कछु चिन्ता है नाय ॥
तेहि पर मोरि लगन है लागी, मिल्यो जो उपवन माहिं सवार ।
तव मम जीवन निश्चय जानो, मिलै सोई जो मोहिं भरतार ॥
गइ धरनो तव नृप अकास पहं, बोली मधुर वचन सिर नाय ।
वेङ्कटेश कहं सुता वियाहौ, औरौ कछुक न चलै उपाय ॥
इहां कि बातें इहईं छोड़ो, अब आगेकर सुनौ हवाल ।
बकुला धरनी केरि बार्ता सुनहु ;भई है जो तेहि काल ॥
बकुलमालिका तेहि अवसर महं, समय जानिके पहुंची आय ।
करि अभिवादन रानी बोली, देवि हेतु निज देउ बताय ॥
आयीं तव कन्या के कारन, और काम ना मोर जनाय ।
अच्छा कह्यो हमहुं वर खोजौं, बकुला गोत्र दीन बतराय ॥
माता तिनकी श्री देवकी, पिता शूर नन्दन वसुदेव ।
चन्द्र वंश में जन्म भयो है, कृष्ण नाम भ्राता बलदेव ॥
गोत्र वशिष्ठ श्रवणमें जन्मे, वेङ्कटाद्रि पर करैं निवास ।
ज्ञानवान धनवान बली हैं, पूरे युवक भानु सम भास ॥
हो संतुष्ट पाय तिहिं कन्या, यह सुनि रानी कहीं बुझाय ।
इतने गुन हैं आछत गाये, सो विवाह बिनु किमि रहि जाय ॥
बकुला तब रानी से बोली, यामें कछुक न दोष दिखाय ।
बाल कालमें भो विवाह इक, पर सन्तान एक ना पाय ॥
चाहत करन विवाह दूसरो, बोली बकुला बहु समझाय ।
निज सुतसों तब नृपहिं बुलायो, तिन्ह एकान्तमें गई लिवाय ॥
वेङ्कटाद्रिसे यह चलि आई, तुमहु तहां जन देव पठाय ।
कन्या कर मन हमहुं टटोल्यो, अब यह बात टरनकी नाय ॥

सुनि राजा मनमें हरषायो, पूर्व जन्मको भाग्य विचारि।
गये नृपति कन्याके घरमें दई सान्त्वना सुता निहारि॥
पदमा बोली तब मातासे, पितासे बातें देउ बताय।
कन्या बचन समझिके घरनी पुनि पति पास पहुंची आय॥
करो तयारी अब जल्दीसे बोलीं रानी सुनिये नाथ।
तिहुं पुरमें तुमरो यश छावे सुता जाय जब वेङ्कट साथ॥
सुर गुरु कहं नृप तुरत बुलायो, लगे लेन उनसे जब राय।
तबहिं बृहस्पति बोलन लागे, शुक मुनीश कहं लेउ बुलाय॥
कबहुं कबहुं यहि लोकमें आवौं, ताते उनको जानों नाथ।
व्यास पुत्र शुकदेव बतैहैं, यह सुनि तिनकहं लिए बुलाय॥
हाल जानिके शुक हरषाने, नाचन लगे कमण्डल फेरि।.
मृगछालाको फारन लागे अरु मणि माला डारे तोरि॥
बोले शुक भल बात विचार्‍यो, नृप अकाश सुनिके हरषाय।
सम्मति लैके गुरु लोगन की, तब इमि पत्री लिखी बनाय॥

मंगल

स्वस्ति स्वस्ति श्री शारँगधारी, वेङ्कटाद्रि के वासी।
दर्शन चहत बंधु के नाते, दीजे सो सुखरासी॥
मैं अकाश नृप आशिष पठवत, इहां कुशल सब भांती।
तुम्हरी कुशल चहत निशि वासर, लिखि भेजहु शुभ पाती॥
चैत्र शुक्ल चौदशीको भेजत, लिखि पत्रिका बनाई।
चाहत देन सुता निज तुम कहं, कृपा करौ सुरसाई॥
शुभ वैशाख मास भृगु दिन कहं, दसमी शुक्ल सुहाई।
तादिन शुभ विवाहको उत्सव, निज बरात संग आई॥
पूरन करहु हृदय अभिलाषा, हे सन्तन सुखकारी।
लिखि पत्री शुक मुनि कहं दीन्यो चल्यो मुहूर्त विचारि॥

तब पहुंचे मुनि श्रीनिवास पहं, पाती दियो थमाई ।
बोले श्रीनिवास तेहि औसर, सुनिये श्रीमुनिराई ॥
श्रीनिवास उत्तर लिखि दीने, यहि विधिसों हरषाई ।
श्रीमान तव पाती पढ़िके, महा मोद तन छाई ॥
हम ब्याहन हित तबहि ऐहैं, जब शुभ लगन धराई
लै पाती तब शुकजी पहुंचे, नृप अकाश घर जाई ॥
पुनि हरि सुरगन कहं बुलवाये, पढ़ि पत्री सो आये ।
सब मिलि सज्जन गोठ किये तहं, निज आदेश सुनाये ॥
सब कहं उचित कार्य हरि सौंप्यो, लगे करन हरषाते ।
यह शुभ चरित हर्षि जे गावें, सो सुर लोक सिधाते ॥
विधि शिवसों हरि कियो मंत्रणा, तब कुबेर बुलवाये ।
यथा उचित धन राशि हेतु तब, सब प्रबन्ध करवाये ॥
अश्वथ तरु पुष्करिणी तीरे, ऋण पत्री लिखि दीने ।
साक्षी भये तीनिहुं तेहि थल, सो धनेश लै लीने ॥
बिसकर्मा पुर साजे सब विधि, को करि सके बड़ाई ।
सजि बरात प्रभु चले गरुड़ चढ़ि, बाजन विविध बजाई ॥
नगर द्वार पर भइ अगवानी; पुरजन सब हरषाने ।
वेङ्कटेश बर दूलह लखि के, दम्पति हृदय जुड़ाने ॥
जस कछु है विवाह की रीति; सकल भूप करवाये ।
दायज दिये बरनि नहि जाई, बिदा किये घर आये ॥
लखि अगस्तको आश्रम मंजुल, तहुं षट मास बिताई ।
नृप अकाश तब भयो रोग बश, समाचार सुनि पाई ॥
पत्नी साथ गरुड़ चढ़ि पहुंचे, नेकु बिलम नहिं लाई ।
ससुरहिं अधिक रोगमें देख्यो, श्रीवेङ्कट बिलखाई ॥
सुत बसुदान हमहिं तजि ताता, करते कहां पयाना ।

शोक विवश कछु वचन न आवत, मुख प्रकाश कुमिलाना ॥

सरसी

प्रभु सशोक वर वैद्य बुलाये, सब विधि किय उपचार ।
अन्त काल कछु काम न आवे, यहै जगत व्यवहार ॥
सुरपुर गयो सबहिं तजि नृप वर, दुखित भये सब लोग ।
अन्तिम क्रिया किये मिलि परिजन, पूर्ण भये सब जोग ॥
सुत वसुदान राज तब पायो, पुनः शान्ति दरसाय ।
सब सम्बन्धी गृह चलि आये, निज निज स्नेह जनाय ॥
बहुत काल यहि विधि सों बीत्यो, चहुंधा सुख दरसाय ।
तोण्ड कह्यो यह राज हमारो, हमहिं देव लौटाय ॥

छप्पय

हमहिं देव लौटाय नतरु लैहौं करि युद्धहिं ।
हैं प्रचण्ड रण-मत्त सकल सेनप जय क्रुद्धहिं ॥
खण्ड खण्ड भूखण्ड सहित सब सैन विखण्डैं ।
मम उदण्ड भुज दण्ड, प्रबल तुव धैर्य्य विहण्डै ॥
चलि रुण्ड मुण्ड कटहिं सुभट, योगिनि निज खप्पर भरहिं ।
करि सब वितुण्ड बिनु सुण्ड के, नाहकहों मरि भू परहिं ॥

दोहा

फरकि उठे भुज दण्ड युग, इमि बोले वसुदान ।
तिल भर भूमि न देउ मैं, चहै करौ घमसान ॥

छप्पय

मेरा ही है राज, आज अधिकार हमारा ।
वृथा करौ बकवाद, स्वत्व को तजहु विचारा ॥
गर्जे तर्जे अति गर्वमें भारत गाला ।
जानौं है नियरान, अबहिंते तुम्हरो काला ॥

तृन साग पात कछु हैं नहीं, सूर वीर रण धीर हैं।
हम गिदड़ भभकियोंसे कभो, होते ना भयभीर हैं ॥

मनहरन

दोऊ हैं कठोर दोऊ जाने अपमान निज, बोलत वचन क्रोध बाढ़त अपार है ॥
कांपत अधर युग अरुण कपोल नेत्र, चहुं दिशि दृश्य देखि भयो हाहाकार है ॥
कायर पराने हरषाने हिय वीर धीर तब युद्ध हेतु दोनो वीर कीन्हे निरधार है ॥
अलग अलग दोऊ गये वेङ्कटेश पहं, बोले दोऊ नाथ दास आज निराधार है ॥

दोहा

यह सुनि बानी विनय युत, गै पद्मावति पास।
काह करौं कहिये तुमहुं, बोले रमानिवास ॥

वीर

तब पद्मावति बोलन लागीं, सुनिये हे मेरे भरतार।
रक्षा कीजै मम भ्राता की, जाको तुम्हरो एक अधार ॥
तोण्डमान तौ सब विधि समरथ, करि हैं औरहु नृपति सहाय।
मेरा भाई तो बचा है, अब यहि विपति से लेहु बचाय ॥
सुनि पदमा की बात प्रेम मय, तब बाहर आये भगवान।
दोऊ हमरे हेतु बराबर, हम तिन कहं देहैं बरदान ॥
चक्र सुदर्शन तोण्डमानको, वेङ्कटेशजी दीन्ह थमाय।
युद्ध हेतु असि धारि अश्व चढ़ि, निज सालेके साथहिं आय ॥
भई लराई दोनों दलमें, आमा छोरि चली तरवारि।
मानो दामिनि घनमें चमके, लागत शीशहिं लेत उतारि ॥
फाटैं सुण्ड मुण्ड महि पाटैं, जस चाही तस भो घमसान।
तोण्डमान सुत चक्र चलायो, कीन्हों ईश बुद्धि अवसान ॥
पदमा लखो अटाते जबहीं, युद्धस्थलमें पहुंची आय।
रोवन लागीं करुणा करिके, ह्वै सचेत हरि कह्यो रिसाय ॥

भागो भागो तुम जल्दीसे, इहां तुम्हारो ना कछु काम।
नारी रहें भवन के भीतर, क्यों शोकातुर होती वाम॥
तोण्डमान शत्रू है मेरा, मरिहौं ताहि न उबरै प्रान।
प्रान रहत लौं युद्ध करौं मैं, मेरा है सरवस वसुदान॥
तेहि क्षण महं अगस्त तब आये, बोले हरि सों शीश नवाय।
शान्ति करावहु निज मित्रनमें, लीला तुम्हरी बरनि न जाय॥

दोहा

अस्तुति सुनी अगस्त की, दीन्ही शान्ति कराय।
भाग बरावर लै गये, हरि सों आशिष पाय॥

वेङ्कटेशकी विनय सुनी जब, बत्तिस गांव दोऊ मिलि दीन।
सबकी सम्मति लै अगस्त घर, आये भै पद्मा संग लीन॥
आवत सदा तोण्ड भक्तो सो, दर्शन करत नवावत शीश।
बोले एक दिवस तब तिनसों, प्रेमातुर ह्वै श्री जगदीश॥
ससुर अकाश रह्यो ना भूपर, याते मोकहं भई गलानि।
तोण्डमान तब दई सान्त्वना, परारब्ध है लीजे मानि॥
नृप अकाशके ह्वै जमाता, करौं दूसरेके घर वास।
मम हित मन्दिर एक बनावहु, नाहिं तो है मेरा उपहास॥
तोण्डमान लै गिरि पर गवने, शुभ मुहूर्तमें पद्मा साथ।
पुष्करिणीके दक्षिण तीरे, गृह उद्धार हित बोले नाथ॥
पूर्व जन्ममें तुमहिं बनायो, ताको करो जीर्ण उद्धार।
तोण्डमान तब हरिसों बोले, कहिये पूरब चरित हमार।
पूर्व कालमें इक वैखानस, कृष्ण दर्श हित तप किय जाय।
प्रकट कृष्ण सों प्रेरित होकर, वेङ्कट पर हरि चरण मनाय॥
तासु सहायक रंगदास भो, शूद्र बरन पर प्रभुको दास।
लखि गन्धर्व तीय जल क्रीड़ा, भयो कामको मन आभास॥

भयो विलम्ब पुष्प संचयमें, तब,वैखानस पूछो बात।
लज्जा वश सो कछु ना भाष्यो, तबहिं कह्यो हरि सुनिये तात ॥
भय मत करहु मोर यह माया, होइहो नृपति तोण्ड धीमान।
जन्मान्तरमें कूप आदि रचि, चढ़ि विमान करि स्वर्ग पयान ॥
ईश वचन सुनि अति हर्षान्यो, दिये कूप मन्दिर बनवाय।
बहुत काल तक सब सुख भोग्यो धर्म नीति युत राज चलाय ॥

काव्य

एक समय इक विप्र, नारि संग नृप गृह आयो।
करि अभिवादन तोण्ड, ताहि सन वचन सुनायो ॥
कहिये आपन काज, आज करि कृपा पधारे।
धन्य धन्य मम गेह, अहै धनि भाग्य हमारे ॥
तब बोले द्विजराज, सुनहु हे भूपति ज्ञानी।
सुत तिय सौंपहुं तोहिं, लेहु याको तुम मानी ॥
हम तीरथको जांय, लौटिहैं गये छ मासा।
पूर्ण व्यवस्था करो, लहो सब भांति सुपासा ॥

चौपाई

दो वत्सर बीते द्विज आयो। तिय सुत कुशलको प्रश्न सुनाये ॥
मृतक जानि नृप बात बनाई। ईश दरस सो मंदिर जाई ॥
इमि कहि तब नृप हरि पहं जाई। द्विज कुटुम्बको देहु जिलाई ॥
हरि प्रेरित ह्वै नृप गृह आये। अस्थि तीर्थ तिय अस्थि पठाये ॥
जीवन पाय मिली सो आई। दै आशिष द्विज गयेउ लिवाई ॥
स्वर्ण पुष्प हरि शीश चढ़ाहीं। भक्ति गर्व भो नृप उर माहीं ॥
भूरि धूसरित तुलसी देखी। जबहिं ईशके शीश विशेखी ॥
कौन भक्त है मोहिं समाना। नृप अभिमान ईश जब जाना ॥

तब अकाश बानी भई, है इक भीम कुंभार।
प्रेम विवश ताके भयो, निज शिर तुलसी धार॥

अनूप

तब कूर्व गांव नृप आये, तहं यह दृश्य दिखाये।
बैठो तहं भीम कुंभारा, हरि संग करन अहारा॥
निज किरीट दे दीना, है प्रसन्न लै लीना,
दिय कुंभार पहिराई, भूपन रमा सजाई॥
आयो तुरत विमाना, तेहि पै किय स्वर्ग पयाना।
नृप तोण्ड सो हृदय लजाना, त्याग्यो सो गर्व महाना॥

दोहा

गर्व गयो भक्ती लह्यो, पूर्‌यो निज मन काम।
पूरन भयहु चरित्र यह, अन्त गयो सुरधाम॥

इति श्रीभविष्योत्तर पुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः



अथ श्रीब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः

घनाक्षरी

भृगु मुनि पहं इक दिन आय नारदजी,
हरिको निवास यहि भांतिसों बताये हैं ॥
क्षीर सिन्धु माहिं पूछे हरिहूं बतायो तिन्हैं,
सबते पुनीत वेङ्कटाद्रि मन भाये हैं ॥
अञ्जनाद्रि वृषभाद्रि आदिक हैं नाम ताके,
अलग अलग सबे ग्रन्थ में गिनाये हैं ॥
वास कर सदा प्रभु स्वर्णमुखरीके तीर,
नृप चक्रवर्ति भक्त मुक्ति फल पाये हैं ॥
सुनि विधि सुत बैन, शेष प्रति बोले ईश,
धरि गिरि रूप रहो तहां तुम जाइकै ॥
रमा आदि सब कहं, आज्ञा करि दीन्हीं तैसे,
वास करौ तित नित सब सुख पाइकै ॥
सब तीर्थ वास ह्वैके, अचल अनन्त भये,
ऋषि मुनि तप करैं भक्ति युत आइकै ॥
शिर नाम कालहस्ति, पुच्छ श्रीशयल भाषैं,
शिव तप व्याघ्रपाद जहां चित्त लाइकै ॥

सरसी

पक्ष देश नरसिंह वास हैं, ताहि अहोबिल नाम ॥
फणादेश शेषाद्रि बखानै, सोइ रमापति धाम ॥

वीर

नारायण द्विज कियो तपस्या, तासु नाम गिरि पर्यो पुनीत ।
प्रकट रूप तव ईश भये हैं, तव द्विज विनती करी विनीत ॥
मृगयामें वृषभासुर मार्यो, अस्तुति कियो सो शीश नवाय ।
तहं वृषभाद्रि तीर्थ हरि कीन्यो, महिमा रही जगतमें छाय ॥
अञ्जना नाम देवि सुत पायो, धर्यो अंजनी ताकर नाव ।
बाल समय रवि लीलन गयऊ, मार्यो वज्र भयो तन घाव ॥

दोहा

वेङ्कटाद्रि पै अञ्जना गई तपस्या काज ।
आंजनेय वर तब भयो, धीर वीर बलराज ॥
निर्णय जन्म मुहूर्त है, बल तेहि पुनि अधिकाय ।
अरुण फलक कोउ जानिके, रवि मंडल को धाय ॥
ग्रसन चहो दिन कर तहां, देखि देव रिसियाय ।
ताहि नाम पर्वत दिया, अभय किया विधि जाय ॥

सरसी

देव श्राप तब देवन दीह्यों, कबहुं न तुम्हरो बाढ़ै वंश ।
तब सुरगण देवीपहं आये, अपनो अपनो धरिके अंश ॥
दई सान्त्वना तब देवी कहं, पर्यो अञ्जना तीरथ नाम ।
पढ़ै सुनैजो भक्ति प्रेम युत, पूर्ण होइ हैं सब मन काम ॥

दोहा

क्रीड़ाचलको कहत है, वेङ्कट गिरि अभिधान ।
पढ़े मुक्ति ह्वै हैं अवशि, माधव का आख्यान ॥
विप्र पुरन्दरके तनुज, माधव कामी होय ।
चण्डालिनि के रूप पर, भ्रष्ट भयो तप खोय ॥

शेषाद्रो पर तप कियो, पायो विमल शरीर।
मुनि गण कहं अचरज भयो, वेङ्कटार्थ गम्भीर॥
वर्णन नाना विधि कियो, सुन्दर कथा सुखान्त।
यम-भय-भागत सुनत जेहि, विगत मोह भ्रम भ्रान्त॥

वीर

नाग सुता कहं देखि गर्भिणो, बोले बड़े ज्योतिषी आय।
महा प्रतापी पुत्र होइहैं, करिहैं कोऊ सामना नाथ॥
दसवें मास श्रेष्ठ लक्षणसों, बालक भयो चोल घर एक।
याचक अमित दान तब पाये, जात कर्म सब भो सविवेक॥
चोल पुत्र पाताल ते आयो, लागि रह्यो जहं पितु दरबार।
नभ बानी सुनिराज दियो तिहुं दिशि भयो मङ्गला चार॥

दोहा

चक्रवर्ती नृप तहं गयो, राजत जहां वराह।
गोप कथित आख्यान प्रभु, स्वप्नेमें नरनाह॥
मन्त्रि कथन शबरागमन, मन्त्र स्वप्न शुभ चाह।
सब मिलाय निश्चय गमन, वेङ्कट निकट वराह॥

सार

शबर साथ नृप सत्वर आये, राजत जहां वराहा।
गऊ-क्षीर अभिषेक यथा विधि, किये तहां नरनाहा॥
अस्तुति कियो प्रेम युत नृपवर, प्रगट भये जगदीशा।
रथ उत्सव तब सुरगन कीन्हें, सबहिं लह्यो आशीशा॥
भयो समाप्त महोत्सव जबहीं, नृपति भवन तब आयो।
सुर नर मुनि सब भये अनंदित, महा मोद तन छायो॥
नृप पहं इक दिन इक द्विज आयो, सुनहु तासु इतिहासा।
निज सुत तिय राजाको, सौंप्यो, गयो तीर्थ हरिदासा॥

सो सब कथा बखान्यों पूर्वहिं, इत संक्षेप बतावें।
तिय, सुत मरयो राजको चूकहि, औरहु चरित सुनावें॥
द्विज आया मांग्यो जब थातो, तब हरि पहं नृप जाई।
यह कलंक मम मेंटहु स्वामी, दीजै ताहि जिलाई॥
अस्थितीर्थं अवगाहि जियायेउ, द्विज तेहि लै घर आयो।
भृगु सन नारद सोई बखान्यो, व्यासदेव तेहि गायो॥

दोहा

करना तप सिंहादका, ब्रह्माका वरदान।
पीड़ित सुर वेङ्कट गमन, पुनि आज्ञा भगवान॥
चक्रवर्ति कर गमन तित, करुणाकर प्रभु पास।
असुर वधन आयुध मिलन, वेप किरात प्रवास॥
पाप नाशिनी निकट रण, मन्त्र सुदर्शन दान।
वध सिंहाद सुचक्र से, शस्त्र कर्म गुणगान॥
भृगु मुनि नारद सों सुने, पुनि पुनि कथा महान।
पढ़त सुनत मुक्ती लहत, होत मनुज धीमान॥

इति श्रीब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्त.।



शेषाद्री पर तप कियो, पायो विमल शरीर।
मुनि गण कहं अचरज भयो, वेङ्कटार्थ गम्भीर॥
वर्णन नाना विधि कियो, सुन्दर कथा सुखान्त।
यम-भय-भागत सुनत जेहि, विगत मोह भ्रम भ्रान्त॥

वीर

नाग सुता कहं देखि गर्भिणी, बोले बड़े ज्योतिषी आय।
महा प्रतापी पुत्र होइहैं, करिहैं कोऊ सामना नाय॥
दसवें मास श्रेष्ठ लक्षणसों, बालक भयो चोल घर एक।
याचक अमित दान तब पाये, जात कर्म सब भो सविवेक॥
चोल पुत्र पाताल ते आयो, लागि रह्यो जहं पितु दरबार।
नभ बानी मुनिराज दियो तिहुं दिशि भयो मङ्गला चार॥

दोहा

चक्रवर्ती नृप तहं गयो, राजत जहां वराह।
गोप कथित आख्यान प्रभु, स्वप्नेमें नरनाह॥
मन्त्रि कथन शबरागमन, मन्त्र स्वप्न शुभ चाह।
सब मिलाय निश्चय गमन, वेङ्कट निकट वराह॥

सार

शबर साथ नृप सत्वर आये, राजत जहां वराहा।
गऊ-क्षीर अभिषेक यथा विधि, किये तहां नरनाहा॥
अस्तुति कियो प्रेम युत नृपवर, प्रगट भये जगदीशा।
रथ उत्सव तब सुरगन कीन्हें, सबहिं लह्यो आशीशा॥
भयो समाप्त महोत्सव जबहीं, नृपति भवन तब आयो।
सुर नर मुनि सब भये अनंदित, महा मोद तन छायो॥
नृप पहं इक दिन इक द्विज आयो, सुनहु तासु इतिहासा।
निज सुत तिय राजाको, सौंप्यो, गयो तीर्थ हरिदासा॥

तुम तो नौकर हौ उनहींके, काहे बढ़ि बढ़ि मारौ हाथ ॥
तुरत वायु तब बोले सुनिये, गाल बजावत लगै न लाज।
कछु शक्ती निज प्रगटि जनाओ, हमरी तुमरी ह्वै है आज ॥
हाथी सदा रहत है बाहर, घरमें घुसिके रहै बिलार।
करै बराबरि सो कैसेकै, है तैसे अभिमान तुम्हार ॥
इज्जतमें तुम मो सम नाहीं, बलमें भी हो नहीं समान।
बहुत बोलना हमै न आवे, बलकर अपने दो परमान ॥
तबहिं शेषजी क्रोधित ह्वै के, बोले करौ परीक्षा आज।
वायू बोले बल औ गतिमें, इहां लड़े ते चले न काज ॥
सुनि विवाद श्रीपति तब आये, तुम वायूके नहीं समान।
बने घमण्डी काम न चलिहै, यहि विधि तब बोले भगवान ॥
मोहूं ते मारुत हैं बढ़ कर, भयो घमण्ड धराको धार।
तुम्हरो बलको रोकनहारो, है हमार कूरम अवतार ॥
बोले शेष सुनो हे स्वामी, आज हमारि परीक्षा होय।
सोई यामें है बलशाली, यहि मुठभेड़ में जीतै जोय ॥
शेषाचल को रोकिके बैठों, जो वायू महि देय उड़ाय।
हम हारे तब जीति गये ये, यामें कछु संशय है नाय ॥
जबहिं शेष गर्वित ह्वै बोले, सुनिके वायू भये तयार।
दोऊ जने भूमि पर आये, निज बल में हैं अपरम्पार ॥
मेरु पुत्र कहं शेष लपेट्यो, सारी शक्ती दियो लगाय।
वायू चाहत ताहि उड़ावन, निज अंगुठा को बल दिखराय ॥
तिल भर गिरि टरि सक्योनहीं जब, तब मारुत मनमें घबराय।
पूरी शक्ती करि दहलायो, शेष सहित गिरि दियो उड़ाय ॥
तूल ढेर सम पर्वत उड़िगो, तापर शेष उड़े अकुलाय।
अर्ध लाख योजन उड़ि गयऊ, सोनमुखरी पर दियो गिराय ॥

अथ श्रीब्रह्मपुराणान्तर्गत
श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसार:

बरवै

दुर्वासा जी बोले हरि गुन गाय।
सुनि दिलीप हरषाने, शीश नवाय॥
पुष्करिणी के तीरे योजन तीस।
गिरि सुमेरु सुत फैल्यो, तहं जगदीश॥
कोऊ कहैं नरायन, विरषाचल गाय।
अञ्जना तपके कारन, सोइ कहाय॥
गये शेष के साथे, ताहि कहाय।
महिमा अमित अगाधा, बरनि न जाय॥

वीर

दुर्वासा जो नृप प्रति बोले, सो सब चरित सुनावहुं आज।
हरि चरचामें प्रेम देखिके, बरनत हौं भक्तनके काज॥
क्षीरसिन्धुमें रमाके साथहिं, करत रहे जगदीश विहार।
बोले श्रीपति सुनहु शेष तुम, दीजै पहरो बैठि दुवार॥
विष्णु देवकी आज्ञा मानी, निज बलको उपज्यो हंकार।
क्षीरसिन्धुमें गये वायु तब, शेषसे होन लगो तकरार॥
ठहरो ठहरो शेष जी बोले, अबै समय नहिं भीतर जाव।
तुममें आत्म ज्ञान है नाहीं, तबहिं वायु इमि बैन सुनाय॥
बोले शेष सुनो हे मारुत, हमहीं रहैं सदा हरि साथ।

तुम तो नौकर हो उनहींके, काहे बढ़ि बढ़ि मारौ हाथ ॥
तुरत वायु तब बोले सुनिये, गाल बजावत लगै न लाज।
कछु शक्ती निज प्रगटि जनाओ, हमरो तुमरो ह्वै है आज ॥
हाथी सदा रहत है बाहर, घरमें घुसिके रहै बिलार।
करै बराबरि सो कैसेके, है तैसे अभिमान तुम्हार ॥
इज्जतमें तुम मो सम नाहीं, बलमें भी हो नहीं समान।
बहुत बोलना हमै न आवे, बलकर अपने दो परमान ॥
तबहिं शेषजी क्रोधित ह्वै के, बोले करो परीक्षा आज।
वायू बोले बल औ गतिमें, इहां लड़े ते चले न काज ॥
सुनि विवाद श्रीपति तब आये, तुम वायूके नहीं समान।
बने घमण्डी काम न चलिहै, यहि विधि तब बोले भगवान ॥
मोहूं ते मारुत हैं बढ़ कर, भयो घमण्ड बराको बार।
तुम्हरों बलको रोकनहारो, है हमार कूरम अवतार ॥
बोले शेष सुनो हे स्वामी, आज हमारि परीक्षा होय।
सोई यामें है बलशाली, यहि मुठभेड़ में जीतै जोय ॥
शेषाचल को रोकिके बैठों, जो वायू महि देय उड़ाय।
हम हारे तब जीति गये ये, यामें कछु संशय है नाय ॥
जबहिं शेष गर्वित ह्वै बोले, सुनिके वायू भये तयार।
दोऊ जने भूमि पर आये, निज बल में हैं अपरम्पार ॥
मेरु पुत्र कहं शेष लपेट्यो, सारी शक्ती दियो लगाय।
वायू चाहत ताहि उड़ावन, निज अंगुठा को बल दिखराय ॥
तिल भर गिरि टरि सक्यो नहीं जब, तब मारुत मनमें घबराय।
पूरी शक्ती करि दहलायो, शेष सहित गिरि दियो उड़ाय ॥
तूल ढेर सम पर्वत उड़िगो, तापर शेष उड़े अकुलाय।
अर्ध लाख योजन उड़ि गयऊ, सोनमुखरी पर दियो गिराय ॥

टुकड़े टुकड़े फूटि गयो गिरि, शेष को गर्व शेष तव कोन।
मेरु कियो तब सुत हित अस्तुति, जोहौं नहीं मैं पुत्र विहीन॥
त्राहि त्राहि अब रक्षा कीजे, सुत भिक्षा दै पुरवहु साध।
शेष कियो सो सब फल पायो, नहीं पुत्रकर है अपराध॥

सरसी

वेङ्कटाद्रि पै भयो शेषको, समारम्भ तब घोर।
उदित बाल रवि सम प्रकटे, हरि सन्तनको चित चोर॥
शेष कथन अनुकूल मानिके, वेङ्कट गिरि पर वास।
दृढ़ इच्छासे रहे तहां पै, शेष किये अडवास॥
स्वामीसर तट केर महातम, कारण ईश निवास।
सरस्वती-तट तप जो कीन्ह्यों, मुनि सुरूप मन आस॥
सरिता मुनि की कलह सुनावौं, अरु आपस का श्राप।
सरस्वती करि उग्र तपस्या, स्वामीसर भइ आप॥

सार

तब दिलीप बोले हे मुनिवर, कहहु कथा सुखरासी।
सुरपुर को तजि कैसे श्रीपति, भै वेङ्कट के वासी॥
सुनिके होत आचरज मोको, शंका देव मिटाई।
पूछेउ हरि-यश मम मन भावन, इमि बोले मुनिराई॥
दर्प हीन ह्वै करी तपस्या, जय अनन्त मन लाई।
शैल रूप मम देह में राजो, प्रभु बोले हरषाई॥
भूमि लोकमें आय रहौं मैं, इमि सोचत जगदीशा।
स्वर्ग लोकते घूमत आये नारद योगि मुनीशा॥
पुष्करिणी के तीर बतायो, वेङ्कटाद्रि चल जाई।
तबते श्रीनिवास पदमा संग, करैं वास तहं आई॥
वेङ्कटाद्रि बहु देश विराजैं, एक से एक महाना।

पुष्करिणी पर ही किमि आये, कारन कहहु सुजाना ॥
सर्वोत्तम ह्वै तीर्थ रहूं मैं, वनी नदी तव वानी।
ता तट करी पुलस्त्य तपस्या, निज सुत तेहि अनुमानी ॥
करी अर्चना ना तिन की कछु, भरयो गर्व उर माहीं।
दियो श्राप इच्छा ना पुरवहि, सुरसरिहीं बढ़ि जाहीं ॥
पुनि प्रति श्राप सरस्वति दीन्ह्यो, दनुज वंश हो तोरा।
तव पुलस्त्य मुनि अस्तुति कीन्ह्यो, दूरि करहु दुख मोरा ॥

दोहा

तव कुल में बहुकालमें, विष्णु भक्त इक होय।
नाम विभीषण ताहि को, चिरंजीवी हो सोय ॥

चौपाई

बहुरि सरस्वति किय तप भारी। भै प्रसन्न भक्तन भय हारी ॥
तव वानी प्रति स्नेह जनाई। बोले वेङ्कटेश तब आई ॥
सरितन में बढ़ि होइहौ नाहीं। मुनि कर श्राप वृथा नहिं जाहीं ॥
वेङ्कटाद्रि पुष्करिणी नामा। होइहौ सब तीरथ कर धामा ॥
आय रहौं तव दक्षिण तीरा। रमा समेत, धरहु हिय धीरा ॥
धनुर्मास महं तुम पै आवें। जेते जगके तीर्थ गनावें ॥
तीर्थराज तुम कहं सब करिहैं। आय इतै भव सागर तरिहैं ॥
बकुला जो मृदु पाक बनाई। ता अधिपति तातें बनि आई ॥

दोहा

रहौ इतै तुम श्रेष्ठ ह्वै, करहु प्रेम सो वास।
पढ़ै जोई हरि चरित यह, होय पाप सब नास ॥

चौपाई

को सुर, ऋषि, नर कहहु सुजाना। तीर्थ प्रसिद्ध भयो जग जाना ॥
सुनि दिलीपकी मंजुल वानी। बोले मुनि दुर्वासा ज्ञानी ॥

देवनमें वायूके कारन। भो प्रसिद्ध तीरथ उद्धारन॥
ऋषि महं नाम अगस्त बताये। जो सुवर्णमुखरी कहं लाये॥
नर महं नृप शंखन भै भारो। हरि विमानकी करी तयारी॥
रचि विमान सुरलोक सिधाये। जासु चरित ग्रन्थन महं गाये॥
केते तीर्थ करहिं इत वासा। सुनत कह्यो तब इमि दुर्वासा॥
छाछठ कोटि तीर्थ यहि माहीं। जहां गये सब पाप पराहीं॥

दोहा

आठऽरु एक सहस्रहै, तामें इक शत अष्ट।
तामें षष्टी जानिये, तामें सप्त वरिष्ट॥

मनहरन

माधव महं पूनमको जाइये कुमारधारा,
दरश किये ते सब पाप विनसाइहैं॥
फालगुन पूनममें तुम्बुर नहाय, जोय,
जाय सुर लोक दूजो जन्म नहिं पाइहैं॥
वैशाख पूनमको, जाय जो अकाश गंगा,
इन्द्र पद पाय सुख मोद सरसाइहैं॥
जेठ शुक्ल कृष्ण द्वादशी रवि भौम वार,
पाण्डु तीर्थ पुण्यफल, मुक्ति पाय गाइहैं॥

दोहा

आश्विन शुक्लकी सप्तमी, जो होवे रवि वार।
उत्रा भाद्रा द्वादशी, पाप नाशको द्वार॥
धनुर्मासकी द्वादशी, अरुणोदयके माहिं।
पुष्करिणी अस्नान ते, सबही पाप नसाहिं॥

वीर

वेङ्कटेशके पूर्व भागमें चक्रतीर्थकी महिमा गाय।
राज चक्र तेहिं कियो अधिष्ठित, अन्त गयेउ सुरधाम सिधाय॥

याइव भाग मनोहर तीरथ, जहां सनातन हैं भगवान् ।
अश्वमेध है किया गया जहं· कौन महातम करै बखान ॥
सोई दिशा कुमारधारिका, गज तीरथ तहवां दरसाय ।
ऋष्य शृङ्ग तुम्बुर हैं तहईं, तेहि मधि तीर्थ अठारह आय ॥
इक सत आठ और हैं तीरथ, करैं तपस्या जन तहं जाय ।
सब कर नाम ग्रन्थमें गायो, इत संक्षेपै दीन बताय ॥

सार

शंख चक्रके धारनवाले, श्रीनिवास है नामा ।
आंखैं चढ़ीं जो गात हेरहिं, चरित्त सुनहु अभिरामा ॥
नीले वारिद सम दरसाते, पीताम्बरके धारी ।
हृष्ट पुष्ट चर बाहुं विराजै, सदा भक्त-भय हारी ॥
दीरघ नयन नासिका मंजुल, कोटि काम मन मोहैं ।
दमकत कुंडल चौड़ी छाती, नित लक्ष्मी संग सोहैं ॥
शंख नाम नृप को दै दीन्यो, शंख चक्र निज भारी ।
शिला रूपमें सों नहिं दीसै, तिन चरनन बलिहारी ॥

मालती

चोल के देश रह्यो। पयखानस कृष्णके हेतु कियो तप भारो ।
विष्णु जि स्वप्नमें आय कह्यो, तुम पूजा कियो कुसुमाञ्जलि धारो ॥
वेङ्कटपै चलि जाय करौ तप, पूरन होइहै आश तिहारो ।
नष्ट विमान भयो अब तो, तहं भूमि गड़ी इक मूर्ति हमारो ॥

मदिरा

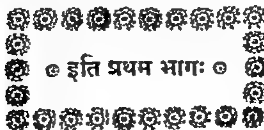
है इमली तरु बाह्य में जिन्हैं क्षीर दै धेनुह्न पूजि लियो ।
भक्ति के साथ में पूज्यो जाय, मिलिकै दास सो प्रेम कियो ॥
स्वप्न की बातको मानि भली विधि, ईशको भक्तिमें चित्त दियो ।
मूर्ति निकासिकै मंदिरमें धरि ध्यान कियो शुभ मुक्ति लियो ॥

वीर

तहं कुंडल निज तिय संग आयो, लखि गंधर्वको करत विहार ।
भयो काम वश भक्त दास सो, ताको कियो ईश उद्धार ॥
तन तजि भयो तोण्ड नृप सोई महा भक्त किय ईश प्रसन्न ॥
मंदिर कूप यज्ञ मण्डप रचि, क्षेत्र खोलि नित देता अन्न ॥
चक्र आदि दै करी सहायता, लीने तोण्ड नगर अरि घेरि ॥
मूरति शंख चक्र नहिं दीसै, सुनिये पुण्य कथा हरि केरि ॥

सरसी

जब किरात निज सुत कहं मार्‌यो, लीन्यो ईश बचाय ।
यह प्रसङ्ग जानै सब कोई, इत संक्षेप बताय ॥
ईशहु आगे पूजन जोगहिं, जानिय तीर्थ विमान ।
धन तीरथ उत्तरमें राजै काटत पाप महान ॥
मारकन्डे प्राचीमें सोहैं, औरहु तीर्थ अनेक ।
पढ़े महातम स्वर्गको जावे, धरै धर्मकी टेक ॥
पूरन भयहु महातम यहि विधि, पढ़िय सुनिय धरि ध्यान ।
भूल चूक सज्जन मम क्षमिहैं, जानि दास अज्ञान ॥
भगवान् वेङ्कटनाथका श्रीवेङ्कटाचलका महा ।
माहात्म्य पूरित प्रथम पुष्प सुगन्धमय ले आ रहा ॥
ब्रह्मर्षिमण्डल कथित रञ्जक सुरगिरा महँ जो रहा ।
सो भक्तिसे अनुरागवश है साथ हिन्दीके कहा ॥



॥ इति प्रथम भागः ॥



पद्मपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसार

मंगलाचरण



दोहा

वेङ्कटेश पद- पद्मका, हिय धरि नित्य प्रकाश ॥
चरित लिखत संक्षेपमें, पूर्ण होय मन आश ॥

चौपाई

जो इतिहास पुरान बतावे । निज भक्तन सन मुनि गण गावे ॥
विविधि छंद महँ कछुक बखानी । सुनिहैं पढ़िहैं जे नर ज्ञानी ॥
सत संगति लहि बाढ़त ज्ञाना । अन्त करै सुर लोक पयाना ॥
पढ़ै सुने जो नित धरि ध्याना । वेङ्कटेश करिहैं कल्याना ॥
पुष्करिणी कहँ ध्यान लगावे । कोटिक यज्ञ केर फल पावे ॥
छाछठ कोटि तीर्थ यहि माहीं । तहां जाय सब सन्त नहाहीं ॥
जो सुवर्णमुखरी पर आवे । सहित सनेह ध्यान नित लावे ॥
सुरपुर जाय सो बिनहि प्रयासा । पढ़हिं सुनहिं जो यह इतिहासा ॥

दोहा

सुनि हैं जो चितलाइके, ह्वै है ज्ञान विकाश ।
बरण्यो कछु संक्षेपमें, मति अनुसार प्रकाश ॥

मनहरण

पदम पुराण मनहरन प्रसंग यह, भाषा छन्द रचि सोई देत बतराये हैं ।
देवल भगत पूछे कथा देवदर्शनसों, वेङ्कटाद्रि गिरिके चरित मुनि गाये हैं ॥

विधिको प्रणाम करि तपहेतु शुक मुनि, कीन्हों सो पयान देश दक्षिणका आये हैं।
वेङ्कट, कुमारधारा और नभगङ्गा के, करत दरश अघ औगुन नशाये हैं॥
करि स्नान व्योम गङ्गामें सफल होत, कोटिक जनमकेर पाप बिनसाते हैं।
हरि ही-ध्यान धरि व्रतती वर्तनी पै आय, गोता जो लगाये ऐसी वानी सुनि पाते हैं॥
स्वर्णमुखरीके तीर उत्तरमें पद्मसर, हरि प्रगटेंगे तहां तप हेतु जाते हैं।
करत अटल तप बैठे तहां शुकमुनि, कथाको श्रवण करि सुख सब पाते हैं॥

रूपघनाक्षरी

दिव्यवन-सघन पद्म-सर-तीर-बैठि, व्योम वानी हिय धरि तपमें लगाये मन।
शुक-तप-बल-देखि व्याकुल जगत भयो, इन्द्रलौं डराने नहिं लेय छीनि राज धन॥
रूपघनअक्षरी वराङ्गना बोलाय तब, तहां पै पठाये तोरि देहु जाय मुनि पन।
विविधि यतन करि हारि हिय मानि गईं, तप बल मुनिश्रेष्ठ जीते पूर्ण काम रन॥

भुजंगप्रयात

भुजंगप्रयाता चली चाल रम्भा। डिग्यो ना महर्षी कियो कोटि दम्भा॥
जिसे देखि इन्द्रादिको चित्त मोहै। डिगै ना व्रती सो कहो जीव को है॥
नशै न तपस्या दियो श्राप नाहीं। धरे ध्यान बैठे रहे वृक्ष छाहीं॥
कियो स्तुती ईशको जोरि पानी। रही चित्तमें सो भरी व्योम वानी॥

तोटक छन्द

शुक स्तुति कोटिक भांति कियो। हरिको हियमें अपनाय लियो॥
मुनि नाचत तोटक गाय महा। तप कीन निरन्तर कष्ट सहा॥
मुनिको हरि आयके दर्श दिये। तपको अपने फल पाय लिये॥
अति तुष्ट भये भगवान जये। शुकको किय मुक्ति प्रदान तये॥

दोहा

मायाको करि दूरि मुनि, करि निज दिव्य विकास।
किय दण्डवत प्रकाश पुनि, कीन्हों निते निवास॥

सुठि तृतीय अध्यायमें, यहै प्रसङ्ग महान।
सुनहिं पढ़हिं जो हरि-भगत,उर दोहा सत ज्ञान॥

चौपाई

पद्मतीर्थ तट मुनि जब आये। शुकपुर तहँ इक नगर बसाये॥
इक सत आठ भूप के गेहा। बनवाये मुनि सहित सनेहा॥
श्री बलराम कृष्ण तहँ आये। तिन चरनन मुनि शीश नवाये॥
कछुक काल तहँ कियो निवासा। पूरी शुक मुनीश की आसा॥
पुनि मुनीश शेषाचल गयऊ। पुष्करिणी तट आवत भयऊ॥
तहं मुनि पाये अमित अनन्दा। करि स्नान काटि जग-फन्दा॥
श्री निवास मे प्रकट दयाला। शङ्ख चक्र गहि गदा तमाला॥
बिनती करि प्रणाम मुनि कीन्हा। ह्वै प्रसन्न हरि आशिष दीन्हा॥

गये मेरु गिरि शुक तबै, हरिसों आशिष पाय।
पढ़हिं जे नर भव पार हों, यह चतुर्थ अध्याय॥

पाप भार दबि धरा पुनीता। हरिसों स्तुति कियो बिनीता॥
पुनि सो कीन पताल पयाना। हरि जय दुखद मरम यहु जाना॥
धरि बराह वपु गये पताला। तेहि बहोरि लाये तत्काला॥
भूमि सहित शेषाचल आये। दीमक बिवर निवास बनाये॥
कछुक काल तहँ रहे बराहा। पुष्करिणी तीरथ अवगाहा॥
किन्नर शाप पाइ धरि गाता। तहँ दम्पति ह्वै रह्यो किराता॥
ता सुत धान बीज कछु पायो। नाम प्रियङ्गु तासु बतरायो॥
भूमि दाबि कृषि रूप जमावा। देख्यो इक बराह तहँ आवा॥

चक्रवर्ति नृपसों कह्यो, सो किरात-सुत जाय।
तेहि सँग आय अहेर हित, निजकर धनुप चढ़ाय॥

देखि बराह बिवर निज गयऊ। तेहि देखत नृप विस्मित भयऊ॥
कुश शैय्या सोयो नृप तहँवा। सो बराह घुसि पैठ्यो जहँवा॥

नृप प्रति भै अकाश ते बानी। हरि इच्छा भूपति तेहि मानी॥
श्याम गऊ कर क्षीर मंगावहु। तब वराह अभिषेक करावहु॥
कंचन कलश क्षीर नृप लायो। प्रजा सहित अभिषेक करायो॥
करि पूजा नृप निज गृह आयो। ईश कृपा इच्छित फल पायो॥
स्वामीसर तट रहैं मुनीशा। तजि वैकुण्ठ बसे तहँ ईशा॥
यह षष्टम अध्याय पुनीता। पढ़े सुने भागे भव भीता॥

तीर्थ नृसिंहाचल विमल, जहँ नृसिंह भगवान।
नीलकण्ठ आश्रम शुभग, तहँ शिवको स्थान॥

सोरठा

नीलकण्ठ भगवान, नरहरिकी स्तुति कियो।
सोरठ में गुन गान, किय सप्तम अध्यायमें॥

मत्तगयंद

मत्तगयंदह सिंहको रूप कियो तहं थापित सो सुखदाई।
ताकी महा महिमा किमि भाषहुं शारद शेष सकैं नहिं गाई॥
प्राची दिशा तहंते कछु दूरि जहां सब पाण्डव. गे हरषाई।
पाण्डव तीरथ नाम पर्‍यो शुभ कीरति जासु रही जग छाई॥

दोहा

श्रीनारायण गिरिप्रभा, ता पीछे दरसाय।
पढ़े मोक्ष सज्जन लहहिं, यह अष्टम अध्याय॥

षट्पदी

श्रीनृसिंह गिरिवास, करहिं नित रमानिवासो। रक्षक आश्रम केर, रहैं भैरव अविनासी॥
ताके प्राची ओर अञ्जना पर्वत सोहै। शिव गौरी स्थान देखि,सुर नर मन मोहै॥
श्रीदक्ष-यज्ञमें हारि हिय, अन्तर्हित गौरी भईं।
जब गुप्त भये शंकर यहीं, तब अर्धंगी ह्वै गईं॥

श्रीपुष्करिणी केर, मुनीसन कीरति गाई। षटपदादि गुंजार सुने चित जात लुभाई॥
अत्रि कहैं स्नान, किये मुक्तो जन पावैं। भ्रूण हत्याको नाश,व्यास इक ओर बतावैं।
श्रीऋषि वसिष्ठजी इमि कहैं, सात जन्मको पापभी।
मुनि पराशरहु कह दूर हो, सकल नरकको दापभी॥
गौतम कह लै नाम करै कबहूं असनाना। तुरत होय सो मुक्त, सदा भोगै सुख नाना।
प्रात लेय जो नाम, मरे बैकुण्ठ सिधावें। भरद्वाज मुनि श्रेष्ठ, महा महिमा इमि गावें॥
करि इमि वर्णन मुनि पञ्चदश, निज मन महं हर्षित भये।
यह दिव्य सरोवर स्वामिनी, वामदेव इमि कह गये॥

भुजङ्गप्रयात

तबै क्षीरसिन्धू तटै देव आये। किये अस्तुती सो जबै कष्ट पाये।
रमाकी सखी सो दियो धीर भारी। सुनि देवि बानी महा सौख्यकारी॥

हरिगीतिका

सुर पाइ आशिष हरषि हिय, इक संग हो फिरि आइके।
हरि दरश हित हरिगीतिका, किय पूर्ण सो चित लाइके॥
बैठे सबै सुरबृन्द तहं, है तीर्थ पुष्करिणी जहां।
इन चक्षुओंको अब कहो, वह दृश्य मिल सकता कहां॥
स्तुति सुनिके सुर बृन्दकी, भे प्रकट सन्मुख आइके।
किय प्रार्थना है मुदित मन, निज ईश दर्शन पाइके॥
कष्ट सुनि सुरवृन्दका, कुमुदाक्षको रक्षक किये।
कर जोरि स्तुति करि सबै, लौटे तबै हर्षित हिये॥
सर्व फल दातार शक्तीका किये वर्णन सबै।
भगवानके अवतारको किय काल भो निर्णय सबै॥
एकादशे अध्यायमें है जो कथा सुन लीजिये।
पठनमें इस ग्रंथके इक ध्यान भी तो दीजिये॥

मनहरन

भृगु-पद घात लाग्यो विष्णु-उर माहिं जिमि, सुभग प्रसङ्ग भली भांति सो बतायो है।
रमाको पयान भो पताल कपिलाश्रममें, ताके हेतु आप हरि नर बनि आयो है॥
राज वेष धरि जब कीन्हों सो अटल तप, ताके भङ्ग हेतु इन्द्र रम्भाको पठायो है।
निज कृत मायासों भगाया ईश रम्भा को, वेद औ पुराण शास्त्र जाको यश गायो है॥
विष्णु निर्मित शुभ पद्म सरोवर में, सुकवि प्रकाश एक औचक प्रकास भो।
कञ्चन कमल माहिं निरखि रमाको रूप, हरि हर्षान्यों अरु विमल अकास भो॥
पद्म सरवर मनहरन प्रसङ्ग मांहि, ग्यारवां अध्याय येती कथाको विकास भो।
लक्ष्मीके साथ विष्णु तितते गमन करि, सुखद कथा है शेषाचल पै निवास भो॥

काव्य छन्द

पद्मसरहिं वरदान दियो हर्षाय खरारी। पद्मा तुमतें मिलीं कीर्ति त्यों बढ़े तुम्हारी॥
नारदादि ऋषि आठ महातम ताको गावें। जो यामें स्नान करै फल त्याहि बतावें॥
लक्ष्मी पति सम विमल होय लक्ष्मी सो पावें। कोटि जन्मको पाप कटै सो स्वर्ग सिधावें॥
शुकको विमल चरित्र काव्य में है इमि गायो। किय शिक्षित पितु व्यास, पञ्चदश बरस वितायो॥
तप बल गे रविलोक, सूर्य तब कह इमि बानी। वंशहीन ह्वै मोक्ष, नहीं पावत हैं प्रानी॥
पुत्र जन्म दै आप तबै यहि लोकमें आवैं। वंशहीन करि यज्ञ, तबौ नहिं मुक्ती पावैं॥
शुकछाया सुन प्रकट कियो छायाको जाया। शोकित पुत्रविहीन व्यासके निकटसो आया॥
बहुरि गये रविलोक, शोक मुनि व्यास नसायो। छायाशुकको पुत्र, मानि सब भांति पढ़ायो॥
मानससुन किय प्रकट एक सौ आठ पुनीता। तिन शिक्षितके साथ लियो तप कियो विनीता॥
वेंक्टेश भगवानकेर उत्सव दिन आयो। भादों मास पुनीत चहूं दिशि मङ्गल छायो॥
निज पुर अन्नको भोग, तबै छाया शुक लाये। करि विभाग षट गोत्र, सुतनको नाम गिनाये॥
आप गये आकास, आस पुत्रनकी पूरी। तब ते तिनकी कीर्ति भई भारतमें भूरी॥

चौपाई

शतानन्द कहं जनक बुलाये। विधिवत पूजि निकट बैठाये॥
इमि विदेह कह सुनहु मुनीशा। सीतहिं हरहि न कहुं दशशीशा॥

औरहु तीनि सुता घरमाहीं । अवलग अहैं सोऊ बिनु ब्याही ॥
ताते दुखित रहौं दिन राती । उचित पात्र मिलिहहिं केहि भांती॥
शतानन्द कह कथा अनेका । सुनि उपजत उर विमल विवेका ॥
शिव कार्तिक संवाद सुनाये । पुनि प्रयाग महिमा सो गाये ॥
दक्ष श्राप वस शङ्कर आये । हत्या छूटी प्रयाग नहाये ॥
माधव महिमा विविध प्रकारा । शतानन्द कह केतिक बारा ॥

इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गतश्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः

वामनपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसार

दोहा

वामन विमल पुरानते, कथा प्रथम अध्याय ।
भाषामें वर्णन कियो, सुनत पाप कटि जाय ॥

सवैया

पूछे षडाननजी शिवसों तप हेतु कोउ स्थान बतावें ।
बोले तबै सो शिवाको विलोकि सुनै जे महा त्रयताप नसावें ॥
जाव मयूर समेत तहां वृषभाचलकी सब कीरति गावें ।
रत्नको आकर धाम पुनीत तहां मुनिकै तपको फल पावें ॥
दक्षिणमें शुभ अञ्जना नामक हेम समन्वित भूधर भारी ।
जाय तहां तप कीजो भलो विधि पूरन होइ है आस तुम्हारी ॥
ज्ञान प्रकास 'प्रकाश' पढ़ै क्षणमें त्रय तापको देत हैं जारी ।
जाय सकै यवनादि तहां नहिं भाषत हैं यहि भांति पुरारी ॥
शङ्करके सुनि बैन षडानन वाहन मोर लिये तहं आये ।
मातु पिता कहं देवन बीच न देखि तहां अतिशय त्रस पाये ॥

तोष बृहस्पति जाय कियो तिन जन्म वृतान्त भली विधि गाये ।
सज्जन यामें पढ़ै सो कथा यह ग्रंथ बढ़े बहु छन्द बनाये ॥
शङ्कर, दीन दयाल दया करि मोहि यही अब बात बतावें ।
जाहि विलोकि सकैं विधि नाहिं चराचर जाकर ध्यान लगावें ॥
वेदऽरु शास्त्र पुरान सबै महिमा जेहि की निसिवासर गावें ।
ताको षडानन पुत्र कहो निज नेत्रन सों किमि देखन पावें ॥
शंक मिटाय शिवासों कह्यो जिमि चक्र सुदर्शनको तप भारी ।
गौतम इन्द्रको श्राप दियो निज तीय पै देखी जबै व्यभिचारी ॥
योनि हजार सों लज्जित ह्वै जिहि ठांव कियो मघवा तप भारी ।
तीरथ वज्र सो नाम पर्‍यो सब पूरन रूप कह्यो त्रिपुरारी ॥
योनि सों लिङ्ग कियो तप कै सुख सों तेहि ते बहु काल बितायो ।
अन्तमें दुःखित ह्वै पुरहूत वराहके, आशिष ताहि मिटायो ॥
लिङ्ग गिरे तब विप्र भये वरदानसों लोचन तेतिक पाये ।
पूर्ण कथा पढ़िये यहि माहिं कछूक इतै हम देन बताये ॥

चौपाई

यह चतुर्थ अध्याय पुनीता । पढ़त सुनत भागत भव-भीता ॥
विष्वक्सेन जन्म शिव गाये । मुदित पूर्ण इतिहास बताये ॥
सुनि शुभ कथा शिवा हर्षानी । बोलीं तबै जोरि युगपानी ॥
पञ्च तलैया कर गुन गावहु । नाम करनकी कथा बतावहु ॥
पञ्चायुध हरिके जहं रहहीं । पञ्चतलैया तेहि सब कहहीं ॥
पाप पुञ्ज कहं नाशनहारो । शङ्कर कह्यो ,महातम भारी ॥

दोहा

कपिलेश्वर उत्पति कथा, कहे पूर्ण त्रिपुरारि ।
कापिल तीर्थ महात्महु, भाष्यो मञ्जु विचारि ॥

कुंडलिया

जिनमें नव जिमि वायुने, कह्यो कुंडलिया धारि, सुनत महा हर्षित भई देवी शैल कुमारि ।

देवी शैल कुमारि, कथामें प्रीति लगाई, हरिको दर्शन पाय, यथा विधि स्तुति गाई ॥
बैठी युग कर जोरि, अनत कहुं ध्यानन दीन्हों, हैं चौसठ श्लोक वायु जो अस्तुति कीन्हों ।

तोटक

तेहि ईश दियो वरदान तबै, मन कामना पूरन कीन्हे सबै ॥
तहं ईश जबै यहि भांति कहे, खगराजहु शेष तहां पै रहे ।
दुख तोटक मापति वास करैं, सुख सों तहवां चलिके विचरैं ॥
गिरि शेषपै शङ्कर आय रहे, यह वामन नाम पुरान कहे ।
तहं देखि षडानन मोद भरे, कछु काल तहां सुखसों विचरे ॥

दोहा

कपिल लिङ्ग देखे तहां, चक्र सुदर्शन आदि ।
स्तुति सुनि वरदान दिय, ताकहं शम्भु अनादि ॥

चौपाई

शतानन्द कह सुनहु विदेहा । नारद चरित कह्यो शुभ गेहा ॥
सुनि विदेह बोले वर बानी । धन्य धन्य किरतारथ मानी ॥
औरहु चरित कहहु मुनि राई । सुनि विदेह बोले हरषाई ॥
वामदेव जो कथा बखानी । सो मैं कहहुं सुनहु नृप ज्ञानी ॥

छप्पय

शतानन्द इमि कह्यो एकदा सुरसरि तीरा ।
जनक भूपके साथ भई सन्तन की भीरा ॥
वामदेव मुनि श्रेष्ठ तबै तहं घूमत आये ।
नृप मुनि स्वागत किये तिन्हें सब शीश नवाये ॥
नृप जनक तबहिं मुनि सन कहेहु, श्रीनिवास प्रभु किन रहहिं ।
सो सब प्रकार जान्यो चहहुं, आप दया करि सों कहहिं ॥
दो सौ योजन दूर इहां ते दक्षिण माहीं ।
गिरि नारायण तीर्थ जाहि लखि पाप पराहीं ॥

श्रीनिवासको वास, प्रेमते रहहिं सदा जहं ।
विधि महेश मघवादि, ध्यानमें मगन नित्य तहं॥
इक शुद्ध स्फटिक समान तहं, शिला विमल सोहत सदा ।
तहं वृहद् काय सुन्दर सुभग, पुरुष एक देखहु तदा ॥

दोहा

मुनि अगस्त पूछेहु यहुत, कछु न कहेहु वह देव ।
अन्तर्हित तबहो भयो, नहिं प्रगटेव यहि भेव ॥
मुनिगण सहित अगस्त तब, गिरि नारायण जाय ।
दरश लालसा ईशकी, बसे तहांपै आय ॥

बिरवा

जम्बूको तहं बिरवा, विमल विशाल, तहं अगस्त मुनि देख्यौ, सरिता ताल ॥
केशवकी किय पूजा, करि असनान, तहं अगस्त मुनि देखेउ, दृश्य महान ॥
कवि किमि करै बखनवा, बाढ़े ग्रंथ, हिय-नभ-तम जब नसिहै मिलि है पंथ ॥
बढ़ै ज्ञान उर तबहीं, होय प्रकाश, हृदय केरि तब पूरन, होइ है आश ॥
शुभ पद्मिनी तलैया, देखेहु जाय, हिय इच्छा भय पूरन, तहां नहाय ॥
तेहि तीरथ तट बैठे, सनत्कुमार, लखि अगस्त हिय बाढ्यो, हर्ष अपार ॥
यहि तीरथ तट रहहीं, रमानिवास, मुनि अगस्त तहं कीन्हो, कछु दिन बास॥
तिन कर दर्शन मिलि हैं, हमहूं कीन, इमि अगस्त कहं तबहीं, आशिष दीन ॥
तब अगस्त मुनि आये, पूरब ओर, ऋषि गण हर्षित बोले, सुनत निहोर ॥
पूर्वोत्तर लखि मुनिवर, हरिहिं न पाय, प्राची दिश हित दर्शन, मुनिवर आय ॥
अद्भुत गिरि तहं देख्यो, तब मुनिराय, सुमन उरग खग कूजित, तरु समुदाय ॥
शाल वृक्षकी शोभा, मुनिवर देख, शची पती लखि राजित, तजेहु निमेष ॥
तब अगस्त इमि पूछेव, कहहु सुरेश, केहि कारन सब बसही, मुनि यहि देश ॥
विष्णु देवके दर्शन हित, सब आय, हो कृतार्थ सुर सिद्धहु, निजि फल पाय ॥
दक्षिण दिशि मुनि आये, ऋषि गण सङ्ग, शङ्ख चक्र हल नन्दहु, नामक खङ्ग ॥
निकट आय सब हर्षित, स्तुति कीन, दक्षिण दिशि मुनि आयेउ, हरि लवलीन ॥

चौपाई

तेहि दिशि एक अद्भुत तरु देखा। लखि केतिक आश्चर्य विशेषा ॥
वृक्ष निकट मुनिवर तब आये। तहां शम्भुको दर्शन पाये ॥
किय प्रणाम बोले मृदु बानी। स्तुति कीनि जोरि युग पानी ॥
केहि कारन इत रहहु सुपासा। करहु ध्यान को करहि निवासा ॥
तब शङ्कर बोले हरषाई। रमानिवासको बास बताई ॥
विष्णु रूप कर दर्शन करिहैं। जो जगपालक सियपति हरि हैं ॥
प्रथम सरिस इत भ्रमण करहु जब। मुनिवर दरश होय हरिको तब ॥
शतानन्द कह सुनु मिथिलेशा। गे अगस्त जब कहेउ महेशा ॥

दोहा

निज इच्छा मोसन कहहु, चरित सुनावहु तोहिं।
तब अगस्त मुनि कित गये, यहौ बतावहु मोहिं ॥
दक्षिण दिशि मुनिवर गये, औरहु चरित अनूप।
कहहु सुनहु धरि ध्यान सोइ, हे विदेह वर भूप ॥

मनहरण

नैरित दिशामें जाय देखे हैं अगस्त मुनि, वट मनहरन की शोभा सुख साजते ॥
विष्वकसेन निज अनुचर सङ्ग बैठे, दूजो इन्द्र मानो तेहि ठौर पै विराजते ॥
करत प्रणाम मुनि वृन्द कर जोरि तिन्हें, जासु दर्श कीन्हें सब पाप दाप भाजते ॥
ऋषि गन सन बोले ईशाको दरश ह्वै हैं, कीजिये भ्रमण, तप चित लाय आजते ॥

दोहा

मुनि विलोकि किन्नर सहित, असुर यक्ष गन्धर्व।
बचन विमल बोले विहंसि, को हैं कहियो सर्व ॥
भगवन् विष्वकसेनके, हम सेवक समुदाय।
भये कृतारथ आज सब, मुनिवर दर्शन पाय ॥

पद्धरी

मुनि भ्रमण करैं हर्षाय चित्त, हरि दरश त्यागि नहिं और वित्त।

तहं कुमार धारा नहाय, तय पद्वी हर्षाय गाय ॥
गिरि वेङ्कटाद्रि आये मुनीश, राजैं जहां त्रयकाल ईश ।

दोहा

मुनि अगस्त सब गिरिनिपै, तीर्थ जो देखे जाय ॥
तिन कर फल द्विजवर कहहु, कह्यो जनक हर्षाय ॥
यद्यपि मैं सतवर्ष लौं, करौं कथा विस्तार ।
शतानन्द नृप सों कह्यो, तदपि लहौं नहिं पार ॥
तदपि कहौं संक्षेपमें, सुनिये जनक नरेश ।
तिनकर फल है अमित तहं, राजत नित्य रमेश ॥

मनहरण

वामन, वराह सौम्य दिव्य पञ्चनद तीर्थ, पद्मतीर्थ शिला तोय, महा तीर्थ राज ही ।
सूर्य इन्द्र, पाप अरि, वायु, ब्रह्म, तीरथ हैं, वरुण, अगिन, तीर्थ, पञ्च गौरी छाज ही ॥
अश्विनी कुमार, चक्र, शङ्ख, परमेश्वर त्यों, विजय विमल मत्स्य, कूर्म सुख साज हीं ।
पाण्डव गरुड़ महा काण्डक मधुर तीर्थ, काहल सुदाड़िम विलोकि पाप भाजहीं ॥

दोहा

विलग विलग तिनकर कियो, मुनिवर विशद बखान ।
भये कृतारथ सुनि जनक, उपज्यो हर्ष महान ॥
अमित कीर्ति नर किमि कहे, देव न पावें पार ।
पाप शमन हो दरश ते, खुलै स्वर्गको द्वार ॥

चौपाई

पुष्करिणी किमि गङ्ग समाना । कह्यो ईश किमि किये बखाना ।
शतानन्द सब नृप सन भाष्यो । कह्यो विविध विधि गोय न राख्यो ॥

काव्य छन्द

हैहै वंशी शङ्ख नाम इक भूप कहायो । केतिक कीन्हो यज्ञ भजनमें ध्यान लगायो ॥
हरिहिं दरश नहिं मिलो भयो शोकातुर भारी । गुप्त रूपसों कह्यो तहां यहि भांति मुरारी ॥

गिरि नारायण जाय,हमहिंमें ध्यान लगावो । मन इच्छा हो पूर्ण, दरस तबहीं तुम पावो ॥
बीते वर्ष हजार तहां मुनि कोटिक एहैं । मुनि अगस्तहू आय, भक्तिसों ध्यान लगै हैं॥

सोरठा

तिन संग दर्शन होय, जनक भूप सन हरि कह्यो ।
जानि लेव इमि सोय, पुष्करिणी गङ्गा सरिस ॥
तीरथ पुण्य अनेक, मुनि अगस्त देख्यो विमल ।
हरि दर्शनको टेक, पैठि गये इक गिरि गुहा ॥

चौपाई

सम्वत सत बीते यहि भांती । मिले न तबहुं असुर आराती ॥
तेहि थल चर बसु सुरगुरु आये । करि स्नान ध्यान सब लाये ॥
चरबसु श्राप कथा मुनि गाये । सुनत जनक अतिशय सुख पाये ॥
पन्नगारि जिमि गयो पताला । बसु उद्धार केर सब हाला ॥
सुर ऋषि कर सम्वाद बखानी । कियो पक्ष बसु सुर बड़ जानी ॥
सो सब ग्रन्थ माहि पढ़ि लीजे । सत सङ्गति संतन की कीजे ॥
भइ अध्याय त्रयोदश पूरी । सन्तन हेतु सजीवनि मूरी ॥

छप्पय

तेहि गिरि सुर गुर आदि, भ्रमण करते जब आये ।
अगस्त्यादि ऋषि देखि, तुरत नयन जल छाये ॥
दुखको कारण जानि, कह्यो तब इमि वर बानी ।
हैहय वंशी शङ्ख भूप, प्रगट्यो अति ज्ञानी ॥
सो तप बल हरि दर्शनन करहिं, पुष्करिणी पहँ आइके ।
अब हम सबहूं तेहि तीर्थ पर, दरश करहिं तहँ जाइके ॥
पुष्करिणी पहँ आय, भजनमें लगन लगाये ।
उठकर कियो प्रणाम, शंख हरि वचन जनाये ॥

हरि दर्शनकी आस, सबै कीन्हें तप भारी।
मिले न रमानिवास, भये मुनि वृन्द दुखारी॥
इमि तीन दिवस बीत्यो जबहिं, चौथे दिन रविवारको।
हरि प्रगट भये निज तेजसों, निज भक्तन उद्धार को॥

भुजंगप्रयात

हमें ईशको रूप स्वामी बतावें। जिसे देव किन्नर सदा शम्भु ध्यावें॥
सबै भांतिसों ईशको शीश नायो। कह्यो रूप गाथा यथा वेद गायो।
सविस्तार सोई पढ़ौ ग्रन्थ माहीं। येही ते बढ़ायो लिख्यो छन्द नाहीं॥

चौपाई

वामदेव कह सुनहु महीशा। तहँ प्रगटे जिमि श्रीजगदीशा॥
बार बार सब किये प्रणामा। बसु मुनि सुर शिव समसुख धामा॥
आगे कहै जौन शुभ नामा। सकल आय तहँ कियो प्रनामा॥
शारद शेष शम्भु श्रुति बानी। नेति नेति गावैं जिय जानी॥
रमानिवास भक्त सुख दानी। तेहि प्रकाश किमि कहै बखानी॥
भाषा मूल पढ़हु यहि माहीं। पढ़त सुनत अघ ओघ नशाहीं॥
यह षोड़स अध्याय जो गावे। सुर दुर्लभ मुक्ती सो पावे॥

पद्धरी

कह वामदेव अब सुनहु भूप। ईश कथा यह है अनूप॥
चहुं ओर ईशको घेरि देव। तहँ खड़े भये शुभ जानि भेव॥
सब अपसरा हर्षाय गाय। अति सुख लह्यो हरि दर्श पाय॥
गन्धर्वगन गाये बहोरि। अस्तुति कियो निज पानि जोरि॥
लखि विराट भगवान रूप। विस्मित भये सुर सिद्धि भूप॥
हम हैं प्रसन्न वर मांगि लेव। इमि बैन कहे देवादि देव॥
जोइ जौन चह्यो सो मांगि लीन। हरि प्रसन्न तेहि तौन दीन॥

दोहा

गिरि नारायण आइके, पुष्करिणी अस्नान ।
करहिं मनोरथ पूर्ण हो, इमि बोले भगवान ॥

चौपाई

श्री हरि वचन पूर्ण भे जबहीं । तब विमान देख्यो सब तबहीं ।
लखि हर्ष सब रुचिर विमाना । बोले हृदय राखि भगवाना ॥
बोले ईश शंख सन बानी । इच्छित वर मांगहु नृप ज्ञानी ॥
रहौं निकट तब राजिव लोचन । प्रनत पाल भक्तन दुख मोचन ॥
एक कल्प लौं स्वर्ग निवासा । श्रीपति कह्यो सुनहु मम दासा ॥
सब सत वर्ष महातम गावें । तदपि अशेष पार नहि पावें ॥
वेङ्कटाद्रि सम थल जग माहीं । वेंकटेश सम सुर कोउ नाहीं ॥
पुष्करिणी सम तीर्थ न कोई । भयहु न अहै कबहुं नहि होई ॥
याकी समता कहै जो प्रानी । महा पातकी सो अभिमानी ॥
विधि सुर यहि विधि कहि हर्षाने । करि हरि दरस कृतारथ माने ॥

दोहा

विद्याधर अरु सद्धि सुर, विधि, शिव गै, निज धाम ।
चले जात पुलकित बदन, हिय ध्यावत हरि नाम ॥
वेङ्कटाद्रिसों किमि गये, श्रीकैलाश महेश ।
मुनिवर कहहु सप्रेमसों, बोले जनक नरेश ॥

भुजंगप्रयात

लिये भूत प्रेतादिको सङ्ग माहीं । जरा जन्म व्यापे जिन्हें दुःख नाहीं ॥
चढ़े बैल पै शम्भु श्रिंगी बजाते । तबै आये कैलाश पै मोद पाते ॥
किये स्तुती देव कैलाश जाते । करैं दर्श सेवा महा हर्ष माते ॥

दोहा

निज अनुचर सँग शम्भु तहं, भये तब अन्तरधान ।
और कहहु हरि चरित अब, कहेउ नृपति धीमान ॥

इमि मुनिवर सन जनक कह, सुनिये कृपानिधान ।
अञ्जनाद्रि पर गुप्त भो, किमि हरि केर विमान ॥
निज माया सों गुप्त किय, हरि वह विमल विमान ।
पुनि इच्छा सों प्रकट किय, समरथ श्रीभगवान ॥

काव्य

ततपश्चात अगस्त, आदिकी कथा सुनावें । सुरपुर होय प्रकाश, पाप क्षण माहिं नसावें ॥
किय विमानमें वास, वर्ष द्वादश यहि भांती । लिखत काव्य अधिकाय, बढ़े छन्दनकी पांती ॥

सोरठा

हाथ जोरि शिर नाय, जनक भूप मुनिसों कह्यो ।
कौन सो देहु बताय, किय मुनि सब दरशन परम ॥

पद्धरी

सो नारायण गिरि अनूप । वामदेव कह सुनहु भूप ॥
द्वादशाखर मन्त्र जाप । वसु करत नित्य नासे त्रिताप ॥
निज थान गये हर्षाय देव । मुनि औरकथा यहि भांति लेव ॥
वसु तवै कीन सव असुर नास । सब मेटि दई मुनि देव त्रास ॥

दोहा

अगस्तादि मुनि तव गये, जाको जहां निवास ।
यह प्राचीन चरित्र सुनि, कहिये निज अभिलास ॥

चौपाई

कह नृप जनक सुनहु मुनि ज्ञानी । किमि वसु हते असुर अभिमानी ॥
देव दैत्य सन भई लराई । सो मुनीश सव भांति वनाई ॥
शीश मृत्युजितको तेहि काला । काटे वसु गहि खड्ग कराला ॥
पुनि पुनि शीश प्रकट करि लीन्हा । तेजहीन सुर सैनिक कीन्हा ॥
किय कालाग्नि नाश तब माया । शक्ति मारि तेहि भूमि गिराया ॥
करि नारायण अस्त्र प्रहारा । क्षण महं असुर सेन संहारा ॥

सुर समूह अस्तुति तब कीन्हा। मन वाञ्छित हरि सब कहं दीन्हा ॥
देव दनुज जस किय घमसाना। रावन रन भइ ताहि समाना ॥

छप्पय

ऐहै जब कलिकाल, गुप्त तब होय विमाना।
पुष्करिणी के तीर, दीप्ति में सूर्य्य समाना ॥
रचे जो भक्त विमान, तासु की महिमा गाऊं।
यदपि सकों नहिं भाषि, तदपि कछु तुम्हैं सुनाऊं ॥
श्री भूमि सहित जो दर्श करि, नर तीरथ हित आइ हैं।
सो सुर दुर्लभ मनकामना, मुक्ति आसु हो पाइ हैं ॥
यद्यपि पूछेहु नाहिं, तदपि मैं कहौं बुझाई।
अद्भुत गुप्त महात्म, श्रवण कीजै मन लाई ॥
हरि धरि केतिक रूप, तहां पै करैं निवासा।
देव मनुज, मृग, वृक्ष, वने विहरैं चहुं पासा ॥
जो वृषभाचल की भूमि पै, एक घरी डट जायंगे।
उनके पाप समूह तब, क्षणमें ही कट जायंगे ॥

दोहा

सो फल तुमहिं सुनाइहौं, दिये होत जो दान।
बिनु पूछे कहिहौं अवशि, तब कह जनक सुजान ॥

मनहरण

जनक नृपति कह्यो कहैं दान फल आप, कैसे नर पाप पुञ्ज क्षणमें नसावे हैं।
तट पुष्करिणीपै अन्नदान उत्तम है, ताते सब रोग तत्काल छूटि जावे हैं ॥
भूमि हेम गऊ कन्या वस्त्र गन्ध तिल दैके, कल्प पर्यन्त शुभ लोक वास पावे हैं।
दीर्घ जीव स्वास्थ लाभ पावत मनुज तहां, सुर मुनि नाग लोक वेद यश गावे हैं ॥

दोहा

उत्सव भादव मासमें, करहिं जे भक्त सुजान।
अति दुर्लभ वर तिनहिं हरि, करत तुरन्त प्रदान ॥

करहिं न सेवा लोभ वश, यात्रिन की जो कोय।
रौरव में बहु कल्प भर, वास करै नर सोय॥
पुष्करिणी महिमा सुने, जनक नृपति हर्षाय।
व्यास देव बोले वचन, पुनि कह शीश नवाय॥

चौपाई

विश्व केर तीरथ जे गावें। पुष्करिणी जलमें किमि आवें।
मारकण्डे मुनि किय तप भारी। विधि प्रकटे तब समय विचारी॥
जो वर मांगहु देहौं ताता। इमि बोले तब विहंसि विधाता।
यह वर देहु हमहिं भगवाना। सब तीरथ करि सकउं सुजाना॥
विहंसि विमल बोले विधि बानी। यह अशक्य जानहु मुनि ज्ञानी।
साढ़े तीन कोटि तहं छाजै। पुष्करिणी जहं तीर्थ विराजै॥
पुष्करिणी महं तीर्थ समाजा। एक संग ही आय विराजा।
तहं तुम जाय सकल फल पावहु। हरि चरचा महं ध्यान लगावहु॥
औरहु विमल कथा यहि मांहीं। सुनत पढ़त सब पाप नसाहीं।

इति श्रीवामनपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत—

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसार



हरिगीतिका

ऋषि गण कहे हे सूतजी हरिगीतिका सो गाइये।
वेङ्कट सु तीरथ है विदित किमि बात यह बतलाइये॥
ऋषि दीर्घ जीवी मारकण्डे पूर्ण भे वरदानसे।
माता पिताके चरण लगि बोले बचन बहु मानसे।

तीर्थ विचरणके लिए इच्छा किये पितु मातसे ॥
हम धन्य हैं दम्पति कहे, लखि प्रेमको निज तातसे।
लेकर विदा आशीष पा, नभ मार्ग सों जाते भये।
काशीसे जैसे वे चले, खगराज मिल तैसे गये॥
सौख्यदा तीरथ कहां है, कौन उनका नाम है।
जान्यो चहौं खगराज तुमसे, और कुछ ना काम है॥
विनता सुवन हर्षित भये, तब रत्नगिरि महिमा कहे।
गिरि राज की सेवा हितै, शुभ मार्ग शांती का गहे॥
तहं जाय देखे विविध विध, तीरथ महा सुख पाइ के।
सब को किये तहं वन्दना, मन वचन सों चित लाइ के॥
पालनार्थ कुटुम्ब के लघु दान जो लेता रहा।
करते अनादर ग्राम वासी कोउ साथ ना देता रहा॥
श्राद्धादि में भोजन किया धन हीन दीन मलीन था।
पत्नी ने ऐसा तब कहा, चिन्ता से देखा खीन था॥

दोहा

वेङ्कदेश पै जाइ के, सब सुख लीजे नाथ।
महा पात्र पति सो कह्यो, तिय जोरे युग हाथ॥
तिय सन इमि सुनि तित गयो, महा पात्र हर्षाय।
दर्शन कियो अगस्तका, शङ्का सकल मिटाय॥

हरिगीतिका

सब तीर्थ करि लौट्यो जबै, मुनिने तबै शुभ वर दिया।
शुद्ध हो अस्तुति किया, सब पाप क्षण में हर लिया॥
वैभव महातम तब कहे अस्तुति किये शिर नाइ के।
सन्तुष्ट भो सब भांति द्विज, शुभ भक्ति बुद्धी पाइ के

चौपाई

वेङ्कटाद्रि महिमा ऋषि गाये। जेहि विधि जन अघ ओघ नसाये॥

ध्वजा महोत्सव कन्या मासा। करैं विधाता सहित हुलासा॥
अङ्ग वङ्ग कोसल शुभ कासी। कर्नाटक गुजरात विलासी॥
केरल चोल केर जन आवें। दर्श करैं सब पाप नसावें॥
वेङ्कटेश जिमि किय दुख नाशा। दीन विप्र को वह इतिहासा॥
वृद्ध कुमार भयो द्विज जैसे। तीर्थ कुमार नाम भइ तैसे॥
इमि कहि स्वर्ग गये सुर बृन्दा। चल्यो विप्र गृह सहित अनन्दा॥
औरहु विविध प्रसङ्ग सुनावें। सुनत भक्त त्रयताप नसावें॥

तारक सुरको वध किये, कार्तिकेय भगवान।
हत्या शान्ति उपाय हित, किय कैलाश पयान॥

शंकर सन बोले इमि बाता। किमि होवे मम पाप निपाता॥
वेङ्कटेश पर सत्वर जाहू। होय शान्ति तब यह उर दाहू॥
सुनि पितु वचन तहां पर आये। करि असनान ध्यान जप लाये॥
तत्क्षण सब हत्या तहँ नासी। तब बोले हरि रमानिवासी॥
जो वर मागहु देहौं ताता। कार्तिकेय भै पुलकित गाता॥
किये नाश प्रभु हत्या मोरी। याते कहौं नाथ कर जोरी॥
जो कुमार धारा पर आवे। मो समान सब पाप नसावे॥
करहु कल्प भरि इतै निवासा। ह्वै हर्षित कह रमानिवासा॥

दोहा

कार्तिकेय कहँ परसि तब, इमि बोले भगवान।
मम उत्सव दिन आय सब, नासन पाप महान॥
सुर मुनि ऋषि गन्धर्व सब, कहि आश्चर्य महान।
आनन्दित स्तुति करत, किय निज थान पयान॥

सोरठा

पुष्करिणी असनान, माघ पूर्णिमाको कियो।
लौटे सकल सुजान, जहँ कुमार धारा विमल॥

करि असनान दान सब दीन्हा । सकल पाप तब हरि हरि लीन्हा ॥
प्रकट भये तब रमानिवासा । पूरी सब भक्तनकी आसा ॥
सब कहँ दे इच्छित वरदाना । अन्तर्धान भये भगवाना ॥
मार्कण्डे निज आश्रम आये । मातु पिता कहं शीश नवाये ॥
पुनि सब तीर्थ चरित मुनि गाये । मातु पिता सुनि अति सुख पाये ॥
जो यह सुनै महातम कोई । नसे पाप अरु मुक्ती होई ॥
करै पाठ अरु धरे जो ध्याना । स्वर्ग जाय सो बैठि विमाना ॥

दोहा

महिमा अमित प्रकाश युत, कहि गे सकल पुरान ।
इच्छा पूरन हो सकल, पढ़े होत उर ज्ञान ॥

इति श्रीमार्कण्डेपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः

गरुडपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः



दोहा

इमि अरुन्धती प्रश्न किय, निज पति सों सिर नाय ।
विष्णु क्षेत्र मम हित कोऊ, कहिये नाथ बुझाय ।

मनहरण

सुनि तिय वचन मुदित मन बोले मुनि, वेङ्कटसों और नाहि पुण्य तीर्थ भारी है ।
स्वामिसर भूवराह राजित अनेक देव, गुन गन गाइबेको शक्ति न हमारी है ॥
अञ्जनाद्रि शेष गिरि, धृषाद्रि सिंहाद्रि आदि, व्योमगङ्गा तुम्बुरुकी कीरति उज्यारी है ।
तहं जाय तप करि विष्णुको दरश पैहै, सुनि पिय बानी तीय ताहि शिर धारी है ।

आयके तहां पै जप तपमें लगायो ध्यान, भ्रांतिको मिटाय निज शुद्ध बुद्धि पाई है॥
मीन संकराति रवि फाल्गुन सुदि पूनो, ईशको दरश पाय पाप विनसाई है।
विनती विविधि विधि, मुनि तिय कीन्हीं तहां, गरुड पुराण माहिं कीर्ति सोई गाई है॥
करिके एकाग्र चित पढ़त महातम जो, तीर्थ घोण भई ताको याहीमें बताई है'

इति श्रीगरुडपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः

हरिवंशान्तर्गत श्रीशेषधर्मघटक

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः



मनहरन

पाण्डु सुत धर्मराज भीषम सो प्रश्न किय, ईश वृषभाद्रिपर कैसे कै पधारे हैं।
परम प्रसन्न भये सुनत वचन इमि, पुलकित तन वर वचन उचारे हैं॥
नारद सों पूछे हैं अगस्त मुनि ईश कहां, दर्श हेतु मुनि वृन्द साथमें हमारे हैं॥
आये पुष्करिणी पै तजि स्वर्ग लोक विष्णु, सुर नर मुनि कहं सुख देन हारे हैं॥
नारद सहित मुनि वृन्द तहं आय जुरे, करि असनान चित्त ध्यानमें लगाये हैं।
कोऊ जप तप करैं अच्छत चढ़ावें कोऊ, कन्द मूल फल कोऊ भोग हेतु लाये हैं॥
सुमन सुगन्ध युत करपूर मृगमद, लाये सोई साधु गण जोई जहां पाये हैं॥
विमल प्रकाश मानों कोटि रवि भासमान, मञ्जुल विमान पर ईश प्रगटाये हैं॥

दोहा

दर्श पाय स्तुति किये, हर्षे श्रीभगवान।
पढ़े सुने वैभव लहै, होय सदा कल्यान॥

ब्रह्मोत्तरखण्डान्तर्गत

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसार

सोरठा

कहहु कृपा करि तात, ऋषिगण बोले सूत सन ।
कथा सोइ अवदात, सब तीरथमें श्रेष्ठको ॥

चौपाई

कह्यो सूत तब यह इतिहासा । सुनत होय सब उर-तम नासा ॥
ऋषि वसिष्ठ विधि पहं जब आये । अभिवादन युत आसन पाये ॥
राज पुरोहितको अपवादा । कह्यो वसिष्ठ तुरत सविषादा ॥
अपमानित द्विजचरित सुन्यो जब । राज पुरोहित भये दुखित तब ॥
विप्र सङ्ग पुष्करिणी जाहु । पाप शान्ति हित तहां नहाहु ॥
सुनि विधि वचन गये मुनि तहँवां । वेङ्कटाद्रि गिरि शोभित जहँयां ॥
करि असनान ध्यान तब कीन्हा । विप्रहिं सत् शिक्षा तहं दीन्हा ॥
दरस दिये हरि पाप नशाई । औरहु चरित सुनहु मन लाई ॥

तुम्बरु तीरथ नाम भो, दर्शन ते अघ जाय ।
यह ब्रह्मोत्तर खण्डकी, कथा सुनहु मन लाय ॥

तुम्बुरु, नारद चले अकाशा । बीन बजावत विमल विकाशा ॥
यह वर बीन कहां तुम पाये । इमि तुम्बुर प्रति वचन सुनाये ॥
नहिं मम बीना यथा तुम्हारी । तुम्बुरु कह्यो देखि मनुहारी ॥
अस्तुति कियो जबहिं हम ओही । दिय ब्रह्मर्षि नृपति यह मोही ॥
ईश त्यागि नर अस्तुति कीन्हा । नारद यही श्राप तब दीन्हा ॥
भूतल परहु शीश बल अबहीं । सोई गिन्यो आप बल तबहीं ॥

वेङ्कटाद्रि पै गिन्यो सो जाई। तहं तप ध्यानमें चित्त लगाई ॥
प्रगट भये हरि यह वर दीन्हा। तुम्बुरु तीर्थ नाम हम कीन्हा ॥

करैं दान अस्नान जो, पूनम फाल्गुण मास।
कह्यो सूत द्विज वृन्द सन, काश्यप अघको नास।

इति श्रीब्रह्मोत्तरखण्डान्तर्गतश्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः

स्कन्दपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसार

चौपाई

कथा परिक्षित की सब जाने। याते हम संक्षेप बखाने।
विष प्रतिकार हेतु नृप माहीं। कश्यप चल्यो मुदित मन माहीं ॥
तक्षक लियो परीक्षा जबहीं। निज विप भस्म कियो तरु तबहीं।
कियो हरित द्विज वृक्ष बहोरी। तब तक्षक किय विनय निहोरी ॥
लेहु दक्षिणा निज गृह जैये। मुनि को श्राप मेटि कंह पैये ॥
तक्षक डस्यो भूप कहं जैसे। सो प्रसङ्ग जानत सब तैसे ॥
द्विज अपमानित भो यहि पापा। श्रमत भयो नित सहि परितापा ॥
रहैं जहां शाकल्य मुनीशा। गयो तहां द्विज लेन अशीशा ॥

ऋषि द्विज सन तब इमि कह्यो, वेङ्कटाद्रि पर जाय।
करहु ध्यान अस्नान तप, पाप तबै मिटि जाय ॥
ऋषि गण बोले सूत सन, सुनिये कृपा निधान।
पुष्करिणी शुभ तीर्थ का, करिय महातम गान ॥

बोले सूत सुनत ऋषि बानी। धन्य धन्य निज करं अनुमानी।
अट्ठाइस जे नरक बताते। जिन महँ जीव कर्म फल पाते ॥

पुष्करिणी असनान जो करई। इन नरकन महं सो नहिं परई।
सकल नरक कर फल दुखकारी। नाम सहित सब लिखा विचारी॥
भाषा महं अति अल्प बखाने। ग्रंथ बढ़ै यह उर अनुमाने॥
यह अध्याय पढ़ौ धरि ध्याना। ग्रंथ मांहि सब लिखा सुजाना॥
क्षण महं पाप पुञ्ज विनसाहीं। पुष्करिणि जो तीर्थ नहाहीं॥
भुक्ति मुक्ति सब सुख को दाता। कह्यो सूत इमि पुलकित गाता॥

यहि तृतीय अध्याय में, औरहु चरित प्रसङ्ग।
पढ़ै सुनै धरि ध्यान जो, होय पाप सब भङ्ग॥

धर्मगुप्त इक रह्यो नरेशा। जीत्यो सो नृप कोटिक देशा॥
शशि कुल नंद पिता कर नामा। नृपति नीति मय गुण अभिरामा॥
नंद सुतहिं जैमिनि पहं लाये। रीछ शाप वृत्तान्त बताये॥
इक दिन नृप अहेर हित लागी। बन प्रदेश गो सो बड़ भागी॥
निशा काल इक तरु पर जाई। चढ़ि बैठ्यो मृगपति भय खाई॥
इक भय भीत भालु तहं आवा। इमि नरेश प्रति वचन सुनावा॥
यहि तरु पर चढ़ि रैन बितावें। जाते सिंह निकट नहिं आवें॥
अर्द्ध रात्रि लग सोवहु ताता। हौं जागिहौं रीछ कह बाता॥

पुनि हम सोवें नीद वश, दैहैं तुमहिं जगाय।
या विधि दियो नरेशको, प्रथमै रीछ सुलाय॥

सिंह वचन कर ध्यान न दीन्हा। रीछ भूप की रक्षा कीन्हा॥
अर्द्ध रात्रि गत नृप की पारी। सोयउ भालु, भूप रखवारी॥
सिंह वचन सुनि दियो गिराई। गिर्‌यो न भालु रूप मुनि राई॥
ध्यानकाष्ठ मुनि श्राप सो दीन्हा। पैहो फल तुम आपन कीन्हा॥
करि विश्वासघात को पापा। पागल भयउ सहत परितापा॥
जाहु तुरत पुष्करिणी तीरा। मिटै श्राप इमि कह मुनि धीरा॥
तहां जाय मुनि श्राप मिटाये। दियो दान अतिशय सुख पाये॥

धर्मगुप्त की कथा जो गावे। ब्रह्मघात क्षणमें विनसावे॥
यहि चतुर्थ अध्याय महं, पाप सुमति अख्यान।
ब्रह्मघात को छूटिबो, पुष्करिणी असनान॥
यज्ञदेव द्विज सुत अज्ञानी। सुमति नाम, वेश्या रत मानी॥
वेश्या हित नित द्रव्य चुरावे। धर्म कर्ममें ध्यान न लावे॥
चोरी हेतु गयो द्विज गेहा। वध्यो ताहि धन ले तिय नेहा॥
ब्रह्म घात सों भयो दुखारी। दुर्वासा मुनि कह्यो विचारी॥
जे पुष्करिणी तट पर जावे। ब्रह्म हत्या को पाप मिटावे॥
गयउ सुमति निज पितु के साथा। वेङ्कटेश कहं नायउ माथा॥
तुरत पाप मोचन तब भयऊ। सब अज्ञान हृदय को गयऊ॥
पाप वृक्ष कहं यहै कुठारी। क्षण महं देत पाप सब जारी॥
रामकृष्ण मुनि तप किये, भै प्रसन्न भगवान।
प्रकट हुए, दर्शन दिये, यह वर करत प्रदान॥
रामकृष्ण इमि किय तप भारी। तन वल्मीक किये अधिकारी॥
नयन मूंदि पावस ऋतु बीते। कबहुंन भयउ नेक भय भीते॥
भयहु एकदा वज्र निपाता। तब प्रगटे सुर नर मुनि त्राता॥
कृष्णतीर्थ किय नाम सुहावन। करि अस्नान होत जन पावन॥
अन्तर्धान भये भगवाना। कृष्णतीर्थ फल भयउ महाना॥
यहै छठे अध्याय विचारी। पढ़ै सुने भागै भय भारी॥
बोले सूत महा मुनि ज्ञानी। वारि दान मैं कहौं बखानी॥
हम इक्ष्वाकुवंश कर भूपा। अरि विजयी हेमाङ्ग अनूपा॥
उडुगण जल रज कण जिते, तितै गऊ किय दान।
कञ्चन पृथ्वी तिल दिये, दिये न वारि सुजान॥
तब छिपकली जोनि नृप पावा। मिटै न कबहुँ कुदान प्रभावा॥
मातरु श्वान गीध तन पाई। यहै भांति दश जन्म बिताई॥

एक दिवस ऋषि पूजा कीन्हा । चरणोदक निज मस्तक लीन्हा ॥
कछुक छींट तेहि तनपर परेऊ । पूरब जन्म ज्ञान उर भरेऊ ॥
ऋषि सब कहेउ नृपति अज्ञाना । निज कृत पाप जानि दुखमाना ॥
मुनि आशीष तज्यो सो देहा । चढ़ि विमान गवनेउ सुर गेहा ॥
बरस सहस दश स्वर्ग बितायो । तब ककुत्स्थ नृपको तन पायो ॥
वेङ्कटाद्रि पर करि जल दाना । करत भक्त जन स्वर्ग पयाना ॥

वेङ्कट गिरि फल जानिये, यह सप्तम अध्याय ।
जप तप दान प्रतापते, तुरत स्वर्ग नर जाय ॥

वेङ्कटाद्रि तीरथ फल भारी । वर्णनको नहि बुद्धि हमारी ॥
जिमि वैशाखसों और न मासा । सतयुग सम नहिं युग इतिहासा ॥
और शास्त्र नहिं वेद समाना । गङ्गा सम तीरथ नहिं आना ॥
वारि दान सम दान न दूजा । लंघन सम देखो नहिं पूजा ॥
भार्य्या सम नहिं सुख जग माहीं । कृपी समान और धन नाहीं ॥
जीवन सम नहि लाभ दिखावे । नेत्र समान न ज्योति जनावे ॥
कौन भांति महिमा मैं गाऊं । लघुमति मोरि, पार नहिं पाऊं ॥
ईश थान सम और न थाना । इमि भाषत सवेद पुराना ॥

सुनहु विप्र गण जो कह्यो, महामहातम आज ।
सुनहि सो सुर-पुर जाइ हैं, पूजित सहित समाज ॥
वेङ्कटेश महिमा महा, यह अष्टम अध्याय ॥
पढ़े होत दुख दूरि सब, सुनत पाप कटि जाय ॥

ब्रह्महत्या अरु मदिरा पाना । केतिक बार करै अज्ञाना ॥
वेङ्कटेशको दरशन करते । नसै पाप तेहि थल पग धरते ॥
अष्ट प्रकार भक्ति जो करहीं । सो सत्वर भवसागर तरहीं ॥
ग्रंथ माहिं सो सब पढ़ि लीजै । सत मारग पर निज पग दीजै ॥
वेङ्कटाद्रि जहं श्री भगवाना । तहं कृमि कीट मुनीश समाना ॥

दुइ घटिका तेहि ध्यान जो धरई । निज इक्कीस वंश सङ्ग तरई ॥
पुष्करिणी में करि असनाना । दरश देत तेहिं श्री भगवाना ॥
नित्य जो याको पढ़ै सुनावे । वेङ्कटेश सेवा फल पावे ॥

शिक्षा दीन्हों विप्रको, दृढ़मति को इतिहास ।
कथा नवम अध्याय की, पढ़े होय दुख नास ॥

सुमति शूद्र को श्राद्ध कराये । कोटिक कल्प नर्क सो पाये ॥
रासभ सूकर काक ऽरु स्वाना । पुनि चण्डाल भयो अज्ञाना ॥
वैश्यऽरु क्षत्रिय द्विजपुनि भयऊ । ब्रह्म राक्षस सों धरि गयऊ ॥
वेङ्कटाद्रि पर करि असनाना । ब्रह्म भगाय लह्यो सुख नाना ॥
पाप विनाश तीर्थ में आये । पिता पुत्र इक संग नहाये ॥
करि असनान मुक्ति सो पाये । सुनत जासु सब पाप पराये ॥
शूद्र सोई शुद्ध तन पाई । वेङ्कटाद्रि पर्वत पर आई ॥
अघ नाशन महं किय जल पाना । स्वर्ग गयो चढ़ि तुरत विमाना ॥

मुक्त भये द्विज शूद्र जहं, अघनाशन तेहि नाम ।
भक्ति भाव सों सुनहिं जे,लहहिं सोई मन काम ॥

अघनाशन महात्म्य मैं कहऊं । यद्यपि अमित पार नहिं लहऊं ॥
कथा भद्रमति की पढ़ि लीजै । भूमि दान दै जग यश लीजै ॥
पांच हाथ दै भूमि सुजाना । सत्वर किये सो स्वर्ग पयाना ॥
भूमि दान सम नहिं जग दाना । याते मिलत मोक्ष कल्याना ॥
एकादश अध्याय सुनावे । व्योम सुरसरी को गुण गावे ॥
रामानुज वैखानस भारी । तप हित चित यह बात विचारी ॥
नभगङ्गा तट सो तप कीन्हा । वेङ्कटेश तेहि दर्शन दीन्हा ॥
अस्तुति कियो जोरि द्विज पानी । वर हित हरि बोले मृदु बानी ॥

मम भक्तन अनुसार, रामानुज तुम होइ हौ ।
निर्मल भक्ति उदार, जग में यश बाढ़ै धवल ॥

चरण-कमल महं भक्ती दीजै। दास जानि निज कर गहि लीजै॥
दान प्रणाम केर फल गाये। ग्रंथ माहिं विधिवत बिलगाये॥
योग्यायोग्य दान फल भाषे। सुनत सबै ऋषि मुनि अभिलाषे॥
कीजे काहि प्रणाम न कीजै। यहि अध्याय सकल पढ़ि लीजै॥
नभ गङ्गा महिमा सुनि भारी। ऋषि मुनि सुनि सब भये सुखारी॥
पुण्य शील द्विज श्राद्ध जो कीन्हा। पुत्र हीन कहं नेवता दीन्हा॥
गर्दभ-मुख तुरतै सो पायो। पुष्करिणी तब जाय नहायो॥
निज सुन्दरता लख्यो बहोरी। स्तुति किय द्विज दोउ करजोरी॥

नारद सनत्कुमार प्रति, भाष्यो चरित उदार।
सोइ महातम मैं कहौं, लखि अभिलाप तुम्हार॥

चक्रतीर्थकी महिमा गावें। ऋषिगण सन इमि सूत सुनावें॥
पद्मनाभ जिमि किय तप भारी। प्रगटे भक्त हेतु असुरारी॥
तब इमि बोले रमानिवासा। एक कल्प इत रहहु सुपासा॥
कछुक काल यहि विधि चलि गयऊ। असुर एक आवन तब भयऊ॥
देख्यो जबै भक्त दुख पायो। तबही हरि निज चक्र पठायो॥
चक्र सुदर्शन हत्यो निशाचर। पद्मनाभ बोले तब सादर॥
महाभाग मम लेहु प्रणामा। करहु सफल मम पूरन कामा॥
तहां चक्र तब कियो निवासा। चक्रतीर्थ कर यह इतिहासा॥

ऋषि गण कह सो असुर को, हमसों कहँ बुझाय।
तबै सूत वर्णन कियो, चौदहवें अध्याय॥

सुन्दर नाम एक गन्धर्वा। लम्पट, कामी, था उरु गर्वा॥
तिय संग जल क्रीड़ा किय नङ्गा। तहं वसिष्ठ आये मुनि सङ्गा॥
असुर होन कहं दिय तब शापा। तासु नारि उर भो परितापा॥
करि अस्तुति बोली मृदुवानी। पति अपराध क्षमहु मुनि ज्ञानी॥
यहि विधि षोडस अब्द बितावे। पद्मनाभ कहं मारन धावे॥

चक्र सुदर्शन रक्षा करिहै। तेहि प्रताप यह खल जब मरिहै॥
तब तव पति पैहै निज देहा। इमि मुनि बोले सहित सनेहा॥
मरतै सो किय स्वर्ग पयाना। गावत हरि गुन चढ़े विमाना॥

अब जाबालि महात्म मैं, कहौं सुनो धरि ध्यान।
दुराचार वेताल को, मुक्ती कथा विधान॥

दुराचार नामक द्विज रहई। कबहुं न तीर्थ व्रत सो करई॥
इक दिन तेहि पकर्‍यो वेताला। लै नभ उड़यो ताहि तत्काला॥
लेइ जाबालि तीर्थ महं बोरी। गयो पराय न फिर्‍यो बहोरी॥
तेहि थल के लहि पुण्य प्रतापा। तुरत सकल काट्यो निज पापा॥
पितृ श्राद्ध द्विज कियो न कोई। भो वेताल पाप ते सोई॥
सोऊ तितै मुक्ति फल पायो। जन्म जन्म को पाप नसायो॥
करि विश्वासघात द्विज निन्दा। अनुज वधू रत चहै अनन्दा॥
प्रायश्चित ताकर जग नाहीं। सोउ बचै यहि- तीर्थ नहाहीं॥

यहि जाबालि महात्मको, पढ़े होय दुःख नास।
बिनु सत्सङ्ग न सुख लहै, होय न हृदय विकास॥

पर निन्दक, क्रोधी अति कामी। पर दारा रत कुटिल हरामी॥
भक्ति विमुख लम्पट शिशु घाती। पिये शराब आदि दिन राती॥
पशु घाती दम्भी अस चोरा। मित्र द्रोह करि पाप जो जोरा॥
जेते पाप अहैं जग माहीं। सबको किय गणना इत नाहीं॥
सबै आय यहि तीर्थ नहावैं। सोउ पवित्र हो मुक्ती पावैं॥
घोण तीर्थ जो कर अस्नाना। स्वर्ग जाय चढ़ि तुरत विमाना॥
गुप्त प्रकट सब पाप समूहा। जरत तहां जस घासऽरु फूहा॥
शारद शेष न सकैं बताई। लघु मति मोरि सकौं नहिं गाई॥

पढ़ै महातम जो सुनै, भुक्ति मुक्ति तेहि होय।
जगके छूटैं पाप सब, रहै स्वर्गमें सोय॥

कह्यो सूत यह शुभ इतिहासा। जेहि सुनि होय पाप सब नासा॥
तुम्बुरु नाम एक गन्धर्वा। जप तप ज्ञान धर्म किय सर्वा॥
तासु नारि तेहि कहा न कीन्हा। तब गन्धर्व श्राप यह दीन्हा॥
तरु कोटर महं करहु निवासा। है मण्डूक सहहु दुख त्रासा॥
मोचन श्राप करहु प्रति मोरी। क्षमियो नाथ कहहुं कर जोरी॥
शिष्यन संग अगस्त तहं ऐहैं। पीपल तरु तर कथा सुनैहैं॥
तबहिं मुक्ति ह्वै है तिय तोरी। अटल बात मानहुं यह मोरी॥
वर्ष सहस्र दश बीतत भयऊ। शिष्यन संग अगस्त तहं गयऊ॥

घोण महातम सुनि तुरत, मुक्त भई सो नारि।
पढ़े सुने सुरपुर लहै, तुम्बुरु तिय अनुहारि॥

करि अस्तुति सुर नर गृह आये। मन वांछित फल निज निज पाये॥
करि असनान ध्यान जो लावे। मुक्ति होय सुर धाम सिधावे॥
द्विज गन सन कह सूत सुजाना। सुनो जो आप महात्म पुराना॥
सहित ध्यान यहि सुनिहिं जोई। और कथा तेहिं भाव न कोई॥
तुम्बुरु तीरथ सम जग माहीं। त्रिभुवन बीच और कोउ नाहीं॥
मीन राशिकी पूनम होई। तब अस्नान करै जो कोई॥
तेहि सम पुण्य पुञ्ज नहिं आना। यह भाखत सद्ग्रन्थ पुराना॥
औरहु चरित सुनहु द्विज बृन्दा। विहँसि कह्यो इमि सूत मुनिन्दा॥

ऋषि गण बोले सूत प्रति, करि प्रणाम शिर नाय।
वेङ्कटाद्रि पै तीर्थ के, कृपया देहिं बताय॥

छाछठ कोटि तीर्थ तेहि ऊपर। कोऊ थल नहिं ऐसो है भूपर॥
एक सहस्र अरु आठ प्रधाना। इकसत आठ मुख्य करि जाना॥
करहिं भक्ति वैराग्य प्रदाना। ऐसे तीर्थ साठ अनुमाना॥
मुक्ति प्रदान करैं षट तामें। ऐसे तीर्थ नहीं वसुधा में॥
पुष्करिणी तुम्बुरु नभ गङ्गा। पाण्डु, कुमार, पाप कर भङ्गा॥

तिन महं दान विविधि विधि गाये। सो करि तरि भव सागर जाये॥
कथा महातम फल यहि माहीं। पढ़त सुनत सब पाप नसाहीं॥
यहि विधि सज्जन सुने सुनावें। जाते आशु मुक्ति सो पावें॥
नारद सों ऋषि गण कह्यो, सुनिये श्री मुनिराय।
कहहु कटाह महात्म शुभ, जेहि ते पाप नसाय॥
पूर्ण महात्म एक शिव जानैं। कछुक सुने सो हमहुं बखानैं॥
द्विज वध करै सहस दस बारा। इतनै सुरा पान निर्धारा॥
गुरु तिय रमण करै इतनोई। हेम कि चोरी इतनै होई॥
इतनौ करि यहि तीरथ आवे। क्षण महं सो सब पाप नसावे॥
कुष्टादिक सब रोग भगावे। अन्त काल सुरपुर सो जावे॥
और महातम सूत सुनाये। सुनत सकल ऋषिगण हर्षाये॥
पद्मनाभ सुत केशव नामा। वेश्यारत त्याग्यो निज धामा॥
ब्रह्महत्या ते जब दुख पायो। तब कटाह तीरथ सो आयो॥
पिता पुत्र दोउ मुक्त भे, तीर्थ कटाह नहाय।
वेङ्कटेश दर्शन दिये तब, सब पाप नसाय॥

स्वर्णमुखरीमाहात्म्य



चौपाई

एक वर्ष द्रोपदीके सङ्गा। रहे एक करि प्रेम अभङ्गा॥
ता मधि जो अवलोकै जाई। एक वर्ष सो तीर्थ नहाई॥
नारद वचन मानि सब रहहीं। कोउ न निज प्रण तोरन चहहीं॥
औचक तहां एक द्विज आयो। गो रक्षा हित विनय सुनायो॥
अस्त्र लेन हित पारथ जाई। द्रुपद सुता सङ्ग लखि पछिताई॥
द्विज सहाय करि पारथ आये। तीरथ गमन हेतु अकुलाये॥

धर्मराज रोके बहु बारा। प्रणन तजहिं निज पार्थ उदारा ॥
भृत्यन सङ्ग तीर्थाटन कीन्हा। बहु प्रकार नित दानसो दीन्हा॥
गङ्गा अरु गङ्गोत्तरी, तीरथराज प्रयाग।
काशी, श्रीमहानद, पुरी सिंहाचल मन लाग॥
गोदावरी नदी पुनि गयऊ। कृष्णा, श्रीगिरि, :दर्शन कियऊ ॥
तहं सुवर्ण मुखरी अति पावन। लखे पार्थ त्रय ताप नसावन ॥
ऋषि अगस्त तेहिं भूपर लाये। दरश करत सब पाप नसाये ॥
वन उपवन शुभ नदी तड़ागा। लखि पारथ उपज्यो अनुरागा ॥
ऋषि मुनिके आश्रम तब आये। सहित सनेह शीश तिन्ह नाये ॥
कहँ ते विमल नदी यह आई। लाये कौन कहौ मुनि राई ॥
बोले भरद्वाज इमि बानी। विमल कथा पूछेहु नृप ज्ञानी ॥
जिमि सुवर्ण मुखरी जग आई। भरद्वाज सो सकल बताई ॥
सुनि नभ वचन अगस्त जिमि, किय तप पूर्ण अभंग।
यह सुवर्ण मुखरी विमल, जिमि लाये निज सङ्ग ॥
नाना भांति कियो तप भारी। मुनि अगस्त जगके हितकारी ॥
चतुरानन गङ्गहि बोलवाये। तेहि प्रबोधि मुनि सङ्ग पठाये ॥
यहि विधि सो भूतल पर आई। हर्षे सकल देव समुदाई ॥
पूछे पार्थ महातम भारी। भरद्वाज सो कह्यो विचारी ॥
एक बार जो कर स्नाना। लह कोटिन फल गङ्ग समाना ॥
यहु विधि भरद्वाज तेहि गाये। सुनत पार्थ अतिही सुख पाये ॥
कौनि भांति तेहि करौं बड़ाई। शारद शेष सकें नहिं गाई ॥
पावन मुनि ऋषि विविध बड़ाई। शुभ सुवर्ण मुखरी यश गाई ॥
यह सुवर्णमुखरी कथा, कह्यो सकल समुझाय।
अब कहं पूछहु इमि कहेउ, भरद्वाज मुनि राय ॥
यहि तट कौन तीर्थ सो कहिये। विमलकथा कहि भमदुख दहिये ॥

भरद्वाज सब कह्यो बखानी। अर्जुन सुनत कृतारथ मानी॥
कह स्नान काल विस्तारा। औरहु तीर्थ स्वर्गको द्वारा॥
व्याघ्रपदाको फल मुनि गायो। शङ्खतीर्थ महिमा बतरायो॥
पुनि सुवर्ण मुखरी यश गायो। वेङ्कटाद्रि फल पूर्ण बतायो॥
सृष्टि आदि वर्णन पुनि कीन्हा। सो सब हिय पारथ धरि लीन्हा॥
जिमि वराह यहि गिर पर रहेऊ। सो सब भरद्वाज मुनि कहेऊ॥
जिमि वाराह रूप हरि धारी। औरहु चरित जो किय असुरारी॥

दोहा

भरद्वाज सो सब कह्यो, सुन्यो पार्थ चित लाय।
ग्रन्थ माहिं सो सब पढ़हु, यहि अष्टम अध्याय॥
कहेउ पार्थ प्रति चरित यह, भरद्वाज हर्षाय।
यहि गिरि हरि प्रगटे यथा, सुनहु कथा चितलाय॥

चौपाई

हैहय वंश नाम श्रुत राजा। सुतवत प्रजा पाल सुख साजा॥
इन्द्रियजित हरिभक्तऽरुज्ञानी। महा संयमी सौम्य सुदानी॥
बहुत काल तप कीन अपारा। नहिं प्रगटे जब विष्णु उदारा॥
तब अति चिन्तित भयउ नरेशा। अदृश्य मूर्ति हरि किये निदेशा॥
वेङ्कटाद्रि पर जाहु उदारा। स्वर्गहुसे मोहिं अधिक पियारा॥
करहु तहां तुम तप अधिकाई। केतिक सहस अब्द तब जाई॥
तहां जाय विधिवत तप कीन्हा। श्रीनिवास तब दर्शन दीन्हा॥
ऋषि गण निरखि शङ्ख हर्षाने। करि प्रणाम सब विधि सनमाने॥

वीर छन्द

बोले भरद्वाज अर्जुन सों, इतनै वचन करौ परमान।
तीन दिवस तिन कहं तहं बीते, तब सबको लागी अलसान॥
सोवतमें स्वप्ना यह देख्यो, आयुध युत प्रगटे भगवान।

तिनको करि अराधना लौटे, आये सब निज निज अस्थान ॥
पक्षी शकुन रूप पथ देख्यो,रवि शशि सम नभ भयो प्रकाश ।
विकट रूप औलोकि ईशको, सबके उरमें भै आभास ॥
सब मिलि स्तुति कियो यथा विधि, तब इमि बोले रमानिवास ।
शान्त रूप अब धारण करिहौं, पुरिहौं भक्त जननकी आस ॥
किय सुवर्णमुखरी किरतारथ, मुनि अगस्त कहं दिय वरदान ।
बोले शंख भक्तको लखिके, पूरे धर्म धीर मति मान ॥
इन्द्र लोकमें कल्प बिताओ, सेवा करैं अप्सरा आय ।
तदनन्तर मम लोकमें ऐहो, तुम कहं कछु अलभ्य है नाय ॥
अस्तुति करत जोरिकर सुरमुनि, तब हरि तहं भै अन्तर्धान ।
पढ़ै महात्म सुनैं चित लावे, सत्वर करै सो स्वर्ग पयान ॥

द्वितीयो भागः

अनंगशेखर

वंशहीन अञ्जना धरी हरीको ध्यान होय, कष्ट तासु देखिकै मतङ्ग बोले आइ कै ।
चित्त वित्त आपनी बताय देहु देवि मोहि, केशरी सुता विलोकि बोली शीश नाइ कै ॥
है अनंग शेखरे सुपुत्र और चाह नाहिं चित्तमें अनन्द होय सोइ नाथ पाइ कै ।
देखिये नृसिंह वास त्यों घनाद्रि पास मंज, कामना सु पूर होय सोइ थान जाइ कै ॥
केशरी कपोश तीय अञ्जना गई है शीघ्र, वायु पुत्र पाय बोली हर्ष सों हरी हरी ॥
चित्त मोद पाय पाप मञ्जु गोत गाय गाय, बीत वर्ष जाय है अनन्द सों घरी घरी ॥
व्यास देव आइके बताइके महात्म भूरि, तीय वैन बोलो त्यो मैं आज सों तरी तरी ॥
कृत्ति गाय स्वर्ग जाय बांचिके कथा अनूप, भुक्ति मुक्ति देत आशु ज्ञानको भरी भरी ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः

आदित्यपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः



सिंहावलोकन

गाये महा महिमा मुनि सूत भली विधि सौनक सों बतलाये।
लाये विलम्ब कछूक नहीं सुमहातम भाषि महा सुख पाये॥
पाये सोई फल आशु तहां वृषभाचल पै ह्वै अनन्दित आये।
आये न सङ्कट कोई कवौं जय वेङ्कट सौ नित ध्यान लगाये॥

दण्डक

देव द्विज बोले बरवानी हरि प्रति इमि, थके सहसानन हैं गुन कथा कहि कहि।
सोई मैं बखानौ अनुमानौ इमि बार बार, चाहत चढ़न नभ बारि बिन्दु गहि गहि॥
देखत सहस नैन, ईश रूप सुख ऐन, मन पछतात है त्रिलोचन त्यौं रहि रहि।
अन्धे निज नैन पाये, गूंगे बर बैन पायें, बधिर श्रवन पायें तुव भक्ति लहि लहि॥

घनाक्षरी

करत प्रणाम देव, द्विज कीर्ति गाय गाय, नेकु न समर्थ तयौ भाषै कछु दास है।
तार्यो ज्यों अजामिलको तैसे नाथ तारि देहु, दीन बन्धु मोहिं एक रावरोई आस है॥
जौन ध्यान लावे फल पावे सोई वेङ्कटेसों, अन्तकाल परे गर नाहीं यम पास है।
रहत कुबुद्धि नाहिं मति गति सुद्ध होति, उर तम नासै होत ज्ञान को प्रकास है॥

कवित्त

शारद महेश शेष पार नहीं पाते कभी, उस वेङ्कटेशका ही नित्य यश गाऊंगा।
रहती है कर जोड़े सिन्धु जा समोद सदा, तब कहो चारों फल कैसे नहीं पाऊंगा॥
किसीको नहीं है भय, ध्यान है तुम्हारा सदा, वेङ्कटाद्रि गिर त्याग स्वर्ग में न जाऊंगा।
जाऊंगा उन्हींके पास, नाता है उन्हींसे मेरा, उनकी ही कृपासे न लौट कर आऊंगा॥

रूप घनाक्षरी

वचन विनीत सुनि हरि हरषित ह्वैके, देव द्विज दास हित धरि रूप आये तब ।
कञ्चन की वृष्टि होइ तव गृह मांहि सदा, इमि वेङ्कटेश बोले विपति नसाय सब ॥
वरस सहस दस बीते मम पुर ऐहौ, पूर्ण रूप सम्पतिको सुख भोगि लेइ जब ।
होवे यम यातना न जात ना नरक कोई, कौन ध्यान लायो फल पायो नाहिं कौन कब ॥

घेरे रहे मम ताके सदा परिवार बढ़े धन धाम घनेरे ।
नेरे न जात हैं अन्त समैं, भ्रममें इतने दिन व्यर्थ गये रे ॥
एरे प्रकाश करे सत कर्म दिया पै पतङ्ग सों क्यो जलते रे ।
तेरे न मेरे सुता सुत बन्धु हैं वेङ्कटके बनते नहिं चेरे ॥

वेङ्कट देव पै देव सबै नित स्तुति आय करैं हरसात ।
कोकिल कोर चकोर मयूर लतादि प्रसून खिले सरसात ॥
तीरथ कोटिक आय टिके तिनकी महिमा न कही कछु जात॥
काहे चलौ मन नाहिं तितै हरि दर्शते बाउर क्यों अरसात ॥

बुद्धि प्रकासे, हो तम नासे ।
वेङ्कट तोरा, अमृत नीरा ।
शुद्ध शरीरा, करि लीजे ॥
आवे गावे, भक्ती पावे ।
पापै नासे, ज्ञाने भासे ।
वेङ्कट आसै, तन छीजे ॥

वेङ्कट आवे, पाप नसावे सुख मिले मन माना ॥
ध्याने लावे, ज्ञाने पावे गावे त्रिपदी गाना ॥
वेङ्कट हरि हैं, पापै हरिहैं ।
मोको तरिहैं, शांती करिहैं ॥

इति श्रीरमाकान्त त्रिपाठी 'प्रकाश' द्वारा संगृहीत-श्रीआदित्यपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यसारः समाप्तः



॥ श्री श्रीनिवासपरब्रह्मणे नमः ॥

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यस्य

* द्वितीयो भागः *

श्रीपद्मपुराणान्तर्गतश्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

ॐ श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥१॥

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वेङ्कटाद्रि गिरि मेरुसे, गमन सुमुनि शुकदेव।
वेङ्कट धार कुमार गुण, स्नान धार फलमेव ॥१॥
युद्धादिक शक्ती मिलन, कार्तिकेय भगवान।
अघनाशन अघनानसे, श्राप मोक्ष मघवान ॥२॥
नभगङ्गामाहात्म्य अरु, शुक गिरि तीर्थ स्नान।
व्रतती वर्त्म सुपद्मसर, गगन गिरा प्रभुध्यान ॥३॥

❀ अथ मेरुशिखराच्छुकब्रह्मर्षेर्वेङ्कटाचलागमनम् ❀

देवल उवाच—

देवदर्शन देवर्षे ब्रह्मभूयकरं परम् ॥ मुकुन्दानन्दनं ब्रूहि धर्मं कर्मवि-
मोचनम् ॥ २ ॥

मेरुशिखरसे श्रीशुकब्रह्मर्षिका वेङ्कटाचलपर आना

देवलजी बोले—हे देवर्षि श्रीदेवदर्शनजी ! कर्मबन्धनसे मुक्त करने एवं परब्रह्मभाव तथा श्रीमुकुन्द भगवान्‌को आनन्द देनेवाला उत्तम धर्मके विषयमें कहिये ॥ २ ॥

देवदर्शन उवाच—

साधु देवल भूदेव यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ शृणु विद्वन् विशेषेण
वक्ष्यामि तव सुव्रत ॥ ३ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ यश-
स्करं रञ्जनकमायुरारोग्यभूतिदम् ॥ ४ ॥

देवदर्शनजी बोले—हे भूदेव देवलजी ! साधु ! साधु !! आपसे जो मैं यहां पूछा गया हूं । हे सुव्रत ! हे विद्वन् !! आप सुनें, मैं विशेषरूपसे कहता हूं । यह इतिहास परम पुण्य तथा (अर्थ धर्म्मादि) चारो पुरुषार्थोंको देनेवाला, परम यशको प्रदान करनेवाला, परम आनन्दवर्द्धक एवं आयु, आरोग्य तथा विभूतिको प्रदान करनेवाला है ॥ ४ ॥

पुरा सुमेरुशिखरे नानारत्नविचित्रिते ॥ खचितानेकमाणिक्ये सौ-
वर्णे कुट्टिमस्थले ॥ ५ ॥ अनुस्यूतस्रवद्देवस्रवन्तीनिर्झराप्लुते ॥ मयूखोद्दाम-
रत्नौघखण्डितध्वान्तकुञ्जके ॥ ६ ॥ सान्द्रस्निग्धतरुच्छायसुरद्रुमवनोदरे ॥
मकरन्दं स्रवन्तीभिः स्रग्भिस्तु परिलम्बिते ॥ ७ ॥ माणिक्यस्तम्भमहिते
मकराननतोरणे ॥ विचित्ररत्नप्रत्युप्तस्वर्णस्तम्भचतुष्कके ॥ ८ ॥ सिंहासने
महारत्नविचित्रांशुविराजिते ॥ सावित्र्या च सरस्वत्या सदासीनः पिता-
महः ॥ ९ ॥ गन्धर्वैर्गर्वनिर्वाहैर्गानविद्याविचक्षणैः ॥ गायद्भिः किन्नरगणै-
र्गीयमानश्च वीणया ॥ १० ॥ स्तूयमानस्तुम्बुरुणा हाहाहूहूत्थतेजसा ॥
सेव्यमानः सहस्राक्षप्रमुखैः सुरसत्तमैः ॥ ११ ॥ ब्राह्मीभिः शक्तिभि-
र्ब्रह्मभाषाभूषाभिरात्मभूः ॥ अंशुकाभरणालेपाकल्पहस्ताभिरन्तिके ॥१२॥

वसिष्ठप्रमुखैर्ब्रह्ममुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ मार्कण्डेयमरीच्यत्रिभृगुपूर्वैर्मह-
र्षिभिः ॥ १३ ॥ शापानुग्रहसामर्थ्यसाधनैश्च तपोधनैः ॥ माहात्म्यं पुण्य-
देशानामूचिवद्भिः परस्परम् ॥ १४ ॥ समन्ततः सेव्यमानः सेवारसवि-
शारदैः ॥ निषद्गणैरुपनिषद्गणैः श्रुतिगणैरपि ॥ १५ ॥ साङ्गैः संशिक्षित-
मना विश्वसर्गविलासभूः ॥ आस्ते समालपन् ब्रह्मा स्वपादाह्लादनि-
र्भरः ॥१६॥ कथाप्रसङ्गादत्रैव नारायणगिरेर्महत् ॥ माहात्म्यमाविर्भावं च
श्रीनिवासस्य शार्ङ्गिणः ॥ १७ ॥

प्राचीन कालमें सुमेरुशिखरपर नाना भांतिके चित्र विचित्र रत्नोंसे चित्रित, अनेक माणिक्योंसे जड़ित, निर-न्तर पसीजती हुई गङ्गाजीके स्रोतसे आप्लुत, रत्नपुञ्जके उद्दीप्त तेज किरणोंसे गाढ़ान्धकारको दूर करनेवाला, बीचमें निविड छायायुक्त स्निग्ध कल्पवृक्षोंके वनवाला, मकरन्द गिरती हुई मालाओंसे परिलम्बित, माणिक्यके खम्भों एवं मकराकृति तोरणोंसे युक्त, विचित्र रत्नोंसे प्रकाशित एवं सुवर्ण निर्मित चौखम्भोंयुक्त सोनेके चबूतरेपर विचित्र विचित्र महारत्नोंकी किरणोंसे सुशोभित सिंहासनपर, लोकपितामह, संसारकी सृष्टिकर्ता, सहस्राक्ष प्रमुख सुरश्रेष्ठों, गमछा आभरण एवं चन्दनादिके लेपको हाथोंमें रखती हुई ब्रह्माकी भाषा एवं अलङ्कारसे युक्त ब्राह्मी शक्तियों, परस्पर पुण्य प्रदेशोंका माहात्म्य कहते हुए वसिष्ठ प्रमुख ब्रह्मर्षियों, सिद्धों, चारणों, मार्कण्डेय, मरीचि, अत्रि, भृगु आदि महर्षियों, तथा शापानुग्रह करनेका सामर्थ्यसे सम्पन्न तपोधनोंसे सेवित, सेवारसमें पारङ्गत निषद्गणोंसे चतुर्दिक सेव्यमान, साङ्ग उपनिषत् तथा श्रुतिगणोंमें निष्णात एवं अपने अनन्त आनन्दसे पूर्ण ब्रह्माजी गानविद्यामें विचक्षण गाते हुए गन्धर्वसमूह तथा वीणाके साथ गान करते हुए किन्नरगणोंसे गाये जाते हुए, हाहा हूहूसे उत्पन्न तेजोरूप तुम्बरुसे स्तुति किये जाते हुए तथा श्रीनिवास भगवान् एवं नारायणगिरिका महनीय माहात्म्य, तथा उत्पत्तिकी कथाको प्रसंगसे कहते हुए सावित्री तथा सरस्वती देवीके साथ विराजमान थे ॥१७ ॥

श्रुत्वा शुकः परम ऋषिः सभायां समुपस्थितः ॥ स देशं तं दिदृक्षुः
सन् कौतूहलसमाकुलः ॥१८॥ विज्ञापयन्ब्रह्मणे तं नमस्कृत्य च सर्वतः ॥
जगाम तस्माद्देशाद्वै दक्षिणाभिमुखः सुधीः ॥ १९ ॥

सभामें उपस्थित परम ऋषि श्रीशुकजी इस कथाको सुनकर उस देशको देखनेकी इच्छासे आकुलित हो श्री-ब्रह्माजीको अपनी इच्छा जनाते हुए सब तरहसे नमस्कार कर उस देशसे दक्षिणकी ओर हो चले गये ॥ १९ ॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलवर्णनम्

वासुदेवे वहन् भक्तिं पुराणपुरुषोत्तमे ॥ तत्कथालापकुतुकः स्मयमा-
नमुखो मुनिः ॥ २० ॥ ददर्श नारायणाद्रिं तत्र नारायणाश्रमम् ॥ २१ ॥

नीलजीमूतमुदितनीलकण्ठविडम्बनम् ॥ शृङ्गकोटीरविश्रान्तवालखिल्य-
कुलाकुलम् ॥ २२ ॥ तिग्मांश्वश्वखुरक्षुण्णशृङ्गमाणिक्यमण्डलम् ॥ अमृ-
तांशुकरस्पर्शनिर्यदिन्दुदृषद्द्रवम् ॥ २३ ॥ तुङ्गशृङ्गस्फुरद्रत्नतरलीकृततार-
कम् ॥ माणिक्यकुण्डलमहोमाद्यद्द्युमणिमण्डलम् ॥ २४ ॥ वियल्लिहोत्तु-
ङ्गशृङ्गविशङ्कटविटङ्ककम् ॥ चन्द्रकान्तसवास्वादिचकोरकुलसङ्कुलम् ॥२५॥
स्फाटिकाश्मदरीशृङ्गनिर्यन्निर्मलनिर्झरम् ॥ अधित्यकारूढफुल्ललोध्रसिंहविड-
म्बनम् ॥ २६ ॥ माकन्दकुसुमामन्दमकरन्दसमुक्षितम् ॥ दन्तावलघटा-
घातदर्दुरप्रस्थकन्दरम् ॥ २७ ॥ व्युत्क्रमक्रमणाक्रान्तशरभप्रस्थदुःस्थलम् ॥
महान्धकारमहिमद्रुर्निरीक्ष्यमहर्षभम् ॥ २८ ॥ आघ्रातव्याकुलप्राणिव्याघ्र-
भीमभृगुस्थलम् ॥ निर्झरापातपर्यन्तग्रस्तमुक्तार्धसूकरम् ॥ २९ ॥ यमवाह-
नदुर्दर्शनिनदन्महिषाकुलम् ॥ शाखाशिखाक्रमच्छाखामृगसानुमहीरु-
हम् ॥ ३० ॥ विकीर्णश्वापदानीकाधित्यकोपत्यकापथम् ॥ अभ्रङ्कषाग्रविवि-
धविटपाटविपाटवम् ॥३१॥ धातुप्रस्थस्थलीनिर्यदोघप्रस्रवणाकुलम् ॥ अन्त-
कास्यप्रतीकाशगुहागेहोपितोर्णकम् ॥ ३२ ॥ झिल्लिकानादबधिरीभूतदिक्च-
क्रवालकम् ॥ दिव्यभूत्यपदानं तद्गायद्भिरुपितान्तरम् ॥ ३३ ॥ नानामणिम-
यूखौघमहेन्द्रायुधवर्चसम् ॥ कृष्णसारवरोद्रिक्तहरिणीकुलसङ्कुलम् ॥३४॥
विधून्वद्बालविमलचमरीचङ्क्रमोत्कटम् ॥ लाङ्गूलचेल्लिलसद्गोलाङ्गूल-
कुलाकुलम् ॥ ३५ ॥ प्रवालकाण्डप्रस्तारमण्डितान्तरकन्दरम् ॥ इतस्तत-
स्तपस्यद्भिर्ऋषिभिर्निर्झरान्तिके ॥ ३६ ॥ आस्थातव्यप्रस्थदेशं ब्रह्मध्यानपरा-
यणैः ॥ आश्रितार्तिहरच्छायविशालवनपादपम् ॥ ३७ ॥

श्रीवेङ्कटाचलवर्णन

उनकी कथावार्तासे प्रसन्न चित्त एवं हास्यमुख मुनिजीने—पुराण पुरुषोत्तम श्रीवासुदेवजीमें दृढ़ भक्ति धारण करते हुए, काले बादलोंसे आनन्दित मोरका भ्रम दिखानेवाले, चोटियोंमें विश्रान्त अखिल बालखिल्यों (ऋषियों) से परिव्याप्त, भगवान् सूर्यके घोड़ोंके खुरसे दलित माणिक्य शिखर मंडलवाले, चन्द्रमाके किरणोंके स्पर्शसे पसीजते चन्द्रकान्त युक्त, ऊंचे ऊंचे चोटियोंमें चमकते हुए रत्नोंके तरह तरल तारासम्पन्न, प्रकाशमान तथा लगे हुए

सूर्यमंडल रूप माणिक्यके कुण्डलवाले, आकाशको चूमनेवाले ऊंचे ऊंचे शिखरोंपर आराम करते हुए विटंकवाले, चन्द्रकान्त रसको पीनेवाले चकोर पक्षियोंसे परिव्याप्त, स्फटिक पत्थरोंकी गुफाओं तथा शिखरोंसे निकलते हुए निर्मल स्रोतों तथा झरनोंसे युक्त, सिंहोंका भ्रम देनेवाले अधित्यकापर फूले हुए लोधवृक्षवाले, उत्तम माकन्दके पुष्पोंके मकरन्दसे सिञ्चित, हाथियोंके दलके आने जानेके चोटके चिन्हयुक्त, कन्दराओंसे युक्त, शरभगणोंके उछलने लांघनेसे चिकने बने हुए स्थानवाले, महाघोर अन्धकारके समान तथा अत्यन्त दुर्निरीक्ष्य ऋषभवाले, सूंघने हीसे प्राणिमात्रको भीत भीत करनेवाले, व्याघ्रोंसे महाभयंकर उच्च स्थान युक्त, स्रोतसे जलप्रपात तक लगे आधे मोथेको खाते सूकरों से युक्त, यमराजके वाहनके जैसे परम दुर्दश गर्जते भैंसोंके समूहोंसे परिव्याप्त, शाखाओंपर चढ़े बन्दरोंसे भरे शिखरस्थ वृक्षवाले, वनजन्तुओंसे परिव्याप्त अधित्यका वा तराईपथ तथा उपत्यका भूमिके पथोंसे युक्त, बादलोंसे टकरानेवाले, अनेकों प्रकारके वृक्ष समूहोंसे पाटा हुआ जंगलप्रदेशवाले, स्थान स्थानको छेद कर धातुओंका अधिक प्रमाणसे निकलके प्रस्रवणोंसे भरे हुए, यमराजके मुखके समान गुहारूप घरमें वास करनेवाले भेड़ियोंसे युक्त, झिल्लियोंके घोर आवाजसे बधिर बनाई गई दश दिशाओंसे युक्त, दिव्य ऐश्वर्यका जन्मस्थान, स्थान स्थानपर गाते हुए पक्षियोंका वासस्थान, अनेकों मणियोंके किरणसमूहरूप परिव्याप्त इन्द्रधनुषकी शोभावाले, कृष्णसार मृगसे उद्विग्न किये हरिणीवर्गों से समाकुलित, बालोंको धुनती हुई विमल चमरीके अधिक उछलनेसे युक्त, लतारूप पोंछोंसे सुशोभित गोलाङ्गूलों (बन्दर) से परिपूर्ण, मूंगेके खण्डोंका विस्तार टुकड़ोंसे मण्डित भीतरी गुफाओंवाले, झरनेके निकट ही इधर उधर तपस्या करते हुए ऋषिवृन्दों एवं ब्रह्मध्यानपरायण मुनियोंके निवासयोग्य प्रदेशवाले, तथा आश्रितोंके दुःखको नाश करनेवाले छाया युक्त, विशाल वन और वृक्षोंसे सम्पन्न भगवान् नारायणके आवासस्थान नारायणाद्रिको देखा ॥ ३७ ॥

अथ शुकस्य श्रीवेङ्कटाचलस्थपुण्यतीर्थावगाहनम्

तस्य सानुमतः सोऽपि पादानाश्रित्य सत्वरः ॥ ३८ ॥ निर्झरेष्वाप्लवं
कुर्वन्विमलोदेष्वनन्यधीः ॥ ह्रदेषु देवखातेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥ ३९ ॥
अन्येष्वमलतीर्थेषु त्रिवृद् ब्रह्म जपन्मुनिः ॥ संसारमोचनीं ब्रह्मविद्यां
विद्याविजृम्भिणीम् ॥ ४० ॥ जपन्नुपांशु मनसाऽवद्याविद्यानिबर्हिणीम् ॥
निवसन् रजनीमेकां तत्र तत्र समाहितः ॥४१॥ अतन्द्रितोऽञ्जनगिरिं प्राप
विप्रोपवेशनम् ॥

वे भी (शुकजी) शीघ्र ही उसी पर्वतके पाददेशका आश्रय ले कर झरनों, निर्मल जलपूर्ण तालाओं, देवखातों, नदियों, प्रस्रवणों तथा अन्यान्य अमल तीर्थोंमें स्नान करते हुए, त्रिवृत मन्त्र (गायत्री) को जप करते हुए, विद्याओंको विस्तार करनेवाली, संसारसे मुक्ति दिलानेवाली तथा अविद्यारूप दोषको नाश करनेवाली विद्याको मनमें जपते हुए एवं उन स्थानोमें आ कर एक एक रात निवास करते हुए, आलस्यरहित हो कर ब्राह्मणोंका आवासस्थान अञ्जनागिरि पहुंचे ॥ ४२ ॥

तत्र तत्र गुहागेहेष्वासीनैर्मुनिपुङ्गवैः ॥ ४२ ॥ योगिभिः सिद्धसङ्घैश्च विशुद्धज्ञानशालिभिः॥ वैखानसैश्च मुनिभिः कृतातिथ्यसपर्यकम् ॥ ४३ ॥ शिलातलेषु निवसन्विपुलेषु शनैः शनैः ॥ कुमारधारां धारालच्यवमानामलोदकाम् ॥ ४४ ॥ आससादाप्लवं चात्र चक्रे व्यासौरसो मुनिः ॥

वहां इधर उधर गुफाओंमें बैठे हुए मुनिपुङ्गवों, योगियों, सिद्धसंघों, विशुद्ध ज्ञानशालि वैखानसों तथा मुनियों द्वारा सपर्या या आतिथ्य किये जा कर अनेकों शिलाओंपर निवास करते हुए, धीरे धीरे निर्मल जलसे पूर्ण धारा पर पहुंचे और वहींपर व्यास पुत्र श्रीशुकदेवजीने स्नान भी किया ॥ ४५ ॥

अथ स्कन्दस्य कुमारधारास्नानेन शक्त्यायुधप्राप्तिः

अस्या माहात्म्यमतुलं तुलितानन्यतीर्थकम् ॥ शक्तिप्रदं शक्तिपाणेः शरण्यं शरणार्थिनाम् ॥ पुराऽमरैः प्रार्थितेन शङ्करेण पुरारिणा ॥ ४६ ॥ औमापत्यो बाहुलेयः सैनापत्ये नियोजितः॥ तद्वोढुमसहन् सोऽपि सैनापत्ये निविष्टधीः ॥ ४७ ॥ अनेकापायसदनमुपायरहितो गुहः ॥ दैत्यारेःप्राप्तुकामः संस्तत्प्रतीकारमागतवान् ॥४८ ॥ त्रिसन्ध्यमाप्लवं कुर्वंस्त्रिवृद् ब्रह्म जपन्सुधीः ॥ त्रिसन्ध्यमर्चयन्विष्णुं दिव्यैः पुष्पैरनन्यधीः ॥ ४९ ॥ अस्या निर्झरधारायास्तपस्तेपे समीपतः ॥

कुमारधारा स्नानसे कार्तिकेयको शक्तिप्राप्ति

इसका माहात्म्य अतुल है एवं अन्य तीर्थोंसे इसकी समता नहीं की जा सकती है। यह शक्तिपाणि (कार्तिकेय) को शक्ति तथा अशरणोंको शरण देनेवाला है। प्राचीन कालमें देवताओंसे प्रार्थित पुरारि शंकरसे श्री कार्तिकेयजी सेनापति नियुक्त हुए। अनेक आपत्तियोंके स्थान उस भारको वहन करनेमें अशक्त एवं सेनापतित्वमें तल्लीन मन श्रीकार्तिकेय कुमारजीने निरुपाय हो कर दैत्योंके शत्रुसे (भगवानसे) उसका प्रतीकार पानेकी कामनासे वहां पहुंचकर तीनों संध्या स्नान गायत्रीका जप एवं श्रीविष्णुकी दिव्यपुष्पोंसे पूजा करते हुए इस झरनेकी धाराके समीप ही तपस्या की ॥ ५० ॥

तपसा तस्य सन्तुष्टो भगवान्विष्टरश्रवाः ॥ ५० ॥ आविर्भूय ददौ शक्तिं तस्मै सोऽपि तिरोदधे ॥ कुमारस्तं प्रणम्याथ देवं स्वर्गं जगाम सः ॥ ५१ ॥ तस्मात्कुमारधारेति विख्याता विमलोदका ॥ प्रथमानप्रशंसाऽभूदप्रमेयफलप्रदा ॥ ५२ ॥

उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो विष्णु भगवान्ने प्रकट होकर उनको शक्ति प्रदान किया, फिर अन्तर्धान हो गये। भगवान्को प्रणाम कर कुमार स्वयं भी स्वर्गमें चले गये। उसीसे वह अगणित फलोंको देनेवाली एवं विमल जल सम्पन्ना सरिता कुमारधाराके नामसे विशेष रूपसे प्रसिद्ध हुई ॥ ५२ ॥

अथेन्द्रस्य पापनाशनस्नानेन वृत्रवधजनितपापनिर्मुक्तिः

ततो गतः पापनाशं कृत्वा स्नानादिकं वशी ॥ उवास त्रिदिनं तस्य
तीर्थस्य निकटे तटे ॥ ५३ ॥ यत्र तीर्थे सकृत्स्नात्वा मघवा वृत्रहा पुरा ॥
ब्रह्महत्याविमुक्तः स प्राप चैन्द्रं पुनः पदम् ॥ ५४ ॥ पापनाशः स विख्यातो
निर्झरो जर्जरैनसाम् ॥

पापनाशनमें स्नान करनेसे इन्द्रकी वृत्रवधके पापसे मुक्ति

तत्पश्चात् उस जितेन्द्रियने पापनाशन तीर्थमें जा स्नान कर, उसके निकट ही तटपर तीन दिन निवास किया, जहां प्राचीनकालमें वृत्रासुरको मारनेवाले इन्द्रदेवने भी अच्छी तरह स्नान कर ब्रह्महत्यादि पापोंसे मुक्त हो पुनः अपना इन्द्रपद प्राप्त किया था। पापके नाश करनेवाले झरनोंमें वह पापनाशी झरना विशेषरूपसे प्रसिद्ध है ॥५५॥

अथाकाशगङ्गामाहात्म्यम्

देवतिर्यङ्मनुष्याणामवगाहान्मलापहाम् ॥ ५५ ॥ आकाशगङ्गाम-
न्वास्य समस्तफलदायिकाम् ॥ आसाद्यास्यामाप्लवं च चकार निरुपप्ल-
वः ॥५६॥ यस्याः संसारार्णवस्य कर्णधारेऽमलेऽम्भसि॥ देवस्त्रियो नागकन्या
गन्धर्व्यः किन्नराङ्गनाः ॥ सिद्धनागाश्च कुर्वन्ति स्नानं वैखानसाङ्गनाः ॥५७॥

आकाशगङ्गामाहात्म्य

स्नान करने हीसे देवता, आकाशवासी तथा मनुष्योंके पापको अपहरन करनेवाली समस्त फलोंको देनेवाली आकाश गङ्गाको पा कर इसमें शुकजीने विना विघ्नके स्नान किया जिसके, संसार सागरके कर्णधार रूप निर्मल जलमें देवताओंकी स्त्रियां, नागकन्या, गन्धर्वकन्या, किन्नरी, सिद्धोंकी स्त्रियां, तथा वैखानसोंकी स्त्रियां स्नान करती हैं ॥ ५६ ॥

व्रततीवर्तनीतीर्थस्नानकाले शुकब्रह्मर्षे प्रत्यशरीरोक्तिः

नारायणगिरेः शौरेस्तदीशस्य प्रभावकम् ॥ ५८ ॥ प्रथयन्मनसा-
तीव स्मयमानो महामुनिः ॥ ५९ ॥ व्रततीवर्तनीतीर्थमाससाद महामुनिः ॥
तत्राघमर्षणं चक्रे सूक्तं वैष्णवमुच्चरन् ॥ ६० ॥ स्मरन् भगवतो विष्णोर्जि-

ष्णोर्द्वैपायनात्मजः ॥ जले मग्नतनोस्तस्योदभूद्वागशरीरिणी ॥ ६१ ॥ अ-
मृतोदन्वदुत्तुङ्गतरङ्गमहिमावली ॥

व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी नारायण पर्वतके निवासी उसी भगवान्के प्रभावोंको मनसे खूब ध्यान करते, हंसते, अघनाशक वैष्णवसूक्तको पढ़ते तथा भगवान्का स्मरण करते हुए व्रततीवर्तनीतीर्थपर आ पहुंचे, जलमें गोता लगानेवाले उनको अमृत समुद्रके ऊंचे तरंगमालाकी महिमायुक्त विना शरीरकी वाणी प्रकट हुई अर्थात् सुन पड़ी ॥ ६१ ॥

श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरदृश्यश्च मलात्मनाम् ॥ ६२ ॥ अनन्तभोगा-
यतनोऽनन्तोऽनन्तफलप्रदः॥अतोऽस्मादग्निदिग्भागे सार्द्धयोजनमात्रके॥६३॥
अस्य सानुमतः पादमूले कूलङ्कपद्रुमे ॥ नद्याः सद्योऽघनाशिन्याः स्वर्णमु-
ख्यास्तटे शुभे ॥ ६४ ॥ पद्ममित्युत्तरे ख्यातं पवित्रं परमं सरः ॥ तत्र
गत्वा तटे तूर्णमत्युग्रं तप आचर ॥ ६५ ॥ पश्चादचञ्चलत्वं ते मनीषाया
भविष्यति ॥ तदा स्याद्भगवान्विष्णुः प्रत्यक्षः सर्वसाक्षिभूः ॥ ६६ ॥

भगवान छातीमें श्रीवत्सचिन्हित, श्रीलक्ष्मीयुक्त, मलिन आत्माओंको अदृश्य, शेषनागकी विस्तृत फणा पर रहनेवाले, अनन्त एवं अनन्त फलके प्रदान करनेवाले हैं। अतः इसकी अग्नि दिशामें डेढ़ योजन मात्र दूरी पर, इस पर्वतके बड़े वृक्षयुक्त पाददेशमें क्षणभरमें पापनाशिनी, स्वर्णमुखरी नामकी नदीके सुन्दर तीर पर उत्तर ओर "पद्म" नामक प्रसिद्ध परम पवित्र सरोवर है। उसीके तट पर शीघ्र जा कर अत्यन्त उग्र तपस्या करो। पीछे तुम्हारी बुद्धि की स्थिरता होगी, तथा सर्वसाक्षि परम प्रभु भगवान श्री विष्णु भी प्रत्यक्ष होंगे ॥ ६६ ॥

एवं सादरमुक्त्वा सा जनानां शृण्वतामपि ॥ प्रक्षालयन्ती शमलं
मुनेर्याताऽशरीरिणी ॥

इस प्रकार आदरके साथ सभी मनुष्योंके सुनते सुनते ही बोल कर मुनिका मलको नाश करती हुई वह अशरीरा वाग्देवी अन्तर्धान हो गई ॥ ६७ ॥

एवमेतां निशम्यासौ जलादुत्तीर्य तीर्थतः ॥६७॥ अतिस्नेहो विस्मितो
वैयामकिर्मुनिरत्वरः ॥ एवमालोचयन् बुद्ध्या शरीरात्मविशोधनीम् ॥६८॥
प्रसादसूचिनीं विष्णोः प्रभविष्णोः प्रशंसिनीम् ॥ जगाम वेगात्तं देशं यत्र
पद्मसरोवरः ॥६९॥

इस प्रकार इस वाणीको सुन कर तीर्थके जलसे निकल कर परम प्रेम तथा आश्चर्यसे व्यासपुत्र शुकदेवजी

आत्माको शुद्ध तथा विष्णुको प्रसन्नको करने वाली अशरीरा वाग्देवीको मनमें सोचते हुये, अति वेगसे उस देशमें गये जहां पद्मसरोवर है ॥ ६९ ॥

अथ पद्मसरोवरवर्णनम्

प्रसन्नं सन्मन इव वैडूर्यविमलोदकम् ॥ उत्फुल्लैः पुण्डरीकैश्च कल्हारैः कनकाम्बुजैः ॥७०॥ नीलोत्पलैः कुवलयै रक्ताब्जैरश्चितान्तरम् ॥ मकरन्दमदोन्मत्तमधुरालिकुलोज्ज्वलम् ॥ ७१ ॥ कारण्डवैः कलरवैर्वाचाटितदिगन्तरम् ॥ भ्रमद्भ्रमरवृन्दैश्च मधुपानमदोद्धतैः ॥ ७२ ॥ गृहीतग्राहदुर्ग्राहं वलमानसुमीनकम् ॥ वराहसङ्घैरभितो ग्रस्तमुस्तैरलङ्कृतम् ॥ ७३ ॥ मृणालकवलाकीर्णकरैः करिकदम्बकैः ॥ एणैः सशावैरेणीभिरुपान्ते परितो वृतम् ॥ ७४ ॥ मदोन्मत्तैर्वनचरैर्वयोभिरभितो वृतम् ॥ तपस्यत्तापसक्लेशहरणं रमणं हरेः ॥ ७५ ॥ श्रीमदेतत्पद्मतीर्थं महातीर्थं शुको मुनिः ॥७६ ॥ ददर्श स गतक्लेशः स्नानपाननिषेवणैः ॥ स्मरन्नारायणं विष्णुमभून्निश्चलचेतनः ॥ ७७ ॥

पद्मसरोवरवर्णन ।

सन्तोंके मनके समान प्रसन्न, वैडूर्य्यरत्नके समान विमल जलपूर्ण, खिले पुण्डरीक, कल्हार, स्वर्णकमल, नीलकमल, कुवलय तथा रक्तकमलोंसे व्याप्त, स्थान स्थान पर मकरन्दके मदसे उन्मत्त भौरोंसे गुञ्जारवयुक्त, कारण्डवोंके कलरवोंसे गूञ्जित दिशाओं एवं मधुपानसे मदोद्धत भनभनाते भौरोंसे युक्त, पकड़नेवाले नक्रोंसे परम दुर्गह, चक्र मारती हुई मछलियोंसे युक्त, चारो ओर मोथा उखाड़ते वराह समूहोंसे अलंकृत, मृणालोंको सूंड़से तोड़ कर खाते हुए हाथीके बच्चों, हस्तियूथों तथा बच्चोंके सहित एणोंसे परिवृत, मदोन्मत्त वनचर तथा पक्षियोंसे चतुर्दिक व्याप्त, तपस्या करते हुए तपस्विगणोंके क्लेशको हरण करनेवाले तथा भगवानका विहारस्थान महातीर्थ श्री पद्मतीर्थको श्री शुकदेव मुनिजीने देखा और उसमें स्नान पान तथा उसका सेवन करनेसे सभी कष्टोंसे मुक्त हो नारायण श्रीविष्णु भगवानको स्मरण करते करते निश्चल चित्त हो कर वहां रहे ॥ ७७ ॥

अथ शुकस्य पद्मसरसि श्रीनिवासध्यानपूर्वकस्नानादिकम्

मुहूर्तं तत्र विश्रम्य संयमे नियमस्थितः ॥ वन्यैरपाकैः पक्वैर्यः फलैः स्वपतितैरपि ॥ ७८ ॥ दिनस्य पश्चकाले वै कृताहारोऽभवन्मुनिः ॥ शिश्ये च दर्भशय्यायां स निर्वर्त्याह्निकीं क्रियाम् ॥ ७९ ॥ ब्राह्मे मुहूर्ते चान्येद्युरुत्था-

य प्रयतो वशी ॥ चिन्तयन् पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ८० ॥ करुणारसकल्लोलतरङ्गितकटाक्षकम् ॥ शरत्पूर्णेन्दुवक्त्राभं पीतकौशेयवाससम् ॥८१॥ महोरस्कमुदाराङ्गं श्रीनिवासं महामतिः ॥ सन्ध्यामुपास्य विधिवत्स्नानपूर्वं समाहितः ॥ ८२ ॥ ददर्श सरसस्तस्य तीरे त्वभिनवं वनम् ॥

वहा कुछ समय विश्राम कर पुनः नियमबद्ध हो संयमपूर्वक वनमे उत्पन्न अपक्व, तथा पके एवं अपने आप गिरे फलोंको दिनके पञ्चम मुहूर्तमें भोजन करते हुऐ रहे। और दैनिक क्रिया (आह्निक क्रिया) समाप्त कर कुशोंकी शय्यापर सोये। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें जितेन्द्रियप्रवर महामति शुकजीने शय्यासे उठ पुण्डरीकाक्ष शंख, चक्र, गदा, पद्म धारी, दया-रससागरके तरङ्गोंसे भरे नेत्रवाले, शरद्कालीन पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाले पीताम्बर धारी, ऊंचे ऊंचे कन्धोंवाले, उदार हृदय श्रीनिवास भगवानको स्मरण करते हुये पहले स्नान करा पीछे विधिपूर्वक सन्ध्या उपासना कर लेने पर उसी पद्म सरोवरके किनारे परम सुन्दर नवीन वन अथवा बगीचा देखा ॥ ८३ ॥

अथ पद्मसरोवरतीरस्थदिव्यारामवर्णनम्

पुन्नागनागपनसपाटलाशोककिंशुकैः ॥८३॥ कुन्दमन्दारमाकन्दहरिचन्दनचन्दनैः ॥ तालचम्पकहिन्तालहरितालतमालकैः ॥ ८४ ॥ नक्तमालैश्च सरलैर्नारिकेलैश्च केसरैः ॥ पनसैः केतकैः सालैः पालाशैः पिप्पलैर्वटैः ॥८५॥ खर्जूरैः खादिरैः प्लक्षै रुद्राक्षै रसनैर्धवैः ॥ सङ्कीर्णमभितः सान्द्रं महेन्द्रोपवनोपमम् ॥ ८६ ॥ माधवीमल्लिकायूथीवनयूथीसुजातिभिः ॥ शतपत्रैः समाकीर्णं सुमनोभिः सुगन्धिभिः ॥ ८७ ॥ दमनीमरुशाखाभिस्तुलसीभिर्विजृम्भितम् ॥ कुन्दमल्लिकयोपेतं कुशकाशप्रकाशितम् ॥ ८८ ॥ विश्वामित्रैः पवित्रैश्च मुञ्जैरप्यभिजृम्भितम् ॥ ८९ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शनसंवादे
सुमेरुशिखराच्छुकस्य श्रीवेङ्कटाचलागमनपद्मसरःप्राप्त्यादिवर्णनं नाम
चतुर्विंशोऽध्यायोऽत्र प्रथमः ॥ १ ॥

॥ पद्मसरोवरतीरस्थ दिव्य उपवनवर्णन ॥

जो पुन्नाग, नागपनस, पाटल, अशोक; पलाश, कुन्द, मन्दार, माकन्द, हरिचन्दन, चन्दन, ताल, चम्पा, हिंताल, हरिताल, तमाल, नक्तमाल, सरल, नारियल, केसर, पनस, केतकी, साल, किंशुक, पीपर, बड़, खजूर, खैर, बेर,

रुद्राक्ष, आसन, धत्र आदिसे चतुर्दिक आकीर्ण, देवराज इन्द्रके नन्दनवनको उपमायोग्य, माधवी, मल्लिका, यूथी, वनयूथी, सुजाति, सौपतियां आदि सुन्दर सुगन्ध पुष्पोंसे समाकीर्ण, दमनी, मरुशाखा तथा तुलसीसे छाया हुआ कुन्द मल्लिका आदिसे युक्त, कुश, काशोंसे प्रकाशित, पवित्र विश्वामित्र आदि कुशोंसे भी चतुर्दिक छाये हुये था।

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः



पद्म जाल तट बागमें, शुक संयम तप ध्यान।
तप जालोपद्रव दुखित, कहिं नहिं नर कल्यान ॥१॥
इन्द्र तपसाभङ्ग ऋषि, रम्भा को आदेश।
तप नाशन मण अप्सरा, हाव भाव भरिभेष ॥२॥
रम्भा शुक दर्शन पुनि, मोह ज्ञान चूडान्त।
इम द्वितीय अध्यायमें, ज्ञान भरा मायान्त ॥३॥

अथ दिव्यारामे शुकब्रह्मर्षेर्महानियमपूर्वकतपोऽनुष्ठानम्

देवदर्शन उवाच

तटे श्रीपद्मतीर्थस्य पद्मवाटीपटीयसः ॥ वटाटवीजटाटोपविशङ्कटवि-
यत्तटे ॥ १ ॥ अधीतवेदवेदान्ततापसाधनिषेविते ॥ अनूदितब्रह्मघोषैर-
न्विते वयसां गणैः ॥ २ ॥ पतङ्गाध्यापिताम्नायप्रमोदर्पिकुमारके ॥ हुतचैता-
नवह्न्युत्थहविर्गन्धसुमोदिते ॥ ३ ॥ मृगशावविलूनाग्रकुशगुल्मविजृम्भिते ॥
मनःसन्तोषकरणे सर्वोपकरणान्विते ॥ ४ ॥ विचित्रविविधामोदे वने चैत्रर-
थोपमे ॥ तपः करिष्यन्दिष्ट्या तु समाहितमना मुनिः ॥५॥ विचिन्तयन्वि-
यद्वाक्यं विमलात्मा व्यतिष्ठत ॥

महर्षि शुकदेवजीका दिव्यवनमें तपोनुष्ठान

देवदर्शनजी बोले—वटोंके समूहसे सघन वन तथा वनोंसे आकाश तक परिव्याप्त, वेदवेदान्त पढ़े हुये तपस्वियोंसे सेवित, ब्रह्म अथवा वेदध्वनि को दुहराते हुए पक्षियोंसे पूर्ण, पक्षियोंसे पढ़ाये वेद विद्यामें प्रमुदित ऋषि कुमारोंसे सेवित, हवन किए यज्ञके अग्निसे उठे हुवे हव्यगन्धसे सुगन्धित, हरिणोके बच्चोंसे ठूंठ कर दिये गये कुशोंसे छाया हुआ, मनको सन्तुष्ट करनेवाले, सभी उपकरणोंसे सम्पन्न, चित्रविचित्र अनेक आनन्ददायक विषयोंसे युक्त, चैत्ररथ वनके समान श्री पद्मसरोवरके पवित्र तट पर स्थित अनुपम वनमें तपस्या तथा यज्ञोंमें मन लगाये हुए श्री मुनिवर शुकजी आकाशवाणीको स्मरण करते हुए, प्रसन्न आत्मा हो रहने लगे ॥ ६ ॥

स्वाध्यायं समधीयानो विष्णुमेवाग्रतो यजन् ॥ ६ ॥ पर्णाशनो हिता-
चारनियतो नियमस्थितः ॥ मितभाषी मिताहारः शान्तो दान्तो गुरु-
प्रियः ॥ ७ ॥ सात्त्विकः सत्त्वसम्पन्नो विष्णुभक्तो बभूव ह ॥

वे—स्वाध्याय करते, पहले विष्णुकी ही पूजा करते, पत्राहारी, हिताचारी नियम युक्त, परिमितभाषी, परिमितभोजी, शान्त, दान्त, गुरुके प्रेमी, सात्त्विक, सत्त्वसम्पन्न तथा विष्णु भक्त हो रहते थे ॥८॥

श्रीनिवासमनाराध्य किञ्चिन्नाश्नाति नित्यशः ॥ ८ ॥ क्षुधाक्षामोऽप्य-
नैवेद्यं नोपजीवति चैकदा ॥ विष्णुपादोदकादन्यत्तृष्णार्तोऽपि न चापिब-
त् ॥ ९ ॥ निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारो धीरो विगतमत्सरः ॥ कुशेशयासनासीनः
कुशास्तरणभूतले ॥१०॥ कुशाग्रबुद्धिरचलः कुशहस्तपवित्रकः ॥ कृष्णाजि-
नोत्तरासङ्गः कृष्णवर्त्मशिखाजटः ॥ ११ ॥ कृष्णाजिनाम्बरधरः कृष्णद्वैपाय-
नात्मजः ॥ अक्षमालाधरकरो विजिताक्षः क्षमाक्षमः ॥ १२ ॥ नासाग्रन्य-
स्तनयनः आर्जवोर्जितकायकः ॥ दन्तैरसंस्पृशन्दताञ्जिह्वागूहिततालुकः ॥१३॥
धारणाध्यानसम्पन्नः प्राणायामविशुद्धधीः ॥ उपांशुमानसजपगूढोष्ठस्फुर-
णाननः ॥ १४ ॥ वैकुण्ठेऽकुण्ठितमतिर्गायत्रीं वैष्णवीं जपन् ॥ वर्षासु जल-
मध्यस्थो ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यगः ॥ १५ ॥ अभ्यर्कदृक्समद्वन्दोपद्रवो वीत-
निद्रकः ॥ कालानलप्रतिभटकायः कमललोचनः ॥ १६ ॥ एवं प्रवृत्तो घोरं च
तपश्चर्तुं तपोधनः॥

श्रीनिवास भगवानकी नित्य पूजा किये विना कुछ भी नहीं खाते, क्षधासे दुर्बल होने पर भी अनैवेद्य अर्थात् विना प्रसाद चढ़ाये भोजन एक बार भी नहीं करते, प्यासे होने पर भी विष्णु-चरणोदकके सिवाय

और कुछ भी नहीं पीते, निर्द्वन्द्व, (अर्थात् शीतोष्णादिकोंके विचारके विना) अहंकाररहित, साहसी, मत्सरसे शून्य हो, *कुशशय्या* पर ही बैठते, पृथ्वी पर *कुशशय्या ही बिछाते, कुशके समान* तीव्रबुद्धिवाले, अचल, शान्त, स्थिर, पवित्रकारी कुशोंको हाथोंमें धारण करते, काले मृगचर्मका उढना ओढ़, अग्निशिखाके समान जटावाले, हाथोंमें रुद्राक्ष धारण करते, इन्द्रियोंको विजय किये, क्षमासे सम्पन्न, नाकके अग्र भाग पर दृष्टि जमाये, शरीरको सीधा तथा ऊपर उठाये, दांतोंसे दांतोंको नहीं छूने हुए तथा जीभसे तालुदेशको छाये हुए, धारणा एवं ध्यानसे सम्पन्न, प्राणायाम करनेसे निर्मल तथा शुद्ध बुद्धिवाले, मन्द मन्द जप करने एवं बोलनेसे चलायमान गूढ़ ओष्ठ युक्तमुखवाले, भगवानमें अकुण्ठित अर्थात् निश्चल बुद्धिवाले हो वैष्णवी गायत्रीको जपते हुए, वर्षाकालमे जलके बीच, ग्रीष्म कालमें पञ्चाग्निके बीच, मध्याह्नमे सूर्यके सामने आंख किये हुए, सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय, पराजय आदि द्वन्दों तथा उपद्रवमें समानभावयुक्त, निद्रासे मुक्त एवं कालानलके समान शरीरवाले हो इस प्रकार कमलाक्ष, वे ब्रह्मर्षि कृष्णद्वैपायनके पुत्र श्री महर्षि शुकदेवजी महा घोर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ १७ ॥

अथ शुकमुनितपोग्निज्वालामिलाकोपद्रवोत्पत्तिः

तपसा तस्य सन्तप्ता चचाल च वसुन्धरा ॥ १७ ॥ मार्तण्डश्चण्डकिर-
णो न तताप नभोऽन्तरे ॥ अब्धयः क्षुभिताः सर्वे ववर्षुर्न बलाहकाः ॥१८॥
जातवेदा न जज्वाल विमानानि दिवौकसाम् ॥ नभोमध्ये न चेरुश्च बभूवेन्द्र-
श्च शङ्कितः ॥ १९ ॥ वृत्रवैरी महेन्द्रोऽपि किङ्कर्तव्यविमूढधीः ॥ चिन्तयन्न-
स्य तपसो विघ्नमप्सरसस्तदा ॥२०॥ समाहूयाह वचनं सादरं सान्त्वपूर्वकम् ॥

शुकदेवजीकी तपोज्वालासे संसारकी व्याकुलता

तब उनकी तपस्यासे संतप्त होकर समस्त पृथ्वी हिलने लगी। प्रचण्ड किरणवाले सूर्य भी आकाशमें नहीं तपने लगे। सभी समुद्र क्षुब्ध हो गये, मेघमण्डल वर्षा करना छोड दिया। अग्नि जलती तक नहीं, देवताओंके सब विमान आकाश मण्डलमे उठ नहीं सकने, इन्द्र भगवान भयसे भयभीत हो गये। तब वृत्रासुरके शत्रु भगवान महेन्द्र किंकर्त्तव्य विमूढ होकर उनकी तपस्यामें अप्सराओंके द्वारा विघ्न कराना निश्चय अथवा सोच कर रम्भा आदि अप्सराओंको बुला कर आदरके साथ सान्त्वनापूर्वक बोले ॥ २१ ॥

अथ शुकतपोभङ्गाय महेन्द्रोक्तरम्भादिसान्त्ववचनानि

विसृष्टा वेधसा यूयं निसर्गाज्जगतो हिते ॥ २१ ॥ रूपयौवनलावण्य-
शालिन्यः पद्मलोचनाः ॥ मत्तमातङ्गगामिन्यो मन्दमन्थरगीतयः ॥ २२ ॥

सुभ्रुवश्च सुकेशान्ता घनपीनपयोधराः ॥ शुचिस्मिताः पक्वबिम्बाधरोष्ठा मद-
लालसाः ॥ २३ ॥

शुकदेवजीके तपनाशके लिए इन्द्रकी रम्भाआदिओंकी प्रेरणा ।

स्वयं ही संसारके हित करनेके लिये ब्रह्माजीसे आपलोग रूप, यौवन, सौन्दर्य्य तथा शक्तिसम्पन्न, कमलके समान, नेत्रयुक्त मतवाले हाथियोंके समान मन्द मन्द गमन करनेवाली, मन्द मन्द गाती हुई, सुन्दर भ्रुकुटि युक्त, सुन्दर केशपाशों तथा घन पीन स्तनोंवाली, पवित्र हास्ययुक्त, पके बिम्ब फलके समान अधर ओष्ठवाली तथा मद-लालसायुक्त रचे गए ॥ २३॥

युष्माभिर्मोहितं विश्वं ससुरासुरमानुषम् ॥ वीक्षणाद्यैर्विलासैस्तु
निर्जिता मम शत्रवः ॥ २४ ॥ कामिनीः पुरतो दृष्ट्वा कः समाधौ प्रवर्तते ॥
निर्याति मानसं तस्मात्कार्मुकात्सायको यथा ॥ २५ ॥ यूयमापदि सर्वत्र ब-
लमस्माकमेव हि ॥ नाशक्यमस्ति वः किञ्चित् सर्वेषु भुवनेष्वपि ॥ २६ ॥
उपस्थितमिदानीं नः सकलानर्थकं भुवि ॥ कर्त्तव्यः प्रशमस्तस्य भवतीभिर्द्रुति-
त्यपि ॥ २७ ॥ वासवेनैवमुक्तानां प्रधानाऽप्सरसां वरा ॥ प्रणम्य प्राञ्जलिः
प्राह रम्भा मधुरभाषिणी ॥ २८ ॥

आप लोगोंसे सारा ब्रह्माण्ड, सुर असुर मनुष्य प्राणिमात्र मोहित हो जाते हैं। आपके कटाक्षके विलास दर्शन मात्रसे ही मेरे सभी शत्रु विजित हो गये हैं। कामिनियोंको सामने देख कर कौन समाधिमें प्रवृत्त होगा? जैसे धनुषसे बाण वैसे ही उससे मन भागता है। सब जगह आपत्तिमें आप ही लोग हम लोगोंके बल हैं। समस्त भुवनोंमें भी आप लोगोंसे कोई चीज अशक्य नहीं है। संसारके सब अनर्थ हमलोगोंके सामने आ कर उपस्थित हो गये हैं। ये आप ही लोगोंसे बहुत शीघ्र शान्त किये जायं। इन्द्र महाराजके प्रधान अप्सराओंसे ऐसा कहने पर सर्व अप्सराओंमें श्रेष्ठ, मधुर भाषण करनेवाली रम्भा उनको प्रणाम कर अञ्जलिबद्ध हो कर बोली ॥

अथ महेन्द्रनिकटे रम्भादिकृतप्रतिज्ञा

रम्भोवाच

यच्छासासि सुरेशान तदद्य विदधीमहि ॥ भवत्कृते जीवितं नस्त्रिद-
शाध्यक्ष केवलम् ॥ २९ ॥ इत्वेनद्योपं ब्रह्मलोकं कैलासं चान्यमूर्जितम् ॥३०॥
प्रवेक्ष्यामो वयं देशं वर्नन्ते यत्र तेऽरयः ॥ मोहिताश्च भविष्यन्ति तेऽस्मद्वी-
क्षणवीक्षिताः ॥ ३१ ॥ एकाकिनः सदैकान्तभावाः सात्त्विकसत्तमाः ॥ प्रण-

मन्ति स्म नः पादाञ्छिरोभिर्मोहिताः स्वयम् ॥ ३२ ॥ एवमुक्तस्तु देवेश-
स्तया मधुरभाषया ॥ एवमाह स सन्तुष्टो रम्भामप्सरसां वराम् ॥ ३३ ॥

इन्द्रके निकट रम्भाकी प्रतिज्ञा ।

रम्भाने कहा—हे देवराज ! आप जो आज्ञा करेंगे, वह अभी हमलोग करनेको तैयार है । हे अमरराज ! केवल आपके ही लिये हमलोगोंका जीवन है । श्वेतद्वीप, ब्रह्मलोक, कैलास अथवा अन्य दुष्प्रवेश देशोंमें जहां आपके शत्रुगण रहते हैं, हमलोग घुस जायेंगी । हमलोगोंके कटाक्षोंसे देखे जानेपर वे मोहित हो जायंगे । सदा अकेले तथा सदा एकाग्रचित्तवाले परम सात्त्विकगणोंने भी मोहित हो कर हमलोगोंके चरणोंमें मस्तकोंको नमा कर प्रणाम किया है । उस मधुरभाषिणी रम्भासे इस प्रकार कहे जाने पर देवेन्द्र अप्सराओंमें श्रेष्ठ रम्भासे परम प्रसन्न हो कर बोले ॥ ३३ ॥

सत्यमुक्तं त्वया रम्भे मुनिमोहनरूपया ॥ भूमौ कश्चिन्मुनिवरः शुक
इत्येव नामतः ॥ ३४ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे तपश्चरति दुश्चरम् ॥ तत्र गत्वा
मुनिश्रेष्ठं मोहयध्वं वराङ्गनाः ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा देवराजेन प्रेषिताः सादरं
किल ॥ देवस्त्रियस्तं प्रणम्य जग्मुर्यत्र तपोधनः ॥ ३६ ॥

हे रम्भे ! मुनिलोगोंको भी मोहित करनेवाले सुन्दर रूपवाली तुमने सत्य ही कहा है । पृथ्वीपर कोई शुक नाममात्रसे मुनिवर सुवर्णमुखरीके तट पर अत्यन्त कठोर तपस्या कर रहे हैं । हे वराङ्गनागणों ! वहीं जा कर उन मुनि श्रेष्ठको मोहित करो । देवराजसे ऐसा कह कर आदरके साथ भेजी गयी देवस्त्रियां उनको प्रणाम कर जहां तपोधन शुकजी थे, वहीं गयीं ॥ ३६ ॥

अथ शुकतपोवनं प्रत्यागतानां रम्भादीनां शृङ्गारलीलाः

मुनेः समीपतो गत्वा ताः स्त्रियो मधुरं जगुः ॥ मदोद्धताश्च नट्टतु-
र्वेणुवीणारवान्वितम् ॥ ३७ ॥ कन्दर्पदर्पकलिताः कथयन्त्यः कथा मिथः ॥
वदन्ति स्म हसन्ति स्म क्ष्वेलयन्ति मदालसाः ॥ ३८ ॥ स्थित्वा पुरस्तात्त-
स्येत्थं मदान्धाः सुरयोषितः ॥ शृङ्गारचेष्टाश्चक्रुश्च विविधाश्चाटुपूर्वक-
म् ॥ ३९ ॥ इन्द्रप्रचोदितस्तत्र तपनो न तताप च ॥ वायुः कह्लारसुरभिर्व-
वौ मन्दः सुखावहः ॥४०॥ सुधानिधिश्च ववृधे मदयन्सुरसुन्दरीः ॥ कालः
सर्वर्तुकुसुमोपेतस्तत्र बभूव ह ॥४१॥ एवंविधे मधूद्गेमहितेऽस्मिंस्तपोवने ॥
इतस्ततः शम्बरारिर्विशङ्को विचचार ह ॥ ४२ ॥अतश्चानङ्गविवशाश्चेष्टय-

न्त्योऽमराङ्गनाः । ता न शेकुस्तस्य नेत्रे निवर्तयितुमग्रतः ॥ ४३ ॥

रम्भादि अप्सराओंकी शृङ्गारलीला ।

शुकमुनिके पास जा कर उन स्त्रियोंने मधुर गीत गाये। तथा वे मदोन्मत्त हो कर वीणा तथा वासुरीको बजाते हुए खूब नाचीं। कामदेवके दर्प या अहंकारको चूर करनेवाली हो आपसमें बातें करती, बोलती, हँसती, तथा मदसे अलसायी हुई उछलती थीं। उन शुकजीके सामने ही खड़ी हो कर मदान्धभावसे उन सुरस्त्रियोंने अनेक भांतिकी चाटुपूर्ण शृङ्गार चेष्टायें कीं। इन्द्र भगवान्से प्रेरित हो कर सूर्यदेव भी वहां नहीं तपते थे। कल्हार पुष्पोंसे सुगन्धित, शीतल, मंद एवं सुखावह वायु भी बहने लगी। सुरसुन्दरियोंको मदान्ध करते हुए सुधानिधि चन्द्रदेव भी बढ़ने लगे। वह समय सब ऋतुओंके सभी फूलोंसे परिपूर्ण हो गया। इस प्रकार वसन्तके उल्लासोंसे भरे हुए इस तपोवनमें कामदेव निर्भय हो इधर-उधर घूमने लगे। कामावेशसे वशीभूत होकर अनेक प्रकारके लीला विनोद करने पर भी वे देवकामिनियां उन (शुकजी) के नेत्रोंको आगेसे अपनी ओर खींच न सकीं॥ ४३॥

सोऽपि ध्यायञ्छ्रीनिवासं शङ्खार्यब्जगदाधरम् ॥ वासुदेवं हृषीकेशं जगतां कारणं परम् ॥ ४४॥ समाश्रितार्तिहरणं सुहृदं सर्वदेहिनाम् ॥ नाचिन्तयचान्तिकस्थास्ताः स्त्रियस्तपसैधितः ॥ ४५ ॥ समीक्ष्य तास्तं दुर्धर्षमूचुरप्सरसस्तदा ॥ लज्जाक्रोधसमाविष्टाश्चैवमूचुः परस्परम् ॥ ४६ ॥

श्रीनिवास, शंख, चक्र, गदा एवं पद्मधारी, वासुदेव, हृषीकेश, संसारके कारण, परमात्मा, सभी आश्रितोंके दुःखको हटानेवाले, सभी देहधारियोंके सुहृद, परमेश्वर भगवान्को ध्यान करते एवं तपस्यासे बढ़ते हुए उन शुकजीने निकटस्थ उन स्त्रियोंकी चिन्ता तक नहीं की। तब उन दुर्धर्ष ऋषीश्वरको देखकर वे अप्सराएं लज्जा और क्रोधसे आविष्ट हो कर इस प्रकार आपसमें बोलीं॥ ४६ ॥

अथ श्रीनिवासध्यानेन जितकामं शुकं प्रति रम्भादिहासोक्तिः

को वा इहास्ते दुर्बुद्धिः घ्राणे निक्षिप्तवीक्षणः ॥ उपस्थितमुपेक्ष्येमं गणमप्सरसां स्वयम् ॥ ४७ ॥ समीपस्थमसम्प्रेक्ष्य सर्वस्य तपसः फलम् ॥ दुरात्मनातिमूढेनामुत्र किं चिन्त्यतेऽधुना ॥ ४८ ॥ दृष्ट्वा मुखान्यप्सरसां सहस्राक्षः शचीपतिः ॥ सुराधीशः सहस्राक्ष्णां साफल्यं सम्यगश्नुते ॥४९॥ यागादिकाः क्रियाः सर्वाः कुर्वन्त्यस्मत्कृते नराः ॥ ददुश्च धनधान्यानि तप्यन्ति स्म तपांसि च ॥ ५० ॥ यस्त्वस्माकं प्रियालापान्न शृणोति मनोरमान् ॥ अचेतनो वृथाजीवो भवत्यल्पमतिः स हि ॥ ५१॥

स्तनाऽऽश्लेषं नरोऽस्माकं लभते यः सुदुर्लभम् ॥ स धन्यः पुरुषो लोके गण्यते पुण्यकोविदैः ॥ ५२ ॥

रम्भादिका शुकदेवजीसे हासोक्ति ।

यहां सूर्य्यपर नजर लगाये यह कौन मूर्ख स्वयं आयी हुई अप्सरागणोंकी भी उपेक्षा कर बैठा है? यह अति मूढ दुरात्मा सभी तपस्याओंके फलस्वरूप इन हम समीपस्थोंको नहीं देख कर यहां अभी क्या चिन्तन कर रहा है? हजार नेत्रवाले शचीपति, देवराज देवेन्द्र भी इन अप्सराओंके सुन्दर मुख देख कर अपने हजार नेत्रोंका भी स्वल्प ही साफल्य समझते हैं। मनुष्य यज्ञादि सभी क्रियाओं, धनधान्यदान, एवं तपस्या भी इन्हींके लिये करते हैं। जो जड़ या अल्पबुद्धि पुरुष हमलोगोंका मनोहर परम प्रिय आलाप नहीं सुनते, वे व्यर्थजीवी ही हैं। जो पुरुष हमलोगोंके सुदुर्लभ स्तनोंका आलिङ्गन पाता है वही पुण्यवेत्ताओंसे इस लोकमें धन्य धन्य गिना जाता है ॥५२॥

विद्यानामर्जनं बाल्ये यौवने विषयैषिता ॥ वृद्धत्वे तपसां वृत्तिरित्युशन्ति मनीषिणः ॥ ५३ ॥ सुकुमारो युवाऽत्यन्तं सुभगस्तपसि स्थितः ॥ शृङ्गारिणीनां शृङ्गारः सुन्दरीजनसुन्दरः ॥५४॥ देशकालावतिक्रम्य यत्कर्म कुरुते नरः ॥ तत्तस्य निष्फलमिति प्रवदन्ति मनीषिणः ॥५५॥ स्वधर्माचारनिरता वेदशास्त्रविशारदाः ॥ करस्थरत्नमुत्सृज्य मूढधीरन्यदिच्छति ॥५६॥ दिव्याङ्गनाः पूजनीया मनुष्याणां विशेषतः ॥ अयमस्माननादृत्य तिष्ठत्यत्यन्तदुर्मतिः ॥ ५७ ॥ पूज्यपूजाविपर्यासः श्रेयो हन्तीत्युशन्ति हि ॥

विद्वानोंका वचन है कि बाल्यकालमें विद्योपार्जन, युवावस्थामें विषयोंका भोग करना तथा बुढापेमें तपस्वीकी वृत्ति धारण करना ही मनुष्योंका कर्तव्य है। सुकुमार, अत्यन्त युवा, सौन्दर्य्यसम्पन्न, शृङ्गारिणी कामनियोंका शृङ्गाररूप एवं सुन्दरी नारियोंके सुन्दर यह पुरुष तपस्यामें संलग्न है। देश, काल दोनोंको अतिक्रमण करके जो कोई भी काम करे तो, उसका वह सभी कुछ किया निष्फल हो जाता है, ऐसा, अपने धर्माचरणमें निरत, तथा वेदशास्त्रोंके विशारद विद्वान कहते हैं। मूढबुद्धिवाले ही हाथोंमें आयी हुई वस्तुको भी छोड़ कर दूसरी चीजकी चिन्ता करते हैं। किन्तु यह अत्यन्त दुर्मतिवाला खास कर मनुष्योंसे विशेषरूपसे पूजनीय हमलोग दिव्याङ्गनाओंको भी अनादर करके बैठा हुआ है। पूज्य लोगोंकी पूजाका अतिक्रमण करना अपने हितका नाश करता है ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं।

अथ रम्भादिदुर्व्यापारान्विलोक्य शुकब्रह्मर्ष्यनुतापः

तास्त्वित्थं जल्पमानासु सुरयोषित्सु सुव्रतः ॥५८॥ तपःकृशनराकारः

कृष्णद्वैपायनात्मजः ॥ नाचिन्तयत्समस्तास्ता घुष्यन्तीरिव गर्दभीः ॥५९॥ उपस्थितं तपोविघ्नं चिन्तयामास च स्थिरः ॥ केनेमाः प्रेषिताः ह्यस्मत्तपोभङ्गचिकीर्षुणा ॥ ६० ॥ अव्याजवैरिणा किञ्चिल्लोभोपहतचेतसा ॥ निदानं पापचेष्टानां पापीयस्यः स्वतः स्त्रियः ॥ ६१ ॥ अनेकानर्थसार्थास्ता व्यक्तमुक्ता मनीषिभिः ॥ व्रीडा विज्ञानमास्तिक्यं पौरुषं श्रुतिरुन्नतिः ॥ ६२ ॥ दर्शनादेव नश्यन्ति स्त्रीणामेतानि सर्वशः ॥ धैर्यं परं गतः सर्वधर्मशास्त्रविशारदः ॥ ६३ ॥ योषिद्दर्शनमात्रेण मुह्यति क्षुभ्यति स्वयम् ॥ स्त्रियो हि नरकद्वारं निर्मितं परमेष्ठिना ॥ ६४ ॥ तस्मात्तद्दर्शनं पापं नराणां तु तपस्विनाम् ॥

रम्भादिकोंका दुर्व्यवहार देख कर ब्रह्मर्षि शुकका अनुताप ।

उन देवस्त्रियोंके ऐसा कहने पर भी तपस्यासे कृशशरीरवाले श्रीकृष्णद्वैपायनके पुत्र श्री ब्रह्मर्षि शुकदेवजी उन सबोंका रेंकनी गदहियोंके समान ख्याल नहीं किया और अपनी तपस्यामें विघ्न उपस्थित देख स्थिर हो कर सोचने लगे—कि हमारी तपस्या भंग करनेकी इच्छावाला अव्याज वैरी एवं लोभके वशीभूत किसके द्वारा ये भेजी गई हैं। पापिनी स्त्रियां ही अपनी पापचेष्टाओंका मूल कारण हैं। बुद्धिमानोंसे ये अनेकों अनर्थोंको समूहरूप बतायी गयी हैं। ये स्त्रियां लज्जा, विज्ञान, आस्तिक्य, पौरुष, श्रुति, उन्नति आदि सब गुणका केवल देखनेसे ही सर्वनाश कर देती हैं। पूर्ण साहस वा धैर्यको प्राप्त किया हुआ तथा सभी धर्मशास्त्रोंमें परम पण्डित पुरुष भी स्त्रियोंके दर्शनमात्रसे ही स्वयं मोहित तथा क्षुब्ध हो जाता है। स्त्रियां ही सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीसे नरकके द्वार बनायी गयी हैं। इसी कारण तपस्या करनेवाले मनुष्योंको उनका दर्शन करनेमें पाप है ॥ ६५ ॥

स्त्रीपुंविभागो जगतां भूत्यै धात्रा विनिर्मितः ॥ ६५ ॥ तेन प्रवर्तते लोकः पुरुषार्थात्मकेन तु ॥ अज्ञानिनो नरा मुह्यन्त्यन्योन्यप्रणयादिह ॥६६॥ पुरुषाश्च स्त्रियो दृष्ट्वा ताश्च दृष्ट्वा च तास्तथा ॥ तितीर्षुस्तपसाज्ञानमयं संसारसागरम् ॥६७॥ निवृत्तविषयोऽत्रैव स्थितोऽस्मिन् विजने वने ॥ विधिनापादितश्चायमन्तरायस्तपसो मम ॥ ६८ ॥ स्त्रियस्तपोविघ्नकर्त्र्यः परिहार्याः प्रयत्नतः ॥ नितीर्षुं दुस्तरं घोरं महासंसारसागरम् ॥६९॥ गृह्णाति विषयग्राहो मध्ये पुरुषमित्युत ॥ तपोलोपभयादित्थं चिन्तयन् सहसा मुनिः ॥७०॥ समदर्शी तु सर्वत्र जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥ कन्दर्पमायकान् घोरान्स्त्रियाऽस्त्रो-

भ्यो हि निर्ममः ॥ ७१ ॥ श्रीनिवासं हृषीकेशं सहसा शरणं ययौ ॥७२॥

संसारके हितके लिये स्त्री तथा पुरुषका विभाग विधाताके द्वारा बनाया गया है और उसी पुरुषार्थरूपसे संसार चलता है। अज्ञानी मनुष्य आपसमें ही अन्योन्यका प्रेम कर ही मोहित हो जाते हैं। पुरुष स्त्रियोंको देख कर तथा स्त्रियां पुरुषको देख कर मोहित हो जाती हैं। अज्ञानमय संसारसागरको तपस्यासे पार करनेके लिये मैं विषयोंसे निवृत्त हो कर इस जनहीन जंगलमें ठहरा हूं। अब दैवसे ही मेरी तपस्यामें विघ्न किया गया है। तपस्यामें विघ्नकारिणी इन स्त्रियोंको प्रयत्नसे रोकना चाहिये। परम दुस्तर एवं महा घोर संसाररूप सागरको पार करनेवाले पुरुषोंको विषयरूप महाघोर ग्राह बीच ही में पकड़ लेता है। इस प्रकार सोचते हुए, समदर्शी, परम कृपालु, क्रोधपर विजय पाये हुए, जितेन्द्रिय, कामदेवके घोर बाणोंको ही विजय किए, अक्षोभ्य तथा ममतारहित, ब्रह्मर्षि श्रीशुकजीने तपस्याके नाशके भयसे श्रीनिवास हृषीकेश भगवानके शरण सहसा अवलम्बन किया ॥ ७२ ॥

कमलचिभवलोभनैरनङ्गाभिनवविभूतिविभागभागधेयैः ॥ अधरितमुनिमानसानुभावैरवमतिमाकलयन्विलोकनैश्च ॥ ७३ ॥ शिखरदशनदीधितिप्रतानप्रसभनिरस्ततमश्छटैः प्रहासैः ॥ नटनविकटविभ्रमैश्चिक्षेपन्नयनविलासभरैस्तपोऽन्तरायम् ॥ ७४ ॥ इति विबुधविलासिनीगणस्तं मुनिमभितः परिवार्य चावतस्थे ॥ व्यवसितमतिरच्युतप्रपत्तौ स च न शशाप तपोविनाशभीरुः ॥ ७५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शनसंवादे पद्मसरस्तीरस्थदिव्यारामे शुकब्रह्मर्षेर्महानियमपूर्वकतपः स्मरणादिवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायोऽत्र द्वितीयः ॥ २ ॥

कमल विभवको भी लोभन करनेवाले, कामदेवके नया विभूतिविभागके भागधेयरूप, तथा मुनिजीके मानसको चञ्चल करनेवाले दर्शनोंसे अवज्ञा प्रचारित करती हुई, एवं ऊंचे भागके दांतोंके प्रकाशके प्रस्तारसे घोरान्धकारको हठात् हटा देनेवाले शुभोज्ज्वल, हांसों, नाट्यकलाके विकट विभ्रमों तथा नयनविलासों से तपस्यामें विघ्न करती हुई देवरमणियां इस प्रकार उन मुनिजीको चारो ओर घेर कर खड़ी हो गयीं ॥ निष्ठावान्, एवं श्रीभगवानमें आसक्त-चित्त मुनिश्रेष्ठने भी अपनी तपस्याके नाशके भयसे भीरु हो कर उसे श्राप नहीं दिया।

इति द्वितीयोऽध्यायः।

तृतीयोऽध्यायः



रम्भासे डरि शुक ऋषि, स्तुति विनती भगवान ।
मुनि प्रभु कृपा प्रभावफल, दृढ़ उपासना ध्यान ॥१॥
मध्य तेज सौन्दर्य्य वपु, श्री प्रभु प्रादुर्भाव ।
मुक्ति लाभ ब्रह्मर्षिका, श्री परमेश्वर प्रभाव ॥२॥

श्रीनिवासमुद्दिश्य रम्भाद्यप्सरःसङ्घभीतशुकस्तुतिः

अथ विबुधविलासिनीषु विष्वङ् मुनिमभितः परिवार्य तस्थुषीषु ॥ मदविकृतिविकत्थनप्रलापास्वमतिनिर्मितनैजचापलासु ॥ १ ॥ त्रिभुवनमुदमुद्यतासु कर्तुं मधुमहसा गतिगर्वनिर्वहासु ॥ मधुरसभरिताखिलात्मभावास्वगणितभीतिषु शापतः शुकस्य ॥ २ ॥ अतिविमलमतिर्महानुभावो मुनिरपि शान्तमना निजात्मगुप्त्यै ॥ अखिलभुवनरक्षकस्य विष्णोः स्तुतिमथ कर्तुमना मनाग्बभूव ॥ ३ ॥

श्रीनिवासके प्रति शुकजीकी स्तुति

कामदके विकारोंसे गाली, प्रलाप इत्यादि करनेवाली, अपने चञ्चल स्वरूपको प्रकट करती हुई, त्रिभुवनको आनन्दित करनेमें उद्यत, वसंतके एकाएक मिलनेसे विशेष गर्ववाली, उल्लासोंसे सम्पूर्ण भावसे भरी, निज भाववाली एवं शुकदेवजीके शापके भयको तृणवत् समझनेवाली देवरमणियोंके मुनिके चतुर्दिक घिर कर ठहरे होने पर भी अत्यन्त निर्मल चित्तवाले, महानुभाव शुकजी शान्तमना हो, अपनी आत्माकी रक्षाके लिये अखिलभुवनकी रक्षा करनेवाले श्रीविष्णुकी स्तुति करनेको उद्यत हुए ॥ ३ ॥

श्रियः श्रियं षड्गुणपूरपूर्णं श्रीवत्सचिह्नं पुरुषं पुराणम् ॥ श्रीकण्ठपूर्वामरवृन्दवन्द्यं श्रियः पतिं तं शरणं प्रपद्ये॥४॥विभुं हृदिस्थं भुवनेशमीड्यं निराश्रयं निर्मलचित्तचिन्त्यम् ॥ परात्परं पारमपारमेनमुपेन्द्रमूर्त्तिं शरणं



अथ त्रिदशविलासिनीषु विफलं मुनिमभितः परिवार्य तस्थुषीषु ।
अतिविमलमतिर्महानुभावो मुनिरपि शान्तमना निजार्तिगुप्त्यै ॥
अखिलभुवनरक्षकस्य विष्णोः स्तुतिमथ कर्तुमना मनाग्बभूव (पृष्ठ २०)

प्रपद्ये ॥ ५ स्मेरातसीसूनसमानकान्तिं सुरक्तपद्मप्रभपादहस्तम् ॥ उन्निद्र-
पङ्केरुहचारुनेत्रं पवित्रपाणिं शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥ सहस्रभानुप्रतिमोपलौघ-
स्फुरत्किरीटप्रवरोत्तमाङ्गम् ॥ प्रवालमुक्तानवरत्नतारहारं हरिं तं शरणं
प्रपद्ये ॥ ७ ॥

मैं श्री लक्ष्मीजीको लक्ष्मीरूप, छ गुणोंसे पूर्ण, श्रीवत्सचिन्हयुक्त, परम पुरुष, महादेवआदिदेवताओंसे वन्दनीय, श्रीलक्ष्मीजीके पति भगवान्का शरण पाऊं। हृदयस्थ, संसारके स्वामी, पूजनीय, विभु, निराश्रय, निर्मल-चित्तसे चिन्तनीय, परात्पर, अपरिमेय, अपार, उन उपेन्द्र (वामन) मूर्ति भगवानका शरण पाऊं। सुन्दर प्रफुल्ल अलसीपुष्पके समान कान्तिवाले, लाल कमलके समान प्रभायुक्त चरण तथा करवाले, खिले हुए सुन्दर कमलके समान सुन्दर नेत्रवाले, पवित्र हाथवाले श्री भगवान्का शरण पाऊं। हजारों सूर्य्यके समान चमकवाली मणियोंसे जगमगाता प्रवर किरीटयुक्त मस्तकवाले, मूंगा, मोती एवं नवरत्नकी तारोंके हारधारी, उन्ही हरि भगवानका शरण पाऊं ॥ ७ ॥

शुकब्रह्मर्षिकृतदशावतारस्तोत्रम्

पुरा रजोदुष्टधियो विधातुरपाकृतान् यो मधुकैटभाभ्याम् ॥ वेदानुपा-
दाय ददौ च तस्मै तं मत्स्यरूपं शरणं प्रपद्ये ॥ ८ ॥ पयोधिमध्ये पृथुमन्द-
राद्रिं धर्त्तुं च यः कूर्मवपुर्बभूव ॥ सुधां सुराणामवनार्थमिच्छंस्तमादिदेवं
शरणं प्रपद्ये ॥ ९ ॥ वसुन्धरां दुर्भरदैत्यपीडितां रसातलान्तर्विवराभिविष्टा-
म् ॥ उद्धारणार्थं च वराह आसीच्चतुर्भुजं तं शरणं प्रपद्ये ॥ १० ॥ नखैरु-
रस्तीक्ष्णमुखैर्हिरण्यमरातिमामर्दितसर्वसत्त्वम् ॥ विदारयामास हि यो नृ-
सिंहो हिरण्यगर्भं शरणं प्रपद्ये ॥ ११ ॥ यो यज्ञवाटीमभिगम्य पूर्वं बलेर्य-
याचे त्रिपदीं भुवश्च ॥ पश्चाद्ददौ तत्पदमेव तस्मै श्रीवामनं तं शरणं प्रप-
द्ये ॥ १२ ॥

जिन्होंने प्राचीन कालमें शत्रुओंको नाश कर मधु एवं कैटभ नामक महासुरोंके द्वारा रजोगुणसे दुषित मन-वाले ब्रह्माजीसे पकड़ लिये गये हुए सब वेदोंको असुरोंसे लेकर ब्रह्माजीको दिया, उन्हीं मत्स्यरूप भगवानका शरण पाऊं। जिन्होंने समुद्रमें विशाल मन्दर पर्वतको धारण कर देवताओंके लिये अमृत लानेकी इच्छासे कूर्मका शरीर धारण किया, उन्हीं देवादिदेव भगवान्का शरण पाऊं। अदम्य दुष्ट दैत्योंसे पीडिता रसातलके गह्वरमें घुसायी पृथ्वीको उद्धार करनेके लिये जो वराह हुए, उन्ही चतुर्भुज भगवान्का शरण पाऊं। जिन्होंने तीक्ष्ण तीक्ष्ण मुखवाले नखोंसे परम शत्रु हिरण्यकशिपुके सम्पूर्ण बलको मर्दन कर फाड़ डाला, उन्हीं हिरण्यगर्भ नृसिंह भगवान्का शरण पाऊं।

जिन्होंने यज्ञशालामें जा कर चक्रवर्ती बलिसे भूमिके तीन पग याचना की, और पीछे उनको अपने निर्वाण पदको भी दिया उन्हीं वामन भगवान्का शरण पाऊं ॥ १२ ॥

त्रिः सप्तकृत्वः क्षितिपाललोकं परश्वधेनापि निहत्य पित्रे ॥ ददौ निवापं तदसृग्जलौघैस्तं भार्गवं राममहं प्रपद्ये ॥१३ ॥ दशाननं दाशरथिः स भूपश्छित्त्वा शिरांस्येकशरेण वीरः ॥ लङ्कां ददौ यश्च विभीषणाय तं रामभद्रं शरणं प्रपद्ये ॥ १४ ॥ हलायुधो यो यदुवंशदीपः प्रलम्बपूर्वापरवैरिहन्ता ॥ अस्त्रहृदान्यो बलभद्ररामो विराट् परं तं शरणं प्रपद्ये ॥ १५ ॥ वृष्ण्यन्ववायप्रभवं धरित्रीभारापहारप्रथितप्रभावम् ॥ कृष्णं परं पाण्डवभागधेयं योगीन्द्रवन्द्यं शरणं प्रपद्ये ॥ १६ ॥ कलिं स्वतः कल्मषदुष्प्रधर्षं कलानुविद्धं विकरालवेषम् ॥ संहर्तुकामो भविता च कल्की यस्तं मुकुन्दं शरणं प्रपद्ये ॥ १७ ॥

जिन्होंने राजाओंको इक्कीस वार फरसेसे मार कर अपने पिताका उनकी रक्तधारासे तर्पण किया, उन्हीं भृगुवंशी परशुराम भगवान्का शरण पाऊं । जिन्होंने दशरथ पुत्र हो कर दशानन रावणके मस्तकोंको एक ही बाणसे काट कर विभीषणको लङ्का दी, उन्हीं श्री रामचन्द्र भगवानका शरण पाऊं । जो यदुवंश के दीपक, हलायुध देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले एवं आजानुबाहु श्रीबलभद्र रामनामसे प्रसिद्ध हुए, उन्हीं विराट श्री बलराम भगवान्का शरण पाऊं । वृष्णिवंशीय, परमप्रतापी, पृथ्वीके भारको हटानेवाले, प्रसिद्ध प्रभावयुक्त, पाण्डवोंके भागधेय, योगियोंसे वन्दनीय, परमप्रभु श्रीकृष्णभगवानका शरण पाऊं । कलियुगके कल्मषादिसे दुर्धर्ष पापोंको नाश करनेवाले, स्वयं कलिरूप, कलामें प्रवीण, कराल वेषधारी जिन्होंने संहार करनेकी कामनासे कल्कीरूप धारण किया, परम मुकुन्द भगवानका शरण पाऊं ॥ १७ ॥

अहम्महच्चेन्द्रियपञ्चभूततन्मात्रमात्राः प्रकृतेः पुराणि ॥ यतः प्रसूताः पुरुषस्तदात्मा तमात्मनाथं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥ पुरा य एतत्सकलं बभूव येनापि तदत्र च लीनमेतत् ॥ आस्तां यतोऽनुग्रहनिग्रहौ च तं श्रीनिवासं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥ निरामयं निश्चलनीरराशिचिदाकाशसद्रूपमयं महस्तत् ॥ नियन्तृनिर्मातृनिहन्तृनित्यं निदानमेकं शरणं प्रपद्ये ॥ २० ॥ जगन्ति यः स्थावरजङ्गमानि संहृत्य सर्वाण्युदरेशयानि ॥ एकार्णवान्तर्वटपत्रतल्पे स्वपित्यनन्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ निरस्तदुःखौघममीन्द्रियं तं

निष्कारणं निष्कलमप्रमेयम् ॥ अणोरणीयांसमनन्तमन्तरात्मानुभावं शरणं प्रपद्ये ॥ २२ ॥

अहंतत्त्व महत्तत्त्व दशेन्द्रिय, पञ्चभूत, तन्मात्रा, इत्यादि प्रकृतिके कार्य जिनसे उत्पन्न हुए और जो सबोंके आत्मस्वरूप है, उन्हीं आत्मनाथ भगवानका शरण पाउं । प्राचीन कालमे जो सर्वस्वरूप हुए, जिनसे सभी जगत् लीन हो गया, जिनसे अनुग्रह तथा निग्रह या शासन दोनों ही होने हैं, उन्हीं श्रीनिवास भगवानका शरण पाऊं । जो निरामय, निश्चल, समुद्रके समान विकासपूर्ण, सद्रूपमय, नियामक, निर्माता, संसारकर्ता, नित्य तथा निद्रामय हैं, उन्हीं एक तेजोरूप भगवानका शरण पाऊं । जो संसारके सभी स्थावरों तथा जंगमोंको उदरमे समेट कर एकीभूत महासागरके बीच बडके पत्तेके बिछौने पर सोते हैं, उन्हीं अनन्त भगवानका शरण पाऊं । दु:खसंयोंसे परे, अतीन्द्रिय, कारणरहित, निष्कल, अपरिमेय, अणुपरमाणुमे भी समरूप, अनन्त तथा अन्तरात्माके अनुभावपूर्ण हैं, उन्हीं व्यापक भगवानका शरण पाऊं ॥ २२ ॥

सप्ताम्बुजीरञ्जकराजहंसं सप्तार्णवीसंसृतिकर्णधारम् ॥ सप्ताश्वबिम्बस्थहिरण्मयं तं सप्तार्चिरङ्गं शरणं प्रपद्ये ॥ २३ ॥ निरागसं निर्मलपूर्णबिम्बनिशीथिनीनाथनिभाननाभम् ॥ निर्णीतनीतिं निगमान्तनित्यनिःश्रेयसं तं शरणं प्रपद्ये ॥ २४ ॥ द्वितीयहीनं रचिताजडात्मनिजान्तरारोपितविश्वविश्वम् ॥ निःसीमकल्याणगुणात्मभूतं निधिं निधीनां शरणं प्रपद्ये ॥२५॥

सातों प्रकारके कमलोंको विकसित करनेवाले सूर्यरूप सातों महासगरमे संसार करनेवाला कर्णधार रूप, सूर्य बिम्बपर स्थित सुवर्णमय परमात्मरूप उन अग्निशरीर भगवानका शरण पाऊं । निर्दोष, निष्कलङ्क, पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाले, न्यायाधीश, उपनिषत्प्रतिपाद्य नित्यसुखस्वरूप उन भगवानका शरण पाऊं । दूसरेसे हीन अर्थात् अद्वितीय, तथा बनाये हुए सारे विश्वब्रह्माण्डको अपने ही अन्दर रखे हुए, असीम कल्याणगुणोंवाले निधियोंके भी निधि, आत्मरूप परमेश्वरका शरण पाऊं ॥ २५ ॥

अथ श्रीनिवासमुद्दिश्य शुकब्रह्मर्षिप्रार्थना

त्वक्चर्ममांसास्थ्यसृगश्रुमूत्रश्लेष्मान्त्रविट्छुक्रसमुच्चयेषु ॥ देहेष्वसारेषु न मे स्पृहेषु ध्रुवं ध्रुवं त्वं भगवन् प्रसीद ॥ २६ ॥ कारुण्यपाथोनिधिवल्गदूर्मिमालालसच्छैवलकज्जलाक्तैः ॥ राजीवराजीरमणेरपाङ्गैरनाथमानन्दय नाकनाथ ॥२७॥ भक्तिः क मे त्वच्चरणारविन्दन्मधूद्गमायन्महिमाप्यनन्या ॥ बुद्धिः क दुष्टेन्द्रियवाजिरूढा नैकत्र तेजस्तिमिरस्थितिर्हि ॥ २८ ॥

न विद्यते त्वत्पदपद्मपीठनिषेविणां क्वाप्यशुभं नराणाम् ॥ उपस्थितं मे भयमुत्पलाक्षीविलोकनैर्लोपय लोकनाथ ॥ २९ ॥ समाधिभङ्गोऽयमिह प्रवृत्तो दुरात्मना केन दुरन्तचित्तः ॥ त्वमेव मां रक्ष भयादमुष्मात्त्वदन्यतो नास्ति गतिर्मुकुन्द ॥ ३० ॥

अथ श्रीनिवासकी शुकब्रह्मर्षि कृत प्रार्थना

त्वचा, चर्म, मांस, हड्डी, रक्त, अश्रु, मूत्र, कफ, अन्तड़ी, मैला वा पुरीष, वीर्य आदिके संघटना युक्त असार इन शरीरोंमें मुझको इच्छा ही नहीं है, यह सत्य है ! सत्य है !! हे भगवन ! आप प्रसन्न होवें। हे स्वर्गके स्वामी ! करुणासागरकी तरंगमालाके शैवालरूप कज्जलसे युक्त, चमकते हुए कमलसमूहके समान अपाङ्गोंके साथ, मुझ अनाथको आनन्दित करें। आपके चरणकमलके मधुरसको बढ़ानेवाली महिमा युक्त अनन्यभक्ति कहां ? एवं मेरी दुष्ट इन्द्रियरूप तेज घोड़ेपर सवार बुद्धि कहां ? प्रकाश तथा अन्धकार दोनोंकी स्थिति एकत्र कभी नहीं हो सकती है। आपके चरणकमलोंमें मन लगानेवाले मनुष्योंका कहीं भी अशुभ नहीं होता। अतः हे लोकनाथ मेरे इस कमलाक्षियोंके दर्शनसे उत्पन्न भयको नाश करो। यहां किसी दुरात्माके द्वारा चित्तको चञ्चल बनानेवाला समाधिनाश प्रवृत्त हुआ है। हे मुकुन्द भगवन्! आप इस भयसे मेरी रक्षा करें, आपको छोड़ दूसरा कोई मेरी गति नहीं है ॥३०॥

अनाथनाथ धिषणा मम त्वय्येव वर्तते ॥ सर्वदा सर्वकालेषु तदास्तां त्वत्प्रसादतः ॥ ३१ ॥ प्रसन्ने त्वयि गोविन्देऽलभ्यं सर्वत्र किं प्रभो ॥ स्वर्गापवर्गौ भगवंस्त्वद्भक्तानामदुर्लभौ ॥ ३२ ॥ भवता वीक्ष्यते यस्तु तस्य त्वद्भक्तिरूर्जिता ॥ उपेक्ष्यते तु यस्तस्य भोगेच्छा चाभिजायते ॥ ३३ ॥ अतः शृङ्गारयोग्यस्त्रीभयविह्वलमद्य माम् ॥ रक्ष त्वमेव शरणमनन्यशरणो मतः ॥ ३४ ॥ नमः सकलकल्याणकारिणे करुणात्मने ॥ श्रीवत्सवक्षसे तस्मै लक्ष्मीनारायणात्मने ॥ ३५ ॥

हे अनाथोंके नाथ ! मेरी बुद्धि आपमें ही लगी रहती है। वह सर्वदा वैसे ही रहे। हे प्रभो ! आपके प्रसन्न हो जाने पर सभी स्थानोंमें क्या अलभ्य है ? हे भगवन ! आपके भक्तोंको स्वर्ग तथा अपवर्ग दोनों भी दुर्लभ नहीं हैं। जो आपसे देखा जाता है, आपके प्रति उसकी भक्ति बढ़ती है, और आपसे जो उपेक्षा किया जाता है उसको भोग करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। अतः मैं शृङ्गारके योग्य स्त्रियोंके भयसे विह्वल हूं, मुझको आप ही रक्षा करें, दूसरी गति न पा कर आपके ही शरणमें आया हूं। सकल कल्याणको करनेवाले, करुणारूप, श्रीवत्सचिह्नितवक्षस्थलवाले आप उन्हीं लक्ष्मीनारायणको नमस्कार है ॥ ३५ ॥

अथ रम्भादीनां स्वलावण्यनिन्दापूर्वकं यथागतं गमनम्

पाराशरौ ब्रह्ममुनौ पुराणं पुमांसमित्थं शरणं प्रपन्ने ॥ ३६ ॥ देवस्त्रियः कामशरेण विद्धा यथागतं क्षोणधियः प्रतीयुः ॥ ३७ ॥ अथ सुरवनिताभिरीक्षणाद्यैर्निजविकृतैरगृहीतचित्तवृत्तिः ॥ विधुरिव तमसा गृहीतमुक्तो मुनिरपि निश्चलधीस्तपःप्रसन्नः ॥ ३८ ॥ फलान्यलभमानासु तपोभङ्गे महामुनेः ॥ रूपवेषाभ्यसूयासु निर्गतास्वप्सरस्स्वितः ॥३९॥

रम्भादि स्त्रियोंको अपने लावण्यका निन्दा करते करते लौटना।

पाराशरात्मज श्रीब्रह्मर्षि शुकदेवजीके इस प्रकार पुराण पुरुषोत्तम भगवानके शरणमें आ जाने पर कामदेवके बाणसे ताडित देवस्त्रियां हतप्रज्ञ हो कर जहांसे आयी थीं वहीं लौट गयीं। अपनी चित्तवृत्तिको चञ्चल तथा विकृत करनेवाले सुरस्त्रियोंके दर्शनसे वश नहीं किये हुए मुनि भी, उनके तपोभंगमें असफल हो कर वहांसे अपनी रूप, वेष, भूषा आदिसे ईर्ष्या करती हुई उन स्त्रियोंके लौट जाने पर, राहुसे ग्रस्त हो कर मुक्त हुए चन्द्रमाके समान निश्चल अथवा स्थिरचित्तसे तपस्यासे प्रसन्न हो गये ॥ ३९ ॥

अथ भगवत्कृपया शुककृतदृढतरभक्तिपूर्वकभगवदुपासनम्

ततः स्मरन् भगवतो हृषीकेशस्य शार्ङ्गिणः ॥ इन्द्रियग्राममखिलं संयम्यास्मै समर्पयन्॥४०॥परां काष्ठां समाकाङ्क्षन् काष्ठाश्मसमकायकः॥ अतितापसचारित्रं कुर्वन्नङ्गुष्ठभूमिगः ॥ ४१ ॥ भवाविभञ्जनपरं भक्तवत्सलमव्ययम् ॥ हृत्पुण्डरीकनिलयं चिन्तयन् पुष्करेक्षणम् ॥ ४२ ॥ विज्ञानवैराग्यनिधिः कार्ष्णद्वैपायनिर्मुनिः ॥ अतिघोरतरं क्रूरं चकार सुमहत्तपः ॥ ४३ ॥

भगवानकी कृपासे शुककी दृढभक्तिपूर्वक भगवदुपासना।

तत्पश्चात् शार्ङ्गधारी हृषीकेश भगवानका स्मरण करते हुए, अपने समस्त इन्द्रियोंको संयम कर उन्हींको समर्पण करते हुए तथा पराकाष्ठाको पानेकी आकांक्षासे काठ अथवा पत्थरके समान शरीर युक्त, अत्यन्त घोर तपस्वी चरित्रका अङ्गुष्ठमात्र पृथ्वी पर रख कर अनुकरण करते हुए तथा संसारके संहारकर्त्ता, भक्तवत्सल, अक्षय एवं हृदय-कमलमें विराजनेवाले कमलनयन भगवानका चिन्तन करते हुए, विज्ञान और वैराग्यके निधान श्रीकृष्ण द्वैपायनके पुत्र शुकदेव मुनिजीने महा घोर तपस्या की ॥ ४३ ॥

अथ शुकमुनिं प्रति तपस्तुष्टश्रीनिवासागमनम्।

संहर्ता रक्षिता स्रष्टा भुवनानि चतुर्दश ॥अनुग्रहीतान्तर्यामी निग्र-

होता निरन्तरः ॥ ४५ ॥ शङ्खचक्रगदाम्भोजराजत्करचतुष्टयः ॥ मुक्तातपत्रितानन्तसहस्रफणमण्डलः ॥ ४६ ॥ नवैरभिनवाकल्पैस्तपनीयमयांशुकैः ॥ सुमनोभिर्दिव्यगन्धैर्दिव्यालेपनचन्दनैः ॥ ४७ ॥ अलङ्कृताङ्गमहिमा स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ मकरन्दस्रवत्पद्मप्रभावगुणवीक्षणः ॥ ४८ ॥ आपादचूडमाधुर्यमहिमा महतो महान् ॥ सेवाविशारदैः सार्धं गणैस्तु कुमुदादिभिः ॥४९ ॥ विचित्रहेतिहस्तेन विष्वक्सेनेन सेवितः ॥ पञ्चायुधैर्मूर्तिमद्भिः परीक्षितसमीक्षणः ॥५०॥ महर्षिभिर्मरीच्यत्रिभृगुपूर्वैर्महात्मभिः ॥ इन्द्रादिभिर्लोकपालैः सेवानुगुणभूतिभिः ॥ ५१ ॥ त्रयस्त्रिंशत्कोटिभिश्च देववृन्दैरभिष्टुतः ॥ पञ्चात्मनः सुपर्णस्य पञ्चोपनिषदात्मनः ॥ ५२ ॥ पञ्चवक्त्रप्रतिकृतेः पञ्चाथर्वाङ्गसम्पदः ॥ ऋग्यजुःसामवपुषो नागाभरणभूषिणः ॥ ५३ ॥ अप्रमेयप्रभावस्य स्कन्धपीठमधिष्ठितः ॥ अहम्प्रथमपूर्वाभिर्द्वात्रिंशत्कोटिशक्तिभिः ॥ ५४ ॥ वैष्णवीभिः सेव्यमानो देवः पद्मसरस्तटे ॥ ५५ ॥ श्रीभूमिनीलासहितः प्रादुरासीत्परः पुमान् ॥

शुकदेव मुनिकी तपस्यासे प्रसन्न भगवानका आगमन

चौदह लोकोंके उत्पत्ति, रक्षा और संहार करनेवाले, कृपाकरनेवाले, अन्तर्यामी, निग्रह करनेवाले, शाश्वत, शङ्ख चक्र, गदा और पद्मसे प्रकाशमान चार भुजावाले, शेषनागके हजार फणामण्डलको मुक्तामय छत्रके समान किये हुए, नित्य नूतन चमकीले वेषों, रङ्ग बिरंगे वस्त्रों, दिव्य सुगन्धयुक्त फूलों, दिव्य गन्धादि लेपनों एवं चन्दनोंसे सर्वाङ्ग विभूषित, मुसकुराते हुए मुखकमलयुक्त, मकरन्द झरते हुए कमलके समान नेत्रवाले,नख-शिख पर्यन्त माधुर्य्यकी महिमा युक्त, महानसे भी महान्, सेवाचतुर कुमुदादिगणोंके साथ विचित्र चक्रको हाथमें धारण किये हुए विश्वक्सेनसे सुसेवित, मूर्तिमान पांचो आयुधोंसे प्रतीक्षित आज्ञावाले, मरीचि, अत्रि, भृगु आदि महात्मा महर्षियों, सेवाके अनुरूप ऐश्वर्यवाले इन्द्रादिलोकपालों और तैंतीस करोड़ देवता वृन्दोंसे प्रार्थित, पांच मूर्तिवाले, पांचो उपनिषदोंके स्वरूप, सिंहके समान, पांच अथर्ववेदके सम्पत्तिवाले, ऋक् यजु और सामकी मूर्तिवाले, सर्पोंके आभूषणोंसे भूषित, अपरिमित प्रभववाले गरुड़जीके कन्धोंपर विराजमान, तथा बत्तीस करोड़ वैष्णवी शक्तियोंसे "पहिले मैं सेवा करूंगी २" इस प्रकार अपनी अपनी सेवासे सेव्यमान परम पुरुष भगवान श्रीभूमि और नीलाके साथ उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो प्रकट हुए॥ ५६ ॥

अथ भगवन्तं विलोक्य शुकमुनिकृतनटनादिकम्

ततस्तपःकर्शिताङ्गो मुक्तः परमपावनः ॥ ५६ ॥ पुरुहूतजितस्कन्ध-

पुरुपीठमधिष्ठितम् । पुरुहूतानुजं पूतं पुरुषं तं पुरातनम् ॥ ५७ ॥ कटाक्ष-
वीक्षाविध्वस्ताश्रितक्लेशभरं परम् ॥ प्रसन्नवदनं दृष्ट्वा विष्टरश्रवसं विभुम्
॥ ५८ ॥ वैयासक्यर्षिशार्दूलस्तपोविगतकल्मषः ॥ ससम्भ्रमं समुत्थाय
निविष्टकुशविष्टरात् ॥ ५९ ॥ रोमाञ्चकञ्चुकतनुर्हर्षोत्फुल्लविलोचनः ॥

तपस्यासे दुबला अङ्गवाले, मुक्त तथा परमपवित्र, ऋषि श्रेष्ठ शुकदेव जी गरुड़जीके कन्धे पर स्वर्ण सिंहासन पर आरूढ़, इन्द्रके भाई (उपेन्द्र) पुराणपुरुष, अपने आश्रितजनोंके दुःखसमूहको कृपा कटाक्षसे दूर करनेवाले तथा प्रसन्नमुख श्री विभु विष्णु भगवानको देख कर ही प्रेमसे रोमाञ्चितशरीर और आनन्दसे विकसित नेत्रवाले हो कर हर्षपूर्वक कुशासनसे उठ खड़े हुए ॥ ५९ ॥

स हसन्नुत्तरासङ्गं छिन्दन्कृष्णमृगत्वचम् ॥६०॥ विक्षिपन्नक्षमालां
च तूर्णं भिन्दन् कमण्डलुम् ॥ आनन्दाश्रुपरीताक्षो गद्गदगलकन्धरः॥६१॥
ततश्च नर्तनं कर्तुं विकर्तनविभास्वरः ॥ निवृत्तिधर्मनिष्णातो मुनिः प्रव-
वृते मुदा ॥ ६२ ॥

सूर्यके समान तेजस्वी वे मुनि हंसते, उत्तरीयरूप कृष्णमृगचर्मको फाड़ते, अक्षमालाको फेंकते, तथा कमण्डलुको शीघ्रतासे फोड़ते, आनन्दाश्रु से परिपूर्ण नेत्र, एवं गद्-गद् कण्ठवाले तथा निवृत्तिधर्ममें अत्यन्त निष्णात होकर सन्तुष्ट हुए ॥ ६२ ॥

मतङ्गजक्रमभ्रमो भ्रमन्मतङ्गजभ्रमः सुधाभिलापदेवभूरमन्दमन्दवि-
क्रमः ॥ निवातदीपनिश्चलश्चलत्कारारवस्फुटदिगन्तरालमण्डलो ननर्त नन्द-
यन् विभुम् ॥ ६३ ॥

हाथीके समान पदविन्यास करते, मदमत्त हाथीके चक्करके समान भ्रमणयुक्त हो, सुधाभिलापी देवताओंको शरण्य, विशेष पराक्रमवाले, निर्वात स्थानमें दीप शिखाके समान निश्चल चित्तवृत्तिवाले हाथोंको नचाते तथा चुटकियों और घुमरियोंसे दशोंदिशाओंको शब्दायमान करते भगवान्को प्रसन्न करते हुए वे नाचने लगे ॥६३॥

परिभ्रमन्नदक्षिणं प्रदक्षिणं परिभ्रमन् विभावयन्विलोकयन्नभावयन्न-
लोकयन् ॥ शनैः शनैरसञ्चरन्त्सुसञ्चरञ्छनैः शनैर्मुदाविलावलोकनो मदा-
विलावलोकनः॥ ६४ ॥ ततस्तु तोटकं वृत्तं करताडनपूर्वकम् ॥ रचयन्द-
ण्डमादाय कराभ्यामवलम्बयन् ॥ ६५ ॥ आस्फोटयन्क्ष्वेलयंश्च स्वपदस्प-
र्शिमस्तकः ॥ ननर्त परमानन्दो वाचयन्नाम शार्ङ्गिणः ॥ ६६ ॥

बाईं ओर घूमते घूमते, दाहिनी ओरसे प्रदक्षिण करना भावना तथा दर्शन करते, कुछ भी नहीं भावना करते, कुछ भी नहीं देखते, धीरे धीरे नहीं चलते, धीरे धीरे चलने, तालीके साथ तोटक छन्दमें गाने, हाथोंमें डण्डाको ले कर रुकने, आस्फोटन करते, लोटते, अपने चरणसे मस्तक स्पर्श करते तथा भगवान्‌का शुभनामका कीर्त्तन करते हुए सन्तोष एवं मदसे पुलकित नेत्रवाले तथा परम आनन्द पूर्ण हो, वे नाचने लगे ॥ ६६ ॥

चरणं चटुलं कलयन् कलयन् कमलारसिकं सरसं रमयन् ॥ नटनं घटयन्सुपदं सुवदन् हरिनाम मुनिः शुभदायि शुकः ॥ ६७ ॥ अरुणारुणपङ्कजसोदरदृक्करुणापरिणामिकटाक्षचणम् ॥ रथनेमिलसत्करनीरमदं रमयन्नतसीकुसुमाङ्गरुचिम् ॥६८॥ सरसं विचरन् पुरतः परितो विलसन्नसकृन्सुरवैरिविभो ॥ करपङ्कजताडनताललसद्गमनं निगमान्तविलासभुवः ॥ ६९ ॥ भुजबद्धजटः करयुग्मभृताञ्जलिको मृगयूथपदृप्तवपुः ॥ मृगयन्निव यूथपतिं परितः पुनरप्यसकृद्विकृतः सुकृतः ॥ ७० ॥ अतिकुण्डलिताङ्गभुजङ्गसमो नटनस्फुटकुट्टितकुट्टिमभूः ॥ रजनीमुखताण्डवकुण्डलितत्रिपुरान्तकरीतिपुरश्चरणः ॥७१॥ इति दृढकृतभक्तिर्वासुदेवे परस्मिन्नविकलकलमिश्रश्रेयसि श्रीनिवासे ॥ विगतकललकायोपायशून्यात्मभूतिर्विमलधिषणभूतः संयमी व्यासस्नुः ॥ ७२ ॥ हृदयकमलमध्याध्यासितं पङ्कजाक्षं परिजनपरिबर्हभूषणास्त्रादिसेव्यम् ॥ बहिरिव पुरतस्तं वीक्ष्य चक्षुःपदस्थं नियमितनिगमान्तः पूर्णकामो बभूव ॥ ७३ ॥

चञ्चल चरणोंको चलाते, कमलापति भगवानको प्रेमसे रमाते, सुन्दर पदोंमें गीतोंकी रचना, नृत्य एवं हरिनामको उच्चारण करते हुए शुकदेव मुनि मङ्गलदायक नाच नाचने लगे। लालकमलके समान नेत्रके करुणामय-कटाक्षतुल्यदृष्टियुक्त, सुदर्शनचक्र करकमलमें धारण किये तथा अलसीके पुष्पके समान कान्तियुक्त मुरारी भगवान्‌की बारम्बार प्रदक्षिणा करते, वेदान्तकी विलासभूमि भगवान्‌की ओर तालियां दे दे कर नाचते, जटाओंको भुजाओंमें लपेट कर दोनों हाथोंसे अञ्जलि बांध कर, सिंहवत् पुष्ट शरीरवाला हो कर अपने यूथको जिस प्रकार हाथी खोजते हैं उसी प्रकार भगवान्‌को खोजते सर्पके ऐसा कुण्डलित शरीर बना कर नाचते नाचते, पृथ्वीको फोड़कर टुकड़े टुकड़े करने, सन्ध्याकालीन श्री महादेवजीका ताण्डवनृत्य रीतिका अनुसरण करते, इस प्रकार पुराणपुरुष, श्रीनिवास भगवान्, नित्य, निरन्तर कल्याणदाता, श्रीवासुदेवमें दृढ़भक्ति युक्त हो कर, पापरहित, शरीरका साधन कर्मसम्बन्धसे शून्य आत्मविभूतिपूर्ण तथा निर्मल बुद्धिवाले हो कर संयमी व्यासपुत्र शुकदेव मुनि अपने हृदयकमलके बीच रहनेवाले तथा परिवारसेवकके वस्त्रों तथा भूषणादिसे सेवाके योग्य, कमलनयन भगवानको वेदान्तके सिद्धान्तके अनुसार हृदय तथा भृकुटिके भीतर बाहर के ही ऐसा देखते हुए सफल मनोरथ हो गये ॥ ७३ ॥

ईदृशं तादृशमृषिं भक्तिविह्वलचेतसम् ॥ ७४ ॥ भक्तार्तिभञ्जनकरो भगवांस्तार्क्ष्यवाहनः ॥ दयामिताम्भोधितुङ्गलोलकल्लोलकेलिना ॥ ७५ ॥ समीक्ष्य कमलाभोगभागधेयेन चक्षुषा ॥ शब्दब्रह्मव्यूहगर्भं संस्कर्तुं च समुद्यतः ॥ ७६ ॥ स्नेहगर्भेण वचसा बभाषे ह्लादयन् हरिः ॥ ७७ ॥

इस प्रकारके भक्तिसे विह्वल चित्तवाले उन मुनिको भक्तोंके दुःखहर्त्ता गरुड़वाहन भगवान् दयाभरे समुद्रके उछलतरङ्गके समान चञ्चल एवं श्रीलक्ष्मीजीके भोगके भाग्यरूप नेत्रसे देख कर उनको भागवत धर्मसे संस्कृत करनेको समुद्यत हो कर स्नेहपूर्ण वचनसे आह्लादित करते हुए बोले ॥ ७७ ॥

अथ श्रीनिवासकृपया शुकब्रह्मर्षिमुक्तिः

श्रीभगवान् उवाच—

मुने तापसशार्दूल तपस्तप्तं सुदुश्चरम् ॥ आनन्दकन्दसद्धर्मनिःश्रेयसकरं परम् ॥ ७८ ॥ मुक्तिर्दत्ता मदाकारा सशरीरा विनश्वरी ॥ कल्पक्षये च सायुज्यमस्मन्मन्त्राङ्गसम्भवम् ॥ ७९ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुः कृष्णद्वैपायनात्मजम् ॥ भक्तिप्रतारितो भक्तैस्तत्रैवान्तर्दधे स्वतः ॥८०॥ मुक्तः शुको मुनिरपि मुकुन्दगतचेतनः ॥ अप्राकृताङ्गः प्रथयन्प्रकृत्या प्रकृतिप्रभाम् ॥ ८१ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमौ साष्टाङ्गं तत्र सत्वरः ॥ अवाप्ताभीष्टकामः संस्तत्रास्ते सुखमाश्रमे ॥ ८२ ॥

इति श्री पद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्री वेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शनसंवादे श्रीनिवासमुद्दिश्य रम्भाद्यप्सरःसङ्गभीतशुकस्तुत्यादिवर्णनं नाम षड्विंशोऽध्यायोऽत्र तृतीयः ॥ ३ ॥

श्रीनिवासकी कृपासे शुकदेवजीकी मुक्ति ।

श्रीभगवानने कहा—हे तापसशार्दूल मुनि ! आपने महाकठिन एवं आनन्दकन्द मुक्ति देनेवाली तपस्या की है । मैंने इस वक्त आपको मच्छरीररूप कल्पान्तमें विनश्वर सारूप्य मुक्ति दिया है इसी अवस्थामें इस कल्पपर्यन्त रह कर कल्पान्तमें हमारे मन्त्रके प्रभावसे सायुज्य प्राप्त करोगे। विष्णुभगवान भक्तिसे परवश हो कर कृष्णद्वैपायनके पुत्र शुकदेवको इस प्रकार कह कर वहीं अन्तर्धान हो गये । जीवन्मुक्त श्रीशुकदेव मुनि भी अपनी प्रकृतिसे मायाकी शक्तिको तिरस्कार कर दिव्यदेहयुक्त हो कर पुनः शीघ्र साष्टाङ्ग दण्डवत कर मनचाहा मनोरथको पा कर सुखसे वहीं एक आश्रममें निवास करने लगे ॥ ८२ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः



इम चौथे अध्यायमें, वर्णित पुर-निर्मान् ।
विप्र एकसौ आठ जहं, की निवास महान् ॥१॥
कंस-केशरी कृष्ण जी, पुनि अग्रज बलराम ।
दोऊ मिलि रचना की यह, शुकपुर परम ललाम ॥२॥
तट वर्णन शुक आगमन, मुनि निवास वृत्तान्त ।
प्रभु-दर्शन शुक स्तुति , कहा सूत मुनि-कान्त ॥३॥

अथ शुकमुनिकृतपुराष्टोत्तरशतविप्रगृहनिर्माणानि

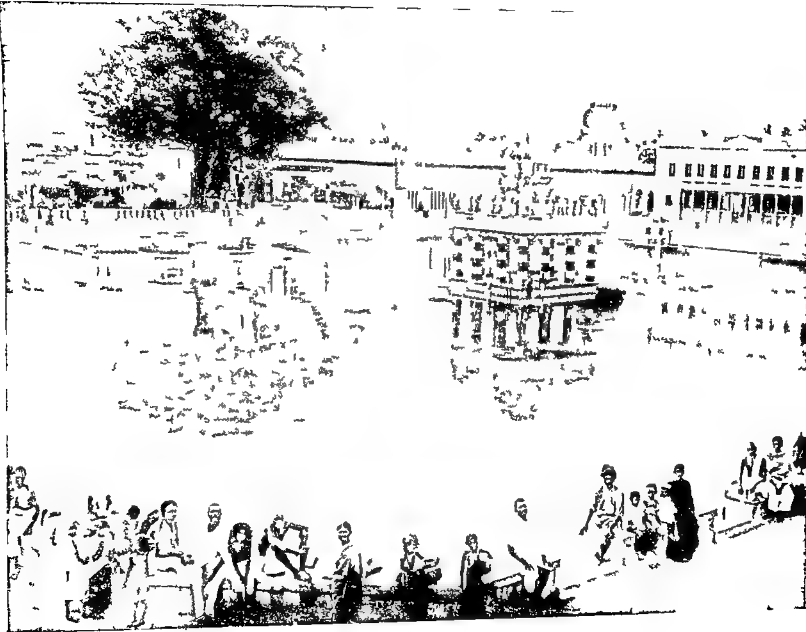
देवदर्शन उवाच—

तत्र श्रीपद्मतीर्थस्य तीरेऽस्मिन्निवसञ्छुकः ॥ ध्यानयोगपरोऽध्यात्मब्रह्मविद्याविशुद्धधीः ॥ १ ॥ एकान्तभावमातिष्ठन्नेकायनविदां वरः ॥ सांख्ययोगपरो नित्यं सद्ध्यानाध्ययनान्वितः ॥ २ ॥ द्वादशाक्षरशिक्षाक्षः प्रत्यक्षरनिरीक्षकः ॥ पराशरात्मजसुतः सुतरां परमो मुनिः ॥ ३ ॥ उवास सुचिरं कालं श्रीनिवासपरायणः ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थमुपगन्तुमनास्ततः ॥ ४॥

शुक मुनिसे आठ सौ ब्राह्मणके निवासयोग्य गृहादिनिर्माण ।

देवदर्शनने कहा—यहां पद्मतीर्थके किनारे ध्यानयोगमें तत्पर और ब्रह्मविद्यामें विशुद्धात्मा हो निवास करते, एकान्त भावसे निवास करते, नित्य एक एक अक्षरको निरीक्षण करते, एकायन मार्ग ज्ञाताओंमें श्रेष्ठ, नित्य सांख्ययोगपरायण, सद्ध्यानमें प्रवृत्त, द्वादशाक्षर मन्त्रकी शिक्षामें लगे, पाराशरात्मज परमयोगी श्रीशुकदेवजीने बहुत दिनोंतक श्रीनिवास भगवानकी सेवामें प्रवृत्त हो कर निवास किया ॥ ४ ॥

चक्रे स्वनाम्नाऽग्रहारमष्टोत्तरशतं द्विजान् ॥ नित्यत्रयीकांश्चाप्यन्तमुख्यान्मखमुखक्रियान् ॥ ५ ॥ सुवृत्ताञ्छुभ्रमनसो निवृत्तावैदिकक्रियान् ॥
नानागोत्रानब्जदलैर्निर्ममे ननु सादरान् ॥ ६ ॥



पद्मसरोवर या शुक्रपुर (पृष्ठ २८)

तत्पश्चात् श्रीस्वामिपुष्करणीतीर्थ जानेकी इच्छा कर १०८ अग्रहार (ग्राम) बनाया और नित्य वेदानुष्ठान करनेवाले, मुख्य यज्ञ क्रियाओंके कर्त्ता, सदाचरण और स्वच्छ चित्तवाले, विरक्त, वैदिक, क्रियाओंमें निपुण, अनेक गोत्रवाले, तथा अनेक वर्णोंके नियमपरायण ब्राह्मणोंको अपनी नामवाली नगरीमें बसाया ॥ ६ ॥

अथ शुकपुरे बलभद्रसहकृतकृष्णप्रतिष्ठा

बलभद्रेण बलिना मायया सह मायिनम् ॥ देवक्या वासुदेवस्य यशोदानन्दगोपयोः ॥ ७ ॥ आनन्दवर्धकं कृष्णं भद्रं भुवनहर्षणम् ॥ भूभारं हर्तुकामं च कामरूपिणमव्ययम् ॥ ८ ॥ कुहनागोपवपुषं मेघश्यामं पुरातनम् ॥ पाराशरिः परमर्षिः प्रतिष्ठाप्येह भूतले ॥ ९ ॥ व्यजिज्ञपत्सन्निधानमत्र ब्रह्ममुनिः शुकः ॥ वैकुण्ठे तु यथा वासः क्षीराम्भोधौ यथा विभो ॥ १० ॥ वासो यथाऽन्तरादित्ये योगिनां हृदये यथा ॥ तथा सदा कुरुष्वात्र सन्निधिं कमलेक्षण ॥११॥ इति विज्ञाप्य देवेशं दण्डवत् प्रणिपत्य च ॥ स्निग्धता मनसा ध्यायन् वीक्षमाणः स्वचक्षुषा ॥ १२ ॥ आजगाम प्रसन्नात्मा स्वामिपुष्करिणीं प्रति ॥

शुकपुरीमें बलरामसहित श्रीकृष्णजीकी प्रतिष्ठा।

फिर वहां देवकी, वसुदेव, यशोदा तथा नन्दगोपको आनन्द वर्द्धन करनेवाले तथा भुवनके आनन्दको बढ़ानेवाले अव्यय, कामरूपी, भूभारहर्त्ता, छद्मसे गोप शरीरधारी, मेघश्याम, पुराणपुरुष तथा परममायावी श्रीकृष्णजीको और बलभद्र तथा मायादेवीके साथ पृथ्वीतलमें पराशरके पौत्र परमर्षि प्रतिष्ठा कर ब्रह्मनिष्ठ श्रीशुक मुनिने कहा—हे कमलेक्षण ! हे विभो ! आपका जैसा वैकुण्ठमें, क्षीरसागरमें, सूर्य्यमण्डलमें तथा योगियोंके हृदयमें निवास है, उसी तरह आप यहां भी निवास करें। इस प्रकार भगवानकी प्रार्थना और दण्डवत् प्रणाम कर मनसे ध्यान करते तथा स्नेह भरी अपनी दृष्टिसे देखते हुए प्रसन्न चित्त हो कर स्वामिपुष्करणीतीर्थमें आये ॥१३॥

अथ शुकस्य स्वपुराच्छेषाचलगमनम्

उपान्ते चोक्षशैलस्योपेत्य निर्मलनिर्झरम् ॥ १३ ॥ तत्र त्रिषवणस्नानं कृत्वा व्यासौरसो मुनिः ॥ उपत्यकायामासीनमुद्यदादित्यवर्चसम् ॥ १४ ॥ उपांशुमानसजपमुदारं दारसंयुतम् ॥ महोत्पलनिभं त्र्यक्षं महोपनिषदङ्कम् ॥ १५ ॥ अग्निज्वालाजटाजालऌसद्गङ्गेन्दुभोगिनम् ॥ व्याघ्राजिनोत्तरासङ्गवाससं कृत्तिवाससम् ॥ १६ ॥ कालकूटस्फुरत्कण्ठनालं नलिनव-

क्त्रकम् ॥ समीक्ष्य हृष्टमनसा नमस्कृत्य च तं हरम् ॥१७॥ उषित्वा त्रिदिनं तत्रोपासकः पूर्णमानसः ॥ द्रष्टुकामोऽखिलाश्चर्यं पुनरप्यञ्जनाचले ॥ १८ ॥ सिद्धैर्विद्याधरैः सार्द्धं योगिभिः कन्दरस्थितैः ॥ शनैः शनैः सञ्चरंश्च निर्झरेषु कृताप्लवः ॥१९॥ ध्यायन् ब्रह्मसभावृत्तं वृत्तान्तं तस्य वै गिरेः ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरमाससाद शुभास्पदम् ॥ २० ॥

श्रीशुकजीका स्वपुरसे शेषाचल जाना।

वहां पर व्यासपुत्र श्रीशुकदेव मुनि त्रिषवण (त्रिकाल) स्नान करके मानसिक उपांशु जपसे युक्त,प्रियायुक्त बड़े बड़े कमलदलके समान तीन आंखवाले (त्रिनेत्र), महा उपनिषद्रूप अङ्गवाले, अग्निज्वालारूप जटाजालमें गङ्गा, चन्द्रमा तथा नागाभरणवाले, बाघ तथा हाथीके खालके वस्त्रसे समन्वित, कृत्तिवाससंगी तथा कालकूटसे प्रकाशित कण्ठवाले कमलवदन उन महादेवको आनन्दित चित्तसे देख तथा नमस्कार कर, परिपूर्ण चित्तसे उपासक हो तीन दिन वहां ठहर कर, पुनः अखिल आश्चर्य देखनेकी इच्छासे, कन्दरस्थित सिद्ध, विद्याधर तथा योगियोंसे युक्त अञ्जनाचल पर धीरे धीरे विचरते, झरनोंमें स्नान करते, ब्रह्मसभाके वृत्तान्तको स्मरण करते हुए मंगलभूमि श्रीस्वामिपुष्करिणीके तीर पर आ पहुंचे ॥ २० ॥

अथ स्वामिपुष्करिणीतीरवर्णनम्

सुगन्धपुष्पवल्लीभिर्वल्लितैर्वकुलैर्युतम् ॥ खर्जूरैर्नारिकेलैश्च केतकैः स्वर्णकेतकैः ॥ २१ ॥ पटीरपाटलाशोककिंशुकासनचम्पकैः ॥ नक्तमालैश्च पनसैर्मधूकैः सरलैर्धवैः ॥ २२ ॥ पुन्नागसुरपुन्नागशिशुपुन्नागपूगकैः ॥ कदलीकृष्णकदलीमहाकदलिकागणैः ॥ २३ ॥ हरिद्राभिः शृङ्गबेरैः कस्तूरीरजनीकुलैः ॥ मल्लिकामालतीभिश्च माधवीभिर्मधूत्कटैः ॥ २४ ॥ यूथिकाशतपत्रैश्च जातिभिर्वनजातिभिः ॥ नन्द्यावर्तादिसुमनःकक्षैः कुक्षिपथङ्गतैः ॥ २५ ॥ समन्ततः समाकीर्णं सान्द्रच्छायासमञ्जसैः ॥ सौगन्धिकैः सुगन्धाढ्यैस्तुलसीभिः सुमोदितम् ॥ २६ ॥ दमनीभिः पुष्पगन्धगर्भपुष्पलताशतैः ॥ अतिमृष्टामोदपुष्पामोदिताशावकाशकम् ॥ २७ ॥ तापसैस्तरुणादित्यवर्चोभिरभितो वृतम् ॥ वराहसिंहशार्दूलमातङ्गकुलसङ्कुलम् ॥२८ सितासितैः सारमेयगणैर्दुर्वारगर्वकैः ॥ सेवितं नातिभीमेन क्षेत्रपालेन पालितम् ॥ २९ ॥ विचरन्नत्र विपिने मुनिर्विगतहृच्छुचिः ॥ परमां मुदमापन्नो मुकुन्दानन्दकन्दधीः ॥ ३० ॥

स्वामिपुष्करिणीतीरवर्णन।

जो सुगन्ध २ फूलोंकी लताओंसे लिपटे, वकुल फूलोंसे युक्त, खजूर, नारियल, केतकी, स्वर्णकेतकी, पटोर, पाडर अशोक, पलाश, असन, चम्पा, नक्तमाल पनस, महुआ, साले, धव, देवपुन्नाग, बालपुन्नाग, पुन्नाग, कसेरी, केला, कृष्णकेला, महाकेला, हरदी, शृंगबेर, कस्तूरी, रजनीगन्धा, मल्लिका, मालती, उत्कट मधुयुत माधवी, यूथिका सोपतिया, जाती, वनजाती प्रभृति वृक्षोंसे चारो तरफ समाकीर्ण, मध्यमें नन्द्यावर्तादि पुष्प समूहोंसे युक्त, चौतरफ घनछायायुक्त सुगन्धपूर्ण तुलसीसे घमघमाते सुगन्धी सैकड़ों दयनीलतायुक्त, अत्यन्त मधुर फूलोंकी सुगन्धसे सुगन्धित एवं आनन्ददायक खुले स्थानोंसे युक्त, तरुण (जवान) सूर्यके तेजवाले तपस्वीगणोंसे चतुर्दिक व्याप्त, सूकर, सिंह, शार्दूल तथा हाथियोंके झुंडसे परिपूर्ण, उजले, काले अदम्य एवं मदान्ध श्वान समूहोंसे सेवित तथा अधिकभय न देनेवाले क्षेत्रवालोंसे रक्षित था। आनन्दकन्द श्री मुकुन्दभगवानमें बुद्धि (भक्ति) वाले, प्यासरहित पवित्र-चित्त मुनिवर श्रीशुकदेवजीने इस वनमे विचरण करते हुए अपार आनन्द पाया ॥ ३० ॥

अथ स्वामिपुष्करिणीवर्णनम्।

स्वामिपुष्करिणीं पुण्यां ददर्श विमलोदकाम् ॥ काञ्चनाम्बुजकल्हार-
कमलैः श्वेतपङ्कजैः ॥३१॥ नीलोत्पलैरुत्पलैश्च फुल्लैः कुवलयैरपि ॥ कैरवैर-
पि कीर्णां तामुद्गिरत्पुण्यगन्धकैः ॥ ३२ ॥ तरङ्गान्तरसञ्चारैर्मत्तैः कारण्डवै-
रपि ॥ ताराभिश्च तरन्तीभिरन्यैर्जलपतत्रिभिः ॥ ३३ ॥ कलहंसकला-
लापैर्वाचालितदिगन्तराम् ॥

स्वामिपुष्करिणीवर्णन।

स्वर्णकमल, कल्हारकमल, श्वेतकमल, नीलकमल, रक्तकमल, खिले हुए कुवलय (कुंई) एवं पवित्रगंधको फैलाने हुए कैरवोंसे आकीर्ण, तरंगोंके बीच विहार करनेवाले मत्त कारण्डवोंसे युक्त, तैरते हुए ताराओं तथा अन्यान्य जलपक्षियोंसे युक्त, कलहंसके काकलीसे शब्दायमान दिशावाली, तथा निर्मल जलवाली स्वामिपुष्करिणीको उन्होंने देखा।

तस्यास्तीरसमुल्लासिसमग्राभीष्टसन्ततिः ॥ ३४ ॥ तीर्थतोय-
मुपस्पृश्य लक्ष्म्या सञ्चिन्तयन् विभुम् ॥ प्रसन्नमानसोल्लासश्चक्रे तत्राघम-
र्षणम् ॥ ३५ ॥

उसके किनारोंमें अभीष्टोंकी परम्परा स्वयं विलसती है। उस तीर्थके जलको स्पर्श कर श्रीलक्ष्मीजीके साथ भगवानको स्मरण करते हुए उल्लासमें प्रसन्नचित्त होकर मुनिजीने वहां ही अघमर्षणमन्त्र पूर्वक स्नान किया ॥ ३५ ॥

बद्धपद्मासनासीनोऽधितटं योगमेयिवान् ॥ परमैकान्तिभिः सार्धं
ब्रह्मविद् ब्रह्मदर्शनः ॥३६॥ तत्रैव सुचिरं कालमुवास परमर्षिभिः ॥ रहस्य-
न्योन्यसंल्लापस्वान्तान्तेवासिसन्ततैः ॥ ३७ ॥ कदाचिद्भगवान् विष्णुः
कारुण्यागण्यपुण्यधीः ॥ दर्शयन् सकलांल्लोकान् साक्षादक्षिपथं गतः ॥३८॥

वे उसके किनारे ही पद्मासन बांध बैठ योग करने लगे। वेदोंको जाननेवाले ब्रह्मदर्शी इस मुनिने परम भक्त महर्षियोंके साथ आपसमें तथा अपने शिष्योंके साथ एकांतमें वार्तालाप करते हुए बहुत कालतक वहीं निवास किया। किसी समय कृपालुओंमें सर्वश्रेष्ठ पुण्य बुद्धिवाले, साक्षात् श्रीविष्णु भगवान, सम्पूर्ण लोकोंको अपनेको दिखलाते हुए प्रकटगो हुए ॥ ३८ ॥

दिव्यानन्दमयाकारैर्गरुत्मच्छेषसैनिकैः ॥ पञ्चायुधैः परिकरैर्गणैस्तु कु-
मुदादिभिः ॥ ३९ ॥ परियर्हाभूषणान्यजिनवस्त्रांशुकानि च ॥ आयुधान्य-
प्रमेयाणि दधानैर्ब्रह्मशक्तिभिः ॥ ४० ॥ शक्तिभिः शाङ्करीभिश्च सेव्यमानो
मुदान्वितः ॥ श्रीभूमिनीलापूर्वाभिरपूर्वाकल्पभूतिभिः ॥४१॥ महिषीभिर्मुदा-
नन्दमावहन्तीभिरीशितुः॥ मुमोद सह सर्वात्मा क्रीडाडम्बरदाम्भिकः॥४२॥

दिव्य आनन्दस्वरूप, गरुड़, शेषतथा अन्य सैनिकों तथा पञ्चायुधों, तत्तत्स्थान योग्य भूषणों, चर्मोंके वस्त्रों एवं अमेय शस्त्रास्त्रोंको धारण किये कुमुदादि भृत्यगणों ब्रह्मशक्तियों तथा शांकरीशक्तियोंसे सेवित, परम आनन्दित तथा अपूर्व कल्पित ऐश्वर्यवाली श्री, भूमि, नीला इत्यादि परमात्माको परम आनन्द देनेवाली महारानियोंके साथ क्रीड़ारसमें परम दाम्भिक हो सर्वात्मा भगवान आमोद प्रमोदसे रहे ॥ ४२ ॥

अथ श्रीनिवासाविर्भावः

लीलाविभूतिचिह्नैर्विविधानन्दवेषभाक् ॥ कालकादम्बिनीकान्ताकु-
ञ्चितालकवन्धनः ॥ ४३ ॥ उद्यद्द्युमणिबिम्बश्रीः शिखामणिमहामहाः ॥
अष्टमीन्दुकलाकारललाटस्थोर्ध्वपुण्ड्रकः ॥४४॥ सौवर्णपद्मकह्लारपुष्पकर्णा-
वतंसकः ॥ सेवान्तररसाशासिशार्ङ्गभ्रूमण्डलद्वयः ॥ ४५ ॥ अतिश्लक्ष्ण-
स्फुरत्ताराकर्णपूर्णारुणेक्षणः ॥ करुणाब्धिसमुद्भूतलोलपद्मविलोचनः ॥४६ ॥
तिलपुष्पसमाकारनासाकाण्डपुटद्वयः ॥ पक्वबिम्बफलाकाररमणीयोष्ठयुग्म-
कः ॥ ४७ ॥ प्रभाविसारिशिखरिदशनावलिवक्त्रकः ॥ स्वाकारकर्णपाशा-
न्तमुक्तामाणिक्यकर्णिकः ॥ ४८ ॥ शरन्निर्मलपूर्णेन्दुमण्डलाननमण्डलः ॥

कम्बुकण्ठो वृषस्कन्धो भोगिभोगोल्लसद्भुजः ॥ ४९ ॥ शार्ङ्गज्याहतिकार्कश्यरमणीयप्रकोष्ठकः ॥ विशालवक्षोविलसच्छ्रीवत्सकौस्तुभोज्ज्वलः ॥५०॥ शङ्खचक्रगदापद्मपरिष्कृतचतुर्भुजः ॥ निम्ननाभिसमुल्लासिमाणिक्योदरबन्धनः ॥ ५१ ॥ मेखलालङ्कृतकटीतटीच्छुरिकयोद्भटः ॥ हस्तिहस्तसदृक्षोरुजानुमण्डलमण्डितः ॥ ५२ ॥ क्रमवृत्तायताभोगजङ्घाकाण्डसुपार्ष्णिकः ॥ कूर्मपृष्ठप्रपदकः किङ्किणीहंसकाङ्घ्रिकः ॥ ५३ ॥ शिञ्जन्माणिक्यमञ्जीरमभासितपदाम्बुजः॥नानासेवारसोल्लासिचन्द्रबिम्बनखावलिः॥५४॥ सुधाद्युतिगृहोद्दामस्फुरदङ्गुष्ठसौष्ठवः॥पङ्कजश्रीपरिचिताऽन्योन्यतुल्याङ्घ्रिपङ्कजः॥५५॥ अतसीकुसुमज्योतिःप्रख्यविख्यातविग्रहः ॥ संवीतविविधाश्चर्यतप्तचामीकराम्बरः ॥ ५६ ॥ अंसादाप्रपदालम्बिवनमालाविराजितः ॥ विचित्ररत्नखचिततपनीयकिरीटकः ॥ ५७ ॥ हारकेयूरकटककङ्कणाङ्गदभूषितः ॥ मणिकुण्डलताटङ्कवीरपट्टाङ्गुलीयकः ॥ ५८ ॥ अंसलम्बिसमायुक्तसौवर्णब्रह्मसूत्रकः ॥ त्रिपञ्चसप्तसरिभिर्मुक्तादामभिरञ्जितः ॥ ५९ ॥ सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वगन्धानुलेपनः ॥ सर्वर्तुकालोत्थपुष्पदामोद्दामभुजान्तरः ॥ ६० ॥ भक्तानुकम्पासहितः श्रीनिवासः परः पुमान् ॥ आविर्बभूव भगवान् स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ ६१ ॥

श्रीनिवास भगवानका आविर्भाव।

लीलामय ऐश्वर्य्यसे स्वयं किये हुए अनेकों प्रकारके आनन्दके वेषोंको धारण करनेवाले, नीले मेघके समान तथा किञ्चित घुंघराले केशकलापवाले, उगते हुए सूर्य्यके समान शोभावाले, शिखामें रखे हुए मणियोंसे प्रकाशमान, अष्टमी चन्द्रमाके आकारके ललाट पर ऊर्ध्व पुण्ड्र धारण करनेवाले, स्वर्णकमल, कल्हार आदि फूलोंके कर्णफूलसे युक्त, दूसरेकी सेवामें आसक्त लोगोंके शासनकर्ता शार्ङ्गधनुषके समान दोनों भ्रूमण्डलवाले, अत्यन्त तेज तथा चमकदारतायुक्त कानों तक फैली लाल दृष्टिवाले, कृपासमुद्रमें उत्पन्न चञ्चल नेत्रकमलवाले, तिलके फूलोंके समान नाकवाले, पके हुए बिम्बफलके समान सुन्दर दोनों ओठवाले, प्रभाको फैलानेवाले अग्रभागसे युक्त दन्त पंक्तिसे युक्त मुखवाले, 'ल' अक्षरके समान कानोंके बगल तक फैले कर्णफूलयुक्त, शरत्कालीन निर्मल चन्द्रमण्डलके समान मुख-मण्डलवाले, शंखके समान कण्ठवाले, सांढ़केसे कन्धोंसे सम्पन्न, सांपोंके फणके समान भुजावाले, शार्ङ्गधनुषके प्रत्यञ्चासे घिस कर कठिन हो गये हुए रमणीय प्रकोष्ठ से सुशोभित, चौड़े छातीपर सुशोभित श्रीवत्स (भृगुपद) तथा कौस्तुभ मणिसे प्रकाशित, शंख, चक्र, गदा तथा पद्मसे शोभित चार भुजावाले, तरङ्गयुक्त चमकदार गम्भीर

नाभीमें माणिक्य जड़े उदरबन्धनसे सुशोभित, करधनीसे अलंकृत कमरवाले, उसके किनारे छूरी कटार लगाये वीर रूपवाले, हाथीके सूंढ़के समान उरु तथा जानुवाले, चढ़ावउतारदार, चौड़े, गोल, सर्पके समान चरणपीठ तथा हंसोंके समान चरणतलवाले, शब्दायमान, एवं माणिक्य जटित पौजेबसे प्रकाशित, चन्द्रबिम्बके समान प्रकाशयुक्त नखावलि एवं अमृतके उत्पत्ति स्थानको प्रकाशित करनेवाले सुन्दर अंगुठेवाले, कमलोंकी शोभायुक्त परम प्रसिद्ध शरीरधारी, अनेकों आश्चर्य्यजनक तपाये हुए सुवर्णके बनाये वस्त्र धारण किये, कन्धोंसे पैरों तक लटकती हुई वनमालाओंसे विभूषित, विचित्र विचित्र रत्नोंसे जड़े चमकदार किरीट मुकुट पहने,हार, बिजायठ, बेरा,कङ्कन, कड़ा आदि भूषणोंसे भूषित, ताटंक तथा वीरपट्ट आदि मणि निर्मित कुण्डलों एवं अङ्गुठियोंको पहने, कन्धेसे लटके सोनेके बने ब्रह्म सूत्रधारी, तीन लड़ी, पच लड़ी तथा सात लड़ी मोतियोंकी मालाओंसे शोभित, सभी आभूषणोंसे युक्त, सब सुगन्धोंको लगाये, सभी ऋतुओंमें होनेवाले फूलोंके उद्दीप्त हारोंसे प्रकाशित भुजाओंके बीचवाले तथा भक्तोंके ऊपर कृपा रखनेवाले परम पुरुष श्रीनिवास भगवान भी उस स्वामिपुष्करिणीके तीर पर आविर्भूत हुए॥ ६१॥

अथ शुकब्रह्मर्षिकृतश्रीनिवासस्तुतिः ।

व्यासात्मजो मुनिर्मुक्तस्तं दृष्ट्वा हृष्टमानसः॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमा-
ववाङ्मनसगोचरम्॥ ६२॥ तुष्टाव च हृषीकेशं केशवं क्लेशनाशनम्॥
जितं ते पुण्डरीकाक्ष वासुदेवामितद्युते॥ ६३॥ रागादिदोषनिर्मुक्त
समग्रगुणमूर्तये॥ नाथ ज्ञानबलोत्कृष्ट नमस्ते विश्वभावन॥ ६४॥ सङ्क-
र्षण विशालाक्ष सर्वज्ञ परमेश्वर॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश सर्वेश्वर जगन्म-
य॥ ६५॥ देव ऐश्वर्यवीर्यात्मन्प्रद्युम्न जगतां पते॥ स्थित्युत्पत्तिलयत्राण-
हेतवे शक्तितेजसे॥ ६६॥

मन और वचनसे अगोचर, सभी दुखोंको नाश करनेवाले, हृषीकेश, श्रीकेशव भगवानको देखकर परम प्रसन्नचित्त, होकर जीवन्मुक्त, व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजीने भूमिपर दंडवत प्रणाम कर स्तुति की कि हे अमित ओजवाले! कमलनयन! तेरी जय हो, हे काम, क्रोध इत्यादि सबसे मुक्त, सम्पूर्ण गुण समूहों की मूर्ति! आपको प्रणाम है। हे नाथ! हे विश्वभावन! ज्ञानबलमें सर्वश्रेष्ठ! सङ्कर्षण! विशालाक्ष! सर्वज्ञ! भगवन! परमेश्वर! हृषीकेश! सर्वेश्वर! जगन्मय! ऐश्वर्य्य तथा बलके आत्मारूप! प्रद्युम्न! संसारके स्वामी! सृष्टि, स्थिति, संहार तथा रक्षाके कारण! तेजरूप! आपकी जय हो, आपको प्रणाम है॥ ६६॥

जयानिरुद्ध भगवन् महापुरुष पूर्वज॥ जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते
विश्वभावन॥६७॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज॥ श्रीनिवास जग-
न्नाथ नारायण दयानिधे॥६८॥ कृतार्थोऽहं कृतार्थोऽहं कृतार्थाः सर्वजन्त-

व: ॥ प्रसीद भगवन् विष्णो प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ ६९ ॥ प्रसीद पुण्डरीकाक्ष प्रसादादात्मसात्कुरु ॥

हे अनिरुद्ध ! महापुरुष ! परमपूर्वज ! भगवन् ! आपकी जय हो । हे पुण्डरीकाक्ष ! भगवन ! हे विश्वमूर्ति ! आपको प्रणाम है । आपकी जय हो ! हे हृषीकेश ! भगवन ! हे महापुरुष ! हे पूर्वज आपको प्रणाम हो । हे श्रीनिवास ! हे जगन्नाथ ! हे दयासागर ! मैं कृतार्थ हो गया । मैं कृतार्थ हो गया । त । सभी जन्तु भी कृतार्थ हो गये । हे भगवन् ! विष्णु ! आप प्रसन्न हों ! हे पुरुषोत्तम ! आप प्रसन्न हों !! हे पुण्डरीकाक्ष ! आप प्रसन्न हों । तथा अपनी प्रसन्नतासे अब मुझे अपना लें ।

इति स्तुवन्तमागत्य महर्षिं फुल्ललोचनम् ॥ ७० ॥ आनन्दनिर्भरापूर्णमानसं श्रीशुकं मुनिम् ॥ समीक्ष्य सुप्रसन्नं तं प्रसादप्रणयान्वितः ॥७१॥ दिव्यैः परिजनैः सार्धं श्रीनिवासस्तिरोदधे ॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए, प्रफुल्ल नयनवाले एवं आनन्दसे भरे चित्तवाले महर्षि श्रीशुकदेव मुनिके पास आकर उनको सुप्रसन्न तथा परम प्रेममग्न देखकर अपने दिव्य परिजनोंके साथ श्रीनिवास भगवान प्रसाद कर अन्तर्धान हो गये ।

मुनिं पुनः प्रणम्यात्र दण्डवच्च मुहुर्मुहुः ॥ ७२ ॥ परमैकान्तिभिर्योगिवरैरार्यैः सहापरैः ॥ अर्चावतारविभवपरव्यूहान्तरादिकान् ॥ आविर्भावान्स्मरन्विष्णोर्ययौ मेरुगिरिं प्रति ॥ ७३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शनसंवादे
शुकमुनिकृतशुकपुराष्टोत्तरशतविप्रगृहनिर्माणादिवर्णनं नाम
सप्तविंशोऽध्यायोऽत्र चतुर्थः ॥ ४ ॥

श्रीशुकदेव मुनि फिर भी बारबार भगवानको वहीं प्रणाम करके, परम एकान्तवासी योगिवरों तथा आर्योंके साथ विष्णु भगवानके अर्चावतार (मूर्ति) विभवावतार (रामादि अवतार) एवं श्रेष्ठ व्यूह (प्रद्युम्न अनिरुद्ध वासुदेव, संकर्षण, नारायण) आदिके आविर्भावको स्मरण करते हुए मेरु पर्वतकी ओर चले गये ॥ ७३ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः



दैत्य भारसे व्यथित हो, दुःखित धरा तत्काल।
पापी जनते विमुख हो, भाग गई पाताल॥ १॥
कीन्ह उधार पातालते, धरि सूकरके रूप।
क्रीड़ा चेष्टा ताहि संग, कीन्ह विष्णु बहु रूप॥ २॥
दुर्वासा के शाप से, किन्नर भये किरात।
कोदव की खेती करे, मुग्ध होय दिनरात॥ ३॥
शेषाचल की शुभ कथा, इस चतुर्थ अध्याय।
मध्य सूत मुनि राजने, कही बहुत समझाय॥ ४॥

अथ श्रीवराहाविर्भाववृत्तान्तः।

देवल उवाच—

सिंहसानुमतः कुक्षौ स्वामिपुष्करिणीतटे॥ श्वेतस्य पोत्रिणस्तस्य प्रादुर्भावः कथं विभो॥ १॥

श्रीवराह भगवानका आविर्भाव वृत्तान्त

देवल पूछे—हे विभो सिंहाचलके अन्दरमें श्रीस्वामिपुष्करिणीके तटपर उज्ज्वल हो रहे श्वेतवराहका प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ॥ १॥

देवदर्शन उवाच—

चराचरगुरोरस्य चरित्रं चारुपोत्रिणः॥ शृणु विद्वन् विशेषेण व्याख्येऽहं विचक्षण॥ २॥

देवदर्शन बोले—हे विचक्षण विद्वन्! इस चराचर जगतके स्वामी पवित्र श्रीवराह भगवानका चरित्र विशेषरूपसे कहता हूं, आप सुने ॥ २ ॥

अथासुरोपद्रवमसहमानाया धरायाः पातालगमनम्

पुरा धर्मच्छिदो दृप्ता दैत्याः स्वेच्छाविहारिण ॥ छायां स्वकीयामपि च हन्तुकामा मदोद्धता ॥ ३ ॥ मुनिभिर्गौतमाद्यैर्ये शप्ता भूमिं गता इति ॥ तेऽभिजाते कुले जाता राज्ञामाज्ञाविलङ्घिनः ॥ ४ ॥ पापिष्ठा ह्यसुरश्रेष्ठा नृपश्रेष्ठवपुर्धराः ॥ नक्तन्दिवं हि बाधन्ते त्रिलोकीधूमकेतवः ॥ ५ ॥ क्षोभं महीक्षितामेवं दुर्दर्पबलशालिनाम् ॥ सर्वंसहाऽसहमाना निममज्ज रसातले ॥ ६ ॥

असुरोंके उपद्रवको न सह सकने वाली पृथ्वीका पाताल प्रवेश

प्राचीनकालमें गोतमादि मुनिवरोंसे शाप पा कर धर्मको नाश करनेवाले, घमण्डी, स्वेच्छाचारी, मदोन्मत्त, अपनी छायाको भी मारनेकी इच्छा करनेवाले दुष्ट दैत्य जो पृथ्वीपर गये थे, परम पापिष्ठ, परम नीच वे राक्षसगण उत्तम कुलमें पैदा हो, बड़े बड़े राजाओंके शरीर धारण कर, राजाओंकी आज्ञाका उलंघन करते हुए, सब लोकोंके धूमकेतु रूपसे त्रैलोक्यमें रात दिन उपद्रव करने लगे। अदम्य, उन महाराजा रूप बली राक्षसोंके इस तरहके क्षोभको असह्य समझ कर भूदेवी पातालमें घुस गयी (चली गयी) ॥ ६ ॥

अथ पातालगतभूम्युद्धरणोद्युक्तवराहवर्णनम्

भूतधात्र्यां निमग्नायामधोभुवनसद्मनि ॥ संरक्षकः सर्वसाक्षी करुणावानधोक्षजः ॥ ७ ॥ समुद्धर्तुमनास्तूर्णं पातलनिलयां भुवम् ॥ महावराहो भगवान् बभूव परमः पुमान् ॥ ८ ॥ यत्किरीटस्थरत्नानि सत्यलोकनिवासिनः ॥ अकाण्डोदितमार्तण्डप्रचण्डामलमण्डलम् ॥ ९ ॥ पद्मोपनिषदात्मानः सिद्धा मुक्ताश्च मेनिरे ॥ यस्य श्रोत्रैकदेशस्थं खपदं शब्दमात्रकम् ॥ १० ॥ तेजांसि निममज्जुश्च नेत्रयोर्विवरान्तरे ॥ नासाग्रे च समायुक्तो मातरिश्वा बभूव ह ॥ ११ ॥ बभूव पारावारोऽदः पादपङ्कजपङ्कदः ॥ खुरोदरे कणकणाः सुराद्रिश्च कुलाद्रयः ॥ १२ ॥

दशोत्तरैरावरणैर्लोकालोकाचलः स्थितः ॥ बभूव बाह्यावयवभावनाशेष-
वेषभाक् ॥ १३ ॥

पातालमें गयी पृथ्वीके उद्धार करनेमें उद्यत श्रीवराहजीका वर्णन

जीवोंकी माता पृथ्वीदेवीके पाताल लोकमें चली जानेपर परमकृपालु, अधोक्षज, सर्वसाक्षी, सर्वरक्षक परम पुरुष, विष्णु भगवानने पातालमें निमग्न पृथ्वीको शीघ्र उद्धार करनेके लिये महावराह रूप धारण किया। जिसके मुकुटस्थ रत्नोंको पांचों उपनिषद्रूप मुक्त, सिद्ध तथा सत्यलोकनिवासियों असमयमें उगे हुए सूर्यमण्डल समझे। जिसके कानोंके एक देशमें अखिल शब्दोंका अधिष्ठान आकाश है। जिसके नेत्रके कुहरों (गड्ढों) में समस्त तेज घुस गये। पवनदेव नाकके अगले भागमें मिल गये, सम्पूर्ण महासागर जिसके चरण कमलोंके कीचड़ हुए, कुलपर्वत, देवपर्वत धूलिकण एवं इग्यारहों आवरणोंके साथ लोकालोक पर्वत सभी जिसके खुरके गस्सेमें लगे और जो मायामय अङ्गवाले हुए॥ १३ ॥

पोत्रिपादैकरोमान्तर्विवरस्थां वसुन्धराम् ॥ सपत्नीं पद्मवासिन्यास्स-
र्वभूतनिवासिनीम् ॥ १४ ॥ मुस्ताभिः पूर्णपङ्काङ्कां मार्गमाणो बभूव ह ॥

कमलवासिनी श्रीलक्ष्मीजीकी सौत, सर्वभूतोंके निवासस्थान अपने पैरके एक रोमके छिद्रमें स्थित मोथासे भरे कीचड़से लिप्त शरीरवाली वसुन्धरा देवीको वराह भगवान खोजने लगे॥ १४ ॥

अथ पातालगतधरणीवराहयोर्नर्मव्यापारादिः

तां दृष्ट्वा वेपमानाङ्गीं लज्जालोलविलोचनाम् ॥ १५ ॥ पोत्रिरोमान्त-
रालीनां पावनीं परमेश्वरीम् ॥ वैकुण्ठोऽकुण्ठितोदन्तः कण्ठमूलमधोक्ष-
जः ॥ १६ ॥ रहस्यस्याः समाघ्राय वराहवपुरात्मभूः ॥ गाढाङ्गपालीकवली-
भूतगूढाङ्गपालिकाम् ॥ १७ ॥ सत्यसन्धो हि मुमुदे नवोढां च वधूमिव ॥

पाताल गत पृथ्वी तथा वाराहभगवानके कमनीय व्यापार

नवयुवती वधूके समान लज्जासे चञ्चलनेत्रवाली, कांपते हुए शरीरवाली, वाराहभगवानके रोमोंके बीचमें बैठी हुई, मोटी चोलीसे ढकी हुई भीतरकी चोलीवाली, पवित्र करनेवाली, परम ईश्वरी उस देवीको देखकर वैकुण्ठमें अति प्रसिद्ध, अधोक्षज, आत्मभू, वाराहरूपधारी सत्यसन्ध भगवानने एकान्तमें उसके कण्ठमूलको सूंघ कर आनन्द किये॥ १७ ॥

शरत्प्रत्यग्रपङ्कजाभिनवाभोगलीलया ॥ १८ ॥ स्नेहकामनया दृष्ट्वा-
भिवीक्ष्य विगतज्वरः ॥ तां बभाषे सुरसया सुधाकल्लोललीलया ॥ १९ ॥
नर्मभावनया वाचा श्रीमान्नलिननलोचनः ॥

शरत्कालिक नूतन पङ्कजोंकी शोभा तथा प्रेमकी कामनासे भरी दृष्टियोंसे देख कर कामज्वरसे मुक्त हो उससे रसवत् अमृततरङ्गके समान विनम्र भावनायुक्त मधुर वचनसे श्रीमान कमलनयन भगवान बोले ॥ २० ॥

वसुधे देवि भद्रं ते भद्रे भद्राणि पश्यसि ॥ २० ॥ स्थापयाखिलभूतानि स्वस्था स्वस्थानमास्थिता ॥ एवं वराहवपुषा पुंसा भूमिः सुभाषिता ॥ २१ ॥ स्नेहसागरपूर्णेन व्रीडालोलविलोकिना ॥ नेत्राञ्चलेन स्वपतिं वीक्ष्य कोलाननं विभुम् ॥ २२ ॥ स्नेहसन्दर्भगर्भेण माधुरीमहिमात्मना ॥ त्रिस्थानस्थेन वचसा धर्मश्रवणतत्परा ॥ २३ ॥ बभाषे पुरुषश्रेष्ठं पोत्रिवक्त्रं पुरातनम् ॥

हे भद्रे वसुधादेवि ! तेरा कल्याण हो है ? तुम मङ्गल ही देखती हो ? स्वयं अपने स्थानमें स्थित हो कर अखिल जीवोंको स्थापित करो । इस प्रकार वराहवेषधारी परमपुरुष भगवानसे भूदेवी अच्छी तरह बोली गई, तब लज्जासे चञ्चल, प्रेमसागरसे पूर्ण, आखोंके कोर (कनखियों) से वराहमुख अपने स्वामीको देखकर प्रेमरसपूर्ण मधुरताभरी, तीन स्थानोंमें रहनेवाली, (प्रेमपूर्ण) भाषा के द्वारा धर्म सुननेमें तैयार (पृथ्वीदेवी) वराहवदन पुरातन भगवानसे बोली ।

अथ वराह प्रति धात्र्युक्तिः

भगवन् देवदेवेश दैत्यामित्र दयानिधे ॥ २४ ॥ दैत्यदानवदुर्धर्ष भारान्मग्नां रसातले ॥ रक्ष मां पक्षिराड्वाह सर्वभारक्षमाक्षमाम् ॥ २५ ॥ आधारशक्तये तुभ्यमनन्तशिरसे नमः ॥ अव्याजसुहृदे भूयो नमोऽनन्तविभूतये ॥ २६ ॥

वराह भगवानसे पृथ्वीदेवीके वचन

' हे दयानिधे ! हे देवदेवेश ! हे दैत्यशत्रु ! दैत्यों एवं दानवोंको दुर्धर्ष ! सब भारोंके सहन करनेमें समर्थ ! हे गरुडवाहन भगवन ! भारसे पातालमें धसी हुई, असमर्थ बनी हुई मुझ पृथ्वीकी रक्षा कीजिये । शक्तियोंके आधार अनन्त शिरवाले आपको नमस्कार है । निश्छल सुहृद, अनन्त ऐश्वर्यवाले आपको अनेकानेक प्रणाम है ॥ २६ ॥

एवं वसुधया देव्या वेपमानाखिलाङ्गया ॥ विज्ञापितो विश्वरक्षादीक्षितः प्रत्युवाच ताम् ॥२७॥ साधु देवि त्वया पृष्टं शृणु वक्ष्ये वसुन्धरे ॥ सर्वसहा विश्रुता त्वं तथ्यनामा भव प्रिये ॥ २८ ॥

इस प्रकार सम्पूर्ण शरीरसे कांपती हुई, धरणीदेवीके वचन सुन कर संसारकी रक्षामें तत्पर भगवान उससे

(धरणीसे) बोले। साधु ! देवि साधु ! तुमसे अच्छा ही निवेदन किया गया है। हे वसुन्धरे ! सुनो, मैं कहता हूं। हे प्रिये ! तुम सब कुछ सहनेवाली (सर्वंसहा) के नामसे यथार्थ नामवाली प्रसिद्ध हो जाओ ॥ २८ ॥

अथ धरण्या साकं पातालाद्वराहस्य शेषाचलागमनम् ।

वराहरूपो भगवानेवमुक्त्वा वसुन्धराम् ॥ देवीमशिक्षयद्धर्मं स्वभारभरणक्षमम् ॥ २९ ॥ शिक्षिता वसुधा देवी तेन शुद्धमना धरा ॥ बभूव महिता तेन स्वभारभरणक्षमा ॥ ३० ॥ तदाप्रभृति देवेशो वराहवपुरूर्जितः ॥ पाताललोकाल्लोकेऽस्मिन् कौतूहलसमाकुलः ॥३१॥ स्वामिपुष्करणीकूले पश्चिमेऽस्मिन् धरातले ॥ वल्मीकबिलमासाद्य तद्द्वारा विजिहीर्षया ॥३२॥ गमनागमनं कुर्वंस्तदधो भुवनं प्रति ॥ भूत्वा श्वेतः पोत्रिपोतः सञ्चरन्नात्मनायकः ॥ ३३ ॥ दिव्यैर्गणैः सेव्यमानः कदाचिदनपायिभिः ॥ भूषणैः पारिबर्हैस्स्वैरायुधैश्चेतनात्मभिः ॥ ३४ ॥ अव्याजमित्रोऽत्र पोत्री वर्तते दिव्यगात्रभृत् ॥ ह्लादयन्नात्मनः सर्वाञ्ज्ञानानन्दमयान् सुरान् ॥ ३५ ॥

धरणीके साथ भगवानका पातालसे शेषाचलपर आना।

वराहरूप भगवानने इस तरह कह कर वसुन्धरादेवीको अपना भार वहन करनेकी शिक्षा दी। उनसे शिक्षित हो कर शुद्धचित्तवाली वसुधादेवी, अपने भारको सहन करने योग्य हो कर महनीया हो गयी। उसी समयसे देवदेवेश, परमउग्र, वराहरूप भगवान पाताललोकसे कौतूहलसे आकुल हो, इस लोकके स्वामिपुष्करिणीके पश्चिम तीर पर इस भूभागमें दीमककी बिलको पा कर उसमें विहार करनेकी इच्छासे नीचेके भूखण्डमें आवागमन करते हुए, स्वयं आत्मनायक श्वेतवाराह हो कर विचरण करते हुए, कभी भी पाप न करनेवाले दिव्यगणोंसे सेवित एवं सचेतन अपने भूषणों, परिचरों तथा आयुधोंसे युक्त हो कर निष्कपट मित्र दिव्यस्वरूप धारण कर सभी ज्ञान तथा आनन्दमें मग्न देवताओंकी आत्माको आह्लादित करते हुए, यहीं रहते हैं ॥ ३५ ॥

अथ दुर्वाससः शापात्किन्नरदम्पत्योः कैरातरूपप्राप्तिः

परावराणां भूतानामन्तर्यामिणि शार्ङ्गिणि ॥ एवं हि वर्तमानेऽत्र पवित्रे चित्रपोत्रिणि ॥३६॥ कदाचित्स्वाश्रमे पुण्ये दुर्वासाः कोपनो मुनिः ॥ क्रीडन्तौ काममोहेन दृष्ट्वा किन्नरदम्पती ॥३७॥ शशाप निर्झरे पुण्ये सिंहगात्रि महीधरे ॥ कैरातं मिथुनं स्यातां वन्याहारौ युवामिति ॥ ३८ ॥

दुर्वासाके शापसे किन्नरदम्पतिका किरातरूप हो जाना।

सर्वभूतोंके अन्तर्यामी, परसे भी पर, पवित्र, विचित्र पोत्रधारी, शार्ङ्गधारी भगवानके यहां इस प्रकार रहते हुएमें किसी समय परम क्रोधी महामुनि दुर्वासाजीने अपने पवित्र आश्रममें काममोहसे मोहित तथा क्रीड़ा करते किन्नरदम्पतिको देखकर शाप दिया—"तुम दोनों सिंहाचल नामक पर्वतके एक पवित्र झरनेके तटपर जङ्गलीभोजन करनेवाले किरातदम्पति हो जावो ॥ ३८ ॥

ततः किन्नरदम्पत्योर्निर्विण्णमनसोः सतोः ॥ शापमोचनमाचख्यौ कृ-
पया स च तापसः ॥ ३९ ॥ तत्र स्वामिसरस्तीरे सञ्चरञ्छ्वेतसूकरः ॥
शापान्मदीर्ष्याविहितान्मोचयिष्यति तौ युवाम् ॥ ४० ॥ तथेति दीनमनसा-
वुक्त्वा किन्नरदम्पती ॥ तूर्णं तं देशमागत्य जज्ञाते व्याधदम्पती ॥ ४१ ॥

तब उस किन्नर दम्पतिको दुःखित होनेपर शापसे मुक्त होनेके लिये उस तपस्वीने उपाय बताया कि ईर्ष्यासे दिये गये मेरे शापसे तुम दोनोंको उस स्वामिसरके तीरपर विचरण करनेवाले श्वेतवराह, मुक्त करेंगे, "वैसा ही हो" ऐसा दुःखित मनसे कह कर उस किन्नरदम्पतिने चुपचाप उसी देशमें आ कर व्याध (किरात) दम्पतिके रूपमें जन्म लिया ॥ ४१ ॥

अथ किरातदम्पत्योः शेषाचले पुत्रप्राप्ति-प्रियङ्गुकृषीकरणादीनि

शाकमूलफलाहारौ दुष्टसत्त्वनिबर्हणौ ॥ आसाते सुचिरं कालमस्मिन्
सिंहशिलोच्चये ॥ ४२ ॥ ऋक्षशार्दूलशरभसिंहेभव्यालदुर्गमे ॥ अरण्येऽग-
ण्यपुण्यौघे भीषणे रोमहर्षणे ॥ ४३ ॥ वसन्किरातमिथुनं पुष्पासवमदोद्ध-
तम् ॥ असूत पुत्रं चित्राङ्गं चिरकालसमीप्सितम् ॥ ४४ ॥

किरात दम्पतिकी शेषाचलपर पुत्रप्राप्ति तथा प्रियंगुकी खेती।

दुष्ट जन्तुओंका नाश करते तथा शाक, मूल, फलका भोजन करते हुए, इस सिंहाचल पर्वतपर बहुत दिनों तक उन्होंने निवास किया। भालू, शार्दूल, शरभ, सिंह, हाथी तथा सर्पोंसे दुर्गम, अत्यन्त पवित्र तथा भयङ्कर, रोमाञ्चित करनेवाले उस घोर जङ्गलमें निवास करते हुए, फूलोंके रस (मधु) को पी कर उद्धत किरातदम्पतिने चिरकालसे अभिलषित तथा विचित्र अङ्गवाले पुत्रको प्रसव किया ॥ ४४ ॥

प्रसूतं तं समीक्ष्याथ सुकुमारं सुतं तदा ॥ शबरः शबरी चैतावास्तां

सम्पूर्णमानसौ ॥ ४५ ॥ स्तन्यैर्वन्यरसैरन्यैस्तमापञ्चमवर्षकम् ॥ ताववर्धयतां पुत्रं चित्रावयवमर्भकम् ॥४६॥ सिंहहस्तनखत्रोटीनिशानशतधारतः ॥ विभिन्नमत्तमातङ्गकुम्भोद्भिन्नोरुमौक्तिकैः ॥ ४७ ॥ दण्डशेखरवासोभिर्बर्हैर्बर्हिपतत्रिणाम् ॥ त्रिमदोद्रिक्तमातङ्गमदपङ्कद्रवैरपि ॥ ४८ ॥ श्रेयसः सरसां स्वामिसरसः श्वेतमृत्स्नया ॥ अलञ्चक्रतुरन्योन्यं पितरौ सुतरां सुतम् ॥ ४९ ॥

प्रसव किये हुए उस सुकुमार पुत्रको देख कर उक्त दोनों शबर तथा शबरीके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये, तथा उन्होंने स्तनरस (दूध), वन्यरस (मधु) एवं अन्यान्य भोजनोंसे पांच वर्षों तक उस पुत्रका पालन-पोषण किया और सिंहके हाथके नखके अग्रभागके समान तीक्ष्ण सैकड़ों धारवाले अंकुशसे मत्त हाथियोंके मस्तकको फाड़ कर निकाले हुए बड़े बड़े मुक्ताओं, मोरके दण्ड समान पुच्छके अमरूद (कलङ्गी) वस्त्रों, तथा अन्यान्य पक्षियोंके पंखों तथा तीन धारोंसे निकले मत्त हाथियोंके मदसे सने पङ्कों एवं सरश्रेष्ठ स्वामिसरोवरकी उज्वल मिट्टीसे माता तथा पिता दोनों ही अपने उस पुत्रको अलंकृत करते थे ॥ ४९ ॥

कदाचित्पर्यटंस्तत्र विपिने स वनेचरः ॥ कस्यचिद्वटवृक्षस्य समीक्ष्य स्कन्धकोटरे ॥ ५० ॥ पक्वं कार्तस्वरनिभं प्रियङ्गुं प्रियदर्शनम् ॥ गृहीत्वा शबरः सर्वं गृहिण्यै तत्समर्पयत् ॥ ५१ ॥

किसी समय जङ्गलमें घूमते हुए उस किरातने एक वटवृक्षके कोटरमें परम रमणीय, सोनेके रङ्गका, खूब पका हुआ प्रियंगुका एक फल देखा, और उसे लेकर उस किरातने अपनी स्त्रीको दे दिया ॥ ५१ ॥

सापि प्रैयङ्गवं धान्यमुच्छोप्य च समाचिनोत् ॥ ततः सस्यं चक्रतुश्च प्रैयङ्गवमतन्द्रितौ ॥ ५२ ॥ वृतिभिर्गोपयन्तौ तौ शुश्रूषाभिः समन्ततः ॥ आपक्वफलमाकाङ्क्षन्मिथुनं तद्बभूव ह ॥ ५३ ॥ गोपनार्थं हि तस्यैव पुत्रं प्रेषितवान्स्वयम् ॥ तुष्टो बभूव च क्षेत्रं वीक्ष्य पक्वफलोद्धतम् ॥५४॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शनसंवादे श्रीवराहाविर्भाववृत्तान्तवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायोऽत्र पञ्चमः ॥५॥

उसने (स्त्रीने) भी उस प्रियङ्गु धानको सुखा कर रख दिया। पीछे आलस रहित हो कर उन्होंने प्रियङ्गु धानकी खेती की। दोनों बड़े यत्नसे पारा पारी चारों ओरसे उसकी रखवाली करने लगे। वह दम्पती उस फलके पक जानेकी अभिलाषा करने लगे और उसीकी रक्षाके लिये उन्होंने खास अपने पुत्रको भेजा। वह पुत्र उस पके हुए फलसे भरे क्षेत्रको देख कर सन्तुष्ट हो गया।

इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः

इस छठवें अध्याय में, श्रीवराह भगवान।
आय प्रियंगु खेत में, दर्शन दिये महान ॥ १ ॥
शेषाचल पर आय कर, वल्मीकागत ईश।
दर्शन करि उनकी सुनी, गगन गिरा अवनीश ॥ २ ॥
पुनि दुर्वासा शाप से, विगत भीलपरिवार।
श्रीनिवासके धाम पुनि, तीर्थ दक्षिणी द्वार ॥ ३ ॥

अथ प्रियङ्गुगोप्तृकिरातसमीपं प्रति वराहागमनम्

देवदर्शन उवाच—

प्रियङ्गावभितो गुप्ते वाप्राभिर्वृतिभिस्ततः ॥ तप्तचामीकराभोरुपक्व-
धान्यभरानते ॥ १ ॥ शबरस्तं समीक्ष्याथ मध्ये कृत्वा तु मञ्चिकाम् ॥
तद्रक्षणार्थं तत्रैवातिष्ठन्नक्तन्दिवं स्वयम् ॥ २ ॥

प्रियङ्गुरक्षक किरातके पास वराहका जाना

देवदर्शनजी बोले—तपाये सोनेकी प्रभावाले पके धानसे झुके हुए चारों ओर घेरेसे अच्छी तरह घिरे प्रियङ्गुके बीचमें मचान बना कर उसे देखते हुए, उसकी रक्षाके लिए किरात रात दिन वहीं स्वयं रहता था ॥२॥

कदाचिद्भगवाञ्छ्वेतः पोत्रिपोतो बुभुक्षया ॥ वल्मीकरन्ध्रान्निर्गत्य
क्षेत्रमध्यं विवेश ह ॥ ३ ॥ तं दृष्ट्वा बहुशः सोऽपि शबरी विस्मयं
ययौ ॥ ततस्तन्मण्डलेशाय राज्ञे विज्ञापितुं द्रुतम् ॥ ४ ॥ राजधानीं प्रवि-
श्यास्यावेदयचक्रवर्तिनः ॥

किसी समय श्वेतवराह भगवान, भूखके कारण अपने दीमकसे निकल कर खेतके बीच घुस गये। उनको बहुत बार देख कर उस किरातने आश्चर्यित हो उस मण्डलके स्वामी राजाको जल्दी जनानेके लिये राजधानीमें प्रवेश कर चक्रवर्ती नामक राजासे निवेदन किया ॥

अथ श्रीवराहदर्शनार्थं शेषाचलं प्रति नृपागमनम्

तत् श्रुत्वा सार्वभौमस्तु राजा कौतूहलान्वितः ॥ ५ ॥ मृगयावेषभृ-
द्भूत्वा पदातिरुपनिष्क्रमन् ॥ एकाकी तेन सार्द्धं हि जगाम जगतां
हितः ॥ ६ ॥

वराहको देखनेके लिए राजाका शेषाचल पर जाना

इस बातको सुन कर वे सार्वभौम राजा कौतूहलसे युक्त हो कर शिकारीका भेष धारण किए पैदल ही निकल कर संसारकी हितकामनासे उसके साथ अकेले ही चले गये ॥ ६ ॥

स्वामिपुष्करिणीं पुण्यां विगाह्य विगतक्लमः ॥ दण्डवत्तां प्रणम्याथ
व्याधवाक्यविचित्रताम् ॥७॥ मनसाऽऽलोचयन्सम्यक्संत्यक्तान्यपराक्रमः ॥
प्रियङ्गोः क्षेत्रमासाद्य प्रियङ्गुप्रियदर्शनः ॥८॥ चतुस्तम्भसमायुक्तां चतुरश्रां
समुच्छ्रिताम् ॥ मृदुपल्लवसंस्तीर्णामुपस्तीर्णमृदुत्वचम् ॥९॥ आदाय सशरं
चापं तुङ्गशृङ्गविनिर्मिताम् ॥ मञ्चिकामारुरोहैतां तेन सार्धं नराधिपः ॥१०॥

पुण्य स्वामिपुष्करिणीमें स्नान तथा दण्डवत कर थकावटसे मुक्त हो कर और पशुओंके आखेटको त्याग कर व्याध (किरात) की बातोंकी विचित्रताको मनमें पूरी तौरसे आलोचना करते हुए, प्रियंगुके खेतमें जा कर, चार खम्भोंसे युक्त, चौकोन, उन्नत, मुलायम पत्तोंसे बिछे हुए, और उसके ऊपर मुलायम छाल बिछे हुए एवं ऊंचे पर्वत शिखर पर बने हुए मचान पर धनुष बाण ले कर उस (किरात) के साथ प्रियंगुमें आसक्त हो राजा चढ़ गये ॥ १० ॥

अथ नृपस्य वल्मीकविवरागतवराहदर्शनम्

अपरः सार्वभौमश्च जाग्रतो निद्रपतिष्टताम् ॥ वल्मीकविवराधिपस्तु

करो निर्जगाम ह ॥ ११ ॥ वृतिं विलङ्घ्य वार्ध्राभिः पाशैरप्यतिदुर्गमाम् ॥
क्षेत्रमध्यं च धावन्तं सूकरं सुभगाङ्गकम् ॥ १२ ॥ आत्ताभिलाषमाहारे
दंष्ट्रादीधितिसञ्चयैः ॥ ध्वान्तं शकलयन्तं च भास्वद्दिव्याङ्गसङ्गतैः ॥ १३ ॥
राजा तं वीक्ष्य सहसा विस्मयं परमं गतः ॥ सज्ये धनुषि सन्धाय सायकं
साधुविक्रमः ॥ १४ ॥ तूर्णमाकर्णमाकृष्य चललक्ष्यप्रवेधिनम् ॥ ग्रहीतुकामो
नृपतिस्तेन सार्धं तमन्वगात् ॥ १५ ॥

राजाको वल्मीकसे निकल कर आते हुए वराहका दर्शन

किरात तथा वह सार्वभौम राजा रातको जागते हुए बैठ रहे। तब वल्मीकके बिलसे विचित्र वराह निकल काँटोंके जालसे घिरे अतिदुर्गम घेरेको लांघ कर खेतके मध्यमें दौड़ते हुए, प्रियंगूको लेनेमें अत्यन्त उत्सुक हो चमकीले दन्तपंक्तियोंसे रातेको खण्ड खण्ड काले, चमकदार दिव्य रूपसे सम्पन्न उस सुन्दर आकृतिवाले वराह को देख कर राजा एकाएक परम आश्चर्यित हुए और महाविक्रमशाली वे (राजा) प्रत्यञ्चा (डोरी) युक्त धनुष पर चञ्चल लक्ष्यको वेधने वाले बाणको चढा कर जोरसे कानोंतक खींचते हुए उसको पकड़नेकी इच्छासे उसके पीछे पीछे चलने लगे ॥ १५ ॥

सूकरो वीक्ष्य धावन्तं चापहस्तं महीपतिम् ॥ झटिति क्षणमात्रेण व-
ल्मीकविवरं ययौ ॥ १६ ॥ व्यर्थप्रतिज्ञो नृपतिः प्राज्ञः प्रख्यातविक्रमः ॥
वल्मीकमूलमागत्य द्रष्टुं सूकरमत्वरः ॥ १७ ॥ शिश्ये च दर्भशय्यायां
स्वप्नं काङ्क्षन् क्षितीश्वरः ॥

हाथमें धनुष लिये राजाको दौड़ते देख कर वराह झटसे क्षण ही भरमें वल्मीक (बिल) में घुस गया। विख्यात वीरतायुक्त बुद्धिमान राजा व्यर्थ (भग्न) प्रतिज्ञ हो कर वल्मीकके बिलमें वराहको देखनेकी इच्छासे आ कर, कुशशय्या-पर स्वप्नकी कामनासे सो गये ॥ १८ ॥

प्रबुद्धः प्राकृतः प्रातरदृष्ट्वा स्वप्नदर्शनम् ॥ १८ ॥ किङ्कर्तव्यत्वशून्या-
त्मा चिन्तयन्कायशोधनम् ॥ महदाश्चर्यमाहर्तुं स्नात्वा स्वामिसरोजले ॥१९॥
तपोवेषं समास्थाय ध्यायन्सूकरमीश्वरम् ॥ कर्तुं प्रववृते धीरस्ततः प्रायोप-
वेशनम् ॥ २० ॥ निर्द्वन्द्वोऽवन्ध्यनिष्ठश्च निष्ठावानस्य दर्शने ॥

बिना स्वप्न देखे ही प्रातःकालमें सचेत हो कर उठे। शरीरको शुद्ध करनेका विचार करते हुए, स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान कर, अत्यन्त आश्चर्यजनक उस (वराह) को पकडनेकी इच्छासे तपस्वी भेषमें बैठ वराह

भगवानका ध्यान करते हुए, परम निष्ठावान, तथा निर्द्वन्द्व हो, उनके सफल दर्शनमें विशेष निष्ठा रख कर किंकर्त-व्यविमूढ़ हो कर प्राण त्याग करनेतक को उद्यत हुए ॥ २१ ॥

अथ नृपं प्रत्यशरीर्युक्तिः

एवं हि वर्तमानेऽस्मिन् पतौ च नियतात्मनि ॥२१॥ शबरेण शबर्या च परिष्कृतसपर्यके ॥ वृत्तं विष्णुपदे वाक्यं विशुद्धममृतोपमम् ॥ २२ ॥ द्रष्टुकामो यदि भवान् साधुवृत्ता महीपते ॥ तपसाऽलं सगर्वेण सूकरार्भक-दर्शने ॥ २३ ॥ यतस्व वृत्तं तच्चर्तुं यद्वक्ष्यामि च सुव्रत ॥ सवत्सासितगो-क्षीरधाराभिरभिषेचय ॥ २४ ॥ अच्छिन्नसन्तताभिश्च वल्मीकस्थं वरा-हकम् ॥ एवं सिक्तः स भगवान् पोत्रिवक्त्रः पुरातनः॥२५॥ प्रादुर्भविष्यति ततो वल्मीकबिवराद्विभुः॥ एवमुक्त्वा तु वाक्यं तत्पुनर्नोवाच किञ्चन॥२६॥

राजासे आकाशवाणी ।

इस प्रकार जितेन्द्रिय उस राजाके किरात तथा किरातीसे किये सत्कारके द्वारा सन्तुष्ट होनेपर आकाशमें अमृत तुल्य परम शुद्ध वाणी सुन पड़ी "कि हे साधुचरित्र राजा ! तुम यदि दर्शनार्थी हो तो वराहके दर्शन करनेकी अहं-कार पूर्ण तपस्याको छोड़ो । हे सुव्रत ! जो मैं कहता हूं उस वृत्तिका आचरण करनेका यत्न करो । बछड़ेवाली काली गौके दूधकी धारासे वल्मीकस्थ वराहका अभिषेक करो । इस प्रकार अभिषिक्त हो कर पुरातन वराह भगवान वल्मीकके बिलसे निकलेंगे । यह कह कर वाणी और कुछ न बोली ॥ २६ ॥

नृपतिस्तं निशम्याशु विस्मयो विस्मयं गतः ॥ तं प्रयत्नं प्रवघृते प्रय-तोऽप्राकृतात्मनः ॥ २७ ॥ अस्य नारायणगिरेर्लक्ष्मीनारायणेशितुः ॥ वस-तेर्दक्षिणे भागे द्वियोजननियोजिते ॥ २८ ॥ तीरे स्वर्गमुखर्याश्च दक्षिणे दक्षिणक्रमे॥ प्राग्भागे गण्डशैलस्य सर्वोपकरणान्विते ॥२९॥ ग्रामे संग्राम-विजयी समाहितमनास्ततः ॥ सञ्चिन्त्य सर्वान् सम्भारांस्तस्मादाहृत्य सत्वरः ॥ ३० ॥ तं वराहं च वल्मीकमभिषेक्तुमना मनाक् ॥ विशुद्धवासा निष्णातो वैष्णवः पूर्णमानसः ॥ ३१ ॥ निष्णातस्तत्सपर्यायां बभूव वसु-धाधिपः ॥

इस बातको सुन कर अमगर्व एवं आश्चर्यित हो, वे राजा उस प्रयत्नमें प्रवृत्त हुए ॥ इस नारायण नारा-यणगिरि लक्ष्मीनारायणके निवास स्थानके दक्षिण भागमें दो योजन दूर स्वर्णमुखी नदीके दक्षिण किनारे

उपकरणोंसे युक्त गण्डशैलके अगले भागका ग्रामसे सभी गौवोंको उस वल्मीकस्थ वराह भगवानके अभिषेक करनेकी कामनासे जल्दीसे ला कर निष्पाप, एवं संग्राममें विजयी, राजा विशुद्ध वस्त्र पहने, पूर्णरूपसे वैष्णव एवं एकाग्र-चित्तवाले हो कर उनकी पूजामें संलग्न हुए ॥ ३२ ॥

अथ क्षीराभिषेकाद्वराहस्य वल्मीकादाविर्भावः

सावधानः सहामात्यः सापत्यः शबरान्वितः ॥ ३२ ॥ अतन्द्रितः साधु सान्द्रमशरीरिवचः स्मरन् ॥ गोक्षीरैर्हेमकुम्भस्थैर्वल्मीकविवरोदरम् ॥ ३३ ॥ अनुस्यूताच्छिन्नधारैरभिषेक्तुं प्रचक्रमे ॥

क्षीराभिषेकसे वल्मीकसे वराह भगवानका निकलना ।

सावधान हो कर, अपने मन्त्रियों, प्रजावर्गों तथा किरातोंके साथ आलसरहित भावसे आकाशवाणीको स्मरण करते हुए आननिश्त हो कर सोनेके घड़ोंमें रखे गौके दूधसे वल्मीकके बिलमें अविछिन्न धारासे अभिषेक करना आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

क्रियमाणेऽभिषेके तु वल्मीकविवरान्तरात् ॥ ३४॥ आविर्बभूव भगवान् वराहवपुरीश्वरः ॥ कोटीरकोटिविलसन्मणिमण्डलमण्डितः ॥ ३५ ॥ अमृतांशुकलाकल्पदंष्ट्रादन्तुरपोत्रकः ॥ ललाटपट्टघटितवेणुपत्रोर्ध्वपुण्ड्रकः ॥३६॥ कम्बुबिम्बसदृक्कण्ठो मांसलस्कन्धमण्डलः ॥ सुपारिजातविटपविडम्बितचतुर्भुजः ॥ ३७ ॥ शङ्खचक्रधरो वाम ऊरुपीठे स्थितां महीम् ॥ देवीं त्रपागोपिताङ्गीं लोलाविलविलोचनाम् ॥ ३८ ॥ सर्वात्मसम्भृतदयाकायिनीं हर्षदायिनीम् ॥ *गाढङ्गाढं समालिङ्गन्नस्या अङ्गं पदद्वयम् ॥३९॥ गृह्णानः सान्द्रहर्षेण लोकयन् वक्त्रपङ्कजम् ॥ विशालवक्षाः श्रीवत्सकौस्तु*भाभ्यां च लाञ्छितः ॥ ४० ॥ यज्ञोपवीतोत्तरीयदृढबन्धनबन्धुरः ॥ हारकेयूरकटकरम्यहीराङ्गुलीयभृत् ॥ ४१ ॥ समभ्युत्थितवामाङ्घ्रिशिञ्जन्मञ्जीरहंसकः ॥ नवरत्नान्तरप्रोतमुक्ताहारभुजान्तरः ॥ ४२ ॥ अप्रमेयैरभिनवैराकल्पैरात्महारिभिः ॥ तपनीयैश्चित्रवस्त्रैश्चित्रैश्चीनांशुकैरपि ॥ ४३ ॥ मालाभिरमलामोदमालाभिर्मधुसूतिभिः ॥ अष्टात्मगर्भसन्दर्भैरपारैश्च परिष्कृतः ॥ ४४ ॥

अभिषेक किये जाने पर वल्मीकके बिलसे वराहस्वरूप, करोड़ों सूर्य्यके समान मणियोंके समूहसे मण्डित वा सुशोभित, चन्द्रमाकी किरणके समान प्रकाशयुक्त, दंष्ट्रासे उन्नत मुखभागवाले, ललाटमें बांसके पत्तेके समान ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण किये, शंखकी शोभावाले कंठयुक्त, मांसदार कन्धेवाले, सुन्दर पारिजात वृक्षका भ्रम दिलानेवाले चार भुजायुक्त, शंख तथा चक्र धारण किये, बायें जांघपर बैठी, लज्जासे अङ्गको छिपानेवाली, चञ्चल आंख-वाली, सभी आत्माधारियोंके लिये दयाकी मूर्ति एवं आनन्दको देनेवाली भूमिदेवीके अङ्गोंको गाढरूप से आलिङ्गन करते, दोनों चरणोंको पकड़ते तथा मुखकमलको देख कर अपार आनन्दको लेते हुए, श्रीवत्स (लहसन) तथा कौस्तुभमणिसे सुशोभित चौड़ी छातीवाले, यज्ञोपवीत, चादर तथा अन्य दृढ़ बन्धनोंसे बन्धे हार, विजायठ, कड़े तथा रमणीय रत्नजटित अंगुठीधारी, घुंघरूदार हंसचरणके समान बायें चरणको उठाये, नव रत्नोंसे अन्तरजडित मोतियोंके हारको भुजाओंके बीच धारण किये, चमकीले विचित्र विचित्र वस्त्रों तथा चीनांशुक (चीनीकपड़ों) से प्रकाशित, मधुको निकालते हुए अमल आनन्द देनेवाले मालाओंसे आनन्दित, एवं अपने अपार आठ तत्त्वरूप आत्माके गूढ सन्दर्भोंके साथ प्रकाशमान हो भगवान प्रकट हुए ॥ ४४ ॥

आजानु चाविर्भवति पुरुषे सूकरात्मनि ॥ विच्छन्ना क्षीरधाराऽभूद्धा-
राला तु प्रमादतः ॥ ४५ ॥

घुटनों तक परमपुरुष भगवानको वराह स्वरूपमें आविर्भूत होनेपर प्रमादसे दूध की धार विछिन्न हुई (टूट गई) अर्थात रुक गई ॥ ४५ ॥

तावान् प्रत्यक्षदृष्टः स तदधो न ह्यदृश्यत॥ पश्चादनेकविधया राजापि
द्रष्टुमक्षमः ॥४६॥ प्रयत्नादप्रतीकारोऽतिष्ठत्तूष्णीं सतृष्णधीः ॥ शुष्कजि-
ह्वाकण्ठसृक्किण्योष्ठः सोष्णं विनिःश्वसन् ॥ ४७ ॥ विदीर्णमानसो मानी
विकीर्णाङ्गो विघूर्णितः ॥

तब उतनेही वे प्रत्यक्ष दृष्ट हुए, नीचके भागने नहीं देख पड़े, पीछे राजा अनेक उपायोंसे भी उनको देखनेमें असमर्थ हुए। तब उपायसे असाध्य देख कर लोभभरी बुद्धिसे चुपचाप खड़े हो गये। उनकी जीभ, कण्ठ, तालु, ओठ तथा मुखके दोनों प्रान्त सूख गये एवं गर्म स्वांस फेंकते हुए चकराये, बेडौल एवं विह्वल चित्त हो गये।

अथ राजानं प्रति भगवदुक्तिः

एवं वृत्ते राज्ञि तदा भगवान् भूतभावनः ॥ ४८ ॥ वराहरूपविभवः
पुराणपुरुषोत्तमः ॥ उवाच वचनं श्रीमान् करुणापरिणामभूः ॥४९॥

राजासे भगवानकी उक्ति

ऐसी हालतमें पड़े राजासे भूतभावन, वराहरूपधारी, परमकारुणिक, पुराण पुरुषोत्तम श्रीभगवान बोले॥४९॥



क्रियमाणेऽभिषेके तु वल्मीकविवरान्तरात् । आविर्बभूव भगवान् वराहवपुरीश्वरः ॥

आजानु चाविर्भवति पुरुषे सूकरात्मनि । विच्छिन्ना क्षीरधाराऽभूत् धारालतु प्रमादतः ॥ (पृष्ठ ५०)

राजन्नलमलं व्यर्थप्रयत्नेनातिभूयसा ॥ एतावांस्तव दृश्योऽहं तदधो न नृपाधिप ॥ ५० ॥ एतद्रूपं प्रतिष्ठाप्य शुद्धया शिलया नृप ॥ तस्मै देह्यखिलान् भोगान् पूर्णो भूत्वा सुपुष्कलान् ॥ ५१ ॥ अप्राकृताङ्गो विरजाः सात्त्विकोऽयमिति स्मरन् ॥ वैखानसैर्महर्षिभिरर्चय त्वं नराधिप ॥ ५२ ॥ पश्चान्मामाप्नुया गच्छ साधु शाधि वसुन्धराम् ॥

" हे राजन् ! इस बहुत बड़े बड़े व्यर्थ प्रयत्नसे क्या ? हे नृपाधिप ! तुमसे मैं इतना ही देखा जाऊंगा इससे नीचे नहीं । हे राजन् ! शुद्ध पत्थरोंसे इस रूप की प्रतिष्ठा कर उसको अखिल भोगों को पूरी तरहसे दो तथा यह अप्राकृत शरीरवाले, रजआदिदोषरहित, तथा परम सात्त्विक हैं ऐसा ख्याल रखते हुये, वैखानसादि महाऋषियोंके द्वारा इसकी पूजा कराओ । तत्पश्चात् मुझे पाओगे, अत मेरी आज्ञासे जा कर वसुन्धराका अच्छी तरह शासन करो ॥ ५३ ॥

श्रीवराहकृतकिन्नरमिथुनस्य किरातत्वनिर्मुक्तिः

एवमुक्त्वा कोलवपू राज्ञोऽभूद्कालयापनाम् ॥५३॥ किरातवपुषा वीक्ष्य विष्णुः किन्नरदम्पती ॥ मुनिशापान्मोचयित्वा ददौ ताभ्यां स्वकं पदम् ॥ ५४ ॥ ततश्चान्तर्दधे देवो वराहवपुरत्र वै ॥

किन्नरदम्पति का किरातशरीरसे वराहद्वारा मुक्ति पाना

राजासे वराहशरीरधारी भगवान इस प्रकार कालक्षेप करनेका उपाय बतला कर किन्नरदम्पतिको किरातस्वरूपमें देख कर श्रीविष्णु भगवानने उन्हें मुनिजीके शापसे मुक्त कर अपना पद प्रदान किया । तत्पश्चात् वह वराहरूपधारी भगवान अन्तर्धान हो गये ॥ ५५ ॥

अथ नृपस्य श्रीवराहप्रतिष्ठापूर्वकं स्वपुरगमनम्

ततः पूर्णमना राजा दिव्यं त्वष्टारमाह्वयत् ॥ ५५ ॥ देवं निर्मापयामास मनसा विश्वकर्मणा ॥ भूवराहशिशुं पूर्णं राजानं नाकवासिनाम् ॥ ५६ ॥ वाराहवपुषं शौरिं दण्डवत्प्रणिपत्य च ॥ शिरस्यञ्जलिमापन्नन् स्मरन्नाश्चर्यमीदृशम् ५७॥ जितेन्द्रियो जितक्रोधो जितप्रकृतिसंस्तरः ॥ जितामित्रो जिताशेषो राजर्षिः स्वां पुरीं ययौ ॥ ५८ ॥

वराहकी प्रतिष्ठाकर राजाका घर लौटना

तत्पश्चात् प्रसन्नमनसे राजाने दिव्य राजमिस्त्री विश्वकर्माको बुलाया। उनके द्वारा उनके इच्छानुसार

भगवानको निर्माण करवाया। उसके बाद जितेन्द्रिय, क्रोधको जीतनेवाला, संसारकी मायाको जीतनेवाला, शत्रु जीतनेवाला एवं संसारविजयी, वे राजर्षि वराहरूपधारी स्वर्गवासी देवताओंके राजा, शौरि, पूर्णचित्त, भूवराह भगवानको माथेपर अञ्जलि बांध कर दण्डवत प्रणाम करके उन आश्चर्योंको स्मरण करते हुए अपनी नगरीको चले गये ॥ ५८ ॥

तदाप्रभृति देवेशो वराहवपुरात्मभूः ॥ अनन्ताचलशृङ्गेऽन्तर्निक्षिप्ता-
ङ्घ्रिसरोरुहः ॥५९॥ देव्या वसुधया सार्धं स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ सुखमास्ते
सुरेशानः सुखी रहसि सुन्दरः ॥ ६० ॥

उसी समयसे वराहरूपधारी आत्मभू, देवदेवेश, भगवान, वेङ्कटाचल पर्वतके शिखर पर अपना चरणचिन्ह रख कर धरणी देवीके साथ, स्वामिपुष्करिणीके तीर पर एकान्तवासी हो परम सुन्दर सुरश्रेष्ठ आनन्दसे निवास करते हैं ॥ ६०

अथ श्रीनिवासस्य स्वामितीर्थदक्षिणतीरवासवर्णनम्

श्रीनिवासोऽपि शेषाद्रौ ततः स्वामिसरस्तटे ॥ निवसन्नात्मनः
कुर्वन्नर्वाचीनान् सुखात्मनः॥७१॥सच्चिदानन्दसन्दोहो वृद्धिक्षयविवर्जितः ॥
कारुण्यपुण्यपदवी कमलाकामुकः कविः ॥६२॥ अभूमिरापदां भूमिः सम्पदां
संविद्द्रुमः ॥ समस्तसामसङ्गीतः सच्चरित्रः पवित्रहृत् ॥६३॥ पुराणपुरुषो
धाता पुरुषस्तमसः परः॥ वैकुण्ठपूर्ववसतिं त्यक्त्वेदानीं हि तिष्ठति ॥६४॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शनसंवादे
प्रियंगुगोप्तृविरातसमीपं प्रति वराहागमनश्रीवराहाविर्भा-
वादिवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायोऽत्र षष्ठः ॥ ६ ॥

श्रीनिवासका स्वामीतीर्थके तीरपर निवास करना

स्वामीसरके तीरपरके शेषाद्रिपर रहते और उसके नीचे सभी लोगोंको सुखी बनाते हुए, आत्मा, सत् चित तथा आनन्द स्वरूप, वृद्धि तथा नाश रहित, कृपा तथा पवित्रताके स्थान, कमलापति, परम कवि, आपदोंसे शून्य, सम्पत्तिकी भूमि, ज्ञानका उत्पत्तिस्थान, सारे सामवेदके गीतरूप, परम सच्चरित्र, पवित्रहृदयी, पुराणपुरुष, विधाता, अज्ञानान्धकारसे परे, श्रीनिवास भगवान भी अपने पूर्व निवासस्थान वैकुण्ठको छोड़ कर इसी जगह निवास करते हुए रहते हैं ॥ ६४ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः



रुचिर नृसिंहाचल जहां, सुन्दर शिव आवास ।
शंकर पुष्करिणी ललित, वर्णन करत प्रयास ॥१॥
पत्थरके वटवृक्ष तल, निर्मित अति रुचि रीत ।
नीलकण्ठ भगवानके, आश्रम परम पुनीत ॥२॥
महादेव संकल्प करि, श्रीनृसिंह पहँ जाय ।
वर्णित सुखद वृत्तान्त है, इस सप्तम अध्याय ॥३॥

अथ श्रीनृसिंहाचलस्थनीलकण्ठतपःक्षेत्रवर्णनम्

देवल उवाच—

सह्यस्करे सपर्यां [illegible] नीलकण्ठो महेश्वरः॥ वैकुण्ठस्यामुत्र गोत्रे नर-कण्ठीरवाकृतेः ॥

नृसिंहाचलपर नीलकण्ठ क्षेत्रका वर्णन

देवल बोले—इस पर्वत पर नीलकण्ठ श्रीमहादेवजी नृसिंह भगवान की पूजा कहां किये थे ? ॥ १ ॥

देवदर्शन उवाच—

शृणु विप्र समाचक्षे पुरारातेःपुराविदः ॥ चरितं चरितार्थानां योगि-नां भोगसाधनम् ॥ २ ॥ अभीष्टफलदं रम्यं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥

देवदर्शनजी बोले—हे प्रिय ! पुराविद् ! पुरारि भगवान् शङ्करका, चरितार्थ योगियोंके उत्तम भोगको साधन करने तथा अभीष्ट चतुर्वर्गके रम्य फलको देने वाला, चरित्र कहता हूं, सुनिये ।

नरकेसरिणो विष्णोः परब्रह्मस्वरूपिणः ॥ ३ ॥ प्रह्लादप्रसवप्राप्तिहेतु-बन्धनिबन्धने ॥

इत उत्तरभागे तु त्रिंशद्योजनसम्मिते ॥ ४ ॥ प्रदेशे भीषणे रोमहर्षणे भूतभीषणे ॥ कश्चित्क्षितिधरः कुक्षिकक्षक्षितिरुहोऽक्षयः ॥५॥ ऋक्षाश्रमः पक्षियूथवासरूक्षाक्षकोटरः ॥ विशङ्कटतटारूढवृक्षगुल्मगुहात-मा: ॥ ६ ॥ शृङ्गक्रोडगुहावासवैखानसवनेचरः ॥ तुङ्गशृङ्गदरीमार्गान्निर्य-न्निर्मलनिर्झरः ॥ ७ ॥ निर्झरापातपर्यन्तस्निग्धानोकहवाटिकः ॥ तप्तहाटक-सङ्काशगैरिकाकीर्णकन्दरः ॥८॥ भानूपलमुखोत्कीर्णचित्रभानुशिखाशतः ॥ चन्द्रप्रभाभिन्नमुखचन्द्रकान्तसुधाद्रवः ॥ ९ ॥ कण्ठीरवनखत्रुट्यत्कुञ्जरीकु-म्भमौक्तिकः ॥ गलितैर्मौक्तिकैर्विष्वगाकीर्णप्रस्थदुःस्थलः ॥ १० ॥ माणिक्य-धामन्यग्भूतरविमण्डलचण्डरुक् ॥ नानाविधमणिव्रातमयूखोद्योतखस्थ-लः ॥ ११ ॥ विद्रुमव्रततिव्रातसंवृतान्तरकन्दरः ॥ विकीर्णपद्मपाषाणपाटल-स्थलकुट्टिमः ॥ १२ ॥ शृङ्गकोटीरसङ्गीतसंविवाद्यप्सरोगणः ॥ लताकुसुम-सङ्कलसलीलालयनिवासिभिः ॥ १३ ॥ मिथुनैः किन्नराणां हि तालश्रुति-विकल्पनैः ॥ दिव्याविर्भावचरितं सङ्गायद्भिरितस्ततः ॥ १४ ॥ अधिष्ठित-भृगुप्रान्तः प्रस्थगुञ्जाभिरञ्जितः ॥ गन्धर्वैर्गर्वविभवैर्गीतवाद्यविशारदैः ॥१५॥ मन्द्रमध्योच्चमहितैर्महितानेककन्दरः ॥ मार्तण्डमण्डलक्षिप्तस्फुरन्नयनमण्ड-लैः ॥ १६ ॥ पुण्डरीकसुहृच्चण्डांशुशोभामण्डलादिभिः ॥ तापसैश्चण्डतेजो-भिर्मण्डितोच्छृङ्गकन्दरः ॥ १७ ॥ क्वचिड्डमरुकोद्घूर्णत्करैरुग्रोर्ध्वकेशकैः ॥ विघूर्णमाननयनैर्मदस्खलितकायकैः ॥ १८ ॥ भैरवैर्भैरवीभिश्च निबिडाडम्ब-रैर्युतः ॥ देवानां पूर्वदेवानां सिद्धानां योगिनामपि ॥ १९ ॥ भूतानां योगि-नीनां च मातॄणां यक्षरक्षसाम् ॥ अन्येषां देवयोनीनामावासोपत्यकाश्र-यः ॥ २० ॥ ध्यायद्भिश्च परं ब्रह्म क्वचिद्योगासनस्थितैः ॥ योगिवर्यैरार्यभा-वैर्योगाभ्यासविचक्षणैः ॥ २१ ॥ एकायनैरेकभावैरालक्षितगुहाश्रयः ॥ कृ-ष्णसारपुरोगामिहरिणीकुलसङ्कुलः ॥ २२ ॥ परस्परपरित्यक्तवैरैर्भीमैर्मृ-गैर्युतः ॥ अप्रमेयप्रभावो यः प्रसिद्धः पर्वतोत्तमः ॥ २३ ॥

यहांसे उत्तरीय भागमें पद्मप्रमाणसी नगोंद भगवानके प्रमादसा उत्तरीस्थान, प्राय: लोग योगमार्गी दृगी

पर, रोमाञ्चित करनेवाले एवं भयङ्कर जानवरोंसे युक्त प्रदेशमें कन्दरों तथा बगलोंमें जन्मे वृक्षोंसे युक्त, शङ्करजीका आश्रमस्थान, पक्षियोंके समूहके निवासयोग्य प्लक्षवृक्षके कोटरोंसे पूर्ण, तट पर जन्मे हुए, बड़े बड़े वृक्षों तथा लतागुल्मोंसे परिव्याप्त, वैखानस तथा वनचरोंसे निवासित, शिखर प्रदेशके क्रोड़ (गोदो) गुफायें तथा अन्यान्य स्थानोंसे भरा, ऊंचे ऊंचे शिखरों, दरियों एवं कन्दरोंके मार्गसे निकलते हुए निर्मल झरनोंसे युक्त, झरनेसे जलप्रपातोंके तट पर्यन्त सुन्दर सुन्दर वृक्षोंकी वाटिकासे सम्पन्न, तपाये सोनेके समान गेरुके टुकड़ोंसे बिछे हुए कन्दरायुक्त, सूर्य्यकान्तमणियोंसे निकलते हुए हजारों विचित्र विचित्र किरणसम्पन्न चोटियोंसे भरा, चन्द्र किरणोंके संयोगसे चन्द्रकान्तमणियोंसे निकलते हुए अमृतरससे पूर्ण, सिंहोंके नखसे फटे हुए हथनियोंके मस्तकसे निकाले गजमुक्तोंसे भरे, पसीजते हुए मणियोंसे व्याप्त उपत्यकासे दुर्गमस्थानवाला—माणिक्यादि अगणित रत्नोंके प्रकाशसे रविमण्डलका तेजवाला, न नाभांतिके मणिसमूहकी चमक (किरण) से प्रकाशित स्थानवाला, मूङ्गेके शृङ्खलासमूहसे घिरे हुए कन्दरासम्पन्न, पद्मराग मणियोंसे पाटे हुए गचवाले कुटियोंसे परिपूर्ण, विद्याधरों तथा शिखरसमूहमें गाते हुए अप्सरागणों से सम्पन्न, लता तथा फूलोंसे बने हुए क्रीडास्थानोंमें निवास करनेवाले, इधर उधर दिव्य आविर्भावके चरित्रको गाते हुए, ताल एवं आलापसे युक्त किन्नरयुगलोंसे अधिष्ठित चोटीवाला, करजती तथा प्रस्थ आदिसे रञ्जित, बजाने तथा गानेमें निपुण, गर्वविभवसे युक्त, मन्द, मध्यम, पञ्चमस्वरसे प्रसिद्ध गन्धर्वोंसे पूर्ण अनेक कन्दरवाला, सूर्य्यमण्डलके समान उद्दीप्त नयनमण्डलवाले, तथा कमलके मित्र सूर्य्यके प्रचण्डकिरणशोभाके मण्डलवाले, तपस्वियोंके प्रचण्डतेजसे मण्डित शिखरों तथा कन्दराओंसे युक्त, कहीं डमरुको हाथोंसे उच्चस्वरसे बजाते, ऊपर उठे उग्र केशवाले, घूमती दो आंखोंवाले मदसे लड़खड़ाते शरीरवाले एवं सघन आडम्बरसे युक्त भैरवी तथा भैरवोंसे सहित देवताओं, असुरों, सिद्धों, योगियों, भूतों, योगिनियों, मातरों, यक्षों, राक्षसों तथा और भी अन्यान्य देवयोगियोंका वासस्थानरूप उपत्यकासे युक्त, कहीं योगासनमें बैठे, परब्रह्मके ध्यान करते योगिश्रेष्ठों तथा आर्यभावसे योगाभ्यास करनेमें कुशल महात्माओंसे अधिष्ठित मकानों तथा एक ही तरहके भावोंसे लक्ष्य गुफा-मण्डलसे युक्त कृष्णसारके पीछे पीछे हरिणीकुलके झुण्डसे युक्त, आपसके वैरभाव त्यागे बड़े बड़े जानवरोंसे घिरा तथा अपरिमित प्रभाववाला परम प्रसिद्ध कोई एक पर्वत है ॥ २३ ॥

तस्य पर्वतवर्यस्य पुण्यारण्यसमीपतः ॥ प्रत्यग्रपल्लवैः कीर्णसुबिल्ववन-
वाटिकैः ॥ २४ ॥ प्लक्षैः रुद्राक्षवृक्षैश्च श्लक्ष्णैः सुदलक्ष्णपर्णकैः ॥ अभ्रंलि-
होर्ध्वशाखाग्रैरज्ञातज्ञातसंज्ञकैः ॥ २५ ॥ यज्ञशालिभिराकीर्णं सङ्कीर्णं यज्ञ-
वाटकैः ॥ अनोकहैरविरलैः सरलैः सर्वतो वृतम् ॥२६॥ समाश्रितानिर्हरण
सानुच्छायं समन्ततः ॥ अहिर्बुध्न्यतपःक्षेत्रं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयन्त्रहृत् ॥ २७ ॥ ॥
नरकण्ठीरवस्थानं कण्ठीरवरवोद्धतम् ॥ भैरवाभैरवाद्धर्षं भूरिभीषणभीष-
णम् ॥ २८ ॥

उमा! पर्वतराजके पुण्यवनके निकट ही सुकोमल पल्लवों, तथा सुन्दर वेलके वगीचोंसे आकीर्ण, वेर एवं रुद्राक्षके सुन्दर सुन्दर सुलक्षण पत्तेवाले वृक्षोंसे मेघको छूनेवाली ऊपर उठी शाखावाले, अनजान, अगणित नामवाले यज्ञमें आवश्यक वृक्षोंसे परिव्याप्त, सघन सीधे वृक्षोंसे सब तरफ घिरा, श्रम तथा दुःखको हरण करनेवाली शिलाचोटीकी छायासे चारों तरफ छिरा, क्षेत्र (शरीर) तथा क्षेत्रज्ञ (जीव) वन्धनका तोडनेवाला, श्रीशिवजीकी तपोभूमि, सिंहोंकी गरजसे प्रतिध्वनित, भैरवरूप, तथा भयङ्करकोभी डरानेवाला, एक नृसिंहस्थान है।

अथ नीलकण्ठाश्रमस्थपुण्यपुष्करिणीवर्णनम्

पवित्रमत्र विपिने वैडूर्यविमलोदका ॥ काञ्चनाम्बुजकल्हारकमलेन्दी-
वरोत्कटा ॥ २९ ॥ प्लवमानप्लवा मीनमकरग्राहमण्डिता ॥ मरालमल्लम-
हिता कारण्डवकुलाकुला ॥ ३० ॥ तारातरलकल्लोलमालालोलान्तराल-
का ॥ उत्फुल्लकैरवा फुल्लपुण्डरीकपुरस्कृता ॥३१॥ मकरन्दरसास्वादमाद्य-
द्धनवयोगणा ॥ त्रिमदोन्मत्तमातङ्गमदधाराविलाऽमला ॥ ३२ ॥ देवर्षिभि-
स्तपस्यद्भी राजर्ष्योघैर्महात्मभिः ॥ उपान्तपर्यन्तभुवि निवसद्भिः समन्त-
तः ॥३३॥ तपोविमलविश्वाङ्गैर्विशङ्कटतटोत्कटा ॥ मन्त्रपण्णवतिं भिन्नां
जपद्भिर्नारसिंहकम् ॥ ३४ ॥ निष्कलं सकलं मिश्रमाश्रितावनविश्रुतम् ॥
श्रीवत्साङ्कं नारसिंहगर्भागर्भकमद्भुतम् ॥ ३५ ॥ ज्ञानानन्दमयं ज्ञानग-
म्यं वैराग्यभोग्यकम् ॥ ध्यायद्भिस्तत्परं ब्रह्मातीन्द्रियं विजितेन्द्रियैः ॥३६॥
ब्रह्मर्षिभिः सेव्यमाना ब्रह्मभूयं गतैः सदा ॥ पुरुजिच्चरणस्पर्शपूता पुरुप-
पावनी ॥ ३७ ॥ पुराणपुण्यभवनं पुरुषोत्तमपूर्तिदा ॥ पूर्वसेवापुरस्कारि-
पुम्मण्डलपुरस्कृता ॥ ३८ ॥ पुण्यपुष्करिणीस्वामिपुष्करिण्यात्मभूमिका ॥
दर्शनात्स्पर्शनात्पानात्सर्वेषां सर्वकामदा ॥ ३९ ॥

महादेव स्थानके पासवाली पुण्यपुष्करिणीका वर्णन।

इस जङ्गलमें पवित्र, वैडूर्यमणिके समान जलवाली, सुनहली, कमल, कल्हार, पद्म तथा उत्कट इन्दीवरवाली; नालों द्वारा तैरी जाती हुई, मछली, मकर, ग्राह आदिसे भरी, राजहंस भरा, कारण्डवों तथा बगुलोंके पुञ्जसे मण्डित, तारापक्षियोंकी मालाओंके चञ्चल कल्लोलसे अवकाश युक्त, खिले कैरव, कमल प्रभृति पुष्पोंसे युक्त, मकरन्द रस-स्वादसे (खानेसे) मदमत्त भ्रमरी पक्षिगणसे युक्त, तीन जगहोंसे गिरतेहुए मद मत्त हाथियोंके मदजलसे भरी, अमल भरी, किनारोंके समस्त स्थानोंमें चारों ओर निवास करते तपस्या करनेवाले देवर्षियों, राजर्षियों, तपस्यासे विमलाङ्ग

महात्माओंसे समाकीर्ण, भिन्न भिन्न छयानवे प्रकारके नरसिंह मन्त्रको जपते हुए लोगोंसे सेवित, कलारहित तथा कलासहित, मिश्ररूप, भक्तोंकी रक्षामें विख्यात, श्रीवत्सचिन्हयुक्त, ज्ञान तथा आनन्दरूप, ज्ञानगम्य, वैराग्यकी भोग-भूमि उस अतीन्द्रिय परब्रह्मको ध्यान करनेवाले ब्रह्मभावप्राप्त ब्रह्मर्षियोंसे सेवित, सदा श्रीशिवजीके चरणस्पर्शसे पवित्र, पुरुषोंको पवित्र करनेवाली, पुराणपुण्यका गृह, पुरुषोत्तमको प्राप्त करानेवाली, पूर्ण सेवा करनेवाले, पुरुष-मण्डलसे प्रशंसित तथा दर्शन, स्पर्शन और पानसे सभी लोगोंकी सब कामनाओंको देनेवाली, परम पुण्य शक्ति-शालिनी एक श्रीस्वामिपुष्करिणी नामक पुष्करिणी है ॥ ३९ ॥

अथ अश्मन्यग्रोधमूलस्थनीलकण्ठाश्रमवर्णनम्

तस्यास्तीरे महानश्मन्यग्रोधो गिरिकन्दरे ॥ शाखाशतैः परिच्छन्नद-
शाशाचक्रवालकैः ॥ ४० ॥ संवर्धितान्धतमसा स्वान्तध्वान्तमलापहः ॥
तापत्रयार्तमनसां जन्तूनामार्तिहारकः ॥ ४१ ॥ कल्पवृक्षप्रतिनिधिर्नि-
धिर्निगमवर्चसाम् ॥ नराणामाश्रितवतां महापातकनाशनः ॥ ४२ ॥

श्रीनीलकण्ठाश्रमवर्णन ।

उसके तीरपर गिरिकन्दरामें एक पत्थरसे निकला हुआ बड़का गाछ है, वह सैकड़ों शाखाओंसे दशों दिशाओंमें फैला हुआ है। वह अपने बढ़ाये हुए घोर अन्धकारसे अन्तःकरणके अन्धकारको हटानेवाला, अतिमतवाले जीवोंके तीनों तरहके तापको हरण करनेवाला, कल्पवृक्षका प्रतिनिधि, शास्त्रीय तेजोंका खजाना एवं आश्रितजनोंके महा-पातकको नाश करनेवाला है ॥ ४२ ॥

तस्योपलवटाख्यस्य मूले शूलिन आश्रमम् ॥ हरिणैर्हरिणीभिश्च नर-
सिंहविवर्धितैः ॥ ४३ ॥ समाध्यासितपर्यन्तभूतलं वृषमूर्तिभिः ॥ चण्ड-
कर्मैः पुण्डरीकैर्मण्डितं शान्तमण्डलैः ॥ ४४ ॥ वैश्वामित्रैः कुशैर्मुञ्जैः
काशैश्चापि समावृतम् ॥ मन्दारकुन्दमाकन्दहरिचन्दनचन्दनैः ॥ ४५ ॥
पाटलाशोकतिलककृतमालतमालकैः ॥ नक्तमालैर्नालिकेरैः पनसै रसनैर्ध-
वैः ॥ ४६ ॥ पुन्नागपूगरुद्राक्षबकुलाक्षहरीतकैः ॥ समन्ततः समच्छायं
वन्यैरन्यैरनोकहैः ॥४७॥ नन्द्यावर्तैर्जातियूथीकरवीरातिवीरकैः ॥ शतपत्रै-
र्दमनकमाधवीमालतीन्दुभिः ॥ ४८ ॥ तुलसीभिर्गन्धलताजातिभिः परितो
वृतम् ॥ पद्मभिः पारिजातादिपादपैश्च परिष्कृतम् ॥ ४९ ॥

उस पत्थरके बड़वृक्षके नीचे श्रीमहादेवजीका आश्रम है। नरसिंहसे बढ़ाये हरिणियों हरिणों एवं बैलरूप

जीवोंसे वह भूतलभाग चारों तरफ निवासित, सूर्य्यके समान शान्त कमलवनोंसे मण्डित, वैश्वामित्र, मुंज, कुश तथा काश नामक घास विशेषोंसे चतुर्दिक परिव्याप्त, मन्दार, कुन्द, माकन्द, हरिचन्दन तथा चन्दनके वृक्षों, पांडर, अशोक, तिलक, कृतमाल, तमाल, नक्तमाल, नारियल, पनस, असन, धव, पुन्नाग, पूग, रुद्राक्ष, वकुल, अक्ष, हरदी आदि अनेकों जङ्गली वृक्षोंसे चारों ओर अच्छी तरहसे छाया हुआ, नदियोंमें क्षुके जाति, यूथी, करवीर, अतिवीर, सौपतिया, दमनक, माधवी, मालती, इन्दु, तुलसी तथा अन्यान्य सुगन्ध लताओंसे चौबगल घिरा तथा पाँचों तरहके पारिजात आदि वृक्षोंसे परिष्कृत ऐसा श्रीशिवजीका एक आश्रम है ॥ ४९ ॥

अथ नीलकण्ठकृतनृसिंहाराधनसंकल्पः

पवित्रेऽस्मिन् हरिक्षेत्रे हरिं नरहरिं हरः॥ अभ्यर्चितुमनाः स्थाणुराजगाम
जगन्मयः॥५०॥स्नात्वाऽस्यां पुण्यपूर्वायां पुष्करिण्यां पुरान्तकः॥ हरो दिव्या-
म्बरधरो हरिचन्दनचर्चितः ॥५१॥ सर्वर्तुकालोत्थफलमालाशतपरिष्कृतः ॥
दिव्यैराभरणैर्मुक्ताफलरत्नप्रवालकैः ॥५२॥ समलङ्कृतसर्वाङ्गस्तुङ्गमङ्गल-
संयुतः ॥ कल्याणवेषकलितैर्नन्दिप्रमुखकैर्गणैः ॥ ५३ ॥ सेवितो भूततति-
भिः सेवारसविशारदैः ॥ सितासितैः सारमेयैर्दुर्वारैः प्रमथैः सह ॥ ५४ ॥
नरसिंहसपर्यायाः प्रत्यूहप्रतिघातिना ॥ सेवितः क्षेत्रपालेन सुप्रसन्नो महे-
श्वरः ॥ ५५॥ परावराणां भूतानां स्रष्टारं परमेश्वरम् ॥ संहर्तारं च पापानां
निग्रहीतारमच्युतम् ॥ ५६ ॥ अनुग्रहीतारमीशमीशानस्य तपःफलम् ॥
सकलं निष्कलं मिश्रं परस्मात्परमव्ययम् ॥ ५७ ॥ लक्ष्मीनृसिंहं संहारनृ-
सिंहं दिव्यसिंहकम् ॥ अखिलार्तिहरं वीरमुग्रं प्रत्यग्रविग्रहम् ॥ ५८ ॥ श-
ब्दब्रह्ममयं शब्दातीतं शब्दविजृम्भणम् ॥ अर्धब्रह्मवपुः पूतं पुराणं पुण्यपूर-
णम् ॥ ५९ ॥ अव्याजमित्रं शत्रुघ्नं शरण्यं शरणात्मकम् ॥ भक्तार्तिभञ्ज-
नपरमात्मनामभयप्रदम् ॥ ६० ॥ सच्चिदानन्दसन्दोहं वृद्धिक्षयविवर्जितम् ॥
पूर्णषाड्गुण्यविभवं त्रैगुण्यविभवास्पदम् ॥ ६१ ॥ श्रीवत्सलक्षणं सर्वं सर्व-
लक्षणलक्षिनम् ॥ अप्रपञ्चं प्रपञ्चात्मप्रपञ्चितपराक्रमम् ॥ ६२ ॥ विद्वेशं
तत्परं प्राप्य ध्यायन्नेकाग्रमानसः ॥ वसानः कृत्तिवसनं पौण्डरीकोत्तरच्छ-
दः ॥६३॥ पाञ्चरात्रविधानेन पञ्चकालपरायणः ॥ तस्योपलयटस्याधो नरके-

सरिणः स्वयम् ॥ ६४ सर्वलोकहितार्थाय सर्वावासस्य शार्ङ्गिणः ॥ सपर्यां सुकृती कर्तुमग्निरेताः प्रचक्रमे ॥ ६५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शनसंवादे श्रीनृसिंहाचलस्थनीलकण्ठतपःक्षेत्रादिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायोऽत्र सप्तमः

शङ्करसे नरसिंहका पूजाविधान ।

इस पवित्रक्षेत्रमें नरसिंह भगवानकी पूजा करनेकी इच्छा करके अग्निमय श्रीशंकरजी आये इस पुण्यप्रद पुष्करिणीमें स्नान कर पुरान्तक दिव्यवस्त्रधारी, हरिचन्दन लगाये, सभी समयोंमें होनेवाले फलफूलोंकी माला पहने, दिव्य मोतियों, रत्नों, मूंगों आदिके भूषणोंसे समस्त शरीरको अलंकृत किये, शुभ मङ्गलयुक्त, कल्याण भेषधारी, नन्दीप्रभृति रुद्रगणोंके साथ, सेवारसविशारद, भूतोंके झुण्डसे सेवित, उजले तथा काले कुत्तों एवं अदम्य प्रमथगणोंके साथ नरसिंहकी पूजामें विघ्नको हटाने वाले, क्षेत्रपालसे सेवित तथा प्रसन्न-चित्त, महेश्वरने—पर और अपर जीवोंके सृष्टिकर्त्ता, परमेश्वर, पापोंको संहार करनेवाले, शासन करनेवाले, अच्युत, कृपा करनेवाले ईश्वर अपने तपके फलस्वरूप, कलाके साथ, कलारहित, मिश्ररूप, परसे भी परे, परम, अव्यय, लक्ष्मीनृसिंह, संहारनृसिंह, विश्वनृसिंह, सम्पूर्णदुःखको हरनेवाले, उग्रनृसिंह, वीरनृसिंह, नूतन, शब्दब्रह्ममय शब्दोंसे परे, शब्दोंके बढ़ानेवाले, आधा शरीर ब्रह्मरूप, पवित्रशरीरवाले, पुराणपुरुष, पुण्यको पूरा करनेवाले, निश्छलमित्र, शत्रुओंको नाश करनेवाले, शरण्य, शरणागतवत्सल, भक्तोंके दुःखको काटनेवाले, प्राणियोंको अभयदान देनेवाले, सत्-चित् तथा आनन्द स्वरूप, बुढ़ापा तथा नाशसे रहित, पूरे छवों गुणोंसे सम्पन्न, तीन गुणोंके विभवके स्थान, श्री वत्सचिन्हसे युक्त, सर्वेश्वर, सब सुलक्षणोंसे युक्त, निष्प्रपञ्च, प्रपञ्चरूप होनेसे सर्वव्यापी पराक्रमवाले, विश्वेश, तत्पर, परब्रह्म भगवानको एकाग्र मनसे ध्यान करते हुए, व्याघ्रचर्मका दुपट्टा पहने तथा कमलदल बिछाये, पाञ्चरात्र विधिसे पांचों कालमें परायण हो कर उस पारस (पत्थर) वट वृक्षके नीचे सभी लोगोंके कल्याणके लिए सबका निवासस्थान शार्ङ्गधनुधारी भगवान स्वयं श्री नृसिंहविष्णुकी सविधान पूजा करना आरम्भ किया ॥ ६५ ॥

इति सप्तमोऽध्यायः

अष्टमोऽध्यायः



नीलकण्ठ भगवानने, जैसी पूजा कीन्ह।
नरहरिकी अभ्यर्चना, मूर्ति प्रतिष्ठा दीन्ह ॥१॥
आश्रमके माहात्म्य पुनि, पाण्डव तीर्थ महात्म।
शिवशङ्कर कृत तीर्थ का, वर्णन विविध सुखात्म ॥२॥
नारायण नामक सुगिरि, को महिमा विशेष।
इस अष्टम अध्यायमें, वर्णित है संक्षेप ॥३॥

अथ नीलकण्ठकृतनृसिंहाराधनविधिः

देवदर्शन उवाच—

श्रीकण्ठः शङ्करः शान्तो नरकण्ठीरवं महः ॥ वैकुण्ठं वैजयन्त्याढ्यमकुण्ठितमनाः स्मरन् ॥ १ ॥ सर्वलोकहिताकाङ्क्षी स्थाणुः स्वस्थात्ममानसः ॥ अस्मिन् न्यग्रोधमूलस्य मूले वैयाघ्रचर्मणि ॥ २ ॥ अगर्भसाग्रदर्भाग्र्यसन्दर्भाक्षतनिर्मिते ॥ पद्मासने समासीनः संयमी समदर्शनः ॥ ३ ॥ कारुण्यार्णवकल्लोललोललीलाकुलेक्षया ॥ वीक्षण्या वीक्षयन्विष्वक् त्रिलोकीं त्रिपदाङ्किताम् ॥ ४ ॥ तरुणादित्यकिरणसहोदरजटासटः ॥ नीलकण्ठः पशुपतिः श्रीकण्ठः परमेश्वरः ॥ ५ ॥ कपर्दजूटकलितकमलाटिकलालयः ॥ पिलयोदन्तचोरश्रीरिन्दुकाग्निस्त्रिलोचनः ॥ ६ ॥ जटाटवीलसद्गङ्गाशिरोमालाभिमण्डनः ॥ अष्टमूर्तिरनन्तात्मा विशिष्टविभवेष्टभूः ॥ ७ ॥ शरन्निर्मलपूर्णेन्दुमण्डलाननमण्डलः ॥ उद्यत्संवर्तमार्तण्डचण्डकच्चक्रमण्डनः ॥ ८ ॥ पवित्रिताष्टाविंशद्युम्नपदिपकोर्पन्यिद्धरक्षणम् ॥ दक्षिणामूर्तिर-

व्यग्रः समग्रद्रव्यसाधनः ॥९॥ शत्रुविध्वंसकं ब्रह्म नृकेसरिकिशोरकम् ॥
निष्कलं सकलीकृत्य नित्याभ्यर्चनकामुकः ॥ १०॥ कारुण्यपुण्यपदवी मृडः
कात्यायनीसखः ॥ चराचराणां सर्वेषाममीषां मित्रमात्मनाम् ॥ ११ ॥
आनन्दकन्दमहिमा बभूव भुवनेश्वरः ॥

शंकरसे नृसिंहकी आराधना वर्णन ।

देवदर्शन बोले सम्पूर्ण लोकोंकी हितकामनावाले, व्याघ्रांबर, प्रसन्नात्मा, श्रीशंकर भगवान इसी बड़वृक्षके जड़तले बिना अङ्कुरके नोकयुक्त कुशके बने आसनपर बैठे, समदर्शी, संयमी, पद्मासन लगा कर बैठे, कृपासमुद्रके कल्लोल एवं चञ्चल लीलाओंवाले,तीनों नेत्रोंसे वामन रूपधारी, विष्णु भगवानके पदाङ्कित त्रिलोकको देखते हुए, तरुण सूर्य्यकी किरणके समान जटाधारी, पशुपति, परमेश्वर, श्रीकण्ठ, तथा नीलकण्ठ, श्रीलक्ष्मी तथा तिलकयुक्त कपर्द जटाधारी, प्रलयकालके तेज, पराक्रम, तथा शोभाको धारण करनेवाले, सूर्य्य, चन्द्रमा तथा अग्निरूप तीन आंखवाले, जटावनमें शोभित गङ्गा तथा मुण्डमालासे मण्डित, अष्टमूर्ति, अनन्तात्मा, श्रेष्ठविभववाले, शरद्कालके पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान मुखमण्डलवाले, प्रलयकालमें उगते हुए प्रचण्ड सूर्य्यके प्रकाशकी शोभा अथवा तेजसे शोभायमान पवित्र अङ्गवाले, अहिर्बुध्न्य, संसारकी रक्षाके इच्छुक, दक्षिणामूर्ति, सावधान, सम्पूर्ण सम्पत्तिके साधन एवं शत्रुका नाश करनेवाले, ब्रह्ममूर्ति तथा निष्कल, श्रीनृसिंह भगवानको सगुण बनाकर नित्यपूजा करनेकी कामनावाले, कृपाके पवित्र स्थान, कात्यायनी भगवतीके स्वामी, मृड, समस्त चराचर जीवोंके मित्र, भुवनेश्वर, आनन्दकन्दकी महिमावाले, तथा परम शान्त, भगवान शंकरजी बैजयन्तीकी माला पहने बैकुण्ठवासी भगवान नृसिंहदेवको अकुण्ठित मनसे स्मरण कर रहे थे ।

अथ नीलकण्ठप्रतिष्ठितश्रीनृसिंहवर्णनम्

नृसिंहगर्भं सकलं शत्रुसादकरं परम् ॥ १२ ॥ श्रीक्षणीकोणसंश्लिष्ट-
त्कृष्णवर्त्मशिखाजटम् ॥ दंष्ट्राकोटिविटङ्काग्रनिःसरद्वह्निकीलकम् ॥ १३ ॥
ऊरूपरि समुत्तानविपातितहिरण्यकम् ॥ नखत्रुटितदैत्येन्द्रवक्षोविवरगह्वर-
म् ॥ १४ ॥ असुरासृक्कण्ठशिरोलुण्टाकानेकबाहुकम् ॥ अनेकशस्त्रास्त्रधरा-
नेकबाहुसहस्रकम् ॥ १५ ॥ घोराट्टहासनिनदविपाटितवियत्तटम् ॥ भवद्वयव्या-
त्मकं ब्रह्म भासकम्भक्तवत्सलम् ॥ १६ ॥ अतिभीतिप्रदं देवं विभवानन्द-
दायकम् ॥ देवानां पूर्वदेवानां सामान्यमधिदैवतम् ॥ १७ ॥ रत्नप्रतानप्रत्युप्त-
किरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥ द्युमणिप्रतिकाशाभ्यां कुण्डलाभ्यां विराजित-
म् ॥ १८ ॥ नवरत्नान्तरप्रोतमौक्तिकत्रिसरान्वितम् ॥ पञ्चसप्तसरोभिश्च

मण्डितोरुभुजान्तरम् ॥ १९ ॥ स्फुरत्कटककेयूरकङ्कणाङ्गुलिभूषणम् ॥ उत्त-
रीयब्रह्मसूत्रोदरबन्धनबन्धुरम् ॥२०॥ घण्टानिनादलुण्ठकघण्टिकादामनाद-
कम् ॥ प्रपदप्रस्फुरद्रोचिर्मणिमञ्जीरहंसकम् ॥ २१ ॥ छिन्नबोल्लसमायुक्तकि-
ङ्किणीपादशोभितम् ॥ प्रत्यग्रोत्फुल्लरक्ताब्जप्रतिमाङ्घ्रिकरस्थलम् ॥ २२ ॥
विचित्ररत्नखचितपीतकौशेयवाससम् ॥ सर्वर्तुकामोदयुक्तप्रसूनस्रगलङ्कृत-
म् ॥ २३ ॥ दिव्यसद्गन्धसन्दर्भगर्भारुणविलेपनम् ॥ अनेकचीनांशुकस्रगा-
लेपालङ्कृताङ्ककम् ॥ २४ ॥ सेव्यमानं सुरश्रेष्ठपुरुहूतपुरोगमैः ॥ वृन्दारकै-
श्च मन्दारपुष्पाञ्जलिलसत्करैः ॥ २५ ॥ समन्ततः सेव्यमानं सनन्दसनका-
दिभिः ॥ सप्ततन्त्रीनादगर्भाथर्वश्रुतिविलासिना ॥२६॥ उपवीणयतानन्ता-
पादानं भक्तितो मया ॥ संस्तूयमानं गन्धर्वतुम्बुरुप्रमुखैर्मुदा ॥२७॥ पक्षी-
न्द्रविष्वक्सेनाभ्यां गणैस्तु कुमुदादिभिः ॥ रहस्सदात्मपर्यन्ते संवृतं परिचा-
रकैः ॥ २७ ॥ परिबर्हाभूषणानि हेतिमिङ्गितवेदिनीम् ॥ दधतीभिर्वैष्णवी-
भिः शक्तिभिर्वृतमन्तिके ॥२९॥ रौद्रीभिः शक्तिभिश्चैव ब्राह्मीभिः परितो
वृतम् ॥ परमात्मानमात्मीयमात्मनामभयप्रदम् ॥ ३० ॥ सेव्यमानं सिद्ध-
सङ्घैः सप्तलोकनिवासिभिः॥ नरसिंहात्मकं ब्रह्मप्रतिष्ठाप्येह भूतले ॥३१॥
सन्निधिं प्रार्थ्य सर्वेषां दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥ उपचारैः समभ्यर्च्य संस्कारैः
संस्कृतो भवान् ॥ ३२ ॥ परावराणां भूतानामीश्वरः स महेश्वरः ॥ सम-
तिष्ठत सर्वात्मा कुर्वन्नयनमात्मनि ॥३३॥ धर्मं भागवतं तत्र चरन् भग-
वतीसखः ॥ पुराणे सुखमास्तेऽस्मिन् पुरारिपुरुषः सदा ॥ ३४ ॥ तस्मादयं
नीलकण्ठः प्रसिद्धः सर्वतो महान् ॥ जन्तूनामपि जीवातुर्जङ्गमाजङ्गमात्म-
नाम् ॥ ३५ ॥

महादेवसे स्थापित श्रीनृसिंहजीका वर्णन ।

नर और सिंहके आकारवाले, सगुण, शत्रुविध्वंसक, परमश्रेष्ठ, तीनों नेत्रोंके कोनेसे निकली अग्निशिखाके समान जटावाले, दाँतोंके तीक्ष्ण कोरोंसे निकलता आगकी चिनगारियोंसे सम्पन्न, जाँघोंके ऊपर ऊँचे हिरण्यकशिपुको लिटाये हुए, नखोंसे दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुकी छातीके गह्वरको विदारणकारी, दैत्योंके मस्तक तथा कण्ठको तोड़नेसे निकले रक्तोंसे लाल हुए, अनेक भुजावाले, अनेक शस्त्र तथा अस्त्रको धारण करनेवाले, अनेक हजार पादवाले, घोर अट्ट-

हासरूप हंसीकी आवाजसे आकाशमण्डलको शब्दायमान कर देने अथवा फाड देनेवाले, परम मंगलधाम, ब्रह्मरूप, प्रकाशमान, भक्तवत्सल अत्यन्त शोभाप्रद, विभव तथा आनन्दको देनेवाले, देवताओं तथा असुरोंके समान अधिदेवता, रत्न जटित जगमगाते मोतियोंके किरीटमुकुटसे प्रकाशित, सूर्य्यमणिके समान प्रकाशवाले कुण्डलोंसे सुशोभित, नौव रत्नोंसे जडे मुक्ताओंके तीन पांच लड़ी तथा सात लड़ीवाले, हारोंसे सुशोभित भुजाओंके अन्तरवाले, जगमगाते कडे, बिजायठ, कङ्कण, अङ्गुठी आदिसे भूषित, दुपट्टा, चादर, यज्ञोपवीत तथा उदरबन्धनसेयुक्त, घण्टाके शब्दको लजानेवाले, घुंघरुकी (लडीके) आवाजसे मुखरित, चमकीले पदभूषण तथा मणिजटित पायजेब एवं हंस-भूषणसे भूषित, छिन्न लताओंसे सम्पन्न नूपुरसे सुशोभित चरण कमलवाले, प्रथम विकसित रक्तकमल स्वरूप चरण-कमल तथा करकमलयुक्त, विचित्र विचित्र रत्नोंसे जड़े पीताम्बरधारी, सभी ऋतुओंके गन्धयुक्त फूलोंकी मालाको धारण किये, स्वर्गीय सुगन्धके कोश गर्भ लालचन्दनके लेप लगाये, अनेक महीन वस्त्र, माला तथा लेपसे सुशोभित अङ्गवाले, देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ इन्द्रादि देवताओंसे हाथोंमे मन्दार तथा पारिजात फूलोंकी अञ्जलिपूर्ण सेवासे सेव्य-मान, सनक सनन्दनादिसे चतुर्दिक पूजित, सप्तस्वर वीणाके नादके साथ अथर्ववेदके विलासी, अनन्त भगवानके चरित्रको भक्तिसे गाते हुए, तुम्बरुप्रभृति गन्धर्वगणोंसे आनन्दके साथ स्तूयमान, गरुड़, विष्वक्सेन तथा कुमुदादि परवारगणोंसे एकान्तमें भी चौफसलसे घिरे हुए, मोरपंखादि आभूषण तथा इंगित जाननेवाला हेतिनामक आयुध धारण करनेवाली वैष्णवी, रुद्राणी, ब्रह्माणी आदि शक्तियोंसे चारों ओरसे परिवृत, परमात्मा, अपने भक्तोंको अभय देनेवाले, सातोंलोकोंके निवासी, सिद्ध समूहोंसे सेवित, नृसिंहात्मक ब्रह्मस्वरूप भगवानको इसी पृथ्वी पर प्रतिष्ठा करके सबके दृष्ट तथा अदृष्ट फलको देने वालेके निकट प्रार्थना करके उपचारोंसे पूजन तथा संस्कारोंसे संस्कृत कर पर एवं अपर प्राणिमात्रके स्वामी ईश्वर एवं सर्वात्मा श्रीशङ्करजी अपनी ही आत्मामें आखोंको लगाये उसी जगह विराजे भगवतीके सखा, पुरारी, पुराणपुरुष, श्री शङ्कर भगवान, भागवत धर्मका आचरण करते हुए सुखपूर्वक रहने लगे। जीवधारियोंमे प्राणस्वरूप, जङ्गम आत्माओंमें अङ्गमस्वरूप यह नीलकण्ठ भगवान सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए ॥ ३५ ॥

अथ श्रीनृसिंहसान्निध्येन नीलकण्ठाश्रमस्याधिक्यवर्णनम्

पुण्यपुष्करिणी सेयं पुण्यापुण्यफलप्रदा ॥ पुरुषार्थप्रदा पुंसां पुरारि-
प्रीतिपूरणी ॥ ३६ ॥ घनमेतदहिर्बुध्न्यतपःक्षेत्रं पवित्रभूः ॥ पुण्यारण्यं यत्र
तप्तं तपः कोटिविधं भवेत् ॥ ३७ ॥ असावत्रोपलवटः पटुः पापविनाशने ॥
सकृद्दर्शनमात्रेण सर्वाभीष्टफलप्रदः ॥ ३८ ॥

नीलकण्ठाश्रमके उत्कर्षका वर्णन

यही पुण्य और पुण्योंके फलको प्रदान करनेवाली, पुरुषोंको पुरुषार्थदायिनी, भगवानके प्रेमको पूर्ण करनेवाली पुण्यपुष्करिणी है। यहां का अहिर्बुध्न्य शंकर भगवानके तपस्याका क्षेत्र परमपुण्य अरण्य है। यहां की गयी

तपस्या करोड़ गुण हो जाती है। यहां यह पत्थरका वटवृक्ष पापको नाश करनेमें परम कुशल तथा एक बार दर्शनमात्र से ही सभी अभीष्टफलको प्रदान करनेवाला है ॥ ३६ ॥

नरकण्ठीरवतनोर्मन्दिरं त्विन्दिरापतेः॥ श्रीकण्ठार्चतनतृप्तस्य वैकुण्ठस्य महात्मनः ॥ ३९ ॥ सिंहाहार्यो हरः पापात्कृतशौचस्त्वहोविलम् ॥ नीलकण्ठाश्रम इति स्थानानि नृहरेर्हरेः ॥ ४० ॥

श्रीकण्ठ भगवानकी पूजासे तृप्त वैकुण्ठ वासी महात्मा नृसिंहशरीरधारी इन्दिरापति नरहरि श्री नृसिंह भगवानके सिंहाहार्य, पापहर, कृतशौच, नीलकण्ठाश्रम, अहोबिल ये पांच स्थान हैं। ॥ ४० ॥

एतेषामपि पञ्चानां स्थानानां स्थानसेवितम् ॥ स्थानमेतत्समुद्दिष्टं प्रथितं सुप्रतिष्ठितम् ॥ ४१ ॥ नीलकण्ठाश्रमे सिंहमहीधरमहाह्वयम् ॥ महिताश्चर्यमाहात्म्यभूमिर्भूमिर्निरागसाम् ॥ ४२ ॥ किञ्च वक्ष्यामि विप्रर्षे समाहितमनाः शृणु ॥

श्री नीलकण्ठ आश्रममें जो निरापराधियोंका आवास सिंहाचल नामक महा आश्चर्यमय माहात्म्यकी भूमि है जो इतर स्थानोंसे सेवित इन पांच स्थानोंमें भी अत्यन्त सुप्रतिष्ठित तथा परम प्रसिद्ध बनाया गया है। हे विप्र! मैं कुछ कहता हूं सावधान हो कर सुनो ॥ ४३ ॥

अथ पाण्डवतीर्थमाहात्म्यम्

प्राचीनबर्हिरिति श्रीनिवासगिरेः सरित् ॥ ४३ ॥ प्रसूता प्रथतः स्वामिपुष्करिण्यविदूरतः ॥ विद्राविणी चावद्यानां निरवद्यातिभूमिदा ॥४४॥ मायाविनो महाविष्णोर्महामायासमाश्रयाः ॥ पुरा ज्ञातिवधं कृत्वा पाण्डवाश्चण्डविक्रमाः ॥ ४५ ॥ समेत्य यत्र तत्पापनुत्तये दीनमानसाः ॥ कालीयव्यालकालेन वासुदेवेन चोदिताः ॥ ४६ ॥ सम्पूर्णमानसाश्चतुराप्लवं निरुपप्लवाः ॥ मलप्रध्वंसिनीं मायां महिषासुरमर्दिनीम् ॥ ४७ ॥ सम्पूज्य संस्तूय तेऽपि श्रीनिवासमधोक्षजम् ॥ अतीन्द्रियं समभ्यर्च्य स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ ४८ ॥ निरेनसः शुद्धधियो ययुस्तस्माद्यथागतम् ॥ विविशा विमलप्रज्ञा नानाज्ञानविलासिनः ॥ ४९ ॥ अमूमुशन्ति सरितन्तीर्थं पाण्डवमित्यतः ॥

पाण्डवतीर्थमाहात्म्य

श्रीनिवास पर्वतसे पूर्व दिशामें स्वामीपुष्करिणीके निकट ही सब दोषको दूर करनेवाली तथा अत्यन्त आनन्द देनेवाली, प्राचीनबर्हि नामक एक नदी है। परम अनिन्द्य मायावी महाविष्णुकी मायाका आश्रय ले कर प्रचण्ड पराक्रमी पाण्डवगणने प्राचीन कालमें अपनी स्वजातियोंका वध कर दीन दुःखित चित्तसे उस पापसे निर्मुक्त होनेकी इच्छासे कालीयमर्दन वासुदेव श्री कृष्ण भगवानसे प्रेरित हो कर निश्चिन्तरूपसे यहा आ कर सन्तुष्ट मनसे स्नान किया, और मलको नाश करनेवाली तथा महिषासुरको मर्दन करने वाली महामायाकी पूजा तथा स्तुति कर, अतीन्द्रिय अधोक्षज श्री निवास भगवानको स्वामिपुष्करिणीके तीर पर अच्छी तरह अर्चन कर निष्पाप तथा शुद्ध बुद्धिसे वहां से जिस तरह आये थे उसी तरह चले गये। इसी कारण नानाप्रकारके ज्ञानोंके विलासी, निर्मल बुद्धिवाले, विधिज्ञजन उस तीर्थनदीको पाण्डवतीर्थके नामसे प्रशंसा करते हैं॥ ५० ॥

अथ नारायणगिरिप्रभाववर्णनम्

पश्चात्तस्याः पुष्करिण्या नारायणगिरिर्महान् ॥ ५० ॥ यस्य दर्शन-
मात्रेण मुच्यन्ते जन्तवः स्वतः ॥ संवर्तोदितदुर्दर्शसहस्रकिरणप्रभाः ॥५१॥
तेजःपुञ्जै रञ्जिताशः कञ्जकिञ्जल्कपिञ्जरः ॥ पर्वताधिपतिस्तत्र सुखमा-
स्ते सुरोत्तमः ॥ ५२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवर्षिवसिष्ठनारद-
संवादे नीलकण्ठाश्रमवर्णने नीलकण्ठकृतनृसिंहाराधनविद्या-
दिकवर्णनं नामैकत्रिंशोऽध्यायोऽष्टमः ॥८ ॥

नारायण गिरि प्रभाव वर्णन

उस पुष्करिणीके पीछे नारायणगिरि नामक एक महापर्वत है, जिसके दर्शनमात्रसे ही जीवधारी स्वतः मुक्त हो जाते हैं। प्रलयकालमें उदीयमान अत्यन्त दुर्धर्ष हजार किरणवाले सूर्यकी प्रभासे युक्त, चतुर्दिक तेज पुञ्जोंसे व्याप्त, कमल, किंजल्क आदिसे सुशोभित, उस पर्वतराज पर सुरोत्तम भगवान् सुखसे निवास करते हैं ॥५२॥

इति अष्टमोऽध्यायः

नवमोऽध्यायः



नारायण गिरि पै महा, भैरव कथा अनूप।
महिषार्दिनीने जहां, पाया दुर्गा रूप ॥१॥
महादेव तप कर जहां, भये रूप अर्धाङ्ग।
व्यासादिक मुनिने जहां, किये विमल सत्सङ्ग ॥२॥
पृथक पृथक वर्णन किये, स्वामी तीर्थ महान।
इस नवमें अध्यायमें, कहा सूत भगवान ॥३॥

अथ नारायणाद्रिस्थभैरवाख्यक्षेत्रपालकोदन्तः

देवल उवाच

क्ष्माधरक्षितिभृतो दिव्यदेशस्य वैभवम् ॥ देवदर्शनमाऽऽचक्ष्व वैष्णवं वैदिकर्षभ ॥ १ ॥

नारायण पर्वत पर भैरवनामक क्षेत्रपालकी कथा

देवल बोले—हे वैदिकश्रेष्ठ देवदर्शनजी ! वृषभाचलकी गोदमें स्थित दिव्यदेशका विष्णुसम्बन्धी वैभव कहिये॥१

देवदर्शन उवाच

शृणु देवल मेधाविन्समाहितमना मुने ॥ कण्ठीरवगिरेर्वृत्तं वैकुण्ठवसतेरिदम् ॥ २ ॥ वैकुण्ठादीन्दिव्यलोकान् सन्त्यज्य भगवान् स्वयम् ॥ मायावी तत्र रमिकः श्रीनिवासः परः पुमान् ॥ ३ ॥ सर्वावासः सरोजाक्षः परमात्मा सनातनः ॥ इच्छावृत्तमपश्योऽसौ रूपीवेशश्च वैभवः ॥ ४ ॥ तं देशं रक्षति सदा भैरवः परिचारकः ॥ अमितैः सारमेयैश्च प्रमथैर्भिमाशु-

रैः ॥५॥ काकोदरालङ्कृताङ्गस्फुरत्खड्गकपालभृत् ॥ रवस्फूर्जड्डमरुकत्रिशूलः शूलिभृत्यकः ॥ ६ ॥

देवदर्शन बोले—हे महाबुद्धिवाले देवलजी ! सावधान हो कर वैकुण्ठनाथका निवास स्थल नृसिंहपर्वतका वृत्तान्त सुनिये। वैकुण्ठादि दिव्य लोकोंको छोड कर स्वयं मायावी परमपुरुष सर्वावास हजार नेत्रवाले सनातन, परमात्मा, रसिक, श्रीनिवास इच्छासे प्रपञ्चकी सृष्टि करनेवाले, हृषीकेश, केशव, भगवान, वहीं रहते हैं।

उस देशको, असुरोंको नाश करनेवाले प्रमथगणों तथा काले कुत्तेके साथ सर्पोंसे अलंकृत, तेजस्वीशरीर खड्ग और कपाल धारण किये, शब्द करते हुए डमरु त्रिशूल लिये, शिवजीके भृत्य भैरव रक्षा करते हैं ॥६॥

प्राचीने तस्य देशस्य स्थितोऽञ्जनगिरिस्तटे॥ तरुणादित्यसङ्काशाखिलाभीष्टफलप्रदा ॥ ७ ॥ परिभूता पुरा गौरी दक्षयागे पुरारिणा ॥ अन्तर्हिताऽभूदुद्वेगात्कपर्दी च तिरो दधे ॥८॥ आहर्तुकामा वामार्धं तनोस्तस्य हरस्य सा ॥ तपस्तप्तुमनास्तूर्णमाजगाम तटीमिमाम् ॥ ९ ॥ समाहितमनास्तस्यां सा तेपे दुर्गमं तपः ॥ घोरेण तपसा तां तु दुर्गेत्यूचुर्महर्षयः ॥ १० ॥ प्रीतः कपर्दी दत्त्वास्यै शरीरार्धं प्रसादतः ॥ अर्धनारीवपू रुद्रो ययौ सोऽपि यथागतम् ॥ ११ ॥

नारायण पर्वत पर तप करनेसे गौरीदेवीको दुर्गारूपसे शिवजीका अर्द्धाङ्गित्व प्राप्ति

उस देशके पूर्वकी ओर अञ्जनागिरिके किनारे, तरुणसूर्य्यके समान प्रभासे युक्त, सकल कामनाके फलको देनेवाली, दक्षयज्ञमें पुरारि भगवान श्रीशंकरजीसे हराई हुई श्रीगौरीदेवी उद्वेगसे अन्तर्धान हो गई और उसी समय कपर्दी भगवान् श्रीशंकरजी भी अन्तर्हित हो गये॥ ८॥ वह (देवी) उन्हीं शंकर भगवान्के अङ्गके आधे (बांये) अंशको प्राप्त करनेकी कामनासे तपस्या करनेकी इच्छासे इसी नदीको तराईमें अति शीघ्र आ गयी। और उनमें एकाग्रचित्त हो कर उसने अत्यन्त दुर्गम तपस्या की। उसकी उस दुर्गम तपस्यासे महर्षिगण उसको दुर्गा कहने लगे। शंकर भगवानने प्रसन्न हो कर अपने प्रसन्नतासे उसे अपनी शरीरका आधा भाग (वाम भाग) प्रदान किया। रुद्ररूप महादेवजी अर्द्धनारीरूप (आधा स्त्री आधा पुरुष) हो कर जिधरसे आये थे उधर ही चले गये॥ ११ ॥

अथ अत्र्यादिपञ्चाशन्महर्षिप्रशंसितस्वामिपुष्करिणीमाहात्म्यम्

पुरारिदयिता पुण्यपुरुषार्थफलप्रदा ॥ समीपे श्रीनिवासस्य सैपाञ्जनगिरेस्तटे ॥ १२ ॥ स्वामिपुष्करिणी तत्र पुराणी पुण्यपूरणी ॥ स्वर्भूपातालवासिन्यास्त्रिस्रोतसः प्रसूतिभूः ॥ १३ ॥ त्रिविक्रमकृतो विष्णोः सपर्यायै

यदात्मजा ॥ सुरज्येष्ठेन नियमात्कमण्डलुसमुद्धृता ॥ १४ ॥ यस्यास्तीरे च विन्दन्ति चतुर्वर्गानभीप्सितान् ॥ सुरा नराश्च तिर्यञ्चः प्रपञ्चीकृतकारणाः ॥ १५ ॥ माहात्म्यमूचिरे तस्याः परस्परमतीन्द्रियम् ॥ आप्लुता विमलप्रज्ञा मुनयो ब्रह्मवादिनः ॥ १६ ॥

अत्रि आदि पचासों ऋषियोंसे प्रशंसित स्वामिपुष्करिणीका माहात्म्य ।

पुरारि भगवान् शंकरजीके परमप्रिया, पुरुषार्थके फलको प्रदान करनेवाली, गौरी भी श्रीनिवास भगवान्के अञ्जनाचलके किनारेपर चली गयी। प्राचीन, पुण्योंको पूरा करनेवाली अर्थात् बढ़ानेवाली, स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालवासिनी तीनों पुण्य गङ्गाओंके उत्पत्ति स्थान, श्रीस्वामिपुष्करिणी है। यह त्रिविक्रम श्रीविष्णु भगवान्की पूजाके लिये सुरश्रेष्ठ ब्रह्माजीके द्वारा अपने कमण्डलसे नियमपूर्वक निकाली गयी थी। जिसके तीर पर देवता, मनुष्य, पक्षी तथा सृष्टिमात्रके सम्पूर्ण प्राणि अभीष्ट चतुर्वर्गको खोज करते हैं, उसीका माहात्म्य सबोंने स्नान करके परस्पर निराले स्वभावसे गाया है ॥ १६ ॥

अत्रिरुवाच—

जपं कुर्वन्नपां मध्ये तद्विष्णोरिति यः सकृत्॥ स्वामिपुष्करणीस्नातो मुच्यते पातकात्स तु ॥ १७ ॥

(१) अत्रिजी बोले—जो विमलबुद्धिवाले ब्रह्मवादी मुनिगण इसके जल होमे विष्णुका जप करते हुए एक बार भी स्नान करते हैं, स्वामिपुष्करिणीमें स्नान किये वे सभी लोग पापसे मुक्त हो जाते हैं ॥ १७ ॥

व्यास उवाच—

अवगाह्य जले स्वामिपुष्करिण्याः समाहितः ॥ व्यपोह्य भ्रूणहत्याघमश्नुतेऽभीष्टसम्पदम् ॥ १८ ॥

(२) व्यासजी बोले—जो स्वामिपुष्करिणीके जलमें एकाग्र मनसे स्नान करता है, वह भ्रूणहत्याके महापापसे मुक्त हो कर अभीष्ट सम्पत्तिका भोग करता है ॥ १८ ॥

वसिष्ठ उवाच—

यः स्नायाद्वारिणि स्वामिपुष्करिण्याः स्मरन् हरिम् ॥ सप्तजन्मकृतं पापं सहसा स व्यपोहति ॥ १९ ॥

(३) वसिष्ठजी बोले—जो भगवान्को स्मरण करता हुआ स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करता है वह सात जन्मोंमें किये हुए पापको सहसा नाश कर डालता है ॥ १९ ॥

पराशर उवाच—

यः करोत्याप्लवं स्वामिसरसीजलमध्यतः ॥ सोऽतीत्य निरयं सर्वं ब्रह्म-
भूयाय कल्पते ॥ २० ॥

(४) पराशरऋषि बोले—जो स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान करता है, वह सभी नरकोंको पार कर ब्रह्मभाव पानेमें समर्थ हो जाता है ॥ २० ॥

गौतम उवाच—

कीर्तयित्वा जलेऽन्यत्र स्वामिपुष्करिणीति यः ॥ स्नायाद्ध्यायञ्छ्री-
निवासं मुच्यते सोऽतिपातकात् ॥ २१ ॥

(५) गौतमऋषि बोले—जो श्रीनिवास भगवानको स्मरण करता हुआ किसी दूसरे जल (जलाशय) में केवल स्वामिपुष्करिणीका नाम ले कर स्नान करते हैं वे बड़ेसे बड़े पापसे मुक्त हो जाते हैं ॥ २१ ॥

भरद्वाज उवाच—

प्रातरुत्थाय ये प्राज्ञाः स्वामिपुष्करिणीति वै ॥ कीर्तयन्त्याहितात्मा-
नस्ते यान्ति परमं पदम् ॥ २२॥

(६) भरद्वाजमुनि बोले अपनी आत्माके हितेच्छुक जो बुद्धिमान प्रातःकालमें उठ कर स्वामिपुष्करिणी ऐसे नामका भी कीर्तन करते हैं, वे परमपदमें जाते हैं ॥ २२ ॥

मनुरुवाच—

स्वामिपुष्करिणीतीर्थजलं प्रीताः पिबन्ति ये ॥ तेऽपि निर्धूतपाप्मानो
यान्ति ब्रह्म सनातनम् ॥ २३ ॥

(७) मनुभगवान् बोले—जो लोग स्वामिपुष्करिणी तीर्थके जलको प्रेमसे पान करते हैं, वे भी पापको नष्ट कर सनातन ब्रह्मके स्थानमें जाते हैं ॥ २३ ॥

यम उवाच—

स्वामिपुष्करिणीकूले नरा नक्तन्दिवं च ये ॥ वसन्त्यभोजनास्तेऽपि
लभेरन् परमं पदम् ॥ २४ ॥

(८) यम बोले—जो मनुष्य स्वामिपुष्करिणीके किनारे रातदिन उपवास रह कर वास करते हैं वे भी परमपदप्राप्त करते हैं ॥ २४ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच—

विगाह्य स्वामिसरसो जलं वीतक्लमा जनाः ॥ प्रार्थितं प्राप्नुयुः प्राज्ञाः
प्रजापतिरुवाच ह ॥ २५ ॥

(९) याज्ञवल्क्यजी बोले - प्रजापति श्रीब्रह्माजीने कहा है कि स्वामिसरके जलमें स्नान करनेसे प्रमशांत हो कर ज्ञानी मनुष्य अपने अभिलषित वस्तुको पाते हैं ॥ २५ ॥

हारीत उवाच—

हरिं स्मरन्तः कुर्वन्ति स्नानं स्वामिसरोजले ॥ वीतांहसो वीतनिद्रा विशन्ति विमलं पदम् ॥ २६ ॥

(१०) हारीतऋषि बोले—भगवानको स्मरण करते हुए स्वामिसरोवरके जलमें जो स्नान करते हैं, वे पापसे छूट कर निद्रारहित हो, विमल स्थानमें जाते हैं ॥ २६ ॥

अङ्गिरा उवाच—

येऽनुतिष्ठन्त्यनुष्ठानं स्वामिपुष्करिणीजले ॥ अनेकजन्मजनितमेषामेनो विनश्यति ॥ २७ ॥

(११) अङ्गिरा ऋषि बोले—जो स्वामिपुष्करिणीके जलमें अनुष्ठान करते हैं, उनका अनेक जन्मोंमें किया हुआ पाप विनाश हो जाता है ॥ ७ ॥

उशना उवाच—

उदीरयन्ति ये नित्यं स्वामिपुष्करिणीति च ॥ दुष्कर्मपङ्कं निर्धूयाश्नुवते तेऽपि सत्फलम् ॥ २८ ॥

(१२) उशनाजी बोले—जो स्वामिपुष्करिणी ऐसा नाम ही नित्य जपते हैं वे दुष्कर्मरूपी पंकोंसे धुल कर सत्कर्मके सुफलका भोग करते हैं ॥ २८ ॥

संवर्त उवाच—

ये कीर्तयन्ति सर्वत्र सदा स्वामिसरोवरम् ॥ तेप्यवद्यं विनिर्धूय निरघा भवन्ति वै ॥ २९ ॥

(१३) संवर्तऋषि बोले—जो सब जगह सदा स्वामिसरोवरको कीर्तन करते हैं वे भी अपने पापोंसे धुल पापरहित हो जाते हैं ॥ २९ ॥

आपस्तम्ब उवाच—

स्वामिपुष्करिणीतोये स्नानपानादिकर्म ये ॥ कुर्वन्ति पापस्तम्भं ते परित्यज्याप्नुवन्ति सत् ॥ ३० ॥

(१४) आस्तम्भ भगवान् बोले—जो स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान, पान आदि कर्म करते हैं वे अपने पापके स्तम्भसे छूट कर सत्यस्थानको प्राप्त करते हैं ॥ ३० ॥

मरीचिरुवाच—

नारायणगिरेः प्रान्ते स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ यः किल्बिषी वसत्येकं
दिनं निष्किल्बिषी भवेत् ॥ ३१ ॥

(१५) मरीचिऋषि बोले—नारायण पर्वतके प्रान्तभागके स्वामिपुष्करिणीके तीरपर जो पापी एक दिन भी निवास करता है वह पापरहित हो जाता है ॥ ३१ ॥

मृकण्डुरुवाच—

कण्ठीरवगिरेः कुक्षौ पक्षिराड्वाहहर्षके ॥ यः सेवते स्वामिसरः स
नरः सुरसङ्गतः ॥ ३२ ॥

(१६) मृकण्डुऋषि बोले—जो नृसिंह गिरिके गोदमें स्थित गरुडवाहन भगवान्के आनन्ददायक श्रीस्वामिपुष्करिणीका सेवन करता है, वह पुरुष देवसगी हो जाता है ॥ ३ ॥

पुलस्त्य उवाच—

क्रोडे वेङ्कटशैलस्य सरः क्रोडाभिनन्दकम् ॥ गायते यस्त्रिषवणं स नरः
सर्वसम्मतः ॥ ३३ ॥

(१७) पुलस्त्यऋषि बोले—श्रीवेङ्कटाचलके क्रोड (गोद) में स्थित, श्रीवराह भगवान्को आनन्द देनेवाले श्रीस्वामिसरोवरको त्रिकाल कीर्तन करता है, वह मनुष्य सभी मनुष्योंमें सर्वमान्य होता है ॥ ३३ ॥

कात्यायन उवाच—

वैकुण्ठस्य प्रीतिकरे कण्ठीरवगिरेस्तटे ॥ स्वामिपुष्करिणीं योऽसौ सेवते
स महान् भवेत् ॥ ३४ ॥

(१८) कात्यायनऋषि बोले—जो वैकुण्ठवासी भगवान्को आनन्ददायक श्रीनृसिंहगिरिके तटपर इस स्वामिपुष्करिणीको सेवन करता है वह बहुत महान (पुरुष) हो जाता है ॥ ३४ ॥

बृहस्पतिरुवाच—

कुञ्जाञ्जनगिरेः स्वामिपुष्करिण्यप्सु यो नरः ॥ कृताप्लवः सकृत्सत्यं
कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ ३५ ॥

(१९) बृहस्पतिजी बोले—गजगिरि तथा अञ्जनागिरिके स्वामिपुष्करिणीके जलमें जो मनुष्य स्नान करता है, वह तुरन्त कृतकृत्य हो जाता है ॥ ३५ ॥

भृगुरुवाच—

प्रातरुत्थायानुदिनं स्वामिपुष्करिणीं स्मरन् ॥ गोघ्नो यो मासमाप्नोत गोप्रदानात्स शुध्यति ॥ ३६ ॥

(२०) भृगुजी बोले—जो गोघाती हो कर भी प्रति दिन प्रातःकाल उठ कर स्वामिपुष्करिणीको स्मरण करता हुआ एक मास निवास और गो प्रदान करनेसे वह शुद्ध हो जाता है ॥ ३६ ॥

वाल्मीकिरुवाच—

स्वामिपुष्करिणीतीरे यो वसत्युपपातकी ॥ मासं गोदानतः शुद्धो भवेन्नर इति श्रुतिः

(२१) वाल्मीकीजी बोले—यह सुना गया है कि जो उपपातकी स्वामिपुष्करिणीके तीर पर एक मास निवास करता है वह फिर गोदान करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ३७ ॥

शंखलिखितावूचतुः

पारेस्वामिसरो विद्वान् स्मार्तं श्रौतं करोति यः ॥ सहस्रधा कृतं तेनेत्युशन्ति ब्रह्मवादिनः ॥ ३८ ॥

(२२-२३) शंख तथा लिखित ऋषि बोले—स्वामिसरोवरके तीर पर जो विद्वान स्मार्त तथा श्रौत कर्म करते हैं (उनके विषयमें) ब्रह्मवाद गण कहते हैं कि उनका वह कर्म हजार गुण होता है ॥ ३८ ॥

शातातप उवाच—

हव्यकव्यात्मकं कर्म स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ वार्धुषिर्नास्तिको वापि यः करोति स सत्फलः ॥ ३९ ॥

(२४) शातातप बोले सूद खानेवाले अथवा नास्तिक कोई भी मनुष्य जो हव्य, तथा कव्यात्मक कर्म स्वामि पुष्करिणीके तटपर करता है वह सच्चा फलभोगी होता है ॥ ३९ ॥

बोधायन उवाच

स्वामिपुष्करिणीतीरनिवासो हरिमेधसः ॥ अश्वमेधादिकं यज्ञं यः करोति महेश्वरः ॥ ४० ॥

(२५) बोधायन ऋषि बोले—जो भगवद्भक्त स्वामिपुष्करिणीके तीरपर निवास तथा यहीं अश्वमेध आदि यज्ञोंको करता है, वह साक्षात् महादेव हो जाता है ॥ ४० ॥

मार्कण्डेय उवाच—

मृगराडद्रिकुहरे हरेरानन्ददायिनि ॥ कीर्तयन्स्वामिसरसीं नावसीद-
ति मानवः ॥ ४१ ॥

(२६) मार्कण्डेय बोले—जो नृसिंहपर्वतके कन्दरामें स्थित भगवानको आनन्द देनेवाली स्वामिपुष्करिणीका कीर्तन करता रहता है वह दुःख नहीं पाता ॥ ४१ ॥

माण्डव्य उवाच—

गोविन्दमन्दिरे स्वामिपुष्करिण्यास्तटे वसन् ॥ वासुदेवपरो मर्त्यो भ-
वेद्वासवपूजितः ॥ ४२ ॥

(२७) माण्डव्य ऋषि बोले—जो स्वामिपुष्करिणीके तीर पर श्रीगोविन्द भगवानके मन्दिरमें निवास करता हुआ वासुदेव भगवान्का पूजापरायण रहता है वह पुरुष इन्द्रसे भी पूजित होता है ॥ ४२ ॥

शाण्डिल्य उवाच—

स्वामिपुष्करिणीतीरे पञ्चकालपरो वसन् ॥ अपञ्चत्वो भवेन् मुक्तः
पञ्चोपनिषदात्मकः ॥ ४३ ॥

(२८) शाण्डिल्य बोले—जो स्वामिपुष्करिणीके तीर पर निवास करता हुआ पञ्चकालीन पूजा करता है, वह जीवन्मुक्त हो कर पञ्च उपनिषद् स्वरूप हो जाता है ॥ ४३ ॥

काश्यप उवाच—

यो नरः स्वामिसरसि स्मरञ्छौरिं कृताप्लवः ॥ कर्मनिर्मूलको धीरः
कृतकृत्यो भवेत्स हि ॥ ४४॥

(२९) काश्यप बोले—जो मनुष्य वासुदेव भगवान्का स्मरण करता हुआ स्वामिसरोवरमें स्नान करता है, वह धीर कर्मबन्धनको निर्मूल कर कृतकृत्य हो जाता है ॥ ४४ ॥

कण्व उवाच—

स्वामिपुष्करिणीतीर्थे यः पिबेच्चुलकत्रयम् ॥ अहोरात्रकृतं पापं तत्क्ष-
णादेव नश्यति ॥ ४५ ॥

(३०) कण्व बोले—स्वामिपुष्करणीतीर्थके जलको जो मनुष्य तीन चिल्लू पीता है वह रात दिन किये हुए पापको तत्क्षण नाश करता है ॥ ४५ ॥

अगस्त्य उवाच—

इन्द्रियैः कर्मभिर्ज्ञानैर्मनसा सह यत्कृतम् ॥ आप्लवात्स्वामिसरसि तदेनः शुध्यति क्षणात् ॥ ४६ ॥

(३१) अगस्त्यजी बोले—इन्द्रिय, कर्म, ज्ञान तथा मनसे जो पाप किया गया है वह पाप स्वामिसरोवरमें स्नान करनेसे क्षणमात्रमें ही शुद्ध हो जाता है ॥ ४६ ॥

दुर्वासा उवाच—

कीर्तयेत्स्वामिसरसीं सह सर्वेन्द्रियैर्हि यः ॥ पूज्यते सिद्धसङ्घैः स सनन्दसनकादिभिः ॥ ४७ ॥

(३२) दुर्वासा बोले—जो अपनी सभी इन्द्रियोंसे स्वामिसरोवरका कीर्तन करता है, वह सनक, सनन्दन आदि पूज्य सिद्धोंसे पूजित होता है ॥ ४७ ॥

विश्वामित्र उवाच—

पवित्रं स्वामिसरसि स्पृष्ट्वा तोयं निरेनसः ॥ विज्ञानसम्पदो विष्णुं द्रष्टुकामा भवन्ति हि ॥ ४८ ॥

(३३)—विश्वामित्र बोले—जो स्वामिसरोवरके पवित्र जलको स्पर्श करते हैं वे निष्पाप हो कर विज्ञानकी सम्पत्ति एवं श्री विष्णु भगवान्के दर्शनकी कामनासे हो जाते हैं।

शक्तिरुवाच—

पवित्रवन्तः परमाः पञ्चसन्मन्त्रविग्रहाः ॥ भवन्ति तेऽवगाहन्ते ये स्वामिसरसोजलम् ॥ ४९ ॥

(३४)—शक्तिमुनि बोले—जो स्वामिसरके जलमें स्नान करते हैं वे पवित्र आत्मा, परम, पांच मन्त्रस्वरूप हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

शुक उवाच—

स्वामिपुष्करिणी सैषा पुराणी पुण्यपूरणी ॥ सुराणां च नराणां च तिरश्चां चात्मशोधिनी ॥ ५० ॥ यस्यां कोलवपुर्भूत्वा श्रीनिवासः परः पुमान् ॥ देवीभिः शक्तिभिश्चैव क्रीडानुगुणभूतिभिः ॥ ५१ ॥ विचित्रविविधानेकशृङ्गयन्त्रधुनिक्रमैः ॥ जलक्रीडां वितनुते विश्वाप्यायकरीं सदा ॥५२॥

(३५) शुकदेवजी बोले यह देवताओं, मनुष्यों, पक्षियों तथा अन्य जीवोंकी आत्माओंको शुद्ध करने

वागे तथा उनके प्राचीन ॥ राको वहानशाली, वही स्वामिपुष्करिणी है। जिसमें वगहरूपहो का परमपुरुषश्री-निवास भगवान देवियों, शक्तियों तथा क्रीडा गुणशाली जीवोंके साथ, विचित्र विचित्र अनेकों शङ्ख यन्त्र तथा धृति कर्मोंने संसारको तृप्त करने वाली क्रीडा करते हैं ॥ ५२ ॥

शौनक उवाच—

सैषा हि स्वामिसरसो समञ्जसजगद्धिता ॥ कीर्तनस्नानपानैश्च ताप-
त्रयनिवारिणी ॥ ५३ ॥

(३८)—शौनक बोले—यह वही निष्पाप तथा संसारकी भलाई करने वाली, तथा कीर्तन, स्नान एवं पानसे नाना नरकके तापोंको मिटाने वाली, स्वामिपुष्करिणी है ॥ ५३ ॥

नारद उवाच—

माधवानन्दजननी मदनज्वरमाथिनी ॥ मदयत्यात्मजातानि स्वामिपु-
ष्करिणी ह्यसो ॥ ५४ ॥

(३७)—नारद बोले—यह माधव भगवानके आनन्दकी जन्मभूमि कामज्वरको मथन करनेवाली तथा अपने पुत्रोंको प्रसन्न करनेवाली स्वामिपुष्करिणी है ॥ ५४ ॥

क्रतुरुवाच—

स्वामिपुष्करिणी सोम्या सोमपीथी सुरर्षभः ॥ यस्यामवभृथस्नानं कु-
रुतेऽद्यापि विश्वसृः ॥ ५५ ॥ कुञ्जरारिगिरेः कुञ्जे प्रकाशिताखिलभावना ॥
साधवः स्वामिसरसि स्नानात्संसारतारिताः ॥ ५६ ॥ देवगणा विबुधा य-
स्यां स्नात्वा निरंहसः॥ विष्णुं साक्षात्कर्तुकामाः स्वामिपुष्करिणी हि सा ५७

(३८)—क्रतु ऋषि बोले—स्वामिपुष्करिणी परम सौम्य है, जिसमें अमृतभोजी देवश्रेष्ठ ब्रह्माजी आज भी अवभृथ स्नान करते हैं। सिंहाचलके कुञ्जमें अखिल भावना प्रकाशित साधुगण स्वामिसरोवरमें स्नान करनेसे ही भवसागरसे पार हो गये हैं। प्रधान देवतागण जिस सरोवरमें स्नान कर पाप रहित हो कर श्री विष्णु भगवानका साक्षातकार करनेके अभिलाषी हुए थे वह यह स्वामिपुष्करिणी है ॥ ५७ ॥

सत्याषाढ उवाच—

आषाढानामाश्रमश्रीराश्रमाचारशालिनाम् ॥ अन्येषां भूतिभूमिश्च
सैषा स्वामिसरोऽभिधा ॥ ५८ ॥

(३९) सत्याषाढ बोले—यह वही स्वामिपुष्करिणी नामक सरोवर है, जो आचारशील मनुष्योंको आश्रम शोभा, सन्यासियों, ब्रह्मचारियों तथा अन्यान्य लोगोंकी कल्याणभूमि है ॥५८॥

कुण्डिन उवाच—

कुहरे सिंहशैलस्य सरसी स्वामिपूर्विका ॥ शीलाचारवतां नृणाम-
शीलानामपीष्टदा ॥ ५९ ॥

(४०)कुण्डिन बोले—सिंहाचलके कुहरमें स्थित स्वामिपुष्करिणी, शील, आचारवान एवं शीलशून्य पुरुषोंको भी अभीष्ट प्रदान करनेवाली है ॥ ५९ ॥

हारीत उवाच—

जयन्ती चापदां भूमिः सम्पदां सर्वकामदा ॥ सरसी स्वाम्युपपदा
सैषा विष्णुपदीजनिः ॥ ६० ॥

(४१) हारीत ऋषि बोले—विपत्ति स्थानको जीतने तथा सकल सम्पत्तियोंको देनेवाली एवं साक्षात विष्णुपदी जननी (गङ्गा) का उत्पत्तिस्थान यही वह स्वामिसरसी है ॥ ६० ॥

जैमिनिरुवाच—

शिरस्यञ्जलिमाधान्नस्वामिपुष्करिणीं स्तुवन् ॥ स्मरन् हरिं स्वानुष्ठानं
यः करोति स पुण्यभाक् ॥ ६१ ॥ स्नानं सकृत्कुर्वते ये स्वामिपुष्करिणी-
जले ॥ हव्यकव्येषु ते योज्या नरा नारायणप्रियाः ॥ ६२ ॥

(४२) जैमिनि बोले—जो मनुष्य मस्तक पर अञ्जलि बांधे स्वामिपुष्करिणीकी स्तुति करते तथा श्रीविष्णु भगवानको स्मरण करते हुए अपना अनुष्ठान करता है वह पुण्य भागी होता है। स्वामिपुष्करिणीमें जो पुरुष एक बार भी स्नान करते हैं वेही साक्षात नारायण भगवानका प्रिय हव्य तथा कव्योंमें उपयुक्त हो जाते हैं ॥६२॥

जाबालिरुवाच—

स्नानादन्येषु तोयेषु स्वामिपुष्करिणीं स्मरन् ॥ कृतकृत्यः कृतात्मा
स मर्त्यस्तत्फलमाप्नुयात् ॥ ६३ ॥

(४३) जाबालि बोले—स्वामिपुष्करिणीको स्मरण करते हुए अन्य जलाशयोंमें भी स्नान करनेवाला कृतात्मा पुरुष कृतकृत्य हो कर उसका फल भोगता है ॥ ६३ ॥

पितामह उवाच—

स्वामिपुष्करिणीतीर्थपरिचर्यापरो हि यः ॥ स मर्त्यो वैष्णवीं भूतिं
मर्त्यत्वं समवाप्नुयात् ॥ ६४ ॥

(४४) पितामह बोले—जो स्वामिपुष्करिणीतीर्थकी सेवा करता है वह वैष्णवी ऐश्वर्य प्राप्त कर मनुष्य-जन्म पाता है ॥ ६४ ॥

सनक उवाच—

यस्यास्तीरे निवसति श्रीनिवासः परात्परः ॥ सा धन्या स्वामिसरसी सेवते तां य आत्मवान् ॥ ६५ ॥

(४५) सनकजी बोले—जिसके किनारे पर श्रीनिवास भगवान रहते हैं, तथा जिसकी सेवा आत्मनिष्ठ करते हैं वह स्वामिपुष्करिणी धन्य है ॥ ६५ ॥

सनन्दन उवाच—

विष्णुपादोद्भवं ब्रह्मकरस्पर्शपवित्रितम् ॥ पवित्रितेशानजटाजूटं स्वामिसरोजलम् ॥ ६६ ॥

(४६) सनन्दन बोले—स्वामिसरोवरका जल विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न होने, ब्रह्माजीके कर स्पर्श तथा श्री शङ्करजीके जटाजूटसे पवित्र किया हुआ श्रीगंगाजल ही है ॥ ६६ ॥

सनत्कुमार उवाच—

या पुनात्याप्लवात्सम्यग्भुवनानि चतुर्दश ॥ स्वामिपुष्करिणी धन्या सा सर्वफलदायिनी ॥ ६७ ॥

(४७) सनत्कुमार बोले—जो स्नान करनेसे चौदहों लोकोंको पवित्र करती है, सब तरहके फलोंको देनेवाली वह स्वामिपुष्करिणी परम धन्य है ॥ ६७ ॥

वामदेव उवाच—

सरांसि यानि दिव्यानि सन्ति त्रिजगतीतले ॥ तेषामेषा स्वामिनी हि स्वामिपुष्करिणीत्यतः ॥ ६८ ॥

(४८) वामदेवने कहा—त्रैलोक्यमें जितने दिव्य सरोवर हैं उन सभी पुष्करिणियोंकी स्वामिनी यही है। जिससे यह स्वामिपुष्करिणी कहलाती है ॥ ६८ ॥

सनातन उवाच

ये नराः प्रातरुत्थाय तामिमां कीर्तयन्ति ते ॥ स्वामिपुष्करिणीभक्ता विशन्ति विमलं पदम् ॥ ६९ ॥

(८९) सनातनजी बोले—स्वामिपुष्करिणीके भक्त जो मनुष्य प्रातःकालमें उठ कर इस स्वामिपुष्करिणीका कीर्तन करते हैं, वे विमल (विष्णु) पदमें प्रवेश करते अथवा जाते हैं ॥ ६९ ॥

देवदर्शन उवाच—

इत्यूचिवांसो विद्वांसः कृतकृत्या ह्यमर्षणाः ॥ तस्यास्तीरे पुण्यभूमावासते मुनिपुङ्गवाः ॥ ७० ॥ क्वचित्कदाचित्क्रीडार्थं दिव्यैः परिजनैः सह ॥ शेषसेनेशगरुडप्रधानैः सेवितं शुभम् ॥७१॥ सेवमानाः श्रीनिवासं साक्षादक्षिपमङ्गलम् ॥ चतुर्भुजमुदाराङ्गमतसीगुच्छसच्छविम् ॥ ७२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शन
संवादे अग्रशदिप्रभाशनमहापकृतस्वामिपुष्करिणीप्रशंसनं
नाम द्वात्रिंशोऽध्यायोऽत्र नवमः ॥ ९ ॥

पापरहित कृतकृत्य विद्वान ऋषिगण यह बोले—कभी भी श्री शेषजी, विष्वक्सेन और अन्यान्य दिव्य परिचरोंके साथ क्रीड़ा विहारके लिये आये हुए, तथा गरुड़ आदि प्रधान प्रधान गणोंसे सेवित मङ्गलमूर्त्ति, चारभुजा वाले उदारशरीर तथा अलसीके फूलके गुच्छकी शोभावाले स्वयं प्रत्यक्ष श्रीनिवास भगवानकी ही सेवा करते हुए उस पुण्य भूमिके तीर पर मुनिश्रेष्ठ गण बसते हैं।

इति नवमोऽध्यायः

दशमोऽध्यायः



* मनोहर छन्द *

असुरोंका अत्याचार यदा जब भूतलमें।
ब्रह्मादिक देवगण क्षीरोदधि जाय रहे॥
स्तवन अनेक विधि किये भय विह्वल हो।
दर्शन पाय परमाभय पाय रहे॥
श्रीसहित दयार्द्र हो आई जब सन्मुखमें।
जगत बचाई भगवान जहँ छाय रहे॥
स्वामिपुष्करिणी के तीर नारायणगिरि।
ब्रह्मादिक जाय शिरनाय स्तुति गाय रहे॥१॥

भूताधि वास श्री निवास भगवानजीका।
प्रगट विमान गुण गान उनने कियो॥
सुन्दर स्वरूप दिखलाय कुशलादि जब।
पूछी ब्रह्मादिने हाल बदलाय दियो॥
विनती अनेक विधि करके सृष्टिकर्ताने।
अभय वरदान दे बहुत समझाय दियो॥
कुमुदाक्ष पार्षदको भेजा दैत्य नाश हेतु।
देखनेको विदा करि अन्तर्धान ह्वै गयो॥२॥

अथ दैत्योपद्रवज्ञापनार्थं ब्रह्मादीनां क्षीरसागरगमनम्

देवल उवाच—

स्वामिपुष्करिणीकूले नारायणगिरेर्भृगौ॥ आविर्भावः कथं विष्णोः श्रीनिवासस्य शार्ङ्गिणः॥ १॥

दैत्योंके उपद्रवको निवेदन करनेके लिये ब्रह्मादिदेवगणोंका क्षीर सागरमें जाना

देवलजी बोले—श्रीस्वामिपुष्करिणीके तट पर नारायण पर्वतपरके भृगुस्थानमें शार्ङ्गधारी श्रीनिवास विष्णु भगवानका आविर्भाव किस प्रकार हुआ था?॥ १॥

देवदर्शन उवाच—

शृणु ब्रह्मन्समाचक्षे समाहितमना मुने॥ प्रश्नं सर्वाण्डगर्भस्य प्रादुर्भावात्मकं विभोः॥ २॥ पुरा दुर्मेधसा दैत्यप्रवरेणामरारिणा॥ पीडिता रुद्रभक्तेन भृशं ब्रह्मादयः सुराः॥ ३॥ शान्ताग्निसदृशाः शुष्कवदनाः शोकविह्वलाः॥ पराजिता जडात्मनः किंकर्तव्याविवेकिनः॥ ४॥ दैत्यारिं शरणं प्राप्तुं प्रयता पन्नमानसाः॥ क्षीराब्धिं प्रापुरप्रासस्वावासास्तस्य शान्तये॥ ५॥ तुष्टुवुस्तत्र दैतेयविध्वंसनविचक्षणम्॥ लक्ष्योपलक्षितं विष्णुं विश्वरक्षणदीक्षितम्॥६॥

देवदर्शनऋषि बोले—हे ब्राह्मण! हे मुने! सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिनके गर्भमें है उस विभु भगवानका प्रादुर्भाव-विषयक सभी प्रश्नोत्तर कहता हूं सावधान चित्तसे सुनिये॥ २॥

प्राचीनकालमें देवताओंके शत्रु एवं श्रीशिवजीका भक्त एक दैत्यश्रेष्ठसे अत्यन्त पीड़ित, बुझे हुए अग्निके समान निस्तेज, सूखे शरीरवाले शोकसे विह्वल तथा पराजित किंकर्तव्य विमूढ़ हो कर, ब्रह्मादि देवतागण दैत्योंके शत्रु श्रीविष्णु भगवान्का शरण पानेकी इच्छासे अपनी शान्तिके लिये प्रयत्नपूर्वक क्षीरसागरमें पहुंचे, और दैत्योंके विनाश करनेमें परम कुशल, श्रीलक्ष्मीजीसे युक्त, संसारकी रक्षामें दीक्षित श्रीविष्णु भगवान्की स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥

देवा ऊचुः

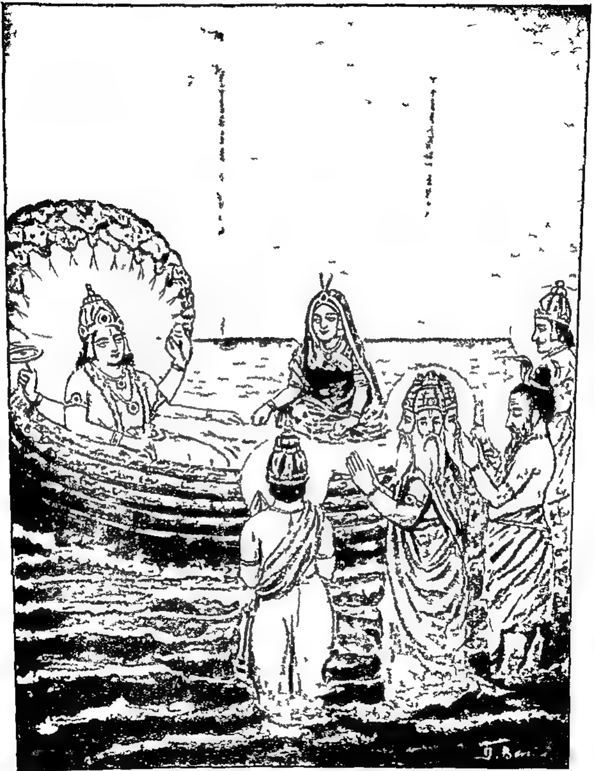
अथ ब्रह्मादिकृतक्षीराब्धिशायिस्तुतिः

ॐ नमो देवदेवाय पूर्वदेवाय खण्डिने ॥ श्रीवत्साङ्काय च नमः परस्मै परमात्मने ॥ ७ ॥ नमः परस्मै व्यूहोपव्यूहान्तरविभूतये ॥ विभवाय नमस्तस्मै विश्वान्तर्यामिणेऽणवे ॥८॥ अर्चावताराय नमोऽजन्मने जन्मभाजिने ॥ मायाविने जगत्स्रष्ट्रे लक्ष्मीनारायणात्मने ॥ ९ ॥ जगत्प्रत्यवरोहाय जगदानन्दिने नमः ॥ जगन्मङ्गलभूताय जाह्नवीजनकाङ्घ्रये ॥१०॥ जङ्गमाजङ्गमजगद्धातुर्जननकारिणे ॥ जनार्दनाय जम्भारेरनुजाय नमो नमः ११॥

ब्रह्माआदिदेवताओंका श्रीविष्णुभगवानकी स्तुति करना।

देवतागण बोले—भो देवआदिदेव, आपदेव, खड्गि भगवान्को नमस्कार है। श्रीवत्साङ्क, परमात्मा आपको नमस्कार है। परमपुरुष व्यूह तथा उपव्यूहके आत्मस्वरूप सूर्यरूप भगवान्को नमस्कार है। उस विभवरूप सर्वान्तर्यामी, अणुरूप,भगवानको नमस्कार है। अजन्मा तथा जन्मवाले एवं अर्चावतारको नमस्कार है। मायावी, जगत्की सृष्टि करनेवाले, लक्ष्मीनारायणरूप, जगत ऊंच नीच बनानेवाले तथा जगतको आनन्द देनेवाले भगवान्को नमस्कार है। जगतके मङ्गलस्वरूप, गङ्गाजीके उत्पादक चरणकमलवाल एवं चराचर जगतकी उत्पत्ति करनेवाल ब्रह्माजीके निर्माता, जनार्दन, उपेन्द्र आपको नमस्कार है।

श्रियःपते नमस्तुभ्यं सभ्यसन्दोहसद्मिने ॥ सदा विष्णो महाविष्णो विष्णोऽपरादिरूपिणे ॥ १२ ॥ नमो नलिननेत्राय नेत्रभूताय नाकिनाम् ॥ नारायणाय नाथाय नागभोगशयाय ते ॥ १३ ॥ विश्वेश्वराय विश्वाय विश्वातीताय ते नमः ॥ विश्वाध्यक्षाय वीशानवाहनायादिवेधसे ॥ १४ ॥ नित्याय निरवद्याय निराकाराय नीतये ॥ निस्सीमकल्याणगुणगणातीताय ते नमः ॥ १५ ॥ सच्चिदानन्दसन्दोह देहवृद्धिक्षयाक्षम ॥ अच्युतानन्द गोविन्द नमस्तुभ्यं महात्मने ॥ १६ ॥



पीडिता रुद्रभक्तेन भृशं ब्रह्मादयः सुराः । क्षीराब्धिं प्रापुरप्रासस्त्वाशासारतस्य शान्तये ॥

तुष्टुवुस्तत्र दैत्येयविध्वंसनविचक्षणम् । (पृ ८१)

सभ्योंके समुदायके संगी लक्ष्मीपतिको नमस्कार है। सदा विष्णु, महाविष्णु, अगारादि रूप (मत्स्यादि अनेक) धारण करनेवाले कमलाक्ष, देवताओंके नमनरूप, नारायण, जगत्स्वामी, शेषनागपर शयन करनेवाले, विश्वेश्वर, संसाररूप, संसारसे परे भगवान् आपको नमस्कार है। जगन्नाथ, गरुडवाहन, आदिविधाता, नित्य, अनिरुद्ध, निर्दोष, निराकार, नीतिरूप, सीमारहित अपरिमित कल्याण गुणवाले, आपको नमस्कार है। सत्, चित् तथा आनन्दके स्वरूप अच्युत, देहकी वृद्धि और क्षयके अयोग्य, अनन्त, गोविन्द, महात्मा भगवान आपको नमस्कार है। ॥१६॥

अपारकरुणाम्भोधे निस्तरङ्गात्मनिश्चल ॥ लक्ष्मीविलक्षण विभो विचक्षण नमोऽस्तु ते ॥१७॥ ऋत सत्य पर ब्रह्म कृष्ण पिङ्गलपुरुष ॥ऊर्ध्वरेतो विरूपाक्ष विश्वरूप नमोऽस्तु ते ॥१८॥ नमो नमः कारणकारणाय नमो नमोऽनन्तमहाविभूतये ॥ नमो नमः शङ्करचापहारिणे नमो नमः शाश्वतशार्ङ्गधन्वने ॥१९॥ नमोऽन्तरादित्यहिरण्यरूप नीरूप तुभ्यं पुरुषोत्तमाय ॥ नमो नमोभिर्निगमान्तभूतैः कृतस्तुतप्रस्तुतभावनाय ॥२०॥ प्रसीद पुण्डरीकाक्ष प्रसीद पुरुषोत्तम ॥ प्रसीद परमानन्द प्रसीद परमेश्वर ॥२१॥ प्रसीद कमलाकान्त प्रसीद करुणाकर ॥ प्रसीद भक्तार्तिहर प्रसीद विबुधर्षभ ॥ २२ ॥

बिना तरङ्गवाले, अपार करुणाके सागर, निश्चललक्ष्मीसे विलक्षण, विभु, कुशल आपको नमस्कार है। ऋत, सत्य, परब्रह्म, कृष्ण, पिङ्गलपुरुष, ऊर्ध्वरेता, विरूपाक्ष, विश्वरूप, भगवान आपको नमस्कार है। कारणोंके भी कारण महा ऐश्वर्यवाले आपको नमस्कार है। शङ्करके धनुष हरनेवाले आपको नमस्कार है। शार्ङ्ग धनुषको धारण करनेवाले आपको नमस्कार है। सूर्यके अन्तर्निवासी, सुवर्णरूप, रूपरहित पुरुषोत्तम आपको नमस्कार है। वेदान्तके सिद्धान्तरूप ! नमस्कारोंसे स्तुतियोग्य ! प्रस्तुतभावनावाले आपको बारंबार नमस्कार है। हे पुण्डरीकाक्ष ! आप प्रसन्न होवें। हे पुरुषोत्तम ! आप प्रसन्न होवें। हे परमानन्द ! आप प्रसन्न होवें। हे परमेश्वर ! आप प्रसन्न होवें। हे कमलाकान्त ! आप प्रसन्न होवें। करुणाकर ! आप प्रसन्न होवें। भक्तोंके दुःखको हरनेवाले, हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! आप प्रसन्न होवें ॥ २२ ॥

ब्रह्मादीनां पुरतः क्षीरार्णवाल्लक्ष्मीसखीप्रादुर्भावः

देवदर्शन उवाच—

देवमेवं स्तुतवतां देवानां महितात्मनाम् ॥ हिरण्यगर्भपूर्वाणां भविष्यद्भूतभाविनाम् ॥ २३ ॥ प्रादुर्बभूव पुरतः क्षीराब्धेर्दुहितुः सखी ॥ पुण्डरीकनिभा सापि पुण्डरीकायतेक्षणा ॥ २४ ॥ पुण्डरीकानना पुण्या पुण्डरी-

काक्षशासनात् ॥ अखिलक्लेशहारिण्या व्याहारिण्यार्थसंपदाम् ॥ २५ ॥

ब्रह्मादि देवोंके सन्मुख लक्ष्मीसखीका क्षीरसागरसे प्रकट होना

देवदर्शन बोले—इस प्रकार महात्मा देवताओंके स्तुति करते समय लोगोंके भूत भविष्यतके भावोंके वर्णन करनेवाले ब्रह्मादि सहित सब देवताओंके सन्मुख कमलपुष्पके समान, कमलनयनी, कमलमुखी, पुण्यरूप, सकल क्लेशोंको मिटाने वाली तथा सभी अर्थ सम्पत्तियोंको देनेवाली क्षीरसागरकी कन्या श्रीलक्ष्मीजीकी सखी श्री पुण्डरीकाक्ष भगवानकी आज्ञासे उस क्षीरसागरसे प्रकट हुई ॥ २५ ॥

अथ लक्ष्मीसखीकथितभगवद्वासज्ञानपूर्वकाभयोक्तिः

सुधां स्रवन्त्या वाचा च बभाषे तान्दिवौकसः ॥ स्वागतं भवतामस्तु कार्यसिद्धिश्च देवताः ॥ २६ ॥ बाधा कच्चिदिदानीं किं सुरा दैत्यासुरैरपि ॥ तेषां तु नियनं कर्तुं ध्रुवमव्याजरक्षकः ॥ २७ ॥ श्रीवत्सलक्षणः शार्ङ्गी दक्षिणो वश्च रक्षणे ॥ मा भैषीष्ट सुरा यूयं मा प्रत्यूहो भविष्यति ॥२८॥

लक्ष्मीकी सखीका अभयदान तथा भगवानका निवासस्थानकथन

वह अमृतमयी भाषासे उन देवताओंसे बोली—हे देवताओं! तुम्हारा स्वागत है। तुम्हारी कार्यसिद्धि हो। तुम्हें इस समय दैत्यों अथवा असुरोंसे क्या बाधा है? अव्याज रक्षक, श्री वत्सचिन्हधारी तथा शार्ङ्गधनुर्धर, भगवान तुम लोगोंकी प्रेमसे रक्षा करनेमें जागरूक सदा सम्मत हैं। हे देवताओं! भय न करो। कोई विघ्न होगा ॥ २६ ॥

अचिराद्भगवान् विष्णुः श्रीनिवासः स्वराड् विभुः ॥ प्रत्यक्षो भविता वश्च सर्वं सिद्धं समीहितम् ॥ २९ ॥ आमोदादीन्दिव्यलोकान् सन्त्यज्य भगवान् हरिः ॥ इदानीं रमते लक्ष्म्या नारायणगिरेस्तटे ॥ ३० ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे सर्वान्तर्याम्यधोजक्षः ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ३१ ॥ तद्गिरेर्दक्षिणं भागं भूमेर्गच्छत सत्वराः ॥ अविघ्नमस्तु वः कार्यं ब्रह्माद्यास्त्रिदिवौकसः ॥३२॥ इत्युक्त्वा तु सखी लक्ष्म्याः सहसान्तर्दधेऽपि च ॥ तस्याः श्रुत्वा वचो विष्णुपत्नीसख्याः समाहिताः ॥ ३३ ॥ प्रणम्य दण्डवद्देशं तं परीयुः प्रदक्षिणम् ॥ सम्प्रीतमानसा देवाः सावधानाः ससम्भ्रमाः ॥ ३४ ॥ तस्माद्दक्षिणतो भूमिभागं गन्तुं प्रचक्रमुः ॥

ततस्तेविबुधाः सर्वे परमेष्ठिपुरोगमाः ॥ ३५ ॥

अतिशीघ्र ही, स्वर्गवासी, विभु, श्रीनिवास, विष्णु भगवान, आप लोगोंकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये प्रत्यक्ष होंगे। आमोद आदि दिव्यलोकोंको छोड़ कर भगवान श्री हरि इस समय लक्ष्मीजीके साथ नारायण पर्वत-के किनारे रम रहे हैं। अधोक्षज, सर्वान्तर्यामी, सहस्राक्ष, हजार पैरको धारण करनेवाले, हजारों मस्तकवाले, परम पुरुष भगवान स्वामिपुष्करिणीके किनारे हैं। हे ब्रह्मा, इन्द्र, आदि देवगणों! इस लिए आप लोग यहांसे दक्षिण दिशा-को ओर शीघ्र जाइये। आपके सभी कार्य्य निर्विघ्न हों। वह लक्ष्मीसखी इतना कह कर अन्तर्धान हो गई। उस लक्ष्मीसखीके वचनको ध्यानसे सुन उसको दण्डवत प्रणाम कर पुनः चतुर्दिक प्रदक्षिणा कर ससंभ्रम प्रसन्न-मन हो देवगण उससे दक्षिणके भूमिभागके लिये चले गये ॥ ३५ ॥.

अथ ब्रह्मादीनां क्षीरार्णवाच्छ्रीनारायणाचलागमनम्

भूयो नारायणगिरेः पादानाशिश्रियुर्मुदा ॥ पुण्यातिपुण्यतोयानि स-
रांसि सरितश्च हि ॥ ३६॥ सेवमानाः कृतातिथ्याः सिद्धसङ्घैश्च तापसैः ॥
मिथुनैः किन्नराणां हि लतागृहनिवासिभिः ॥ ३७ ॥ यमगीतानि गीतानि
प्रादुर्भावात्मकानि च ॥ मन्द्रमध्योच्चमहिममाधुरीधूर्वहाणि च ॥ ३८ ॥
शिलातलेषु शृण्वन्तः सर्पा येषु समाश्रिताः ॥ ससतन्त्रीनादगर्भसप्तस्वर-
विभावनम् ॥ ३९ ॥ वेणुवेणामृदङ्गाढ्यनवनाट्यरसान्वितम् ॥ आविर्भावा-
त्मकं कालश्रुतिकल्पितमूर्च्छनम् ॥४०॥ अप्सरोगणसङ्गीतं लोकयन्तोऽत्र
ते शनैः ॥ वीतक्लेशा वीतमोहा विमलानन्दभावनाः ॥ ४१ ॥ नारायणाद्रौ
प्रापुश्च स्वामिपुष्करिणीतटम् ॥

ब्रह्मादिका क्षीरसागरसे नारायणचलपर आना

तत्पश्चात् वहांके पवित्रसे भी पवित्र पुण्य जलाशयों, सरोवरों तथा नदियोंका सेवन करते हुए एवं सिद्धसंघों, तपस्वियोंसे स्वागत किये जाते हुए, ब्रह्मप्रमुख सभी देवताओंने श्री नारायणगिरिके पादस्थ देशोंका लतागृहोंमें निवास करनेवाले किन्नरदम्पतियोंके नीच, मध्य, उच्च, स्वरोंके माधुरी विशेष युक्त गीतोंको सुनते हुए जिस पर सर्पगण समाश्रित थे आनन्दसे आश्रय लिया। और वहां सात तारोंके नादयुक्त सातस्वरोंके विभावनासे मिलित, वंशी, वीणा, मृदङ्गादिवाद्य तथा नवीन नाट्यरसोंसे युक्त, आविर्भावात्मक लयतालयुक्त मूर्छनासे युक्त, अप्सरागणोंसे गाये जाते हुए, गीतादि अद्भुत समारोहको देखते हुए वे धीरे धीरे क्लेशरहित, मोहहीन, तथा विमल आनन्दसे परिपूर्ण हो नारायण-पर्वत परके श्री स्वामिपुष्करिणीके तट पर पहुंचे।

अथ स्वामिपुष्करिणीतीरवर्णनम्

क्रौञ्चैः कारण्डवैर्हंसैः सारसैः सरसस्वरैः ॥ ४२ ॥ तारामिश्च चला-

काभिरन्यैर्वनवयोगणैः ॥ निबिडान्तरकल्लोलकोलाहलसमाकुलम् ॥४३॥ तमालैस्तिलकैः पूगैर्नारिकेलैश्च पाटलैः॥ केतकैः सुरपुन्नागैः पुन्नागैः पुत्रदीपकैः ॥ ४४ ॥ जम्बीरैश्चम्पकैश्चूतैर्लिकुचैः कुटजैर्वटैः ॥ मन्दारैः केसरैः श्वेतमन्दारैर्हरिचन्दनैः ॥ ४५ ॥ किंशुकाशोकसन्तानसालनीपहरीतकैः ॥ श्रीवृक्षैश्चन्दनैर्बिल्वैः कदलीभिश्च दाडिमैः ॥ ४६ ॥ मातुलुङ्गैः कुरवकैः कुन्दैरामलजम्बुभिः ॥ समन्ततः समाकीर्णं सान्द्रच्छायैश्च भूरुहैः ॥४७॥ वीरुद्भिर्दमनीभिश्च माधवीमालतीधवैः ॥ फलपुष्पद्रुमैः फुल्लैर्मल्लिकावनजातिभिः ॥ ४८ ॥ जातीभिः शतपत्रीभिर्वराभिर्विष्णुपर्णकैः ॥ तुलसीकृष्णतुलसीवलक्षतुलसीशतैः ॥ ४९ ॥ नन्द्यावर्तैस्त्रिसन्दीभिर्जपाभिः करवीरकैः ॥ शृङ्गबेरैर्हरिद्राभिः कर्पूरै रजनीकुलैः ॥५०॥ पनसैरार्द्रपनसैरनेकैः कन्दजातिभिः ॥ पुण्यगन्धं किरन्तीभिर्लताततिभिरावृतम् ॥ ५१ ॥ कल्हारकमलानीकमधुमत्तमधुव्रतैः ॥ कूजद्भिः कोकिलैश्चापि मदान्धैर्महितान्तरम् ॥ ५२ ॥ समाश्रितार्तिहरणसान्द्रच्छायं समन्ततः ॥

श्रीस्वामिपुष्करिणीतीरवर्णन

जो क्रौंचों, कारण्डवों, सुरस स्वरयुक्त हंसों तथा सारसों, ताराओं, बलाकाओं तथा अन्यान्य जलपक्षियोंसे किये सघन तथा घोर कल्लोल कोलाहलसे आकुलित, तमाल, तिलक, कसैली, नारियल, पांड़र, केतकी, देवपुन्नाग, पुन्नाग, पुत्रदीपक, जामुन, चम्पा, आम, लीची, कुटज, बड़, मन्दार बालाशोक, केसर, श्वेतमन्दार, हरिचन्दन, पलाश, अशोक समूह, नीम, हर्रे, बेल, चन्दन, केला, अनार, मातुलुङ्ग, कुरवक, कुन्द, आंवला, जामुन, सघन छायादार बड़े बड़े वृक्षोंसे चतुर्दिक समाकीर्ण, दमनी गाछ, माधवी, मालती, धव आदि फलके फूलके द्रुमों, खिले हुए मल्लिक तथा वनजातियों, सौपतिया, विष्णुपतिया, तुलसी, कृष्णतुलसी तथा स्वच्छ तुलसियोंसे, चक्करदार नदियों के मुहानेसे, जपा करवीर, शृङ्गबेर, हरदी, कर्पूर, रजनीगन्धा, पनस, आर्द्रपनस तथा अनेकों तरहके कुन्दजातियोंसे युक्त, पुण्य सुगन्ध फैलाती हुई लताओंसे चतुर्दिक आवृत, कल्हार, कमल आदि फूलोंमें लुभे मधुसे मत्त भौंरोंसे युक्त, कूजती हुई मदान्ध कोकिलोंसे व्याप्त तथा चारों ओर आश्रितोंके कष्टहारी सघन छायासे युक्त था ॥ ५२ ॥

अथ कमलाल्युक्त्या ब्रह्मादिकृतश्रीनिवाससाक्षात्कारोद्योगः

तत्र स्थित्वा मुहूर्तं ते ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ ५३ क्षीराब्धिकन्यासख्यास्तु संस्मरन्तो वचः शुभम् ॥ श्रियः श्रियं श्रीनिवासं श्रीवत्सकृतलक्षणम् ॥ ५४ ॥ श्रीकण्ठकृतकैङ्कर्यं श्रीमहीमहितं हितम् ॥ एकमेकायनवि-

दामेकान्तहृदयालयम् ॥५५॥ द्वितीयाम्नायनिष्ठानामात्मनामात्मभूतिदम् ॥
त्रिमूर्तिमत्रिगुणकं त्रिविधात्मककालकम् ॥ ५६ ॥ चतुर्मूर्तिधरं शान्तं
चतुर्विंशतिमूर्तिकम् ॥ चतुर्थावस्थातिभूमिं चतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ ५७ ॥ पञ्चो-
पनिषदात्मानं पञ्चरात्रप्रवर्तकम् ॥ पञ्चाथर्वशिरोरत्नं पञ्चमूर्तिधरं पर-
म् ॥५८ ॥ षडध्वमयचक्रस्थं षट्कोटिगृहमेधिनम् ॥ सप्तार्चिःपञ्जरावासं हंसं
परमहंसकम् ॥ ५९ ॥ अष्टाङ्गयोगवित्सिद्धसङ्घहृत्पद्मवासकम् ॥ दशा-
वतारचतुरं दशाननशिरश्छिदम्॥६०॥ चरमोपायसुगमं चराचरगुरुं हरिम् ॥
गङ्गाजन्मगृहाङ्गुष्ठपादपङ्कजवैभवम् ६१ प्रणतार्तिहरं प्राज्ञं प्रणवार्णप्रभावकम् ॥
प्रसादमात्रप्रभवमनामात्रप्रमाणकम् ॥ ६२ ॥ अव्याजमित्रं शत्रुघ्नं शरण्यं
शरणार्थिनाम् ॥ ज्ञानशक्तिबलैश्वर्यवीर्यतेजोविजृम्भितम् ॥ ६३ ॥ रजस्तम-
स्सत्त्वसङ्गविमोहितजगत्त्रयम् ॥ संसृष्टिस्थितिसंहारनिग्रहानुग्रहात्मक-
म् ॥ ६४ ॥ भक्तानामप्यभक्तानां चिन्तनान्मोक्षकारणम् ॥ नानान्तर्गगना-
भासं शुद्धं सूक्ष्मं निरञ्जनम् ॥ ६५ ॥ निरवद्यं निराकारं निराबाधं निरामय-
म् ॥ निराश्रयं निस्तरङ्गनीरराशिनिभं विभुम् ॥ ६६ ॥ अतीन्द्रियं परं ब्रह्म
चेन्द्रियैः प्रष्टुमिच्छतः ॥ व्यूहात्मकमिदं सूक्तं सुपर्वाणः समुत्सुकाः ॥६७॥
उदात्तमुच्चैरुच्चेरुः सम्प्लुतं निरुपप्लवाः ॥ ६८ ॥

कमलासखीके कथनानुसार ब्रह्मा आदिको भगवानके साक्षात्का उद्योग ।

ब्रह्मा आदि देवतागण वहां कुछ समय ठहर कर श्रीलक्ष्मीजीकी सखीके शुभ वचनको स्मरण करते हुए, लक्ष्मीजीकी भी लक्ष्मी श्रीनिवास, श्रीदेवी तथा भूदेवीसे सेवित, हितकारी, एकरूप, एकान्तज्ञानी, एकान्त ध्यान करने वालोंके हृदयवासी, यजुर्वेदमें निष्ठावाले, जीवोंको अपना ऐश्वर्य देनेवाले, तीन मूर्तिवाले, तीन गुणवाले, त्रिविधात्मक, त्रिकालरूप, चतुर्मूर्तिधारी, शान्तरूप, चौबीस अवतारवाले, तुरीयअवस्थासे परे, चारों वर्गोंके फलदाता, पांचों उपनिषदोंके रूप, पञ्चरात्रशास्त्रके प्रवर्तनकर्ता, पांचों अथर्वोंके शिरोभूषण, पांचों मूर्तियोंको धारण करनेवाले, परात्पर, षट् मार्गरूप ऋतुचक्रमें रहनेवाले, छवों कोटियों गृहस्थाश्रमवाले, अग्निरूप पिञ्जरेमें निवास करनेवाले, हंसरूप, परमहंस, अष्टाङ्गयोगज्ञाता सिद्धगणोंके हृदयकमलवासी, दश अवतार धारण करनेमें कुशल, रावणके मस्तकोंको काटनेवाले, अन्तिम उपायसे सुगम, चराचरोंके गुरु, हरि, गङ्गाजीको जन्मदेनेवाले पादपद्मके अङ्गुष्ठयुक्त चरणकमल विभवधारी, प्रणतजनोंके कष्टको हरनेवाले, प्राज्ञ, प्रणवके प्रभाव सम्पन्न, प्रसादमात्रसे प्रगट होनेवाली प्रमा मात्रविशेष, निश्छलमित्र, शत्रुओंको नाश करनेवाले, शरण चाहनेवालोंके लिये अनन्यशरण, ज्ञान, शक्ति,

बल, ऐश्वर्य, वीर्य तथा तेजसे प्रकाशित, रजोगुण, तमोगुण तथा सत्वगुणके संघसे त्रैलोक्यको मोहित करनेवाले, संसारकी सृष्टि, स्थिति, संहार, निग्रह तथा अनुग्रह करनेवाले चिन्तन करनेपर भक्त तथा अभक्त दोनोंको मोक्ष देनेवाले प्रत्येक चीजोंके अन्तर्गत आकाशरूपसे निवास करनेवाले, शुद्ध, सूक्ष्म, तथा निरञ्जनरूप, निर्दोष, निराकार, विकाररहित, पापरहित, निराधार, सुशान्त, महासमुद्रके समान, गम्भीर, विभु, इन्द्रियोंसे परे, परम ब्रह्म भगवानको इन्द्रियोंसे देखनेकी इच्छासे उत्साहपूर्ण देवतागण वक्ष्यमाण रीतिसे व्यूहात्मक सूक्तको, उदात्त, उच्च तथा प्लुत स्वरमें शान्त हो कर बोले॥ ६६ ॥

अथ शेषाद्रौ श्रीनिवाससाक्षात्काराय ब्रह्मादिकृतस्तुतिः

जितं ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन ॥ नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ॥ ६९ ॥ नमः श्रीधामनिलय नमः श्रीवत्सलक्षण ॥ नमस्त्रिधात्मने तुभ्यं नमः श्रीघनमोहन ॥ ७० ॥ नाकौकःप्रत्यनीकारे नारायण नमोऽस्तु ते ॥ नागपर्यङ्कशयन नाथनाथ नमो नमः ॥७१॥ विश्वस्रष्ट्रे विश्वभर्त्रे विश्वधात्रे विचक्षण ॥ विश्वान्तर्यामिणे तुभ्यं विश्वोत्तीर्ण विभो नमः ॥ ७२ ॥

भगवानके साक्षात्कारके लिए ब्रह्माआदिकी स्तुति

हे पुण्डरीकाक्ष ! तेरी जय हो !! हे विश्वभावन ! आपको नमस्कार है । हे हृषीकेश ! महापुरुष ! पूर्वज ! आपको नमस्कार है । हे श्रीलक्ष्मीजीके धाममें निवास करने वाले ! आपको नमस्कार है । श्रीवत्सचिन्हसे चिन्हित भगवानको नमस्कार है । तीन मूर्तिवाले ! आपको प्रणाम है । मेघकी शोभावाले ! हे नारायण ! स्वर्गवासियोंके विरोधियोंके शत्रु ! आपको नमस्कार है । हे शेषनागकी शय्या पर सोनेवाले,स्वामियोंके भी स्वामि आपको नमस्कार है । जगतके सृष्टि करनेवाले, जगतके स्वामी, जगतके धारणकर्त्ता, कुशल, जगतके अन्तर्यामी, जगतको उत्तीर्ण करने वाले हे विभु ! भगवान ! आपको नमस्कार है ॥ ७२ ॥

अथ स्वामिपुष्करिणीतीरे स्तुतिप्रसन्नभगवद्विमानाविर्भावः

एवमुच्चरतां तेषां हर्षोत्फुल्लास्यचक्षुषाम् ॥ अग्रे सुधान्धसां व्यग्रमनसां सम्पदर्थिनाम् ॥ ७३ ॥ न्यक्कृताखिलतेजस्कं चक्षुर्हारि समीक्षितम् ॥ पश्चिमे स्वामिसरसस्तीरे प्रत्यग्रविग्रहम् ॥ ७४ ॥ विमानमाविर्बभूव विमलानन्दकारकम् ॥ दिव्यदुन्दुभिनिर्घोषजयशब्दसमन्वितम् ॥ ७५ ॥ द्योतयद् दिशः सर्वाः पुष्पवृष्टिपुरःसरम् ॥ तद्वीक्ष्यानिमिषाः सर्वे विमानं विस्मयान्विताः ॥ ७६ ॥ अभितुष्टुवुरात्मेशं श्रीनिवासं समञ्जसम् ॥

स्तुतिसे प्रसन्न भगवानके विमानका आविर्भाव

इस प्रकार प्रार्थना करते हुए हर्षसे प्रफुल्लितनेत्र तथा मुखवाले सम्पदर्थी तथा व्यग्रमनस्क देवताओंके सन्मुख, दूसरे सब तेजको दलित करता हुआ स्वामिसरोवरके पश्चिम तीर पर नूतन मूर्तिमान, निर्मल, आलोंको आनन्द देनेवाला, दिव्य नगाड़ोंके नादोंसे प्रादुर्भूत जयजयकार शब्दयुक्त, दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला, पुष्पवर्षासंयुक्त, एक निर्मल विमान, प्रकट हुआ। उस विमानको निर्निमेष दृष्टिसे देख कर, सभी देवगण आश्चर्यित हुए। पुनः सभी जीवोंके स्वामी श्रीनिवास भगवानकी स्तुति करने लगे ॥ ७७ ॥

अथ ब्रह्मादिकृतविमानमध्यगतश्रीनिवासस्तुतिः

जय श्रियः पते विष्णो जय सत्याच्युतानिशम् ॥७७॥ जयानिरुद्ध भगवञ्जय पूरुष पूर्वज ॥ जयेश सर्वजगतां जय श्रीकण्ठपूजित ॥७८ ॥ जयात्मेश्वर जीवातो जय त्वमपराजित ॥

ब्रह्मादिका भगवानकी स्तुति

हे श्रीपति विष्णु आपकी जय हो। हे सत्य, अच्युत, निष्पाप, आपकी जय हो। हे अनिरुद्ध ! पूर्वज! पुरुष ! भगवान जय हो। सभी जगतके स्वामी ! आपकी जय हो। श्रीकण्ठ महादेवजीसे पूजित भगवान आपकी जय हो। हे आत्मेश्वर एवं प्राणदातः, जीवोंके स्वामी ! हे अजय !! आप विजयी रहें ॥ ७९ ॥

अथ श्रीश्रीनिवासाविर्भावः

स्तुत्याऽनया प्रसन्नोऽस्मिन् विमाने परमः स्वराट् ॥७९॥ सहस्रादित्यसङ्काशः सहस्रेन्दुसमप्रभः ॥ सहस्रहुतभुक्प्रख्यो विख्यातविभवो दयः ।८०। चतुर्भुजः शङ्खचक्रवरावनतहस्तकः ॥ श्रीवत्सकौस्तुभोरस्को वैजयन्त्या विराजितः ॥ ८१ ॥ उद्यत्प्रचण्डमार्तण्डप्रतीकाशकिरीटकः ॥ माणिक्यकण्ठहारश्रीवीरपट्टविराजितः ॥८२॥ कर्णपालासमालम्बिमकराननकुण्डलः ॥ हारकेयूरकटककङ्कणाङ्गदसुन्दरः ॥८३॥ अङ्गुलीयच्छन्नकरोदरबन्धनशोभितः ॥ प्रवालमुक्ताप्रत्युप्तनवरत्नसुदामकः ॥ ८४ ॥ शृङ्खलाबद्धकौक्षेयकिङ्किणीककटिस्थलः ॥ पीतकौशेयवसनो दीप्तमञ्जीरहंसकः ॥ ८५ ॥ किङ्किणीदामाङ्गुलीयविराजितपदाम्बुजः ॥ सर्वाभरणसंयुक्तः सर्वावयवसुन्दरः ॥८६॥ पुण्डरीकविशालाक्षः पुष्पदामविराजितः ॥ अष्टाङ्गैर्धूपकैर्दिव्यालेपनैः पुण्यगन्धिभिः ॥ ८७ ॥ सम्यक्स्थानाङ्किताङ्गश्रीः पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥

अप्राकृताङ्गमहिमा प्राकृताङ्गविडम्बनः ॥ ८८ ॥ प्रादुर्बभूव भगवान् भक्त-
भावात्मकः पुमान् ॥ ईषदुत्स्मयमानस्तु गीर्वाणान्वीक्ष्य विस्मितान् ॥ ८९ ॥
बभाषे च सुरश्रेष्ठः पूर्वान् पूर्वविदात्मभूः ॥

श्रीनिवासका आविर्भाव

उस स्तुतिसे उन पर प्रसन्न हो कर उसी विमान पर परम प्रकाशरूप, हजारों सूर्यके प्रकाशसे युक्त, हजारों चन्द्रमाके समानप्रभावाले हजारों अग्निके तेजसम्पन्न, परम प्रसिद्ध प्रभाववाले, चतुर्भुज, शङ्ख, चक्र धारी और हाथको नम्र करते वरदानसूचन और अभयसूचन करनेवाले, श्रीवत्स तथा कौस्तुभसे प्रकाशित वक्षस्थलवाले, वैजयन्तीमालासे सुशोभित, उगते हुए प्रचण्ड सूर्यके प्रखरप्रकाशसम्पन्न, कीरीटधारी, माणिक्यके कण्ठहार एवं श्री वीरपट्ट आदिसे शोभायमान, जड़तक लटके हुए मकड़ाके आकारके कुण्डल पहिने,हार,किन्नायठ, वलय कँकण, वेरा, आदिसे सुशोभित, अङ्गुठियोंसे आच्छादितहाथ तथा उदरबन्धनसे मनोहर, मूङ्गा. मोती, नवरत्नोंसे जटित सुन्दर २ हार धारण किये धारीबद्ध लड़ीवाले करधनी तथा घुंघरूदार कटिसूत्रसे युक्त कमरवाले, पीताम्बरधारी, चमकीले मञ्जीरहंसयुक्त, घुंघरूदार लड़ीयुक्त पैरोंके अङ्गुठियोंसे विराजित चरणकमलवाले, सभी आभूषणों से युक्त, सभी अवयवोंसे सुन्दर, विशाल कमल-नयन, फूलोंकी माला पहने, अष्टाङ्ग धूप, दिव्यलेप और सुगन्ध पुण्यचन्दनोंके लेपको अच्छी तरह लगाये, अङ्गशोभा सम्पन्न, पूर्णचन्द्रमाके समान मुखवाले, दिव्य अङ्गकी महिमासे सम्पन्न, प्राकृत अङ्गोंको तिरस्कार करनेवाले तथा भक्तोंके भावानुसार रूप धारणकरनेवाले, अतीतवेत्ता स्वयम्भू तथा सुरश्रेष्ठ, भगवान प्रगट हुए और विस्मित देवता-ओंको देख कर हँसते हुए उनसे बोले ॥ ८९ ॥

अथ ब्रह्मादीन्प्रति भगवत्कृतकुशलप्रश्नः

श्रीभगवान उवाच—

कच्चिद्देवाः स्वागतं वः सहस्राक्षपुरोगमाः ॥९०॥ पितामहं पुरस्कृत्य
किमर्थं यूयमागताः ॥ कच्चित्प्रायेण बाध्यध्वे भुवमव्याजशत्रुभिः ॥ ९१ ॥
एवमुक्ते हृषीकेशे केशवे केशिमर्दने ॥ प्रत्यूचे विबुधश्रेष्ठः प्रणिपत्य
पितामहः ॥ ९२ ॥

भगवानका ब्रह्माआदिसे कुशल प्रश्न करना।

श्रीभगवान् बोले—हे इन्द्रप्रमुख देवतागण! आपका स्वागत है? ब्रह्माजीको आगे कर किस लिये आपलोग आये हैं? अकारण शत्रुओंसे आपलोग सताये तो नहीं जाते हैं? केशिनामक असुरको मर्दन करनेवाले हृषीकेश केशव भगवान्के इस प्रकार पूछने पर देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ पितामह श्रीब्रह्माजी बोले ॥ ९२ ॥

अथ भगवते ब्रह्मकृतलोकोपद्रवकार्यसुरोदन्तविज्ञापनम्

जागरूकेऽत्र भवति भगवन् भक्तवत्सले ॥ सर्वत्रारिष्टमापन्नं
त्वदधीना वयं हि तत् ॥ ९३ ॥ किं वाऽकुशलमस्माकं जीवितं कञ्जलोचन ॥
इन्द्रादयो लोकपाला विवर्णवदना इमे ॥९४॥ स्वपदप्रच्युता दुःस्था स्वस्थाः
न प्रचकाशिरे ॥ दैवतानाममीषां तु भीतिविह्वलचेतसाम् ॥ ९५ ॥ नक्त-
न्दिवं न चेरुश्च विमानानि वियत्तले ॥

संसारमें उपद्रव तथा असुरोंका वृत्तान्त ।

हे भक्तवत्सल भगवन् ! आपके यहां रहते हुए ही सभी स्थानोंमें बाधा आ पड़ी है । हमलोग सभी अब आपके ही अधीन हैं । हे कमलनयन ! हमलोगोंके जीवन इस समय अत्यन्त अकुशल ही है । अपने अपने स्थानोंसे भ्रष्ट एवं विवर्णमुख या दुःखित ये इन्द्रादि सब देवतागण और लोकपालगण उत्साही नहीं देख पड़ते हैं । व्याकुल-चित्त इन देवताओंके विमान रात या दिन किसी समय भी आकाशमें नहीं चलते हैं ॥ ९६ ॥

एते हि द्वादशादित्यास्तमोविध्वस्तदीप्तयः ॥ ९६ ॥ ग्रस्ता इव तमो-
भिस्तु न बभुर्विगतप्रभाः ॥ अष्टौ वसुगणाः प्रायो नासत्यौ द्वौ च नाकि-
नौ ॥ ९७ ॥ बभासिरे न वीताभाः प्रणष्टवसुका इव ॥ मम लोके निवासश्च
दुःस्थितोऽस्वस्थचेतसः ॥ ९८ ॥ कैलासवासो रुद्रस्य महाक्लेशकरोऽभव-
त् ॥ स्वकृतिव्रीडया सोऽपि तत्रैव व्यवतिष्ठते ॥ ९९ ॥

ये द्वादश सूर्य्य अन्धकारसे नष्ट दीप्तियुक्त हो राहुओंसे ग्रस्तकी तरह प्रभाहीन हो कर नहीं चमकते हैं । ये आठो वसुगण एवं अश्विनीकुमार प्रनष्टधनके समान मलिन देख पड़ते हैं । अस्वस्थ चित्त मेरा निवास भी अपने लोकमें दुःखमें होता है । श्रीरुद्र भगवान् शंकरजीका कैलास पर निवास करना अत्यन्त कष्ट कर हो गया है, और वे अपने काम से लज्जित हो कर वहीं किसी प्रकार निवास करते हैं ॥ ९९ ॥

कश्चिन्निदानमेतेषां तृणीकृतजगत्त्रयः ॥ अमरारिरिति ख्यातो दैते-
येन्द्रो महेन्द्रजित् ॥ १०० ॥ शिपिविष्टं समुद्दिश्य दुर्विनीतगणाधिपम् ॥
घोराकारो घोरतरं चकारातिचिरं तपः ॥ १०१ ॥ तपसा तेन सन्तुष्टः
पिनाकी स च तामसः ॥ अजय्यत्वमवध्यत्वममरैरमराधिपैः ॥ २ ॥ अन्यै-
रतिबलैश्चैव तस्मै दुर्मेधसे ददौ ॥

हे भगवन् ! तीनों लोकोंको तृणके समान समझनेवाला, महेन्द्रको भी जीतनवाला अमरारि नामसे प्रसिद्ध

कोई दैत्य श्रेष्ठ ही इन सबका निदान या कारण है। दुर्विनीतगणनाशवाले श्रीशिवजीको उद्देश्य कर इसने घोरसे भी घोर तपस्या की है, उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो तामसरूप महादेवजीने उस दुरात्माको देवताओंके स्वामियोंसे तथा अन्यान्य बड़ोंसे बड़े बलीसे भी अजय्यत्व तथा अवध्यत्व वर दिया ॥ १०३ ॥

अमरारिर्दिविषदामन्येषां च सतामरिः ॥ ३ ॥ दुष्टात्मा दुष्टचेताः स त्रिषु लोकेषु चेष्टते ॥ विशेषतो देववर्गान्दरिद्रान्दीनमानसान् ॥ ४ ॥ दिवानिशं सदा क्रूरस्तदाप्रभृति बाधते ॥ दैत्यारिर्देवनामित्रं शार्ङ्गी खड्गी च चक्रभृत् ॥५॥ देवः प्रमाणं सर्वेषामन्तर्यामी भवान् स्वतः ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमः कमललोचन ॥ ६ ॥ नमः कारुण्यपुण्यश्रीर्नमः कालात्मक प्रभो ॥ अदितानसुरेन्द्रेण दुर्हृदा चामरारिणा ॥ ७ ॥ अस्माननेकविधया भवान् रक्षतु रक्षतु ॥

यह स्वर्गवासी देवताओं तथा अन्यान्य सभी सन्तोंका शत्रु हो गया है। उसी समयसे वह दुष्टचित्तवाला तीनों लोकोंमें विशेषरूपसे दरिद्र तथा दीनमन देववर्गोंको रात दिन सताता है। दैत्योंके शत्रु तथा देवताओंके मित्र शार्ङ्गधनुष, खड्ग तथा चक्रको धारण करनेवाले अन्तर्यामी स्वामी भगवन्! अब स्वयं आप ही इसके उपाय हैं। हे कमलाकान्त! हे कमललोचन! आपको नमस्कार है। करुणाके पुञ्ज! शोभाके रूप आपको नमस्कार है। कालरूप! आपको नमस्कार है। देवताओंके शत्रु, दुष्टहृदयी, उस राक्षसेन्द्रसे अनेकों तरहसे सताये हमलोगोंकी आप ही रक्षा करें, रक्षा करें ॥

अथ ब्रह्मादिप्रार्थनया भगवदुक्ताभयोक्तिः

इति ब्रुवाणे गीर्वाणगणे श्रेयोभिशंसिनि ॥८॥ शरत्समयप्रफुल्लाब्जपत्त्राभे परमेष्ठिनि ॥ कारुण्यामृतवाराशिकल्लोलामृतलीलया ॥९॥ वीक्षया वीक्ष्य विश्वात्मा विष्वक्सेनजयाऽऽदरात् ॥ उवाच भगवान् विष्णुः स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ ११० ॥ दन्तपङ्क्तिद्युतिज्योत्स्नालुम्पिनाशान्तरालकः ॥

भगवानका अभयदान देना।

इस प्रकार कल्याणकी इच्छा करनेवाले देवताओंके बोलते हुए शरदृतुके प्रफुल्लित कमलके समान मुखवाले, दाँतोंकी पाँतीसे निकलती चमकती ज्योत्स्नासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले परमात्मा भगवान् प्रसन्नमुख और करुणाके अमृतसमुद्रोंके कल्लोलरूपी लहरों जैसी लीलादृष्टिसे, देख कर मन्द मधुर मुसकाते हुए बोले ॥ ११ ॥

मा बिभ्यतु भवन्तोऽहं करिष्ये तन्निमित्तमिति ॥ ११ ॥ स्वरिमन्

स्वस्मिम्पदे यूयं स्थातारोऽनार्तमेव च ॥ वध्य एव त्ववध्यत्वं प्राप्तवानपि शूलिनः ॥ १२ ॥ अमरारिरमुष्यास्तु त्रिलोक्या दुष्टकण्टकः ॥

आपलोग भय न करें, उसका उपाय मैं करूंगा। आपलोग कष्टरहित हो कर अपने अपने स्थानोंपर रहेंगे। तीनों लोकोंका दुःखद कांटा यह देवशत्रु दैत्य शंकरजीसे अवध्यत्व पा कर भी वध्य ही होगा ॥ १३ ॥

अथ रक्षोगणसंहाराय भगवत्कृतकुमुदाक्षनियोजनम्

इत्युक्त्वा तान् सुरगणान् सुप्रसन्नः सुरर्षभः ॥१३॥ इङ्गिताकारचेष्टाज्ञमिन्दिरारमणः प्रभुः ॥ कुमुदाक्षं गणाध्यक्षं गदापाणिमुदैक्षत ॥ १४ ॥ श्रीवत्सकौस्तुभाभ्यां च ऋते सारूप्यसंपदम् ॥ विष्वक्सेनाभिधानं च सैनापत्यं प्रदाय च ॥ १५ ॥ नियुज्य तं तस्य वधेऽमरातेर्गणाधिपम् ॥ देवान्सम्भाष्य सहसा सर्वान् स्वपदकाङ्क्षिणः ॥१६॥ कृत्वाऽभयप्रदानं च दत्त्वाशिषमनेकशः ॥ स्मयमानमुखः श्रीमानच्युतस्तु तिरोदधे ॥ १७ ॥

राक्षसोंके संहारके लिये भगवानका कुमुदाक्षको नियुक्त करना।

उन देववर्गोंको इतना कह कर सुरश्रेष्ठ, इन्दिरापतिने परम प्रसन्न हो इंगित, आकार तथा चेष्टाओंको जाननेवाले, भगवान् गदाधारी गणाध्यक्ष कुमुदाक्षकी ओर देखा। विष्वक्सेन नामक अपने गणको श्रीवत्स-चिन्ह तथा कौस्तुभमणिको छोड़ कर अपने रूपकीसी रूपसमृद्धिको प्रदान कर उस अमरारि राक्षसके वधके लिये सेनापतिपद पर उसको नियुक्त कर अपने अपने पदकी कामना रखनेवाले सभी देवताओंसे वार्तालाप तथा अभय प्रदान कर अनेक आशीर्वाद दे कर, हंसते वदनसे, श्रीमान अच्युत भगवान एकाएक अन्तर्धान हो गये ॥ १७ ॥

ततो देवा देवदेवाभिहितं वचनं हितम् ॥ श्रुत्वा प्रीत्या प्रणम्यैतं देशमुद्दिश्य चोर्जितम् ॥ १८ ॥ शिरस्यञ्जलिपुञ्जानप्याबध्नन्तः सुधान्धसः ॥ प्रदक्षिणं परिक्रम्य ययुः संहृष्टमानसाः ॥ १९ ॥

तत्पश्चात् भगवानके उन हितकर वचनोंको सुन देवतागण प्रसन्नचित्त तथा उस प्रदेशका उद्देश्य कर प्रणामपूर्वक माथेपर अञ्जलि बांधे, प्रदक्षिणा घूम कर प्रसन्न मनसे लौट गये ॥ १८ ॥

अथ श्रीनिवासावासस्थलस्य सर्वफलप्रदत्ववर्णनम्

इति देवार्यमित्रस्य सर्वान्तर्यामिणो विभोः ॥ आविर्भावो मयाऽऽख्यातः श्रीनिवासस्य देवज ॥ २० ॥ शृण्वतां पठतां चैव चतुर्वर्गफलप्रदः ॥ एतद्वै

वैष्णवं क्षेत्रं पवित्रं चित्रवैभवम् ॥ २१ ॥ अनायासेन जगतामभीष्टफलदायकम् ॥ मुक्तिभाजां मुमुक्षूणां लक्ष्मीवैभवकाङ्क्षिणाम् ॥ २२ ॥ किन्नराणां नराणां च सुराणां सुखशालिनाम् ॥ भूतानां भूतयोनीनां भैरवाभैरवात्मनाम् ॥२३॥ परमैकान्तिनां पञ्चकालाकलुषितात्मनाम् ॥ पञ्चशाखाथर्वविदां पञ्चोपनिषदात्मनाम् ॥२४॥ नित्यानां नियमस्थानां निवासो योगिनामपि ॥ माहात्म्यमस्य देशस्य वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ २५ ॥ अशक्यं देवल भवान् कृतकृत्यः शुचिश्रवाः ॥

श्रीनिवासभगवानका सर्वफल देनेकी शक्तिका वर्णन ।

हे देवलजी ! असुरोंके शत्रु, सर्वान्तर्यामी, श्रीनिवास भगवानका आविर्भाव मुझसे कहा गया । यह सुनने तथा पढ़नेवालोंको चतुर्वर्ग (अर्थधर्मादि...) फलको देनेवाला है । आश्चर्यमय प्रभावशाली यह पवित्र क्षेत्र संसारियोंके सभी अभीष्ट फलको अनायास देनेवाला है । यह मुक्तिके लिये भजन करनेवाले मुमुक्षुओं, लक्ष्मी (धन) विभव आदिकी इच्छावाले किन्नरों, मनुष्यों, सुखशाली देवताओं, भूतों, भूतयोनियों, भैरवों, अभैरव आत्माओं, परमविरागियों, पांचों कालमें भी अकलुषित आत्मावालों, पञ्च शाखावाले अथर्ववेदोंके ज्ञाताओं, पांचों उपनिषदोंके जाननेवालों तथा नित्य नियमसे रहनेवाले योगी आदि सभी लोगोंका निवासस्थान है । इस देशका माहात्म्य सौ वर्षों में भी कहना अशक्य है । हे देवलजी ! पवित्र चीजोंके सुननेवाले आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं ! ॥ २६ ॥

अथ श्रीश्रीनिवासावतारदेशकालनिर्णयः

इत्थमात्मभुवः कल्पे हार्दाम्भोजभुवो हरेः ॥ २६ ॥ आदौ कृतयुगे जम्बूद्वीपे भारतवर्षके ॥ गङ्गाया दक्षिणे भागे योजनानां शतद्वये ॥ २७ ॥ पञ्चयोजनमात्रे तु पूर्वाम्भोधेस्तु पश्चिमे ॥ मासे भाद्रपदे विष्णुतिथौ विष्णुसमन्विते ॥२८॥ सिद्धयोगे सोमवारे गिरौ नारायणाह्वये ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे पश्चिमे भूत्यपश्चिमे ॥२९॥ वृन्दारकाणां बृन्दैस्तु प्रार्थितो लोकरक्षकः ॥ आविर्बभूव भगवाञ्छ्रीनिवासः परः पुमान् ॥ १३० ॥ श्रीनिवासाय महते निष्कलाय कलात्मने ॥ नमोऽस्तु पद्मनेत्राय पवित्रायादिवेधसे॥१३१॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीश्रीनिवासाविर्भाववर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायोऽत्र दशमः ॥ १० ॥

भगवानके अवतारका देशकाल निर्णय

इस प्रकार ब्रह्माजीके कल्पके आदि काल सत्ययुगमें जम्बूद्वीपके भारतवर्षमें गंगाके दक्षिणभागमें दो सौ

योजनकी दूरीपर पूर्वसागरके पांच योजन पश्चिममें भादो महीनेके विष्णुतिथि (एकादशी) को श्रवण नक्षत्र और सिद्धि योगमें सोमवारको नारायणनामक पर्वत पर स्वामिपुष्करिणीके किनारे पश्चिमकी ओर देवतागणोंसे प्रार्थित हो कर लोकरक्षक परमपुरुष श्रीनिवास भगवान प्रकट हुए। महान्, कलायुक्त तथा कअरहितस्वरूप श्रीनिवास भगवान को नमस्कार। कमलनेत्र, पवित्रमूर्ति एवं आदिविधाता भगवानको नमस्कार है ॥ १३१ ॥

इति दशमोऽध्यायः।

एकादशोऽध्यायः

भृगु-पद घात लाग्यो विष्णु-उर माहिं जिमि।
सुभग प्रसङ्ग भली भांति सो बतायो है ॥
रमाको पयान भो पताल क कपिलाश्रममें।
ताके हेतु आप हरि नर बनि आयो है ॥
राज वेष धरि जब कीन्हों सो अटल तप।
ताते भङ्ग हेतु इन्द्र रम्भाको पठायो है ॥
निजकृत मायासों भगाया ईश रम्भा को।
वेद औ पुराण शास्त्र जाको यश गायो है ॥
विष्णु निर्मित शुभ पदम सरोवर में।
सुकवि प्रकाश एक औचक प्रकाश भो ॥
कञ्चन कमल माहिं निरखि रमाको रूप।
हरि हर्षान्यों अरु विमल अकाश भो ॥
पदम सरोवर माहात्म्यके प्रसङ्ग माँहि।
ग्यारवाँ अध्याय येती कथाको विकास भो ॥
लक्ष्मीके साथ विष्णु तितते गमन करि।
सुखद कथा है शेषाचल पै निवास भो ॥

अथ पद्मसरोवरमाहात्म्यम्

देवल उवाच —

देवदर्शन भूयोऽपि श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ पद्माख्यसरसो ब्रह्मन्मा-
हात्म्यं जन्म मे वद ॥ १ ॥ यस्मिंस्तपस्यतो वैयासकेः सिद्धिरुपागता ॥
शुकस्तु मुक्त इति वै प्रसिद्धिर्जगतीतले ॥ २ ॥ ब्रह्मलोकादागतो यः शु-
कोऽन्यो वा वदस्व मे ॥ कृपां मयि कुरुष्वाद्य वद सर्वज्ञ मे गुरो ॥ ३ ॥

पद्मसरोवरमाहात्म्य

देवलजी बोले—हे देवदर्शनजी ! हे ब्रह्मन् । जिसपर तपस्या करनेसे व्यासपुत्रको सिद्धि मिली तथा 'यहां शुकदेवजी मुक्त हुए,' संसारमे जिसकी ऐसी प्रसिद्धि है, उस पद्मसरोवरका माहात्म्य तथा जन्म सुननेके लिये मुझको और भी उत्कण्ठा है उसे आप मुझे कहे। ब्रह्मलोकसे आये हुए यह वही शुकदेवजी हैं अथवा ये कोई दूसरे ही शुकदेव है ? हे सर्वज्ञ । हे गुरु ॥ यह सभी कुछ मुझसे कहें ॥ ३ ॥

देवदर्शन उवाच

श्रृणु पद्माख्यसरस उत्पत्तिं देवलाद्य भोः ॥

देवदर्शनजी बोले— हे देवलजी । आज पद्मसरोवरकी उत्पत्ति सुनिये ॥

अथ भृगुपादाहतिकुपिताया लक्ष्म्याः कपिलालयगमनम्

भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीः पूर्वं धर्मनायक ॥ ४ ॥ भृगुपादाहत
स्यास्य विष्णोर्वैकुण्ठवासिनः ॥ विप्रपादरजःस्पृष्टा कुपिता कपिलालयम् ॥५
गत्वा पातालमूलं सा मुनिना तेन पूजिता ॥ श्रीमता सा हि तेनैव कपिलेन
कृतालया ॥ ६ ॥ पूजिता च चिरं कालं तत्र वासं तदाऽकरोत् ॥

भृगुपादके आघातसे कुपितलक्ष्मीजीका कपिलजीके आश्रममें जाना।

हे धर्मनायक । पहले श्री भृगुजीके द्वारा उनकी स्त्री ख्यातिसे उत्पन्न हुई लक्ष्मीजी, भृगुजी के पैरसे मारे गये वैकुण्ठवासी इन विष्णु भगवानमें लगी विप्रके चरणके रज (धूली) को (अपनेमें भी) लग जानेसे क्रोधित हो पातालस्थ श्रीकपिलमुनिके आश्रममें जा कर, श्रीमान् मुनिवर कपिलजीसे सत्कार तथा पूजाको पा कर वहीं बहुत दिनोंतक रहीं ॥ ७ ॥

अथ लक्ष्म्यन्वेषणार्थं धरातलं प्रति भगवदागमनम्

धारण्या सहितो विष्णुर्लीलया धृतचामरः ॥ तं मुनिं पूजयित्वाथ भृगुं

ब्रह्मर्षिसत्तमम् ॥ नीलां निक्षिप्य वैकुण्ठे भूदेव्या भूमिमागतः ॥८॥ शङ्ख-
चक्रगदाकुन्तपाणिः पद्मदलेक्षणः ॥ श्रीदेव्यन्वेषणं कुर्वन्नानारूपी जनार्द-
नः ॥ ९ ॥ षट्पञ्चाशत्सुदेशेषु विचिन्वन्पुरुषोत्तमः ॥ कोलापुरं समागम्य
श्रियोऽधिष्ठानमुत्तमम् ॥ १० ॥ तत्रापश्यन्महालक्ष्मीमर्चारूपेण राजती-
म् ॥ अगस्त्याराधितां पूर्वं प्रतिष्ठाप्यालयोत्तमे ॥ ११ ॥ तां दृष्ट्वा तत्र देवे-
शो महितां मुनिसत्तमैः॥ अर्चयञ्श्च स्वयं विष्णुरुवास दश वत्सरान्॥१२॥

श्रीलक्ष्मीजीके खोजमें भगवानको धरातलपर आना।

तत्पश्चात् श्रीधरणी देवीके साथ लीलासे चमर धारण किये विष्णु भगवान उस ब्रह्मर्षिश्रेष्ठ भृगु मुनिकी पूजा कर नीला देवीको वैकुण्ठमें रख कर धरणी देवीके साथ पृथ्वीपर आये। शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्मको हाथोंमें धारण किये, पद्मलोचन, अनेकरूपधारी, परम पुरुषोत्तम, जनार्दन भगवानने श्री लक्ष्मीदेवीकी खोजमें छप्पन देशोंमें ढूंढते ढूंढते कोलापुरमें आ कर वहां अत्यन्त उत्तम मन्दिरमें अगस्त्य ऋषिसे स्थापित तथा पूजित अर्चारूपमें (पूजनीय मूर्तिमें) श्री महालक्ष्मीजीको देखा। देवेश भगवान विष्णुने उनको (लक्ष्मीजीको) वहां मुनिसत्तमोंसे पूजित देख कर स्वयं भी उनकी पूजा करते हुए दश वर्षों तक वहीं निवास किया ॥१२॥

अथ श्रीकोलापुरवासिलक्ष्मीमर्चयन्तं भगवन्तं प्रत्यशरीरोक्तिः

अथाब्रवीत्तदा विष्णुमशरीरा सरस्वती ॥ विष्णो प्रसीद भगवन्
लक्ष्मीदर्शनलालस ॥ १३ ॥ इतो दक्षिणतो गच्छ कृष्णवेण्याश्च दक्षिणे ॥
द्वाविंशद्योजने विष्णो सुवर्णमुखरी नदी ॥ १४ ॥ तीरमासाद्य तस्यास्त्व-
मुत्तरं मुनिसेवितम् ॥ कुन्तेनाहत्य तत्तीरे सरः कृत्वा तपः कुरु ॥ १५ ॥
आहृत्य देवलोकात्त्वं सुवर्णकमलानि च ॥ संस्थाप्य तस्मिन् सरसि सर्वा-
णि कमलानि च ॥१६॥ तत्तीरे पुष्पजातीश्च पुष्पवृक्षशतानि च ॥ पद्मा-
रामे च सरसि पद्मायाः पद्मवल्लभ ॥ १७ ॥ जपन्नेकाक्षरमनुं सहस्राक्षर-
मेव वा ॥ अर्चयन् कमलैः पद्मां द्वादशाब्दं वस प्रभो ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् शरीरहीना सरस्वती (गिरा) देवी श्री विष्णु भगवानसे बोलीः—हे श्री लक्ष्मीजीके दर्शनकी लालसा रखने वाले विष्णु भगवान! आप प्रसन्न हों तथा यहांसे दक्षिण भागमें जावें। वहां कृष्णवेणी नदीके दक्षिण किनारे बाईस योजन दूरीपर सुवर्णमुखरी नदी है। मुनियोंसे सेवित उसके उत्तर किनारेपर जा कर कुदालीसे खन कर तालाब बना उसके किनारे तपस्या कीजिये। हे पद्मवल्लभ! आप देवलोकसे सुवर्णकमलोंको ला उन्हें

उसी तालाबमें स्थापित कर उसके तीरोंपर पुन्नजातीय वृक्षको लगा कर कमलोंसे सुशोभित उस सरोवरपर श्रीलक्ष्मीजीके एकाक्षर अथवा सहस्राक्षर मन्त्रोंको जपते एवं कमलोंसे पद्मादेवी (लक्ष्मी) की पूजा करते हुए बारह बरसों तक निवास करें ॥ १८ ॥

ततः प्रसन्ना सा देवी स्वयमाविर्भविष्यति ॥ सुवर्णकमले देव सुव-
र्णकमलाकृतिः ॥ १९ ॥ ऊनषोडशवर्षा सा श्रीः पद्मनयना तव ॥ गच्छ
शीघ्रमितो विष्णो सुवर्णमुखरीतटम् ॥ २० ॥

हे देव ! उसीसे प्रसन्न हो सुवर्ण कमलोंमें सुवर्णकमलके आकारकी, पन्द्रह वर्षकी अवस्थावाली कमलाक्षी वही लक्ष्मीदेवी आप ही प्रकट होंगी । विष्णु भगवन ! यहांसे आप शीघ्र सुवर्णमुखरी नदीके तीर जायं ॥ २० ॥

अथ शेषाचलाध्वना राजरूपस्य भगवतः सुवर्णमुखरीतीरागमनम्

इति सौम्यं वचः श्रुत्वा विष्णुराकाशसम्भवम् ॥ जगाम गरुडारूढः
सुवर्णमुखरीतटम् ॥ २१ ॥ पश्यंश्च विविधान्देशान्पर्वतांश्च वनानि च ॥
वराहाधिष्ठितं पुण्यमञ्जनाद्रिं सुरारिहा ॥ २२ ॥ स्वामिपुष्करिणीं दृष्ट्वा भूव-
राहस्य सन्निधौ ॥ गरुडादवतीर्यासौ स्नात्वा स्वामिसरोजले ॥ २३ ॥ वै-
खानसैश्च मुनिभिरातिथ्येन संपूजितः ॥ न ज्ञातो राजरूपेण मुनिभिः
पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥ ययौ प्रातः समुत्थाय मुनीनामन्त्र्य तान्विभुः ॥
अश्वरूपं तु गरुडमारुह्य पुरुषोत्तमः २५ ॥

शेषाचलके रास्ते राजभेषमें भगवानका स्वर्णमुखरीके किनारे जाना ।

आकाशोत्पन्न इन सौम्य वचनोंको सुन कर असुरारि विष्णु भगवान गरुड़पर सवार हो कर नाना देशों, पर्वतों, जङ्गलों तथा वराह भगवानसे अधिष्ठित पुण्य अञ्जनाद्रि आदिको देखते हुए सुवर्णमुखरीको देख कर भूवराहके निकट गरुड़परसे उतर, स्वामिसरोवरमें स्नान कर, वैखानसों एवं मुनिवरोंसे आतिथ्यके साथ अच्छी तरह पूजित हो, राजरूप-में रहनेके कारण मुनियोंसे नहीं पहचाने गये पुरुषोत्तम भगवान प्रातःकालमें उठ कर उन मुनियोंसे सलाह ले कर घोड़ेके रूप धारण किये गरुड़पर सवार हो कर चल दिये ॥ २५ ॥

गदाकुन्तधरो देवो गिरेर्दक्षिणतो व्रजन् ॥ सुवर्णपङ्कजाकीर्णां सुवर्ण-
मुखरीं हरिः ॥ २६ ॥ दृष्ट्वा सविस्मयो भूत्वा गरुडादवरुह्य च ॥ तत्र पुण्ये
समे देशे कुन्तेनाहत्य भूतलम् ॥२७॥

गदा तथा कुदाली धारण किये हरि भगवानने चलते चलते सुवर्णकमलोंसे समाकीर्ण, सुवर्णमुखरी नदीको

देव आश्चर्ययुक्त हो, गरुड़परसे उतर कर उस समतल पुण्य देशमे जमीनको कुदालोसे खोद कर गोकर्ण परिमाण एक अतिसुन्दर सरोवर बनाया ॥ २७ ॥

अथ भगवत्कृतपद्मसरोवरनिर्माणप्रकारः

गोकर्णमात्रविस्तारं चकार रुचिरं सरः ॥ स्मृत्वा वायुं समाहूय तमु
वाच महामनाः ॥ २८ ॥ इन्द्रस्यानुमते वायो रुक्मपद्मानि चाहर ॥ स्था-
पयिष्यामि सरसि लक्ष्मीपूजाविधौ मरुत् ! ॥२९॥ तत् श्रुत्वा वायुराहैन-
मस्यां नद्यां हि सन्ति वै ॥ काञ्चनानि च पद्मानि किमर्थं सुरलोकतः ॥३०॥

भगवानका सरोवर निर्माणप्रकार ।

मनसे स्मरण द्वारा वायुको बुलाकर उससे (वायुसे) महामना भगवान बोले—हे वायु ! इन्द्रकी आज्ञा ले कर सुवर्णपद्मोंको यहा ले आओ । हे मरुन् ! उनको लक्ष्मीजीकी पूजाके विधानके लिये इस सरोवरमे लगाऊंगा । यह सुन कर उनसे वायु बोले—इसी नदीमें तो सुवर्णके कमल हैं । फिर देवलोकसे लानेका क्या प्रयोजन ? ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच—

कोलापुरे महावाणी ह्यशरीराऽब्रवीत्पुरा ॥ देवलोकात्समानीय काञ्च-
नाब्जानि चार्चय ॥३१॥ इति मामब्रवीद्वायो तस्मादानय मेऽम्बुजम् ॥

श्री भगवान बोले—हे वायु ! मुझसे पहले कोलापुरमें अशरीरा आकाशवाणीने कहा था कि देवलोकसे स्वर्णकमलोंको ला कर पूजा कीजिये । उसी कारणसे मेरे लिये उन्हीं कमलोंको यहा ले आओ ॥ ३५ ॥

अथ पद्मविकासनैरन्तर्यार्थं भगवत्कृतसूर्यनारायणप्रतिष्ठा

गत्वा लोकं ततो वायुरिन्द्रलोकादुदारधीः ॥ ३२ ॥ देवेन्द्रानुमतेः
शीघ्रमानयामास तानि वै ॥ काञ्चनाब्जानि निक्षिप्य तस्मिन् सरसि माधवः
॥ ३३ ॥ विष्णुः सूर्यं प्रतिष्ठाप्य प्राङ्मुखं सरसस्तटे ॥ अर्चयन्पङ्कजाधीशं
कमलावाप्तये विभुः ॥ ३४ ॥ शक्तिपूर्वं श्रियो बीजं कामबीजमतः परम् ॥
आद्यन्तप्रणवोपेतमक्षरत्रयसम्पुटम् ॥ ३५ ॥ त्रिसहस्रं जपन्नित्यं दशांशं
तर्पयन् विभुः ॥ अर्चयन्पद्मसाहस्रैर्दिव्यैः काञ्चनसम्भवैः ॥ ३६ ॥ तर्पयन्
पद्मसरसो रसेनोपसि माधवः ॥ क्षीराहारो यताहारो लक्ष्म्याराधनत-

त्परः ॥ ३७ ॥ तद्वापीसन्निधौ तीरे पश्चिमाभिमुखो विभुः ॥ दीक्षां विवेश देवेशो द्वादशाब्दमनन्यधीः ॥ ३८ ॥

भगवान् श्रीनिवासका सूर्यकी प्रतिष्ठा करना ।

तब उदारबुद्धिवाले वायु देवलोकमें जा कर इन्द्रलोकसे देवेन्द्रकी आज्ञा ले कर उन फूलोंको शीघ्र ही ले आये। फिर माधव भगवान उस तालाबमें उन स्वर्णकमलोंको डाल कर सूर्यकी प्रतिष्ठा कर कमलादेवी (लक्ष्मी) को पानेकी इच्छासे पूर्वमुख बैठ कर कमलोंके स्वामी श्री सूर्य भगवानकी पूजा करते, शक्तिबीजके साथ लक्ष्मी-बीज तत्पश्चात् कामबीजको आगे और पीछे दोनों तरफ प्रणव मन्त्र ओंकारसे युक्त कर तीनों सम्पुटित अक्षरोंको नित्य तीन हजार जप और उसके दशांश तर्पणके साथ हजारों स्वर्गीय स्वर्णकमलोंसे पूजा करते एवं उषःकालमें पद्म-सरोवरके जलसे तर्पण करते हुए दुग्धाहारी एवं नियमित आहारी हो लक्ष्मीपूजामें तत्पर हो कर उसीके तीरपर सूर्यके सामने पश्चिममुख हो अनन्य मनसे बारह वर्षों तक तपोदीक्षामें मग्न रहे ॥ ३८॥

अथ नृपशङ्कया भगवत्तपोभङ्गायेन्द्रादिकृतरम्भादिप्रेषणम्

एवं स्थिते महाविष्णौ श्रीकाङ्क्षिणि समाहिते॥ इन्द्रादिदेवाः संक्षुब्धा मायामोहसमन्विताः ॥ ३९ ॥ भूपतेः पार्थिवेन्द्रस्य विष्णोर्मानुषरूपिणः ॥ विघ्नं च तपसः कर्तुमुद्यमं चक्रुरुद्धताः ॥ ४० ॥ आहूयाप्सरसः सर्वाः प्रोचुः सेन्द्रा दिवौकसः ॥ यूयं गच्छत भूलोकमञ्जनाद्रेः समीपतः ॥४१॥

राजा समझ कर भगवानकी तपस्याको भंग करनेके लिये इन्द्रका रम्भा आदि अप्सराओंको भेजना ।

लक्ष्मीजीको पानेकी इच्छामें महाविष्णुको इस प्रकार तपस्यामें लीन होने पर मायामोहसे युक्त इन्द्रादि देवताओंने संक्षुब्ध हो कर मनुष्य रूपधारी, पार्थिवेन्द्र श्रीविष्णु भगवानकी तपस्यामें विघ्न करनेका प्रयत्न किया और उद्धत इन्द्रादि देवतागणने अप्सराओंको बुला कर कहा ॥ ४१ ॥

सुवर्णमुखरी नाम नदी मुनिनिषेविता ॥ तस्या एवोत्तरे तीरे कुम्भ-योनेर्महाश्रमः ॥ ४२ ॥ तदाश्रमात्पूर्वभागे कश्चिद्राजा तपस्यति ॥ कन-काब्जसरस्तीरे पुरस्ताद्भास्करस्य च ॥ ४३ ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीमाकाङ्क्षन्मा-यावी स चतुर्भुजः ॥ क्षोभयध्वं नृत्यगीतैरन्यैः शृङ्गारचेष्टितैः ॥४४॥

तुम लोग भूलोकमें अञ्जनाद्रिके समीप जाओ। वहां मुनियोंसे सेवित सुवर्णमुखरी नामकी नदीके उत्तर किनारेपर अगस्त्यऋषिका महा आश्रम है। उस आश्रमके पूर्वभागमें कोई राजा तपस्या करते हैं। वे महामायावी चतुर्भुज हो कर त्रैलोक्यकी लक्ष्मीको पानेकी आकांक्षासे पद्मसरोवरके तीरपर सूर्यके सम्मुख हो तपस्या करते हैं। उनको नाच, गान तथा शृङ्गारकी अन्यान्य चेष्टाओंसे क्षुब्ध करो ॥ ४४ ॥

अथ राजवेषभृद्भगवत्तपोधनं प्रति इन्द्रप्रेषित रम्भाद्यागमनम्

इति देवैः समादिष्टाः सर्वा ह्यप्सरसां वराः ॥ वसन्तकामसहिता जग्मुः पद्मसरोवरम् ॥ ४५ ॥ अवतीर्णो वसन्तस्तु जजृम्भे तद्वने भृशम् ॥ चूतकिंशुकमन्दारकर्णिकारासनोज्ज्वलैः ॥ ४६ ॥ कोकिलैर्भृङ्गराजैश्च शोभितैर्विविधैः खगैः ॥ रम्ये वने तपस्यन्तं पुरुषं सुभगाकृतिम् ॥ ४७ ॥ दृष्ट्वा चतुर्भुजं चित्रं मोहिताश्चाप्सरोगणाः ॥ जगुः कलं च ननृतुस्तदग्रे ता वराङ्गनाः ॥ ४८ ॥ कल्हारशीतलो वायुश्चलयन् पुष्पवाटिकाम् ॥ ववौ मलयसम्भूतो मदयन्वनवासिनः ॥ ४९ ॥

राजवेषधारी भगवानकी तपोभूमिकी ओर इन्द्रादिसे भेजी हुई अप्सराओंका जाना।

इस प्रकार देवताओंसे प्रेरित हो कर अप्सराओंमें श्रेष्ठ अप्सरायें वसन्त तथा कामदेवके साथ पद्मसरोवरपर गयीं। वहां उतर कर उस वनमें पूर्ण रूपसे वसन्त छा गया। आम, पलाश, मन्दार, कर्णिका एवं असनोंसे प्रकाशित, कोयल, भृङ्गराज, तथा नानाभांतिके पक्षियोंसे शोभित, रम्यवनमें तपस्या करते, विचित्र, चतुर्भुज एवं सुन्दर स्वरूपवाले पुरुषको देख कर सभी अप्सरागण मोहित हो गयीं। उनके सामने उन वराङ्गनाओंने अच्छा अच्छा गाना गाया तथा नाच नाचा। मलयाचलसे उत्पन्न कल्हारसे शीतल किया हुआ वायु पुष्पवाटिकाको डुलाता तथा वनवासियोंको काम मदमें मदान्ध करता हुआ बहने लगा ॥ ४९ ॥

अथ स्वाश्रमागताप्सरोवञ्चनार्थं भगवत्कृतमायानिर्माणम्

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः किञ्चिदुन्मील्य चक्षुषी ॥ मायामन्यां विससृजे तासां सम्मोहनाय वै ॥ ५० ॥ तां विष्णुमायां वीक्ष्यैव विवशा विनताननाः ॥ स तु पद्मानि सञ्चिन्वंश्चचार सरसीजले ॥ ५१ ॥ यथापूर्वं पूजयञ्च निर्विकारो निरञ्जनः ॥ तं दृष्ट्वा निर्विकारं ता विकर्तुं पुरुषोत्तमम् ॥ ५२ ॥ अशक्ता जग्मुराकाशं विष्णुमायाविमोहिताः ॥ तां मायां भगवानाह लोकपूज्या भविष्यसि ॥ ५३ ॥ इक्षुचापासिचकाब्जपुष्पबाणधरा सती ॥ चतुर्वर्गप्रदा पुंसां पर्णक्षीरादिपूजिता ॥ ५४ ॥ इत्यादिश्य च तां देवीमर्चयामास पद्मिनीम् ॥ एवं तपस्यतस्तस्य द्वादशाब्दा गता द्विज ॥५५

भगवानके द्वारा दूसरी मायाकी रचना।

इसके बाद विष्णु भगवानने अपनी आंखोंको थोड़ा थोड़ा खोल कर उन अप्सराओंको मोहित करनेके लिये

एक दूसरी ही मायाकी सृष्टि की। उस विष्णु मायाको देख कर ही वे विवश हो मुंह लटका दिये, वे (अप्सराएं) भी उन कमलपुष्पोंको तोड़ते एवं उस सरोवर जलमें विचरण करते हुए, निर्विकार, निरञ्जन तथा पहलेके समान पूजामें संलग्न, उस परम पुरुषोत्तमको निर्विकार देख कर स्वयं ही विष्णु मायासे मोहित तथा अपने कार्य्यमें अशक्त अथवा अकृत कर्म हो कर आकाशमें चली (उड़) गयीं। तब उस अपनी मायासे भगवानने कहा कि तुम लोगोंमें पूजनीया होगी। धनुष, बाण, तलवार, चक्र एवं कमल पुष्पधारिणी हो कर पत्र तथा क्षीरादिसे पूजिता हो लोगोंको चतु· र्वर्गको देनेवाली होगी। इस प्रकार मायादेवीको आदेश कर आप पुनः लक्ष्मीजीकी ही पूजा करने लगे। हे द्विज! उनको इस प्रकारकी तपस्या करते बारह वर्ष व्यतीत हो गये ॥ ५५ ॥

अथ पद्मसरोवराल्लक्ष्मीप्रादुर्भावः

ततस्त्रयोदशे वर्षे कार्तिके शुक्लपक्षके ॥ पञ्चम्यां शुक्रवारे च मुहूर्ते मन्त्रसंज्ञिके ॥ ५६ ॥ ववुः पुण्याः सुखा वाता उत्तराषाढ तारके ॥ प्रसन्नं सलिलं सर्वं त्रैलोक्यान्तर्गतं द्विज ॥ ५७ ॥ सुप्रभो भानुमानासीत्प्रसन्ना· नि मनांसि च ॥ ततः पद्मसरोमध्ये तेजोराशिर्महानभूत ॥५८॥

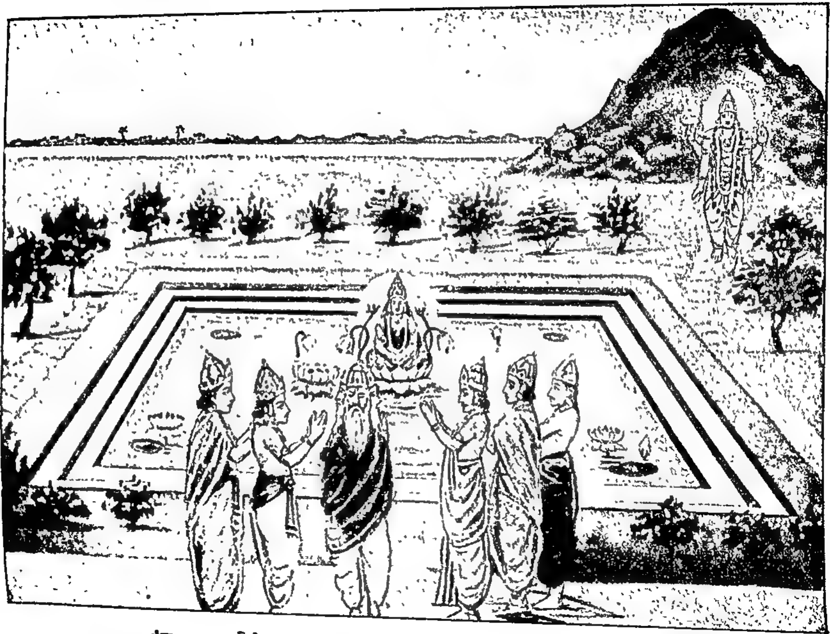
पद्मसरोवरसे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव।

हे देवल! तेरहवें वर्ष, कार्तिक शुक्ल पञ्चमी, शुक्रवारके दिन मन्त्र नामक मुहूर्तके उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें सुन्दर सुखद वायु बहने लगा तथा त्रैलोक्यके सभी जल स्वच्छ हो गये। सूर्य सुन्दर प्रभासे युक्त हुए, सबके मन प्रसन्न हो गये ॥ ५८ ॥

बालभानुसहस्राभः सुवर्णसदृशच्छविः ॥ तन्मध्ये काञ्चनैः पद्मैर्नि- र्मितो रथ उत्तमः ॥ ५९ ॥ पद्मिभिर्धृतपार्श्वैश्च चतुर्भिर्मदगन्धिभिः ॥

तत्पश्चात् उस पद्म सरोवरके मध्यमें हजारों बाल सूर्यकी आभा तथा सुवर्णकी शोभावाला विशाल तेज पुञ्ज उत्पन्न हुआ। उसके मध्य स्वर्णकमलोंसे बना चार मदमस्त हाथियों एवं चारों पार्श्वमें पद्महस्त परिजनोंसे अवलम्बित एक अति उत्तम रथ प्रकट हुआ ॥ ६० ॥

तन्मध्ये काञ्चने पद्मे सहस्रदलशोभिते ॥६०॥ तत्पद्मकर्णिकामध्ये पद्मासनसमन्विता ॥ पद्महस्ता पद्मनेत्री रक्तपद्मपदद्वया ॥ ६१ ॥ सुवर्ण- पद्ममुकुलद्वयशोभिकुचानता ॥ स्मेरपद्मरजोगन्धिसमुच्छ्वासमुखाम्बु- जा ॥ ६२ ॥ बिम्बाधरसुसंपृक्तस्मितशोभिसुधारसा ॥ सम्पल्लक्ष्मीसमा- घासविशालनयनद्वया ॥ ६३ ॥ सर्वरत्नसमुत्क्षिप्तजाम्बूनदविभूषणा ॥ कर्णिकोत्पलताटङ्कमौक्तिकालकबन्धना ॥ ६४ ॥ आमुक्तमुक्तामुकुटक·



ईशानाद्यः सह मुनिभिस्तत्र समागतो । इन्द्रः शच्या लोकपालैः श्रुत्वा तद्ध्वनिं ययौ ॥

काङ्गदकङ्कणा ॥ विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशविचित्राम्बरचित्रिता ॥६५॥ मन्दस्मिता मनोज्ञाङ्गी माधवं वीक्ष्य सादरम् ॥ कल्हारमालामादाय यक्षकर्दम-लेपनाम् ॥ ६६ ॥ सुगन्धितुलसीदूर्वामधूकसकमलोत्पलाम् ॥ स्थिता पद्मरथे देवी देवं वीक्ष्य चतुर्भुजम् ॥ ६७ ॥

उसके मध्य हजार दलवाले सुन्दर स्वर्ण कमलकी पद्मकर्णिका (कली) के बीच, पद्मासनपर बैठी, हाथमें कमल लिये, कमलाक्षी, रक्त कमलके समान चरण कमलवाली, दो स्वर्णपद्मकी कलीके समान स्तन कमलोंसे झुकी, विकसित कमलके मकरन्दके समान सुगन्ध श्वास एवं उच्छ्वास युक्त, कमलमुखवाली, मन्द मुसकान रूप अमृत रसयुक्त बन्धुक फलके समान सुन्दर लाल ओष्ठवाली, सम्पत्ति तथा लक्ष्मी दोनोंहीके निवास स्थान विशाल नेत्रयुक्त, सभी सद्रत्नोंसे जटित स्वर्णभूषणोंसे विभूषित, कर्णिका तथा कमलके समान कर्णफूल एवं मुक्ताकी लड़ियोंसे बंधी अलकावलिवाली, सम्पूर्ण मुक्ताके मुकुट कड़े, वलय तथा कङ्कणधारिणी, बिजली पुञ्जकी चमकके समान प्रकाशित विचित्र वस्त्र चित्रित मन्द मन्द हास्ययुक्त तथा कामरूपिणी महालक्ष्मीदेवी तथा माधव भगवानको सादर देख कर यक्षकर्दमसे लिप्त कल्हारकी माला तथा सुगन्ध और तुलसी, दूब, मधूक कमल पुष्प ले कर चतुर्भुज भगवानको ही देखती हुई उसी कमलरथमें ठहर गई ॥ ६७ ॥

ततो देवगणाः सर्वेवादयन्देवदुन्दुभीः ॥ शङ्खानापूरयामासुर्वीणाश्च मुमुचुः स्वरान् ॥६८॥ षड्जादीन् समतालेन गन्धर्वा ललितं जगुः ॥ नन्तुर्दिव्याप्सरसः सुस्वरं गीतलालसाः ॥ ६९ ॥ तूर्यघोषेण महता कृत्स्नमापूरितं जगत् ॥ तेन घोषेण विज्ञाय श्रियः प्रत्यक्षतां विधिः ॥ ७० ॥

तत्पश्चात् सभी देवतागण देवदुन्दुभी (नगाड़े) को बजाते एवं शङ्खोंको फूकते हुए बीणाओंके सुर मिलाने लगे । गन्धर्व गण षड्ज (पखौज) के तालके साथ ललित गीत गाने लगे । सुन्दर स्वरके साथ गीत लालसायुक्त, दिव्य अप्सरायें नाचने लगीं । तुरीबाजासे बड़े निनादोंसे सम्पूर्ण जगत भर गया ॥७०॥

अथ लक्ष्म्यवतारदर्शनार्थं पद्मसरस्तीरं प्रति ब्रह्माद्यागमनम्

हंसारूढः सहमुनिर्ब्रह्मा तत्र समाययौ ॥ कैलासाच्छङ्करश्चापि गौरीगणसमन्वितः ॥ ७१ ॥

ब्रह्माजी उसी निनादसे श्री लक्ष्मीजीकी प्रत्यक्षताको जान हंसपर सवार हो मुनियोंके साथ वहां आगये ॥ ७१ ॥

इन्द्रः शच्या लोकपालैः श्रुत्वा शङ्खध्वनिं ययौ ॥ वसिष्ठाद्याश्च मुनयः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ ७२ ॥ काञ्चनाब्जसरस्तीरं पद्मनाभाश्रमं ययुः ॥

सर्वलोकेश्वरीं तत्र श्रियं पद्मरथस्थिताम् ॥ ७३ ॥ दृष्ट्वा विद्याधराः सर्वे
पुष्पवृष्टिमुचो दिवि ॥ विस्मिताः सस्मिताः सर्वे देवास्तस्थुश्च सस्पृहाः॥७४
दैतेया दानवाश्चापि नागाः पातालवासिनः ॥ साभिलाषा रमां वीक्ष्य
स्थिता मदनमोहिताः ॥ ७५ ॥ मामाश्रयेन्मामाश्रयेत्प्रत्येकं मेनिरे हृदि ॥

श्री लक्ष्मी अवतार देखनेको ब्रह्मादिका पद्मसरोवर तीर जाना

श्रीगौरी देवी तथा अपने गणोंसे युक्त हो कर श्री शङ्करजी कैलास पर्वतसे और शची देवी तथा लोकपालोंके साथ इन्द्र भगवान शङ्खध्वनि सुन कर वहां पहुंचे। वसिष्ठादि मुनिगण और सनकादि योगिगण, पद्म सरोवर तीरपर ब्रह्माजीके आश्रममें गये। वहां सब लोकोंकी स्वामिनी श्री लक्ष्मीदेवीको कमल रथपर स्थित देख कर सभी विद्याधरगणने स्वर्गसे पुष्पोंकी वर्षा बरसायी।

सभी देवतागण आश्चर्यित स्पृहाके साथ हंसते हुए वहीं ठहरे रहे। दैत्यवंशीय दानवगण, नागगण, तथा पातालके निवासीवर्ग सभी उन रमा देवी (महालक्ष्मी) को अभिलाषाके साथ देखते हुए कामसे मोहित हो कर ठहर गये। और उनमेंसे प्रत्येकने अपने मनमें यही समझा कि वह (लक्ष्मी) "मेरा ही आश्रय लेगी। मेरा ही आश्रय लेगी' ॥ ७६ ॥

अथ लक्ष्मीकृतमालार्पणपूर्वकभगवद्वरणनम्

इति तेषु स्मरत्स्वेवं देवदानवभोगिषु ॥ ७६ ॥ उत्थाय सस्मिता-
लक्ष्मीरागत्य हरिमञ्जसा ॥ कल्हारमालामुन्मुच्य विष्णोः कण्ठे समर्प्य
च॥ ७७॥ आलिङ्ग्य तं चतुर्बाहुं सर्वलोकान् व्यलोकयत् ॥ हरिवक्षःप्रति-
च्छायाः श्रियो दृष्टयञ्चलेक्षिताः ॥ ७८ ॥ स्वस्वाधिकारान्संप्रापुर्देवदानव-
योगिनः ॥ श्रिया समेतो भगवान्कृतार्थः कमलापतिः ॥ ७९ ॥

भगवानको माला प्रदान पूर्वक लक्ष्मीजीका वरण करना

उन देवता, दानव तथा नागोंके इस प्रकार विचार करते समयमें ही उठ कर लक्ष्मीजीने हंसती हुई शीघ्रतासे भगवानके निकट आकर (अपनी) कल्हारकी मालाको निकाल चतुर्भुज श्री विष्णु भगवानके गलेमें अर्पण कर आलिङ्गन करती हुई सबको देखा। विष्णु भगवानके वक्षस्थलमें प्रतिबिम्बित श्री लक्ष्मी देवीके दृष्टि लेशसे देखे जाने से देवता, दानव तथा योगिगण अपना अपना अधिकार पा गये। लक्ष्मीपति भगवान भी लक्ष्मीको पाकर कृतार्थ हो गये ॥ ७९ ॥

अथ भगवतः पद्मसरोवरदानपूर्वकं शेषाचलगमनम्

पार्श्वं सरः समीक्ष्याथ वरं तस्मै ददौ हरिः ॥ हे सरस्तव तीरेऽस्मि-

मरीचिरुवाच—

सुवर्णमुखरीकूले स्नातः पद्मसरोवरे ॥ महापातकयुक्तो यः स मुच्येतांहसः क्षणात् ॥ ८७ ॥

मरीचि बोले—स्वर्णमुखरी नदी तटस्थ पद्मसरोवरमें स्नान करनेवाला महापातकी भी क्षण ही भरमें पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥८७॥

अत्रिरुवाच

अत्र पद्मसरःस्नातो यो रुक्मतटिनीतटे ॥ स सर्वपापनिर्मुक्तो श्रियमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ८८ ॥

अत्रि बोले—स्वर्णमुखरीके किनारेवाले इस पद्मसरोवरमें जो स्नान करता है वह सब पापोंसे मुक्त हो कर निश्चय लक्ष्मी पाता है, इसमें संशय नहीं ॥ ८८ ॥

अङ्गिरा उवाच—

भ्रष्टराज्यस्तु यो राजा स्नात्यस्मिन् मण्डलं यमी ॥ पद्माकराख्ये सरसि स राज्यं प्राप्नुयाच्छ्रियम् ॥ ८९ ॥

अङ्गिरा बोले—जो राजा राज्य भ्रष्ट हो इस कमलोंसे भरे पद्मसरोवरमें एक मण्डल कालतक (४० दिन) संयम नियमसे स्नान करता है वह राज्य पाता है ॥ ८९ ॥

पुलस्त्य उवाच—

विप्रो यः पद्मसरसि व्रात्यो मन्त्रविवर्जितः ॥ सोऽपि पूतस्त्रिषवणाद्दिनेनैकेन शुध्यति ॥ ९० ॥

पुलस्त्य बोले—जो ब्राह्मण संस्कार तथा मन्त्रोंसे हीन (भ्रष्ट) हो गया है, वह भी इसमें एक ही दिन त्रिकाल स्नान करनेसे शुद्ध हो जाता है ॥ ९० ॥

पुलह उवाच—

वैश्यो यो वञ्चनाजीवी व्यवहारविशारदः ॥ स पद्मसरसि स्नात्वा राजा भवति धार्मिकः ९१ ॥

पुलहने कहा—वञ्चनासे जीवन व्यतीत करनेवाला तथा व्यवहार चतुर जो वैश्य, इस पद्मसरोवरमें स्नान करता है वह धार्मिक राजा हो जाता है ॥ ९१ ॥

ऋतुरुवाच—

शूद्रस्त्वाचारविभ्रष्टो देवब्राह्मणदूषकः ॥ स पद्मसरसि स्नात्वा पूतो वैश्यो भविष्यति ॥ ९२

ऋतुने कहा—आचारभ्रष्ट, देवता तथा ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाला शूद्र भी इस पद्मसरोवरमें स्नान करनेसे पवित्र हो कर वैश्य होता है ॥ ९२ ॥

देवदर्शन उवाच—

इति प्रस्तूय मुनयो ययुस्ते स्वाश्रमान्मुने ॥ उत्पत्तिः पद्मसरसस्तवो-क्ता देवलामला ॥ ९३ ॥

देवदर्शनने कहा—हे मुने देवलजी ! सब मुनिगण इसकी इस प्रकार प्रशंसा करके अपने अपने आश्रमोंको चले गये । इस प्रकार पद्मसरोवरकी निर्मल उत्पत्ति आपसे कही गई ॥ ९३ ॥

अथ शुकचरित्रवर्णनम्

इतः परं शुकोत्पत्तिं वदामि शृणु देवल ॥ पुरा शुको ब्रह्मचारी साक्षाद्वैयासकिर्महान् ॥ ९४ ॥ लब्ध्वा ब्रह्मोपदेशं तु रुद्राज्ज्ञानी बभूव ह ॥ तपःसिद्धो जगामैव पश्यन् ब्रह्मात्मकं जगत् ॥ ९५ ॥ एवं जगौ च सततं ज्ञानोन्मत्तः स बालवत् ॥ ऊनषोडशवर्षोऽसौ साक्षात्कृष्ण इवोज्ज्वलः ॥ ९६ ॥ माता च कमला देवी पिता देवो जनार्दनः ॥ बान्धवा विष्णु-भक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम् ॥ ९७ ॥

श्रीशुकदेवजीका जीवन चरित्र ।

श्रीदेवलजी ! इसके बाद मैं श्रीशुकदेवजीकी उत्पत्तिकी कथा कहता हूं आप सुनें । प्राचीन कालमें साक्षात् व्यासजीसे उत्पन्न महान् ब्रह्मचारी श्रीशुकदेव मुनि श्री रुद्ररूप शंकर भगवानसे ब्रह्मोपदेश पाकर महाज्ञानी हो गये । साक्षात् कृष्ण भगवान्के समान तेजयुक्त पन्द्रह वर्षकी अवस्थावाले वे तपस्यासे शुद्ध हो जानेपर ज्ञानसे उन्मत्त हो कर समस्त जगत्को ब्रह्मरूपसे देखते हुए बालकके समान गाते थे कि कमलादेवी ही माता, जनार्दन भगवान् ही पिता, विष्णु भक्तगण ही बन्धुबान्धव तथा तीनों लोक ही अपना देश (स्वदेश) है । ऐसा कह कर वे व्यास देवको छोड़ कर सूर्यकी ओर चले गये ॥ ९७ ॥

इत्युक्त्वा व्यासमुन्मुच्य भानुं प्रति जगाम ह ॥ गच्छन्तं शुकमा-लोक्य तीव्रांशोश्च समीपतः ॥ ९८ ॥ व्यासः पुत्रेति चुक्रोश पुत्रेति च पुनः

पुनः ॥ आलोक्याथ शुकं भानुरुवाच प्रणयाद्वटुम् ॥ ९९ ॥ हे वटो गच्छ भूलोकमपुत्रस्त्वमवाक्छिराः ॥ मुक्तः पितृऋणात्पुत्रमुत्पाद्यागच्छ शीघ्रतः ॥ १०० ॥ अपुत्रस्य गतिर्नास्ति तपः कृत्वापि भूतले ॥ यज्ञं कृत्वापि लोकार्थी स्वर्गं नैवाप्नुयात्पुमान् ॥ १०१ ॥

प्रखर किरणवाले सूर्यके पास शुकदेवजीको जाते देख कर व्यासजी बार बार हा पुत्र ! हा पुत्र !! कह कर रोने लगे। उधर वटु रूप श्रीशुकदेवजीको देख कर सूर्य भगवान् उनसे प्रेमसे बोले—हे वटु ! (तपस्वी ब्रह्मचारी) तू पुत्रहीन है; अतः अभी अधोमुख होकर भूलोकमें जाओ और पुत्र उत्पादन करके पितृऋणसे उन्मुक्त हो कर शीघ्र चले आओ। भूलोकमें तप करनेपर भी पुत्रहीन (वंशहीन) की गति नहीं होती है। स्वर्गलोककी इच्छा करनेवाला मनुष्य यज्ञ भी करके स्वर्गको नहीं पाता है ॥ १०१ ॥

अथ छायाशुकोत्पत्तिः

इति भानुवचः श्रुत्वा शुको ध्यात्वा जनार्दनम् ॥ आत्मच्छायामधःशीर्षामसृजत्त्वात्मपूरुषम् ॥ २ ॥ छायाशुकं च तं कृत्वा स्वात्मपुत्रमिवात्मवान् ॥ पितुर्मे शोकनाशं त्वं कुरु पुत्रत्वमागतः ॥३॥ इत्युक्त्वा भानुमालोक्य विवृतं तत्पथं गतः ॥ छायाशुकः समागत्य व्यासं क्रोशन्तमात्मजम् ॥ ४ ॥

छायाशुककी उत्पत्ति।

श्री सूर्य भगवानके इस वचनको सुन एवं जनार्दन भगवानका ध्यान कर श्री शुकदेवजीने नीचे मस्तकवाली अपनी छायाको ही अपना आत्म स्वरूप पुरुष उत्पन्न किया। और उस छाया शुकको ही अपना मूर्तिमान पुत्र बना और "पुत्र भावमें रह कर मेरे पिताके शोकका नाश करो" ऐसा उससे कह कर सूर्यकी ओर देख कर उस खुले मार्गकी ओर चल दिये ॥ १०४ ॥

नमस्कृत्य पितुः पादौ श्रुत्वा भागवतं सुधीः ॥ कृत्वा वैवाहिकं कर्म पुत्रानुत्पाद्य पुण्यधीः ॥ ५ ॥ पुराणं श्रीभागवतं प्रतिष्ठाप्यावनौ सुधीः ॥ कृष्णप्रसादात्स शुक ऋपित्वं च प्रपद्य च ॥ ६ ॥ सशरीरो ब्रह्मलोकं गत्वा प्रीतो वसन् सुधीः ॥ श्रवेङ्कटाद्रिमाहात्म्यं श्रुत्वा पद्मसरोवरम् ॥७॥ प्राप्य कृत्वा तपस्तीव्रं सरोम्बुजदलैः सृजन् ॥ ससम्यान्मानसान्पुत्रानष्टोत्तरशतं द्विजान् ॥ ८ ॥ तानध्याप्य ब्रह्मविद्यां तैः सहाद्रिं गतो मुनिः ॥

सुन्दर बुद्धिवाला यह छायाशुक पुत्रके लिये रोते हुए व्यासजीके पास आ कर पिता (व्यासजी) के चरणोंमें

नमस्कार कर, भागवतको (उनसे) सुन, वैवाहिक कर्म सम्पादन करके पुत्रोंको उत्पन्न कर, पृथ्वीपर श्री भागवत पुराणको स्थापित कर, श्री कृष्ण भगवानके प्रसादसे वह (शुक) ऋषिपत्र पद पाकर, इसी शरीरसे ब्रह्म लोकमें जा, वहाँ सुखसे निवास करते हुये, श्री वेङ्कटाचल माहात्म्यको सुन, पद्म सरोवर पर पहुंच, उस तालावमें उत्पन्न कमलोंसे सभ्योंके साथ एक सौ आठ मानस पुत्रोंको उग्र तपस्यासे रचना कर उन्हें ब्रह्मविद्या पढ़ा, उन्हीं सब पुत्रोंके साथ पर्वत पर चले गये ॥ ६ ॥

मासि भाद्रपदे पुण्ये ब्रह्मणा निर्मितोत्सवे ॥९॥ वर्तमाने श्रीनिवास-
ससेवार्थं व्यासपुत्रकः ॥ उत्सवे वाहनान् कृत्वा शतमष्टोत्तरान् द्विजा-
न् ॥११०॥ उत्सवान्ते चावभृथे श्रवणर्क्षे प्रसन्नधीः ॥ स्नात्वा च स्वामिस-
रसि तैर्द्विजैः कमलोद्भवैः ॥११॥ सभायां वेङ्कटेशस्य वाहकार्थं व्यजिज्ञपत् ॥
स्वनाम्ना यत्पुरं देव मया क्लृप्तं सुरेश्वर ॥ १२ ॥ तत्क्षेत्रसम्भवं सस्यं
जीवितं श्रीपते कुरु ॥ सेवां कुर्वन्त्वाप्रलयं वाहका उत्सवेषु ते ॥ १३ ॥
श्रुत्वा मुनिवचो देवः श्रीनिवासस्तथास्त्विति ॥

पुण्य भादो महीनेमें ब्रह्माजीसे कल्पित श्री वेङ्कटेश महोत्सवके दिवसके आनेपर श्री निवास भगवानकी सेवाके लिये उन एक सौ आठ ब्राह्मणोंको उनका वाहक (ढोने वाला) बना कर उत्सवके अन्तमें श्रावण गत सूर्यमें उन कमलोद्भव द्विजोंके साथ स्वामिसरोवरमें अवभृथ स्नान कर सभामें श्री वेङ्कटेश भगवानसे उन्होंने वाहक (ढोने वाले) के विषयमें विज्ञापन किया। हे देवादिदेव ! हे श्री पति भगवन् !! मेरे द्वारा जो मेरे नामका नगर बनाया गया है, उस क्षेत्रसे उत्पन्न, अन्नको ही प्रसाद रूप नैवेद्य बनवा कर भोग करें, और प्रलय कालतक ये सेवक आपके उत्सवोंमें आपकी सेवा किया करें ॥ १३ ॥

छायाशुकस्यात्मजानां सभ्यानां जीवमब्रवीत् ॥ १४ ॥ ब्रह्मलोकं जिग-
मिषुः पुनश्छायाशुको मुनिः ॥ कृष्णं च बलभद्रं च भानुं पद्मसरोवर-
म् ॥१५ ॥ प्रदक्षिणीकृत्य शुकः स्थीयतामिति चात्मजान् ॥ भरद्वाजादि-
षड्गोत्राञ्छतमष्टोत्तरं सुधीः ॥ सभ्यान् सभासदः पाद्मानुक्त्वाकाशं जगा-
गाम ह ॥ १६ ॥

मुनिजीके इस वचनको सुन कर भगवान बोले—" तथाऽस्तु " (ऐसा ही हो) और छाया शुकके उन सभ्य आत्मजोंको जीवन दान दिये। उसके बाद छायाशुक मुनि पुनः ब्रह्मलोकमें जानेकी इच्छासे कृष्ण, बलराम, सूर्य तथा पद्मसरोवरकी प्रदक्षिणा कर, अपने पुत्रोंको ठहरनेके लिये कह कर भरद्वाज आदि छः गोत्रोंमें उन एक सौ आठों पद्मोद्भव सभ्योंको विभक्त कर सभासद बना आप आकाशको चले गये ॥ १६ ॥

देवदर्शन उवाच—

उक्तं पद्मसरोजन्म छायाशुकमुनेरपि ॥ सभार्हाणां द्विजातीनां शुक-
मानसजन्मनाम् ॥ १७ ॥

देवदर्शन बोले—पद्म सरोवरका जन्म, छायाशुक मुनिका जन्म तथा शुकजीके मानसोत्पन्न सभायोग्य द्विजातियोंका जन्म कहा गया है ॥ १७ ॥

देवल उवाच—

देवदर्शन सर्वज्ञ कृतार्थोऽस्मि नतोऽस्मि ते ॥ नास्ति श्रोतव्यमेतस्मा-
त्संशयो विगतो मम ॥ १८ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवलदेवदर्शन-
संवादे पद्मसरोवरमाहात्म्यादिवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशो-
ऽध्यायोऽत्र एकादशः ॥ ११ ॥

देवल ऋषि बोले—हे सर्वज्ञ देवदर्शनजी ! मैं कृतार्थ हो गया, मैं आपको नमस्कार करता हूं। अब इससे अधिक अच्छा और कुछ सुनने योग्य नहीं है, अस्तु अब मेरा सन्देह या भ्रम सब दूर हो गया ॥ १८ ॥

इति श्रीपद्मपुराणके श्रीवेङ्कटाचल माहात्म्यमें

एकादश अध्याय समाप्त ॥

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥
श्रीवेङ्कटाद्रिनिलयः कमलाकामुकः पुमान् ॥
अभङ्गुरविभूतिर्नस्तरङ्गयतु मङ्गलम् ॥ २ ॥

॥ श्री श्रीनिवासपरब्रह्मणे नमः ॥

श्रीवामनपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥
यच्छरीरं त्रयो वेदा यच्चेष्टाऽथर्वणः स्मृताः ॥
यदङ्गानि षडङ्गानि तस्मै यागात्मने नमः ॥ २ ॥

प्रथमोऽध्यायः

शतानन्द अरु जनकका, सीता व्याह विचार ।
पूर्व कथा इस संगकी, शतानन्द उद्धार ॥१॥
नाम करण शुचि धामका, परम पवित्र प्रयाग ।
शंकर करसे मुक्ति शिर, तीर्थ राज परयाग ॥२॥

एक तो यह ऊर्मिला नामकी मेरी औरसी कन्या और दूसरी माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नामकी मेरे छोटे भाई कुशध्वजकी सुन्दर और सुशील दो कन्यायें हैं। इन सबका विवाह कहां करना चाहिये ? हे ब्रह्मन् ! मैं इसी चिन्तामें व्याकुल हो रहा हूं।

आप अध्यात्मज्ञानी, योगी और लोककी पूर्वापरस्थितिको जानने वाले तथा इस वंशके पुरोहित हैं। इस दुःखमें मैं आपकी शरणमें आया हूं। इस समय आप ही मेरे शरण्य और मेरी गति हैं। आप वेद, शास्त्र और पुराणोंको जानने वाले, समय और समय धर्मके वेत्ता, दुखियोंके दुःख और सुखियोंके अभिमानको नाश करने वाले हैं। हे संसारके दुःखोंको नाश करने वाले ! आप मेरी परम गति हो ॥ ११ ॥

**राजानो विषयासक्ताः कामक्रोधसमन्विताः ॥ ११ ॥ कन्यारत्ननि-
मित्तं च ह्यागमिष्यन्ति कोटिशः॥ तेभ्यो युद्धं कथं दास्ये एकोऽहं ब्रह्मवि-
त्तम ॥ १२ ॥ एतावन्तमहं कालं सुखं राज्यमशासिषम् ॥ इदानीमस्मि
दुःखार्तो वृद्धः पुत्री तपोधन ॥ १३ ॥ अजो विविक्तो विमलो विष्णुभक्तो
ममात्मजाः ॥ चत्वार एते शिशवः शिखिनो नास्त्रकोविदाः ॥ १४ ॥**

हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ! यहां विषयासक्त एवं काम और क्रोधसे लिप्त करोड़ों राजा कन्या-रत्नके निमित्त आयेंगे। मैं अकेला उनके साथ कैसे युद्ध कर सकूंगा। मैंने अबतक सुखपूर्वक राज्य शासन किया, किन्तु हे तपोधन ! अब बुढ़ापेमें इस कन्याके कारण दुखी हो गया हूं। यद्यपि मेरे अज, विविक्त, विमल और विष्णुभक्त नामक चार पुत्र हैं जिनका क्षौर कर्म अभी हुआ है और जो अभी शिशु हैं तथा अभी अस्त्रविद्यामें निपुण नहीं हैं ॥ १४ ॥

**ममानुजस्य पुत्राश्च विचिकित्सो विकर्तनः ॥ प्रतर्दन इति ह्येते त्रय-
श्च शिशवस्तथा ॥ १५ ॥ वृद्धत्वादात्मनश्चैव पुत्राणां चैव शैशवात् ॥
कन्यकानां च रत्नत्वादुःखितोऽहं तपोधन ॥ १६ ॥ कस्मादस्मादहं मोहा-
न्निर्गमिष्याम्युपायतः ॥ तं मे वद त्वं ब्रह्मर्षे गमिष्यामीह कां गतिम् १७
येन मन्वादयस्तीर्णाः संसाराख्यं महार्णवम् ॥ इह दुःखं च राजानस्तन्मे
ब्रूहि तपोधन ॥ १८ ॥ कं ध्यात्वा पुरुषो लोके भुक्तिं मुक्तिं च विन्दते ॥
आपद्रक्षाकरः को वा तं देवं ब्रूहि सत्तम ॥ १९ ॥**

मेरे छोटे भाईके भी विचिकित्स, विकर्तन और प्रतर्दन नामके तीन पुत्र हैं, पर वे भी अभी बालक हैं। मैं वृद्ध हो गया हूं और बालक सब छोटे हैं, घरमें रत्न रूपी कन्यायें हैं, इसलिये हे तपोधन ! मैं इन सब कारणोंसे बड़ा दुःखी हो रहा हूं। हे ब्रह्मर्षे ! ऐसा कोई उपाय बतलाइये जिससे मैं इस मोहसे पार पा सकूं। हे तपोधन ! इस संसारमें मेरी क्या गति होगी ! जिस उपायसे मनु आदि इस संसार समुद्रसे तर गये वही उपाय मुझे भी बतलाइये

❀ अथ मेरुशिखराच्छुकब्रह्मर्षेर्वेङ्कटाचलागमनम् ❀

व्यास उवाच—

कदाचिद्दुःखितः प्राह जनको मिथिलाधिपः ॥ शतानन्दं महाभागं सर्वज्ञं तत्त्व-दर्शिनम् ॥ २ ॥

श्री वामन पुराणान्तर्गत श्री वेङ्कटाचल माहात्म्य

तीनों वेद जिनका शरीर है, चतुर्थ अथर्ववेद जिनकी चेष्टा है, वेदोंके षड्ंग अर्थात् शिक्षा, व्याकरण, छन्द, निरुक्त, ज्योतिष, कल्प सूत्र जिनके अङ्ग हैं, उस वाणी रूप परमात्माको नमस्कार है।

श्री व्यासजी बोले—एक समय मिथिलाधिपति महाराज जनकने दुखी हो कर अपने महाभाग, सर्वज्ञ तत्त्व-दर्शी (कुल पुरोहित) शतानन्दजीसे कहा ॥ २ ॥

अथ सीतादिस्वताविवाहाद्यार्थं जनकनृपकृतानुतापक्रमः

ब्रह्मन्मां बाधते दुःखं सीतादर्शनजं महत् ॥ ३ ॥ केन दुःखमिदं त्यक्ष्ये क आराध्योऽघनाशनः ॥ ४ ॥ दुष्टात्मा रावणो रक्षःपतिर्वैश्रवणानुजः ॥ हरेदयोनिजां सीतां किन्तु न ज्ञायते मया ॥५॥ कमाराध्य महाभग लप्स्ये जामातरं वरम् ॥ समानोत्तमवंश्यं च योग्यमस्या महामुने ॥ ६ ॥

सीता आदि अपनी कन्याओंके विवाह आदिके लिये जनकका अनुताप

हे ब्रह्मन्! सीताकेदर्शनसे उत्पन्न हुआ दुःख मुझे बड़ी बाधा दे रहा है। कौन ऐसा उपाय है जिससे मैं इस दुःखसे पार पा सकूं। ऐसा कौन पापापहारी है, जिसकी आराधनासे मैं यह पाप दूर कर सकूं। क्या कुबेरका छोटा भाई राक्षसराज दुष्टात्मा रावण अयोनिजा (पृथ्वीसे उत्पन्न) सीताको हरण करेगा। हे महाभाग! हे महामुने! मैं नहीं जानता कि किसकी उपासना करके सीताके अनुरूप (उसके समान) उत्तम वंश वाले जामाताको प्राप्त कर सकूंगा ॥ ६ ॥

ममापि दुहिता चैषा ह्यूर्मिला नाम नामतः ॥ कुशध्वजस्य च सुते कनिष्ठभ्रातुरेव मे ॥ ७ ॥ माण्डवीश्रुतकीर्त्याख्ये सुशीले सुमनोहरे ॥ कासां चमे वरान्ब्रह्मन्निति चिन्ताकुलोऽस्म्यहम् ॥ ८ ॥ परमध्यात्मविद्योगी दृष्टलोकपरावरः ॥ पुरोहितोऽस्य वंशस्य गतिर्मेऽस्तु भवानिह ॥९॥ वेदशास्त्रपुराणज्ञः कालवित्कालधर्मवित् ॥ दुःखीनां दुःखहर्ता च सुखिनां स्मयनाशनः ॥ १० ॥ त्वं मे गतिश्च परमा भव दुःखविनाशन ॥

एक तो यह ऊर्मिला नामकी मेरी औरसी कन्या और दूसरी माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नामकी मेरे छोटे भाई कुशध्वजकी सुन्दर और सुशील दो कन्यायें हैं। इन सबका विवाह कहां करना चाहिये ? हे ब्रह्मन्! मैं इसी चिन्तामें व्याकुल हो रहा हूं।

आप अध्यात्मज्ञानी, योगी और लोककी पूर्वापरस्थितिको जानने वाले तथा इस वंशके पुरोहित हैं। इस दुःखमें मैं आपकी शरणमें आया हूं। इस समय आप ही मेरे शरण्य और मेरी गति हैं। आप वेद, शास्त्र और पुराणोंको जानने वाले, समय और समय धर्मके वेत्ता, दुखियोंके दुःख और सुखियोंके अभिमानको नाश करने वाले हैं। हे संसारके दुःखोंको नाश करने वाले! आप मेरी परम गति हो ॥ ११ ॥

राजानो विषयासक्ताः कामक्रोधसमन्विताः ॥ ११ ॥ कन्यारत्ननि-
मित्तं च ह्यागमिष्यन्ति कोटिशः॥ तेभ्यो युद्धं कथं दास्ये एकोऽहं ब्रह्मवि-
त्तम ॥ १२ ॥ एतावन्तमहं कालं सुखं राज्यमशासिषम् ॥ इदानीमस्मि
दुःखार्तो वृद्धः पुत्री तपोधन ॥ १३ ॥ अजो विविक्तो विमलो विष्णुभक्तो
ममात्मजाः ॥ चत्वार एते शिशवः शिखिनो नास्त्रकोविदाः ॥ १४ ॥

हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! यहां विषयासक्त एवं काम और क्रोधसे लिप्त करोड़ों राजा कन्या-रत्नके निमित्त आयेंगे। मैं अकेला उनके साथ कैसे युद्ध कर सकूंगा। मैंने अबतक सुखपूर्वक राज्य शासन किया, किन्तु हे तपोधन! अब बुढ़ापेमें इस कन्याके कारण दुखी हो गया हूं। यद्यपि मेरे अज, विविक्त, विमल और विष्णुभक्त नामक चार पुत्र हैं जिनका क्षौर कर्म अभी हुआ है और जो अभी शिशु हैं तथा अभी अस्त्रविद्यामें निपुण नहीं हैं ॥ १४ ॥

ममानुजस्य पुत्राश्च विचिकित्सो विकर्त्तनः ॥ प्रतर्दन इति त्वेते त्रय-
श्च शिशवस्तथा ॥ १५ ॥ वृद्धत्वादात्मनश्चैव पुत्राणां चैव शैशवात् ॥
कन्यकानां च रत्नत्वाद्दुःखितोऽहं तपोधन ॥ १६ ॥ कस्मादस्मादहं मोहा-
न्निर्गमिष्याम्युपायतः ॥ तं मे वद त्वं ब्रह्मर्षे गमिष्यामीह कां गतिम् १७
येन मन्वादयस्तीर्णाः संसाराख्यं महार्णवम् ॥ इह दुःखं च राजानस्तन्मे
ब्रूहि तपोधन ॥ १८ ॥ कं ध्यात्वा पुरुषो लोके भुक्तिं मुक्तिं च विन्दते ॥
आपद्रक्षाकरः को वा तं देवं ब्रूहि सत्तम ॥ १९ ॥

मेरे छोटे भाईके भी विचिकित्स, विकर्त्तन और प्रतर्दन नामके तीन पुत्र हैं, पर वे भी अभी बालक हैं। मैं वृद्ध हो गया हूं और बालक सब छोटे हैं, घरमें रत्न रूपी कन्यायें हैं, इसलिये हे तपोधन! मैं इन सब कारणोंसे बड़ा दुःखी हो रहा हूं। हे ब्रह्मर्षि! ऐसा कोई उपाय बतलाइये जिससे मैं इस मोहसे पार पा सकूं। हे तपोधन! इस संसारमें मेरी क्या गति होगी! जिस उपायसे मनु आदि इस संसार समुद्रसे तर गये वही उपाय मुझे भी बतलाइये

जिससे मैं भी इस दुःखसे छुटकारा पा सकूं। मनुष्य किसका ध्यान करके संसारमें भोग और मोक्षको प्राप्त कर सकता है एवं आपत्तिमें रक्षा करने वाला कौन देव है ? हे सत्तम ! आप उसको बतलाइये ॥ १९ ॥

अथ जनकनृपतापापनोदनार्थं शतानन्दोक्तपुरातनेतिहासः

शतानन्द उवाच—

राजन् मनुष्या अपि यं प्रसन्नाः सन्त्यक्तदुःखाः सुखिनो भवन्ति ॥
वक्ष्यामि देवं वरदं रमेशं तं प्राप्य दुःखाम्बुनिधिं तरिष्यसि ॥२०॥ पुराऽहं
चम्पकारण्यात्तमसातीरमुत्तमम् ॥ वाल्मीकिं मुनिशार्दूलं द्रष्टुमस्मि गतो
नृप ॥ २१ ॥ तेनागमनतुष्टेन प्रत्युद्यातो नृपोत्तम ॥ उपचारैश्च पाद्याद्यैर-
तिथिः पूजितोऽस्म्यहम् ॥ २२ ॥

जनकके अनुतापकी शान्तिके लिये शतानन्दका उपदेश

शतानन्दने कहा -हे राजन ! मनुष्य जिनकी शरणमें जा कर सब दुःखोंसे छूट कर सुखी हो जाते हैं, मैं उन्हीं वरदायक लक्ष्मी पति भगवानका वर्णन करूंगा, जिनको पा कर तुम इस दुःख रूपी सागरसे तर जाओगे। हे राजन् ! मैं एक समय चम्पकारण्यसे मुनि श्रेष्ठ महाराज वाल्मीकिको देखनेके लिये तमसा नदीके पवित्र तटपर गया था। मेरे जानेसे परम प्रसन्न हो कर वाल्मीकिने पहिले तो मेरा अभ्युत्थान और बादमें अतिथिके योग्य पाद्य-अर्घ्यादिसे पूजन किया ॥ २२ ॥

अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं तच्छिष्यैश्च नमस्कृतः ॥ क्रियां माध्याह्निकीं कृ-
त्वा भुक्त्वा वाल्मीकिना सह ॥ २३ ॥ अन्यैश्च मुनिभिः सार्धं भरद्वाजा-
दिभिस्तदा ॥ वाल्मीकेराश्रमे रम्ये ह्यासं वाल्मीकिना सह ॥२४॥ उक्त्वा
कालोचिता वार्ताः कथाश्चात्र पुरातनीः ॥ हृष्टावन्योन्यसङ्गेन ह्यभूव परमं
नृप ॥ २५ ॥

मैं मुनिवरको प्रणाम कर, बादमें मुनिशिष्योंसे नमस्कृत हो, मध्याह्नकालकी क्रिया समाप्त करके मुनिके साथ भोजन कर, वाल्मीकि एवं भारद्वाजादि अन्यान्य मुनियोंके संग उसी रमणीय आश्रममें बैठ गया। हे राजन ! उस समय वहांपर देशकालानुसार अनेक प्रकारकी बातें और नाना विधिकी प्राचीन कथायें होने लगीं। आपसके संगसे उस समय हम सबको बड़ा ही आनन्द हुआ ॥ २५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गादाजगाम च नारदः ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशो म-
हात्मा महतीं दधत् ॥२६॥ तं दृष्ट्वा मुनिशार्दूलमुदतिष्ठत्तदासनात् ॥ सह

शिष्यो मया सार्धं वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥ २७ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रीतिसंहृष्टमानसः ॥ सशिष्यः कल्पयामास पूजां तस्य विधानतः ॥२८॥ इदं पाद्यमिदं त्वर्घ्यमिदमासनमेव च ॥ इदं मूलं फलं स्वादु भगवन् प्रतिगृह्यताम् ॥ २९ ॥ आगतस्त्वञ्चिराद् ब्रह्मन् स्वागतं ते तपोधन ॥

उसी समय महती नामक वीणाको लिये हुए, शुद्ध स्फटिक मणिके समान एवं शुद्धात्मा महामना नारदजी स्वर्गसे वहां आ पहुंचे। देवर्षि नारदजीको आते हुए देख कर उनके अभ्युत्थानके लिये अपनी शिष्यमण्डली तथा मेरे साथ भगवान् वाल्मीकि अपने आसनसे उठ खड़े हुए और हाथ जोड़ कर प्रेमसे प्रसन्नचित्त हो शिष्यसहित महर्षि भगवान् वाल्मीकिने नारदजीका विधिपूर्वक पूजन किया और कहा कि हे भगवन्! यह आसन, यह पाद्य, यह अर्घ्य और ये स्वादिष्ट मूल और फल हैं, आप इन्हें स्वीकार करें। हे मुनिवर! तपोधन! आज कई दिनोंके बाद यहां आपका शुभागमन हुआ है, आपका स्वागत है ॥ ३० ॥

शतानन्द उवाच—

इति वाल्मीकिना शिष्यैरभिवाद्य च पूजितः ॥ ३० ॥ निषसाद च सुप्रीतो नारदो मृगचर्मणि ॥ आस्वाद्य फलमूलानि श्रमं स्वमपनीय च ॥३१॥ कुशलं परिपप्रच्छ वाल्मीकिं मुनिपुङ्गवम् ॥ निर्विघ्नं ते तपो ब्रह्मन् वर्धते त्रिविधं मुने ॥ ३२ ॥ अवन्ध्यास्तरवः काले भवन्त्यपि तवाश्रमे ॥ अपि क्रियार्थाः समिधः सुलभाश्च कुशा अपि ॥ ३३ ॥

शतानन्दने कहा—हे राजन्! इस तरह वाल्मीकि और शिष्यों द्वारा अभिवादन पूजन होनेपर सुन्दर फल और मूलोंको खा अपने श्रमको दूर कर प्रसन्नचित्त नारदजी मृगछाला (आसन) पर बैठ गये। बादमें नारदजीने मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकिसे कुशल पूछा और बोले—हे ब्रह्मन्! हे मुने! कायिक, वाचिक और मानसिक तीनों प्रकारके तपमें तो किसी तरहकी कोई बाधा नहीं है? आपका तप तो निर्विघ्न बढ़ रहा है न? आपके आश्रमके सभी वृक्ष समय समयपर फूलते फलते रहते हैं न? यज्ञ क्रियाओंके साधन समिधा और कुश सुलभ हैं न?॥ ३३ ॥

इति पृष्टस्तदा प्रीत्या प्राह नारदमुत्तरम् ॥ त्वत्प्रसादान्मुनिश्रेष्ठ सर्वं मङ्गलमेव मे ॥ ३४ ॥ वर्धते च तपो ब्रह्मन् त्रिविधं कालवित्तम ॥ अकालेऽपि फलन्त्येव तरवो वासवाज्ञया ॥३५॥ इत्युक्तो नारदस्तेन प्रमुमोद महाद्युतिः ॥ कृताञ्जलिपुटाः सर्वे परिवार्य च नारदम् ॥ ३६ ॥ तदागमनसंहृष्टास्तस्थुस्तद्वनवासिनः ॥

इस तरह नारदजीके पूछनेपर प्रसन्न हो वाल्मीकि मुनिने उत्तर दिया कि हे मुनिश्रेष्ठ आपकी कृपासे मेरे

सभी मङ्गल हैं। हे समय जाननेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ नारदजी! मेरे तीनों प्रकारके तपमें किसी तरहका कोई विघ्न नहीं है, मेरा तप बराबर बढ़ रहा है। मेरे आश्रममें इन्द्रकी आज्ञासे वृक्ष सदा फल मूलसे सम्पन्न रहते हैं। वाल्मीकि मुनिके मुखारविन्दसे यह वचन सुन कर तपोमूर्ति नारदजी बड़े प्रसन्न हुए, फिर नारदजीके आगमनसे प्रसन्नचित्त वनवासियोंने उनको चारों ओरसे घेर लिया और हाथ जोड़ कर उनके पास बैठ गये ॥ ३७ ॥

नारदेनाभ्यनुज्ञातः प्राप्य कृष्णाजिनासनम् ॥ ३७ ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रह्वो वाक्यविशारदः॥ नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम् ॥३८॥ त्रैलोक्ये वैष्णवं क्षेत्रं किं श्रेष्ठं भुवि नारद ॥ आब्रह्मलोकं सर्वं त्वं विशेषं दृष्टवानसि ॥ ३९ ॥

नारदजीकी आज्ञासे महर्षि वाल्मीकि मृगछालापर अलग बैठ गये, और हाथ जोड़ कर देवर्षि नारदजीसे पूछने लगे—हे मुनिवर! त्रिलोकीमें पृथ्वीपर सर्वश्रेष्ठ वैष्णवक्षेत्र कौन है? हे नारदजी! आपने ब्रह्मलोक पर्यन्त सब लोकोंको विशेषरूपसे देखा है ॥ ३९॥

यत्तीर्थे सर्वतीर्थानि सन्निधानं व्रजन्ति च ॥ यत्क्षेत्रवासिनां पुण्यमनन्तमिति कीर्त्यते ॥ ४० ॥ यत्रास्ते भगवान्विष्णुः सश्रीभूः पुरुषोत्तमः ॥ तद् ब्रूहि मम देवर्षे क्षेत्रं त्रैलोक्यपावनम् ॥४१॥

जिस तीर्थमें सभी तीर्थोंका सान्निध्य होता है, जिसमें रहनेवालोंका पुण्य अनन्त होता है, जिस जगह पुरुषोत्तम भगवान् विष्णुजी श्री और भू देवी सहित विराजमान रहते हों, हे देवर्षि! आप उस त्रिलोकीको पवित्र करनेवाले क्षेत्रको मुझे बतलाइये ॥ ४१ ॥

नारद उवाच—

साधु पृष्टं त्वया ब्रह्मन् सर्वेषां हितकाम्यया ॥ तत्ते वक्ष्यामि वाल्मीके समाहितमनाः शृणु ॥ ४२ ॥ इममेव पुरा प्रश्नं पृष्टः प्राह महेश्वरः ॥ पुत्रेण षण्मुखेनैव जिष्णुना हिमवद्गिरौ ॥ ४३ ॥

नारदजीने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने सबकी हित-कामनासे बड़ी अच्छी बात पूछी है, मैं आपको वही बात कहूंगा। आप सावधानचित्त हो कर श्रवण करें। यही प्रश्न पहले किसी समय शिवजीके पुत्र जयशील षण्मुख स्वामिकार्तिकेयने हिमाचल पर्वतपर महादेवजीसे किया था और शङ्करने उनके इस प्रश्नका उत्तर दिया था ॥४३॥

स्कन्द उवाच—

हत्वा देवासुरे युद्धे तारकाख्यं महासुरम् ॥ आगतोऽस्मि जयी तात पादमूलं त्रिलोचन ॥ ४४ ॥ बुभुक्षा बाधते तीव्रा ब्रह्महत्यासमुद्भवा ॥ स्नात्वा भोक्ष्यामि यत्तीर्थे तत्तीर्थं तात मे वद ॥ ४५ ॥

स्कन्द बोले—हे त्रिनेत्र ! हे शिव ! मैंने देवासुर संग्राममें तारकासुरको मार कर उसपर विजय प्राप्त की है और अब मैं आपकी शरणमें आया हूं। हे तात ! ब्रह्महत्यासे पैदा हुई क्षुधा मुझे बहुत सता रही है। आप उस तीर्थको कहिये जिसमें स्नान करके मैं भोजन कर सकूं ॥ ४५ ॥

अथ स्कन्दं प्रति शङ्करोक्तब्रह्महत्याविमुक्तिहेतूपन्यासः

महेश्वर उवाच—

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति पुत्रक ॥ श्रुत्वा परममित्युक्त्वा भुक्त्वा पित्रा सहोमया ॥ ततः पप्रच्छ पितरं शङ्करं लोकशङ्करम् ॥ ४७ ॥ उक्तो नारायणो देवस्त्वया सर्वाघनाशनः ॥ जनैराराधितः केन कर्मणा दृश्यते भुवि ॥ ४८ ॥ क्व कुत्र सेव्यते देवः प्रियं तस्यापि किं पितः ॥

शङ्करजी द्वारा स्कन्दकी ब्रह्महत्यासे मुक्तिमानका उपाय बतलाना।

महादेवजीने कहा—मनुष्य एक बार" नारायण" ऐसा कह कर तीन सौ कल्प पर्यन्त गङ्गा आदि समस्त तीर्थोंका स्नान कर चुकता है। स्वामिकार्तिकेयने इस प्रकार नारायणके नाम माहात्म्यको श्रवण कर अच्छा कह कर माता-पिताके साथ भोजन करके संसारके कल्याण करनेवाले अपने पिता शंकरजीसे फिर पूछा—हे तात ! आपने समस्त पापोंका नाश करनेवाले जिन नारायणका वर्णन किया है, वे किस कर्मसे मनुष्यों द्वारा आराधना करनेपर प्राप्त हो सकते हैं, उनकी कहां सेवा की जा सकती है और उन्हें कौनसी वस्तु प्रिय है ॥ ४९ ॥

नारद उवाच—

इति पृष्टः पुनस्तेन पुत्रं प्राहाऽथऽशङ्करः ॥४९॥ यं योगिनो मुनिवरा हृदि सन्निपण्णं ज्योतिर्मयं प्रणवरूपमचिन्त्यरूपम् ॥ आदित्यमण्डलनिवासमनन्तमाद्यमाराधयन्ति सततं तमुदीरयामि ॥ ५० ॥

नारदजी बोले— इस तरह पुत्रके फिर पूछनेपर भगवान् शङ्करने कहा—मैं उन्हीं भगवान्को कहता हूं, जिनका ध्यान योगिजन, मुनिवर, निरन्तर अपने हृदयमें करते हैं, जो ज्योतिर्मय, पुण्यरूप और अचिन्त्यरूप हैं तथा आदित्यमण्डलमें जिनका निवास है, जिनका कोई अन्त नहीं और जो सबके आदि हैं ॥ ५० ॥

शङ्कर उवाच—

पुरा दक्षाध्वरे पुत्र तस्य शीर्षं मया हृतम् ॥ तच्च हस्ततले लग्नं ब्रह्महत्या च सङ्गता ॥ ५१ ॥ स्वर्गे कपाली भिक्षार्थी पर्यटन्नियतेन्द्रियः ॥

न मोक्षं ब्रह्महत्याया अपश्यं तत्र पुत्रक ॥ ५२ ॥ मेरौ ब्रह्मसरस्तीरे तप उग्रमुपाश्रितः ॥ स्नातुमभ्यागतो ब्रह्मा मामपश्यच्चतुर्मुखः ॥ ५३ ॥ तं च दृष्ट्वा प्रणम्याहमतिष्ठं पुरतस्तदा ॥ स मां कपालिनं दृष्ट्वा किमित्याह पितामहः ॥ ५४ ॥

शङ्करने कहा—हे पुत्र ! पहले दक्ष प्रजापतिके यज्ञमें मैंने उनका मस्तक काट डाला था । वह शिर मेरे हाथमें चिपट गया और मुझे ब्रह्महत्या लगी । तब मैं कपाल धारण करके भिक्षा मांगता हुआ जितेन्द्रिय हो कर स्वर्गमें घूमता रहा, पर वहां भी उस ब्रह्मसरोवरके किनारेकी उस ब्रह्महत्यासे मेरा छुटकारा नहीं हो सका । फिर मैंने सुमेरु पर्वतपर ब्रह्मसरोवरके किनारे उस ब्रह्महत्यासे मुक्ति पानेके लिये बड़ा उग्र तप किया । वहांपर स्नान करनेके लिये आये हुए चतुर्मुख ब्रह्माजीने मुझे देखा । मैंने ब्रह्माजीको देख कर प्रणाम किया और फिर उनके सामने खड़ा हो गया । कपाल धारण किये हुए मुझको देख कर पितामह बोले—यह क्या है ? ॥ ५४ ॥

तत् श्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं ततो देवं व्यजिज्ञपम् ॥ किं ब्रुवे तात शप्तोऽस्मि दक्षं हत्वा तु तेन ह ॥ ५५ ॥ हत्यामोक्षं न पश्यामि कुत्र वा केन कर्मणा ॥ दृष्टो भवान्मया दिष्ट्या शापमोक्षं वदस्व मे ॥ ५६ ॥ इत्युक्तश्च मया पुत्र ब्रह्मा प्राह च मां तदा ॥ मा विषीद महादेव हत्यामोक्षं वदामि ते ॥ ५७ ॥

ब्रह्माजीके उस वचनको सुन कर मैंने उनसे अपना सारा हाल कह सुनाया । मैंने कहा—हे देव ! मैं क्या कहूं ? मैंने दक्ष प्रजापतिका शिर-छेदन किया था, इसलिये उन्होंने मुझको शाप दे डाला । कहो किस कर्मसे मैं इस हत्यासे मुक्ति पा सकता हूं । ऐसा कोई उपाय मेरी दृष्टिमें नहीं आ रहा है । प्रारब्धसे आज आपके दर्शन हो गये हैं, इसलिये हे तात ! आप इस शापके दूर होनेका कोई उपाय बतलाइये । हे पुत्र ! इस तरह प्रार्थना करने पर ब्रह्माजीने मुझसे कहा—हे महादेव ! तुम किसी प्रकारकी चिन्ता मत करो, इस हत्यासे छूटनेका मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूं ॥ ५७ ॥

अथ प्रयागक्षेत्रस्य भगवद्वर्णितप्रयागाभिधाननिरुक्तिः

ब्रह्मोवाच—

पुरा शङ्कर गङ्गाया यमुनायाश्च सङ्गमे ॥ धनुस्त्रिशतविस्तीर्णे पुण्यक्षेत्रे च माधवे ॥ ५८ ॥ माधवप्रीतये तत्र यज्ञाः सर्वे मया कृताः ॥ प्रादुरासीत्तदा वेद्यां माधवो भक्तवत्सलः ॥ ५९ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिः श्रीवत्साङ्कश्चतुर्भुजः ॥ प्राञ्जलिस्तं प्रणम्याहं प्रसीदेत्यस्तुवं तदा ॥ ६० ॥ प्रसन्नो माधवः

प्राह ब्रह्मन् प्रीतोऽस्मि तेऽध्वरैः ॥ प्रकृष्टाश्च कृता यज्ञाः प्रीतोऽहं च त्वयाऽनघ ॥६१॥ यत्तद् ब्रह्मन्निदं क्षेत्रं प्रयागाख्यं गमिष्यति ॥ अस्यां वेद्यामहं नित्यं सन्निधानं करोमि ते ॥ ६२ ॥ इतः प्रभृति ये पापाः पुरुषा यास्त्रियश्च वा ॥ क्षेत्रेशं मां प्रपश्यन्ति मुक्ताः सर्वे भवन्तु ते ॥ ६३ ॥ इति दत्त्वा वरं देवो ममाभीष्टं च माधवः ॥ आस्ते लक्ष्म्या महादेव प्रयागे पुण्यसत्तमे ॥ ६४ ॥ त्वं च हत्यासमायुक्तो मोक्षं तत्र गमिष्यसि ॥

भगवान् द्वारा वर्णित प्रयागक्षेत्रका प्रयाग नाम पड़नेका कारण

हे शङ्कर ! मैंने पहले गङ्गा यमुनाके सङ्गममें तीन सौ धनुष विस्तृत माधव नामक पवित्र क्षेत्रमें लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुको प्रसन्न करनेके लिये सब यज्ञ किये हैं। उस समय भक्तवत्सल भगवान् माधव जिनके हाथमें शङ्ख, चक्र और गदा है, जिनके हृदयपर श्रीवत्सका चिन्ह है, चतुर्भुज रूप धारण किये हुए यज्ञकी वेदीमें प्रकट हुए। मैंने उस समय हाथ जोड़ कर भगवानकी स्तुति की और कहा कि हे भगवन् ! प्रसन्न होइये ॥ मेरे स्तुति करनेपर माधव प्रसन्न हो कर बोले—हे ब्रह्मन् ! मैं तुम्हारे यज्ञ करनेसे प्रसन्न हूं, तुमने बड़े उत्तम यज्ञ किये हैं, इसलिये हे अनघ ! निष्पाप ! मैं तुमपर प्रसन्न हूं। तुमने बहुत अच्छे यज्ञ किये हैं, इसलिये हे ब्रह्मन् ! यह क्षेत्र प्रयाग क्षेत्रके नामसे संसारमें प्रसिद्ध होगा और मैं सदा इस वेदीके समीप रहूंगा ॥ आजसे भविष्यमें जो पापी पुरुष अथवा स्त्रियां मेरे दर्शन करेंगी वे सब पापोंसे मुक्त हो जायंगी। इस तरह हे महादेव ! भगवान् माधव मुझे अभीष्ट वर दे कर पुण्य क्षेत्र प्रयागमें लक्ष्मी सहित निवास कर रहे हैं। तुम उस पुण्य क्षेत्र प्रयागमें जाओ, वहां जानेसे तुम इस हत्यासे मुक्त हो जाओगे ॥ ६५ ॥

अथ शङ्करहस्तात्कपालविनिर्मुक्तिप्रकारः

शङ्कर उवाच—

इत्युक्त्वा मां ततो ब्रह्मा सत्यलोकं जगाम ह ॥६५॥ ततः प्रीतो वरं लब्ध्वा पुण्यक्षेत्रं गतोऽस्मि तत् ॥ क्षेत्रे प्रविष्टमात्रे तु मया हत्या पृथक्स्थिता ॥६६॥ पञ्चक्रोशाद्बहिर्भूता क्रोशन्ती विस्वरं गता ॥ कपालश्च च्युतो हस्तात्प्रससाद मनो मम ॥ ६७ ॥ ततः स्नात्वा प्रयागेऽहं देवं नत्वा च माधवम् ॥ अयाचं माधवं क्षेत्रं देहीदं मे जनार्दन ॥ ६८ ॥ इत्युक्तो माधवो दत्त्वा क्षेत्रं मे वरदः प्रभुः ॥ श्रिया परमया युक्तः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ६९ ॥ स्वं लोकं च ययौ देवस्तपः कुर्विति मां वदन् ॥ तत्राहं च

तपः कृत्वा ब्रह्महत्यां व्यपोह्य च ॥ विहरन्नुमया सार्धं तत्रैव हि षडा-
नन ॥ ७० ॥ लक्ष्मीसहायं रमणीयवेषमजं हरिं कालघनाभिरामम् ॥
पीताम्बरं पाटलपाणिपादं ध्यात्वाऽर्चयंस्तत्र वसामि पुत्र ॥७१॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये प्रयागमा-
हात्म्यवर्णनं नाम विंशोऽध्यायोऽत्र प्रथमः ॥ १ ॥

शङ्करजी बोले—मुझे इस तरह कह कर ब्रह्माजी सत्यलोकको चले गये। मैं ब्रह्माजीसे सत्य वर पा, प्रसन्न हो, उस विशुद्ध क्षेत्र प्रयागमें गया। उसमें प्रवेश करते ही ब्रह्महत्या मुझसे अलग हो गई। जब मैं प्रयागसे पांच कोस दूर रहा उसी समय चिल्लाती हुई हत्या मुझसे दूर हो गई और कपाल हाथसे वहीं गिर पड़ा। उस समय मेरा मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके बाद मैंने प्रयागमें स्नान और भगवान माधवको नमस्कार करके कहा कि हे जनार्दन! यह पवित्र क्षेत्र आज मुझे प्रदान कीजिये। इस प्रकार कहनेपर भगवान माधव पुण्य क्षेत्र प्रयागको मुझे देकर यह कहते हुए कि "तप करो" लक्ष्मी सहित अपने लोकको चल दिये। वहां मैं तप करके और ब्रह्महत्याको विनष्ट करके हे षडानन! हे पुत्र! वहीं विहार करता हुआ और उस दिनसे लक्ष्मी जिनकी सहायक हैं प्रलय कालके समान सुन्दर जिनका वेष और रूप है, उन पीताम्बर धारी लाल सफेद हाथ व पांव वाले हीका पूजन करता हुआ निवास करता हूं ॥ ७१ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः



शंकर कथन कुमारसे, तप अनुकूल प्रदेश।
तहीं तपस्या हित गमन, वेंकट परम नगेश ॥१॥
स्कन्दोद्भवक्रम गुरु कथित, स्तुतिबहुभांति विधान।
वरप्रदान मुनि तप करन, कार्तिकेय भगवान ॥२॥

अथ स्कन्दं प्रति शङ्करकृत तपःसमुचितवेङ्कटाद्रिवर्णनम्

नारद उवाच—

स्कन्दः श्रुत्वा पितुर्वाक्यं मङ्गलं पापनाशनम् ॥ पुनः पप्रच्छ संहृ-
ष्टः पितरं तत्त्वदर्शिनम् ॥ १ ॥ ममापि तपसो योग्यं क्षेत्रं ब्रूहि शुभान्वि-
तम् ॥ न विघ्नास्तपतो यत्र प्रभवन्ति मम प्रभो ॥ २ ॥ त्वयाज्ञप्तस्तपस्त-
प्स्ये भवदुःखविनाशन ॥ योगीन्द्रवन्द्यचरण द्वंद्वानन्दैकलक्षण ॥ ३ ॥ मम
शङ्कर तद् ब्रूहि वैष्णवं क्षेत्रमुत्तमम् ॥

श्री शङ्करजीका स्वामिकार्तिकको तपस्याके योग्य श्री वेङ्कटाद्रिका वर्णन करना

नारदजीने कहा—स्कन्दने तत्त्वदर्शी पापापहारी मङ्गलकारी अपने पिताके वचनोंको सुन कर प्रसन्न हो कर उनसे पुनः पूछा कि हे पितः आप मेरे लिये भी तपस्याके योग्य कोई शुभस्थान बतलाइए जहांपर हे प्रभो! तप करते हुए मुझे किसी प्रकारकी विघ्न-बाधाओंका सामना न करना पड़े, अर्थात् तपमें किसी प्रकारका जहाँ विघ्न न हो ऐसा कोई स्थान बतलाइये। सुख-दुःख, शीत-उष्ण जिनमें सदा आनन्दरूप रहते हैं, ऐसे हे योगीन्द्र द्वारा वन्द्य चरण! हे संसार दुःख नाशक आपकी आज्ञा पाकर मैं तप करूंगा, इसलिये आप उस सर्वश्रेष्ठ वैष्णव क्षेत्रको कहिये ॥ ४ ॥

एवमुक्तस्ततः शम्भुः पुत्रेण प्रासकारिणा ॥ ४ ॥ उमामालोक्य
संहृष्टो ध्यात्वा चैनं पभाष ह ॥ शृणु पुत्र महाभाग देवदुःखविना-
शन ॥ ५ ॥ वृषो नाम महाशैलो वृषेणाराधितः पुरा ॥ तं गच्छ शिखिना
पुत्र कुरु त्वं तत्र वै तपः ॥ ६ ॥

इस तरह कर्त्तव्यपालक पुत्रके अनुरोध करनेपर भगवान शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए और पार्वतीकी ओर देख कर बोले—हे पुत्र! हे महाभाग! हे देवताओंके दुःख नाश करनेवाले कार्तिकेय! सुनो, मैं तुम्हें वही स्थान कहता हूं जहां तपश्चर्यामें किसी तरहका संकट उपस्थित न हो। हे पुत्र! वृष नामका एक बड़ा भारी पर्वत है, जहां वृषने पहिले तप किया था। तुम अपने वाहन (मयूर) के साथ वहीं जाओ और तप करो ॥ ६ ॥

नारद उवाच—

इति प्रतिसमादिष्टः पुनराह च षण्मुखः ॥ उक्तो यस्तत्र भवता
वृषाभिख्यो महागिरिः ॥ ७ ॥ नायं कुलाचलो नूनं कुत्रास्ते स महागि-
रिः ॥ किमर्थं च वृषस्तत्र तपस्तेपे महातपाः ॥ ८ ॥ वृषः किं वृषभो धर्मो
मनुर्वा नीललोहित ॥ प्रोक्तः कोऽयं भगवता ब्रूहि मे पुत्रवत्सल ॥ ९ ॥

इति पृष्टस्ततस्तेन प्राह तं वृषभध्वजः ॥ नायं कुलाचलः पुत्र मेरुपुत्रो महागिरिः ॥ १० ॥

नारदजी बोले—इस प्रकार पिताकी आज्ञा पा कर कार्तिकेयने फिर पूछा—हे तात ! आपने जो "वृष" नामका महागिरि कहा है, वह कुलाचल तो नहीं है ! वह पर्वत कहां है और किस कारण महातपस्वी "वृष" ने वहां उग्र तप किया था। आप जो वृष वतला रहे हैं, वह वृष वृषभ धर्म अथवा वृष नामक मनुओंमें कौन है ? हे नील लोहित ! हे पुत्र वत्सल ! वह कौन है ? यह आप समझा कर कहिये ॥ ९ ॥ कार्तिकेयके इस तरह वार वार पूछने-पर वृषभध्वज भगवान शङ्कर कहने लगे—हे पुत्र ! यह कुलाचल नहीं है, किन्तु यह महागिरि मेरुके पुत्र हैं ॥ १० ॥

अञ्जनो नाम नाम्ना च त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ शैलः स्वर्णमयो वत्स ! रत्नसानुः सुशोभनः ॥११॥ शेषमारुतसंवादे विधूतो दक्षिणां दिशम् ॥ नियुक्तोऽयं गिरिः पुत्र पूर्वमेव तु विष्णुना ॥१२॥ सर्वतीर्थमयः पुण्यः पावनोऽञ्जनभूधरः ॥ सुदुर्लभो मनुष्याणां देवभूमौ वसन्निह ॥ १३ ॥ स्थातव्यं भवता शैल दक्षिणस्यां दिशीति वै ॥

यह तीनों लोकोंमें अञ्जन पर्वतके नामसे प्रसिद्ध हैं। हे वत्स ! यह स्वर्णमय पर्वत हैं और बड़े रमणीय रत्नोंके इनके शिखर हैं ॥ शेष और वायुके संवादमें कम्पित होने पर भगवान विष्णुने पहिले ही इसको दक्षिण दिशामें प्रेरित कर दिया। पहिलेसे यह स्वर्गमें रहते हुए यह अञ्जनगिरि सब तीर्थोंका स्थान, अत्यन्त पवित्र, पुण्यमय तथा मनुष्योंके लिये बड़ा ही दुर्लभ है। बादमें भगवान विष्णुने कहा कि हे शैल ! तुम दक्षिण दिशामें जा कर रहो ॥१४॥

एवमुक्तोऽपि हरिणा पितृस्नेहवशेन सः ॥१४॥ पितुराज्ञामवेक्ष्यायं कञ्चित्कालमवर्तत ॥ शेषमारुतसंवादे प्रवृत्ते लोकभीषणे ॥ १५ ॥ मेरुणैवाभ्यनुज्ञातः प्रयातो दक्षिणां दिशम् ॥ आस्ते पूर्वोदधेः पश्चाद्वत्सायं पञ्चयोजने ॥१६॥ उत्तरे दक्षिणाब्धेस्तु षट्त्रिंशद्योजनान्तरे ॥ तीरे पुण्यतमे पुत्र स्वर्णमनद्यास्तथोत्तरे ॥१७॥ क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हरिचन्दनमण्डिते ॥ वने रम्यतमे वत्स नानापादपमण्डिते ॥ १८ ॥

इस प्रकार हरिके कहनेपर भी वह पर्वत पिता मेरुकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर उनके स्नेहके कारण कुछ दिन वहीं रह इसके अनन्तर संसारको भयभीत करनेवाला शेष और वायुके संवादके हो जानेपर यह अञ्जनगिरि अपने पिता मेरुसे ही आज्ञापित हो दक्षिण दिशामें चला गया। हे वत्स ! यह पर्वत पूर्व समुद्रसे पांच योजन और दक्षिण समुद्रसे उत्तर छत्तीस योजनपर अति रमणीय सुवर्ण नदीके किनारे ढाई कोसमें परम रमणीय, चन्दनसे सुशोभित एवं नाना जातिके वृक्षोंसे सेवित वनमें है ॥ १८ ॥

सिद्धा मुनिगणास्तत्र तपः कुर्वन्ति नित्यशः ॥ चण्डालयवनाद्यैस्तु
वेदबाह्यैश्च नास्तिकैः ॥ १९ ॥ नारोढुमपि यः शक्यः पावनः पर्वतोत्त-
मः ॥ शुकाद्या मुनयः केचिद्भृग्वाद्याश्च तपोधनाः ॥ २० ॥ प्रह्लादप्रमुखाः
पुण्या अम्बरीषादयो नृपाः॥ विष्णोरेवापरं देहं मन्वानास्तं नगोत्तमम् २१॥
पद्भ्यामाक्रमितुं भीताः पर्यन्तेष्वेव वर्तनाः ॥ तन्निर्गतनदीष्वेव कुर्वाणाः
स्नानतर्पणे ॥२२॥ तपः कुर्वन्ति वाञ्छन्तः साक्षात्कर्तुं जनार्दनम् ॥ एवं-
विधः स शैलेन्द्रो नित्यमत्यन्तपावनः ॥ २३ ॥

उस वनमें अनेक सिद्ध और मुनिगण सदा तप करते रहते हैं। जिस पर्वतश्रेष्ठ और परमपावन अञ्जनगिरिपर चाण्डाल और यवनादि तथा वेदबाह्य नास्तिक नहीं चढ़ सकते, शुकदेव आदि मुनि, भृगु आदि तपस्वी, प्रह्लाद आदि पुण्यजन, अम्बरीष आदि राजा उस परमपावन पर्वतको विष्णुका ही दूसरा शरीर समझते, उसपर पांवसे चढ़नेमें डरते, उसके आसपासकी भूमिमें ही रहते, तथा उस पर्वतसे निकली हुई नदियोंमें ही स्नान और तर्पण करते हुए भगवान् जनार्दनके साक्षात्कार करनेके लिये तप करते हैं। इस तरह वह पर्वतेन्द्र नित्य, एवं अत्यन्त पवित्र रहता है ॥ २३ ॥

शिखरं यस्य दृष्ट्वैव सद्यः पापैः प्रमुच्यते ॥ तत्रास्ते कोलरूपी तु
महाविष्णुः सनातनः ॥ २४ ॥ उद्धृतां धरणीं देवीमालिङ्ग्याङ्के निधाय च ॥
आराधितो मुनिगणैस्त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितैः ॥ २५ ॥ तदाप्रभृति तत्पुण्यं
वाराहं क्षेत्रमुच्यते ॥ तस्मिन् पुण्यतमे क्षेत्रे वाराहे वेङ्कटाचले ॥ २६ ॥
सन्निधौ भूवराहस्य ये केचिन्नियतव्रताः ॥ शास्त्रोक्तेन विधानेन वाराहं
मन्त्रमुत्तमम् ॥ २७ ॥ जपन्ति विजितात्मानो मासमेकं निरन्तरम् ॥ गृह-
क्षेत्रादिकं तेषां सद्यः सिध्यति वाञ्छितम् ॥ २८ ॥

जिसके शिखरको देख कर ही मनुष्य तुरन्त पापोंसे छूट जाता है। वहां सनातन भगवान विष्णु श्री वराह रूपसे आपके द्वारा उद्धृत पृथ्वीको अपनी गोदमें लिये हुए और मुनिगणसे श्रद्धासे तीनों काल आराधित हो विराज-मान हैं। तभीसे वह "वराह" क्षेत्रके नामसे कहा जाता है। उस परम पवित्र वेङ्कटाचलके वराहक्षेत्रमें वराह भग-वानके समीप जो कोई शास्त्रोक्त रीतिसे जितात्मा और नियमरत हो कर उत्तम वराहमन्त्रको निरन्तर एक मास जपते हैं, उनके गृह क्षेत्रादि सभी अभीष्ट मनोरथ शीघ्र सिद्ध हो जाते हैं ॥ २५ ॥

पृथिवीं ये च वाञ्छन्ति राजानः शासितुं चिरम् ॥ ये तु तत्र प्रकु-

र्वन्ति महादानानि षोडश ॥ २९ ॥ प्रीणयन्तो महीं देवीं दक्षिणाभिस्तदुद्धृ-
ताम् ॥ तेषामादिवराहस्तु भगवान् भक्तवत्सलः ॥३०॥ प्रयच्छति चिरं कालं
महीं सागरमेखलाम् ॥ वृद्धजानपदोपेतां हतावग्रहकण्टकाम् ॥ ३१ ॥
अनादृत्य तु यस्तत्र वराहवदनं हरिम् ॥ धरणीं च तदङ्कस्थां पृथ्वीं शासि-
तुमिच्छति ॥ ३२ ॥ तेन दोषेण तद्राज्यं पीड्यतेऽवग्रहैः सदा ॥ दस्युभिः
शत्रुभिश्चैव महारोगैस्तथैव च ॥ ३३ ॥

जो राजा बहुत काल पर्यन्त पृथ्वीके शासनकी इच्छा करते हैं, और जो उस पर्वतपर वराहसे उद्धृत पृथ्वी देवीको प्रसन्न करते हुए दक्षिणाओंके साथ सोलह प्रकारके दान देते हैं,उनको भक्तवत्सल भगवान आदिवराह चिरकाल तक भोगनेके लिये समुद्र पर्यन्त पण्डित मण्डित एवं निष्कण्टक पृथ्वी देते हैं। जो मनुष्य उस पर्वत पर आदिवराह तथा उनकी गोदमें विराजमान पृथ्वी देवीका अनादर करके पृथ्वीके शासन करनेकी इच्छा करता है उस दोषसे उसका राज्य सदा चोर, डाकू और भीषण रोगोंसे आक्रान्त हो जाता है।

तस्मात्तत्र स्थितं देवं वराहं धरणीयुतम् ॥ सम्यगाराधयेद्राजा भक्ति-
श्रद्धासमन्वितः ॥३४॥ तस्याग्रे देवदेवस्य सरस्त्रैलोक्यपावनम् ॥ स्वामि-
पुष्करिणीनाम सरसां वरमस्ति वै ॥३५॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि पावना-
न्यपि देहिनाम् ॥ पुष्करिण्यश्च नद्यो याः सन्ति ब्रह्माण्डगोचराः ॥ ३६ ॥
तानि सर्वाणि षड्वक्त्र स्वात्मनां पावनाय वै॥ वर्षे वर्षे समायान्ति तत्तीर्थे
स्नातुमात्मज ॥ ३७ ॥

इसलिये भक्ति और श्रद्धासहित राजाको वहांपर पृथ्वी सहित विराजमान भगवान वराहका आराधन करना चाहिये। उन देवाधिदेव भगवान आदिवराहके सन्मुख त्रिलोकीको पवित्र करनेवाला एक "स्वामिपुष्करिणी नामका उत्तम तालाब है। प्राणियोंको पवित्र करनेवाले त्रिलोकीमें जितने तीर्थ, तालाब और नदियां हैं, वे सब अपने आपको पवित्र करनेके लिये प्रतिवर्ष हे पुत्र! उस स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करनेके लिये आते हैं॥ ३७॥

वैवस्वते मनौ पुत्र लोकं शासति चाज्ञया ॥ धर्मो मनुस्तपस्तेपे सो-
ऽयं वृष इतीरितः ॥ ३८ ॥ तपश्चरति तस्मिंस्तु वद्वृषे धर्म उत्तमः ॥ ततः
प्रसन्नो भगवान् महाकोलो महीयुतः ॥ ३९ ॥ समक्षमब्रवीद्धर्मं शरन्मेघ
इव स्थितः । धर्म त्वया तपस्तप्तं वृषश्च वद्वृषे यतः ॥४०॥ तस्मादयं गिरि-
वरो वृषाभिख्यां गमिष्यति ॥ तवापि लोकपालत्वं यमात्पश्चाद्भविष्य-

ति ॥ ४१ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो गिरिमूर्ध्नि षडानन ॥ अथ लब्धवरो धर्मो जगाम च यथागतम् ॥ ४२ ॥ इदानीं च महाभाग वायुरास्ते तपश्चरन् ॥ जपन् सतारकं मन्त्रं गणयन्नक्षमालया ॥ ४३ ॥ परात्परतरं राममर्चयन्विधिपूर्वकम् ॥ श्रीभूमिसहितं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥ ४४ ॥ शङ्खचक्रधनुर्बाणपाणिं नीलोत्पलद्युतिम् ॥ देवदेवं जगन्नाथमपरोक्षं निरीक्षितुम् ॥ सर्वप्राणात्मको वायुस्तपस्तीव्रं चरत्यहो ॥४५॥ ब्रह्मादिदेवा अपि देवदेवं वाञ्छन्ति यं सेवितुमात्तभावाः ॥ तं वै वरेण्यं सकलान्तरस्थं द्रष्टुं तपो वर्धयते स वायुः ॥ ४६ ॥

वैवस्वत मनुके अपनी आज्ञासे राज्यका शासन करनेके समय धर्म नामक मनुने इसपर तपस्या की जिसका नाम वृष है ऐसा कहा जाता है, उस मनुके तप करते हुए धर्मकी उत्तम वृद्धि हुई। तब भगवान आदिवराह पृथ्वीसहित परम प्रसन्न हो कर शरद्कालके मेघके समान महा तेजस्वी स्वच्छ धर्मके समक्ष बोले–हे धर्म ! तुमने तपस्या की और उससे धर्मकी वृद्धि हुई है। अतः इसीलिये यह पर्वत " वृष " के नामसे प्रसिद्ध होगा और इस यमके बाद तुम भी लोकपालक हो जाओगे। हे षडानन ! भगवान वराह इस तरह कह कर उस पर्वतके शिखरपर अन्तर्धान हो गये और धर्म मनु भी वर पा कर अपने स्थानको चले गये। हे महाभाग ! अक्षमालासे तारक मंत्रका जप करता हुआ वायु इस समय वहांपर तप कर रहा है। सर्वश्रेष्ठ, श्री और भूमिसहित चतुर्भुज, किरीटधारी, शंख, चक्र, धनुष, बाण जिनके हाथमें हैं, नील कमलके समान कान्तिमान देवाधिदेव भगवान् जगन्नाथजीका साक्षात्कार करनेके लिये भगवान् रामचन्द्रका विधिपूर्वक पूजन करता हुआ, सर्व प्राणाधार वायु वहांपर कठिन तप कर रहा है, जिसकी भक्तिपूर्वक सेवा करनेके लिये ब्रह्मादि देवता भी इच्छा करते हैं, उसी सर्वान्तर्यामी सर्वश्रेष्ठ परमात्माको देखनेके लिये वायु वहांपर तपको बढ़ाता है ॥ ४६ ॥

नारद उवाच—

इत्युक्तो गुरुणा स्कन्दः पप्रच्छ पितरं पुनः ॥ ममापि वैष्णवं मन्त्रं वैष्णवेष्वपि चोत्तमम् ॥ ४७ ॥ मन्त्रेषु वरदं शम्भो ब्रूहि तत्प्राप्तिसाधनम् ॥ इति विज्ञापितः शम्भुः पुत्रेणाक्लिष्टकारिणा ॥ ४८ ॥ विधिनाऽऽशु ततः प्रादान्मन्त्रं तस्मै सतारकम् ॥

नारदजी बोले पिता द्वारा ऐसा कहे जानेपर स्वामिकार्तिकेयने फिर पूछा—हे शंभो ! आप मुझे वैष्णव मंत्रोंमें भी श्रेष्ठ, वरदायक तथा जिससे भगवान्‌की प्राप्ति हो, ऐसे उत्तम वैष्णव मंत्र कहिये। इस तरह अपने पुत्र सौम्यमूर्ति कार्तिकेयके कहनेपर भगवान् शङ्करने उनको विधिपूर्वक तारक मंत्रकी दीक्षा दी ॥ ४९ ॥

अथ तपःकरणाय स्कन्दस्य श्रीवेङ्कटाचलगमनम्

लब्ध्वा मन्त्रं महादेवात्स्कन्दः प्रीतोऽभवत्पितुः ॥ ४९ ॥ प्रह्वः प्रदक्षिणं कृत्वा पितरं सोऽभ्यवादयत् ॥ प्रणम्य मातरं पश्चात्प्रतस्थे शिखिवाहनः ॥ ५० ॥ तं प्रस्थितं ततो दृष्ट्वा देवास्त्विन्द्रपुरोगमाः ॥ अनुजग्मुर्महात्मानं देवसेनापतिं विभुम् ॥५१॥ तैर्देवैरन्वितोऽगच्छच्छिखिना वेगगामिना ॥ गिरिं सपादलक्षप्रस्रवणैरन्वितं ययौ ॥ ५२ ॥ अध्वश्रमहरे तस्मिन्निषण्णः समरुद्गणः ॥ अदृष्ट्वा तत्र पितरौ विषण्णोऽभूत्सुराग्रणीः ॥५३॥

तप करनेके लिये स्कन्दका वेङ्कटाचलपर जाना

अपने पिता महादेवजीसे तारक मंत्र पा कर कार्तिकेय बड़े प्रसन्न हुए और नम्र हो कर उन्होंने पिताजीको प्रणाम किया। बादमें माताको भी प्रणाम एवं प्रदक्षिणा करके अपने वाहन मोर सहित वहांसे चल पड़े। देवताओंकी सेनाके अधिपति, महात्मा स्वामिकार्तिकेयको प्रस्थान करते देख कर इन्द्रादि देवता भी उनके पीछे पीछे चलने लगे और अपने शीघ्रगामी वाहन मोर तथा देवताओंके साथ जाते हुए वे स्वामिकार्तिकेय आस पास सवा लाख झरने और छोटी छोटी नदियोंसे युक्त पर्वतपर पहुंचे। मार्गकी थकावटको दूर करनेवाले उस पर्वतपर देवताओंके सहित बैठे हुए वे वहांपर अपने मातापिताको न देख बड़े दुःखी हुए ॥ ५३ ॥

अथ बृहस्पत्युक्तः स्कन्दोत्पत्तिक्रमः

तं विषण्णं ततो दृष्ट्वा गुरुः प्राहेन्द्रचोदितः ॥ मा विषीद महाबाहो देवसेनापतेऽग्रणीः ॥ ५४ ॥ किं न स्मरसि चात्मानं वैष्णवं धाम शाश्वतम् ॥

बृहस्पतिके द्वारा कही गयी स्कन्दकी उत्पत्ति

तब स्कन्दको दुःखी देख कर इन्द्रसे प्रेरित हो कर बृहस्पतिने उनसे कहा—हे महाबाहो ! हे देवसेनानायक ! आप दुःख मत करें। क्या आप साक्षात् विष्णुस्वरूप अपने स्वरूपका स्मरण नहीं करते हैं ? ॥ ५५ ॥

नारद उवाच —

इत्युक्तो गुरुणा स्कन्दः प्रीतः प्राह बृहस्पतिम् ॥ ५५ ॥ कोऽहं ब्रूहि गुरो नाऽहं जानाम्यात्मानमात्मना ॥ एवमुक्तो गुरुश्चैनं वक्ष्यामीत्याह कारणम् ॥ ५६ ॥ उपप्लुतैस्तारकेण देवैः सेनापतीप्सुभिः ॥ याचितः प्राह भगवान् ब्रह्मा कारणवित् सुरान् ॥ ५७ ॥

नारदजी बोले— बृहस्पतिजीके यह वचन सुन कर कार्तिकेय बड़े प्रसन्न हो कर बोले कि हे गुरो ! अपने स्वरूपको मैं आप नहीं जानता हूं, आप बतलाइये कि मैं कौन हूं ? इस प्रकार पूछे जानेपर बतलायेंगे। ऐसा कह कर देवगुरु उनसे कारण बतलाने लगे। एक सेनापतिकी इच्छासे तारकासुरसे पीड़ित सभी देवताओंसे प्रार्थित हो कर सब कारणोंको जाननेवाले ब्रह्माजीने उनसे कहा ॥ ५७ ॥

ब्रह्मोवाच—

सुरेन्द्र दक्षेण विमानिताऽथ सती यदा योगविसृष्टदेहा ॥ तदा प्रतिज्ञां ह्यकरोत् त्रिणेत्रः सतीं विनान्यां न भजामि चेति ॥५८॥ तपश्चचारातिमहत्सुघोरं दिगम्बरः स्थाणुवदूर्ध्वबाहुः ॥ त्रिलोचनस्तम्भितवायुचारो विचिन्तयन्नात्मनि चात्मभावम् ॥ ५९ ॥ काले हि तस्मिन्नसुरस्तपोऽचरन्मां प्रीणयन्नुग्रतपाः स तारकः ॥ प्रीतस्ततोऽहं वरदस्तमब्रुवं वरं वृणीष्वेति मनोरथेप्सितम् ॥ ६० ॥ अयाचतान्येन तदा ह्यवध्यतां विना च शम्भोस्तनयेन सोऽसुरः ॥ तथास्त्विति प्रत्तवरो मया ततो नाशोऽसुरस्यास्य परो न विद्यते ॥ ६१ ॥

हे सुरेन्द्र ! जिस समय दक्ष प्रजापतिसे अपमानित हो कर सतीने योग मायासे अपना शरीर त्याग दिया था, उस समय त्रिनेत्र शङ्करने प्रतिज्ञा की थी कि मैं सतीके सिवाय अन्य किसीको अपनी अर्द्धाङ्गिनी न बनाऊंगा। इस तरह कह कर शङ्करने अति उग्र तप करना आरम्भ कर दिया। भगवान शङ्कर दिगम्बर (नग्न) हो कर सूखे वृक्षकी तरह ऊपरको भुजा करके श्वासको रोकते हुए, अपनी आत्मामें अपने स्वरूपका ही चिन्तन करते हुए कठिन तपस्या करने लगे। उसी समय तारकासुर नामक असुरने भी मुझे प्रसन्न करनेके लिये बड़ा कठिन तप किया था, उसके तपसे प्रसन्न हो मैंने वर देनेवाला हो कर तारकासुरसे कहा—हे तारक ! तुम्हें जो इच्छा हो वरदान मांग लो। उस समय उस असुरने मुझसे यह वरदान मांगा कि संसारमें शङ्करके पुत्रके सिवाय मुझे कोई न मार सके। मैंने तथास्तु कह कर उसको वही वरदान दे दिया, इसलिये इस तारकासुरके नाशमें शङ्करपुत्रके सिवाय दूसरा कोई नहीं समर्थ है ॥ ६१ ॥

सती च सा पर्वतराजकन्यका प्रवर्धते मेनकयोपलालिता ॥ तयैव संयोज्य च शङ्करं विभुं सुरेश्वर प्रार्थय तारकान्तकम् ॥ ६२ ॥ विष्णोः कलांशो भविता भगवान्नः सुखावहः ॥

यह सती तो अब पर्वतराज हिमालयकी कन्या हो कर उसकी धर्मपत्नी मेनका द्वारा लालित हो बढ़ती है।

उसीके साथ भगवान शङ्करका मिलाप कराके देवाधिदेव महादेवसे तारकासुरको नाश करनेवाले पुत्रकी प्रार्थना करनी चाहिये। विष्णुकी कलासे अंशावतार भगवान हम लोगोंका कल्याण करनेके लिये आविर्भूत होंगे॥

बृहस्पतिरुवाच—

एवमुक्तो विरिञ्चेन काममाहूय देवराट् ॥ ६३ ॥ रतिदेवीसमायुक्तं वसन्तसहितं तदा ॥ अचोदयत्कर्मसिद्ध्यै देवानामेव शङ्करम् ॥ ६४ ॥ वशीकर्तुं च पार्वत्या संयोक्तुं कृतनिश्चयः ॥ जगाम कामः स्थाणुं तं गिरिजायाश्च सन्निधौ ॥ ६५ ॥ जग्राहास्त्रं त्वभूद्दग्धस्त्रिणेत्रेण तपोव्ययात् ॥

बृहस्पतिजी बोले—ब्रह्माकी ऐसी बात सुन कर देवराज इन्द्रने रतिदेवी तथा वसन्त ऋतुके साथ देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये कामदेवको बुला कर प्रेरणा की। शङ्करको अपने वश करने एवं पार्वतीसे उनका संयोग करनेके लिये नियतचित्त हो कर कामदेव शिव और पार्वतीके समीप गया और अपना अस्त्र संभाला। शङ्करने अपने तपोबलको खर्च करके उसको भस्म कर दिया॥ ६६॥

कामं दग्ध्वा शिवस्तं च जहावाश्रममुत्तमम् ॥ ६६ ॥ तपस्विनामयुक्तं हि सन्निधानं तु योषितः ॥ जगाम कैलासगिरेरुत्तरे चाश्रमोत्तमम् ॥ ६६ ॥ ततश्चोमा तपःशक्त्या वशीकृतपराक्रमः ॥ उपयेमे तदा शम्भुरुमां काममजीवयत् ॥६८॥ कैलासशृङ्गे हिमवत्प्रदेशे कलाधरः कामवशं प्रपन्नः ॥ रेमे हि सम्प्राप्य मनोरथांस्तानुमासमेतः शरदां शतं हि सः ॥ ६९ ॥

कन्दर्पको जला कर भगवान शङ्करने उस उत्तम आश्रमको छोड़ दिया, क्योंकि स्त्रियोंके समीप तपस्वियोंका रहना अनुचित है। बाद शङ्कर कैलास पर्वतके उत्तरमें एक उत्तम आश्रममें चले गये। अनन्तर ब्याह किया और कामदेवको भी पुनः जिला दिया। फिर कलाधर शिवजी कैलासके हिममय शिखरपर कन्दर्पके वशीभूत हो कर अभिलषित मनोरथोंको पा कर पार्वतीके साथ सैकड़ों वर्ष क्रीड़ा करते रहे॥ ६६॥

ततस्तमिन्द्रप्रमुखाश्च देवा ययाचिरे देहि सुतं भवेश ॥ पापेन तारेण हि पीडिताः स्मः पापं च तं हन्तुमलं महान्तम् ॥७०॥ इति याचितो गिरिजापतिरेतानमरान्विजनो भवितेति बभाण ॥ कुपितं गिरिशं मरुतो विदिताः सहसा विविशुः ककुभो हि दशैते ॥ ७१ ॥ विससर्ज तदा तेजः

क्षुभितं गिरिजापतिः ॥ तच्च तेजोमयं भूतमाववार हि मेदिनीम् ॥ ७२ ॥
तेन तेजोमयेनेयं विकीर्णा सर्वमेदिनी ॥ धर्तुं तदक्षमा देवी तेजः प्राह मरु-
द्गणान् ॥ ७३ ॥ अहो दग्धाऽस्मि मरुतः पान्तु मां भवतेजस॰ ॥

बादमें इन्द्रादि देवताओंने भगवान शङ्करसे प्रार्थना की कि हे संसारके स्वामी ! हम दुष्टात्मा तारकासुरसे अत्यन्त पीड़ित हो रहे हैं, इसलिये हे देव ! आप ऐसा पुत्र दीजिये जो तारकासुरको मारनेमें समर्थ हो। देवताओंके द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होने पर उन्होंने कहा कि हे देवताओ ! इस प्रदेशको निर्जन या खाली कर दो। शिवजीके इस प्रकार कुपित होनेसे सभी देवता दशों दिशाओंमें जा छिपे। तब गिरिजापतिने क्षुब्ध होकर वीर्यको छोड़ दिया और वह तेज समस्त पृथ्वीमें व्याप्त हो गया। उस तेजोमय भूतसे सब पृथ्वी व्याप्त हुई। उस तेजको धारण करनेमें असमर्थ हो कर पृथ्वीने देवताओंसे कहा—हे देवताओ मैं दग्ध हो रही हूं, शङ्करके इस तेजसे मेरी रक्षा करो ॥७४॥

ततो दृष्ट्वा तु देवास्ते मेदिनीं परितापिताम् ॥ ७४ ॥ इत्यूचुरग्निदेवं
स्वे तेजस्तेजसि धारय ॥ इत्यादिष्टो जातवेदास्तेज आवार्य शाम्भवम् ॥ ७५॥
ररक्ष मेदिनीं दीनामापदो हव्यवाहनः ॥ तेजस्ततो धारयन्तं शाम्भवं जात-
वेदसम् ॥७६॥ प्रीताऽऽह पार्वती देवी त्वमग्ने पुत्रवान् भव ॥ धृतं तेजस्त्वया
यस्मात्तस्मात्त्वं सर्वजन्तुषु ॥७७॥ गर्भे गर्भधरो भूत्वा विहर त्वं ममाज्ञया ॥

तब देवताओंने भूमिको दुखित देख कर अग्निदेवसे कहा कि आप इस तेजको अपने तेजमें धारण करो। देवताओंके इस तरह कहने पर अग्निने उस शिवतेजको अपने तेजमें धारण कर उत्पीडित पृथ्वीकी रक्षा की। अग्नि-देवको शिवजीके तेजको धारण करते हुए देख कर पार्वती प्रसन्न हो कर बोलीं—हे अग्ने ! तुम प्रथम पुत्रवाला हो। जिसलिये तुमने इस गर्भको धारण किया उसीलिये समस्त प्राणियोंके गर्भमें तुम उस गर्भको धारण कर मेरी आज्ञासे विहार करो ॥ ७६॥

प्रीताऽस्मि ते त्वया ह्यग्ने स्कन्नं गर्भं धृतं यतः ॥ ७८ ॥ भक्त्या ये
त्वां पूजयन्ति तेषां पुत्रा भवन्तु वै ॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा शशाप मरुतः
शिवा ॥ ७९ ॥ इतः प्रभृति युष्माकमप्रजाः सन्तु पत्नयः ॥ उमा शशाप
पृथ्वीं च पुत्रप्रीतिं न लप्स्यसे ॥ ८० ॥ मत्पुत्रो न धृतो यस्माद्बहुभार्या
भविष्यसि ॥

हे अग्ने ! क्योंकि तुमने गिरे हुए गर्भको धारण किया इससे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं। भक्तिसे जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे वे पुत्रवान होंगे। इस तरह पार्वतीने अग्निको वरदान दे कर देवताओंको यह शाप दिया कि आजसे

तुम्हारी स्त्रियां वन्ध्या होंगी और पृथ्वीसे कहा कि तुमको पुत्र सम्बन्धी सुख नहीं होगा। तुमने मेरे पुत्रको धारण नहीं किया इसलिये तुम बहुतोंकी भार्या बनोगी ॥ ८१ ॥

ततः प्रसन्ना सा देवी शङ्करेण समागता ॥ ८१ ॥ तपस्तप्तुं जगा-
माऽऽशु भृगुप्रस्रवणं तदा ॥ ततो विमनसो देवाः पुनरूचुश्चतुर्मुखम् ॥८२॥
भवदाज्ञा कृताऽस्माभिर्व्यर्था सा चाभवत्प्रभो ॥ शशाप सा तदाऽस्मान्वै
किं कुर्मो ब्रूहि का गतिः ॥८३॥ धाता विज्ञापितो देवैराह तान् सा यथाऽब्र-
वीत् ॥ तद्वचः सत्यमेवास्तु तस्या वाङ् नानृता भवेत् ॥ ८४ ॥ किञ्च
वक्ष्याम्युपायं वो जातवेदाः प्रदास्यति ॥ यूयं गङ्गां प्रार्थयध्वं सा गर्भं
धारयिष्यति ॥ ८५ ॥

फिर पार्वतीदेवी प्रसन्न हुईं और शङ्करके साथ भृगुस्त्रवण नामक स्थानमें तप करनेके लिये चली गयीं। तब इन सब बातोंसे दुःखी हो कर देवता फिर ब्रह्माजीसे बोले – हे ब्रह्मन्! हमने आपकी आज्ञाका पालन किया। पर वह चेष्टा तो व्यर्थ हो गयी और देवीने हमको शाप दे डाला। हे प्रभो! अब हम क्या करें? हमारी क्या गति होगी, यह आप ही बतलाइये। देवताओंके इस प्रकार निवेदन करने पर ब्रह्माजी बोले–देवीने जो कुछ कहा है वह सत्य ही होगा, उनकी वाणी मिथ्या नहीं होती। मैं तुम्हें फिर उपाय बतलाता हूं। अग्निदेव तुमको वह तेज देंगे, तुम लोग भागीरथीकी प्रार्थना करो, वह उस गर्भको धारण करेगी ॥ ८५ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवा जग्मुर्यथागतम् ॥ गङ्गां संप्रार्थयामासु-
र्देवाः सर्वे समागताः ॥ ८६ ॥ ततः सा प्रार्थिता देवैर्विसृष्टं वह्निना
विभो ॥ त्वां दध्रे पार्वती गङ्गा तेजोराशिं महाद्युतिम् ॥ ८७ ॥ सा च त्वां
व्यसृजद् गङ्गा सन्तप्ता तेजसा तव ॥ उमाश्रमप्रदेशे तज्जातरूपमभूद्व-
नम् ॥ ८८ ॥ कुमारं त्वां तदा दृष्ट्वा जातं हृष्टा दिवौकसः ॥ षट् कृत्याः
प्रेपिता देवैरदधुस्त्वां षडाननम् ॥ ८९ ॥

ब्रह्माजीका यह वचन सुन कर सब देवता गङ्गाजीके पास गये और उनको प्रार्थना करने लगे। देवताओंकी प्रार्थना करने पर हे विभो! अग्निसे त्यागे हुए अति तेजस्वी तुमको पर्वतसे निकली हुई गङ्गाजीने धारण किया, किन्तु तुम्हारे तेजसे सन्तप्त हो कर गङ्गाने भी पार्वतीके आश्रम प्रदेशमें तुमको डाल दिया। तुम्हारे पड़नेसे यह वन स्वर्णमय हो गया। फिर तुमको वहां उत्पन्न हुए देख कर देवता बड़े प्रसन्न हुए। फिर देवताओंके द्वारा प्रेषित, कृत्याओंने आकर तुम्हारा पोषण किया, उस समय तुम्हारे छ मुख हो गये ॥ ८९ ॥

अथ बृहस्पतिकृतस्कन्दस्तुतिः

एवम्प्रभावो बाल्ये त्वं कुमार सुरतापहन् ॥ त्वां प्रपद्ये सुवर्णाभ
शङ्करात्मज शङ्कर ॥ ९० ॥ त्वं विष्णुस्त्वं विधाता च त्वं रुद्रः कालरूपधृ-
क् ॥ शिखिवाहन षड्वक्त्र कुमारस्तारकान्तकः ॥९१॥ सुब्रह्मण्यः शिखी
स्कन्दः कुमारः षोडशाब्दकः ॥ शरजन्मा शक्तिहस्तो गाङ्गेयोऽग्निसमुद्भ-
वः ॥९२॥ एकवक्त्रो द्विबाहुश्च कुमारः पुरुषोत्तमः ॥ मातृप्रोत्या च ष-
ड्वक्त्रः पार्वतीप्रीतिवर्धनः ॥ ९३ ॥

बृहस्पतिका स्कन्दकी स्तुति करना

हे कुमार ! देवताओंके दुःखनाशक ! आप बाल्यकालसे ही ऐसे महा पराक्रमी थे। हे स्वर्णसमान कान्तिवाले शिवपुत्र ! मैं तुम्हारी शरणमें हूं। आप ही विष्णु, विधाता (ब्रह्मा) एवं कालरूपधारी रुद्र हैं। हे कुमार ! षण्मुख ! आप तारकासुरके नाश करनेवाले कुमार और उत्तम ब्रह्मवेत्ता हैं, मोर वाहनवाले हैं, आप सदा सोलह वर्षकी अवस्थामें रहते हैं, इसलिये आपका नाम कुमार है। आपका नाम शरजन्मा है, आप शक्तिहस्त हैं, और आग्नेय हैं। आप कुमाररूपमें एकमुख दो भुजावाले पुरुषोत्तम हैं। माताकी प्रीतिसे आप छ मुखवाले हुए, इसलिये आप षड्वक्त्र कहलाये। आप पार्वतीकी प्रीतिको बढ़ानेवाले हैं ॥ ९३ ॥

उज्ज्वलषड्द्वितयाक्षिविराजत्षण्मुख शङ्करनन्दन वीर ॥ सर्वदिगी-
श्वर सैनिकनाथ शं दिश शक्तिधरेश कुमार ॥९४ ॥ द्वादशहस्तविराजित-
हेते दुःखपरामरवैरिहरेश ॥ द्वादशकोटिरविद्युतितेजः शं दिश शक्तिधरेश
कुमार ॥ ९५ ॥ ये तव बालरविद्युतिराजत्फुल्लसरोरुहकान्तिपदाब्जम् ॥
नो शिरसा प्रणमन्ति कुमार ते तनयं तु न होह लभन्ते ॥ ९६ ॥

सुन्दर स्वच्छ बारह नेत्रोंसे सुशोभित, [illegible] मुखवाले ! शङ्करपुत्र ! वीर ! सब दिशाओंके स्वामी ! सेनानायक ! शक्तिधर ! ईशकुमार ! आप हमारा कल्याण कीजिये। हे बारहों भुजाओंमें प्रकाशमान भिन्न भिन्न आयुधवाले ! हे दुःखयुक्त देवताओंके शत्रुओंके नाशक ! हे बारह करोड़ सूर्यके समान तेजवाले ! हे शक्तिधर ! हे ईश ! हे कुमार ! हमारी रक्षा करो। जो मनुष्य बालसूर्यप्रकाशसे विकसित कमलके समान चरणवाले आपको हे कुमार ! प्रणाम नहीं करते हैं, वे इस संसारमें पुत्रभागी नहीं होते ॥ ९६ ॥

स्फुरन्तं चलन्तं तडित्कोटिकान्ति मयूराधिरूढं मनोहारिवेषम् ॥
पुलिन्दापतिं त्वां प्रपद्ये कुमारं कुमारं च मे देहि मृत्युञ्जयत्वम् ॥ ९७ ॥

स्फुरणकरनेवाले, चलनेवाले, विजलीके समान कान्तिमान, मयूरवहन, मनोहर वेषधारी, पुलिंदाके पति कुमार ! आप ही मेरी शरण हैं, आप मुझे पुत्र दीजिये और मृत्युके जयका भी प्रदान करें ॥ ९७ ॥

नारद उवाच—

प्रसन्नो बभूवाथ वाग्भिः स्तुतोऽसौ गुरुं प्राह भूतेशपुत्रो महात्मा ॥

सुब्रह्मण्य उवाच—

वरं ते ददामीह पुत्रानभीष्टान्स्वमृत्युञ्जयत्वं च तारुण्यमेव ॥९८॥ स्तोत्रेणानेन यो मर्त्यस्त्वयोक्तेन गुरो भुवि ॥ आनन्दयति मां नित्यं त्रिसन्ध्यं मानवोत्तमः ॥ ९९ ॥ स पुत्रधनधान्यादिसम्पदो लभते ध्रुवम् ॥ अपमृत्युजयं चापि सौभाग्यं राजपूज्यताम् ॥ १०० ॥

नारदजीने कहा—भूतेश्वर शिवजीके पुत्र महात्मा कुमार गुरुकी स्तुति सुन कर बड़े प्रसन्न हुए और बोले—हे गुरो ! आप अभीष्ट पुत्रोंको प्राप्त करें, आप मृत्युको जीतेंगे और सदा जवान रहेंगे। हे गुरो ! आपके किये इस मेरे स्तोत्रसे जो उत्तम पुरुष नित्य तीनों काल मेरी स्तुति करेंगे, वे पुत्र धन-धान्यादिसंपत्तिको प्राप्त करेंगे और अकाल मृत्युको जीतेंगे तथा सौभाग्य और राज्य सम्मानको पायेंगे ॥ १०० ॥

नारद उवाच—

इति दत्त्वा वरं तस्मै देवान्सर्वान्विसृज्य च ॥ जगाम शिखिना तस्मात्कुमारो वृषभाचलम् ॥ १ ॥ तत्र रम्ये शुचौ देशे ददर्श सर उत्तमम् ॥ स्नानार्थे देवपूजार्थं पद्मोत्पलसुशोभितम् ॥ २ ॥

नारदजीने कहा—इस तरह गुरुको वरदान देके और देवताओंको छोड़ कर कुमार वहांसे अपने वाहनके साथ "वृषभाचल" पर्वतपर चले गये। वहांपर कुमारने मनोहर एवं पवित्र देशमें स्नान और देवपूजाके योग्य एवं जिसमें कमल सुशोभित हो रहे हैं, ऐसा एक सुन्दर पवित्र तालाब देखा ॥ २ ॥

अथ स्कन्दस्य तपःकरणप्रकारः

कृतस्नानः सरस्तीरे कुमारः समुपाविशत् ॥ दृष्ट्वा तपन्तं वायुं च तत्समीपे षडाननः ॥ ३ ॥ त्रिसन्ध्यं देवदेवेशं नारायणमनुस्मरन् ॥ अनिष्टतप उग्रं च समाधिध्यानसंयुतः ॥

स्कन्दका तप करना

कार्तिकेय स्नान करके उस तालाबके तीरपर बैठ गये। वहांपर तप करते हुए वायुको देख, उनके समीपमें तीनों काल देवाधिदेव नारायणका स्मरण करते हुए समाधि और ध्यानसे युक्त हो कर कुमारने उग्र तप करना आरम्भ कर दिया ॥ ४ ॥

ध्यायन्नारायणं देवं शङ्खचक्रधरं परम् ॥ ४ ॥ पादद्वयालङ्कृतभूमि-
भागो भासा ज्वलत्काञ्चनतुल्यतेजाः ॥ ध्यायन्परं ब्रह्म कुमार आस्ते प-
रात्परं यन्महतो महत्तत् ॥ १०५ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
सुब्रह्मण्यस्य वृषभाद्रिप्राप्तिवर्णनं नामैकविंशोऽ-
ध्यायोऽत्र द्वितीयः ॥ २ ॥

अपने दोनों चरणोंसे पृथ्वीतलको अलंकृत किये हुए एवं तपे हुए स्वर्णके समान कान्ति धारण किये हुए वे कार्तिकेय उस परब्रह्म स्वरूप, चतुर्भुज, शङ्खचक्रधारी तथा परेसे भी परे भगवान् नारायणका ध्यान करते रहते हैं ॥ ६ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः

पार्वतीके प्रश्नपर श्रीशंकर भगवान ।
श्रीनिवास भगवानका भावी कथा बखान ॥१॥
प्राप्ति सुदर्शन चक्रका सहस्र नयन मघवान ।
पौलोमी अरु इन्द्रका चरित विचित्र पयान ॥२॥

श्री निवासके आविर्भावके हेतुका वर्णन ।

ऋषय ऊचुः—

ततः किमकरोद्देवी कुमारे वृषशैलगे ॥ सा पुत्रवत्सला नूनं भवानी
शिवसंयुता ॥ १ ॥

ऋषियोंने कहा— तब कार्तिकेयके वृषभाचल पर्वतपर चले आनेपर शिवसहित पुत्रवत्सला जगन्माता भवानी ने क्या किया ? ॥ १ ॥

नारद उवाच—

तपसोऽर्थं प्रयाते तु स्कन्दे काञ्चनतेजसि ॥ देवसेनासमायुक्ते धनुः-
शक्तिधरे द्विजाः ॥२॥ भर्तारं भक्तिनम्राथ पुत्रवात्सल्यचोदिता ॥ पप्रच्छ
पार्वती शम्भुं हरं चन्द्रार्धशेखरम् ॥ ३ ॥ किं करिष्यति पुत्रो मे तत्र बाल-
स्त्रिलोचन ॥ कथं द्रक्ष्यति तं देवमचिन्त्यो ब्रह्मणापि यः ॥ ४ ॥

नारदजी बोले—हे ऋषिगण ! धनुष और शक्तिको धारण करने वाले तथा काञ्चनके समान तेजस्वी स्कन्दके तपस्याके लिये वृषभाचलपर देवसेनाके साथ चले जानेपर भक्तिसे नम्र एवं पुत्रप्रेमसे प्रेरित हो कर पार्वतीने चन्द्रमाका आधा भाग जिनके मस्तकमे विराजमान है, ऐसे शम्भुसे पूछा। हे त्रिलोचन ! मेरा पुत्र बालक स्कन्द वहां क्या करेगा ? जिसको ब्रह्मा भी नहीं देख सकता है, उस परब्रह्म परमात्माको स्कन्द कैसे देख सकेगा ? ॥४॥

इति पृष्टः सतां प्राह सोत्प्रासं परमेश्वरः ॥ शृणु देवि परं गुह्यं भ-
विष्यत्ते मयोच्यते ॥५॥ सर्वे च मुनयस्तस्मिन्नागमिष्यन्ति पर्वते ॥ द्रष्टु-
कामाः परं ब्रह्म तपस्तप्तुमनुत्तमम् ॥ ६ ॥ देवा मनुष्याः पितरो गन्धर्वा
यक्षराक्षसाः ॥ सिद्धाः साध्याश्च गरुडाः पन्नगा ऋषयस्तथा ॥७॥ चरि-
ष्यन्ति तपस्तस्मिन् गिरौ गिरिवरात्मजे ॥ प्रत्यक्षं परमात्मानं द्रष्टुकामाः
सनातनम् ॥ ८ ॥

पार्वतीके इस प्रकार पूछने पर परिहासके साथ परमेश्वर बोले—हे देवि ! सुनो ! जो अत्यन्त गुप्त बात होने वाली है वह मैं तुमसे कहता हूं। उस पर्वत पर समस्त ब्रह्मर्षि परब्रह्मको देखने और उत्तम तप करनेके लिये पधारेंगे। देवताओं, मनुष्यों, पितरों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, सिद्धों, साध्यों, गरुडों, पन्नगों (सर्प) ऋषियों आदि सब लोग वहां उस सनातन अखिल ब्रह्माण्डनायक परमात्माको प्रत्यक्ष देखनेके लिये तप करेंगे ॥ ८॥

अर्चयिष्यन्ति मां केचित्केचिद् ब्रह्माणमेव च ॥ केचित्स्कन्दं महा-
त्मानं शक्रं केचित्तथापरे ॥९॥ योद्धुकामास्तथा केचिदमरैरमरारयः ॥ उग्रं
तपः करिष्यन्ति प्रीणयन्तश्च नः परम् ॥ १० ॥ आवां तत्र गमिष्यावः
कालेन महता प्रिये ॥ द्रष्टुं तत्परमं ब्रह्मतत्त्वं नारायणं परम् ॥ ११ ॥

इनमेंसे कोई मेरी पूजा करेंगे, और कोई ब्रह्माजीकी ही आराधना करेंगे, कोई महात्मा स्कन्द की और कोई इन्द्रकी अर्चना करेंगे। कितने असुर देवताओंके साथ युद्ध करनेकी अभिलाषासे हम लोगोंको परम प्रसन्न करते हुए वहांपर उग्र तप करेंगे। हे प्रिये ! हम लोग भी चिरकालके बाद उस परमब्रह्म परमेश्वर भगवान नारायणको देखनेके लिये वहां चलेंगे ॥

अथ सुदर्शनस्य शङ्करसमीपप्राप्तिक्रमः

श्रीवेङ्कटाचले पुण्ये यत्तु प्रादुर्भविष्यति ॥ तत्प्रादुर्भावहेतोर्वै कर्तुं चापि महत्ततः ॥ १२ ॥ आवाभ्यामपि गन्तव्यं तथान्यैर्दैवतर्षिभिः ॥ यत्कालाख्यं च तच्चक्रं करिष्यति तपो महत् ॥ १३ ॥ मदर्थं हिमवत्पुत्रि मद्वियोगैकदुःखितम् ॥ विष्णुनैवाभ्यनुज्ञातं चक्रतीर्थे वसिष्यति ॥ १४ ॥

वेङ्कटाचल नामके पुण्य स्थानमें जो नारायण नामक ब्रह्मतत्त्व प्रकट होगा, उसके वहां अवतारके लिये महान तप करनेके लिये अन्य देव और ऋषियोंकी तरह हम लोगोंको भी वहां चलना चाहिये। हे पर्वतपुत्रि ! वहां पर मेरे वियोगसे दुःखित कालनामक चक्र मेरी प्राप्तिके लिये महान् तप करेगा और फिर वह चक्र भगवान विष्णुकी आज्ञासे चक्रतीर्थमें जा कर वास करेगा ॥ १४ ॥

नारद उवाच—

श्रुत्वैतत्पार्वती देवी वाक्यं शङ्करमब्रवीत् ॥ आश्चर्यमुक्तं भवता विष्णुचक्रं प्रतीश्वर ॥ १५ ॥ तत्पवित्रं करे विष्णोर्वसत्येव सदा प्रभो ॥ त्वन्निमित्तं किमर्थं तत्तपस्तप्स्यति शङ्कर ॥ १६ ॥ त्वयि स्नेहश्च कस्तस्य ब्रूह्येतन्मे महाद्भुतम् ॥

नारदजी बोले—यह वचन सुन कर पार्वतीने शङ्करसे कहा—हे ईश्वर ! आपने विष्णुचक्रके प्रति अद्भुत बात कही। हे प्रभो ! पवित्र वह तो सदा विष्णुके हाथमें ही रहता है। वह आपके लिये किस वास्ते तप करेगा ? हे शङ्कर आपमें उसका क्या स्नेह है ? यह महान् आश्चर्यजनक बात मुझसे कहिये ॥ १७ ॥

नारद उवाच—

एतच्छ्रुत्वाम्बिकां प्राह शङ्करो लोकशङ्करः ॥ १७ ॥ अनादिनिधनं दिव्यमप्रमेयपराक्रमम् ॥ सहस्रारसमायुक्तं कोटिसूर्यसमप्रभम् ॥ १८ ॥ सुदर्शनाख्यं तच्चक्रं विष्णोरेव तु पार्वति ॥ धर्तुमन्यैर्न शक्यं तत्तं विना पुरुषोत्तमम् ॥ १९ ॥ तेन चक्रेण दिव्येन दग्धा वाराणसी पुरी ॥ सा राजधानी मे दिव्या कृत्याहेतोर्विनाशिता ॥२०॥ कस्मिंश्चिदथ काले तु मयि प्रीतो जनार्दनः ॥ किमिच्छसीति मां प्राह वरदानसमुद्यतः ॥ २१ ॥

नारदजी बोले—यह बात सुन कर संसारका कल्याण करनेवाले भगवान शङ्कर पार्वतीसे बोले—हे देवि ! आदि और अन्तसे रहित, सदा एकसा रहनेवाला, दिव्य, अतुल पराक्रमी, सहस्रों आरोंसे युक्त, तथा करोड़ों सूर्योंके

समान कान्तिवान् वह सुदर्शन नामक चक्र, विष्णु भगवानका ही है, हे पार्वती ! इस चक्रको भगवान् विष्णुके सिवाय और कोई धारण नहीं कर सकता, इसी दिव्य चक्रने एक वार आभिचारिक कृत्याके नाश करनेके लिये दिव्यपुरी, काशी (वाराणसी) को जला दिया। इसके बाद कुछ काल बीतनेपर जनार्दन मुझ पर प्रसन्न हो कर बोले-- हे शङ्कर ! आप क्या चाहते हैं, मैं आपको वर देनेके लिये तैयार हूं ॥ २१ ॥

एवमुक्ते मया तस्माद्याचितं वरमुत्तमम् ॥ येन चक्रेण मे दग्धा पुरी वाराणसी हरे ॥ २२ ॥ तद्यथा मद्वशं यायान्मम प्रेष्यं च माधव ॥ तथा कुरु मयि प्रीतो नान्यं वरमहं वृणे ॥२३॥ एवं विज्ञापितो देवः प्रहस्य मधुसूदनः ॥ हस्तेन मम हस्ताग्रं गृहीत्वेदमुवाच ह ॥ २४ ॥ कथं सूर्यं परित्यज्य प्रभाऽन्यस्य भविष्यति ॥ एवं श्रीः कौस्तुभं चक्रं गरुडः शार्ङ्गमेव च ॥ २५ ॥ एवमादीनि वस्तूनि नित्यसिद्धानि शङ्कर ॥ नैतेषां जन्मविलयौ नान्यस्तेषां व्यपाश्रयः ॥ २६ ॥

हरिके कहने पर मैंने उनसे यह उत्तम वरदान मागा कि हे हरे ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो, हे प्रभो ! जिसने मेरी वाराणसीनामक पुरीको जलाया है, वह चक्र जिस तरह मेरे वशमे आवे और मेरा आज्ञाकारी रहे, वही वरदान आप मुझे दीजिये, अन्य किसी वरदानकी मुझे इच्छा नही है। इस तरह कहने पर मधुसूदन हंस कर अपने हाथसे मेरे हाथको पकड़ कर यह बोले कि सूर्यकी प्रभा सूर्यको छोड कर दूसरेकी कैसे हो सकती है ? इसी तरह श्री, कौस्तुभ, चक्र, गरुड़, धनुष आदि जितनी वस्तुएं हैं, वे नित्यसिद्ध हैं, न इनका जन्म है और न नाश, और न ये किसी दूसरेके आश्रयमे ही रह सकते हैं ॥ २६ ॥

अशक्यमिदमत्यर्थं याचितं प्रमथाधिप ॥ न चाहमनृतं वक्ष्ये तथैवास्तु यथेप्सितम् ॥ २७ ॥ एतत्सुदर्शनं दिव्यं कुतश्चित्कारणान्तरात् ॥ ब्रह्मणा निर्मितं भूत्वा लेशेनावतरिष्यति ॥ २८ ॥ अवतीर्णं तु तच्चक्रं त्वत्प्रेष्यत्वं गमिष्यति ॥ दिव्यं वर्षसहस्रं तु त्वत्समीपे वसिष्यति ॥२९॥ त्वया प्रत्यर्पितं पश्चात्स्वं भावमुपयास्यति ॥ एवं विष्णुप्रसादेन वरदानसमागतम् ॥३०॥ देवि चक्रं ममैतद्धि सहस्ररविसन्निभम् ॥ विष्णवे च पुरा दत्तं मया पुरविमर्दने ॥ ३१ ॥ मन्त्रोपदेष्ट्रे कालाख्यं दक्षिणार्थं हि पार्वति ॥ चिरं मया धृतं चक्रं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ॥ ३२ ॥ रक्षणार्थं च देवानां नाशार्थं सुरवैरिणाम् ॥ मया विहीनं तच्चक्रं मदर्थं चैव तप्स्यति ॥ ३३ ॥

हे प्रमथाधिप ! आपने तो अत्यन्त अशक्य वर मागा है, किन्तु मैं असत्य नही बोलता हूं, इसलिये आपने

जो वर मांगा है, वही आपको प्राप्त हो। यह दिव्य चक्र किसी कारणान्तरसे ब्रह्माके द्वारा निर्मित हो कर अंशसे अवतार लेगा, फिर वह आपका आज्ञाकारी बनेगा और दिव्य हजार वर्षपर्यन्त यह आपके पास रहेगा। बादमें आपके छोड़ देनेपर पुनः यह अपने रूपमें आ मिलेगा। हे देवि! सहस्र सूर्यके समान कान्तिमान् यह चक्र विष्णु भगवानके वरदानसे मेरे पास आया है। इस कारण यह चक्र मेरा है। हे पार्वती! प्राचीन समयमें त्रिपुरासुरके संहारके समय, ब्रह्माजीके बनाये एवं मुझ द्वारा बहुत दिनतक धारण किये हुए इस कालनामक चक्रको देवताओंकी रक्षा और असुरोंके नाशके लिये मैंने मन्त्रोपदेष्टा भगवान विष्णुको दे दिया था। इसलिये मुझसे पृथक् हुआ यह चक्र मेरे लिये तप करेगा॥ ३३॥

नारद उवाच—

श्रुत्वैतत्पार्वती प्रीता पुनः पप्रच्छ शङ्करम्॥ चक्रतीर्थमिति प्रोक्तं त्वया शङ्कर कुत्र तत्॥३४॥ ब्रूहि मे विस्तराच्छम्भो पावनं तीर्थमुत्तमम्॥ इति पृष्टस्तु पार्वत्या प्राहैनां शङ्करः पुनः॥ ३५॥

नारदजी बोले—इस बातको सुन कर पार्वतीने प्रसन्न हो कर फिर शंकरसे पूछा हे शंकर! आपने जिस चक्रतीर्थका वर्णन किया है, वह कहां है? हे शंभो आप उस उत्तम पवित्र तीर्थका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। पार्वतीके इस प्रकार पूछनेपर शंकर फिर पार्वतीसे कहने लगे॥ ३५॥

वृषाद्रेर्दक्षिणे पार्श्वे बहुप्रस्रवणे तटे॥ सन्त्याश्रमाः सप्तदश चक्रादीनां महात्मनाम्॥३६॥ तावन्ति चैव तीर्थानि तेषु पुण्यतमानि वै॥ तत्राद्यं चक्रतीर्थं यद्वज्रतोऽर्थादधःस्थितम्॥ ३७॥ कालचक्रतपःस्थानं कपिलोद्गमजं सरः॥ तत्र स्नानेन नश्यन्ति सर्वपापानि वै नृणाम्॥ ३८॥ तद्धि विष्णोः परं क्षेत्रं महापुण्यतमं स्मृतम्॥ इत्युक्त्वा पार्वती प्राह भर्तारं भक्तिमत्यथ॥ ३९॥ वज्रतीर्थमिति प्रोक्तं केनेदं हेतुना सरः॥ यदूर्ध्वं चक्रतीर्थात्तु विद्यमानमुदीरितम्॥ ४०॥

वृषपर्वतके दक्षिण भागमें जिस तटपर बहुतसे झरने झर रहे हैं, वहांपर चक्रादि महात्माओंके सत्रह (१७) आश्रम हैं और उन आश्रमोंमें उतने ही पवित्र तीर्थ हैं। उनमें वज्रतीर्थके नीचे कपिल मुनिके निर्गम द्वार (बिल) से उत्पन्न एवं कालचक्रकी तपस्याका स्थान प्रथम चक्रतीर्थ नामक एक तालाब है। वहांपर स्नान करनेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं। वही परम पावन, एवं महा पुण्य विष्णुका परम क्षेत्र कहा जाता है। इस तरह कहे जानेपर भक्तिशीला पार्वती फिर अपने स्वामीसे बोली—हे शंकर! आपने चक्रतीर्थके ऊपर विद्यमान कहे गये हुए तालाबको वज्रतीर्थ किस कारणसे कहा है॥ ४०॥

अथ इन्द्रस्य सहस्राक्षत्वप्राप्तिप्रकारः

इति पृष्टस्तु पार्वत्या प्राहैनां शङ्करः पुनः ॥ पुरा शक्रो महातेजा गौतमस्य स्त्रियं प्रियाम् ॥ ४१ ॥ भामिनीं तां समाक्रम्य शप्तोऽभूच्च महर्षिणा ॥ तवैकामिच्छतो योनिं तत्सहस्रं भवत्विति ॥ ४२ ॥

इन्द्रकी सहस्राक्षत्वप्राप्ति

पार्वतीके इस प्रकार पूछनेपर शंकरने फिर उनसे कहना आरम्भ किया कि, पूर्व समयमें महा तेजस्वी इन्द्र गौतमकी भार्यापर आक्रमण कर महर्षि गौतमसे 'तुम्हे एक योनिकी इच्छा करनेवालेको हजार भग हो जायें' ऐसा शापित हुआ ॥ ४२ ॥

शङ्कर उवाच—

इत्युक्तमात्रे मुनिना सर्वाङ्गे योनयोऽभवन् ॥ दृष्ट्वा सहस्रं योनीनां विषण्णोऽभूच्छचीपतिः ॥ ४३ ॥ कष्टं मया यत कृतं युक्तं गन्तुं क्व वेति च ॥ इति सञ्चिन्त्य सहसा जगाम ब्रह्मणः सरः ॥ ४४ ॥ तत्र पङ्कजनालेन निलीनोऽभूत्सुरेश्वरः ॥

शंकर बोले—मुनिके इस तरह कहते ही इन्द्रके सारे शरीरमें भग ही भग हो गये। इन्द्र अपनी समस्त देहमें भग ही भग देख कर बड़ा दुःखी हुआ और "अहो मैंने बड़ा पाप किया है अब मुझे कहां चलना उचित है" एकाएक इस तरह विचार कर इन्द्र ब्रह्मसरमें चला गया एवं वहां जा कर कमलके नालमें छिप गया ॥ ४५ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाःससिद्धाश्चारणैः सह ॥४५॥ द्रष्टुकामा महेन्द्रं तं नापश्यन्नमरालये ॥ अनिन्द्रं सुरसैन्यं तद्दीनं दृष्ट्वाऽसुरादयः ॥ ४६ ॥ आक्रम्य देवलोकं च विविशुश्चामरावतीम् ॥ मरुतस्ते शचीं देवीं वाक्पतिप्रमुखा ययुः ॥ ४७ ॥ प्रणम्य तां महाभागां सर्वे प्राञ्जलयोऽब्रुवन् ॥ क्व यातस्ते पतिर्भद्रे वयं शत्रुभिरर्दिताः ॥ ४८ ॥ अदृष्ट्वा रक्षितारं तमस्माकं व्यथिता वयम् ॥

इन्द्रको देखनेकी इच्छावाले सिद्धों, चारणों और गन्धर्वों समेत देवताओंने स्वर्गलोकमें इन्द्रको नहीं देखा। असुरगण देवताओंकी सेनाके विना इन्द्रको दीन देख कर देवलोकपर आक्रमण कर अमरावतीमें जा घुसे। सब देवता बृहस्पतिजीको आगे कर शचीदेवी इन्द्राणीके पास गये और सब उस महाभागाको प्रणाम कर हाथ जोड़ कर बोले—हे भद्रे ! आपके स्वामी कहां चले गये ? हमलोगोंको शत्रु बड़ा कष्ट दे रहे हैं। हे देवि ! हम अपने उन रक्षकको न देख कर बड़े दुःखी हो रहे हैं ॥ ४९ ॥

इत्युक्त्वा सा शची देवी जगाद सुरसत्तमान् ॥ ४९ ॥ तेनाहं निशि शय्यायां भर्त्रा सुप्ता सुरोत्तमाः ॥ क यातः स तु मायावी मया न ज्ञायते प्रभुः ॥ ५० ॥ गुरुः सुराणामस्माकं नूनं जानाति वाक्पतिः ॥

इस तरह प्रार्थना करनेपर इन्द्राणीने देवताओंसे कहा—हे देवताओ ! अपने स्वामी इन्द्रके साथ रातको मैं खाटपर सोयी हुई थी। वह मायावी कहां चला गया मैं नहीं जानती हूं। सुरपति कहां गये इस बातको हम देवता लोगोंके गुरु बृहस्पतिजी जानते होंगे ॥५१॥

शङ्कर उवाच—

इत्युक्तास्तेऽमराः सर्वे पुलोमसुतया तदा ॥ ५१ ॥ प्रणम्य च गुरुं भक्त्या ब्रह्माणमिव शाश्वतम् ॥ अस्माकं ब्रूहि भगवन्निन्द्रः क्वास्ते महेश्वरः ॥ ५२ ॥ याचितः सोऽथ देवैस्तैरपश्यद्योगवर्त्मना ॥ विहस्य किञ्चिदमरान् प्राह वाचस्पतिस्तदा ॥ ५३ ॥ कृत्वाऽकृत्यमसौ तस्य फलं प्राप्य शचीपतिः ॥ आस्ते लज्जासमाविष्टो मेरौ पङ्कजनालके ॥५४ ॥ गच्छामस्तत्सरो देवा द्रक्ष्यामस्तं सुरेश्वरम् ॥ इत्युक्त्वा तान्सुरान् सर्वाञ्जगाम सह तैर्गुरुः ॥५५॥ तत्सरः प्राप्य तानाह गायध्वं सुरसत्तमाः ॥

शङ्कर बोले—हे पार्वती ! इन्द्राणीके इस तरह कहनेपर ब्रह्माके समान शाश्वत गुरुको प्रणाम करके सब देवताओंने कहा कि हे भगवन् ! महेश्वर इन्द्र इस समय कहां हैं ? देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर बृहस्पतिजीने योगमायासे देखा और हंस कर देवताओंसे कहा—कुकर्म करके और उस कुकर्मका फल पाकर लज्जित हो इन्द्र मेरुपर्वतपर कमलके नालमें जा कर छिप गया है। हे देवताओ ! चलो, हमलोग चल कर उस तालावमें इन्द्रको देखें, ऐसा कह कर देवताओंके साथ गुरुदेव बृहस्पतिजी उस तालावपर गये ॥ ५५ ॥

इत्यादिष्टा जगुः सर्वे गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ देवाश्च ऋषिभिः सार्द्धं तौर्यत्रिकसमन्वितम् ॥५६॥ नाथ त्रयाणामपि विष्टपानामुपप्लुताः स्मः सुरवैरिभिः प्रभो ॥ आगच्छ देवेन्द्र जगच्च रक्ष सरोजलीनोऽसि कृतं च किं त्वया ॥ ५७ ॥

वहां जा कर देवताओंसे बोले कि हे देवताओ ! तुम लोग इन्द्रकी स्तुति करो। गुरुकी आज्ञा पा कर देवता और ऋषियोंके साथ सब गन्धर्व और अप्सराओंने बाजेके साथ गान किया और बोले कि, हे नाथ ! देवशत्रु राक्षसोंने स्वर्गमें बड़ा उपद्रव मचाना आरम्भ कर दिया है। हे प्रभो ! देवेन्द्र ! आप आइये और संसारकी रक्षा कीजिये, आपने क्या किया है जिससे तालावके कमलनालमें छिपे हुए हैं ? ॥ ५६ ॥

शङ्कर उवाच—

श्रुत्वा गीतं सुरेशोऽथ ज्ञात्वा तानागतान्सुरान् ॥ ॥ वहन् योनिशतं देवो हृष्योऽभूद्बलसूदनः ॥५८॥ निर्गत्यास्मात्पद्मनालात्स्वपदार्पितलोचनः ॥ अवाङ्मुखो गुरोः पादौ जग्राह बलसूदनः ॥ ५९ ॥ उवाच दीनया वाचा देवेन्द्रोऽङ्गिरसः सुतम् ॥ आदित्यानां हितार्थाय तपोविघ्नं हि कुर्वता॥६०॥ मया फलमिदं प्राप्तं गौतमस्य महात्मनः ॥

शङ्करने कहा—देवताओंको वहां आये हुए जान कर और उनका गाना सुन कर अपने शरीरमें सहस्रों भगोंको लिये नीचेको मुख किये हुए उस कमलनालसे निकल कर इन्द्रने गुरुके चरण पकड़ लिये और कातरस्वरसे अङ्गिरापुत्र बृहस्पतिजीसे कहा—हे गुरु ! देवताओंकी हितकामनासे महात्मा गौतमके तपमें विघ्न करते हुए मैंने यह फल पाया है ॥ ६१ ॥

एतत् श्रुत्वाऽथ धिषणो विहस्य गिरिजेऽवदत् ॥ ६१॥ कृतमेतत्त्वया वज्रिन् कामिना ज्ञातमेव मे ॥ देवार्थं कर्म कृत्वैतत्फलं प्राप्तं भृगो रुषा?६२॥ देवा यूयं प्रार्थयध्वमेता मेढ्रा भवन्त्विति ॥ गुरोरेतद्वचः श्रुत्वा देवाः सर्वे वरानने ॥ ६३ ॥ तावन्मेढ्रा भवन्त्वेता योनयश्चेन्द्रमाश्रिताः ॥ इत्थमुक्तेषु देवेषु योनयो मेढ्रतां ययुः ॥ ६४ ॥

हे गिरिजे ! इन्द्रके यह वचन सुन कर बृहस्पतिजी हँस कर बोले—हे वज्रिन् ! तुमने कामातुर ही हो कर यह कर्म किया है, उसको मैंने जान लिया था। क्या देवताओंके लिये कार्य करते तुमने भृगुके रोषसे यह फल पाया है ? गुरुने देवताओंसे कहा—हे देवताओ ! तुम प्रार्थना करो कि ये सब योनियां लिङ्गरूप हो जांय। हे वरानने ! गुरुके यह वचन सुन कर देवताओंने कहा—इन्द्रके शरीरमें इस समय जितने भग हैं, सब लिङ्गरूप हो जांय। देवताओंके ऐसा कहते ही सब भग लिङ्गरूप हो गये ॥ ६४ ॥

अथ दृष्ट्वा सहस्रं तु मेढ्राणामप्सरोगणाः ॥ ऊचुरस्मानलं भोक्तुं षड्भी-रेकक्षणादयम् ॥ ६५ ॥ इति तासां वचः श्रुत्वा प्रीतोऽभूद्बलसूदनः ॥ ततो विमानमारुह्य दंशनं चोद्वहन्महत् ॥ ६६ ॥ गीतवादित्रनिर्घोषैः पूरयन्नम्बरं दिशः ॥ विवेश च पुरीमिन्द्रो निहत्य सुरवैरिणः ॥ ६७ ॥ सुखमात्यन्तिकं भेजे षड्भिः सोऽप्सरोगणैः ॥ विजहारैकवारेण विषयासक्तचेतनः ॥६८॥ एवं स विहरन्नक्तं दिवा च गिरिकन्यके ॥ न तृप्तिमाययौ कामी कामभो-गैः सुदुस्त्यजैः ॥ ६९ ॥

उस समय हजारों लिंगोंको देख कर अप्सरायें बोलीं कि हम सबको एक ही साथ भोगनेका आनन्द मिलेगा। अप्सराओंके यह वचन सुन कर वलसूदन इन्द्र बड़े प्रसन्न हुए और पीड़ाको सहन करते विमानमें चढ़ कर गीत और बाजेके शब्दोंसे दशों दिशा और आकाशको पूर्ण करते हुए सुरवैरी असुरोंका नाश कर सुरेन्द्रने अमरावतीमें प्रवेश किया। कामातुर इन्द्रने बहुत सी अप्सराओंके साथ एक बार ही अनन्त सुखको प्राप्त किया। इस तरह हे गिरि-कन्यके! इन्द्र रात दिन अप्सराओंके साथ भोग विलास करते हुए भी अत्याज्य कामसे तृप्त नहीं हुए, क्योंकि यह भोग लिप्सा बड़ी दुस्त्यज है ॥६६॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ ७० ॥ देवेन्द्रो विहरन्नेवमशक्तः सोढुमद्रिजे ॥ मेहनानां सहस्रं तु तेषां मोक्षमचिन्तयत् ॥ ७१ ॥ केनैतत्कर्दणा मोक्तुं शक्यं शिश्नसहस्रकम् ॥

कामके उपभोगसे कामीकी तृप्ति नहीं होती है। जैसे हविके डालनेसे अग्निकी ज्वाला बढ़ती है वैसे ही कामसे काम बढ़ता है। हे अद्रिजे! इस तरह भोग करते हुए भी इन्द्र हजारों लिङ्ग धारण करनेमें असमर्थ हो गये और उनको नष्ट करनेका उपाय सोचने लगे—कौन ऐसा उपाय है जिससे मैं इन लिङ्गोंके दुःखसे छुटकारा पा सकूं ७२

नाशयिष्याम्यहं त्वेतत्तपसेति सुनिश्चितः ॥ ७२ ॥ धिषणेनाभ्यनुज्ञातो विष्वक्सेनसरो ययौ ॥ विसृज्य देवानिन्द्राण्या ह्यतिष्ठत्तपसे सह ॥ ७३ ॥ विष्वक्सेनसरोऽधस्ताद्वज्रेणाहत्य भूधरम् ॥ स्नानार्थं देवपूजार्थं पातालाज्जलमाददे ॥ ७४ ॥ क्षीराहारो जितक्रोधो जितकामो जितेन्द्रियः ॥ पादाङ्गुष्ठेन सम्पीड्य ह्यतिष्ठन्मेदिनीं शुभे ॥ ७५ ॥ जपंश्च नियतं देवीं गायत्रीं वेदमातरम् ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं तु ततः प्रीतोऽभवद्धरिः ॥ ७६ ॥ वराहरूपो भगवान् धरण्या सह भूधरे ॥ प्राह चेन्द्रं सुरेशाहं वरदस्ते समागतः ॥७७॥ वृणोष्व यदभीष्टं ते ददामि सुरसत्तम ॥

तप करके मैं इन लिङ्गोंका नाश करूंगा, ऐसा सोच कर बृहस्पतिजीकी आज्ञासे इन्द्र देवताओंको छोड़ कर इन्द्राणीके साथ तप करनेके लिये विष्वक्सेन तालाबपर चले गये। वहांपर विष्वक्सेन सरोवरके नीचे वज्रसे पर्वतको फोड़ कर स्नान और पूजाके लिये पातालसे उन्होंने जल निकाला। इन्द्र केवल दूधका आहार करके, काम और क्रोध-को जीत, जितेन्द्रिय होकर पैरके अङ्गूठेसे पृथ्वीको दाब कर निरन्तर एक हजार वर्षपर्यन्त वेदमाता गायत्रीको जपते हुए तप करने लगे। तदनन्तर भगवान आदिवराह पृथ्वीके साथ उस पर्वतपर प्रकट हुए और प्रसन्न हो कर इन्द्रसे कहने लगे—हे इन्द्र! मैं वर देनेके लिये यहां उपस्थित हुआ हूं। हे इन्द्र! आपको जिस वरदानकी इच्छा हो, उसे मांगो ॥ ७८ ॥

एवमुक्तोऽथ देवेन्द्रः प्रणम्य धरणीधरम् ॥ ७८ ॥ प्रीतस्त्वमसि देवेश
वरं देहि दयानिधे ॥ सहस्रमेतच्छिश्नानां विनैकं नश्यतां मम ॥ ७९ ॥
एवमेव वरं देहि ममैतावद्धि काङ्क्षितम् ॥ ततो वराहो देवाय वरं दत्त्वा
यथेप्सितम् ॥ ८० ॥ तत्रैवान्तर्दधे देवो वृषभाद्रौ वरानने ॥ ततः शिश्न-
सहस्रं ते न्यपतन् वज्रिदेहतः ॥८१॥ सद्यस्तेजोमया भूत्वा ब्राह्मणा वेद-
पारगाः ॥ सहस्रमब्रुवन्निन्द्रं प्रीत्या परमया युताः ॥ ८२ ॥

भगवान् आदिवराहके इस तरह कहनेपर इन्द्र आदिवराहको प्रणाम करके कहने लगे—हे देवेश ! दयानिधे ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि ये जितने लिङ्ग हैं केवल एकको छोड़ कर सब नष्ट हो जायें। हे देव ! मुझे इसी वरदानकी इच्छा है, आप मुझे यही वरदान दीजिये। इसके बाद भगवान् आदिवराह इन्द्रको अभीष्ट वरदान दे कर उसी वृषभाचल पर्वतपर अन्तर्धान हो गये। आदिवराहके अन्तर्धान होते ही इन्द्रके शरीरसे वे सब लिङ्ग गिर पड़े और तुरन्त ही तेजस्वी वेदपारग ब्राह्मणके रूपमें परिणत हो कर बड़े प्रेमसे इन्द्रसे कहने लगे ॥ ८२ ॥

शृणु देव वयं विप्राः पौलोमीसङ्गमेच्छया ॥ तपः कृत्वा ततो भूमौ
तवाङ्गे देवसत्तम ॥ ८३ ॥ मेढ्राः सहस्रमेवैते गौतमस्य तपोबलात् ॥ स्वर्ग-
स्त्रियोऽनुभुक्ताश्च तथेन्द्राणी यथासुखम् ॥ ८४ ॥ वरं ददाम ते प्रीता
वृणीष्व बलसूदन ॥ इति तेषां वचः श्रुत्वा प्रीत्या वज्र्यब्रवीद्धि तान्॥८५॥
यदि प्रीताः स्थ मे विप्रा व्रणानां तु सहस्रकम् ॥ भवन्तु चक्षूंषि सदा
भवतां तु प्रसादतः ॥ ८६ ॥

ब्राह्मणोंने कहा—हे देव ! इन्द्राणीके साथ सङ्गम करनेकी इच्छासे तप करके उस तपके प्रभाव और गौतम मुनिके तपोबलसे हमलोगोंने लिङ्ग हो कर तुम्हारे शरीरमें निवास किया और अपनी इच्छानुसार अप्सराओं और इन्द्राणीके साथ भी भोग किया है। हे बलसूदन ! हम बड़े प्रसन्न हैं, जो चाहो वर माग लो। ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर प्रसन्न हो इन्द्र उनसे कहने लगे—हे भूदेवो ! आप यदि मुझ पर प्रसन्न हैं तो आपके प्रसादसे मेरे शरीरके एक हजार घाव नेत्ररूप हो जायं ॥ ८६ ॥

तथास्त्विति ब्रुवन्तस्ते द्विजा जग्मुस्तपोधनाः ॥ सहस्रदृक् च देवोऽथ
जातोऽभूदद्भुताकृतिः ॥ ८७ ॥ सह शच्या विशालाक्ष्या प्रविवेशामराव-
तीम् ॥ दिव्यमङ्गलवाद्यैश्च हर्षयन् सर्वदेहिनः ॥ ८८ ॥ लब्ध्वा वरं देववरो

घृषाद्रो तुङ्गं समारुह्य तुरङ्गयुक्तम् ॥ वज्री रथं काञ्चनमप्सरोभिः सुगीय-
मानश्च ययौ स्वगेहम् ॥ ८९ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्कन्दकृत-
तप प्रकारादिवर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायोऽत्र तृतीय. ॥ ३ ॥

तपस्वी ब्राह्मण इसके बाद "तथास्तु" ऐसा कह कर चले गये। तत्पश्चात् हजार नेत्र और अद्भुत सुन्दररूप-वाले हो कर विशाल नेत्रवाली इन्द्राणीके साथ गीत वाद्यादिकोंसे सर्व प्राणियोंको प्रसन्न करते हुए अमरावतीमें गये। इन्द्रने वृषभाचलपर वर पा कर सुन्दर घोडे जुते हुए काञ्चनमय रथपर बैठ कर गीत गाती हुई अप्सराओंके साथ अपने घरमें प्रवेश किया ॥ ८६॥

॥ इति तृतीयेऽध्याय. ॥

चतुर्थोऽध्यायः

विष्वक्सेनोद्भव कथा, तीर्थ सप्तदश अन्य।
चक्रादिक महिमा लिखी, तीरथ परम अनन्य ॥१॥
चक्र कपिल तीर्थादिका, स्नान काल निर्मान।
अगम अ.न्त अनन्त फल, बहुविधि बहुगुण गान ॥२॥

अथ सुवर्चलायां श्रीविष्वक्सेनोत्पत्तिक्रमः

नारद उवाच—

श्रुत्वा चित्रां कथां देवी पुनः प्रोताऽऽह शङ्करम् ॥ विष्वक्सेनश्च को
वाऽसौ किमर्थं च तपोऽचरत् ॥१॥ किं लेभे कुत्र चाऽऽस्तेऽसौ ब्रूहि मे तत्त्व-
दर्शन ॥ श्रुत्वाऽथ पार्वतीवाक्यं प्रीतः प्राह महेश्वरः ॥२॥

सुवर्चलामें श्रीविष्वक्सेनकी उत्पत्ति

नारदजीने कहा—पार्वती देवीने ऐसी विचित्र कथा सुन कर फिर शिवजीसे पूछा—हे तत्त्वदर्शन! यह

विष्वक्सेन कौन है ? और उसने किस लिये तप किया ? उसने क्या पाया और वह कहां रहता है ? यह सब बातें मुझसे कहिये। पार्वतीके वचनोंको सुन कर महेश्वर बड़े प्रसन्न हुए और बोले ॥ २ ॥

पुरा कृतयुगे देवी कुन्तला नाम चाप्सराः ॥ दुर्वास आश्रमं प्राप्य रम्यमिन्द्रेण चोदिता ॥ ३ ॥ सा लास्यमकरोद्वाला महर्षेर्भावितात्मनः ॥ अग्रतो रुचिरां दृष्ट्वा सोऽशपत्कोपनो मुनिः ॥ ४ ॥ किराती भव दुर्बुद्धे कुन्तले नीलकुन्तले ॥ सा शप्ता कुन्तला भीता प्राञ्जलिः प्रणताऽवदत् ॥५॥

हे देवि ! पहिले सतयुगमें कुन्तलानामकी एक अप्सरा इन्द्रकी आज्ञा पा कर दुर्वासा मुनिके रमणीय आश्रममें आकर नाचना शुरु कर दिया। अपने सामने सुन्दर अप्सराको देख कर क्रोध परवश हो कर मुनिने उसको शाप दे दिया—हे दुर्बुद्धि ! तथा नील केशोंवाली कुन्तला ! तुम किराती हो जा। शापित एवं भययुक्त वह कुन्तला हाथ जोड़ कर प्रणाम करती हुई मुनिसे कहने लगी ॥ ५ ॥

स्वाधीना नाऽस्मि भगवन् क्षमस्व मम दुर्नयम् ॥ प्राञ्जलिं प्रणतां दृष्ट्वा दुर्वासा वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ नानृता वाक्च मे बाले शापमोक्षं वदामि ते ॥ भीरु पुत्रमुखं दृष्ट्वा पुनः स्वर्गं गमिष्यसि ॥७॥ इत्युक्त्वा सा पुनः प्राह पुत्रं विष्णुपराक्रमम् ॥ दीर्घायुषं तपोनिष्ठं सोताऽस्मि तव वैभवा-त् ॥ ८ ॥ इति नम्रां पुनस्तां तु तथास्त्वित्यब्रवीन्मुनिः ॥

हे भगवन् ! मैं स्वतन्त्र (स्वाधीन) नहीं हूं। आप मेरी धृष्टताको क्षमा कीजिये। हाथ जोड़ कर उसको चरणमें गिरी हुई देख कर दुर्वासा मुनि बोले—हे बाले ! मेरा वचन मिथ्या नहीं होता, तो भी तुम्हें इस शापसे छूटनेका उपाय बतलाता हूं। हे भीरु ! तू अपने पुत्रका मुख देख कर फिर स्वर्गमें चली जा। मुनिके इस तरह कहने पर वह फिर बोली—हे भगवन् ! ठीक है, मैं आपके प्रभावसे विष्णुके समान पराक्रमवाले तपस्वी दीर्घायु पुत्र उत्पन्न करूंगी। दुर्वासा मुनिने उसकी नम्रता देख कर कहा—"तथास्तु" ॥ ८ ॥

वीरबाहोः किरातस्य पत्न्यां जज्ञे सुवर्चला ॥ ९ ॥ पुत्री ह्यपुत्रिणस्तस्य व-र्धुये प्रीतिवर्धनी ॥ वरा सा रूपलावण्यगुणैर्नारीगणेष्वभूत् ॥ १० ॥ धर्म-पुत्राय भद्राय तां पिता प्रददौ तदा ॥ पीनोन्नतस्तनी श्यामा सा बाला तनुमध्यमा ॥ ११ ॥ कदाचित्फाल्गुने मासि शुक्लपक्षे शुभे दिने ॥ ऋतु-स्नाता नर्मदायां स्थिता ऋक्षवतस्तटे ॥ १२ ॥ अपश्यत्तां तु वरुणः सङ्गम्य ह्यवदच्च ताम् ॥ मीनोऽहं सुभगे सुभ्रु वृणीष्व वरमीप्सितम् ॥ १३ ॥

फिर वह कुन्तला वीरबाहु नामक अपुत्र किरात की स्त्रीसे "सुवर्चला" नामसे पैदा हुई पिताके आनन्दकी वृद्धि करती हुई वह कन्या रूप, लावण्य और गुणोंमें सब स्त्रियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ हुई। उस किरातने अपनी उस कन्याको धर्मके पुत्र भद्रके लिये दे दिया। पतली कमर और ऊँचे मोटे स्तनवाली सोलह वर्षकी वह कन्या किसी समय फाल्गुन मासके शुक्ल पक्षके शुभ दिनमें नर्मदा नदीमें ऋतुस्नान करके मृगस्थान पर्वतके ऊपर खड़ी हो गई। वरुणने उसको वहां पर देख और उसके साथ सङ्गम करके कहा—हे सुभगे! हे सुभ्रू! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं, तुम्हें जो इच्छा हो वर मांगो॥ १३॥

सुवर्चलोवाच—

प्रीतो यदि भवान् दद्यादेव मे पुत्रमुत्तमम्॥ वरुणस्त्वाह कल्याणि सुपुत्रा त्वं भविष्यसि॥ १४॥

सुवर्चलाने कहा—हे वरुण! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे सर्वश्रेष्ठ पुत्र दीजिये। वरुण बोले हे कल्याणि! तू श्रेष्ठ पुत्रवाली होगी॥ १४॥

शङ्कर उवाच—

इति दत्त्वा वरं तस्यै ययौ जलपतिस्ततः॥ तत् श्रुत्वा वचनं तस्य प्रीता साऽभूत्सुवर्चला॥१५॥ साऽसूत पुत्रं तपनीयगात्रं पूर्णेन्दुवक्त्रं जलजाभनेत्रम्॥ शङ्खासिबाणासनकुम्भरेखासमुज्ज्वलारक्तकराङ्घ्रियुग्मम्॥ १६॥ देवा दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खाच्च्युता॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शस्तज्जन्मदिवसे तदा॥ १७॥ पुष्यर्क्षे कर्कटे जातः सुवर्चलसुतो बली॥ ववृधे वीर्यवांस्तत्र शुक्लपक्ष इवोडुराट्॥ १८॥ पुत्रस्य दशमे वर्षे कालधर्मं ययौ च सा॥

शङ्कर बोले—हे पार्वती! वरुण उसको वरदान दे कर वहांसे चले गये। सुवर्चला वरुणके उस वचनको सुन कर परम प्रसन्न हुई। सुवर्णके समान शरीर, पूर्णचन्द्रके समान मुख और कमलके समान नेत्रवाले, शङ्ख, खड्ग, धनुष एवं कुम्भकी रेखाओंसे उज्वल और किंचित रक्त दोनों हाथ और चरणवाले पुत्रको समय पर उस सुवर्चलाने उत्पन्न किया। सुवर्चलाको जिस समय पुत्र पैदा हुआ, उस वक्त देवताओंने दुन्दुभी बजाई और आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा हुई। सुवर्चलाके इस बलवान पुत्रका जन्म पुष्य नक्षत्र और कर्क लग्नमें हुआ। शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह वह बढ़ने लगा। जब उस बालकको दश वर्षकी अवस्था हुई, तब उसकी माता सुवर्चलाका स्वर्गवास हो गया॥ १८॥

ततस्त्यक्तश्च पित्राऽसौ काश्यपस्याश्रमं ययौ॥ १९॥ आयान्तं तं मुनिर्दृष्ट्वा ज्ञात्वा तं वरुणोत्मजम्॥ राजपुत्रं महात्मानं रूपलावण्यसंयु-

तम् ॥२०॥ प्रीतो जग्राह तं शिष्यं मन्त्रं प्रादान्महामुनिः ॥ लब्ध्वा मन्त्रं मुनिवराद्वेदान्साङ्गानधीत्य च ॥ २१ ॥ अनुज्ञातो ययौ तेन तपसे वृषभाचलम् ॥ तपस्तप्त्वा चिरं कालं तैस्तैश्च नियमैः सह ॥ २२ ॥

उसके बाद पितासे भी त्याग दिया हुआ वह बालक कश्यपके आश्रममें चला गया। उस आश्रममें आया हुआ, महात्मा और अति रूपवाला राजपुत्रको वरुणका पुत्र समझ कर मुनिने अपना शिष्य बना लिया और उसको मन्त्रदीक्षा दे दी। वह बालक मुनिवरसे दीक्षा पा अङ्गों सहित वेदोंको पढ़ कर वृषभाचल पर उनकी आज्ञासे तप करनेके लिये चला गया और वहां पर जा कर इसने नियमपूर्वक चिरकाल तक तप किया ॥ २२ ॥

सम्पूर्णे द्वादशे वर्षे मासि चाश्वयुजे शुभे ॥ पूर्वाषाढे च पुण्यर्क्षे वरं लब्ध्वा जनार्दनात् ॥ २३ ॥ सारूप्यं श्रीपतेस्तस्य सैनापत्यमवाप्य च ॥ शङ्खचक्रगदापाणिर्विष्ण्वाज्ञापरिपालकः ॥ २४ ॥ पञ्चायुधाश्रमाधःस्थाप्ययौ स्वाश्रमतस्तटम् ॥ नारायणाद्रेर्गिरिजे गन्धर्वैः परिवारितः ॥ २५ ॥ चतुर्दशानां जगतामधीश्वरैर्महाबलैर्भूतगणैर्महास्वनैः ॥ ज्वलच्छिखैरुज्ज्वलहेतिभिर्वृतो नैर्ऋत्यकोणे त्ववसद् गिरेस्तटम् ॥ २६ ॥

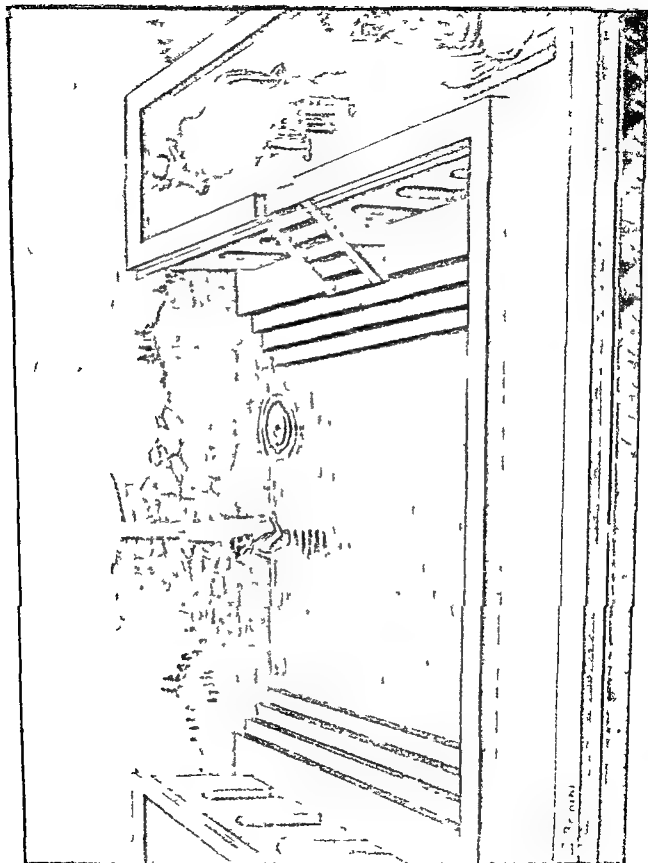
उसके बारह वर्ष समाप्त हो जानेपर आश्विनके महीनेमें शुभ पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रके दिन वह बालक भगवान् जनार्दनसे वरदान पा कर भगवान् विष्णुके सारूप्य तथा विष्णुकी सेनाका अधिपतित्वको पा कर, हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुए विष्णु भगवान्का आज्ञापालक हो कर अपने आश्रमसे गन्धर्वोंके साथ पञ्चायुध आश्रमके नीचे नारायण पर्वतके तटपर चला गया और चौदह लोकोंके स्वामी बड़े बड़े पराक्रमी, गंभीर शब्द करनेवाले, जिनकी शिखाओंमेंसे अग्निकी ज्वालायें निकल रही हैं, बड़े बड़े आयुध जिनके हाथोंमें है, ऐसे भूतगणोंके साथ वह बालक नैर्ऋत्य कोणमें पर्वतके तटपर निवास किया ॥ २६ ॥

विष्वक्सेनस्य यदिदं जन्म प्रोक्तं मया तव ॥ आश्रमाणां प्रसङ्गेन न तत्कर्मनिबन्धनम् ॥ २७ ॥ अवतीर्णस्तु देवोऽसौ देवैरभ्यर्थितः पुरा ॥ विष्णोराज्ञां पुरस्कृत्य विष्णुतुल्यपराक्रमः ॥ २८ ॥

हे देवी ! मैंने जो तुमको विष्वक्सेनका जन्म कहा है, यह आश्रमोंके प्रसङ्गसे है, न तो वह जन्म कर्मोंका फल है। विष्णुके समान पराक्रमी यह विष्वक्सेन तो भगवान् विष्णुकी आज्ञासे देवताओंके प्रार्थना करनेपर अवतीर्ण हुआ है ॥ २८ ॥

अथ चक्रादिसप्तदशतीर्थमाहात्म्यम्

विष्वक्सेनाश्रमादूर्ध्वं सरस्यः पञ्च चोज्ज्वलाः ॥ पञ्चायुधैर्भगवतो



देवि नित्यनुपाश्रिताः ॥२९॥ तत्तदाकारयुक्तास्ता दृश्यन्तेऽद्यापि पर्वते ॥ तासामूर्ध्वं जातवेदास्तपस्तेपे सरोवरे ॥ ३० ॥ तत्सरस्तु दुरारोहमगाधं पापनाशनम् ॥ आग्नेयमिति विख्यातं तीर्थानामुत्तमोत्तमम् ॥३१॥ ब्राह्मं सरस्ततश्चोर्ध्वं पावनं परिकीर्तितम् ॥ सप्तर्षीणां ततश्चोर्ध्वमाश्रमाश्च सरांसि च ॥३२॥ एषां सप्तदशानां च ह्येकैकं पापनाशनम् ॥ दर्शनात्कीर्तनाच्चापि स्नानात्पानाच्च पार्वति ॥ ३३ ॥

विष्वक्सेनके आश्रमके ऊपरकी ओर अति रमणीय पांच तलैयां हैं, जहां हे देवी! भगवान्‌के पांचों आयुध शङ्ख, चक्र, गदा, खड्ग और धनुष निवास करते हैं। आजतक भी तलैयां आकृतिमें उन आयुधोंके समान दिखलाई पड़ती हैं। उन तलैयोंके ऊपर एक सरोवरमें अग्निदेवने तप किया था। दुरवगाह, अगाध, तथा तीर्थोंमें श्रेष्ठ वह पापनाशक तीर्थ आग्नेय कहा जाता है। वह सरोवर तीर्थोंमें अति उत्तम है। उस आग्नेय तीर्थके ऊपर परम पवित्र ब्रह्म सरोवर है, ब्रह्म सरोवरके ऊपर सप्तऋषियोंके आश्रम और तालाब हैं। इन सत्रहों तीर्थोंमें एक एक भी दर्शन, कीर्तन, स्नान तथा पान करनेसे सब पापोंके समूहको नाश करनेवाला है॥ ३३ ॥

नारद उवाच—

श्रुत्वैतत्पार्वती प्राह भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥ आदितः सरसामेषां माहात्म्यं वद शङ्कर ॥३४॥ सर्वलोकहितार्थाय पावनं पुण्यवर्धनम् ॥ शङ्करः प्राह पद्माक्षि शृणु दुर्वाससे पुरा ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणा पृच्छते प्रोक्तं कापिलं लिङ्गमुत्तमम् ॥ ऋषिणा कपिलाख्येन पाताले पूजितं सदा ॥ ३६ ॥ क्षीराभिषिक्तं सुरभेरुद्भिद्य भुवमुद्गतम् ॥ कुपिता सुरभिस्तत्र मूर्ध्न्याघायान्वशात्खुरम् ॥३७॥ मा वर्धस्वेति लिङ्गं तु नावर्धत खुराङ्कितम् ॥ आदौ रजतवर्णं च मध्ये स्वर्णप्रभं महत् ॥ ३८ ॥ अग्रेऽरुणाभं सम्भूतं पञ्चवक्त्रं त्रियम्बकम् ॥ पञ्चवर्णं महाभोमं पातालाधिष्ठितं सदा ॥ ३९ ॥

नारदजी बोले—पार्वती यह सुन कर अपने भक्तवत्सल स्वामीसे कहने लगी—हे शंकर! आप संसारके लिये पवित्र और पुण्यको बढ़ानेवाले इन सरोवरोंके माहात्म्यको प्रारम्भसे कहिये। शंकर बोले—हे कमलनयन पार्वती! प्राचीन समयमें दुर्वासा मुनिके पूछनेपर ब्रह्माजीने कपिल नामका उत्तम लिङ्ग बतलाया था, जिसकी पूजा पातालमें कपिल नामके ऋषिने की थी। वह कपिल नामका लिङ्ग कामधेनुके दूधसे अभिषिक्त होने पर पृथ्वीको फाड़ कर पातालसे बाहर निकल आया। उसको बाहर निकला देख कर कामधेनुको बड़ा क्रोध हुआ, सुरभिने उसके मस्तकपर अपना खुर रख कर कहा—बस अब मत बढ़। कामधेनुके निवारण करने पर मूल भागमें चान्दीका, बीचमें स्वर्णमय, अग्रभागमें

लाल वर्णका, पांच मुंह, तीन नेत्र और पांच वर्णवाला बड़ा भयङ्कर तथा सदा पातालमें रहनेवाला वह लिङ्ग फिर आगे नहीं बढ़ा, उसके मस्तक पर खुरका चिह्न हो गया॥ ३९॥

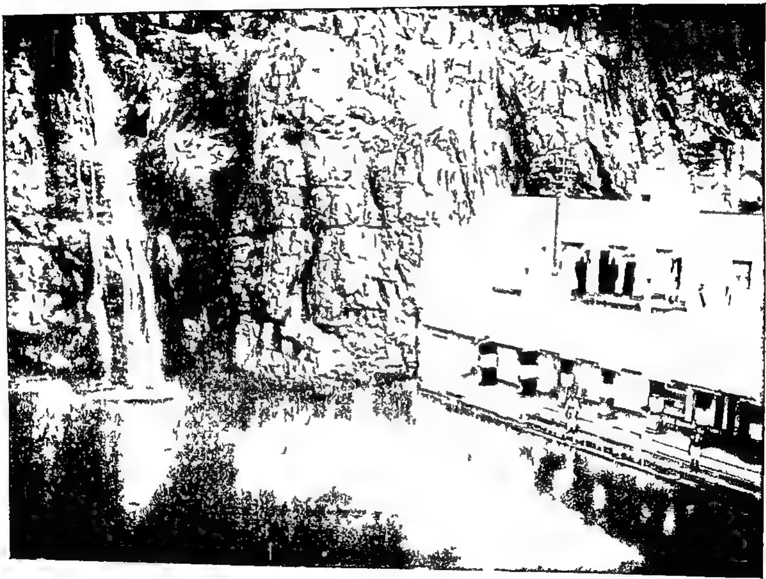
महर्षिणा कृते पूर्वं कपिलेन सुपूजितम् ॥ कपिलेश्वर इत्येतत्कृते ख्यातं युगे पुरा ॥ ४० ॥ त्रेतायामग्निना पश्चादाग्नेयमिति कीर्तितम् ॥ अनाद्यन्तं महालिङ्गं द्वापरे चक्रपूजितम् ॥४१॥ कलौ युगे भविष्यं तत्कपिलापूजितं शिवम् ॥ अग्रे कापिललिङ्गस्य सरोवरमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥ पातालादुद्गतस्यास्य कपिलस्य महात्मनः ॥ मार्गो हि तद्बिलं गुह्यं कापिलं परिकीर्तितम् ॥ ४३ ॥

पहले सतयुगमें महर्षि कपिलने इस लिङ्गकी पूजा की थी, इस कारण यह उस युगमें कपिलेश्वरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। त्रेता युगमें इसका पूजन अग्निने किया इस कारण इसका नाम आग्नेय हुआ। जिसके आदि और अन्तका पता नहीं, ऐसे इस लिङ्गकी द्वापरमें चक्रने पूजा की। भविष्यके लिये कलियुगके आरम्भमें कपिला गौने इसका पूजन किया। इस कापिल लिङ्गके आगे जो उत्तम सरोवर है, वह पातालसे निकलते समयका महात्मा कपिलका मार्ग है। वह गुप्त बिल कापिल नामसे कहा गया है॥ ४३॥

जलाभिपूरितं तत्तु सरोवरमनुत्तमम् ॥ दर्शनादेव तत्तीर्थं सर्वाघौघविनाशनम् ॥ ४४ ॥ दर्शनात्स्वर्गदं पुंसां स्त्रीणामपि च पार्वति ॥ स्नाने पाने कृते तस्मिञ्जरामरणनाशनम् ॥ ४५ ॥ सकृत्स्नातस्य तु फलं जनस्य शृणु पार्वति ॥ वाजपेयाश्वमेधानां पुष्कलं फलमश्नुते ॥ ४६ ॥ वाजपेयात्पुनर्जन्म सकृत्स्नातस्य न च्युतिः ॥

जल भर जानेसे वह मार्ग उत्तम सरोवर हो गया, जिसके दर्शन मात्रसे ही सब पाप दूर हो जाते हैं। दर्शन मात्रसे वह स्त्री और पुरुषोंको स्वर्ग देने वाला है। उस तीर्थमें स्नान और पान करनेसे मनुष्य जरा (बुढ़ापा) मरणसे छूट जाता है। हे पार्वती! उस तालावमें एक बार स्नान करनेसे मनुष्य जो फल पाता है, उसको सुनो—वह अनेक वाजपेय और अश्वमेध यज्ञोंका फल पाता है। वाजपेयसे तो फिर भी जन्म होता है, पर इसमें स्नान करनेवालोंको फिर जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ४७॥

तदूर्ध्वसरसि स्नातो वज्रतीर्थमिति स्मृते ॥ ४७ ॥ दशाधिकफलं लब्ध्वा शक्रलोकं स गच्छति ॥ वज्रतीर्थोर्ध्वतः कुण्डे विष्वक्सेनसरोवरे ॥४८ स्नातस्तु यस्तस्य फलं शताधिकमिनोरितम् ॥ एवं सप्तदशानां तु तीर्थानामधिकं फलम् ॥ ४९ ॥



वर्तमान जीर्णोद्धारित कापिल तीर्थ या चक्रतीर्थ (पृष्ठ १५०)

उस तालाबके ऊपर वज्र तीर्थके नामसे प्रसिद्ध सरोवरमें स्नान करनेसे इससे दशगुना अधिक फल मिलता है और वह इन्द्रलोकको जाता है। वज्रतीर्थके ऊपर विष्वक्सेन नामके कुण्ड (सरोवर) में स्नान करनेवालेको कपिलतीर्थसे सौ गुना अधिक फल मिलता है। इसी तरह क्रमसे सत्रहों तीर्थोंका अधिक अधिक फल है ॥ ४९ ॥

अथ कापिलाख्यचक्रतीर्थस्नानकालनिर्णयादिः

त्रैलोक्ये सर्वतीर्थानि कार्तिके मासि पर्वणि ॥ मध्याह्ने कापिले तीर्थे सान्निध्यं यान्ति पार्वति ॥५०॥ तिष्ठन्ति प्राणिरक्षार्थं मध्याह्ने दश नाडिकाः ॥ तत्र स्नातास्तु ये पापाः पुरुषा योषितो मले ॥५१॥ सर्वपापविनिर्मुक्ता ब्रह्मलोकं प्रयान्ति वै ॥ तत्र दानानि कुर्वन्ति ये नरास्तीर्थसन्निधौ ॥ ५२॥ तिलमात्रं हिरण्यं तु दत्तं मेरुसमं भवेत् ॥ भिक्षामात्रं तथान्नस्य दानं कापिलसन्निधौ ॥५३॥ कुर्वन्ति ये नरा देवि सोमलोकं व्रजन्ति ते ॥ कन्या गोभूप्रदातारो विद्यामन्त्रोपदेशकाः ॥ ५४ ॥ स्वर्गकैलासवैकुण्ठब्रह्मलोकान्व्रजन्ति ते ॥ वर्षे वर्षे तु कार्तिक्यां पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ ५५ ॥ आयान्ति सर्वतीर्थानि मध्याह्ने कापिलं सरः ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नातस्तत्फलमाप्नुयात् ॥५६॥ स्नानं तु दुर्लभं तत्र तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ इति ते कथितं सर्वतीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि पवनस्य तपो महत् ॥ ५८ ॥

इति श्री वामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यं चक्रादिसप्तदशतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायोऽत्र चतुर्थः ॥ ४ ॥

कापिल तीर्थमें स्नानकालका निर्णय।

हे देवी! त्रिलोकीमें जितने तीर्थ हैं, वे सब कातिकमास अमावास्या और पूर्णिमाके मध्याह्नमें कापिल तीर्थमें सन्निहित होते हैं और प्राणियोंकी रक्षाके लिये वहां दश निमेष रहते हैं। वहांपर जो पापी स्त्री और पुरुष स्नान करते हैं वे निःसन्देह सब पापोंसे छूट कर ब्रह्मलोकको चले जाते हैं। जो मनुष्य वहांपर तीर्थोंके समीप दान करते हैं, उनका दिया हुआ तिलमात्र सुवर्ण और भिक्षामात्र अन्न भी मेरु पर्वतके समान हो जाता है। जो अन्नका दान करते हैं, वे चन्द्रलोकमें जाते हैं। कन्यादान करनेवाले स्वर्गमें, गोदान करनेवाले कैलासमें, भूमिदान करनेवाले वैकुण्ठमें तथा विद्या और मन्त्रके उपदेशक ब्रह्मलोकमें जाते हैं। प्रतिवर्ष कातिकमासकी महातिथि पूर्णिमाके दिन मध्याह्नमें सभी तीर्थ कापिलतीर्थके समीप आते हैं। उस समय जो मनुष्य "स्नानं तु दुर्लभं तत्र तद्विष्णोः परमं पदम्"

इस मंत्रका उच्चारण कर स्नान करता है वह उक्त फलको पाता है। उस विष्णु भगवान्के परम पद कापिल-तीर्थमें स्नान बड़ा दुर्लभ है। हे देवी! मैंने तुमको सब तीर्थोंका माहात्म्य कह दिया, अब इसके आगे पवन-की महती तपस्याके सम्बन्धमें कहता हूं ॥ ५० ॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः



प्रभुदेशसे वायुने, कठिन तपस्या कीन्ह।
तेहि ते प्रादुर्भाव प्रभु, वायु विनय बहु कीन्ह ॥१॥
निज सन्निधि नित रहनका, ताहि दिये वरदान।
उमा ईश शेषाद्रिपर, रहन धाम निर्मान ॥२॥
चक्र तीर्थमें चक्रको, करत तपस्या देख।
तेहि ते शङ्करका कथन, चक्र सुदर्शन भेख ॥३॥
वाल्मीक आदिक मुनिन, वेङ्कट निकट प्रचार।
कथा अनेक विचित्र बहु, वर्णित यहां विचार ॥४॥

अथ भगवन्तमुद्दिश्य वाय्वादिकृततपःप्रकारः

शङ्कर उवाच—

वायोस्तपःप्रभावं तु शृणु देवि ततः प्रिये ॥ ग्रीष्मे पञ्चतपा वायुर्वं-
पांसु भुवि तिष्ठति ॥ १ ॥ हेमन्ते शिशिरे चापि शेते स्वामिसरोजले ॥
एवं वर्षसहस्रान्ते देवदेवो जनार्दनः ॥ २ ॥ प्रादुर्भविष्यति हरिर्वायोः प्रिय-
चिकीर्षया ॥ ततः पश्चात्तु शङ्खस्य राज्ञः प्रियचिकीर्षया ॥ ३ ॥

शङ्करने कहा—हे प्रिये देवी ! अब तुम वायुकी तपस्याका प्रकार सुनो। वायु ग्रीष्मऋतुमें पाच अग्निके बीच तपता था और वर्षामें पृथ्वीपर खड़ा रहता था। हेमन्त और शिशिर ऋतुके चार महीने ठण्ढेमें स्वामिसरोवरके भीतर रहता था। इस तरह एक हजार वर्ष तप करनेपर वायुको सन्तुष्ट करनेकी इच्छासे देवाधिदेव भगवान जनार्दन हरि प्रकट हुए ॥ ३ ॥

विश्वविख्यातसुमहाप्रादुर्भावं करिष्यति ॥ सर्वलोकहितायैव शङ्ख-
व्याजेन वै हरिः ॥ ४ ॥ श्रीवेङ्कटाचले पुण्ये प्रादुर्भावं गमिष्यति ॥ तस्य
हेतोस्ततः पूर्वं कर्तुं च सुमहत्तपः ॥ ५ ॥ आवां तत्र गमिष्यावश्चिरका-
लादनन्तरम् ॥ गमिष्यन्ति सुराः सर्वे सह सर्वैर्महर्षिभिः ॥ ६ ॥ तदा
कुमारं द्रक्ष्यावो विष्णुभक्तिपरायणम् ॥

इसके बाद शंखराजाकी हितकामनासे भगवान विश्वमें विख्यात रूपसे प्रकट होंगे। शंखके व्याजसे संसारके कल्याणके लिये ही हरि भगवान् पवित्र पुण्य स्थान वेङ्कटाचलपर प्रकट होंगे। उनके प्रादुर्भावके पहले ही हम बहुत कालके बाद वहांपर तप करनेके लिये चलेंगे। सभी देवता समस्त महर्षियोंके साथ वहां जायेंगे उसी समय-विष्णु भगवान्की भक्ति करते हुए कुमार कार्तिकेयको भी हमलोग वहांपर देखेंगे ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा शङ्करेणाऽथ विरराम तदा सती ॥ ७ ॥ ततः कालेन महता
शङ्करो गमनोन्मुखः ॥ बभाषे पार्वतीं देवीं पुत्रदर्शनलालसाम् ॥ ८ ॥

भगवान् शङ्करके इस तरह कहनेपर पार्वती चुप हो गयीं। इसके बाद बहुत दिन बीत जानेपर एक दिन वेङ्कटाचलपर जानेकी इच्छासे, पुत्र दर्शनके लिये इच्छुक पार्वतीसे भगवान् शङ्करने कहा ॥ ८ ॥

शङ्कर उवाच—

अयं स कालः सम्प्राप्तो यः पुरा ते मयोदितः ॥ श्रीवेङ्कटाह्वयं
गन्तुं महापुण्यं नगोत्तमम् ॥ ९ ॥ इति संस्मारिता देवी तदा पप्रच्छ
शङ्करम् ॥

शङ्कर बोले—हे पार्वती ! हमने जो तुमसे पहले पर्वत श्रेष्ठ महापुण्य श्रीवेङ्कटाचलपर चलनेको कहा था वह समय अब आ गया है। शङ्करके इस प्रकार याद दिलानेपर पार्वतीने पूछा ॥ १० ॥

पार्वत्युवाच—

किं नु वायोस्तपः पूर्णं प्रादुर्भूतः किमीश्वरः ॥१०॥ कथं प्रत्यक्षतां
यातो वायोर्नारायणो हरिः ॥ किं नु तस्मै वरं प्रादात्तत्सर्वं शंस मे
विभो ॥ ११ ॥ इति पृष्टो महादेवः पार्वतीमब्रवीत्तदा ॥

हे शङ्कर ! क्या वायुका तप पूर्ण हो गया ? क्या ईश्वर प्रकट हो गये ? हे विभो ! श्री हरि भगवान वायुके सामने किस तरह प्रकट हुए ? और वायुको भगवानने क्या वरदान दिया ? ये सब बातें कहिये । पार्वतीके ऐसा पूछने पर शङ्करने कहा ॥१२॥

शंकर उवाच—

चचार खलु वै वायुर्दारुणं सुमहत्तपः ॥ १२ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते देवदेवो जनार्दनः ॥ प्रादुर्बभूव भगवान् परमात्मा सनातनः ॥१३॥ श्रीभूमिसहितो देवो गरुडोपरि संस्थितः ॥ सशेषः शङ्खचक्राभ्यामन्वितः शार्ङ्गबाणधृक् ॥ १४ ॥

शङ्करजी बोले—हे देवि ! वायुने बड़ा भारी उग्र तप किया ॥

वायुके कठिन तप करते एक हजार वर्ष बीत जाने पर श्री और भूमि सहित गरुड़पर बैठे हुए शेषके साथ शङ्ख, चक्र, और धनुष बाणको लिये हुए देवादिदेव सनातन परमात्मा जनार्दन प्रकट हुए ॥ १४ ॥

तं दृष्ट्वा विस्मितो भूत्वा वायुः सर्वात्मगोचरः ॥ आसनादुदतिष्ठत्स मत्तोन्मत्त इव भ्रमन् ॥ सम्पतन्नुत्पतन्हर्षान्नृत्यन्विभ्रमन्नपि ॥ अद्भुतं किमिदं दृष्टं वृषभाद्रौ मयाऽद्य वै ॥ १६ ॥ इत्युन्मादाद्विसंज्ञोऽभून्मुहूर्तं परमेश्वरि ॥ उदतिष्ठत्ससञ्ज्ञोऽथ ददर्श हरिमञ्जसा ॥ १७ ॥ यो देवैश्च तपोभिश्च योगिभिर्मुनिभिस्तथा ॥ द्रष्टुं शक्यो न देवैस्तु तमपश्यत्सनातनम् ॥ १८ ॥ प्रणनाम पुनश्चापि साष्टाङ्गं पुरुषोत्तमम् ॥ वायुस्तुष्टाव गिरिजे भगवन्तं जनार्दनम् ॥१९॥ तत्त्वार्थयुक्तया वाचा वेदवेद्यं सनातनम् ॥

सर्वान्तर्यामी वायु परमात्माको देख कर महा आश्चर्यसे युक्त हो कर आसनसे उठ खड़ा हुआ और भ्रममें उन्मत्तके समान घूमने, आनन्दसे कभी गिरते, कभी उठने, कभी नाचते और घूमने लिगे आज मैंने वृषभाचल पर यह ऐसा अद्भुत रूप देखा है । ऐसा विचारते , हे परमेश्वरी ! वायु उन्मादसे मुहूर्तभर बेसुध रहा । तब वायु सचेत हो कर उठ गया और हरिको अपने सामने अकस्मात् देखा । जो देव तप, योगि और मुनियों द्वारा भी नहीं देखे जाते, उस सनातन परमात्माको वायुने देखा । हे गिरिजे ! वायुने बार बार पुरुषोत्तम भगवानको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और यह तत्त्वभरी वाणीसे वेदादिवेद्य सनातन भगवानकी स्तुति करने लगा ॥ २० ॥

अथ प्रादुर्भूतं भगवन्तमुद्दिश्य वायुकृतविश्वरूपस्तुतिः

वायुरुवाच—

नमस्ते देवदेवेश पुराण पुरुषोत्तम ॥ २० ॥ श्रीपरानन्त गोविन्द

जिष्णवे विष्णवे नमः ॥ एकस्त्वं पुरुषः साक्षादादौ मायासमन्वितः ॥२१॥
जगदेकार्णवीकृत्य शेषे सागरसम्भवे ॥ त्वन्नाभिपङ्कजोद्भूतो ब्रह्मा ब्रह्म-
विदां वरः ॥ २२ ॥ येनेदं जगदुत्सृष्टं चराचरसमन्वितम् ॥

वायुने कहा—हे देवदेव! स्वामिन्! पुराण पुरुषोत्तम! आपको नमस्कार है। हे श्री धर! अनन्त! गोविन्द! जयशील आप विष्णुको नमस्कार है। हे भगवन्! आप ही एक एवं आदि कालमें मायासे युक्त परमात्मा हैं। हे भगवन! आप ही समस्त संसारको जलमय करके उसमें शयन करते हैं। आप हीके नाभिकमलसे ब्रह्मतत्त्वको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्मा उत्पन्न हुए। जिन्होंने चल अचल सारे संसारकी रचना की है॥ २३॥

रजोगुणं समाश्रित्य जगत्सृष्टं त्वया विभो ॥ २३ ॥ सत्त्वं गुणं
समाश्रित्य रक्ष्यते ह्यखिलं जगत् ॥ तमोगुणं समाश्रित्य ह्रियते च पुन-
स्त्वया ॥ २४ ॥ जातास्त्वयि ब्रह्मरूपे ते प्रजापतयो नव ॥ येभ्यः सम्भूत-
मेतत्तु दैवमानुषराक्षसम् ॥ २५ ॥ मधुकैटभहन्ता त्वं सम्प्राप्ते ब्रह्मसङ्कटे ॥
ततोऽसुरं सोमकाख्यं हत्वा वेदं च तत्करात् ॥ २६ ॥ गृहीत्वा ब्रह्मणे
प्रादा मीनरूपी महेश्वरः ॥

हे विभो! आप ही रजोगुणको आश्रय करके संसारकी रचना करते हैं और सत्त्वगुणको आश्रय ले कर उसकी रक्षा करते हैं, फिर तमोगुणको अवलम्बन कर आप ही संसारका नाश करते हैं। ब्रह्मरूप आप ही से नौ प्रजापति हुए। आपने ही देव, मनुष्य और राक्षस आदि इस जगत्‌की रचना की है। ब्रह्मापर संकट पड़ने पर आप ही ने मधु और कैटभ राक्षसोंका विनाश किया था। बादमें मत्स्यरूप हो कर आपने ही सोमकनामक राक्षसका वध करके उसके हाथोंसे वेदोंको छि कर ब्रह्माजीको दिया॥२७॥

निराधारे जगत्यस्मिन्निरालम्बे चराचरे ॥ २७ ॥ आधारः कूर्मरूपी
त्वं पुरुषोत्तम तिष्ठसि ॥ गतामुद्धृत्य पातालं भुवं सगिरिकाननाम् ॥२८॥
वोढाऽसि पोत्रिरूपेण त्वं महात्मा सनातनः ॥ पुनः कृतयुगादौ तु हिरण्या-
ख्येऽसुरे सति ॥ २९ ॥ सैंहीं प्रह्लादरक्षार्थं नरार्धतनुमुद्वहन् ॥ स्तम्भात्का-
लायसाज्जातो विदार्याथ महासुरम् ॥ ३० ॥ लक्ष्मीमालिङ्ग्य भगवन्
रक्षिता त्वं जगत्त्रयम् ॥

इस निराधार एवं निरवलम्ब चराचर संसारके, हे पुरुषोत्तम! कूर्मरूपी हो आप ही आधार हैं। वराह अवतार लि कर डूबी हुई पर्वतों और वनों सहित पातालमें पृथ्वीको धारण करने वाले महात्मा सनातन आप ही हैं।

कृतयुगमें हिरण्याक्ष राक्षसके रहते हुए प्रह्लादकी रक्षाके लिये आधा मनुष्य और आधा सिंह ऐसा नरसिंहरूप धारण करके काले लोहके खम्भेसे प्रकट हो कर उस राक्षसराजको विदारण कर फिर लक्ष्मीका आलिङ्गन कर तीनों लोकोंकी रक्षा करनेवाले आपही हैं ॥ ३१ ॥

अथ कालान्तरे विष्णो यागे वैरोचनेर्विभो ॥३१॥ त्वमिन्द्रचोदितो
देव वामनो वाग्मिनां वरः ॥ पदानि त्रीणि याचित्वा प्रतिगृह्य महाबलेः ३२॥
आक्रम्य भूर्भुवो लोकान्दत्त्वेन्द्राय जगत्त्रयम्॥ चन्द्रमण्डलमासाद्य पद्मासन-
गतो विभो ॥ ३३ ॥ अमृताऽन्नाधिपो विष्णो जगत्पासि चराचरम् ॥

इसके बाद कुछ काल बीतनेपर राजा बलिके यज्ञमें इन्द्रकी प्रेरणासे वक्ताओंमें श्रेष्ठ आप ही वामनरूपसे अवतीर्ण हो, विरोचनके पुत्र अति पराक्रमी राजा बलिसे तीन पैर पृथ्वी मांग कर नापते समय भूलोक और भुवर्लोक तक आक्रमण करके तीनों लोकोंको इन्द्रको दे कर चन्द्रमण्डलमें हे विभो ! आप ही पद्मासनपर आ विराजे, और वहांपर आप ही अमृत और अन्नके स्वामी हो कर संसारकी रक्षा कर रहे हो ॥ ३४ ॥

जामदग्न्यो महाबाहो राक्षसान् राजरूपिणः ॥ ३४ ॥ हत्वा तद्रक्त-
कुण्डेषु कृत्वा पितृजलक्रियाम् ॥ महीं निःक्षत्रियां कृत्वा यज्ञं कृत्वाऽऽश्व-
मेधिकम् ॥३५॥ दक्षिणार्थं महीं दत्त्वा कश्यपाय जगत्प्रभो ॥ गत्वा महो-
दधिं तत्र समुद्रेण कृतालयः ॥ ३६ ॥ सह्याद्रौ रमणीये त्वं तपश्चरसि
भार्गवः ॥

हे महाबाहो ! आप परशुराम अवतार लेकर राक्षसरूपी राजाओंको मार कर उनके रक्तसे भरे हुए कुण्डोंमें पितृतर्पण किये । हे जगत्के स्वामिन् ! आपहीने पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर अश्वमेध यज्ञ कर उसकी दक्षिणामें संपूर्ण पृथ्वीको कश्यपको दिया, फिर समुद्र तटपर जा कर, मनोहर सह्याद्रि पर्वतपर तप कर रहे हैं ॥ ३७ ॥

रावणे राक्षसे देव सम्भूते देवकण्टके ॥ ३७ ॥ ततस्त्रेतायुगे जिष्णो
रामो दाशरथिः स्वयम् ॥ लक्ष्मणानुचरो भूत्वा भार्याहर्तारमाहवे ॥३८॥
सपुत्रपौत्रं सगणं सामात्यं संहरिष्यसि ॥

देवताओंको बाधा देनेवाले राक्षस रावणके उत्पन्न हो जानेपर त्रेता युगमें हे जिष्णो ! आप ही स्वयं दशरथके पुत्र राम हो कर लक्ष्मणको साथ ले अपनी भार्या सीताको चुरानेवाले राक्षसराज रावणका पुत्र, पौत्र और मन्त्रिगणों सहित संहार करोगे ॥ ३९ ॥

बलभद्रोऽथ कृष्णस्त्वं वासुदेवः सनातनः ॥३९॥ कल्यन्ते कल्किरूपो
च भवितासि त्रिलोकधृक् ॥

आदित्यानां च विष्णुस्त्वं ज्योतिषां त्वं प्रभाकरः ॥ ४० ॥ वसूनां पावकश्च त्वं रुद्राणां शम्भुरुत्तमः ॥ ग्रहाणां च बुधोऽसि त्वं देवानां बलभिद्भवान् ॥ ४१ ॥ सिद्धानां कपिलोऽसि त्वं देवर्षीणां च नारदः ॥ यज्ञानां जपयज्ञोऽसि तपश्चासि तपस्विनाम् । ४२ ॥ यक्षाणां च धनेशस्त्वं यमः संयमतां भवान् ॥ मत्स्यानां मकरोऽसि त्वं वरुणो यादसां पतिः ॥ ४३॥ आपगानां च गङ्गा त्वं सरसां सागरो भवान् ॥ वायूनां प्राणवायुस्त्वं विधातॄणां चतुर्मुखः ॥४४॥ वर्णानां ब्राह्मणश्च त्वमाश्रमाणां गृही भवान् ॥ तारकाणां च चन्द्रस्त्वमिन्द्रियाणां मनो भवान् ॥ ४५ ॥ सिंहोऽसि त्वं मृगाणां च गजेन्द्रोऽसि चतुष्पदाम् ॥

आप ही बलराम तथा वासुदेव सनातन श्रीकृष्ण रूपसे अवतार लेंगे, और कलिके अन्तमे आप ही कल्किरूप हो कर संसारकी रक्षा करेंगे। आप आदित्योंमे विष्णु, तेजोंमे सूर्य, वसुओंमे अग्नि,रुद्रोंमे शम्भु, ग्रहोंमे बुध, देवताओंमें इन्द्र, सिद्धोंमें कपिल, देवर्षियोंमें नारद, यज्ञोंमे जपयज्ञ, तपस्वियोंमे तप, यक्षोंमें धनेश, यमियोंमें यम, मत्स्योंमें मकर, जलपतियोंमे वरुण, नदियोंमे गङ्गा, तालाबोंमें समुद्र, वायुओंमें प्राणवायु, विधाताओंमे चतुर्मुख ब्रह्मा, वर्णो में ब्राह्मण, आश्रमोंमे गृहस्थ, ताराओंमे चन्द्रमा, इन्द्रियोंमे मन, मृगोंमे सिंह, और पशुओंमे हाथी हैं ॥ ४६ ॥

द्विपदां ब्राह्मणश्चासि पक्षिणां गरुडो भवान् ॥ ४६ ॥ वासुकिस्त्वं तु सर्पाणां विषाणां कालकूटकम् ॥ नागानां त्वमनन्तोऽसि मेरुस्त्वं कुलभूभृताम् ॥ ४७ ॥ गिरीणां हिमवांश्च त्वं वेदानां सामरूपधृक् ॥ छन्दसामपि गायत्री मन्त्राणां प्रणवो भवान् ॥४८॥ पशूनां सुरभिश्च त्वं हुतभुग्यज्ञभोजिनाम्॥ अचराणां गिरिश्च त्वं वृक्षाणां पिप्पलो भवान् ॥४९॥ सेनानीनां भवान् स्कन्दः क्षमा शौर्यवतां भवान् ॥ बीजानामङ्कुरश्चासि प्राणिनां प्राणधृग्भवान् ॥५०॥ ब्रह्मर्षीणां वसिष्ठस्त्वं चरतां पवनो भवान् ॥ महर्षीणां भृगुश्च त्वं व्यासो वेदविदां भवान् ॥५१॥ वाल्मीकिश्च कवीनां त्वं जनानां त्वं जनेश्वरः ॥

आप मनुष्योंमे ब्राह्मण, पक्षियोंमें गरुड, सर्पो मे वासुकि, जहरोंमें कालकूट, नागोमे अनन्त, कुलाचलोमे सुमेरु पर्वत, पहाडोंमे हिमालय, वेदोंमे सामवेद, छन्दोंमे गायत्री, मंत्रोंमें ओंकार, पशुओंमे काम धेनु, यज्ञभोक्ताओंमे अग्नि, स्थावरोंमे पर्वत, वृक्षोंमे पीपल, सेनापतियोंमें स्वामि कार्तिकेय, शूरवीरोंमे क्षमा, बीजोमे अंकुर, प्राणियोंमे प्राणधर,

ब्रह्मर्षियोंमें वसिष्ठ, चलनेवालोंमें वायु, महर्षियोंमें भृगु, वेदज्ञोंमें व्यास कवियोंमें वाल्मीकि और मनुष्योंमें राजा हैं ॥ ६२ ॥

यत्सत्त्वं सर्वलोकेषु तेजोबलसमन्वितम् ॥५२॥ तद्भवानिति विज्ञेयमिति ब्रह्मविदो विदुः ॥

समस्त संसारमें तेज या बलयुक्त जो कुछ सत्त्व या वस्तु है सब आप हीके स्वरूप जानना चाहिये ऐसा ब्रह्मविद् कहते हैं ॥ ५३ ॥

सहस्रशिरसे तुभ्यं पुरुषाय नमो नमः ॥ ५३ ॥ भुजासहस्रयुक्ताय ते सहस्रपदे नमः ॥ नानाविधानि देव त्वदायुधानि सहस्रशः ॥५४॥ दीप्यमानानि सर्वाणि द्योतयन्ति दिशो दश ॥ वक्त्राणि तव तीव्राणि दंष्ट्राप्रतिभयानि च ॥ ५५ ॥ बालार्कमण्डलाकारकुण्डलाभ्यां विभान्ति वै ॥ त्वत्पादाम्भोरुहैरेतैः सहस्रैर्भाति ते पदम् ॥ ५६ ॥ बालार्कद्युतिसम्भिन्नरक्ताम्भोजैरिवाञ्चितम् ॥

हजारों मस्तकवाले पुरुषरूप आपके लिये नमस्कार है। हजारों भुजा और सहस्रों चरणवाले आपके लिये बार बार नमस्कार है। हे देव ! आपके अनेक प्रकारके चमकते हुए हजारों हथियार दशों दिशाओंको प्रकाशित करते हैं। आपके टेढ़े दाढ़ोंसे भयङ्कर और तीक्ष्ण मुख बालसूर्यके मण्डलाकार कुण्डलोंसे शोभित हैं। बालसूर्यकी कान्तिसे युक्त लालकमलोंसे मानो युक्त आपके सहस्रों चरण कमलोंसे आपका पद भूषित हैं ॥ ५६ ॥

पृथिवी पूरिता पद्भिराकाशं मूर्धभिस्तव ॥ ५७ ॥ बाहुभिश्च दिशो व्याप्ता महाविष्णो नमोऽस्तु ते॥ वेदास्तवैव निःश्वासाश्चन्द्रसूर्यौ तवाक्षिणी ॥५८॥ ज्योतिष्कणाश्च ताराणि जगद्रूप नमोऽस्तु ते ॥ कलाकाष्ठामुहूर्तादिदिनरात्रिशरीरिणे ॥ ५९ चतुर्युगाय कालाय नमोऽनन्ताय ते विभो ॥

आपके पैरोंसे पृथ्वी और मस्तकोंसे आकाश व्याप्त है, भुजाओंसे दिशायें व्याप्त है ; हे महाविष्णो ! आपको नमस्कार है। हे भगवन् ! वेद आप ही के निःश्वास है। चन्द्र और सूर्य आपके नेत्र हैं। नक्षत्र आपके तेजके कण हैं। हे जगत्स्वरूप ! आपको नमस्कार है। कला, घड़ी, मुहूर्त और दिन रात आपका शरीर है। हे विभो ! चारों युग एवं अनन्त कालरूप आपको नमस्कार है ॥ ५९ ॥

कालश्च कालरूपो च कालात्मा कालकारणम् ॥ ६० ॥ कालविध्विरंशस्त्वं विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥ अनादीनि च भूतानि महान्ति मधु-

सूदन ॥ ६१ ॥ तव मूर्तानि रूपाणि भूतभावन ते नमः ॥ प्राणात्मा
प्राणधृक् प्राणी साक्षी त्वं सर्वकर्मणाम् ॥ ६२ ॥ नित्यः सर्वगतः स्थाणुर-
चलस्ते नमो नमः ॥ शरीरभृच्छरीरी त्वं शरीरात्मा शरीरगः ॥ ६३ ॥
शरीरकर्मणाऽस्पृष्टः शुद्धमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥

आप त्रिकालदर्शी, कालरूप, कालात्मा, कालके कारण हैं। एवं कालके जाननेवालोंसे भी नहीं जानने योग्य हैं। हे विश्वमूर्ते ! आपको नमस्कार है। हे मधुसूदन ! जिनका आदि और अन्त नहीं है ऐसे मूर्तरूप पञ्च महाभूत आप हीके हैं। हे भूतभावन ! आपको नमस्कार है। आप प्राणात्मा, प्राण धारण करनेवाले, सब कर्मोंके साक्षी, नित्य, सर्वव्यापी, स्थिर और अचल हैं। आपको नमस्कार है। आप शरीरधारण करनेवाले, शरीरी, शरीरात्मा, और शरीर-व्यापी तथा शरीरसे होनेवाले कर्मोंसे अलग हैं। हे विशुद्धरूप ! आपको नमस्कार है ॥ ६४ ॥

अणीयसामणीयांस्त्वं महीयांश्च महीयसाम् ॥ ६४ ॥ बृहतां च
बृहच्च त्वं विश्वमूर्ते नमोऽस्तु ते ॥ खस्थस्त्वं खगुणश्चापि खगुणातीत एव
च ॥ ६५ ॥ खमूर्तिः खगतिश्चासि खगेशारूढ ते नमः ॥ ज्ञानात्मा ज्ञान-
दृग्ज्ञानी ज्ञानं ज्ञानवतां भवान् ॥ ६६ ॥ ज्ञानविद्भिरविज्ञेयस्तुभ्यं ज्ञेयात्मने
नमः ॥ वेदात्मा वेदविद्वेद्यो वेद्यो वेदविदां वरः ॥ ६७ ॥ वेदान्तवेद्यरू-
पाय ब्रह्मरूपाय ते नमः ॥

आप छोटेसे भी छोटे बड़ेसे भी बड़े और बृहतोंमेंभी आप बृहत हैं। हे विश्वमूर्ते ! आपको नमस्कार है। आप आकाशमें स्थित और आकाशके गुण हैं। शब्दसे भी आप परे हैं। आप आकाशकी मूर्त्ति और आकाशके गतिवाले हैं। हे गरुड़वाहन ! आपको नमस्कार है। आप ज्ञानरूप, ज्ञानके देखनेवाले, ज्ञानी और ज्ञानियोंके भी ज्ञान हैं। ज्ञानी लोग भी आपको नहीं जान सकते, इस तरहसे ज्ञेयरूप आपको नमस्कार है। आप वेदरूप, वेदवेत्ता और वेदवेत्ताओंमें भी श्रेष्ठ हैं। वेदान्तवेद्य, ब्रह्मरूप आपको नमस्कार है ॥ ६८ ॥

अक्षरायाक्षराद्याय ह्यक्षराकारधारिणे ॥ ६८ ॥ क्षराक्षरविभक्तौ
द्वावतीताय च ते नमः ॥ नमो निरन्तरानन्दमूलकन्दाय जिष्णवे ॥ ६९ ॥
उष्णत्वमग्नौ शैत्यं च जले पृथ्व्यां च गन्धिता ॥ स्पर्शित्वं च भवान्वायौ
नैर्मल्यं खे नमोऽस्तु ते ॥७०॥ घनाः केशेषु नद्यस्ते भगवन् सर्वसन्धिषु ॥
कुक्षौ च सिन्धवः सप्त नमस्ते जलमूर्तये ॥ ७१ ॥

आप अक्षररूप एवं अक्षरोंके आदि और अक्षरोंके आकारको धारण करनेवाले हैं। क्षर और अक्षर दोनों

रूपोंसे आप विभक्त और दोनों रूपोंको उल्लङ्घन करनेवाले पुरुषोत्तम हैं। हे प्रभो! आपको नमस्कार है। निरन्तर आनन्द रूपसे रहनेवाले जयशील आपके लिये नमस्कार है। अग्निमें उष्णता, जलमें शीतलता, पृथ्वीमें सुगन्ध, वायुमें स्पर्श एवं आकाशमें स्वच्छता,यह सब आप ही हैं, आपको नमस्कार है। हे भगवन्! आपके वालोंमें मेघ, सन्धियोंमें नदियां, और कुक्षिमें सातो समुद्र हैं, जलमूर्ति आपको नमस्कार है॥

स्तोत्रैः स्तुताय स्तोत्राय स्तोत्रकृत्प्रियकारिणे॥ स्तोत्रज्ञेयाय स्तुत्याय स्तोत्ररूपाय ते नमः॥७२॥ अद्भुताकाररूपाय नमस्ते शार्ङ्गपाणये॥ भक्तप्रियाय शान्ताय भक्तचित्तानुवर्तिने॥७३॥ भक्तपापविनाशाय नमस्ते शार्ङ्गपाणये॥ रक्षाकराय जगतां रक्षोघ्ने राक्षसारये॥ ७४॥ श्रीवत्सवक्षसे तुभ्यं शार्ङ्गपाणे नमो नमः॥ श्रिया सरोजकरया सरोजान्तरवर्णया॥ ७५॥ दिव्याभरणविद्योतितदेहया दिव्यवेषया॥ पलाशश्यामया देव्या धरण्योत्पलहस्तया॥ ७६॥ संश्रितोभयपार्श्वाय नमस्ते शार्ङ्गपाणये॥

स्तोत्रोंसे स्तुति किये गये हुए, स्तोत्ररूप, स्तोत्र करनेवालोंके प्रिय करनेवाले एवं स्तोत्रोंसे जाननेयोग्य, स्तुति रूप आपको नमस्कार है। हाथमें धनुष बाण लिये हुए और अद्भुत आकारवाले आपको नमस्कार है। भक्तोंके प्रिय, शान्त, भक्तोंके वशमें रहनेवाले आपको नमस्कार है। भक्तोंके पापोंको दूर करनेवाले शार्ङ्गपाणि आपको नमस्कार है। संसारकी रक्षा और राक्षसोंके संहार करने वाले, राक्षसोंके शत्रु, आपको नमस्कार है। वक्षःस्थलमें श्रीवत्सको धारण करनेवाले तथा शार्ङ्ग हस्त आपको वार वार नमस्कार है। कमलके भीतरी भागके समान वर्णवाली, हाथमें कमल लिये हुए, दिव्य आभरणोंसे भूषित एवं दिव्य वेष धारण किये हुई श्रीदेवी तथा पलाशके समान श्याम एवं कमलको हाथमें लिये पृथ्वी देवी इन दोनोंसे दोनों पार्श्वोंमें सेवित आपको नमस्कार है॥ ७७॥

चराचराणि भूतानि भीतानि चलितानि वै॥७७॥ लभन्ते न स्थितिं देव भीमरूप नमोऽस्तु ते॥ युगान्तकालानलकोटितुल्य प्रभाभिरापूरितलोकजाल॥ रत्नाङ्गदालङ्कृतबाहुदण्ड नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रबाहो॥७८॥ नमोऽस्तु देवा अपि लोकपाला भूताविशेषेण विरूपनेत्र॥ विमानगास्ते प्रणमन्ति चैते प्रसीद देवेश जगन्निवास॥७९॥ पश्यामि देवेश तवैव देहे चराचराणीह गतागतानि॥ भूतानि चैतानि च भूतवास तपःप्रभावाच्च भवत्प्रसादात्॥ ८०॥

हे देव ! स्थावर, जङ्गम एवं सब प्राणी आपकी मायासे भीत और चञ्चल हो कर स्थिति नहीं पा रहे हैं। हे भीम ! आपको नमस्कार है। हे प्रलयकालीन करोड़ों अग्निके समान अपनी प्रभाओंसे सब लोकोंको पूरित करनेवाले ! हे रत्न एवं अङ्गदोंसे अलंकृत भुजावाले ! हे सहस्रबाहो ! आपको नमस्कार है। हे भयङ्कर नेत्रवाले परमात्मन् ! प्राकृत जीवके समान ही ये सब देवता और लोकपाल भी विमानोंमें बैठे हुए आपको प्रणाम करते हैं। हे जगन्निवास ! देवेश ! मैं चराचर प्राणिमात्रको आप होके शरीरमें तपकी महिमा एवं आपकी कृपासे देख रहा हूं। इनमेंसे तो कोई आ रहा है और कोई जा रहा है। हे देव ! आप प्रसन्न हों ॥ ८० ॥

अनेकरत्नान्वितभूषणानां प्रभाभिरादीपितलोकजाल ॥ तडिद्गणा-
लङ्कृतमेघकान्ते प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥८१॥ त्वदीयवक्त्राणि महा-
द्युतीनि कल्पान्तसूर्यानलसन्निभानि ॥ दंष्ट्राकरालानि महास्वनानि बिभे-
मि पश्यन् भगवन् प्रसीद ॥ ८२ ॥ ब्रह्मत्रिणेत्रप्रमुखांश्च देवान् सयक्षग-
न्धर्वमहोरगांश्च ॥ पश्यामि सर्वांस्तव देव देहे प्रसीद देवेश जगन्निवा-
स ॥ ८३ ॥ दिशो न जाने न लभे च शर्म सीदाम्यहो देववर प्रसीद ॥
भक्तानुकम्पिन् परमार्थरूप प्रसीद विष्णो भगवन् प्रसीद ॥ ८४ ॥

अनेक रत्नोंसे जड़े हुए आभूषणोंकी कान्तिसे संसारको प्रकाशित करनेवाले, हे बिजलियोंसे अलंकृत मेघके समान शरीरवाले, हे देवेश ! जगन्निवास ! आप प्रसन्न हों। हे भगवन् ! मैं प्रलयकालीन सूर्य और अनलके समान आपके मुखोंकी कान्ति एवं कराल दंष्ट्रा तथा भयङ्कर शब्दको देख और सुन कर डर रहा हूं। हे देवेश ! आप प्रसन्न हों। हे देवेश ! ब्रह्मा, शङ्कर आदि देवता और यक्ष गन्धर्व महोरग सबको मैं आपके शरीरसे देख रहा हूं। हे देव-श्रेष्ठ ! मैं दिशाओंको नहीं जानता और न कल्याण को ही पा रहा हूं। मैं दुःखी हो रहा हूं। हे भगवन् ! विष्णो ! भक्तानुकम्पिन ! परमार्थरूप ! आप मुझ पर प्रसन्न हों।

शंकर उवाच—

प्रसीदेति नमस्कृत्य वायुः प्राञ्जलिरास वै ॥ प्रीतोऽथ भगवान् विष्णुः
शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ८५ ॥ श्रीभूमिसहितो देवो वरदो वायुमब्रवीत् ॥ वरं
वृणीष्व भद्रं ते वायो यन्मनसेच्छसि ॥ ८६ ॥

शङ्कर बोले—हे पार्वती ! वायु, प्रसन्न हो ऐसा कह कर नमस्कार करके हाथ जोड कर बैठ गया। इसके बाद श्री और भूमि सहित, शङ्ख, चक्र, गदाधारी, वरद भगवान् विष्णु प्रसन्न हो कर बोले–कि हे वायु ! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारी जो इच्छा हो वर मांगो ॥ ८६ ॥

वायुरुवाच—

वरं न याचे देवेश श्रीनाथ परमेश्वर ॥ त्वत्सान्निध्यं ममैवेदं नित्य-
मस्तु रमापते ॥ ८७ ॥

वायु बोले—हे देवेश! श्रीनाथ! परमेश्वर! मैं और कोई वर नहीं चाहता। हे रमापते! केवल यही वरदान चाहता हूं कि मैं सदा आपके पास रहूं ॥ ८७ ॥

अथ वायुं प्रति भगवत्कृतानवरतस्वसान्निध्यवरप्रदानम्

शंकर उवाच—

एतच्छ्रुत्वा हरिः प्राह देवतानां च सन्निधौ ॥ ८८ ॥

शङ्कर बोले—हे पार्वती! भगवानने यह सुन कर देवताओंके समक्ष कहा ॥ ८८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

चतुःषष्टिं त्वयोक्तानां श्लोकानां यः पठन्नरः ॥ भुक्तिं मुक्तिं स
लभते मत्प्रसादान्न संशयः ॥८९॥ त्रिसन्ध्यं यः पठेद्भक्त्या पूजयन्मामन-
न्यधीः ॥ षण्मासान्मम सान्निध्यं लभते स न संशयः ॥ ९० ॥ तवास्तु
यद्यदिष्टं तद्देवानामपि दुर्लभम् ॥ अस्य स्कन्दकुमारस्य पूजनं मम नित्य-
शः ॥९१॥ आकल्पान्तं मया दत्तं तथा सान्निध्यमत्र वै ॥

श्री भगवान बोले—हे वायो! तुम्हारे कहे हुए चौसठ श्लोकोंको जो मनुष्य पाठ करेगा, वह मेरी कृपासे निःसन्देह भोग और मोक्ष दोनोंको पावेगा। एकाग्रचित्त हो कर भक्तिपूर्वक जो मनुष्य मेरी पूजा करता हुआ इस स्तोत्रको तीनों कालमें पढ़ेगा वह निश्चय छ मासके भीतर ही मेरा दर्शन कर सकेगा। हे वायो! देवताओंको भी दुष्प्राप्य तुम्हारा जो भी अभीष्ट मनोरथ होगा सब सिद्ध हो जायगा। कुमार स्कन्दको मैंने अपना पूजन और कल्पपर्यंत सान्निध्य दिया है ॥ ९२ ॥

शंकर उवाच—

वायुर्लब्ध्वा वरान्विष्णोर्ययावथ सुरालयम् ॥ ९२ ॥ आस्ते वृषाच-
ले देवः श्रीभूमिसहितोऽनघे ॥ अमलक्षालयो दृश्यो विहरन् गिरिमूर्ध-
नि ॥ ९३ ॥ नानाद्रुमलताकीर्णे सर्वर्तुगणसंयुते ॥ स्वामिवापीसमीपे तु
कोटिकन्दर्परूपवान् ॥९४॥ आस्ते लक्ष्म्या च धरया रमन्योडशवार्षिकः ॥

शङ्करने कहा - विष्णुसे वरदान पा कर वायु स्वर्गको चला गया। हे पार्वती निःष्पाप! श्री और भूमि-सहित भगवान् इस समय वृषभाचलपर हैं। वे अपने निवास स्थानके अप्रत्यक्ष हो जाने पर भी स्वयं प्रत्यक्ष हो कर पर्वतके शिखरपर अनेक प्रकारके वृक्ष और लताओंसे व्याप्त एवं ऋतुओंके सभी गुणोंसे युक्त स्वामिपुष्करिणीके समीप, करोड़ों कन्दर्पके समान रूपवान् सोलह वर्षकी अवस्थावाले हो लक्ष्मी और पृथ्वीके साथ क्रीड़ा करते हुए वहां विहार कर रहे हैं॥ ९५॥

दृष्ट्वा गुहोऽपि तं देवं चैत्रमासि शुभे तिथौ ॥ ९५ ॥ आराधयंस्त्रि-
सन्ध्यं वै देवगन्धर्वकिन्नरैः॥ नृत्यैरप्सरसां चैव गीतवादित्रनिःस्व-
नैः ॥ ९६ ॥ रमयंश्च रमानाथमुत्तरे गह्वरे गिरेः॥ कुमारधारिका नाम
यत्र निर्झरिणी शुभा ॥९७॥ मयूरवाहको देवि तस्यास्तीरे वसत्यहो ॥

यहींपर स्वामिकार्तिक भी चैत्र महीनेकी शुभ तिथिमें भगवान्का दर्शन कर तीनों काल उनकी अराधना करते, देव, गन्धर्व, किन्नरोंके साथ अप्सराओंके नाच गान और बाजेको सुनते एवं पर्वतकी उत्तरकी ओर गुफामें कुमारधारिकानामकी शुभ तलैयाके तटपर भगवान् लक्ष्मीपतिको जपते हुए अपने वाहनके साथ आनन्दसे निवास कर रहे हैं॥ ९८॥

ब्रह्महत्या तु या तस्य दुःसहा घोररूपिणी ॥ ९८ ॥ सा वृषाचलशृ-
ङ्गाग्रे दृष्टमात्रे बहिः स्थिता ॥ स कामयानः शेषाद्रौ नित्यसेवां हरेर-
सौ ॥ ९९ ॥ पुनरागमनं देवि षण्मुखो नाभिवाञ्छति ॥

स्कन्दकी भयङ्कर रूपवाली दुःसह ब्रह्महत्या तो उस पर्वतके शिखरमात्रके देखने ही छूट गयी। हे देवि! कुमार वहांपर नित्य हरिकी सेवाकी इच्छा करते हुए फिर यहां आनेकी कभी आकांक्षा ही नहीं करते॥ १००॥

अथ काले गते देवि बहुवर्षगणैर्युते ॥ १०० ॥ गरुत्मांस्तु वृषाद्रिं
तं काञ्चनं रत्नमण्डितम्॥ उद्धृत्याहं विष्णुलोकं गमिष्यामीत्यचिन्तय-
त् ॥ १०१ ॥ तज्ज्ञात्वा भगवान्विष्णुर्गरुडं त्वाह सुस्मितः ॥

हे देवि! इस बातके कई वर्ष बीत जानेपर एकबार गरुड़ने सोचा कि मैं इस रत्नजड़ित काञ्चनमय वृषमाचलको उखाड़ कर विष्णुलोकमें ले जाऊंगा। श्रीविष्णुने इस बातको जान कर चकित हो कर गरुड़से कहा॥ १०२॥

श्रीभगवानुवाच—

पक्षिराज महासत्त्व शृणु कारणमुत्तमम् ॥२॥ गरुत्मन्निह सर्वे वै

वसाम गिरिमूर्धनि ॥ त्वं गिरेर्दक्षिणं सानुमासाद्य वस नित्यशः ॥ ३ ॥
शेषागच्छ वसेह त्वं ताक्ष्याधः शैलरूपधृक् ॥ तावन्नित्यं मम प्रीत्यै शैल-
माश्रित्य सर्वतः ॥४॥ आकल्पान्तं वसामीह जगत्पालनकारणात् ॥

श्रीभगवान् बोले - हे महाबली पक्षिराज गरुड़! एक उत्तम बात सुनो—हम सभी इस पर्वतपर सदा निवास करेंगे। तुम इस पर्वतके दक्षिण शिखरपर जा कर सदाके लिये रहो। हे शेष! तुम आओ और यहां आ कर गरुड़के नीचे पर्वतका रूप धारण करके बसो। तुम मेरी प्रसन्नताके लिये इस पर्वतभरमें आश्रय किये रहो। मैं संसारके हित रक्षार्थ कल्प पर्यन्त यहां निवास करूंगा ॥ १०६ ॥

युगे युगे गिरिरयं नामानि विविधानि वै ॥ ५ ॥ गमिष्यति वराण्येव
वरदोऽयं वृषाचलः ॥ कृते वृषाद्रिं वक्ष्यन्ति त्रेतायां गरुडाचलम् ॥ ६ ॥
द्वापरे शेषशैलं च वेङ्कटाद्रिं कलौ युगे ॥ वेङ्कारोऽमृतबीजं तु कटमैश्वर्य-
मुच्यते ॥ ७ ॥ अमृतैश्वर्यसङ्गत्वाद्वेङ्कटाद्रिरिति स्मृतः ॥ विविधा मुनय-
श्चैव मनुष्याश्च युगे युगे ॥ ८ ॥ नारायणाद्रिं वक्ष्यन्ति नामभिर्विविधैर-
मुम् ॥ इत्याज्ञाप्य च तौ देवो रमया विहरन् सदा ॥९॥ आस्ते सुरासु-
रैर्वन्द्यः स्वामिपुष्करिणीतटे ॥

यह वरदायक वृषभाचलके प्रत्येक युगमें भिन्न भिन्न श्रेष्ठ नामको पावेगा। यह सत्युगमें वृषभाचल, त्रेतामें गरुड़ाचल, द्वापरमें शेषाचल, और कलियुगमें वेङ्कटाचल नामको पावेगा। "वें" यह अक्षर अमृतका बीजरूप है, "कट" यह ऐश्वर्यका नाम है। अमृत और ऐश्वर्य इन दोनोंके मिलनेसे यह वेङ्कटाद्रिके नामसे पुकारा जाता है। युग युगमें अनेक ऋषि और मनुष्य इस नारायण पर्वतके अनेक नामोंसे पुकारेंगे। हे देवि! इस तरह भगवान शेष और गरुड़को आज्ञा दे कर लक्ष्मीके साथ सर्वदा विहार करते हुए देव और असुरोंसे पूजित हो कर स्वामिपुष्करिणीके तट पर निवास करते हैं ॥ ११०॥

आवां गच्छाव तं शैलं गिरिजे गणसंयुतौ ॥ ११० ॥ नित्यं
वसाव तत्रैव पश्यन्तौ गुहमव्ययम् ॥ देवसेनापुलिन्दाभ्यां विहरन्तं वृषा-
चले ॥ ११ ॥

हे गिरिजे! चलो हम तुम अपने गणों सहित वहीं चलें और वहीं अक्षय, कुमार कार्तिकेयको देवसेना और पुलिन्दाके साथ वृषभाचलपर विहार करते हुए देखते वास करेंगे ॥ १११ ॥

अथ देव्या सहागतस्य शम्भोः शेषाचलादाग्नेयदिगवस्थानम्

नारद उवाच—

इत्युक्त्वा वृषमारूढः पार्वत्या सह शङ्करः ॥ सगणश्च ययौ स्कन्दं द्रष्टुं तं वृषभाचलम् ॥ १२ ॥ उषित्वा वसतीस्तिस्रो मार्गे पर्वतमूर्धसु ॥ आराधितस्तदा तत्र देवैः सोमो वृषध्वजः ॥ १३ ॥ स जगामास्थिकूटाख्यं वृषभाद्रौ सरोवरम् ॥ मृतानामस्थिकूटानि प्रक्षिप्तानि सरोवरे ॥ १४ ॥ येषां तु पूर्वरूपास्ते समुद्गच्छन्ति तज्जलात् ॥ तस्मात्तदस्थिकूटाख्यामागच्छत्सर उत्तमम् ॥ १५ ॥

पार्वतीदेवीके साथ शङ्करजीका शेषाचलके अग्निकोणमें रहना

नारदजी बोले—इतना कह कर भगवान शङ्कर पार्वती सहित नन्दीश्वरपर चढ़ कर अपने गणों सहित स्कन्दको देखनेके लिये वृषभाचलपर गये। मार्गमें वे तीन बस्तियोंमें पर्वतोंके शिखरपर निवास करके वहां देवताओंसे पूजित हो कर फिर भगवान शङ्कर वृषभाचलपर अस्थिकूट नामक तालावपर गये। जिन मरे हुए पुरुषोंको अस्थियोंका समूह उस सरोवरमें फेंका जाता है, पहिलेके समान रूपमें वे मनुष्य उससे फिर निकलते हैं। इसीसे वह तालाव अस्थिकूटके नामसे प्रसिद्ध है ॥ १५ ॥

अवरुह्य च तत्तीरे वृषभादुमया सह ॥ स्नात्वा तीर्थे महादेवः पार्वत्या सह शूलभृत् ॥ १६ ॥ नत्वा श्रीशं वृषाद्रीशं दृष्ट्वा स्कन्दं ततः परम् ॥ मयूरवाहनं बालं सोमः सोमकलाधरः ॥ १७ ॥ आससाद सरोमुख्यं शिवः स्वामिसरस्ततः ॥

उस तालाबके किनारे पार्वतीके साथ शूलधारी शिवजी नन्दीश्वरसे उतर और उस तालाबमें स्नान कर वृषभाचलके स्वामी लक्ष्मीपतिको प्रणाम कर मयूरवाहन कुमारकार्तिकेयको देख फिर वहांसे आगे बढ़ करके श्रेष्ठ स्वामिपुष्करिणीपर आ पहुंचे ॥ १७ ॥

स्नात्वा श्रीशाभ्यनुज्ञातः पूर्वदक्षिणतो गिरेः ॥१८॥ कपिलस्य सरस्तीरे कापिलं लिङ्गमुत्तमम् ॥ अपश्यद् वृषभारूढश्चक्रपूजितमत्र वै ॥१९॥ प्रादुर्बभूव सगणः सुदर्शनपुरः शिवः ॥

वहां पर स्नान कर भगवानकी आज्ञा ले कर उन्होंने उस पर्वतके पूर्वदक्षिण अर्थात् अग्निकोणमें कपिलसरोवरके पास सुदर्शन चक्रसे पूजित कपिललिङ्गको देखा। फिर वहां अपने गणों सहित शिवजी सुदर्शन चक्रके सन्मुख प्रकट हुए ॥ १२० ॥

अथ चक्रतीर्थे तपस्यन्तं सुदर्शनं प्रति शङ्करवचनम्

दृष्ट्वा सुदर्शनो देवो नत्वा बद्धाञ्जलिः स्थितः ॥ १२० ॥ प्रीतोऽथ भ-
गवानाह सुदर्शनमुमापतिः ॥ प्रीतस्ते तपसा चक्र यदभीष्टं वृणीष्व
ते ॥ २१ ॥ ददामि देवैरपि यत्प्रार्थितं दुर्लभं च तत् ॥ सुदर्शनो वरं वव्रे
ज्ञात्वा प्रीतं च शङ्करम् ॥ २२ ॥ यदि प्रीतो गिरीश त्वमन्तरात्मनि मे
वस ॥ नित्यं भीमश्च सौम्यश्च वरदो मृत्युहा भव ॥ २३ ॥

चक्रतीर्थमें सुदर्शनजीके प्रति शङ्करजीका वचन

सुदर्शन, भगवान शङ्करको देख कर हाथ जोड़ कर खड़ा हो गया। भगवान उमापति प्रसन्न हो कर सुदर्शनसे बोले कि, हे चक्र! मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हूं। जो इच्छा हो वर मांग लो। जिस वस्तुके लिये देवता तरसते हैं वह दुर्लभ वस्तु भी हम तुम्हें देंगे। तब सुदर्शनने शङ्करको प्रसन्न जान कर वर मांगा कि–हे कैलासनाथ! यदि आप प्रसन्न हैं, तो आप मेरी अन्तरात्मामें निवास करें और सदा भीम, शान्त, वरदायी और मृत्युको नाश करनेवाले हों।

नारद उवाच—

गिरीशः प्राह सुप्रीतः कालचक्रमनुत्तमम् ॥ हेतिराज महाबाहो प-
र्याप्तं तपसा तव ॥२४॥ विष्णोर्वरप्रसादेन स्नेहो मयि तवाधिकः ॥ प्रागेव
दर्शितः सम्यग् वाच्यं तत्र न किञ्चन ॥२५॥ दृष्टवानहमद्य त्वां मां प्रीण-
यसि किं पुनः ॥ तदलं तपसा देव नावयोर्विद्यतेऽन्तरम् ॥ २६ ॥ अन्त-
रात्मनि ते वासः प्रार्थितो यत्त्वयाऽनघ ॥ तदशक्यं महाचक्र विष्णोरन्य-
स्य कस्यचित् ॥२७॥ अन्तरात्मा हि सर्वेषामेको नारायणः प्रभुः ॥ स्नेहा-
तिशयतस्त्वेवं भवानाहेति मे मतिः ॥ २८ ॥

नारदजी बोले—शिवजीने प्रसन्न हो कर उत्तमसे भी उत्तम कालचक्रसे कहा—हे महाबाहो! आयुधराज! अब तुम अपने तपको समाप्त करो। श्री विष्णुके अनुग्रह और वरदानसे तुम पहिले से ही हमारे ऊपर अधिक प्रेम दिखा रहे हैं, इसमें कोई छल कपटकी बात नहीं है। आज मैंने तुमको देख लिया है तुमको देखनेसे हम सन्तुष्ट हो गये और फिर क्या चाहते हो? अब तपस्या करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। हे देव! तुम्हारे हमारेमें कोई अन्तर नहीं है। हे निष्पाप! तुमने अपनी अन्तरात्मामें मेरे निवास करनेकी जो प्रार्थना की हैं, यह तो श्री विष्णुके सिवाय दूसरेके लिये अशक्य है; क्योंकि सबकी अन्तरात्मा तो एक नारायण प्रभु ही हैं। मैं मानता हूं कि तुमने मुझ पर अति प्रेम होनेके कारण ही ऐसा कहा है॥ १२८॥

दक्षिणार्थं तु दत्तस्त्वं चिरमाकाङ्क्षितोऽपि यत् ॥ तत्रैवाशङ्कमानेन
हरिणा त्वमुदीरितः ॥ २९ ॥ प्रसाद्य पुनः शम्भुमित्याहूय महात्मना ॥
तदेतद्विदितं सर्वं मया योगबलेन वै ॥ १३० ॥ उपायश्चात्र दृष्टो मे त्वयि
वासो ममेप्सितः ॥ ममापि हि मतं तावत्त्वया निर्वर्त्यतां सखे ॥ ३१ ॥

सदा मेरे अभिमान होनेपर भी मैंने तुमको दक्षिणामे दे दिया था, उसी समय श्री हरिने बुला करके तुमसे कहा था कि तुम शङ्करको प्रसन्न करो। मैंने यह सब वृत्तान्त योगबलसे जान लिया था। मैंने एक उपाय सोचा है और वह यह है कि मुझे तुम्हारी अन्तरात्मामे निवास करना अभीष्ट है। हे सखे! मेरा अभिमत तुम करो ॥ १३१ ॥

शुद्धसत्त्वस्य तद्विष्णोः सर्वज्ञानमयं वपुः ॥ साक्षात्स्प्रष्टुमहं भीत-
स्तमोगुणसमाश्रयः ॥३२॥ वस्तव्यं च मया विष्णोर्दिव्यमङ्गलविग्रहे ॥ त्वा-
मेव तद्हं नित्यं विष्णोर्नित्यानपायिनम् ॥ ३३ ॥ अनुप्रविश्य तद्देहे वसि-
ष्यामि सुदर्शन ॥ एवं सति ममाभीष्टं प्रार्थितं च तवाद्भुतम्॥३४॥ उभयं
प्राप्यते तस्मात्कुरुष्व वचनं मम ॥ ज्वालामालावृतो नित्यं वह मां हृदये
स्थितम् ॥ ३५ ॥

बात यह है मैं तमोगुणाश्रित होनेके कारण शुद्धसत्त्व भगवान् विष्णुके सर्व ज्ञानमय शरीरका साक्षात् स्पर्श करनेमे डरता हू। मुझे भगवान् विष्णुके दिव्य मङ्गलरूप शरीरमे वास करना जरूरी है। इसलिये हे सुदर्शन! भगवान् विष्णुके समीप निवास करनेवाले तुम्हारे ही शरीरमें प्रवेश कर हम उनके शरीरमे नित्य निवास करेंगे। इस तरह करनेसे मेरा भी मनोरथ सिद्ध हो जायगा और तुम्हारी भी प्रार्थना सफल हो जायगी। इन दोनों अभीष्टोंकी सफलता मैं चाहता हूं। इसलिये मेरे वचनको सुनो और तुम ज्वालाओंके समूहसे युक्त हो कर मुझे अपनी अन्तरात्मामे नित्य धारण करो ॥ १३५ ॥

सुवर्णाभं शतभुजमष्टाविंशतिहस्तकम् ॥ अथवा षोडशभुजमष्ट-
बाहुं चतुर्भुजम् ॥ ३६ ॥ ज्वालाकेशं त्रिनयनं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ॥
अर्चयिष्यन्ति मां लोके वसन्तं त्वयि नित्यशः ॥३७॥ उपचारैस्तथा साङ्गैः
पीठे शैवे च वैष्णवे ॥ पुरुषा वा स्त्रियो वाऽपि भवन्तु फलभागिनः ॥३८॥
इति दत्त्वा वरं तस्मै वरदो वृषभध्वजः ॥ आस्ते तत्रेश्वरो नित्यमदृश्यः
सगणस्तटे ॥ ३९ ॥

सुवर्णके समान कान्तिमान, सौ, अट्ठाइस, सोलह, आठ या चार भुजावाले, ज्वालाकेश, तीन नेत्रवाले एवं तुम्हारे हृदयमें निवास करते हुए मुझको ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों रूपमें जो मनुष्य या स्त्री साङ्ग उपचारोंसे शैव या वैष्णव पीठपर पूजा करेंगे वे फलके भागी होंगे। वरदायी वृषभध्वज भगवान् शङ्कर इस तरह वर प्रदान करके अपने गणोंके साथ वहीं तटपर अप्रत्यक्ष रूपमें रहते हैं ॥ १३९ ॥

वरं लब्ध्वाथ चक्रोऽपि पद्मायुधसरो ययौ ॥ आसाद्य स्वं सरोऽदृश्य-
स्तपश्चरति नित्यशः ॥ १४० ॥

सुदर्शन चक्र भी शिवजीसे वर पा कर पद्मायुध सरोवरपर चला गया। कालचक्र अपने सरोवरपर जा कर अदृश्य रूपसे नित्य तप कर रहा है ॥ १४० ॥

शतानन्द उवाच—

श्रुत्वैतन्मुनयः प्रीता आख्यानं नारदेरितम् ॥ सार्द्धं वाल्मीकिना
सर्वे जग्मुस्तं वृषभाचलम् ॥ ४१ ॥ अहं तैरभ्यनुज्ञातो :मिथिलामागतो
नृप ॥ इति ते कथितं सर्वमाख्यानन्तु यथाश्रुतम् ॥ ४२ ॥

शतानन्दजी बोले—हे जनक! नारदजीके कहे हुए इस आख्यानको सुन कर सब मुनि बड़े प्रसन्न हुए और वाल्मीकिसहित सब वृषभाचलपर चले गये। हे राजन्! मैं उनकी आज्ञा ले कर जनकपुरीमें आया हूं। इस प्रकार मैंने जैसा यह आख्यान सुना था वैसा आपसे कह सुनाया ॥ १४२ ॥

व्यास उवाच—

श्रुत्वा सविस्तरं वाक्यमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ पुनः प्रीतोऽभवद्राजा
शतानन्दं पुरोधसम् ॥४३॥ शृण्वतस्ते कथां ब्रह्मन् तृप्तिर्मे नोपजायते ॥
भूयः कथय मे ब्रह्मन् वेङ्कटाद्रीश्वरं प्रति ॥ ४४ ॥

व्यासजी बोले—यह अद्भुत हर्षदायक समाचार सुन कर राजा जनक बड़े प्रसन्न हुए और अपने पुरोहित शतानन्दजीसे फिर कहने लगे कि हे ब्रह्मन्! आपकी कही हुई इस कथासे मेरी तृप्ति नहीं होती है इसलिये आप फिर श्रीवेङ्कटेश्वरके सम्बन्धमें और भी कथा कहिये ॥ १४४ ॥

व्यास उवाच—

शतानन्दः पुनः प्राह जनकं मिथिलापतिम् ॥ वक्ष्यामि विस्तरेणाऽहं
सावधानमनाः शृणु :॥ ४५ ॥ वामदेवेन मुनिना कथितां जनकाय वै ॥
निमिपुत्राय च पुरा कथां यज्ञान्तरे नृप ॥ १४६ ॥

इति श्रीवामनपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये वायुं प्रति भगवत्सान्निध्यवरप्रदा-
नादिवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायोऽत्र पञ्चमः ॥ ५ ॥

व्यासजी बोले—शतानन्द फिर मिथिलापति जनकसे कहने लगे—हे राजन! मैं विस्तारसे कहूंगा, आप सावधान हो कर श्रवण करें। हे नृप! प्राचीन समयमें वामदेव मुनिने यज्ञके बीचमें निमिपुत्र राजा जनकके प्रति जो कथा कही थी, वही मैं तुम्हें विस्तारसे सुनाऊंगा।

इति पञ्चमोऽध्यायः

षष्ठोऽध्यायः

शतानन्दको जनकसे, श्री प्रभु प्रादुर्भाव।
कथा निरूपण मुनि यहां, वर्णन प्रभु प्रभाव ॥१॥
वायु दिशामें तप तपन, ऋषि अगस्त्यका ध्यान।
प्रभु दर्शन पाना परम, प्रभुका अन्तर्धान ॥२॥
उस अद्भुत व्यापार अरु, उस अद्भुत प्रभु रूप।
देख मुग्ध होइ दरश हित, ढूंढ़त ताहि स्वरूप ॥३॥

अथ जनकं प्रति शतानन्दोक्तभगवदाविर्भावकथोपोद्घातः

शतानन्द उवाच —

पुरा तु जाह्नवीतीरे जनकं संशितव्रतम् ॥ अश्वमेधे महायज्ञे दी-
क्षितं मुनयोऽभ्ययुः ॥१॥ तानभ्यर्च्य मुनीन्सर्वान् राजा स ऋषिसत्तमान् ॥
जनकः प्रीतिसंहृष्टो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥

शतानन्दने कहा - एक समय गङ्गाजीके किनारे महायज्ञ अश्वमेधमें व्रती हो कर बैठे हुए दीक्षित राजा जनकके पास मुनि लोग आये। उन सब ऋषि श्रेष्ठ मुनियोंकी पूजा करके राजा जनक प्रेमसे प्रसन्न हो कर बोले ॥ २ ॥

अद्य मे सफलं जन्म सुतप्तं च महत्तपः ॥ सक्रम्य यूयमस्माकं यज्ञ-

वाटमिहागताः ॥३॥ तेनैव मुनयः सर्वे संहृष्टाः परमां मुदम् ॥ ययुस्तत्र निशामेकामवसन्मुनिसत्तमाः ॥ ४ ॥ बहु सम्भाषमाणानामन्योन्यं वै महात्मनाम् ॥ पर्यस्ता रजनी चापि प्रातःकालो व्यवर्तत ॥ ५ ॥ कृत्वा प्रातस्तनीं सन्ध्यां मुनयश्च समागताः ॥ यज्ञवाटं महात्मानो जनको यत्र तिष्ठति ॥ ६ ॥

आज मेरा जन्म सफल हुआ, मेरा तप सफल हुआ, जो आप सबने मिल कर मेरी यज्ञशालामें पदार्पण किया है। राजाके प्रेममय वचन सुन कर मुनिगण अति प्रसन्न हुए और उन्होंने रातभर वहीं निवास किया। उन महात्माओंके परस्पर भाषण करते रात बीत गयी और प्रातःकाल हो गया। फिर प्रातःकालकी सन्ध्या करके महात्मा मुनिलोग पुनः यज्ञशालामें जहां राजा जनक बैठे थे, आये ॥ ६ ॥

नारायणकथाश्चापि कथयन्तः परस्परम् ॥ आसीनास्तत्र ते सर्वे जनकेन महात्मना ॥ ७ ॥ तस्मिन् काले महातेजाः पर्यटन् पृथिवीमिमाम् ॥ ब्रह्मर्षिर्वामदेवस्तु सङ्गतो मुनिसत्तमः॥ ८ ॥ अभ्युत्थितास्ततः सर्वे ऋषयो वेदपारगाः ॥ पप्रच्छुः सङ्गताः सर्वे वामदेवं द्विजोत्तमम् ॥ ९ ॥

राजा जनकके साथ बैठे हुए सब महात्मा परस्पर नारायणकी कथा कह रहे थे, उसी समय पृथ्वीमें घूमते हुए महातेजस्वी मुनिश्रेष्ठ महर्षि वामदेव वहां आ पहुंचे। वेदपारग सब मुनिगण उनका अभ्युत्थान करके उनसे पूछने लगे ॥ ९ ॥

भूरियं वामदेवाद्य परिक्रान्ता त्वया विभो ॥ श्रोतुमिच्छामहे त्वत्तो नारायणकथां शुभाम् ॥१०॥ क वा वसति देवेशः को निवासो जगत्पतेः ॥ उत्कण्ठा विद्यते चाऽस्य जनकस्य महात्मनः ॥ ११ ॥

हे विभो ! वामदेव! आपने सब पृथ्वीकी परिक्रमा की है, इसलिये हम आपसे भगवान् नारायणकी शुभ कथा सुननेकी इच्छा करते हैं। देवाधिदेव जगत्पति भगवान् श्रीनिवास कहां निवास करते हैं उनका वास स्थान कहां है ? महात्मा जनकको भी इस बातको जाननेकी बड़ी अभिलाषा है ॥ ११ ॥

इति तैः परिपृष्टस्तु वामदेवस्तदाऽब्रवीत् ॥ नारायणगिरिर्नाम भूधरेन्द्रो द्विजोत्तमाः ॥१२॥ इतो दक्षिणतश्चापि द्विशते योजने पुनः ॥ तत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ १३ ॥ वसन्ति नियताहारा वेङ्क-

दाह्वयभूधरे ॥ अहमप्यागतस्तत्र भूधरेन्द्रे द्विजोत्तमाः ॥ १४ ॥ अगस्त्यं
नारदं चैव पुलस्त्यं पुलहं तथा ॥ क्रतुमाङ्गिरसं चैव दक्षं जाबालिमेव
च ॥ १५ ॥ योगाभ्यासरतांस्तांस्तु दृष्ट्वाहं पुनरब्रवम् ॥

मुनियोंके इस तरह पूछनेपर महर्षि वामदेव बोले – हे द्विजवरो! पर्वतोमे श्रेष्ठ एक नारायणपर्वत है। वह यहासे दक्षिणमे दो सौ योजनपर है। वहा वेङ्कटाचलनामक पर्वतपर देवनाओं सहित गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण व्रती हो कर निवास करते हैं। मैं भी उस पर्वतपर चला गया। वहापर मैंने अगस्त्य, नारद, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, आंगिरस, दक्ष, जाबालि इन महर्षियोंको योगाभ्यासमे अनुरक्त देख कर उनसे कहा ॥ १६ ॥

किमत्र सङ्गता यूयमासीनाः पर्वते द्विजाः ॥१६॥ इति पृष्टास्तु ते
सर्वे प्रत्यूचुर्मे न किञ्चन ॥ अगस्त्यः परमर्षिस्तु मामाहूय महायशाः ॥१७॥
उवाच मुनिशार्दूलो निवासे तत्र कारणम् ॥

हे विप्रो! आप लोग इस पर्वतपर किस लिये इकट्ठे हुए हैं? मेरे पूछने पर उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। फिर महा यशस्वी अगस्त्य मुनिने मुझको वहापर निवास करनेका कारण बतलाया ॥ १८ ॥

भगवन्तमुपासीनो नारदो योगवित्तमः ॥१८॥ वसन् गोदावरीतीरे न
ददर्श श्रियःपतिम् ॥ वैकुण्ठे तु परे लोके तेनोद्विग्नमना मुनिः॥१९॥ ब्रह्मा-
णं समुपागम्य पर्यपृच्छत् सनातनम् ॥ निवासः सर्वभूतानां परमात्मा सना-
तनः ॥२०॥ क्व प्रयातः परो देवस्तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ इति पृष्टस्तदा तेन
ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२१॥ ध्यात्वा चिरमुवाचेदं नारदं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥

योगियोमे श्रेष्ठ श्रीनारद मुनिने गोदावरीके तीरपर तपस्या करते हुए श्रीपति विष्णुको वहा नहीं देखा। नारदजी वहासे वैकुण्ठ लोकमे गये, पर वहां भी जब उनको भगवानका दर्शन नहीं हुआ तब वे बडे दुःखी हुए। नारदजीने फिर सनातन ब्रह्माजीके पास जा कर पूछा कि हे पितामह! सर्वान्तर्यामी परमात्मा कहा चले गये? नारदजीके ऐसा पूछनेपर चिरकालतक ध्यान करनेके बाद लोकपितामह ब्रह्मा, हाथ जोड़ कर खड़े हुए नारदजीसे बोले।

नारायणगिरिर्नाम भूमौ क्वापि महामुने ॥ २२ ॥ तस्मिन्हि रमया
सार्धं रमते पुरुषोत्तमः ॥ प्रीतिः सुमहती जाता तस्मिंस्तु गिरिमू-
र्धनि ॥ २३ ॥ गच्छ नारद सर्वेशं द्रष्टुमिच्छसि चेत्प्रभुम् ॥ इति तेन
समादिष्टो नारदो मुनिसत्तमः ॥ २४ ॥ ततस्तस्मादपाक्रम्य सशैलेन्द्रमुपा-
गमन् ॥ आगच्छन्तं वयं सर्वे सङ्गताः पथि नारदम् ॥ २५ ॥ अस्माभिः

सह सङ्गत्य पर्वतेन्द्रमुपागतम् ॥ ततश्चतुर्मुखश्चापि देवैः सह समाग-
तः ॥ २६ ॥

हे मुने ! पृथ्वीपर कहीं नारायणनामका एक पर्वत है, लक्ष्मीके साथ पुरुषोत्तम भगवान वहीं विहार कर रहे हैं। उस पर्वतके शिखरमें भगवानकी बड़ी प्रीति हो गयी है। हे नारद ! यदि आप सर्वात्मा उन परमात्माको देखना चाहते हैं तो वहीं पर जाइये। ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर नारदजी वहांसे चल कर इस पर्वतपर आये। मार्गमें जाते हुए नारदजीको देख कर हमलोग भी उनके साथ हो लिये। नारदजी हम लोगोंके साथ इस पर्वतपर आये। बादमें ब्रह्माजी भी देवताओंको साथ ले यहां आ पहुंचे ॥ २६ ॥

अस्माभिः सहितः पूर्वं तस्मिन्पर्वतसत्तमे ॥ चचार भगवान् ब्रह्मा
परमात्मानमव्ययम् ॥ २७ ॥ अदृष्ट्वा नारदं चास्मानित्युवाच पितामहः ॥
यावत्यः सरितश्चास्मिन्सरांसि च महामुने ॥ २८ ॥ याश्च सन्ति महा-
पुण्याः पुष्करिण्यः शुभोदकाः ॥ तटाकान्युदपानानि तथा प्रस्रवणानि
च ॥ २९ ॥ वाप्यश्च सर्वदा पुण्या ह्रदाश्च मुनिसेविताः ॥ यानि सन्त्ये-
वमादीनि पुण्येऽस्मिन्पर्वतोत्तमे ॥ ३० ॥ तानि सर्वाणि विप्रेन्द्र सेवमानः
समन्ततः ॥ कुर्वन्प्रदक्षिणां चैव विचरस्व महीधरम् ॥ ३१ ॥ यावता
भगवान् देवः कालेन द्रक्ष्यते हरिः ॥ तावत्कालमिहैव त्वं विचरस्व महा-
मुने ॥ ३२ ॥ इत्युक्त्वा भगवान्देवो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ स्वानुगैः सह
देवैश्च तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३३ ॥

ब्रह्माजी पहले हमलोगोंके साथ इस पर्वत पर घूमे और अव्यय परमात्माको न देखा। उन्होंने नारदजी और हमलोगोंसे कहा—हे मुने ! इस पर्वतपर जितनी नदियां हैं, जितने तालाब हैं, जितनी निर्मल जलकी तलैयां एवं जल पीनेके पानीके उद्गम तथा झरने हैं, जितनी बावड़ियां और सर्वदा पवित्र मुनिजनसेवित जितने तालाब हैं, उन सबमें भ्रमण और पर्वतकी प्रदक्षिणा करते हुए इधर उधर विचरण करो और जबतक भगवानका दर्शन न हो तबतक यहां ही घूमो। इस तरह कह कर लोकपितामह ब्रह्मा अपने अनुगामी देवताओंके साथ वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ ३३ ॥

वामदेव उवाच—

अगस्त्योऽथ महीपाल तैरेव मुनिभिः सह ॥ प्रणम्य तस्मै देवाय
ब्रह्मणेऽव्यक्तजन्मने ॥ ३४ ॥ चिन्तयन्वासुदेवाख्यं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥

द्रष्टुकामश्च तं देवं वृषभाद्रिनिवासिनम् ॥ ३५ ॥ अतीत्य पश्चिमं भागं पर्वतस्य महीयसः ॥ उदीचीं दिशमभ्यायात्तपसा च समन्वितः ॥ ३६ ॥ चिन्तयन्देवदेवेशं भूपाल हरिमीश्वरम् ॥ संस्मरन् ब्रह्मणो वाक्यं विचचार ततस्ततः ॥ ३७ ॥

वामदेव बोले—इसके बाद हे महीपाल ! उन सब मुनियोंके साथ अगस्त्य उन अव्यक्तजन्मा ब्रह्माको नमस्कार करके वृषभाचल निवासी परब्रह्म भगवान वासुदेवका स्मरण करते हुए उनको दर्शनेच्छासे उस पर्वतकी पश्चिम दिशाको उल्लङ्घन कर उत्तर दिशाकी ओर आये। हे राजन् ! अगस्त्यमुनि देवादिदेव परमात्माका ध्यान और ब्रह्माके वचनोंका स्मरण करते हुए इधर उधर भ्रमण करने लगे ॥ ३७ ॥

अथागस्त्यस्य शेषाचलवायव्यदिशि महाभूतविलोकनम्

ऋषिभिः सहितः सर्वैस्तपसा भावितात्मभिः ॥ आदित्यकल्पतेजोभिर्जटामण्डलधारिभिः ॥३८॥ संयुक्तो विचरंस्तत्र भूपते पर्वतोत्तमे ॥ वायव्यदिशि चाद्राक्षीदिदमाश्चर्यमुत्तमम् ॥३९॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशा तत्रासीन्महती शिला ॥ दर्शनीयतमा स्निग्धा विस्तीर्णा विमला शुभा ॥४०॥

हे भूपाल ! सूर्यके समान तेजस्वी, जटामण्डलको धारण करनेवाले एवं ज्ञाननिष्ठ समस्त महर्षियोंके साथ उस पर्वतपर भ्रमण करते हुए महर्षि अगस्त्यने वायव्य दिशामें एक अद्भुत दृश्य देखा। वहाँ पर एक शुद्ध स्फटिकमणिके समान सफेद देखनेमें बहुत ही सुन्दर, चिकनी, विस्तृत और निर्मल शिला थी ॥ ४० ॥

तस्यां शिलायामास्ते स्म समुच्छ्रिततनुः पुमान् ॥ दीप्यमानः स्ववपुषा पर्वतेन्द्र इवापरः ॥४१॥ महाबाहुर्विशालाक्षो महादंष्ट्रो महाहनुः ॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तगन्धानुलेपनः ॥ ४२ ॥ बिभ्रद्रक्ते तथा दिव्यकुण्डले रत्नभूषिते ॥ बिम्बचन्द्रप्रतीकाशं स्निग्धहैमविभूषिनम् ॥ ४३ ॥ अनेकरत्नसञ्छन्नैर्भूषणैः सुविभूषितम् ॥ श्यामं नानाविधै रत्नैः शोभमानकिरीटकम् ॥ ४४ ॥ तमुपेत्य महाकायं महावीर्यं महाभुजम् ॥ अगस्त्यो विस्मयाविष्टो भूयो भूयोऽन्ववैक्षत ॥४५॥ ततस्तमृषिशार्दूलः प्राह चैवं वचो नृप ॥ प्रणम्य तस्मै देवाय ज्वलद्भास्करतेजसे ॥ ४६ ॥

उस शिलापर एक ऊंची देहवाला, अपने शरीरसे दूसरे पर्वतके समान प्रकाशमान, लम्बी लम्बी भुजा, विशाल नेत्र, बड़ी बड़ी दाढ़ें और बड़ी ठोडीवाला, शरीरमें लाल फूलोंकी माला और रक्तचन्दनका लेप किया हुआ,

रत्नोंसे जड़े हुए लाल और चमकते हुए कुण्डल पहिने एवं चन्द्रमाके समान स्वच्छ, स्निग्ध, सोनेके बने हुए, अनेक रत्नोंके जड़ावसे अत्यन्त सुन्दर, नाना भांतिके रत्नोंकी चमक दमकसे कान्तिमान किरीट धारण किया हुआ एक पुरुष था। विशालकाय, महापराक्रमी, लम्बी भुजावाले उस पुरुषके पास जा कर अगस्त्य मुनि चकित हो गये और बार बार उसको देखने लगे। फिर सूर्यके समान तेजस्वी उस देवको प्रणाम करके अगस्त्य मुनि इस प्रकार कहने लगे ॥ ४६ ॥

अगस्त्य उवाच—

को भवान् सुमहावीर्य कस्य वा प्रियदर्शन ॥ एतन्नस्त्वं तु तत्त्वेन पृच्छतां ब्रूहि नानृतम् ॥ ४७ ॥

अगस्त्यने कहा—हे पराक्रमी प्रियदर्शन ! तुम कौन हो, और किसके हो, यह बात आप हम लोगोंसे सत्य सत्य बतलाइये।

वामदेव उवाच—

एवमुक्ते ततस्तेन नरेन्द्र मुनिना तदा ॥ शृण्वतां प्रीतिदायिन्या वाचा मधुरया गिरा ॥ ४८ ॥ महौजसं मुनीन्द्रं तं न किञ्चित्प्रत्यभाषत ॥ स्तुवन्तं च तदागस्त्यमुदैक्षत पुनः पुनः ॥४९॥ पश्यतां चैव सर्वेषां मुनीन्द्राणां महात्मनाम् ॥ अन्तर्दधे महातेजास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ५० ॥

वामदेव बोले—हे राजन् ! सुननेवालेको प्रीति देनेवाली मधुर वाणीसे मुनिके ऐसा कहने पर भी उन मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यके प्रति उस पुरुषने कुछ भी नहीं कहा और बार बार वह स्तुति करनेवाले अगस्त्यके प्रति देखता रहा। फिर उन सब महात्मा मुनियोंके देखते देखते ही वह महा तेजस्वी पुरुष अन्तर्धान हो गया। यह एक अचम्भेकी सी बात हुई ॥ ५० ॥

ततस्ते मुनयः सर्वे विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ अहो दृष्टमहो दृष्टमाश्चर्यमिति चाब्रुवन् ॥ ५१ ॥ दर्शयित्वा महाश्चर्यं रूपं भास्करसन्निभम् ॥ मायया मोहयित्वाऽस्मान् सद्यो ह्यन्तरधीयत ॥५२ ॥ इति ब्रुवन्तस्ते सर्वे मुनयोऽद्भुततेजसः ॥ प्रणम्य तस्मै देवाय व्यचरंस्तं महीधरम् ॥ ५३ ॥ संवृतो मुनिभिः सर्वैरगस्त्यो भगवांस्तदा ॥ तमेव देवदेवेशं द्रष्टुकामोऽनपायिनम् ॥ ५४ ॥ भागं परित्यज्य नरेन्द्र पश्चान्नारायणाद्रेर्विमलं विशालम् ॥ द्विजेन्द्रवर्यः सहसा महात्मा तस्योत्तरं भागमथ प्रपेदे ॥ ५५ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये भगवदाविर्भावोपोद्घातो नाम पञ्चविंशोऽध्यायोऽत्र षष्ठः ॥६॥

तब सब आश्चर्यसे उत्फुल्लनेत्र हो कर सब मुनि कहने लगे—यह हमने कैसा विचित्र दृश्य देखा। हमें सूर्यके समान तेजस्वी आश्चर्यमय रूप दिखाकर और मायासे मोहित कर हम लोगोंके देखते देखते यह तुरन्त अन्तर्धान हो गया, ऐसा कह कर वे सब मुनि अद्भुत तेजस्वी भगवान्को प्रणाम कर फिर उस पर्वतपर विचरने लगे। द्विज-श्रेष्ठ महात्मा अगस्त्य मुनियों सहित उसी अविनाशी देवादिदेव परमात्माको देखनेकी इच्छासे उस स्थानको छोड़ कर उसके बाद एकाएक नारायणाचलके विमल और विशाल उत्तर भागको ओर चले गये ॥ ५५ ॥

इति षष्ठोऽध्यायः

सप्तमोऽध्यायः

उत्तरदिशि गिरिशेषके, ऋषि अगस्त्य मुनि पुंज।
खोजत प्रभु तेहि भागमें, कानन कन्दर कुंज ॥१॥
सनत्कुमारहि देखि तहं, पुनि पूरब दिशि गौन।
रूप मुग्ध खोजत प्रभुहिं, जहं तहं होइ सब मौन ॥२॥

अथ शेषाचलोत्तरदिश्यगस्त्यादिकृतभगवदन्वेषणप्रकारः

वामदेव उवाच

ततस्तस्मिन्महातेजा विचरन् पर्वतोत्तमे॥ उत्तरं भागमाश्चर्यं ददर्शाद्भु-
तदर्शनम् ॥ १ ॥ लम्बमानमहाशाखैर्जम्बूवृक्षैश्च पाण्डुरैः ॥ शुद्धस्फटिकस-
ङ्काशैः फलवद्भिः सुशोभितम् ॥ २ ॥ सरितः पुण्यदास्तत्र ददर्श विमलो-
दकाः ॥ सर्वपापहराः शुद्धाः शतशः शुभदर्शनाः ॥ ३ ॥ सर्वासु तासु
पुण्यासु सरित्सु विमलासु च ॥ मुनान्द्रो मुनिभिः सार्धं कृतशौचो यथावि-
धि ॥४॥ स्नानं चक्रे प्रयत्नेन प्रयतः सुसमाहितः ॥ चिन्तयन् वासुदेवाख्यं हृदि
नारायणं हरिम् ॥ ५ ॥

वामदेव बोले—फिर महातेजस्वी अगस्त्यने उस पर्वतके उत्तर भागकी ओर विचरते हुए आश्चर्य-जनक, बड़े बड़े विशाल, लम्बे और सफेद जामुनके वृक्षोंसे शोभित एक विचित्र दृश्य देखा। वहां उन्होंने सब पापोंको दूर करनेवाली एवं स्वच्छ जलपूर्ण पुण्य नदियां देखी। मुनियोंके सहित यथाविधि शौचादि क्रियाओंसे निवृत्त हो कर महर्षि अगस्त्यने हृदयमें भगवान वासुदेव नारायण हरिका ध्यान करते हुए स्थिरचित्त हो कर प्रयत्नपूर्वक उन सभी निर्मल जलवाली पुण्यमयी नदियोंमें स्नान किया ॥ ५ ॥

कृत्वा स्नानक्रियाः सर्वा अर्चयामास केशवम् ॥ ६ ॥ अर्चयित्वा जगन्नाथं जगाम सुसमाहितः ॥७॥ नरेन्द्र मुनिभिः सार्द्धं द्रष्टुकामः सुरेश्वरम् ॥ विचरन् सर्वशस्तत्र मुनीन्द्रः पर्वतोत्तमे ॥८॥ ददर्श चोत्तरं भागं शोभितं विविधैर्द्रुमैः ॥ मेघैः शैलनिभैश्चापि शोभितं शुभदर्शनम् ॥ ९ ॥

बाद समस्त स्नानक्रियादिसे निवृत्त हो कर उन्होंने एकाग्रचित्त हो कर जगन्नाथ भगवान् केशवकी पूजा की। हे नरेन्द्र जगन्नाथ भगवानकी पूजा करके मुनियोंके साथ सुरेश्वर भगवानको देखनेकी इच्छासे उस पर्वत पर भ्रमण करते हुए मेघ और पर्वतके समान ऊंचे अनेक वृक्षोंसे शोभित एवं देखने ही से मङ्गल देनेवाला उत्तर भागको देखा ॥ ६ ॥

मृगसर्पमहाव्यालद्विजसङ्घनिषेवितम् ॥ बहुपुष्पलताभिश्च सुसञ्छन्नमहीतलम् ॥ १० ॥ सुखवातानुचरितं शीतोदकतटाककम् ॥ भ्रमरैर्गीयमानं च पिबद्भिः पुष्पजं मधु ॥ ११ ॥ शैलकन्दरनिष्क्रान्तैः कोकिलैर्मधुरस्वनैः ॥ सुस्वरैर्गीयमानं च गन्धर्वैस्तु निषेवितम् ॥ १२ ॥ नृत्यद्भिश्च महापक्षैर्मयूरैरुपशोभितम् ॥

जो मृग, सांप, महाव्याल, (अजगर) और पक्षियोंके समूहोंसे युक्त है। जहांकी पृथ्वी नानाप्रकारके पुष्प और लताओंसे आच्छादित है। जहां पर सुखप्रद वायु बह रहा है, और जिसके तट पर सुशीतल जलवाले निर्मल तालाब हैं। भौंरे जहां फूलोंके शहदको पीते और गूञ्जते हैं। जहां पर्वतकी कन्दराओंसे निकली हुई कोयल मीठे मीठे शब्दोंमें सुन्दर सुरीला गान कर रही हैं। मधुर स्वरवाले गन्धर्व जहां सुन्दर गीत गा रहे हैं। जहां मोर पंख फैलाये नाच रहे हैं ॥ १३ ॥

अश्वत्थप्लक्षबिल्वैश्च शोभितं बहुशाखिभिः ॥१३॥ तिलकैः पुष्पितैश्चापि कृतमालैश्च पुष्पितैः ॥ करञ्जैः कोविदारैश्च पाटलैश्चापि पुष्पितैः ॥ १४ ॥ अङ्कोलैर्मातुलिङ्गैश्च शोभितं चित्रशाखिभिः ॥ शिरीषर्दि-

शिपोत्तालहिन्तालपनसैस्तथा ॥ १५ ॥ तिमिशैर्नक्तमालैश्च स्यन्दनैश्चन्दनैस्तथा ॥ बकुलैः पुष्पितैश्चापि राजन्नो रक्तचन्दनैः ॥ १६ ॥ एवं बहुविधैर्वृक्षैर्नानाशाखोपशोभितैः ॥ शोभितं शुभगन्धाढ्यं नानाधातुसमन्वितम् ॥१७॥ पर्वतस्योत्तरं भागं मणिप्रवरसेवितम् ॥ ददर्श नृपते धीमान्मुनिभिर्भगवांस्तदा ॥ १८ ॥ अथ तैर्मुनिभिः सार्धं विचरन् गिरिमूर्धनि ॥ ददर्श दिव्यामाश्चर्यात्पद्मिनीं पद्मशोभिताम् ॥ १९ ॥ उत्फुल्लैरुत्पलैश्चापि प्रफुल्लैः कुसुमैस्तथा ॥ शोभितां शुभगन्धाढ्यां प्रसन्नसलिलां शुभाम् ॥ २० ॥ इन्दुस्फटिकसङ्काशां राजहंसनिषेविताम् ॥

जो अनेक शाखावाले पीपल, बड़, बिल्व, पुष्पित कृतमाल, तिलक, करञ्ज, घटेर, कोविदार, पाटल, विचित्र शाखावाले अङ्कोल, मातुलिङ्ग, (जम्बीरी) और चित्र विचित्र शाखावाले, सरसों, शिंशपा, उत्ताल, हिन्ताल, कटहर, तिमिश, मौलसरी, स्यन्दन, चन्दन, पुष्पित बकुल, चमकीला लालचन्दन आदिसे अलंकृत, नाना भांतिकी शाखा प्रशाखावाले अनेक वृक्षोंसे शोभित, सुगन्धवाले गेरु आदि अनेक धातुओंसे सम्पन्न एवं सुन्दर मणियोंसे युक्त पर्वतके ऐसा उत्तर भागको, हे राजन्! धीमान भगवान अगस्त्यने मुनियोंके साथ देखा। फिर मुनियोंके साथ उस पर्वतके शिखरपर घूमते हुए उन्होंने विकसित लाल पद्म और विविध पुष्पोंसे शोभित सुन्दर गन्ध और निर्मल जलसे सुशोभित एवं चन्द्र और स्फटिक मणिके समान राजहंसोंसे सेवित पद्मिनीको आश्चर्यसे देखा।

सिंहव्याघ्रमृगैश्चापि निनदद्भिर्निषेविताम् ॥ २१ ॥ जलार्थिभिश्च मातङ्गैः शोभितां शुभदंष्ट्रिभिः ॥ क्रौञ्चैः प्लवङ्गैर्वाराहैः शोभितां शुभदर्शनैः ॥ २२ ॥ अधिकं शोभमानां तां कूजद्भिश्च विहङ्गमैः ॥ सेवितां देवगन्धर्वयक्षविद्याधरादिभिः ॥ २३ ॥ एवमत्यद्भुतां तां तु सर्वदुःखप्रणाशिनीम् ॥ दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टो मुनीन्द्रः प्राह तान्मुनीन् ॥ २४ ॥

शब्दायमान सिंह, व्याघ्र, मृग, जल पीनेकी इच्छासे आये हुए हाथी, क्रौंच, बन्दर, सूअर आदि जन्तु[illegible] अधिक शोभायमान, शब्द करते हुए पक्षियोंसे सेवित, देव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर आदिसे युक्त, सर्व दुःखे[illegible] संहार करनेवाली एवं अत्यन्त अद्भुत उस पद्मिनी, (तलैया) को देख कर महर्षि अगस्त्य बड़े विस्मित हुए [illegible] मुनियोंसे कहने लगे ॥ २४ ॥

अगस्त्य उवाच—

अस्यां स्नात्वाऽथ गच्छामो दिशं प्राचीं महागिरेः ॥ लोकेऽस्मिन् श्रूयते

चैषा पापहानिप्रदेति वै ॥ २५ ॥ सर्वपापहरा शुद्धा पद्मिनी लोकविश्रुता ॥
सर्वदुःखहरा चापि सर्वतीर्थफलप्रदा ॥ २६ ॥ एवमुक्त्वा तु तैः सार्धमृषि-
भिर्भावितात्मभिः ॥ निवेश्य हृदि देवेशं ममज्ज सहसा जले ॥ २७ ॥
स्नानं कृत्वाऽथ देवेशं प्रणम्यात्मनि तं प्रति ॥ अभ्यर्च्य च हृषीकेशं वासु-
देवं सनातनम् ॥२८॥ विचचार यथापूर्वमृषिभिः सहितो मुनिः ॥

अगस्त्य मुनि बोले—हम लोग इसमें स्नान करके पर्वतकी पूर्व दिशाको चले। इस रमें यह बात सुनी जाती है कि यह शुद्ध पद्मिनी (तलैया) पापोंको नाश करनेवाली, सब पाप और दुःखोंको हरनेवाली तथा सब तीर्थोंके फलको देने वाली पापनाशिनी नामसे प्रसिद्ध है। अगस्त्यने इस तरह कह कर ज्ञाननिष्ठ उन मुनियोंके साथ हृदयमें भगवानका ध्यान करके उस पद्मिनोमें स्नान किया और स्नान कर अपनी आत्मामें उन हृषीकेश सनातन वासुदेव भगवान परमात्माके प्रति प्रणाम पूजन करके पहिलेके समान मुनियोंके साथ फिर वहींपर वे विचरने लगे ॥ २६ ॥

अथ अगस्त्यादीनां सनत्कुमारविलोकनपूर्वकं पूर्वदिग्गमनम्

तस्या एवोत्तरे तीरे वृक्षमूलं समाश्रितान् ॥ २९ ॥ समाहितान्
समासीनान्पद्मिन्याः सुमहौजसः ॥ दक्षिणाभिमुखान् भूप योगीन्द्रान्स
ददर्श ह ॥ ३० ॥ सनत्कुमारप्रमुखान् भगवन्न्यस्तमानसान् ॥ भक्त्या·
परमया युक्तान्निमीलितविलोचनान् ॥ ३१ ॥ तान्दृष्ट्वा सहसा हृष्टो योगी·
न्द्रान् योगपारगान् ॥ तेषां समीपमभ्यागादगस्त्योऽथ महामुनिः ॥ ३२ ॥

उसी पद्मिनीके उत्तर तटपर पेड़के पास बैठे हुए, स्थिरचित्त, एवं दक्षिणकी ओर मुख किये हुए एवं अत्यन्त भक्तिपूर्वक आंख बन्द करके भगवानमें अपना मन लगाये हुए, महातेजस्वी सनत्कुमार प्रभृति योगियोंको उन्होंने देखा। योगके पारग उन योगियोंको वहांपर देख कर बड़े प्रसन्न हो कर अगस्त्य मुनि उनके पास गये ॥ ३२ ॥

तमायातं ततो दृष्ट्वा मुनीन्द्रं मुनिभिः सह ॥ सनत्कुमारप्रमुखा
योगीन्द्रास्तमपूजयन् ॥ ३३ ॥ सङ्गम्य सहितः सर्वैर्योगीन्द्रैर्मुनिपुङ्गवैः ॥
सम्पूजितो यथान्यायं ततस्तैर्मिथिलेश्वर ॥ ३४ ॥ अथ तान्मधुरं वाक्य-
मुवाचेदं महामुनिः ॥

मुनियोंके साथ मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको आते हुए देख कर सनत्कुमार प्रभृति सब मुनिश्रेष्ठ योगियोंने एक साथ

मिल कर उनकी पूजा की। उसके बाद महर्षि अगस्त्य सब योगिन्द्रोंसे यथोचित सत्कृत हुए। इसके बाद मुनि श्रेष्ठ महर्षि अगस्त्य मीठे वचन कहने लगे ॥ ३५ ॥

अगस्त्य उवाच

किमत्र दृष्टमाश्चर्यं को वात्र वसते पुमान् ॥३५॥ युष्माभिश्चिन्त्य-
मानः कः किं वा यूयं समागताः ॥ एतदिच्छाम्यहं श्रोतुमेतन्मे शंसता-
मलाः ॥ ३६ ॥ एवं पृष्टास्तदा तेन मुनिना भावितात्मना ॥ सनत्कुमार-
प्रमुखा योगीन्द्रास्तमथाब्रुवन् ॥ ३७ ॥

अगस्त्य बोले—आपने यहांपर क्या आश्चर्य देखा है? यहांपर कौन पुरुष वास करता है? आप किसका ध्यान कर रहे हैं? और यहां किस लिये आये हैं? मैं यह सब बातें सुनना चाहता हूं, आप कृपा करके कहिये। महर्षि शुद्धात्मा अगस्त्यके इस तरह पूछनेपर सनत्कुमारादि योगिराज उनसे कहने लगे ॥ ३७ ॥

सर्वात्मा भगवान्विष्णुर्वसत्यस्मिन्महागिरौ ॥ चिन्तनीयः स एवैको
मुनीन्द्राः पुरुषोत्तमः ॥३८॥ तमचिन्त्यं विधातारं चिन्तयामोऽनपायिनम् ॥
नान्यं वयं जगन्नाथाच्चिन्तयामो जनार्दनात् ॥ ३९ ॥ द्रक्ष्यसे तं महात्मानं
त्वं चापि पुरुषोत्तमम् ॥ अचिरेणैव कालेन ब्रह्मभूतं सनातनम् ॥ ४० ॥
नारायणं हरिं विष्णुं सर्वलोकपरायणम् ॥ दृष्टवन्तो वयं चापि सकृत्तम-
मरार्चितम् ॥ ४१ ॥

इस पर्वतपर सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीविष्णु निवास करते हैं। हे मुनियो! वेही एक पुरुषोत्तम भगवान् ध्यान करने योग्य हैं। उसी अचिन्त्य, विधाता, अविनाशी परमात्माका हमलोग ध्यान कर रहे हैं। जनार्दन जगन्नाथके सिवाय हमलोग किसीका ध्यान नहीं करते। हे मुने! उस ब्रह्मभूत सनातन महात्मा पुरुषोत्तम परमात्माको तुम भी शीघ्र ही देखोगे। हमने भी उस सर्वलोकरक्षक, हरि, विष्णु, देवपूज्य भगवानका दर्शन एकबार पाया है ॥ ४१ ॥

वेङ्कटाख्यगिरावस्मिन् पूर्वं पुण्यप्रदायिनि ॥ अस्त्यन्यादृष्टमाश्चर्यं
प्राच्यां दिशि महामुने ॥ ४२ ॥ पर्वतस्यास्य दिव्यस्य शृणु तद्वदतां वर ॥

हे महामुने! पहलेसे ही परम पुण्यदायी वेङ्कटपर्वतके पूर्वदिशामें एक अद्भुत दृश्य है जिसको अबतक दूसरा कोई नहीं देख सकता था। हे मुनिश्रेष्ठ! इस दिव्य पर्वतका उस आश्चर्यमय दृश्यको तुम सुनो ॥ ४२ ॥

शक्रश्च सहितो देवैः साक्षाद्वज्रधरः स्वयम् ॥ ४३ ॥ द्रष्टुकामो
गिरावस्मिन् वसत्यव्यक्तरूपिणम् ॥ त्वं चापि सुरलोकेशं द्रक्ष्यसे तं शची-
पतिम् ॥ ४४ ॥ एतैः सार्धं मुनीन्द्रैस्त्वं प्राचीं गच्छ शुभां दिशाम् ॥

यहां देवताओंके सहित साक्षात् इन्द्र परमात्माको देखनेकी इच्छासे निवास कर रहे हैं। तुम भी शीघ्र ही उन शचीपति इन्द्रका दर्शन करोगे। इन मुनियोंके साथ तुम पूर्व दिशामें जाओ ॥ ४५ ॥

वामदेव उवाच—

इत्युक्त्वान्तर्हिताः सर्वे मुनीन्द्रास्ते महौजसः ॥ ४५ ॥ सनत्कुमार-
प्रमुखास्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ अन्तर्हितेषु सर्वेषु योगीन्द्रेषु महात्मसु ॥४६॥
अगस्त्यो मुनिभिः सार्धं सर्वैस्तैर्मुनिसत्तमः ॥ पराजितायामद्राक्षीदाश्चर्यं
दिशि भूपते ॥ ४७ ॥ तस्यां दिशि महावृक्ष इन्द्रकेतुरिवोच्छ्रितः ॥ लम्ब-
मानमहाशाखः पुष्पभारनिपीडितः ॥ ४८ ॥ आसीदाच्छादयन् सर्वं भूधरं
छायया नृप ॥

वामदेव बोले—महामना अगस्त्यके प्रति ऐसा कह कर सनत्कुमार प्रभृति तेजस्वी सब मुनि वहीं अन्तर्धान हो गये। उनका अन्तर्हित होना बड़ा ही आश्चर्यजनक हुआ। सब महात्मा योगीन्द्रोंके अन्तर्धान हो जानेपर अगस्त्य मुनिने अन्यान्य सब मुनियोंके साथ, हे भूपते! पूर्व दिशाकी ओर एक आश्चर्य देखा। उस पूर्व दिशामें लम्बी और बड़ी शाखाओंवाला, पुष्पोंके भारसे पृथ्वीकी ओर झुका हुआ, इन्द्रकी ध्वजाके समान ऊंचा, अपनी छायासे सब पर्वतको ढकता हुआ एक वृक्ष था ॥४८॥

तन्मूले तु समासीना आदित्यसमतेजसः ॥४९॥ सप्तर्षयो महात्मानो
भगवन्न्यस्तमानसाः ॥ तान् दृष्ट्वा स मुनिस्तेषां समीपमगमन्नृप ॥ ५० ॥
अगस्त्यो मुनिभिः सार्धं तपसा भावितात्मभिः ॥ तमायान्तं ततो दृष्ट्वा
मुनयो यमिनां वरम् ॥५१॥ स्नेहान्विता यथान्यायं महात्मानमपूजयन् ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजा अभिवाद्य च तान्मुनीन् ॥५२॥ अर्थवन्मधुरं वाक्यं
प्रश्रयान्मृदुलाक्षरम् ॥

उस वृक्षके मूलमें आदित्यके समान तेजस्वी एवं भगवान्में अपना मन लगाते हुए, महात्मा सप्तर्षि बैठे हुए हैं। हे नृप! उन सप्तर्षियोंको देख कर, सब मुनियोंके साथ अगस्त्य मुनि उनके पास गये। मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यको मुनियोंके साथ आते हुए देख कर, प्रेमके वश हो कर उन महर्षियोंने यथोचित उनका पूजन किया। बादमें महा तेजस्वी अगस्त्य उन मुनियोंको प्रणाम करके, नम्रतापूर्वक अर्थयुक्त और कोमल वचन बोले ॥ ५३ ॥

अगस्त्य उवाच—

किमर्थमागता यूयं दिव्येऽस्मिन्पर्वतोत्तमे ॥ ५३ ॥ को वा ध्येयो महादेवो युष्माकं मुनिसत्तमाः ॥ एतदाख्यात मे यूयं सर्वं सत्येन पृच्छतः ॥ ५४ ॥ पृच्छामि श्रोतुकामोऽहं कौतूहलसमन्वितः ॥

अगस्त्यने कहा—आप लोग इस दिव्य उत्तम पर्वतपर किस कारणसे आये हैं ? हे मुनिश्रेष्ठो ! आपका ध्येय देवश्रेष्ठ कौन है ? सत्य पूछनेवाले मुझको इस बातका उत्तर कहिये । कौतूहल युक्त हो, इस बातको सुननेकी इच्छासे मैं पूछ रहा हूं ॥ ५५ ॥

वामदेव उवाच—

एवं पृष्टास्तदा तेन मुनिना मुनिपुङ्गवाः ॥ ५५ ॥ इदं प्रोचुर्महात्मानं वक्ष्यामः श्रूयतामिति ॥

वामदेव बोले—हे जनक ! अगस्त्यमुनिके इस तरह प्रश्न करनेपर उन सप्तर्षियोंने महात्मा अगस्त्यसे कहा—अच्छा, हम कहते हैं, सुनो ॥ ५६ ॥

ऋषय ऊचुः—

वयमत्रागता ब्रह्मन् द्रष्टुं देवं जनार्दनम् ॥ ५६ ॥ नारायणं विशालाक्षं जगत्त्रातारमीश्वरम् ॥ स एव देवः सर्वात्मा ध्येयो नः पुरुषोत्तमः ॥५७॥ न चान्यो विद्यते ध्येयस्तमृते जगतां पतिम् ॥ तमजं सर्वलोकेशं कृष्णमच्युतमीश्वरम् ॥ ५८ ॥ पूज्यं वरेण्यं वरदं चिन्तयिष्यामहे वयम् ॥ त्वं चापि सर्वलोकेशं द्रष्टासि कमलेक्षणम् ॥५९॥ सिंहाख्ये पर्वते ह्यस्मिन् गच्छ प्राचीं दिशं मुने ॥

ऋषिगण बोले – हे ब्रह्मन् ! हम लोग यहांपर, विशाल नेत्र, जगत्पालक, नारायण भगवान्‌को देखनेके लिये आये हैं । वही सर्वान्तर्यामी पुरुषोत्तम हमारे ध्येय हैं । उस जगत्पतिके सिवाय हमारा अन्य कोई ध्येय नहीं है । हम लोग उसी चराचरके स्वामी, वरदायक, पूज्य, अच्युत कृष्ण भगवान्‌का ध्यान करते हैं । हे मुने ! तुम भी उस कमलनेत्र परमात्माके दर्शन करोगे । इस सिंहाचल पर्वतपर आप पूर्व दिशामें जाइये ॥ ६० ॥

वामदेव उवाच—

एवमुक्तो मुनिश्रेष्ठैर्नृपश्रेष्ठ महामुनिः ॥६०॥ अभ्यनुज्ञाय तान्सर्वाञ्जगाम मुनिसत्तमः ॥ चिन्तयन्मनसा देवं विश्वकर्तारमीश्वरम् ॥ ६१ ॥

चिन्तयन्मनसा वाक्यं पितामहसमीरितम् ॥ जगाम सहसा दिव्यां दिशं प्राचीं गिरेस्ततः ॥ ६२ ॥ नृपेन्द्र दृष्ट्वा भगवानगस्त्यस्तस्योत्तरम्भागमदृष्ट-पूर्वम् ॥ तत्राप्यदृष्ट्वा भगवन्तमाद्यं द्रष्टुं तदा पूर्वमथ प्रपेदे ॥ ६३ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अगस्त्यादीनां
सनत्कुमारादिदर्शनपूर्वकं भगवदन्वेषणप्रकारादिवर्णनं
नाम षड्विंशोऽध्यायोऽत्र सप्तमः ॥ ७ ॥

वामदेव बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! महर्षियोंके ऐसा कहनेपर अगस्त्य मुनिने उन सबकी अनुमति पा कर मनसे संसारके रचयिता भगवान्‌का ध्यान करते हुए प्रस्थान किया। मनसे पितामह ब्रह्माके वचनोंको स्मरण करते हुए उसी समय उस पर्वतके पूर्व दिशाकी ओर वे चले गये। उस पर्वतका अदृष्ट पूर्व उत्तरभाग देख, वहां भी आदिकारण भगवान्‌को नहीं देख कर उनके दर्शनके लिये पूर्वभागकी ओर चले गये ॥६३॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोऽध्यायः



शेषाचलके पूर्व दिशि, ऋषि अगस्त्य मुनिवर्ग ।
देखे विविध विचित्र तहं, दृश्य परम प्रानिसर्ग ॥१॥
प्रभु दर्शन हित तपत तप, इन्द्रहि देखि मुनीश ।
सो शङ्करके दरशको, मारग कहे शचीश ॥२॥
श्री शङ्करके दरशको, अग्नि दिशामें जाय ।
प्रभु पद्मायुध दरश तहं, देखत नाहि अघाय ॥३॥

अथ शेषाचलपूर्वदिश्यगस्त्यादीनामद्भुतवस्तुदर्शनम्

वामदेव उवाच—

अथ पूर्वां समासाद्य दिशं तां मुनिभिः सह ॥ नारायणगिरेस्तस्य द्रुममण्डलभूषिताम् ॥१॥ विचचार यथापूर्वं सहितस्तैर्महात्मभिः ॥ ज्वलद्भास्करतेजोभिर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥२॥ सोऽपश्यद्गिरिश्रृङ्गाभान् वृक्षान् पुष्पफलान्वितान् ॥ लम्बमानमहाशाखान् मृदुपल्लवशोभितान् ॥ ३ ॥ समदान्वारणांश्चापि सुदंष्ट्रान् सम्यगुच्छ्रितान् ॥ नदतश्च महासिंहान्वराहांश्चापि धावतः ॥ ४ ॥ गुह्यकिन्नरगन्धर्वान्यक्षाद्यांश्च सहस्रशः ॥ एवमाद्यैस्तथाऽन्यैश्च शोभितं पर्वतोत्तमम् ॥ ५ ॥ पश्यन्समन्तात्सोऽगस्त्यो विचचार महामुनिः ॥

पूर्व दिशामें अगस्त्यादिका अद्भुत वस्तुको देखना।

वामदेव बोले—हे राजन ! फिर महर्षि अगस्त्य मुनियोंके साथ नानाप्रकारके वृक्षोंसे विभूषित नारायण पर्वतकी पूर्व दिशामें गये और सूर्यके समान तेजस्वी शुद्धचित्त मुनियोंके साथ, वहां उन्होंने पर्वतोंके शिखरके समान, फल और फूलोंसे युक्त, लम्बी लम्बी डालियों और कोमल पत्तोंसे शोभित एवं सुन्दर ऊंचे ऊंचे वृक्षों, दांतवाले, मदमत्त हाथियों, गर्जना करते हुए सिंहों और भागते हुए सुअरोंको, सहस्रों गुह्यों, किन्नरों, गन्धर्वों और यक्षोंको देखा, फिर अन्यान्य वस्तुओंसे सुशोभित उस उत्तम पर्वतको चारों तरफसे देखते हुए महर्षि अगस्त्य वहां विचरने लगे ॥ ६ ॥

विचरन् स ददर्शाथ मुनिप्रवरसेवितम् ॥ ६ ॥ महाभागं महापुण्यं मृगयूथपसेवितम् ॥ नित्यपुष्पफलोपेतैर्द्रुमैर्नानाविधैर्युतम् ॥७॥ मत्तद्विपानुचरितं मत्तकोकिलनादितम् ॥ महद्भिरुच्छ्रितैः श्रृङ्गैः शोभनीयैश्च शोभितम् ॥ ८ ॥ भयङ्करमहानागं महासानुं शुभावहम् ॥ उच्छ्रितामलकैश्चापि फलवद्भिश्च शोभितम् ॥ ९ ॥ एवम्भूतं महाश्चर्यं महाभोगं महागिरिम् ॥

वहांपर भ्रमण करते हुए अगस्त्यने मुनिश्रेष्ठसेवित, महाभाग्यसम्पन्न, अति पुण्यप्रद, मृग समूहोंसे युक्त, नाना प्रकारके फल और पुष्पोंवाले वृक्षों और मदवाले हाथियोंसे युक्त, मस्त कोयलोंके सुन्दर गानोंसे गुञ्जित, बड़े बड़े ऊंचे ऊंचे वृक्षोंसे शोभायमान, महा भयङ्कर सर्पवाले, अति ऊंचे शिखरवाले, मंगलदायक, तथा फल

युक्त ऊंचे आवलोंके वृक्षोंसे शोभित, इस प्रकार महा आश्चर्यजनक और महा भोगशाली पर्वतको देखा ॥ १० ॥

अगस्त्यो भगवान् पूर्वां दिशं दृष्ट्वा महागिरेः ॥१०॥ दृष्ट्वाऽथ विचचाराशु मुनिभिस्तैः समावृतः ॥ तत्राद्भुतमथापश्यदगस्त्यः पर्वतोत्तमे ॥११॥ बिलं पातालसङ्काशं पश्यतां भयदायकम् ॥ महान्तं भैरवं दुर्गमदृष्टं मानुषैर्नृप ॥ १२ ॥ निपतेयुर्हि पश्यन्तो नरा यस्मिन्विमोहिताः ॥ तद्बिलं समुपागम्य मुनीन्द्रो मुनिभिः सह ॥१३॥ पुनः पुनर्निरीक्ष्येदं वचः प्रोवाच धर्मवित् ॥

अगस्त्य ऋषिने पूर्व दिशाको देख कर सब मुनियोंके साथ इधर उधर घूमते हुए उस पर्वत शिखर पर, पाताल के समान, देखनेवालोंको भय देनेवाला, मनुष्योंसे पहले कभी नहीं देखा हुआ, महा भयङ्कर, किलेके समान आश्चर्यजनक बिलको देखा, जिसको देखते हुए मनुष्य मोहित हो कर गिर जायं, ऐसे इस बिलके पास जा कर धर्म जाननेवाले महामुनि अगस्त्य बार बार उसको देख कर यह वचन बोले ॥ १४ ॥

शङ्कर उवाच—

दृष्ट्वा चैवंविधं सर्वे निपतिष्यन्ति मोहिताः ॥१४॥ मानवा द्रष्टुकामा ये समारूढा महीधरम् ॥ तस्मादेतन्न चैवास्मिन् भवेदिति मतिर्मम ॥१५॥ बिलं तु भैरवं घोरं मृत्युवक्त्रसमं गिरौ ॥

अगस्त्यने कहा—जो मनुष्य देखनेकी इच्छासे इस पर्वतपर आवेंगे वे मोहित हो कर इस बिलमें गिर पड़ेंगे। इसलिये हमारी राय यह है कि मृत्युमुखके समान यह महा भयङ्कर बिल यहां नहीं होना चाहिये ॥

शङ्कर उवाच—

इत्युक्तो मुनिना तेन सद्यश्चान्तर्हितं बिलम् ॥ १६ ॥ अगस्त्यस्य प्रभावेन तदद्भुतमिवाभवत् ॥ अन्तर्हिते ततस्तस्मिन्विचचार महामुनिः ॥१७॥ तस्मिन्नेव महापुण्ये वेङ्कटाख्ये महागिरौ ॥ ददर्शाथ चिरं तत्र शतशाखसमुच्छ्रितम् ॥ १८ ॥ सालं महाद्भुताकारं मृदुपल्लवशोभितम् ॥ महान्तं महदाश्चर्यमदृष्टं भुवि मानुषैः ॥ १९ ॥

वामदेव बोले—हे राजन्! मुनिके ऐसे कहे जाने पर वह बिल तुरन्त अगस्त्य मुनिके प्रभावसे अन्तर्हित हो गया। यह एक आश्चर्यसा मालूम हुआ। उस बिलके गायब होने पर महर्षि अगस्त्य उसी महापुण्यदायक पवित्र

वेंकटाचलपर विचरने लगे। वहां पर उन्होंने सैकड़ों शाखाओंवाले लतापत्तोंसे शोभायमान, मनुष्योंने जिसको पहिले कभी न देखा, ऐसे अद्भुत आकारके एक ऊंचे सालके वृक्षको देखा ॥ १९ ॥

अथ भगवतः साक्षात्काराय तपः कुर्वन्तमिन्द्रं प्रत्यगस्त्योक्तिः

तं दृष्ट्वा शीघ्रमभ्यायादगस्त्योऽथ महामुनिः ॥ तत्समीपे महातेजा विस्मयाविष्टचेतनः ॥ २० ॥ तमुपेत्य महासालं मुनीन्द्रो मुनिभिः सह ॥ ददर्श शक्रमासीनं देवं साक्षाच्छचीपतिम् ॥२१॥ सालस्कन्धप्रतीकाशबाहुशाखं शतक्रतुम् ॥ रत्नजालोपसम्पन्नमुकुटेन विराजितम् ॥ २२ ॥ वैडूर्यमणिरत्नाढ्यकुण्डलाभ्यामलङ्कृतम् ॥ वज्रपाणिं विशालाक्षं नारायणमिवापरम् ॥२३॥ सूर्याग्नियमवस्वश्विकुबेरवरुणैस्तथा ॥ गन्धर्वकिन्नरेन्द्रैश्च शुभकुण्डलधारिभिः ॥ २४ ॥ दिव्याम्बरधरैरारात्सर्वैः समुपसेवितम् ॥

उसको देख कर महामुनि महातेजस्वी अगस्त्य विस्मित हो कर उसके पास आये। मुनियों सहित अगस्त्यने वहां आ कर उसके नीचे बैठे हुए साक्षात् शचीपति, सालवृक्षकी शाखाओंके समान भुजावाले, अनेक रत्न जड़े हुए मुकुटसे सुशोभित, वैदूर्यमणि और रत्नकुण्डलादिसे अलंकृत, हाथमें वज्र लिये हुए, विशाल नेत्रवाले, दूसरे नारायणके समान, शुभकुण्डल और दिव्य अम्बर धारण किये हुए एवं सूर्य, अग्नि, यम, वसु, अश्विनी कुमार, कुबेर, वरुण, गन्धर्व, किन्नर इत्यादि सब देवोंसे सेवित इन्द्रको देखा ॥ २५ ॥

तं दृष्ट्वा नृपते देवं देवजन्मा महामुनिः ॥२५॥ तत्समीपं महातेजाः सहसा व्यगमत्तदा ॥ संस्तुतं देवदेवेशं त्रैलोक्याधिपतिं द्विजः ॥ २६ ॥ मुनिभिः सहितः सर्वैरपूजयदरिन्दमम् ॥ देवाश्च सह शक्रेण मुनीन्द्रानागतांस्तथा ॥२७॥ अपूजयन्यथान्यायं स्थिताः सार्धं महात्मना ॥ तानुवाच सशक्रांस्तु ततोऽगस्त्यः सुरोत्तमान् ॥ २८ ॥ श्रूयतामिति चाभाष्य प्रहसन्निव विस्मितः ॥

हे नृपते। उन देवाधिदेव इन्द्रको देख महातेजस्वी महामुनि अगस्त्य तुरन्त उनके पास चले गये। सब उन्होंने ऋषियोंके साथ त्रिलोकीके नाथ, देवाधिदेव इन्द्रकी पूजा की। तब इन्द्रसहित देवताओंने भी आये हुए मुनियोंकी यथोचित पूजा की और महात्मा अगस्त्यजीके साथ बैठ गये। बाद विस्मित अगस्त्य मुनि हंस कर इन्द्र सहित देवताओंसे कहने लगे ॥ २६ ॥

किमर्थमागता यूयं वा कंचिन्तयधामराः ॥ २९ ॥ आश्चर्यं चापि

किं दृष्टमस्मिन्पुण्ये नगोत्तमे ॥ एतत्सत्येन मे सर्वमाख्येयं त्रिदशे-श्वराः ॥३०॥ श्रोतुमिच्छाम्यहं त्वेतद्युष्माभिः समुदीरितम् ॥

हे देवताओ ! आपलोग यहाँ क्यों आये हैं ? और किसका ध्यान कर रहे हैं ? क्या आपने इस पुण्य पर्वत पर कोई अद्‌भुत दृश्य देखा है ? हे देवताओं ! यह सत्य सत्य आप लोगोंको मुझे बतलाना चाहिये । मैं आपसे इस बातको सुननेकी इच्छा करता हूँ ॥ ३१ ॥

वामदेव उवाच

अगस्त्येनैवमुक्तास्ते सर्व एव ततः सुराः ॥३१॥ एवमूचुर्मुनिश्रेष्ठं नृपश्रेष्ठासुरार्दनाः ॥ द्रष्टुकामा वयं देवं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥ ३२ ॥ नारायणं हृषीकेशं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ प्रणतार्तिहरं विष्णुं ब्रह्मतत्त्वं सना-तनम् ॥ ३३ ॥ समागम्य मुनिश्रेष्ठ सिंहाख्येऽस्मिन्नगोत्तमे ॥ जयं देवजि-दादीनां दैत्येन्द्राणां महौजसाम् ३४ ॥ प्रार्थयामो वयं ब्रह्मन् देवदेवाज्जना-र्दनात् ॥ तं द्रष्टुमजरं देवं समासीनं महौजसम् ॥ ३५ ॥ चिन्तयन्तस्तमी-शं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ॥

वामदेव बोले– ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्यसे इस प्रकार कहे गये हुए असुरनाशक देवता, उनसे कहने लगे कि हे मुनिश्रेष्ठ ! हम लोग सब मिल कर कमलनेत्र, नारायण, हृषीकेश, शङ्ख चक्र, गदाधारी, भक्तजनोंके दुःख हरनेवाले, ब्रह्मभूत सनातन भगवान विष्णुके साक्षात्कार करनेके लिये यहाँ इस उच्च सिंहाचल पर्वतपर आ कर, हे ब्राह्मण ! देवाधिदेव, भगवान, अजर, महापराक्रमी, सृष्टिकी स्थिति तथा संहारके कारण ईश हीको चिन्तन करते हुए अतुल बलशील, देवताओंको जीतनेवाले दैत्यों पर विजय पानेको प्रार्थना कर रहे हैं ॥ ३६ ॥

एवमूचुर्मुनिश्रेष्ठं नृपश्रेष्ठासुरार्दनाः ॥ ३६ ॥ स एव भगवान्देवो ध्येयोऽस्माभिः सनातनः ॥ नान्यो ध्येयः पुमान् यस्माद्विद्यते न च दृश्यते ॥३७॥ दृष्टं चापि महाश्चर्यं पर्वतेऽस्मिन्महामुने ॥ शुभे तु दक्षिणे भागे गिरेरस्य महीयसः ॥३८॥

हे नृपश्रेष्ठ ! देवतागण इस तरह मुनिसे कहने लगे कि हमलोग इसी सनातन भगवानका ध्यान कर रहे हैं। हम उन परमात्माके सिवाय किसी अन्यका ध्यान नहीं करते हैं। न कोई दूसरा ऐसा है और न देखा ही जाता है । हे महामुने ! इस महा पर्वतके शुभ दक्षिण भागमें एक अद्‌भुत दृश्य भी हमने देखा है ॥ ३८ ॥

अथ इन्द्रोक्त्याऽगस्त्यस्य शङ्करदर्शनायाग्नेयदिग्गमनम्

आश्चर्यभूतो भगवान्वसतीशः सदा हरः ॥ पिनाकपाणिः सर्वात्मा

सर्वशक्तिर्महेश्वरः ॥ ३९ ॥ स्वैरेव संवृतो भूतैः किन्नरोरगराक्षसैः ॥ तत्र गत्वा च देवेशं द्रक्ष्यामि भुवनेश्वरम् ॥ ४० ॥ ऋषिं दुर्वाससश्चापि नन्दिकेश्वरमेव च ॥ ये चाप्यनुचरास्तत्र तांश्चापि द्रक्ष्यसे मुने ॥ ४१ ॥ इतो गच्छ हि तं देशं यत्राऽऽस्ते भगवान् हरः ॥ एभिर्मुनिवरैः सार्धं मा विलम्बितुमर्हसि ॥४२॥

पिनाकधनुषको धारण किये हुए, सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान महेश्वर और आश्चर्यरूप हर सदा अपने भूत, किन्नर उरग राक्षस गणोंके साथ वहां निवास करते हैं। आप वहां जा कर देवाधिदेव भुवनेश्वर, महर्षि दूर्वासा तथा नन्दिकेश्वरको भी देखेंगे। हे महामुने! और जितने अनुचर हैं उन सबको भी आप वहां पावेंगे। आप उस कल्याण करनेवाले स्थानमें जहां भगवान हर निवास करते हैं जाइये। अब विलम्ब न कीजिये ॥ ४२ ॥

वामदेव उवाच—

एव मुक्तः सुरैः सर्वैरभ्यनुज्ञाय तान् सुरान् ॥ पूर्वभागं विहायाऽथ भूधरस्य महीयसः ॥ ४३ ॥ अभ्यगाद्दक्षिणं भागं तैरेव मुनिभिः सह ॥ स पश्यन्दक्षिणं भागमगस्त्योऽथ महामुनिः ॥ ४४ ॥ आग्नेय्यां दिशि चाद्राक्षीदिदमाश्चर्यमुत्तमम् ॥ शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गशक्तिलाङ्गलनन्दकान् ॥४५ स्वैः स्वैः रूपैः समासीनान् भ्राजयन्तिर्दिशो दश ॥ दिव्याभरणमालाभिर्भ्राजिताञ्छुभदर्शनान् ॥ ४६ ॥ रक्तचन्दनदिग्धाङ्गान्दिव्यमाल्योपशोभितान् ॥ शुभनूपुरकेयूरकटकादिविभूषितान् ॥ ४७ ॥

वामदेव बोले—सब देवताओंके ऐसा कहने पर उनकी आज्ञा ले कर उस महा पर्वतके पूर्वभागको लांघ कर महर्षि अगस्त्य उन मुनिगणोंके साथ ही दक्षिण भागकी ओर चले गये। दक्षिण भागको देखते हुए उन्होंने अग्निकोणमें दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले, अपने अपने रूपसे बैठे हुए, एक ही प्रकारके दिव्य भूषण और मालाओंको धारण किये हुए स्वयं प्रकाशमान, देखनेमें अति सुन्दर तथा लाल चन्दन दिव्य पुष्प, श्रेष्ठ और मांगलिक नूपुर, केयूर, कड़े, आदिसे विभूषित शङ्ख, चक्र, गदा शार्ङ्ग, शक्ति, हल, और नन्द नामक खड्गको देखा ॥ ४७॥

अथ तान्सहसा दृष्ट्वा मुनीन्द्रः पुरुषर्षभान् ॥ तेषां समीपमागम्य सहर्षो मुनिभिः सह ॥ ४८ ॥ अगस्त्यश्च ततस्तेभ्यः प्रणाममकरोत्तदा ॥ प्रणम्य प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रस्तूय च महाद्युतिः ॥ ४९ ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं चापि दक्षिणां दिशमभ्यगात ॥

ऐसे उन पुरुष श्रेष्ठोंको देख कर ही मुनियों सहित महर्षि अगस्त्य बड़े प्रसन्न हुए और उनके समीप आ कर उन्होंने उनको प्रणाम किया और बद्धांजलि हो कर स्तुति, प्रणाम तथा प्रदक्षिणा करके, हे नृप ! मुनियों सहित बड़े विस्मित हो कर आदि देव, जगन्नाथ महादेवकी दर्शनेच्छासे वे दक्षिण दिशाको ओर चले गये ।।५०।।

अत्यन्तं विस्मयाविष्टो मुनिभिः सहितो नृप ॥५०॥ आदिदेवं महादेवं द्रष्टुकामो जनार्दनम् ॥ आश्चर्यरूपमारुह्य प्रेक्षमाणो महागिरिम् ५१॥ परीत्य तस्यैव नगोत्तमस्य प्राचीं दिशं देवगणाभिजुष्टाम् ॥ अवाप्य तस्यैव गिरेर्महात्मा तं दक्षिणं भागमसौ प्रपेदे ॥ ५२ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अगस्त्यस्य शेषाचलशासीन्द्रादितपःप्रकारभगवद्दिव्यायुधदर्शनादिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायोऽत्राष्टमः ॥ ८ ॥

आश्चर्यरूप उस महा पर्वतपर चढ़ कर इधर उधर देखते हुए देवगणोंसे सेवित उस पर्वतकी पूर्व दिशाको पा कर महात्मा अगस्त्य उसी पर्वतके दक्षिण भागमें आ पहुंचे ॥ ५२ ॥

इति अष्टमोऽध्यायः ॥

नवमोऽध्यायः



शेषाचलके वाम दिशि, कन्दरस्थ शिव रूप ।
सेवित ऋषी अगस्त्यसे, प्रकटे चेतन रूप ॥१॥
मुनि शङ्कर संवाद अरु, प्रभु भक्ति उपदेश ।
शंकर लोप मुनीशका, खोजन बाकी देश ॥२॥

अथ अगस्त्यकृतशेषाचलदक्षिणभागस्थशंकरसेवाक्रमः

वामदेव उवाच—

तस्याऽथ दक्षिणं भागं भूधरस्य महीयसः ॥ अवाप परया प्रीत्या मु-

नीन्द्रो मेघसन्निभम् ॥१॥ शुभगुल्मलतागूढं नानापादपसङ्कुलम् ॥ मार्जारै-र्वानरैश्चापि गोपुच्छैश्च निषेवितम् ॥ २ ॥ फलवद्द्रुमषण्डैश्च पुष्पभार-निपीडितैः ॥ दर्शनीयतमैर्दिव्यैः शोभितं शुभशाखिभिः ॥ ३ ॥ भिन्ना-ञ्जनचयाकारं शिलाभिरुपशोभितम् ॥ हंससारसगृध्रैश्च शतपत्रैश्च शो-भितम् ॥ ४ ॥ शोभितं रमणीयैश्च चक्रवाकैर्महास्वनैः ॥ नानाधातुसमा-कीर्णं नानाप्रस्रवणाकुलम् ॥ ५ ॥ गुह्यविद्याधराद्यैश्च सभार्यैः शुभद-र्शनैः ॥ शोभितं शुभगन्धाढ्यं शुभमारुतसेवितम् ॥ ६ ॥ गायद्भिः कि-न्नरैश्चापि गन्धर्वैश्च निषेवितम् ॥ प्रसादयद्भिर्देवेशं कृष्णमक्लिष्टकारि-णम् ॥ ७ ॥

वामदेव बोले—महर्षि अगस्त्य मेघके समान कान्तिमान, सुन्दर लता, वेल और अनेक वृक्षोंसे शोभित, बिडाल, वानर आदिसे सेवित, देखनेमें सुन्दर, पुष्प, फल और शुभ शाखाओंवाले अनेक वृक्षोंसे शोभित, सुन्दर शिलाओंसे युक्त, मानो एक बड़ा भारी काजलका समूह है, हंस, सारस, गृद्ध और कमलोंसे शोभित, तथ सुन्दर शब्द करनेवाले चक्रवाक, नाना प्रकारकी धातु और अनेक तरहके झरनोंसे सेवित, शुभदर्शन, अपनी अपनी भार्याओंके साथ विहार करनेवाले गुह्य और विद्याधरोंसे शोभित, अति सुगन्धित वायुसे व्याप्त, गाते एवं दुःखापहारी श्रीकृष्ण परमात्माको प्रसन्न करते हुए किन्नर और गन्धर्वोंसे निषेवित दक्षिण भागमें गये ॥ ७ ॥

एवमत्यद्भुतं दिव्यं दक्षिणं भागमात्मवान् ॥ ददर्श मुनिशार्दूलः प-र्वतस्य महीयसः ॥ ८ ॥ तत्रापि नृपतेऽद्राक्षीत्पुष्पितं बहुशाखिनम् ॥ अत्युच्छ्रितं महाश्चर्यं दर्शनीयतमं नृप ॥९॥ अतीव शुभगन्धाढ्यं मृदु-पल्लवशोभितम् ॥ वृक्षं महाद्भुतं दिव्यं यो न दृष्टः पुरातनैः ॥ १० ॥

मुनिने पर्वतके इस तरहके अत्यन्त अद्भुत दिव्य दक्षिण भागको देखा। वहां भी उन्होंने बहुत शाखाओं और पुष्पोंवाला, अति ऊंचा, बहुत सुन्दर, आश्चर्यवर्धक, गन्धयुक्त कोमल पत्तोंसे शोभित एवं महा विचित्र एक दिव्य वृक्ष देखा, जिसको प्राचीन लोगोंने कभी न देखा था ॥ १० ॥

तं दृष्ट्वा सहसाऽगस्त्यो ययौ शीघ्रतरं मुनिः ॥ मुनीन्द्रैः सहितः सर्वैर्नरेन्द्रः सोऽतिविस्मितः ॥ ११ ॥ तत्समीपं समागम्य कौतूहलसम-न्वितः ॥ उदैक्षत महातेजास्तं वृक्षं बहुशाखिनम् ॥ १२ ॥

उसको देख कर एकाएक बड़ी जल्दीसे अगस्त्य मुनि उसके पास गये और मुनियों सहित बड़े विस्मित हुए।

महा तेजस्वी अगस्त्यने अत्यन्त आश्चर्यान्वित हो कर उसके पास जा कर बहुत शाखावाले उस वृक्षको देखा ॥१२॥

तत्रासीनं ततोऽपश्यद्भगवन्तमुमापतिम् ॥ नेत्रै रक्तैः समायुक्तं त्रिभिस्त्रिभिरिवाग्निभिः ॥१३॥उदङ्मुखं महाश्चर्यजटामण्डलधारिणम् ॥ चतुर्भुजं महादेवं नीलकण्ठं पिनाकिनम् ॥१४॥ तरुणादित्यसङ्काशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥ स्वेनैव तेजसा देवं भासयन्तं दिशो दश ॥१५॥ कपिलाक्षं विशालाक्षं चार्वोष्ठं चारुवक्षसम् ॥ समुन्नततनुं सौम्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ १६ ॥ नानामणिगणच्छन्नज्वलत्कुण्डलधारिणम् ॥ तैस्तैरनुचरैश्चापि नानारूपधरैस्तथा ॥ १७ ॥ अनेकबाहुसाहस्रैर्बलवद्भिर्निषेवितम् ॥ नन्दिकेश्वरदुर्वासोबाणाद्यैश्च निषेवितम् ॥ १८ ॥ यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्देवैश्चापि निषेवितम् ॥ हाहाहूहूभ्यां च तथा गन्धर्वाभ्यां निषेवितम् ॥१९॥ तैस्तैरभिष्टुतं चैव महादेवं महाद्युतिम् ॥

उन्होंने उस वृक्षके नीचे बैठे, उत्तरकी तरफ मुंह किये हुए, महा आश्चर्यमय जटामण्डलको धारण करनेवाले, अपने ही तेजसे तरुण सूर्यके समान प्रकाशमान, एवं अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले, कपिल और विशाल नेत्र, सुन्दर ओष्ठ, मनोहर वक्षस्थल, ऊंची देह तथा सौम्यमूर्तिवाले, सब लोकोंसे नमस्कृत, अनेक प्रकारके सुन्दर सुन्दर मणिगणसे चमकीले कुण्डलोंसे भूषित, नाना रूपधारी, सहस्रों भुजावाले, पराक्रमी अनुचरों, नन्दिकेश्वर दुर्वासा, बाणासुर, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व, देवता और हाहा, हूहू गन्धर्वोंसे सेवित तथा उनसे स्तुति किये जाते हुए, अति कान्तिमान् भगवान् शम्भु उमापति महादेवको देखा, जिनके लाल तीन नेत्र ऐसे थे मानो तीन अग्नि हों ॥ २० ॥

दृष्ट्वा शम्भुं तदाऽगस्त्यो ननाम शिरसा भुवि ॥ २० ॥ प्रणेमुर्मुनयश्चापि भगवन्तं महेश्वरम् ॥ ब्रुवन्तो देवदेवेशं प्रसीदेति पुनः पुनः ॥२१ ॥ प्रस्तूय तं महादेवं भगवन्तं महेश्वरम् ॥ उवाच च तदाऽगस्त्यः समासीनं महौजसम् ॥ २२ ॥ नानारत्नविचित्रैश्च वलयैश्च विभूषितम् ॥ जाम्बूनदमयैश्चापि केयूरैः समलङ्कृतम् ॥ २३ ॥ वरदं सर्वभूतानां सर्वदेवनमस्कृतम् ॥किं न मां भाषसे देव त्वत्समीपमिहागतम् ॥ २४ ॥ को वा ध्येयस्त्वया देवः कोऽस्मिन्वा निवसत्यहो ॥

शम्भुको देख कर अगस्त्य मुनिने शिरसे उनको प्रणाम किया। 'हे देवाधिदेव ! प्रसन्न हों' ऐसे बार बार ... प्रणाम किया और महादेव भगवान् महेश्वरकी स्तुति करके महा पराक्रमी, नाना रत्न और

विचित्र वलय (कड़े) तथा स्वर्णमय केयूरोंसे अलंकृत, वरद और सर्वान्तर्यामी सब देवोंसे नमस्कार किये जाते हुए भगवान् शंकरसे अगस्त्य मुनि कहने लगे—हे देव! पास आये हुए मुझसे आप क्यों नहीं बोल रहे हैं? हे देव! आप यहां किसका ध्यान कर रहे हैं और यहां कौन निवास करता है? ॥ २५ ॥

अथ सेवाकाङ्क्षिणमगस्त्यं प्रति शङ्करोक्तिः

वामदेव उवाच—

एवमुक्तो महातेजा महादेवो महामुनिम् ॥ २५ ॥ जलदस्वनगम्भीर-
वचसा वाक्यमब्रवीत् ॥

वामदेव बोले—इस तरह कहने पर महा तेजस्वी महादेव मेघके समान गम्भीर वाणीसे महामुनि अगस्त्यसे कहने लगे।

शङ्कर उवाच—

परावरपतिर्देवो विश्वयोनिर्जनार्दनः ॥ २६ ॥ मया चान्यैश्च स-
र्वात्मा ध्येयो नारायणो हरिः ॥ नान्यो ध्येयः पुमाँल्लोके दृश्यते न च
विद्यते २७ ॥ तमृते जगतां नाथं सर्वव्यापिनमीश्वरम् ॥ नारायणगिराव-
स्मिन्वसत्येष सनातनः ॥२८॥ नारायणो जगद्योनिर्भगवान् पुरुषोत्तमः ॥

शङ्कर बोले - हे मुने! पर और अपरके स्वामी, संसारके कारण, सर्वान्तर्यामी, जनार्दन नारायणका मैं ध्यान करता हूं। वही हम एवं औरोंसे भी ध्येय है। उस सर्वव्यापी परमात्माके सिवाय संसारमें न तो कोई पुरुष ध्यान करनेके योग्य देखा जाता है और न है,वही नारायण जगत्कारण सनातन भगवान् इस पर्वतपर निवास करते हैं ॥२८॥

अस्मिन्न्यस्तं मनो यस्मान्मया सर्वेश्वरे हरौ ॥ २९ ॥ तस्मात्स-
मागतं त्वाहं नाभिभाषे न चान्यथा ॥ त्वं चापि तं विशालाक्षं जना-
नामीश्वरेश्वरम् ॥ ३० ॥ शरण्यं सर्वभूतानामनादिनिधनं हरिम् ॥ ज्वल-
न्मुकुटकेयूरकटकादिविभूषितम् ॥३१॥ मालया दिव्यया चापि वैजयन्त्या
विराजितम् ॥ पतत्रिराजमारूढं द्रक्ष्यसे विश्वरूपिणम् ॥ ३२ ॥

मैंने उन सर्वेश्वर हरिमें अपना मन लगा दिया था, हे मुने! इसी कारण मैंने आये हुए आपसे कोई बात नहीं की और कोई कारण नहीं। आप भी शरणागतवत्सल, सर्वान्तर्यामी, सभी संसारके स्वामीके भी स्वामी, जिसका न आदि और न अन्त है, चमकते हुए मुकुट, केयूर, कड़े आदिसे विभूषित, गलेमें दिव्य वैजयन्ती मालासे शोभित, गरुड़पर आरूढ़, ऐसे विश्वरूपी परमात्माके दर्शन करोगे ॥३२॥

ब्रह्मणापि मया चात्र प्रोक्तमेतत्तवानघ ॥ द्रष्टासीति जगन्नाथं भवत्येतन्न संशयः ॥३३॥ अचिरेणैव कालेन भगवान् पुरुषोत्तमः ॥ करिष्यति स विश्वात्मा सान्निध्यं तव केशवः ॥ ३४ ॥ विचरस्व यथापूर्वं पर्वतेऽस्मिन्महामुने ॥ मा विषादं कृथा ब्रह्मंस्तस्मिन्न्यस्तमना भव ॥३५॥

हे निष्पाप ! तुमसे ब्रह्माने और मैंने भी यही पाओ कहा था कि तुम जगन्नाथके दर्शन करोगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। थोड़े ही समयमें विश्वात्मा भगवान् पुरुषोत्तम केशव आपको दर्शन देंगे। हे मुने ! आप पहलेके समान इस पर्वतपर भ्रमण करें और चिन्ता मत करें। हे ब्रह्मन् ! आप अपने मनको उस परमात्मामें लगा दें ॥ ३५ ॥

एवमुक्तस्तु देवेन शम्भुना परमेष्ठिना ॥ पुनः पुनः प्रणम्येशं तस्मान्नैवाभ्ययान्मुनिः ॥३६॥ स्नेहान्वितो मुनिश्रेष्ठस्तस्मिन्देवे पिनाकिनि ॥ पश्यतां तु मुनीन्द्राणामगस्त्यस्य तु पश्यतः ॥ ३७ ॥ सानुगः सहसा शम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ मुनयश्चापि तं देवं संस्तूय परमेश्वरम् ॥ ३८ ॥ प्रणम्य च मुनीन्द्रेण सह तेऽभ्यगमंस्तदा ॥

तपोनिष्ठ शम्भुके ऐसा कहने पर मुनिने उनको बार बार प्रणाम किया और शङ्करमें अधिक स्नेह हो जानेसे वे वहांसे नहीं हटे। फिर सब मुनियोंके सहित अगस्त्यके देखते देखते अपने अनुचरों सहित भगवान शङ्कर वहीं अन्तर्धान हो गये। मुनिगण भी परमेश्वरकी स्तुति और प्रणाम करके अगस्त्यके साथ वहांसे चल दिये ॥ ३९ ॥

एवमेतन्महाश्चर्यं संवादं शम्भुना सह ॥ ३९ ॥ ऋषिभिर्विस्तृतं लोके ह्यगस्त्यस्य महात्मनः ॥ आख्यातं ते मया चापि मिथिलेश महाद्भुतम् ॥ ४० ॥ सर्वपापप्रशमनं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥

शङ्करके साथ महात्मा अगस्त्यका जो इस तरहका यह आश्चर्यमय संवाद है, जिसको अगस्त्यादि मुनियोंने संसारमें विख्यात किया है, हे मिथिलेश ! सब पापोंको नाश करने वाले उस महा अद्भुत आख्यानको मैंने तुम्हें समझा दिया है। हे जनक ! अब तुम और क्या सुननेकी इच्छा करते हो ? ॥४१॥

जनक उवाच—

आश्चर्यमिदमाख्यानं कथितं मे महामुने ॥ ४१ ॥ श्रुतं चापि मया सम्यक्प्रहृष्टेनान्तरात्मना॥ ततः परं मुनीन्द्रोऽसावकरोत्किं महाद्युतिः॥४२॥ एतदाचक्ष्व मे ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ॥

जनक बोले—हे मुने ! आपने यह विचित्र प्रसङ्ग कहा है, मैंने भी इसको प्रसन्नचित्तसे सुना है। अब आप यह बतलाइये कि इसके बाद महातेजस्वी अगस्त्यने क्या किया ? हे महान् ! आप यह आख्यान कहिये, मुझे सुननेकी बड़ी इच्छा है॥ ४३॥

वामदेव उवाच—

अगस्त्योऽथ महातेजाः प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ४३ ॥ त्यक्त्वाऽथ दक्षिणं भागं नैर्ऋतीं दिशमास्थितः ॥ तं दक्षिणं भागमतीत्य भूपते नारायणाद्रेः सह तैर्मुनीश्वरः ॥ अथोत्तमां दक्षिणपश्चिमां दिशं द्रष्टुं परेशं प्रययौ प्रतापवान् ॥ ४४ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अगस्त्य-
कृतशेषाचलदक्षिणभागवासिशङ्करदर्शनादिवर्णनं
नामाष्टाविंशोऽध्यायोऽत्र नवमः ॥ ९ ॥

वामदेव बोले—हे राजन ! इसके पश्चात महातेजस्वी अगस्त्य महेश्वरको प्रणाम करके दक्षिण भागको छोड़ कर नैर्ऋत्य दिशामें चले गये। हे भूपते ! नारायणाद्रिके दक्षिण भागको त्याग कर मुनिवरोंके साथ प्रतापवान महर्षि अगस्त्य उस परमात्माको देखनेके लिये दक्षिण दिशामें चले गये।

इति नवमोऽध्यायः



दशमोऽध्यायः

नैऋत दिशिमें मुनिसे, विष्वक्सेना भेंट।
प्रभु दर्शनकी विधि कथन, पुनि पार्षदसे भेंट ॥१॥
ऋषि अगस्त्यके प्रश्नपर, वर्णन निज वृत्तान्त।
दरशन तीरथ स्नान अरु, विचरण उपवन प्रान्त ॥२॥

अथ शेषाचलनैर्ऋतदिश्यगस्त्यादीनां विष्वक्सेनदर्शनम्

वामदेव उवाच

तां दिशं समनुप्राप्य नैर्ऋतीं भगवानथ ॥ मन्दराद्रिप्रतीकाशं शत-
शाखं महोच्छ्रितम् ॥१॥ वटं महान्तमाश्चर्यं ददर्श स महामुनिः ॥ तस्य
मूले समासीनं भगवन्तं सुरेश्वरम् ॥ २ ॥ शिलायामद्भुतायां तु महत्यां
दीप्ततेजसम् ॥ विष्वक्सेनं सुराध्यक्षं भगवन्न्यस्तमानसम् ॥३॥ सर्वैरनु-
चरैश्चापि महेन्द्रसमविक्रमैः ॥ संवृतं बलिभिर्देवैः शतक्रतुमिवापरम् ॥४
वसन्तमिव चाकाशं भक्षयन्तमिव प्रजाः ॥

वामदेव बोले—महामुनि अगस्त्यने नैर्ऋत्य दिशामें जा कर मन्दराचल पर्वतके समान सौ शाखावाला अति ऊंचा आश्चर्य जनक एक बड़का वृक्ष देखा। उसके मूलके नीचे उन्होंने एक बड़ा भारी अद्भुत शिलापर अति तेजस्वी भगवद्ध्यानमें लीन, सुराध्यक्ष, भगवान सुरेश्वर महेन्द्रके समान पराक्रमी सब अनुचरों, और बलशाली देवताओंसे युक्त, मानो दूसरे इन्द्र बैठे हों, मानों प्रजाको भक्षण करते हुए आकाश ही खड़ा है, इस प्रकारके विष्वक्सेनको देखा ॥ ५ ॥

दैत्येन्द्रा बलवन्तस्तं परिवार्योपतस्थिरे ॥ ५ ॥ शतशो दृष्टकर्माणो
राक्षसाश्च भयावहाः ॥ गन्धर्वपतयश्चापि यक्षाश्चापि सहस्रशः ॥ ६ ॥
तमासीनं महावीर्यं विष्वक्सेनं नराधिप ॥ उपातिष्ठन्त ते सर्वे गृहीतवि-
विधायुधाः ॥७॥ भूतयूथानि चोग्राणि वैष्णवानि सहस्रशः ॥ मेरुमन्दर-
सङ्काशरूपवन्ति महान्ति च ॥ ८ ॥ क्रुद्धानि यानि भूतानि निर्दहेयुरिमाः
प्रजाः ॥ पिबेयुः सहसा सर्वानुदधींश्चापि सर्वशः ॥ ९ ॥ तानि चावार्य
तं देवमुपातिष्ठत सर्वशः ॥

सैकड़ों भयप्रद महापराक्रमी राक्षस और हजारों गन्धर्वपति तथा यक्ष चारों तरफ घेरे उनकी स्तुति कर रहे हैं। बैठे हुए महापराक्रमी विष्वक्सेनके पास विविध प्रकारके आयुधोंको ले कर वे सभी खड़े हुए हैं। रूपमें मेरु और मन्दर पर्वतके समान, हजारों श्रीविष्णुके दास महाभूतगण,जो क्रुद्ध हो कर प्रजाको जला सकते हैं और सब समुद्रोंको पी सकते हैं, उन बैठे हुए विष्वक्सेनजीको चारों तरफसे घेरे हुए खड़े हैं।

एवमेतैस्तथान्यैश्च समेतैस्तत्र भूधरे ॥ १० ॥ उपास्यमानं तं देवं
प्रासतोमरपाणिभिः ॥ सुस्वरैर्गीयमानाश्च गन्धर्वास्तस्य सन्निधौ ॥ ११ ॥

जग्मुर्नारायणं देवं किन्नरेन्द्रास्तु सर्वशः ॥ गायन्त्यः सुस्वराश्चापि नृत्यन्त्योऽप्सरसस्तथा॥१२॥ विष्वक्सेनस्य देवस्य सन्निधौ तस्य धीमतः॥ देवा ब्रह्मर्षयश्चापि सिद्धाश्चापि सहस्रशः ॥ १३ ॥ उपतस्थुर्हि तं देवं नारायणमिवापरम् ॥

मधुर मधुर स्वरोंमें गान करते हुए अनेक गन्धर्व किन्नरेन्द्र और सुन्दर स्वरवाली नाचती और गाती हुई अनेक अप्सरायें प्रास और तोमर हाथमें लिये हुए अनेक भूतादि गणसे उन पर्वतपर उपासना किये जाते हुए उन बुद्धिमान भगवान नारायण विष्वक्सेनके पास पहुंची हुई हैं। देवता, महर्षि और हजारों सिद्ध द्वितीय नारायण हीके समान उनके पास आ कर खडे हुए ॥ १४ ॥

तं दृष्ट्वा विस्मयाविष्टो रोमाञ्चिततनुस्तदा ॥ १४ ॥ अगस्त्यो मुनिशार्दूलस्तत्समीपमुपेयिवान् ॥ तत्समीपमुपागम्य प्रणाममकरोद्भुवि ॥१५॥ व्याहरञ्छ्लक्ष्णया वाचा प्रसीदेति पुनः पुनः ॥ प्रणेमुर्मुनयश्चापि तमासीनं महाबलम् ॥ १६ ॥ सुखासीनं महेष्वासं नारायणमिवापरम् ॥ शङ्खचक्रगदापाणिमभयोद्यतपाणिकम् ॥ १७ ॥ तानब्रवीन्महावीर्यो विष्वक्सेनो नराधिप ॥ अगस्त्यप्रमुखान्सर्वान्नृपोत्परपुरञ्जय ॥१८॥

उनको देख कर मुनिशार्दूल महर्षि अगस्त्य बडे विस्मित हुए और उनके रोमाञ्च हो आये। मुनिने उनके पास जा कर उनको प्रणाम किया और मधुर वाणीसे कहा–हे देव। आप प्रसन्न हों, प्रसन्न हों। फिर उन बलवान, धनुषको धारण करके सुखसे पृथ्वीपर बैठे हुए, जिनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा शोभित हो रहे हैं, मानो दूसरे नारायण ही प्रतीत हो रहे हैं, ऐसे विष्वक्सेनजीको सब मुनियोंने भी प्रणाम किया। हे नराधिप। महापराक्रमी, विष्वक्सेनजी उन अगस्त्यादि मुनियोंसे कहने लगे ॥ १७ ॥

विष्वक्सेन उवाच—

युष्माभिर्भगवान्देवो विश्वरूपधरो हरिः ॥ अस्मिन्गिरौ महातेजा द्रष्टुं शक्यो हि सोऽव्ययः ॥ १९ ॥

विष्वक्सेन बोले –हे मुनियो! आप लोग इस पर्वतपर देवाधिदेव विश्वरूपधारी अति तेजस्वी भगवान् हरि नारायणके दर्शन कर सकते हैं॥ १९ ॥

अथ अगस्त्यादीन्प्रति विष्वक्सेनोक्तभगवद्दर्शनोपायः

सर्ववेदोदितस्यास्य देवस्यानुचरा वयम् ॥ दृष्टवन्तोऽजितं पूर्वं समासीनं

महौजसम् ॥ २० ॥ नारायणं सुराध्यक्षं शङ्खचक्रासिधारिणम् ॥ वसत्यस्मिन्स विश्वात्मा नारायणगिरौ द्विजाः ॥ २१ ॥ विचरध्वं यथापूर्वमस्मिन्पर्वतसत्तमे ॥

सम्पूर्ण वेदोंने जिनका प्रतिपादन किया है, हम सब उन्हीं परमात्माके अनुचर हैं। हमने पहले यहांपर बैठे हुए महातेजस्वी, सुराध्यक्ष एवं शंख, चक्र खड्ग धारण किये हुए उस नारायणके दर्शन किये हैं। वह सर्वान्तर्यामी नारायण इस पर्वतपर निवास करते हैं। हे महर्षियो ! आप लोग पहलेके ही समान भ्रमण कीजिये।

एतस्मिन्पर्वते दिव्ये प्रसादात्तस्य शार्ङ्गिणः ॥ २२ ॥ अदृष्टरूपमाश्चर्यं दृष्टवन्तः पुरा वयम् ॥ तपस्तप्यन्ति ये चास्मिन्द्रष्टुकामास्तमीश्वरम् ॥२३॥ ददाति भगवांस्तेषां दर्शनं पुरुषोत्तमः ॥ यूयमप्यत्र चास्माभिर्विमले पर्वतोत्तमे ॥ २४ ॥ परमं तप आस्थाय भक्त्या परमया युताः ॥ चरताशेषभूतानामीश्वरे न्यस्तमानसाः ॥ २५ ॥ विष्णौ ब्रह्मणि गोविन्दे जगद्धातरि केशवे ॥

हमने उन शार्ङ्गपाणि भगवान्की कृपासे इस दिव्य पर्वतपर ऐसे अद्भुत दृश्य देखे हैं जिनको पहले कभी नहीं देखा था। नारायणको देखनेके लिये जो इस पर्वतपर तप करते हैं उनको भगवान् पुरुषोत्तम दर्शन देते हैं। हे मुनियों ! आप लोग भी हम लोगोंके साथ इस उत्तम, निर्मल पर्वतपर विष्णु ब्रह्म, गोविन्द, जगत्के रक्षक, धाता, केशव सर्वान्तर्यामी ईश्वरमें मन लगा कर भक्तिपूर्वक तप करते हुए विचरण कीजिये ॥ २६ ॥

वामदेव उवाच—

एवमुक्त्वाऽथ भगवान्विष्वक्सेनः स वीर्यवान् ॥ २६ ॥ अन्तर्दधे तदा देवस्तत्रैव नृपते प्रभुः ॥ सर्वैरनुचरैः सार्धं सर्वदेवनमस्कृतः ॥२७॥ पश्यतामेव सर्वेषां मुनीन्द्राणां महात्मनाम् ॥ मुनयश्चापि ते सर्वे सहसैव महाद्युतिम् ॥ प्रणम्य तं महात्मानं विष्वक्सेनं मुदा युताः ॥ २८ ॥ पुनश्चापि यथापूर्वं विचेरुरवनीपते ॥

वामदेव बोले—हे नृपते ! इतना कह कर महात्मा मुनियोंके देखते देखते सर्वदेव नमस्कृत वीर्यवान् भगवान् विष्वक्सेन अपने अनुचरोंके साथ वहीं अन्तर्हित हो गये। वे सब मुनि भी उन महातेजस्वी महात्मा विष्वक्सेनको प्रणाम करके अति प्रसन्न हो कर फिर वहाँपर पहलेकी तरह विचरने लगे ॥ २८ ॥

अथ अगस्त्यादीनां शेषाचलस्थविष्वक्सेनानुचरावलोकनम्

वेङ्कटाख्ये गिरौ तस्मिन्वृक्षषण्डविभूषिते ॥ २९ ॥ गिरिमूर्ध्नि चर-

न्तस्ते मुनयः सर्वे एव तु ॥ ददृशुस्तत्र रम्याणि शिखराणि महान्ति च ॥ ३० ॥ पुष्पितद्रुमषण्डैश्च मण्डितानि सहस्रशः ॥ नीलजीमूतवर्णानि पाण्डुराभ्रनिभानि च ३१ ॥ देवदानवगन्धर्वयक्षकिंपुरुषैस्तथा ॥ गुह्यविद्याधराद्यैश्च सेवितानि महात्मभिः ॥ ३२ ॥ शिखराच्छिखरं गत्वा चरन्तस्ते महीपते ॥

हे अवनीपते ! फिर उन मुनिगणने पहलेके समान वृक्षसमूहसे विभूषित, उस वेङ्कटाचल पर्वतके शिखरपर भ्रमण करते हुए पुष्पवाले वृक्षोंसे मण्डित, सहस्रों अति रमणीय, नीले मेघके समान और श्वेत मेघके समान, देव, दानव, गन्धर्व, किंपुरुष, गुह्य, विद्याधरादि तथा महात्माओंसे सेवित शिखरोंको देखा और एक शिखरसे दूसरे शिखरपर विचरण करने लगे ॥ ३२ ॥

ददृशुः शिखरे रम्ये कस्मिंश्चिन्मुनयोऽमलाः ॥ ३३ ॥ समासीनान्महावीर्यान्महाचलनिभांस्तथा ॥ कामरूपधरान्घोरान्वायुवेगसमाञ्जवे ॥ ३४ ॥ मेरुमन्दरसङ्काशान्समवेगान्सहस्रशः ॥ किन्नरांश्चापि गन्धर्वान् यक्षांश्चापि महासुरान् ॥३५॥ तान् दृष्ट्वा स मुनीन्द्रस्तु मुनीन्द्रानिदमब्रवीत् ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनो विस्मयोत्फुल्ललोचनान् ॥ ३६ ॥

उन मुनियोंने एक रमणीय शिखरपर कामरूपधारी अतिबलवान्, भयंकर, वेगमें वायुके समान, मेरु तथा मन्दर पर्वतके समान आकारवाले, परस्पर समान वेगवाले हजारों किन्नर, गन्धर्व, यक्ष और बडे बडे महा असुरोंको बैठे हुए देखा । उनको देख कर विकसित नेत्र महामुनि अगस्त्यने विस्मयसे विकसित नेत्रोंवाले मुनियोंसे कहा ॥ ३६ ॥

अगस्त्य उवाच—

नूनमेतैः पुरा शक्रो बलवीर्यसमन्वितैः ॥ देवासुरमहायुद्धे दैतेयानजयन् द्विजाः ॥ ३७ ॥ एते हि बलिनः सर्वे विचित्राद्भुतवाससः ॥ नानाप्रहरणोपेता दृश्यन्तेऽद्भुतरूपिणः ॥ ३८ ॥ एतान् दृष्ट्वाऽथ गच्छामो द्रष्टुमेतं महागिरिम् ॥ आलयं सर्वभूतानामीश्वरस्याव्ययात्मनः ॥३९॥

अगस्त्य बोले—हे द्विजो ! पूर्व कालमें इन बलवीर्यशाली असुरोंके साथ इन्द्रने देवासुर संग्राममें दैत्योंको जीता था। अत्यन्त बलवान् और विचित्र वस्त्रोंवाले, नाना प्रकारके अस्त्रोंको धारण किये हुए ये अद्भुत

रूपवाले दीख रहे हैं। इनको देख कर हमलोग सर्वान्तर्यामी, अव्ययात्मा परमात्माके वासस्थान इस महापर्वत पर चलें॥ ३९॥

वामदेव उवाच—

इति निश्चित्य मनसा नरेन्द्र मुनिभिर्वृतः॥ तेषां समीपमभ्यायाद्गन्धर्वाणां तरस्विनाम्॥ ४०॥ तमायान्तं ततो दृष्ट्वा मुनीन्द्रं मिथिलेश्वर॥ उपतस्थुर्हि ते सर्वे ब्रह्माणं त्रिदशा इव॥ ४१॥ प्रणेमुश्च महात्मानं तत्समीपमुपागमन्॥ तानुवाच ततोऽगस्त्यो ब्रह्मर्षिः श्लक्ष्णया गिरा॥४२॥ श्रूयतामिति चाभाष्य मधुरं वदतां वरः॥

वामदेव बोले—हे नरेन्द्र! मुनियोंके साथ महर्षि अगस्त्य इस तरह मनमें विचार कर उन तपस्वी गन्धर्वोंके पास गये। हे मिथिलेश्वर! मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यको आये हुए देख कर वे सब खड़े हो गये, ब्रह्माजीके आने पर जिस तरह देवता खड़े हो जाते हैं उसी तरह उन सबने महात्मा अगस्त्यके समीप आ कर उनको प्रणाम किया। बादमें बड़ी मधुर वाणीसे महर्षि अगस्त्य "सुनो" ऐसा कह कर उनसे कहने लगे॥४३॥

अगस्त्य उवाच—

यूयं सर्वे महावीर्याः शृणुध्वं मधुरं वचः॥ ४३॥ कस्य यूयं किमर्थं वा चरन्त इह पर्वते॥ आश्चर्यं वा महात्मानो द्रष्टव्यं दृष्टमेव वा॥ ४४॥ एतद्यूयं समासेन सर्वमाख्यात तत्त्वतः॥ पृच्छामि श्रोतुकामोऽहं युष्मान्सर्वान्समागतान्॥ ४५॥ एवं ब्रुवाणं ब्रह्मर्षिं प्रोचुस्तं श्रूयतामिति॥

अगस्त्य बोले— आप सब महा पराक्रमी मेरे मधुर वचनको सुनिये। आप किसके हैं और किस कारण इस पर्वतपर विचर रहे हैं? क्या आप कोई आश्चर्यजनक दृश्य देखना चाहते हैं या आपने कोई अद्भुत दृश्य देखा है? यह आप संक्षेपमें मुझे सत्य सत्य कहिये। आये हुए आप लोगोंसे सुननेकी इच्छासे मैं यह बात पूछ रहा हूं। इस तरह कहते हुए महर्षिसे वे बोले—हे मुने! सुनिये॥ ४६॥

अथ अगस्त्यादीन्प्रति विष्वक्सेनपरिजनकृतस्वोदन्तज्ञापनम्

गन्धर्वाद्या ऊचुः—

देवस्यानुचरास्तस्य वयं ब्रह्मन्महात्मनः॥ ४६॥ बलवीर्याभिजुष्टस्य विष्वक्सेनस्य धीमतः॥ यः सर्वलोकनाथस्य मधुकैटभघातिनः॥ ४७॥ हरेरनुचरास्तस्य वयं ब्रह्मन्निदेशगाः॥ उपतिष्ठन्ति यं सर्वे विष्वक्सेनं

समाहिताः ॥ ४८ ॥ यद्वशे वर्तते विप्रा जगदेतच्चराचरम् ॥ स सुरासुर-
गन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ॥ ४९ ॥ मुनयो देवगन्धर्वा दैत्याः सिद्धास्त-
थोरगाः ॥ प्रणेमुर्यं महावीर्यं नारायणमिवापरम् ॥

गन्धर्वादि बोले—हे ब्रह्मन्! हम लोग बलवीर्य युक्त बुद्धिमान श्रीविष्वक्सेनजीके सेवक हैं। जो विष्व-क्सेन समस्त लोकोंके स्वामी, मधुकैटभके नाश करनेवाले श्रीहरिके अनुचर हैं। हे विप्रो! सब लोग स्थिरचित्त हो कर जिनकी पूजा करते हैं, चर अचर सारा संसार जिनके वशमें है और सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग राक्षस मुनि, देवगन्धर्व, दैत्य, सिद्ध आदि महा पराक्रमी दूसरे नारायणकी तरह जिनको प्रणाम करते हैं, हम उन्हींके आज्ञा-पालक हैं ॥ ५० ॥

देवदेवेन चाज्ञासो ऋषभं योऽवधीत्पुरा ॥ दैत्येन्द्रं सुमहावीर्यं शक्र-
तुल्यपराक्रमम् ॥ ५१ ॥ देवासुरे महायुद्धे दारुणे रोमहर्षणे ॥ सूदिता ये-
न दैत्येन्द्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५२ ॥ सदा हि यो जगद्धातुर्निदेशे प-
रिवर्तते ॥ अचिन्त्यबलवीर्यौजा विष्णुपादाब्जसंश्रयः ॥ ५३ ॥ सङ्क्रुद्धः
सहसा लोकान्हतुं शक्तः सवासवान् ॥ सयक्षनागगन्धर्वगुह्यकिन्नरराक्ष-
सान् ॥ ५४ ॥ एवंप्रभावो यो देवो हरेरनुचरो बली ॥ विश्रुतः सर्वलोके-
षु तस्यैवानुचरा वयम् ॥ ५५ ॥

देवाधिदेव नारायणकी आज्ञा पा कर जिन्होंने पहले इन्द्रके समान पराक्रमी महाबली दैत्यराज ऋषभको मारा है, जिन्होंने रोमाञ्चकारी भयङ्कर देव और असुरोंके महा संग्राममें सैकड़ों, सहस्रों दैत्योंका वध किया है, जो सदा परमात्माकी आज्ञामें रहते हैं, जिनके बल और वीर्यका वर्णन नहीं किया जा सकता, जो सदा परमात्माके आश्रित रहते हैं, जो क्रुद्ध होने पर इन्द्रादि सहित सब देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, गुह्य, किन्नर राक्षस आदि सबको मार डालनेमें समर्थ हैं, इस तरहके प्रभावशाली एवं बली, सब लोकोंमें विख्यात हरिके अनुचर जो विष्वक्सेन हैं, हम सब उन्हींके सेवक हैं ॥ ५५ ॥

वामदेव उवाच—

एवमुक्तस्तदा तैस्तु गन्धर्वाद्यैर्नरेश्वर ॥ प्रशशंस तदा देवं विष्व-
क्सेनं महामुनिः ॥ ५६ ॥ प्रणम्य च तदा देवं हरिं भक्त्या च तैः सह ॥
तपोबलसमायुक्तैर्मुनिभिर्भावितात्मभिः ॥ ५७ ॥ताननुज्ञाप्य संहृष्टो ग-
न्धर्वाद्यांस्तपस्विनः ॥ विचचार यथापूर्वं नारायणदिदृक्षया ॥ ५८ ॥

वामदेव बोले—हे नरेश्वर ! गन्धर्वादिके ऐसा कहने पर महामुनिने विष्वक्सेनजीकी बड़ी प्रशंसा की और उनके साथ भक्तिसे हरिको प्रणाम करके अपने सहयोगी ज्ञाननिष्ठ तपोबलयुक्त महर्षियोंके साथ तपस्वी गन्धर्वादिसे परामर्श ले कर बड़ी प्रसन्नतासे नारायणके दर्शनकी इच्छासे पहलेकी तरह ही वहां फिर भ्रमण करने लगे ॥ ५८

अथ अगस्त्यादिकृतशेषाचलस्थानेकपुण्यतीर्थावलोकनम्

तस्मिन्गिरिवरे रम्ये वृषभाख्ये महीयसि ॥ गिरिमूर्धनि राजेन्द्र वि-
चरन्वै ततस्ततः ॥ ५९ ॥ ददर्श शतशो वृक्षान्पुष्पितान्पर्वतोपमान् ॥
शुभोदकवहाः शुद्धाः सरितश्चातिशोभनाः ॥ ६० ॥ गुहाश्च विविधास्त-
त्र द्रुमषण्डविभूषिताः ॥ कन्दराणि च दिव्यानि दरीश्च प्रियदर्शनाः ॥६१॥
शिखराणि च मुख्यानि नीलमेघनिभानि च ॥ तटाकांश्च तथा दिव्या-
ञ्छोभितांश्च शुभैर्जलैः ॥ ६२ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णान् सारसैश्चानुना-
दितान् ॥ जीवञ्जीवैश्च सारङ्गैर्वारणैश्च सदामदैः ॥ ६३ ॥ राजद्भिश्चक्रवा-
कैश्च शकुन्तैरनुनादितान् ॥ एवमाद्यैस्तथान्यैश्च शोभितान्विमलोद-
कान् ॥६४॥ सरसीश्च तथा दिव्या नारायणमहागिरौ ॥

हे राजेन्द्र ! उस रमणीय वृषभाचल महापर्वतके शिखरपर इधर उधर घूमते हुए महर्षि अगस्त्यने पुष्पित, पर्वतके समान सैकड़ों वृक्षों, अति सुन्दर शुद्ध निर्मल जलवाली नदियों, वृक्षोंसे विभूषित विविध गुहाओं, दिव्य कन्दराओं, दर्शनीय गाढ़े नीले मेघके समान कान्तिमान, मुख्य मुख्य शिखरों, शुभ जलोंसे शोभित, दिव्य हंस, कारण्डव सारस पक्षियोंसे शब्दायमान, जीवंजीव–सारङ्ग और मदमाते हाथियोंसे युक्त, चक्रवाकोंसे शोभायमान, शकुन्तादि अन्यान्य पक्षियोंसे अनुनादित, विमल जलवाली छोटी छोटी तलैयों तथा दिव्य और बड़े तालाबोंको देखा ॥ ६५ ॥

कुन्दैर्नीपैस्तथा सालैरर्जुनैस्तिलकैस्तथा ॥ ६५॥ चम्पकाशोकपुन्ना-
गकोविदारासनादिभिः ॥ तीरजैर्द्रुमषण्डैश्च शोभितेषु सरःसु च ॥ ६६ ॥
प्रीत्या स्नात्वा तथा चक्रुर्देवपूजां यथाविधि ॥ स गच्छन्नेव विप्रेन्द्रो नरेन्द्र
मुनिभिर्वृतः ॥ ६७ ॥ ददर्श पर्वते भूयो दर्शनीयतमान्मुनीन् ॥ शष्पाङ्कुर-
कृताहारान् हरिणान्वनचारिणः ॥ ६८ ॥ चरतः सर्वतो भूप स्थलेषु मृग-
पोतकान् ॥ कुञ्जरान्मेघसङ्काशाञ्छुभदन्तविभूषितान् ॥ ६९ ॥ शिखरा-
च्छिखरं शीघ्रं पततश्चापि वानरान् ॥

कदम्ब, साल, अर्जुन, तिलक, चम्पा, अशोक, पुन्नाग, कोविदार, असन, आदि स्वाभाविक रूपसे उत्पन्न हुए सुन्दर वृक्षोंसे शोभित तालाबोंमें प्रेमसे स्नान करके मुनियोंने यथाविधि देवकी पूजा की। हे नरेन्द्र! मुनियों सहित वहांपर विचरण करते हुए जितेन्द्रिय मुनि अगस्त्यने मुनियों, घासके अङ्कुर चरते हुए रमणीय जङ्गली हरिणों, इधर उधर भ्रमण करते हुए खरगोशों, मृगशावकों, मेघतुल्य शुभ्रदन्तवाले हाथियों तथा एक शिखरसे दूसरे शिखरपर कूदते हुए बन्दरोंको देखा ॥ ७० ॥

एवमाद्यैस्तथान्यैश्च शोभितो गिरिमूर्धनि ॥ ७० ॥ विचचार तथा-
ऽगस्त्यश्चिरकालं नृपेश्वर ॥ ऋषिभिः सहितः सर्वैः पितामहवचः
स्मरन् ॥ ७१ ॥ दिदृक्षुर्देवदेवेशं भगवन्तं सनातनम् ॥

इस प्रकारके अन्यान्य दृश्योंसे आनन्दित हो कर, हे नृपेश्वर! महामुनि महर्षि अगस्त्य अपने साथी मुनियों सहित ब्रह्माजीके वचनोंका स्मरण करते हुए तथा भगवान सनातन नारायणके दर्शनेच्छुक हो चिरकाल तक वहां-पर भ्रमण करते रहे ॥ ७१ ॥

अन्यानपश्यत्सोऽगस्त्यस्तस्मिन्नद्रौ जलाशयान् ॥ ७२ ॥ सरितश्च
महापुण्यवैडूर्यविमलोदकाः ॥ पुष्करिण्यः शुभाश्चापि सरांसि विमलानि
च ॥ ७३ ॥ सर्वेषु तेषु पुण्येषु तीर्थेषु मुनिसत्तमः ॥ स्नात्वा स्नात्वा जग-
न्नाथमर्चयामास भक्तिमान् ॥ ७४ ॥

उस पर्वतपर घूमते हुए अगस्त्य मुनिने अन्य जलाशय, वैडूर्य मणिके समान शुद्ध जलवाली पुण्यमयी तलैयां और शुभ जलवाली पुष्करिणी तथा निर्मल जलवाले तालाब देखे। उन सर्व पुण्यमय तीर्थोंमें भक्तिमान् मुनिने स्नान करके जगन्नाथकी अर्चना की ॥ ७४ ॥

अथ अगस्त्यादीनां कुमारधारास्नानम्

एकदा तु स धर्मात्मा विचरन्गिरिमूर्धनि ॥ कौमारीं महतीं धारां
पतन्तीं ददृशे मुनिः ॥ ७५ ॥ अत्युच्चगिरिपृष्ठात्तु कार्तिकेयेन सेविताम् ॥
तां दृष्ट्वा विस्मयाविष्टः सर्वपापहरां शुभाम् ॥ ७६ ॥ देवर्षिसिद्धमनुजैः
सेवितां पुण्यकाङ्क्षिभिः ॥

एक समय उस पर्वतके शिखरपर भ्रमण करते हुए उस धर्मात्मा मुनिने उच्च पर्वत शिखरसे गिरती हुई स्वामिकार्तिकेयसे सेवित कुमारधाराको देखा। सब पापोंको नाश करनेवाली और पुण्यकी आकांक्षा करने वाले देव, ऋषि, सिद्ध, और मनुष्योंसे सेवित उस धाराको देख कर मुनिने बड़ा आश्चर्य प्रकट किया ॥ ७७ ॥

यत्र सा निपतत्युच्चाच्छिखराद्विमलोदका ॥ ७७ ॥ तटाके विमले दिव्ये पवित्रे पापनाशने ॥ यस्मिन्वसति राजेन्द्र शम्भुपुत्रः प्रतापवान् ॥७७॥ दारुणं तप आस्थाय प्रीतये मधुघातिनः ॥ देवसेनापतिः श्रीमान्सुब्रह्मण्योऽसुरार्दनः ॥ ७९ ॥ त्रिकालमर्चयन्विष्णुं श्रीनिवासं जगत्पतिम् ॥ तस्मिन्गत्वा मुनीन्द्रस्तु नरेन्द्र मुनिभिः सह ॥ ८० ॥ आचम्य प्रयतो भूत्वा ममज्ज सुसमाहितः ॥ सर्वपापहरे शुद्धे तीर्थे तस्मिन्सदाऽमले ॥८१॥ चिन्तयन्देवदेवेशं नारायणमनामयम् ॥ स्नात्वा मुनिवरस्तस्मिन्नाचम्य च यथाविधि ॥ ८२ ॥ देवदेवं जगद्योनिं वासुदेवमधोक्षजम् ॥ अर्चयामास गोविन्दं दिव्यैः पुष्पैः सुगन्धिभिः ॥ ८३ ॥ ऋषयश्च महात्मानः स्नात्वा तस्मिन्महोदके ॥ अर्चयामासुरव्यग्रं देवदेवं जनार्दनम् ॥ ८४ ॥ समाधाय मनस्तस्मिन्ब्रह्मण्यमिततेजसि ॥ मनो निवेश्य जगतामीश्वरे पुरुषोत्तमे ॥ ८५ ॥ नारायणे जगद्धाम्नि सर्वपापहरे हरौ ॥

उस निर्मल, दिव्य, पवित्र, एवं पापनाशन तीर्थमें निर्मल जलवाली कुमारधारा बहती है और जहां प्रतापी, देव सेनापति, श्रीमान्, सुब्रह्मण्य, असुरोंका संहार करनेवाले स्वामि कार्तिकेय, मधु दैत्यके वधकर्ता भगवान्की प्रीतिके लिये कठिन तपके व्रती हो कर तीनोंकाल जगत्पति श्रीनिवास श्रीविष्णुकी पूजा करते हुए उस पर्वतपर निवास कर रहे हैं। हे नरेन्द्र! वहां अगस्त्य मुनिने अन्य मुनियोंके साथ उसी पर्वतपर जा कर आचमन करके स्थिर चित्त हो कर समस्त पापोंको दूर करनेवाले अमल, शुद्ध एवं सब पापोंको नाश करनेवाले,उस तीर्थमें देवदत्त, अनामय नारायण भगवानका स्मरण करते हुए स्नान और यथाविधि आचमन करके देवाधिदेव अधोक्षज, जगत्पति भगवान् गोविन्दकी दिव्य और सुगन्धित पुष्पोंसे पूजा की। अन्यान्य महर्षियोंने भी स्नान करके और जगत्के स्वामी जगद्धाम, सर्व पापोंको हरनेवाले अमिततेजस्वी ब्रह्मण्य नारायणमें अपना मन लगा कर उनकी पूजा की ॥८६॥

अथ तं वरदं विष्णुं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ ८६ ॥ प्रणेमुर्मुनिशार्दूला वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् ॥ प्रणतार्तिहरं देवं कृष्णं सर्वेश्वरं हरिम् ॥८७॥ रमन्तं मायया सार्धमर्चयित्वा सुरोत्तमम् ॥ यथापूर्वं मुनिश्रेष्ठश्चचार गिरिमूर्धनि ॥८८॥ विचरंश्च ततस्तत्र तीर्थौघान् पापनाशनान् ॥ देवदानवगन्धर्वैः सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ८९ ॥ ऋषिभिर्वालखिल्यैश्च सेवितं

पर्वतोत्तमम् ॥ अगस्त्यो मुनिभिस्तत्र ददर्श विमलं गिरिम् ॥ ९० ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेंकटाचलमाहात्म्ये अगस्त्यादि-
कृतविष्वक्सेनतत्पारिषदादिदर्शनं नामै-
कोनत्रिंशोऽध्यायोऽत्र दशमः ॥१०॥

सर्वलोक नमस्कृत, वरद, वेङ्कटाचल निवासी भक्तोंके दुःख हरनेवाले, सर्वेश्वर एवं मायाके साथ क्रीड़ा करते हुए विष्णु भगवान्‌की अर्चना करके पहलेकी भांति पर्वतके शिखरपर मुनिश्रेष्ठ महर्षि अगस्त्य फिर घूमने लगे। देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध चारण, पन्नग एवं बालखिल्य ऋषियोंसे सेवित उस उत्तम पर्वतपर मुनियोंके साथ पापनाशक बहुत तीर्थोंमें विचरण करते हुए अगस्त्यने वहांपर विमल पर्वतको देखा ॥ ९० ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

एकादशोऽध्यायः

वेंकट गिरिके तीर्थकी, शुचि महिमा परमेय।
वर्णित इस अध्यायमें, पुण्य पवित्र अमेय ॥१॥
तीरथ पश्चिम कपिलके, पञ्च तीर्थ माहात्म्य।
स्वामीसर महिमा प्रबल, हरत सदा दौरात्म्य ॥२॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलस्थपुण्यतीर्थवर्णनम्

जनक उवाच—

मुनिना तेन दृष्टानामगस्त्येन महात्मना ॥ नामानि तेषां तीर्थानां पर्वतेन्द्रनिवासिनाम् ॥ १ ॥ माहात्म्यं चापि सर्वेषां पापहानि वदस्व मे ॥ यद्वा संप्राप्यते मर्त्यैः स्नात्वा तेषु फलं मुने ॥ २ ॥ विस्तरेणैतदाश्चर्यं

वक्तुमर्हस्यशेषतः ॥ श्रोतुकामो ह्यहं ब्रह्मन्पृच्छामि त्वां तपोधन ॥३॥

राजा जनक बोले—हे द्विजोत्तम ! उन महर्षि अगस्त्यने पर्वतपर जिन जिन तीर्थों को देखा है उनके नाम और उन सबका पाप नाश करनेवाला माहात्म्य आप मुझसे कहिये। हे मुने ! मनुष्य उन तीर्थों में स्नान करके जिस जिस फलको पाते हैं, आप उसको विस्तारपूर्वक कहिये। हे ब्रह्मन् ! तपोधन ! मैं सुननेकी इच्छासे आपसे पूछता हूं॥ ३ ॥

वामदेव उवाच—

श्रूयतां नृपते वक्ष्ये यत्पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ तीर्थानां नामधेयानि
माहात्म्यं च तथाद्भुतम् ॥ ४ ॥ विस्तारान्नैतदाख्यातुं शक्यं वर्षशतैरपि ॥
संक्षेपेण मया त्वेतत्कथ्यमानं निशामय ॥ ५ ॥

वामदेवने कहा—हे राजन् ! सुनो, तुमने जो पूछा है मैं उसे कहता हूं। तीर्थोंके नाम और उनका अद्भुत माहात्म्य विस्तारपूर्वक तो सौ वर्षमें भी नहीं कहा जा सकता। मैं संक्षेपसे कहता हूं आप श्रवण करें ॥५॥

वाराहं वामनं सौम्यं दिव्यं पञ्चनदं तथा ॥ शिलातोयं महातीर्थं
पाद्मं सौरं तथाऽपरम् ॥ ६ ॥ पापनाशनमैन्द्रं च वायव्यं वारुणं तथा ॥
ब्रह्मतीर्थं तथाऽघघ्नमाग्नेयं सर्वकामदम् ॥ ७ ॥ पञ्चतीर्थं महापुण्यं सर्व-
लोकेषु पूजितम् ॥ गौरीतीर्थं च विख्यातमाश्विनं परमेश्वरम् ॥ ८ ॥
चक्रतीर्थं महापुण्यं शङ्खतीर्थमतः परम् ॥ विजयं विमलं चापि शोकना-
शनमेव च ॥ ९ ॥ मात्स्यं कौर्मं तथा दिव्यं गारुडं पाण्डवं तथा ॥ माया-
मयं महातीर्थं काण्डवं काहलं तथा ॥ १० ॥ दाडिमं मधुरं चापि सर्व-
पापप्रणाशनम् ॥ तीर्थान्येतानि पुण्यानि विद्यन्ते वेङ्कटाचले ॥ ११ ॥

वराह तीर्थ, वामन तीर्थ, सौम्य तीर्थ, दिव्य तीर्थ, पंचनद तीर्थ, शिलातोय तीर्थ, महा तीर्थ, पद्म तीर्थ, सूर्य तीर्थ, पापनाशन तीर्थ, इन्द्र तीर्थ, वायु तीर्थ, वरुण तीर्थ, ब्रह्म तीर्थ, पापनाशक सब कामनाओंको देनेवाला अग्नि तीर्थ, सब लोकोंमें पूजित महापुण्यप्रद पंच तीर्थ, संसारमें प्रसिद्ध गौरी तीर्थ, अश्विनीकुमार तीर्थ, परमेश्वर तीर्थ, महापुण्यमय चक्रतीर्थ, शङ्ख तीर्थ, इसके बाद शोकका नाश करनेवाला विजय और विमल तीर्थ, मत्स्य, कूर्म तथा दिव्य गरुड़ तीर्थ, पाण्डव तीर्थ, मायामय महातीर्थ, काण्डव, मधुर काहल, दाड़िम, ये सब पुण्य तीर्थ वेङ्कटाचलपर विद्यमान हैं ॥ ११ ॥

अथ कपिलतीर्थपश्चिमभागस्थपञ्चतीर्थमाहात्म्यम्

जनक उवाच—

पञ्चतीर्थमिति प्रोक्तं यत्त्वया मुनिसत्तम ॥ तन्मे ब्रूहि महाभाग श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ १२ ॥

राजा जनक बोले—हे मुनिवर ! आपने जो पंच तीर्थ कहा है, हे महाभाग ! आप उसका वर्णन कीजिये मैं तत्त्वरूपसे उसको सुनना चाहता हूं ॥१२॥

वामदेव उवाच—

कापिलं नाम यत्तीर्थं तस्य पश्चिमभागतः ॥ पञ्चतीर्थमिति ख्यातं पावनं पुण्यवर्धनम् ॥ १३ ॥ विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा ये चान्त्याः पापयोनयः ॥ तेषां क्रमेण तीर्थानि पञ्चैतानि नरोत्तम ॥ १४ ॥ देवास्तत्र तपस्यन्ति पञ्चजात्यभिमानिनः ॥ वसन्ति कापिलं लिङ्गं पश्यन्तः परया मुदा ॥ १५ ॥ वराहरूपिणं देवमञ्जनाद्रिनिवासिनम् ॥ अर्चयन्तः स्तुवन्तश्च सदा तद्भावभाविताः ॥ १६ ॥

वामदेवने कहा—हे राजन् ! कापिल नामका जो तीर्थ है, उसके पश्चिम भागमें पवित्र और पुण्यवर्धक पंच तीर्थके नामसे प्रसिद्ध तीर्थ है। हे नरोत्तम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और जो कोई पापजन्मा या अन्त्यज हैं इन पांचोंके लिये ये क्रमशः भिन्न भिन्न पांचो तीर्थ है। पांचो जातियोंके अभिमानी देवतागण कापिल लिङ्गके दर्शन करते हुए वहांपर तप कर रहे हैं और बड़े आनन्दसे सदा अञ्जनाचलनिवासी वराह भगवानकी, उन्हींमें लीन हो, वे पूजा और स्तुति करते निवास करते हैं ॥ १६ ॥

उपरि प्रथमं तीर्थं ब्राह्मणानां शुभोदकम् ॥ सद्यः सिद्धिकरं तेषां स्नानपानजपादिभिः ॥१७॥ तस्याधस्तान्महातीर्थं क्षत्रियाणामभीष्टदम् ॥ अनन्तरं च वैश्यानां तीर्थमाशु फलप्रदम् ॥ १८ ॥ तस्य त्वनन्तरं तीर्थं शूद्राणामघनाशनम् ॥ चतुर्णामप्यधस्तात्तु चण्डालानां च पापिनाम् ॥१९॥ तीर्थं पर्वतमूले तु सद्यः पापनिबर्हणम् ॥ वराहरूपी भगवान्विष्णुर्भक्तानुकम्पया ॥ २० ॥ तेषु पञ्चसु तीर्थेषु सन्निध्यं कुरुते सदा ॥ वर्णाश्रमाणामाचारवैकल्यं नाशयत्यहो ॥ २१॥

पहले सबसे ऊपर शुभ जल वाला ब्राह्मणोंका तीर्थ है। जो स्नान, पान, जपादिसे उनको तुरन्त सिद्धि देने वाला है। उसके नीचे क्षत्रियोंको अभीष्ट फल देनेवाला महातीर्थ है। उसके बाद शीघ्र फलको देनेवाला वैश्य तीर्थ है। उसके नीचे शूद्रोंका पापविनाशक तीर्थ है। इन चारों तीर्थोंकी भांति पर्वतके मूलमें पाप करनेवाले पापिष्ठों एवं चाण्डालोंका तीर्थ है। इन पांचों तीर्थोंमें भक्तोंके प्रेमसे वराहरूपी भगवान् विष्णु सदा सन्निहित रहते हैं और वर्णाश्रमियोंके अनाचारको सदा नाश करते रहते हैं॥ २१॥

तेषामन्यतमं तीर्थं सेवमानो नरो नृप॥ तांस्तांश्च समवाप्नोति कामां-
स्तीर्थप्रभावतः॥२२॥ प्रसादात्तस्य देवस्य प्राप्नोति शुभमुत्तमम्॥ तीर्था-
न्येतानि सम्भूय वर्तन्ते पर्वतोत्तमे॥२३॥ नद्यः समस्ताः पापघ्न्यस्तासां
संख्या न विद्यते॥ तथापि शृणु वक्ष्यामि षट्षष्टिः कोट्यस्तथा॥ २४॥
नारायणाचले तस्मिन्नञ्जनाख्ये नगोत्तमे॥ देवर्षिसिद्धगन्धर्वयक्षराक्षस-
पन्नगैः॥२५॥ गुह्यविद्याधरैश्चापि ह्यप्सरोभिः समन्ततः॥ किन्नरैर्गरुडै-
श्चापि देवैर्देवाधिपैरपि॥२६॥ एवमाद्यैस्तथान्यैश्च सेविताः पुण्यकाङ्क्षि-
भिः॥ तीर्थानि तेषां माहात्म्यं गदितुं नैव शक्यते॥ २७॥

इन सब तीर्थोंमेंसे किसी भी तीर्थका सेवन करनेवाला मनुष्य तीर्थके प्रभावसे अपने अभीष्ट मनोरथोंको पा जाता है और उन देवकी कृपासे मनुष्य उत्तम फलको प्राप्त होता है। ये पांचों तीर्थ मिल कर उस पर्वतपर निवास करते हैं। ये सभी नदियां पापोंको नाश करनेवाली हैं जिनकी कोई संख्या नहीं है, तौभी मैं उनका वर्णन करता हूं, सुनो। उस अञ्जन नामक पर्वतश्रेष्ठ नारायणाचलपर छियासठ करोड़ नदियां हैं, जो पुण्यकी इच्छावाले देव, ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, गुह्य, विद्याधर, अप्सरा, किन्नर, गरुड़, देव, देवराज इन्द्र, तथा अन्यान्योंसे सेवित तीर्थरूप हैं, उनका महात्म्यका वर्णन नहीं किया जा सकता॥२७॥

यस्मिन्यस्मिन्गिरेः शृङ्गे वीर सन्दृश्यते शुभम्॥ तदद्भुतं महापुण्यं
तीर्थेभ्यः सम्भवं नृप॥२८॥ तेषु तेषु च तीर्थेषु स्नात्वा स्नात्वा बुधो जनः॥
आभ्यन्तरविशुद्ध्यर्थं विचरेत्सुसमाहितः॥ २९॥

हे नृप! पर्वतके जिस जिस शिखरपर शुभ जल देखा जाता है, तीर्थोंसे निकला हुआ वह अद्भुत महापुण्यको देनेवाला है। भीतरकी शुद्धिके लिये मनुष्य सावधानचित्त हो कर उन सब तीर्थोंमे स्नान करता हुआ भ्रमण करे॥२९॥

अथ स्वामिपुष्करिण्यादिसर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

वामदेव उवाच

पुनरत्र प्रवक्ष्यामि तीर्थानि मुनिसत्तम॥ यानि तानि तु सर्वाणि

शृणुष्वैकमना विभो ॥ ३० ॥ पर्वतस्योत्तरे भागे पुण्यतीर्थानि मे शृणु ॥
सर्वदोषप्रशमनं गिरिरूपमतः परम् ॥ ३१ ॥ शालिवाहं तथा चान्यद्रोगघ्नं
शान्तमेव च ॥ सर्वदुःखप्रशमनं कृष्णनिध्यानमेव च ॥ ३२ ॥ स्वामितीर्थं
महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ यस्य तीरे जगन्नाथो रमते रमया स-
ह ॥ ३३ ॥

वामदेव बोले—विभो ! जो जो यहांपर तीर्थ हैं, उनके बारेमें आपसे फिर कहता हूं, आप एकाग्रचित्त हो कर सुनें । पर्वतके उत्तर भागमें जो तीर्थ हैं, उनको आप मुझसे सुनें । पहले तो सब दोषोंको दूर करनेवाला यह पर्वत ही मूर्तिमान महातीर्थ है । इसके बाद शालिवाह, रोगघ्न, शान्त, समस्त दुःखोंका नाश करनेवाला कृष्णनिध्यान, सर्व पापोंका नाशक और पुण्यवर्धक स्वामिपुष्करिणी तीर्थ है, जिसके तटपर लक्ष्मीके साथ भगवान् जगन्नाथ रमण करते हैं ॥ ३३ ॥

विश्रुतं सर्वलोकेषु विशेषेण नृपात्मज ॥ पाण्डुराभ्रघनप्रख्यै राजहं-
सैर्निषेवितम् ॥३४॥ कोकिलैश्च तथा मत्तैश्चक्रवाकैश्च शोभनैः ॥ द्रुमैर्नाना-
विधैश्चापि पुष्पभारनिपीडितैः ॥ ३५ ॥ तोयार्थमापतद्भिश्च शैलेन्द्रसदृशैर्ग-
जैः ॥ ऋक्षैः सिंहैर्वराहैश्च वृकैश्च हरिणैः शिवैः ॥ ३६ ॥ एवमाद्यैस्तथा-
न्यैश्च लोलितं विमलोदिकम् ॥ धनुःशतेन विस्तीर्णं चन्द्रकान्तामलोद-
कम् ॥ ३७ ॥

हे राजपुत्र ! पाण्डुर वर्णके मेघोंके समान सफेद हंस, कोकिल, सुन्दर एवं मतवाले चक्रवाक, नाना प्रकारके पुष्पोंके भारसे झुके हुए वृक्षोंसे घिरे हुए, जल पीनेके लिये आये हुए पर्वतके समान हाथी, ऋक्ष, सिंह वराह, भेड़िये, हरिण तथा गीदड़ एवं अन्यान्य जन्तुओंसे कलुषित होने पर भी विमल जलवाले सौ धनुषके विस्तारवाले, तथा चन्द्रमाके समान स्वच्छ और निर्मल यह तीर्थ सब लोकोंमें विशेष प्रसिद्ध है ।

मुख्यान्येतानि राजेन्द्र तीर्थानि कथितानि ते ॥ सर्वतीर्थानि कथितुं
न शक्यं नृपसत्तम ॥३८॥ उद्देशतस्तवोक्तानि नारायणमहीधरे ॥

हे राजेन्द्र ! जो जो मुख्य तीर्थ हैं उनको मैंने आपसे कह दिया है । हे नृपसत्तम ! सब तीर्थोंको कहनेमें मैं समर्थ नहीं हूं । नारायणाचलपर जो जो प्रधान तीर्थ हैं उन सबको मैंने संक्षेपसे कह दिया है ॥ ३८ ॥

या मया भवतः प्रोक्ता स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ ३९ ॥ तस्याः

प्रभावमतुलं ससुरैरपि मानुपैः ॥ वक्तुं न शक्यते चापि यस्यास्तीरे हरिः स्वयम् ॥ ४० ॥ रमते ह्यधिकं तस्मिन्नारायणगिरावपि ॥

आपसे मैंने जिस स्वामिपुष्करिणीके सम्बन्धमें कहा है उसका अतुल प्रभाव मनुष्य या देवतासे भी वर्णन नहीं किया जा सकता है।

यां गत्वा सर्वपापघ्नीं देवर्षिगणसेविताम् ॥ ४१ ॥ विश्रुतां सर्वलोकेषु पूजितां त्रिदशैरपि ॥ अनेकबहुसाहस्रैः पातकैरपि संवृतः ॥ ४० ॥ नरस्तेभ्यः समस्तेभ्यः पापेभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ साक्षान्नारायणस्याद्रेः सर्वलोकविमोहिनी ॥ ४३ ॥ सर्वदोषप्रशमनी मायैषा परमेश्वरी ॥ वरिष्ठा सर्वतीर्थेभ्यः स्वामिपुष्करिणी नृप ॥ ४४ ॥

नारायणगिरिमें भी जिस पुष्करिणीके तटपर ही स्वयं भगवान् हरि विहार करते हैं और जिस सर्वपापघ्नी देवर्षिगण सेवित, सब लोकोंमें प्रसिद्ध, और देवताओंसे भी पूजित स्वामिपुष्करिणीमें जा कर हजार पातकोंसे युक्त मनुष्य भी सब पापोंसे छूट जाता है, यह सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ स्वामिपुष्करिणी साक्षात् पर्वतरूपी नारायणकी सर्वलोकविमोहिनी तथा सर्वरोगप्रशमनी परमेश्वरी माया ही है ॥ ४४ ॥

ये नराः प्रातरुत्थाय स्वामिपुष्करिणीति वै ॥ कीर्तयन्ति महात्मानस्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ४९ ॥ तस्यां स्नात्वा च तद्वारि दृष्ट्वा च महदद्भुतम् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्ताः सर्वशोकविवर्जिताः ॥ ४६ ॥ विमानं दिव्यमारुह्य व्रजन्ति त्रिदशालयम् ॥ ये चाप्यस्यास्तथा वारि पिबन्ति मिथिलाधिप ॥४७॥ अनेकबहुसाहस्रैः पातकैश्चापि संयुताः ॥ नरास्तेभ्यो विमुच्यन्ते पापेभ्यः पापकृत्तमाः ॥ ४८ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठ कर स्वामिपुष्करिणी नामका कीर्तन करते हैं, वे परम गतिको पाते हैं। उसमें जो स्नान करते एवं उसके अद्भुत जलको देखते हैं वे सब पापों और सब दुःखोंसे विमुक्त हो दिव्य विमानमें बैठ कर स्वर्ग लोकको चले जाते हैं। हे मिथिलाधिप! जो इसके जलको पी लेते हैं वे हजारों पापोंसे लिप्त होने पर भी सब पापोंसे मुक्त हो जाते हैं ॥ ४८ ॥

मुच्यन्ते रोगिणो रोगान्मुच्यन्तेऽसुखिनोऽसुखात् ॥ मुच्यन्ते मोहमापन्ना नरा मोहान्नराधिप ॥ ४९ ॥ शोकसागरमापन्ना मुच्यन्ते

शोकसागरात् ॥ संसारदुःखतापार्ताः पुरुषा ध्वस्तमानसाः ॥ ५० ॥

रोगी रोगसे और दुःखी दुःखसे छूट जाते हैं। मोहके परवश मनुष्य मोहसे निवृत्त हो जाते हैं। शोक-सागरमें डूबे हुए मनुष्य शोक सागरसे तर जाते हैं। संसारके दुःखरूपी तापसे पीड़ित मनुष्य दुःखकारण अहम्भाव-से छूट जाते हैं ॥ ५० ॥

यां समाश्रित्य तद्ब्रह्म प्राप्नुवन्ति सदाऽमलम् ॥ या पुरा देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ५१ ॥ ब्रह्मणा लोकनाथेन प्रभुणाऽव्यक्तरूपिणा ॥ गङ्गाद्यैः सकलैस्तीर्थैः सर्वपापप्रणाशनैः ॥ ५२ ॥ प्रोक्ता समेति देवेन मेघगम्भीरया गिरा ॥ शृण्वतां सर्वदेवानामृषीणां च तथा नृप ॥ ५३ ॥

जिस पुष्करिणीको प्राप्त कर मनुष्य सदा कमल ब्रह्मको पाते हैं और जिसको हे नृप! पहले देवादिदेव लोक-नाथ अव्यक्तरूप भगवान् विष्णु और ब्रह्माने सब देवता और ऋषियोंके सुनते हुए समस्त पापोंको दूर करनेवाले गङ्गादि सकल तीर्थोंके समान कहा है ॥५३॥

जनक उवाच—

कथं प्रोक्ता पुरा ब्रह्मन्स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ गङ्गाद्यैः सकलैस्तीर्थैः समेति हरिणा पुरा ॥ ५४ ॥ एतद् ब्रह्मन्महाभाग याथार्थ्येनाद्य सत्तां मे ॥ एतच्छ्रोतुमिहेच्छामि त्वत्तोऽहं मुनिपुङ्गव ॥५५ ॥

जनक बोले! हे ब्रह्मन्! हरिने पहले स्वामिपुष्करिणीको गङ्गादि सकल तीर्थोंके समान कैसे कहा?—हे ब्रह्मन्! महाभाग! यह आज आप मुझसे सच सच कहिये, मैं आपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ५५ ॥

शतानन्द उवाच -

एवं पृष्टस्तदा तेन जनकेन महात्मना ॥ मुनिः प्राह नरेन्द्रं तं वक्ष्येऽहं श्रूयतामिति ॥५६॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामि-
पुष्करिण्यादिसर्वतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्रिंशोऽध्यायोऽत्रैकादशः ॥ ११ ॥

शतानन्दजीने कहा—हे राजन्! महात्मा जनकसे इस तरह पूछे जाने पर मुनिने उस राजासे कहा कि मैं कहूंगा, आप श्रवण करें ॥ ५६ ॥

इति एकादशोऽध्यायः ॥

द्वादशोऽध्यायः



प्रभू भक्त नृप शङ्खका, वर्णन शुचि वृत्तान्त।
तुलना गङ्गादिकनसे, स्वामीसर दुरितान्त ॥१॥
प्रभु उदेशसे शङ्खका, पुष्करणी तट जाप।
बारहवें अध्यायमें, वर्णित विविध कलाप ॥२॥

अथ शङ्खाख्य नृपवृत्तान्तः

वामदेव उवाच—

शङ्खो नाम पुरा राजा राजन्नासोन्महाद्युतिः ॥ हैहयानां कुले जा-
तः कर्मणा विश्रुतो भुवि ॥ १ ॥ श्रुतस्य बलिनो राज्ञः पुत्रः परपुञ्जयः ॥
सोऽन्वशासन्महीं कृत्स्नां सशैलवनकाननाम् ॥२॥ सोऽभवद्भगवद्भक्तः प्र-
ह्लादेन समो भुवि ॥ गुणैः सर्वैः समायुक्तः श्रीमान्परमधार्मिकः ॥ ३ ॥
सोऽप्यजत्सर्वभूतेशमश्वमेधादिभिर्मखैः ॥ नारायणं जगन्नाथं प्रणतार्तिहरं
हरिम् ॥ ४ ॥ अददाद्भक्तिमान्देवे दक्षिणाश्च सहस्रशः ॥ सर्वेषु तेषु यज्ञे-
षु प्रीतये मधुघातिनः ॥ ५ ॥

वामदेव बोले—पहले हैहयवंशमे श्रुतनामक बलवान राजाके पुत्र महातेजस्वी शंख नामका अपने गुणोंसे संसारमें प्रसिद्ध, शत्रु विजयी एक राजा था। वह वन, पर्वतादि सहित समस्त पृथ्वीपर राज्य करता था। श्रीमान, परम धार्मिक और सर्वगुणसम्पन्न वह राजा पृथ्वीपर प्रह्लादके समान भगवद्भक्त था। उसने अश्वमेधादि यज्ञोंसे सर्वस्वामी भक्तवत्सल नारायण हरिका भजन किया और उन सभी यज्ञोंमें भक्तिपूर्वक उसने श्री नारायणकी प्रीतिके लिये हजारों दक्षिणायें दीं ॥ ५ ॥

न चाद्राक्षीत्स तैर्यज्ञैर्भगवन्तं सनातनम् ॥ नारायणं नृपाचिन्त्यं पुण्ड-

रीकनिभेक्षणम् ॥ ६ ॥ द्रष्टुं तमजरं देवं कृतवानपि तान्मखान् ॥ श्रद्धया परया युक्तो विविधैर्भूरिदक्षिणैः ॥ ७ ॥ सोऽभवद्दुःखसन्तप्तस्ततोऽपश्यन् जनार्दनम् ॥ भक्तिभावेन मनसा चेष्ट्वा सर्वमखैरपि ॥ ८ ॥

हे नृप ! उन अजर, अमर, परमात्माको देखनेके लिये दक्षिणाओंके साथ भक्तिभावपूर्ण मनसे अनेक यज्ञोंके द्वारा भजन करने पर भी उस राजाने जनार्दन भगवान्‌को नहीं देखनेके कारण बड़ा दुःखी हुआ ॥ ८ ॥

स्वामिपुष्करिण्या भगदुक्तागङ्गाद्यशेषपुण्यतीर्थसाम्यम्

एकदा तु महात्मानं भूपते भूपतिं विभुः ॥ अन्तर्हितो जगादेवं भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥ तस्य दुःखं समालोक्य वासुदेवो महीपते ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां मेघगम्भीरया गिरा ॥ १० ॥ नारायणगिरौ मां त्वं द्रक्ष्यसे हे महीपते ॥ भक्तिभावेन मनसा तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ ११ ॥

हे भूपते ! एक समय महात्मा राजाके प्रति उसके दुःखको देख कर वासुदेव भगवान् विभु पुरुषोत्तम छिपे हुए ही इस तरह कहने लगे, हे महीपते ! सब प्राणियोंके सुनते हुए मेघके समान गम्भीर वाणीसे बोले कि महीपते ! तुम मुझको भक्तिपूर्वक मनसे नारायण पर्वत पर कठिन तप करके देखोगे ॥ ११ ॥

तत्र पुष्करिणी दिव्या विमला पापहारिणी ॥ धनुःशतपरीणाहा वैडूर्यविमलोदका ॥ १२ ॥ त्रैलोक्यविश्रुता पुण्या स्वामिपुष्करिणीति वै ॥ गङ्गाद्यैः सकलैस्तीर्थैः सा समा विमलोदका ॥ १३ ॥ तस्यां स्नात्वा भविष्यन्ति नराः पापविवर्जिताः ॥ तस्यास्तीरे महापुण्ये पुष्करिण्यां नृपात्मज ॥ १४ ॥ महता तपसा युक्तस्तिष्ठ त्वं सुसमाहितः ॥

वहांपर दिव्य, स्वच्छ, पापोंको दूर करनेवाली, सौ धनुष लम्बी चौड़ी, वैडूर्यमणिके समान निर्मल जलवाली, त्रिलोकीमें विख्यात एवं पुण्यप्रद स्वामिपुष्करिणी नामकी एक तलैया है, वह शुद्ध जलवाली गङ्गादि सकल तीर्थोंके समान है। उसमें स्नान करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाते हैं। हे नृपपुत्र ! उस पुण्यप्रद पुष्करिणीके तटपर बड़ी भारी तपस्या करते हुए वहांपर निवास करो ॥ १५ ॥

वत्सराणां सहस्रे तु समतीते महामुनिः ॥१५॥ आयास्यति महातेजा अगस्त्यो मुनिभिः सह ॥ अनेकशतसाहस्रैः परितस्तं महीधरम् ॥१६॥ द्रष्टुकामश्च मां विप्रो विचरन्गिरिमूर्धनि ॥ वहन्मयि परां भक्तिं सर्वब्रह्मविदां वरः ॥ १७ ॥

इसके बाद हजार वर्ष बीत जानेपर उस पर्वतपर मुझको देखनेकी इच्छासे सैकड़ों या सहस्रों मुनियोंके साथ ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, मुझमें महाभक्तिशाली महातेजस्वी अगस्त्यमुनि भक्तिपूर्वक पर्वतके शिखरपर चारों ओर भ्रमण करते हुए वहां आवेंगे ॥ १७ ॥

आगतेऽथ मुनौ तस्मिन्नचिरेणैव मां नृप ॥ ॥ द्रष्टासि मत्प्रसादेन तेन सार्धं महात्मना ॥ १८ ॥ त्वया न शोकः कर्तव्यो दास्ये तव यथेप्सितम् ॥ मा विषादं कृथा वीर गच्छ त्वं तं महीधरम् ॥

हे नृप ! उन मुनिके आने पर शीघ्र ही उन महात्माके साथ मेरे अनुग्रहसे आप मुझे देखेंगे। हे राजन् ! तुमको दुःख न करना चाहिये। मैं तुम्हें अभीष्ट वर दूंगा। हे वीर ! व्यर्थ ही चिन्ता मत करो, तुम उस पर्वतपर जाओ ॥ १९ ॥

वामदेव उवाच—

एवं पुरा हि भगवान्गङ्गाद्यैः साम्यमादिशत् ॥ देवदेवो जगन्नाथः स्वामिपुष्करिणीं प्रति ॥ २० ॥

वामदेव बोले हे जनक ! इस तरह भगवान्ने पहले स्वामिपुष्करिणीको गंगादि तीर्थोंके समान कहा है।

अथ भगवदुक्त्या शङ्खनृपकृतस्वामितीर्थतपःप्रकारः

शङ्खोऽपि नृपतिर्धीमान्गदितं तस्य शार्ङ्गिणः ॥ नारायणस्य देवस्य विष्णोरन्तर्हितस्य सः ॥ २१ ॥ निशम्य मधुरं वाक्यं नरेन्द्रोऽथ नरेश्वर ॥ अभिषिच्य सुतं वीरं महेन्द्रसमविक्रमम् ॥ २२ ॥ सौम्यं पुरुषशार्दूलं वज्रपाणिमिवापरम् ॥ नारायणालयं दिव्यं नारायणगिरिं तदा ॥ २३ ॥ अभ्यगाद्द्रष्टु कामः स वासुदेवं नराधिप ॥

हे राजन ! बुद्धिमान् राजा शंख भी अन्तर्हित शार्ङ्गधर भगवान् नारायणके मधुर वचनोंको सुन कर दूसरे इन्द्रके समान पराक्रमी, वीर और शान्त पुरुषसिंह अपने पुत्रको राजसिंहासनपर बैठा कर भगवान्‌के दर्शनकी इच्छासे नारायणके स्थान दिव्य नारायणाचलपर चला गया ॥ २४ ॥

तत्र गत्वा महीपालः स तेपे परमं तपः ॥ २४ ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ विषयेभ्यः समस्तेभ्यः समाहृतमनोरथः ॥२५॥ निवेश्य च मनस्तस्मिन्परे ब्रह्मणि केशवे ॥ तपश्चरंश्च विश्वेशमर्चयंश्च

यथाविधि ॥ २६ ॥ वत्सराणां सहस्रं तु सोऽभवन्नियतात्मवान् ॥ एवमे-
षा महापुण्या स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ २७ ॥

हे नराधिप ! राजा शंख वहाँपर जा कर स्वामिपुष्करिणीके तटपर भगवान्के आदेशानुसार समस्त विषयों-से अपने मनको हटा एवं परब्रह्म नारायणमें अपने मनको लगा कर विधिवत् भगवान्की पूजा करता हुआ बड़ी कठिन तपस्या करने लगा। राजाने अपनी सब इन्द्रियोंको वशमें करके हजार वर्ष पर्यन्त तप किया था, इस कारण यह स्वामिपुष्करिणी महापुण्यप्रद और अतिशुभ है ॥ २६ ॥

एनां पुरातनीं पुण्यां सेवमानो न सीदति ॥ नरः समस्तपापैस्तु संयु-
क्तोऽपि नरेश्वरः ॥२८॥ यस्त्वेनां सेवते भक्त्या स गच्छेत्परमां गतिम् ॥
देवदेवप्रसादेन कृष्णस्य परमात्मनः ॥ २९ ॥ सकामाश्चापि सेवन्ते ये
नरा नियतेन्द्रियाः ॥ स्वामिपुष्करिणीमेनां तान् कामानाप्नुवन्ति हि ॥३०॥
ऋषयो वालखिल्याश्च सिद्धाश्चापि सहस्रशः ॥ अस्यां स्नात्वा जगन्नाथ-
मर्चयन्ति दिने दिने ॥ ३१ ॥

इस पुरातन पुण्यप्रद पुष्करिणीकी सेवा करनेवाला मनुष्य अनेक पापोंसे युक्त होनेपर भी दुःख नहीं पाता। जो मनुष्य परम भक्तिसे इसकी सेवा करता है वह देवाधिदेव परमात्मा कृष्णकी कृपासे परम गतिको पाता है। जो कोई सकाम हो कर भी इस स्वामिपुष्करिणीकी सेवा करेगा वह अपने इच्छित कामोंको प्राप्त करेगा। वालखिल्य ऋषि और हजारों सिद्ध इसमें स्नान करके प्रतिदिन भगवान् जगन्नाथकी पूजा करते हैं ॥ ३१ ॥

अस्यास्तीरं समागम्य गन्धर्वाश्च सहस्रशः ॥ प्रसादयन्तो देवेशं
सुस्वरं बहु किन्नराः ॥३२॥ गायन्ति विविधैर्दिव्यैः कर्मभिस्तमहर्निशम् ॥
नृत्यन्त्यप्सरसश्चापि गायन्ति शुभलोचनाः ॥३३॥ प्रसादयन्त्यो देवेशं
दिवारात्रमतन्द्रिताः ॥ एषा महाश्चर्यतमा महीपते महीतले देवगणैरभि-
ष्टुता ॥ नारायणाद्रिप्रवरं समाश्रिता नारायणेनाप्युदिता प्रियेति सा ॥३४॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
स्वामिपुष्करिणी माहात्म्य वर्णनं नामैक
त्रिंशोऽध्यायोऽत्र द्वादशः ॥१२॥

हजारों गन्धर्व इसके तटपर आ कर देवाधिदेव भगवान्को प्रसन्न करते हुए हमेशा स्तुति करते हैं और किन्नर सुस्वर गाते हैं एवं अप्सरायें विविध कर्मोंसे भगवानको दिन रात खुश करती हुई गाती और नाचती रहती हैं। हे महीपते! यह देवताओंसे स्तुत, नारायणचलपर रहती हुई अति अद्भुत इस पुष्करिणीके प्रति नारायणने भी यह बात कही है कि यह मुझको अत्यन्त प्यारी है ॥३४॥

॥ इति द्वादशोऽध्यायः ॥

त्रयोदशोऽध्यायः



स्वामीसर तट प्रभु निमित, ऋषि अगस्त्य तप चेत।
प्रभु सेवन हित गिरि गमन, सुरगुरु शुक्र समेत ॥१॥
वसु राजा वृतान्त अरु, वसु महर्षि संवाद।
ऋषी शाप वसु पतन पुनि, वसुवध दैत्य विवाद ॥२॥
दैत्य बधन चक्रेशका, गमन वसू रक्षार्थ।
प्रभु भेजे खगराजको, वसुको लान रचार्थ ॥३॥
ला वसुको पातालसे, राज्य, भोग, सुख, दान।
तेरहवें अध्यायमें, वर्णित विविध विधान ॥४॥

अथ स्वामिपुष्करिणीतीर्थे भगवन्तमुद्दिश्यागस्त्यकृततपश्चिन्ता

वामदेव उवाच—

अगस्त्योऽथ मुनीन्द्रस्तु नरेन्द्र मुनिभिः सह॥ एतानि तीर्थानि मुनिः स्वामिपुष्करिणीं विना ॥ १ ॥ मनःप्रह्लादजननीं दृष्ट्वा हर्षमुपागमत् ॥ तेषु तेषु च सर्वेषु तीर्थेषु शुभवारिषु ॥ २॥ स्नात्वा स्नात्वा प्रणम्येशमर्चया-

मास केशवम् ॥ मुनयश्चापि ते सर्वे पराम्प्रीतिमुपागताः ॥ ३ ॥ दृष्ट्वा तीर्थानि पुण्यानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ते चापि तेषु तेष्वेवं स्नात्वा स्नात्वा द्विजोत्तमाः ॥ ४ ॥ अर्चयामासुरव्यग्रा भगवन्तं सनातनम् ॥

वामदेव बोले—हे राजन्! इसके बाद अनेक मुनियोंके साथ महर्षि अगस्त्य मनको प्रसन्न करनेवाली स्वामिपुष्करिणीको छोड़कर इन सब तीर्थोंको देख कर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने निर्मल जलवाले उन तीर्थोंमें स्नान करके ईश केशवको प्रणाम कर पूजा की। सैंकड़ों या सहस्रों पुण्यमय तीर्थोंको देख कर बड़े प्रसन्न हो उन सबमें स्नान करके समस्त महर्षिमण्डलने भी स्थिरचित्तसे सनातन भगवानकी पूजा की ॥ ५ ॥

अथ तैः सहितैः सर्वैरगस्त्यो नियतात्मवान् ॥ ५ ॥ अर्चयित्वा जगन्नाथमभ्यगात्पुरुषोत्तमम् ॥ द्रष्टुकामो महीपाल भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ ६ ॥ आदिदेवं विशालाक्षं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ मुनीन्द्रः परमायत्तो विचरन्गिरिमूर्धनि ॥ ७ ॥ कालेन महता चापि नाद्राक्षीत्पुरुषोत्तमम् ॥ स्रष्टारमीश्वरं देवं सर्वलोकपरायणम् ॥ ८ ॥ दुःखेन महताऽऽविष्टो मुनीन्द्रो मुनिभिः सह ॥ निषसाद ततो भूप कस्मिंश्चिद्गिरिगह्वरे ॥ ९ ॥ भूधरं सर्वतः पश्यन्किमेतदिति चिन्तयन् ॥

हे महिपाल! जितेन्द्रिय महर्षि अगस्त्य सब मुनियोंके साथ भगवान् जगन्नाथकी पूजा करके भूत, भविष्यत् तथा वर्तमानके स्वामी, आदिदेव, विशालनेत्र, सब जनोंको सुख देनेवाले, कृष्ण भगवानको देखनेके लिये फिर वहांसे चले और पर्वतके शिखरपर भक्तिसे परमात्माको खोजते खोजते बहुत काल बीत जाने पर भी संसारके स्रष्टा सर्वव्यापी नारायणको उन्होंने जब नहीं देखा तब मुनियों सहित महर्षि अगस्त्य बड़े दुःखी हो कर हे राजन्! पर्वतके चारो ओर देखते हुए "यह क्या है" ऐसा विचार करते हुए पर्वतकी एक गुफामें जा बैठे ॥ १० ॥

यत्पुरा ब्रह्मणा प्रोक्तं द्रष्टासीति सुरेश्वरम् ॥ १० ॥ तथापि संस्मरन्वाक्यं निषसाद सुदुःखितः ॥ ऋषयश्चापि दुःखार्ता ह्यपश्यन्तः सुरेश्वरम् ॥ ११ ॥ परिवार्य मुनीन्द्रं तं निषेदुरवनीपते ॥ राजंस्तेषां मुनीन्द्राणां चरतां तत्र भूधरे ॥ १२ ॥ वेङ्कटाख्येऽभ्यगात्पुण्ये वर्षाणामधिकं शतम् ॥

ब्रह्माजीने जो पहले कहा था कि तुम सुरेश्वरको देखोगे, इस ब्रह्मवाक्यका भी स्मरण करते हुए मुनि बड़े दुःखित हो कर जा बैठे। भगवान् सुरेश्वरको न देखनेसे अन्यान्य ऋषिगण भी अत्यन्त दुःखी होकर हे अवनीपते!

अगस्त्यके चारों ओर बैठ गये। इस पुण्यमय वेङ्कटाचल पर्वतपर भगवान्को खोजते हुए, हे राजन! मुनियोंको सौ बरससे अधिक काल बीत गया॥ १३॥

अथ भगवत्सेवार्थं वेङ्कटाचलं प्रति गुरुशुक्राद्यागमनम्

ततस्तेपूपविष्टेषु मुनीन्द्रेषु महीधरे॥ १३॥ आजग्मुः शिखरे तस्मिन्द्रुमषण्डविभूषिते॥ बृहस्पतिश्च भगवाञ्छुक्रश्चापि तथात्मवान्॥ १४॥ तथाच भगवद्भक्तो राजोपरिचरो वसुः॥ सान्निध्यं कुरुते यस्य सदा कृष्णो महीपते॥ १५॥ यः पुरा विप्रशापेन पातालतलपातितः॥ उद्धृतो हरिणा तस्मात्संसारगहनादिव॥ १६॥

तब उन मुनिगणके उस पर्वतपर बैठ जानेपर भगवद्भक्त भगवान बृहस्पति, ज्ञानी शुक्र और राजा उपरिचरवसु भी, जिसके समीप भगवान सदा निवास करते हैं, जो पहले ब्राह्मणोंके शापसे पातालमें चला गया था और फिर जिसको भगवान्ने संसार समुद्रकी तरह पाताल लोकसे निकाला था, वृक्षसमूहोंसे समलङ्कृत उसी शिखरपर आ पहुंचे॥ १६॥

जनक उवाच—

कथं स विप्रशापेन पातालतलपातितः॥ उद्धृतो हरिणा कस्मात्संसारगहनादिव॥ १७॥ एतन्मुने महाश्चर्यं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः॥ नारायणाश्रितत्वेन प्रसादसुमुखो वद॥ १८॥

राजा जनकने पूछा—हे ब्रह्मन्! वसु ब्राह्मणोंके शापसे पातालमें क्यों चला गया था और फिर भगवान्ने अगाध संसारकी तरह पातालसे उसका उद्धार कैसे किया था? ये सब बातें मैं आपसे सुनना चाहता हूं। इस बातको नारायण सम्बन्धी होनेसे, प्रसन्नमुख हो कर कहें॥ १८॥

शतानन्द उवाच—

इत्थं निशम्य वचनं जनकस्य मुनिस्तदा॥ वामदेवो महीपाल श्रूयतामिति चाब्रवीत्॥ १९॥ इदं चोवाच भगवान्सर्वशास्त्रविशारदः॥ पुण्यमेतन्महाश्चर्यं श्रुत्वा चैवावधारय॥ २०॥ वासुदेवाश्रयं पुण्यमितिहासं पुरातनम्॥

शतानन्दने कहा—हे महिपाल! राजा जनकके यह वचन सुन कर सर्व शास्त्र निष्णात वामदेव मुनि यह वचन बोले-हे राजन्! यह पुण्यप्रद आश्चर्यमयी कथा है, इसको सुन कर धारण करो। वासुदेव सम्बन्धी यह पुरातन इतिहास पुण्यमय है॥ २१॥

अथ उपरिचरवसुवृत्तान्तः

वामदेव उवाच—

ऋषयश्च पुरा राजन् सेन्द्राश्च त्रिदिवौकसः ॥ २१ ॥ तं देशं प्रस्थिताः सर्वे यत्रोपरिचरो वसुः ॥ धर्मसंशयमापन्ना द्रष्टुं तं वसुधाधिपम् ॥ २२ ॥ अत्रान्तरे समायातः सोऽयं मार्गवशाद्वसुः ॥ अभिजग्मुश्च तं देवा ऋषयश्च तदा वसुम् ॥ २३ ॥ तानागतांस्ततो दृष्ट्वा देवान्ब्रह्मर्षिभिः सह ॥ पूजयामास धर्मात्मा समुत्थाय वरासनात् ॥ २४ ॥

वामदेव कहने लगे—हे राजन्! ऋषि और इन्द्रादि सब देवता धर्मसंशयमें मग्न हो कर उस राजाको देखनेके लिये उस स्थानपर गये, जहां वह उपरिचर वसु था। उसी समय मार्गमें वह वसु आ निकला। उस समय देवता और ऋषि उस वसुके पास गये। उस धर्मात्माने महर्षियोंके साथ देवताओंको आये हुए देख आसनसे उठ कर सबकी पूजा की ॥ २४ ॥

सम्पूज्य तान्यथान्यायं प्रणम्य च कृताञ्जलिः ॥ स कौतुकसमाविष्टः प्राह चेदं वचो नृप ॥ २५ ॥ कृतार्थोऽस्मि महाभागा यद्यूयं मम चान्तिकम् ॥ आगतास्त्रिषु लोकेषु पूजिता वेदपारगाः ॥ २६ ॥ एष्वासनेषु सर्वेषु विशन्तु च यथाविधि ॥ प्रसीदन्तु भवन्तोऽत्र देवा ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वा प्रददौ तेषामासनानि महान्ति वै ॥ मणिकाञ्चनचित्राणि दीप्यमानान्यनेकशः ॥ २८ ॥ मुनीन्द्राणां च सर्वेषां त्रिदशानां च धर्मवित् ॥

यथायोग्य उनकी पूजा एवं प्रणाम करके हाथ जोड़ कर उसने आश्चर्यके साथ यह वचन कहा—हे महाभागो! आज मैं कृतार्थ हो गया। तीनों लोकोंके पूज्य एवं वेदपारंगत आप लोगोंने मेरे यहां जो आगमन किया है, इससे मैं कृतकृत्य हूं। निर्मल महर्षियो! आप सब यथान्याय आसनों पर विराजें और प्रसन्न हों। इस तरह कह कर उस धर्मवित् राजाने सब महर्षि और देवताओंको मणि और काञ्चनमय दिव्य विचित्र आसन दिये ॥२४॥

तेषु तेषूपविष्टेषु देवेषु मुनिभिः सह ॥ २९ ॥ कृताञ्जलिर्मुदा युक्तः पप्रच्छाथ स चेदिराट् ॥ किमर्थमागता यूयं किं कार्यं भवतां मया ॥ ३० ॥ एतत्सर्वं समासेन व्याख्यात मुनिसत्तमाः ॥

महर्षियोंके साथ सब देवताओंके अपने अपने आसनपर बैठ जाने पर राजा प्रसन्नतासे हाथ जोड़ कर

बोला—किस कारण हे महानुभावो ! आपका यहां आगमन हुआ है ? मुझसे आपका क्या कार्य है ? हे मुनिवरो ! यह सब संक्षेपसे आप लोग कहिये ॥ ३१ ॥

अथोपरिचरवसुं प्रति महर्षिकृतप्रश्नः

वामदेव उवाच—

इत्युक्ता वसुना दृष्टा मुनीन्द्रास्ते सुरैः सह ॥ ३१ ॥ धर्मसंशयमापन्ना आचख्युस्तस्य भूपते ॥ धर्मसंशयमापन्ना वयं सर्वे समागताः ॥ ३२ ॥ धर्मतत्त्वं परिप्रष्टुं छिन्द्धि नो धर्मसंशयम् ॥ भो राजन् केन यष्टव्यं सद्भिः किं पशुनाऽथवा ॥ ३३ ॥ औषधैरेव यष्टव्यं तदेतद्वद तत्त्वतः ॥ एनं नः संशयं छिन्द्धि प्रमाणं नो भवान्मतः ॥ ३४ ॥

वामदेव बोले—हे राजन् ! चेदिराट् उपरिचर वसुका यह वचन सुन कर देवताओं सहित ऋषि बड़े प्रसन्न हुए और हे भूपते ! धर्मसंशयसम्पन्न ऋषियोंने उस वसुसे कहा—हे वसो ! हम लोग धर्म सम्बन्धी शंका उपस्थित होनेके कारण तुम्हारे पास आये हैं। धर्म तत्त्वको पूछनेके लिये हम सब लोगोंका यहां आगमन हुआ है, इसीलिये हम लोगोंके धर्मसंशयको दूर करो। हे राजन् ! सज्जनोंको यज्ञ क्या पशुसे करना चाहिये अथवा ओषधिसे ? यह सब ठीक ठीक कहिये। आप हमारे इस संशयको मिटाइये, हम लोगोंके तो आप ही प्रमाण हैं ॥३४॥

इत्येवमुक्तः स वसुः कृताञ्जलिरभाषत ॥ कस्य वै को मतः पक्षो ब्रूत सत्यं द्विजोत्तमाः ॥३५॥ इत्युक्ता ऋषयः प्रोचुः पक्षौ द्वौ च पृथक्पृथक् ॥ धान्यैर्यष्टव्यमित्येष पक्षोऽस्माकं नराधिप ॥ ३६ ॥ पशुपक्षस्तु देवानां मतो राजन्वदस्व नः ॥ निशम्य वचनं तेषां नृपेन्द्रो वसुरात्मवान् ॥ ३७ ॥ प्रश्नमेतं समाधित्सुर्मनस्येवमचिन्तयत् ॥ महर्षिदेवतामध्ये पूर्वं पूज्या हि देवताः ॥ ३८ ॥ ततो मयाद्य संग्राह्यः पक्षोऽत्र मरुतामिति ॥

मुनियोंके इस तरह कहने पर वह वसु हाथ जोड़ कर बोला—हे द्विजो ! आप लोग पहले यह सत्य बतलाइये कि किसका क्या मत है ? राजाके इस तरह कहने पर ऋषियोंने कहा—अलग अलग दो पक्ष। उन्होंने कहा—हे राजन ! हमलोगोंका तो यह मत है कि धान्यसे याग करना चाहिये और देवताओंकी यह राय है कि यज्ञ पशुओंसे करना चाहिये। अब आप हम लोगोंसे कहिये। उनके वचन सुन कर आत्मज्ञानी वसु इस प्रश्नका समाधान करनेके लिये मनमें विचार करने लगे कि महर्षि और देवताओंके बीचमें पहले देवता पूज्य हैं, इसलिये यहांपर अब मुझे देवताओंका ही पक्ष लेना चाहिये ॥ ३९ ॥



गरयुरो ननस्तंम्नु निपपात स चेदिराट् । आययन हरि देवेश प्राणार्ं मनुजाधिपम् ॥
पतमानं ततो वायुर्विधृत्वे मदा स्थिरे । ततो परमया प्रीत्या मत्वाऽऽत्मनि सा रुग ॥ (पृष्ठ २१५)

देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुस्तत्पक्षसंश्रयात् ॥ ३९ ॥ छागेनैव तु
यष्टव्यमित्यूचुरमरास्तु यत् ॥ एवमेवैतदित्याह नान्यथेति नरोत्तम ॥४०॥
तेनोक्तं वचनं श्रुत्वा वसुना रक्तवीक्षणाः ॥ मुनीन्द्रास्ते तु संक्रुद्धाः प्रो-
चुरेवं वचो नृपम् ॥ ४१ ॥

देवताओंके मतको जान कर, हे नरोत्तम ! देवताओंके पक्षपाती होकर राजा वसुने कहा—पशुओंसे ही यज्ञ करना चाहिये, देवताओंने जो कुछ कहा है वह ठीक है, इसमें अन्यथा नहीं है। वसुके कहे हुए वचनोंको सुन कर ऋषिगणने लालनेत्रवाले एवं क्रुद्ध हो कर राजासे इस प्रकार कहा ॥ ४१ ॥

अथ महर्षिशापेनोपरिचरवसोः पातालकुहरप्राप्तिः

यदि त्वयोक्तः परमो धर्मो न स्यात्परन्तप ॥ रसातलतलं घोरं वि-
विशेथा ह्यकामतः ॥ ४२ ॥ यदि स्यात्परमो धर्मस्त्वयोद्दिष्टो नरेश्वर ॥
वयमेवाद्य तद्घोरं प्रविशेम रसातलम् ॥ ४३ ॥ विधाता भगवान्देवः स-
र्वात्मा परमेश्वरः ॥ नारायणः स भगवान् कृष्णः कमललोचनः ॥ ४४ ॥
स एतदेव देवेशो वेत्त्येष मधुसूदनः ॥ न वेदान्यः पुमांल्लोके वेदैतद्वा
पितामहः ॥४५ ॥ वेद देववरः साक्षाच्छङ्करो वा पुरान्तकः ॥ यं विदुः
सर्वभूतानां संहर्तेति पुराविदः ॥ ४६ ॥ एवमुक्ते ततस्तैस्तु निपपात
स चेदिराट् ॥ अनिच्छन्नेव भूपाल घोरदुर्गे रसातले ॥ ४७ ॥ भावयन्
हृदि देवेशं त्रातारं मधुघातिनम् ॥ भक्त्या परमया युक्तः कृष्णमक्लिष्ट-
कारिणम् ॥ ४७ ॥

अरे राजा ! तुमने जो धर्म बतलाया है यदि वह ठीक न हो तो तू गम्भीर पातालमें गिर जा, और यदि तेरा ही पक्ष ठीक हो तो, हम ही उस पातालगर्तमें जा गिरें। जो भगवान्, विधाता, परमेश्वर, सर्वान्तर्यामी कृष्ण, कमललोचन मधुसूदन हैं, वे ही इस तत्त्वको जानते हैं। संसारमें और कोई पुरुष धर्मके तत्त्वको जाननेवाला नहीं है। न तो पितामह ब्रह्मा इस तत्वको जानते हैं न तो पुरान्तक साक्षात् भगवान शंकर जानते हैं, जिनको मुनि लोग सब प्राणियोंके संहर्ता कहते हैं। मुनिवरोंके ऐसा कहने पर वह चेदिराट् वसु हृदयमें अपने रक्षक, मधुघाती, क्लेशहारी श्रीकृष्णका बड़ी भक्तिसे स्मरण करता हुआ, न चाहता हुआ भी घोर कण्टक पातालमें जा गिरा।

पतमानं ततो वायुर्विचरन्वै तदा बिले ॥ दधौ परमया प्रीत्या भक्तोऽयमिति शार्ङ्गिण. ॥ ४९ ॥ वहन्नेव शनैर्देवो वायुस्तं चेदिपुङ्गवम् ॥ प्रवेशयामास तदा पातालं दैत्यसेवितम् ॥ ५० ॥ प्रविष्टः स नरेन्द्रोऽथ चेदिराड्विश्रुतो भुवि । मनस्यच्युतमीशेशं कृत्वा सर्वेश्वरं हरिम् । ५१॥ वासुदेवं सुराध्यक्षं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ स्थितिसंयमकर्तारं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ ५२ ॥ नारायणं समस्तानां लोकानां प्रभुमीश्वरम् । द्वादशाक्षरमेवैकं परं मन्त्रं जजाप ह ॥ ५३ ॥ सर्वेन्द्रियाणि संयम्य भक्त्या परमया युतः ॥ विषादं नागमद्घोरं प्रविष्टोऽपि रसातलम् ॥ ५४ ॥ शोकं मोहं भयं चापि नागमत्पृथिवीपतिः ॥

उस समय पातालमें विचरण करते हुए वायुने बड़े प्रेमसे पातालमें गिरते हुए उसको परमात्माका भक्त जान कर पकड लिया और धीरे धीरे दैत्यसेवित पातालमे उस चेदिराट्को पहुंचा दिया। पृथ्वीमें विख्यात चेदिराट् पातालमें पहुंच कर मनमें सर्वेश्वर, हरि, वासुदेव, सुराध्यक्ष, शंख चक्र गदाधारी, सृष्टि पालन और संहारकर्ता एवं क्लेशहारी श्रीकृष्णको ध्यान करके समस्त संसारके स्वामी नारायणके द्वादशाक्षर मंत्रको जपने लगा और समस्त इन्द्रियोंको जीत कर परम भक्तिसे उसने घोर गर्त पातालमे गिरने पर कुछ भी दुख नहीं पाया। राजाको शोक, मोह, भय कुछ भी नहीं हुआ ॥ ५५ ॥

अथ भगवत्प्रेरितचक्रकृतवसुहननोद्युक्तासुरवधप्रकारः

प्रविष्टमथ तं दृष्ट्वा चेदिराजं जिघांसवः ॥ ५५ ॥ पूर्ववैरं स्मरन्तस्तु दैतेयाः शस्त्रपाणयः ॥ आजग्मुः सङ्घशस्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५६ ॥ महाबला महावीर्या महादंष्ट्रा महौजसः ॥ ते समेत्य महात्मानं चेदिराजं महाभुजम् ॥ ५७ ॥ निजघ्नुः सहसा तैस्तैरस्त्रैः शस्त्रैस्तरस्विनः ॥ न शेकुस्तं महात्मानं हन्तुं दैतेयदानवाः ॥ ५८ ॥ ब्राह्माद्यैरस्त्रजालैश्च शस्त्रैश्चापि सुदारुणैः ॥

चेदिराट्को पाताल लोकमे आये हुए जान कर अपने पूर्व वैरको स्मरण करते हुए सैकडों सहस्रों दैत्यगण हाथोंमें हथियार ले कर उसको मारनेके लिये दौड पडे, जो बड़े बलवान्, वेगशाली, पराक्रमी बड़ी बड़ी डाढ़ोंवाले, और महा तेजस्वी थे। उन्होंने एकाएक शस्त्रास्त्रोंसे महाबाहु चेदिराजपर आक्रमण कर दिया और वे उसको मारने लगे, किन्तु वे सभी अस्त्र और भयंकर शस्त्रोंसे भी राजाको मार न सके ॥ ५६ ॥

चक्रं भगवताऽऽज्ञप्तं रक्षार्थं तस्य धीमतः ॥ ५९ ॥ आगतं तत्र पाताले दुर्दर्शं तद्दुरासदम् ॥ चक्राग्नौ दैत्यनिर्मुक्तशस्त्राण्यस्त्राणि भूपते ॥ ६० ॥ लयं यातानि सर्वाणि पतङ्गा इव पावके ॥ अथ ते पापकर्माणो दैतेया दानवास्तदा ॥ ६१ ॥ जग्मुर्यथागतं सर्वे स्वालयान्मिथिलेश्वर ॥ वसुश्चापि स राजर्षिश्चिन्तयन्मधुसूदनम् ॥ ६२ ॥ इष्टाभिर्वाग्भिरीशेशं तुष्टाव पुरुषोत्तमः ॥

तब श्रीमान् राजाकी रक्षाके लिये भगवान्की आज्ञासे देखनेमें बड़ा भयंकर और असह्य सुदर्शनचक्र वहां आ पहुंचा। हे भूपते! उस सुदर्शनचक्र रूपी अग्निमें दैत्योंके छोड़े हुए सभी अस्त्र या शस्त्र नष्ट हो जाते थे, जैसे अग्निमें गिरे हुए पतंग नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद हे मिथिलेश्वर! वे सब पाप कर्म करनेवाले दैत्य जैसे आये थे वैसे ही अपने अपने स्थान को चले गये। राजा वसु भी मधुसूदन भगवानका ध्यान करता हुआ मधुर वाणीसे भगवान नारायण पुरुषोत्तमकी स्तुति करने लगा ॥ ६३ ॥

अथ वस्वानयनाय पातालबिलं प्रति भगवत्कृतगरुडप्रेषणम्

भगवानपि विज्ञाय चेदिराजं रसातले ॥ ६३ ॥ पतितं विप्रशापेन सर्वेशः सर्वभावनः ॥ परः परात्मा पुरुषः परमात्मा सनातनः ॥६४॥ अव्यक्तरूपो विश्वात्मा विष्णुर्नारायणः स्वयम् ॥ नागेन्द्रशयने रम्ये शयनो मधुसूदनः ॥६५॥ भक्तानुकम्पी देवेशः क्षीरार्णवनिकेतनः ॥ वैनतेयं जगन्नाथः सस्मार शुभलोचनः ॥६६ ॥ संस्मृतो गरुडस्तेन विनतानन्दनस्ततः ॥ शीघ्रमेव हरेस्तस्य पार्श्वमभ्यागमत्तदा ॥ ६७ ॥ आगतं तं गरुत्मन्तं समीक्ष्य वसुधाधिप ॥ मेघगम्भीरया वाचा प्रोवाचेदं प्रजापतिः ॥ ६८ ॥

सर्वस्वामी, सर्वव्यापी, परमात्मा, सनातन, अव्यक्तरूप, विश्वात्मा, विष्णु, नारायण भक्तानुकम्पी देवेश, क्षीरसागर निवासी, शुभलोचन, शेष शय्यापर सोते हुए जगन्नाथ भगवान् मधुसूदनने भी गरुड़का स्मरण किया। भगवान्के स्मरण करते ही विनतापुत्र गरुड़ तुरन्त भगवान् हरिके पास आ खड़ा हुआ। हे वसुधाधिप! गरुड़को अपने पास आये हुए देख कर भगवान् मेघके समान गंभीर वाणीसे कहने लगे ॥ ६८ ॥

श्रीभगवानुवाच—

वैनतेय स राजर्षिर्वसुर्नित्यं मम प्रियः ॥ विप्रशापभयाद्घोरे पाताले

पतितः किल ॥ ६९ ॥ पतितोऽपि स पाताले भक्त्या परमया युतः ॥
मामेव भजते नित्यं मय्यावेश्य मनोगतिम् ॥ ७० ॥ तमानयस्व
भूपालं गरुत्मन्वचनान्मम ॥ तस्मादुद्धृत्य पातालात्स्वदेशं प्रापयाव्यय-
म् ॥ ७१ क्षिप्रं त्वं गच्छ राजर्षिर्मद्भक्तो यत्र हि स्थितः ॥ नैवमर्हति
भूपालः स वसुर्गरुडामलः ॥ ७२ ॥

भगवान् बोले—हे वैनतेय ! मेरा नित्यप्रिय वसु राजर्षि ब्राह्मणोंके शापसे घोर पाताल लोकमें गिर पड़ा है। पातालमें पड़ा हुआ भी वह अपने मनको मुझमें लगा कर भक्ति पूर्वक मेरा ही भजन कर रहा है। हे गरुड ! मेरे वचनसे तुम उस राजाको ले आओ। उस राजर्षि चेदिराजको पातालसे निकाल कर उसको अपने अव्यय स्थानमें पहुंचा दो। हे गरुड़ ! तुम जल्दी जाओ जहांपर मेरा भक्त राजर्षि वसु स्थित है। हे गरुड़ ! वह शुद्धात्मा भूपाल इस तरह पातालमें रहने योग्य नहीं है ॥ ७२ ॥

वामदेव उवाच—

इत्युक्तो गरुडस्तेन हरिणा परमेष्ठिना ॥ तथेत्युक्त्वा ततः शीघ्र-
मभ्यागाद्वै रसातलम् ॥ ७३ ॥ भूप प्रविशतस्तस्य पातालं तु तरस्विनः ॥
गरुडस्योग्रवेगस्य पक्षवातेन वेगतः ॥७४॥ आहताः शतशो नेशुः पन्नगेन्द्रा
रसातले ॥ पातालवासिनश्चापि दैतेयाः शतशस्तथा ॥ ७५ ॥ तद्भयाच्च
महावीर्या निपेतुः शतशस्ततः ॥ चुक्षुभुः सागराश्चापि पर्वताश्च चकम्पि-
रे ॥ ७६ ॥ ॥ समूला न्यपतन् वृक्षा भग्नस्कन्धाः समुच्छ्रिताः ॥ परित्य-
ज्य तदाऽऽकाशं खेचराः प्रययुर्दिवम् ॥ ७७ ॥

वामदेव बोले—हे राजन ! परमेष्ठी भगवान्के ऐसा कहने पर गरुड़ने "अच्छा" कह कर रसातलमें प्रस्थान किया। हे भूप ! अति शीघ्रगामी उग्रवेग गरुड़के पातालमें प्रवेश करते समय उसके पंखोंकी वायुके वेगसे रसातलमें सैकड़ों सर्प आहत हो गये। गरुड़के भयसे सैकड़ों पातालवासी दैत्यगण घायल हो गये और पर्वत कांप उठे। वृक्ष जड़ सहित उखड़ गये और खेचर आकाशको छोड़ कर स्वर्गको चले गये ॥ ७७ ॥

अन्तर्गत्वाऽथ पाताले गरुत्मान्विनतासुतः ॥ ददर्श तं समासीनं चेदि-
राजं महीपतिम् ॥७८॥ भगवन्तं जगन्नाथं स्तुवन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ गरुत्म-
न्तं ततो दृष्ट्वा सहसा वसुरुत्थितः ॥ ७९ ॥ धृताञ्जलिर्महातेजाः पूजया-
मास भक्तिमान् ॥ गरुडश्चापि भूपालं सम्पूज्येदमथाब्रवीत् ॥८०॥स्मयन्नि-
व महावीर्यो हर्षयन्निव तं वसुम् ॥



इत्युक्त्वा तं तथाभूतं गरुत्मान् पन्नगाशनः ॥
उत्पपाताशु वेगेन बाहुभ्यां परिगृह्य तम ॥ (पृष्ठ २४७)

विनतापुत्र पातालमें जा कर भगवान् जगन्नाथ पुरुषोत्तम नारायणकी स्तुति करते बैठे हुए महीपति चेदिराजको देखा। गरुड़को आया हुआ देख कर राजा एकाएक उठ खडा हुआ। महातेजस्वी राजाने हाथ जोड कर गरुडकी पूजा की और गरुड भी राजाकी पूजा कर हंसते तथा राजाको प्रसन्न करते हुए बोले।

श्रूयतां भूपते वाक्यं कृष्णस्याक्लिष्टकारिणः ॥ ८१ ॥ सृष्टिसंयमने-
शस्य विष्णोरमिततेजसः ॥ आनयस्व वसुं भक्तं रसातलतलं गत-
म् ॥ ८२ ॥ स्तुवन्तं मां समावेश्य मय्येव मतिमुत्तमाम् ॥

हे भूपते! सृष्टि और संहारके प्रवर्तक अमिततेजस्वी, सुखदायक भगवान कृष्णने मुझसे कह गये इस वचनको सुनो कि रसातलमें गये हुए मेरे भक्त वसुको, जो मेरी स्तुति करता हुआ मेरेमें ही अपने मनको लगा रखा है, ले आओ ॥ ८३ ॥

इत्युक्तो लोकनाथेन तवानयनकर्मणि ॥ ८३ ॥ आगतोऽहं महीपाल
समारोह ममोपरि ॥

हे महिपाल! इस तरह लोकस्वामीके कहनेपर मैं तुम्हें लेनेके लिये यहां पातालमें आया हूं। इसलिये मेरे ऊपर चढ़ो ॥ ८४ ॥

वामदेव उवाच—

वैनतेयेन तेनैवं प्रोक्तः स पृथिवीपतिः ॥ ८४ ॥ उवाच परया प्रीत्या
गरुत्मन्तं वसुर्नृपः ॥ तव पृष्ठं समारोढुं न चेच्छामि शुभेक्षण ॥ ८५ ॥
यत्रारोहति गोविन्दः कृष्णः शुभविलोचनः ॥ नाथश्च जगतां धाता य-
स्मिंश्चक्रगदाधरः ॥ ८६ ॥ आरोहति मया तस्मिन्नास्थातुं नैव चोचित-
म् ॥

वामदेवने कहा—हे राजन्! गरुडका यह वचन सुन कर चेदिराज वसुने बडे प्रेमसे गरुडसे कहा—हे शुभनेत्र गरुड! मैं आपकी पीठपर चढनेकी इच्छा नहीं करता हूं क्योंकि जिस पीठ पर शुभनेत्रवाले, जगत्स्वामी, धाता, चक्र गदाधारी भगवान् श्रीकृष्ण चढते हैं उसपर मेरा बैठना उचित नहीं है ॥ ८७ ॥

वामदेव उवाच

इत्युक्तो गरुडस्तेन चेदिराजेन धीमता ॥ ८७ ॥ तवानुरूपं वचनमु-
क्तमित्यब्रवात्ततः ॥ इत्युक्त्वा तं तथाभूतं गरुत्मान् पन्नगाशनः ॥ ८८ ॥

बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य प्राह चैनं पुनः पुनः ॥ उत्पपाताशु वेगेन बाहुभ्यां परिगृह्य तम् ॥ ८९ ॥ महाजवो महावीर्यो महादंष्ट्रो महामनाः ॥

वामदेव कहने लगे—हे राजन्! बुद्धिमान् चेदिराजके इस तरह कहनेपर गरुडने कहा—हे वसो! आपने अपने अनुरूप ही वचन कहा है, ऐसा कह कर सर्पभक्षी गरुड़ने बार बार राजासे कहा—भुजाओंसे पकड़िये, पकड़िये। और आलिङ्गन करनेके बाद राजाको भुजाओंसे पकड़कर अति वेगवान् महापराक्रमी, बड़ी बड़ी डाढ़ोंवाले महामना गरुड़ शीघ्र ही बड़े वेगसे उड़ गये ॥ ९० ॥

तत उत्पततस्तस्य गरुडस्य तरस्विनः ॥ ९० ॥ पक्षवातेन सन्त्रस्ताः पातालतलवासिनः ॥ महोरगा महावीर्याः प्रययुः सर्वतो दिशम् ॥ ९१ ॥ दैतेया दानवाश्चापि राक्षसाश्च सहस्रशः ॥ दिशो दश समाजग्मुः कृष्णागमनशङ्कया ॥ ९२ ॥ पातालं समतीत्याथ वैनतेयः प्रतापवान् ॥ स्वदेशं प्रापयामास तं वसुं चेदिपुङ्गवम् ॥ ९३ ॥ हस्ताभ्यां भुवि निक्षिप्य तं वसुं गरुडस्तदा ॥ अत्रैव स्थीयतां राजन्नित्युक्त्वा प्रययौ खगः ॥ ९४ ॥

पातालसे ऊपरको उड़ते हुए उनके परोंकी वायुके वेगसे पातालवासी महावीर्य उरग बड़े भयभीत हुए, चारों तरफ दिशाओंमें जा छिपे, दैत्य दानव और सहस्रों राक्षस भगवान् कृष्णके आगमनकी शङ्कासे दशों दिशाओंमें भाग गये। प्रतापवान् गरुड़ने पातालसे निकल कर उस चेदिराज वसुको अपने देशमें पहुंचा दिया। गरुड जी भी अपने हाथोंसे राजा वसुको पृथ्वीपर रख यह कह कर कि हे राजन्! आप यहीं रहिये, चले गये ॥ ९४ ॥

वसुश्चापि स राजर्षिः स्वराज्यं प्राप्य भूपतिः ॥ बुभुजे सकलान् कामाञ्शशास च वसुन्धराम् ॥ ९५ ॥ विष्णोरेव प्रसादेन सर्वभूतनिवासिनः ॥ जगद्धातुरनन्तस्य पश्चान्मुक्तिमवाप्तवान् ॥ ९६ ॥ एवमेतत्पुरावृत्तं कथितं ते नृपोत्तम ॥ नारायणाश्रितं पुण्यं यः पठेद्भक्तिमान्नरः ॥ ९७ ॥ प्रणम्याच्युतमीशेशं स याति परमां गतिम् ॥ नारायणेतिहासं यः शृणोति श्रावयिष्यति ॥ ९८ ॥ श्रद्धया भगवद्भक्तिं प्राप्नोति स नराधिप ॥ मुच्यन्ते ते नराः सद्यो दुष्कृतैः सकलैर्नृप ॥ ९९ ॥ उद्ध्रियन्ते च संसारात्पा-

तालाच्चेदिराडिव ॥ विभुना वासुदेवेन कृष्णेनैव दयालुना ॥ १०० ॥
हरिणा लोकनाथेन सर्वकामप्रदायिना ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये उपरिचरवसूपाख्यानं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायोऽत्र त्रयोदशः ॥ १३ ॥

राजर्षि वसु भी अपने राज्यको प्राप्त कर सकल कामोंको भोगने एवं पृथ्वीका शासन करने लगा और अन्तमें सर्वान्तर्यामी ससारपालक भगवान् अनन्त विष्णुकी कृपासे मोक्षको प्राप्त हो गया। हे नृपोत्तम ! इस तरह नारायण सम्बन्धी कथा तुमसे कही गयी। इस पुण्यप्रद पुरातन इतिहासको जो कोई मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवान्को प्रणाम करके पढ़ेगा वह मोक्ष पदको प्राप्त करेगा। जो मनुष्य इस नारायण इतिहासको श्रद्धासे सुनेंगे या सुनावेंगे, हे नराधिप ! वे भगवद्भक्तिको प्राप्त करेंगे। हे नृप ! वे मनुष्य शीघ्र ही सब पापोंसे छूट जायंगे। सर्व कामफलोंको देनेवाले, लोक स्वामी, भगवान् हरि, दयालु, विभु, भगवान् वासुदेव कृष्ण उन मनुष्योंका संसारसे अवश्य उद्धार करेंगे जैसे पातालसे चेदिराज वसुका उन्होंने उद्धार किया है ॥ १०० ॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥

चतुर्दशोऽध्यायः



शंख महा ऋषि की कथा, मङ्गल विग्रह दिव्य।
प्रभु सेवन फल विधि यहां, अरु प्रभुका साचिव्य ॥१॥

शंखादिकोंका भगवानके दिव्य मंगल विग्रहकी सेवा करना।

वामदेव उवाच—

ततस्ते नृप आश्चर्यं गिरेस्तत्र समाययुः ॥ शिखरं मेरुसङ्काशं

नानाधातुविभूषितम् ॥ १ ॥ श्रिया परमया युक्तं भासयन्तः स्वतेजसा ॥ शिखरेण च येनैव पर्वतः स विराजितः ॥ २ ॥ यस्मिंश्चापि समासीना मुनयः शतशो नृप ॥ ३ ॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे भास्करोपमतेजसः ॥ आगत्य सहसा भूप दीप्यमाना इवाग्नयः ॥ ४ ॥ भासयन्तो दिशः सर्वा-स्तेजोभिर्भास्करोपमाः ॥अगस्त्यप्रमुखान्विप्रान्सर्वांस्तान् ददृशुस्तदा ॥५॥ निषण्णांस्तस्य शिखरे विषण्णान्भृशदुःखितान् ॥

वामदेव बोले—हे नृप ! फिर वसु, बृहस्पति एवं शुक्र तीनों अपने तेजसे चमकाते हुए अनेक धातुओंसे विभूषित, मेरुके समान, परम शोभायुक्त और आश्चर्यजनक उस पर्वतके शिखरपर, जिससे वह पर्वत स्वयं विराजमान था और जिसपर सैकड़ों सूर्यके समान तेजस्वी अगस्त्यादि मुनिगण बैठे थे, आ पहुंचे और वहां आ कर सभी दिशाओंको अपने तेजोंसे प्रकाशित करते हुए, ज्वलन्त अग्नि तथा सूर्यके समान इन सबोंने अगस्त्यादि महर्षियोंको उस पर्वतके शिखरपर दुःखित हो कर बैठे हुए एकाएक देखा ॥ ६ ॥

तानागतांस्ततो दृष्ट्वा ह्यादित्यानपरानिव ॥ ६ ॥ समुत्तस्थुर्द्विजा-स्तत्र निषण्णा ये नगोत्तमे ॥ पूजयन्ति स्म तान्सर्वानगस्त्यप्रमुखा-स्तथा ॥ ७ ॥ सङ्गत्य मुनिभिः सर्वैस्त्रयस्तेऽथ महौजसः ॥ प्रोचुः परम-संहृष्टा नादयन्तो दिशो दश ॥८॥ शुभा व्युष्टा निशाऽस्माकं शुभाश्च तिथियोऽमलाः ॥ युष्माभिः सङ्गता यस्माद्वयं ब्रह्मर्षिसत्तमाः ॥ ९ ॥

दूसरे सूर्यके समान उन वस्वादिको आये हुए देख कर अगस्त्यादि सब ब्राह्मण, जो उस पर्वतपर बैठे हुए थे, खड़े हो गये, फिर उन वस्वादिने उनकी पूजा की और वे तीनों तेजस्वी सब महर्षियोंके साथ मिलकर परम प्रसन्नतासे दशों दिशाओंको शब्दायमान करते हुए परस्पर बोलने लगे—आज हमारी रात्रि और दिन शुभ व्यतीत हुए, हे मुनियो ! क्योंकि आज आप लोगोंसे हम मिले हैं ॥ ९ ॥

किमर्थमागता यूयं पर्वतेऽस्मिन्महीयसि ॥ विषण्णाश्च किमर्थं वा कं वा द्रष्टुमिहागताः ॥ १० ॥ एतन्मुनिवरा यूयमस्माकं पृच्छतां द्विजाः ॥ सर्वमाख्यात तत्त्वेन श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ११ ॥ एवं मुनिवरास्तैस्तु सम्यक्पृष्टा महात्मभिः ॥ श्रूयतामिति चाभाष्य प्रोचुस्ते मिथिले-श्वर ॥ १२ ॥

हे द्विजो ! हम आपसे यह पूछना चाहते हैं कि इस महा पर्वतपर किस कारणसे आप लोगोंका आगमन हुआ है ? आप दुःखी क्यों हो रहे हैं ? आप यहां किसको देखनेके लिये आये हैं ? हे मुनिवरो ! आप इन सब बातोंको भलीभांति कहिये, हम लोगोंको सुननेकी बड़ी अभिलाषा है। हे मिथिलेश्वर ! उन महात्मा मुनियोंसे इस तरह पूछे जानेपर उन महर्षियोंने कहा, अच्छा सुनिये हम सब सब सब बातें कहते हैं ॥ १२ ॥

ऋषय ऊचुः—

शङ्खचक्रधरं देवं पीतवाससमच्युतम् ॥ नारायणगिरावस्मिन् वसन्तं पुरुषोत्तमम् ॥१३॥ ईशितारं समस्तस्य स्रष्टारं जगतोऽव्ययम् ॥ तं वयं शुभदातारं द्रष्टुकामाः समागताः ॥ १४ ॥ न च दृष्टो जगन्नाथो विचरद्भिः समन्ततः ॥ कालेन महता चापि विषण्णास्तेन ते वयम् ॥ १५ ॥ अदृश्यमाने गोविन्दे हरावव्यक्तजन्मनि ॥ शोकेन महताऽऽविष्टा भृशमुद्विग्नमानसाः ॥ १६ ॥ विषण्णाश्च शुभे ह्यस्मिन् शिखरे धातुमण्डिते ॥ एवमुक्ते मुनीन्द्रैस्तु ततस्तैर्जनकामराः ॥ १७ ॥ मुनीन्द्रास्तान् समाभाष्य प्रोचुस्ते श्रूयतामिति ॥

ऋषियोंने कहा—हम लोग इस पर्वत पर बसते हुए, शंख चक्रधारी, पीताम्बरधारी, समस्त संसारके उत्पादक और रक्षक, कल्याणकारी, अव्यय, भगवान, देवादिदेव पुरुषोत्तम अच्युतको देखनेके लिये यहां आये हैं। बहुत समयसे चारों तरफ घूमते हुए भी हम भगवान् जगन्नाथको नहीं देख रहे हैं। इस कारण हम सब लोग दुःखी हो रहे हैं। अव्यक्तजन्मा, हरि गोविन्दके दर्शन न मिलनेसे बड़े दुःखी तथा भयभीतचित्तवाले हो हमलोग इस धातुमण्डित पर्वतपर दुःखी बैठे हुए हैं। हे जनक ! मुनियोंके ऐसा कहनेपर उन चिरंजीवी मुनि श्रेष्ठने, सुनिये, कहकर कहा !! १७ ॥

शङ्खादय ऊचुः—

शङ्खो नाम महीपालो हैहयाधिपतिः प्रभुः ॥ १८ ॥ आसीच्छ्रुतस्य तनयः सत्पथे तिष्ठतः शुभे ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे स च राजाऽर्चयन् हरिम् ॥ १९ ॥ तपश्चरति राजेन्द्र तस्य राज्ञो जनार्दनः ॥ सान्निध्यं कुरुते देवो भगवानिति विश्रुतम् ॥ २० ॥ सोऽयं समागतः कालो यस्मिन्काले जनार्दनः ॥ शङ्खेन दृश्यते राजन्विश्वरूपधरो हरिः ॥२१॥ तां तु गच्छामहे पुण्यां स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ सर्वकामप्रदां शुद्धां सेवितां त्रिदशैरपि ॥ २२ ॥

हे मुनिवरो ! हैहयवंशमें श्रुतसेन राजाके शङ्ख नामका एक पुत्र हुआ जिसकी सदा सन्मार्गमें निष्ठा रहती थी। वह राजा स्वामिपुष्करिणीके शुभ तटपर तपस्या कर रहा है। हे राजेन्द्र ! उस राजाके लिये देवाधिदेव भगवान् नारायण प्रकट हो गये, ऐसा सुना गया है। वह समय अब आ गया है जिस वक्त राजा शङ्ख विश्वरूप धर भगवान् हरिका दर्शन करेगा। इसलिये चलो हम सब लोग देवताओंसे भी सेवित, सब अभीष्ट फलोंको देनेवाली, शुभ, एवं पुण्यमयी स्वामिपुष्करिणीके पास चलें ॥ २२ ॥

तत्र गत्वा वयं चापि द्रक्ष्यामः पुरुषोत्तमम् ॥ सर्वकामप्रदातारं सर्वेशं सर्वभावनम् ॥ २३ ॥ तस्माद्यूयं वयं चापि गच्छाम द्विजसत्तमाः ॥ नात्र स्थेयं क्षणमपि त्वर्यतां त्वर्यतामिति ॥ २४ ॥ इत्युक्तेऽथ तदा भूप वस्वाद्यैस्तैर्महात्मभिः ॥ संहृष्टमनसः सर्वे बभूवुर्द्विजसत्तमाः ॥ २५ ॥ प्रोचुश्च शीघ्रमेवास्माद्गम्यतां गम्यतामिति ॥

वहां चल कर हम लोग भी सब कामोंको देनेवाले, सर्वेश, सर्वान्तर्यामी, भगवान् पुरुषोत्तमके दर्शन करेंगे। इस कारण हे द्विजो ! चलो आप और हमलोग वहांपर चलें। यहां क्षणभर भी नहीं ठहरना चाहिये, जल्दी करो जल्दी करो। हे भूप ! इस प्रकार कहे जानेपर द्विजश्रेष्ठ सब महर्षि बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि यहांसे अब बहुत शीघ्र चलना चाहिये ॥ २६ ॥

गतमोहा महात्मानो गतशोका गतज्वराः ॥२६॥ मुनयोऽथ ययुः सर्वे वस्वाद्यैः सहिता नृप ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थं मुनीनां गणसेवितम् ॥२७॥ गच्छन्तस्तेऽथ संहृष्टाः प्रोचुरेवं परस्परम् ॥ नरेन्द्र मुनिशार्दूला वीक्षमाणा महीधरम् ॥ २८ ॥ अयं किल जगद्धातुर्वासुदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ भूधरो बहुवृक्षाढ्यस्सदा प्रियतमो भुवि ॥ २९ ॥ एनं समाश्रिताः पुण्यं मुनयश्च पुरातनाः ॥ पुरातनं सुराध्यक्षं दृष्टवन्तः किलाव्ययम् ॥ ३० ॥ भक्ताश्चापि जगद्धातुः स्तुवन्तः पुरुषोत्तमम् ॥ एनमारुह्य शैलेन्द्रं द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः किल ॥ ३१ ॥

हे नृप ! इस तरह कह कर सब महात्मा मुनि मोह, शोक और दुखादिसे रहित हो कर वस्वादि सहित मुनिगण, सेवित स्वामिपुष्करिणी तीर्थपर चले गये। हे नरेन्द्र ! मार्गमें जाते जाते वे महीधरको देखते ही बड़े प्रसन्न हो कर आपसमें बातचीत करने लगे कि यह अनेक वृक्षोंसे युक्त पर्वत जगत्स्रष्टा भगवान् वासुदेवको पृथ्वीमें बहुत ही प्यारा है। इस पुण्यमय पर्वतके ऊपर आश्रय ले कर पुरातन मुनियोंने पुरातन भगवान्को देखा है। भगवान्के भक्तगण भी पुरुषोत्तमकी स्तुति करते हुए इस शैलेन्द्रपर चढ़ कर उनको देखेंगे ॥ ३१ ॥

स्थानेभ्यश्च समस्तेभ्यस्तस्येशस्य महात्मनः ॥ अयं गिरिर्महान् दि-
व्यः सम्यक्प्रियतरः किल ॥३२॥ नारायणाद्रिरित्येतन्नामैव वदति स्वय-
म् ॥ नारायणस्य स्थानेषु नैतस्माद्विद्यते परम् ॥३३॥ एवंविधानि वाक्या-
नि ब्रुवन्तस्ते द्विजोत्तमाः ॥ ययुस्ते सर्वतस्तत्र शतशो मिथिलेश्व-
र ॥ ३४ ॥

यह महान दिव्य गिरि ही समस्त स्थानोंसे जगन्नियन्ता परमात्माको अधिक प्रिय है। "नारायणाद्रि" यह नाम ही स्पष्ट करता है कि नारायणके स्थानोंमें इससे अधिक प्रिय और कोई स्थान नहीं है। हे मिथिलेश्वर! सैकड़ों महर्षि आपसमें इस प्रकारकी बातें करते हुए मार्गमें जारहे थे ॥ ३४ ॥

एतस्मिन्नन्तरे तत्र समाजग्मुः सहस्रशः ॥ तद्विज्ञाय ततः सिद्धाः
श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ ३५ ॥ यैः प्राप्तं देवसारूप्यं प्रसादात्तस्य शार्ङ्गि-
णः ॥ नारायणस्य देवस्य हरेः क्षीरोदशायिनः ॥३६॥ सर्वदाऽनुगता ये वै
प्रीणयन्ति जनार्दनम् ॥ क्षीरोदशायिनं देवं विश्वकर्तारमीश्वरम् ॥ ३७ ॥

उसी समय इस वृत्तान्तको जान कर श्वेतद्वीप निवासी हजारों सिद्ध वहांपर आ पहुंचे, जिन्होंने क्षीर-सागरमें शयन करनेवाले, नारायण, हरि, शार्ङ्गधरकी कृपासे उनका सारूप्य पाया है और जो सदा भगवान्‌के आज्ञा-कारी हो कर सर्वान्तर्यामी ईश्वरको प्रसन्न करते रहते हैं ॥ ३५ ॥

ते सङ्गतास्तु तैः सर्वैरगस्त्यप्रमुखैर्द्विजैः ॥ तपसा महता युक्तैर्विच-
रद्भिर्महाधरम् ॥ ३८ ॥ अगस्त्यप्रमुखान्सर्वाञ्श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ हर्षे-
ण महता युक्ता यथान्यायमपूजयन् ॥ ३९ ॥ ते चापि मुनयः सर्वे प्रहर्षो-
त्फुल्ललोचनाः ॥ तानागतांस्ततो दृष्ट्वा भास्करोपमतेजसः ॥ ४० ॥ अपूज-
यन्महात्मानो यथान्यायमरिन्दम ॥

वे सिद्ध बड़ी भारी तपस्यासे युक्त, पर्वतपर भ्रमण करनेवाले अगस्त्यादि प्रमुख महर्षियोंके साथ हो लिये। उन सब श्वेतद्वीप निवासियोंने न्यायके अनुसार अगस्त्यादि प्रमुख मुनियोंकी बड़े प्रेमसे पूजा की। हे अरिंदम! सब महात्मा मुनियोंने भी प्रसन्न हो कर भास्करके समान तेजस्वी आये हुए उन श्वेतद्वीप निवासियोंको देख उनकी विधिपूर्वक पूजा की ॥ ४१ ॥

सर्वे ते सङ्गतास्तत्र तैः सर्वैर्मुनिपुङ्गवैः ॥४१ ॥ ययुः परमया प्रीत्या
श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरं देवासुरनिषेवितम् ॥ ४२ ॥

सर्वे मुनिवराश्चापि सिद्धाश्चापि सहस्रशः ॥ बृहस्पतिश्च भगवाञ्छुक्रश्चापि तथा वसुः ॥ ४३ ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरमवापुरवनीपते ॥ सान्निध्यं कुरुते यत्र भगवान् भूतभावनः ॥ ४४ ॥

इसके बाद वे सब श्वेतद्वीपनिवासी उन मुनियोंके साथ हो कर देवताओंसे सेवित, स्वामिपुष्करिणी तीर्थपर गये। हे राजन्! सब मुनिवर, हजारों सिद्ध, बृहस्पति, भगवान् शुक्र तथा वसु ये सब इकट्ठे हो कर स्वामिपुष्करिणीके तीरपर गये, जहांपर सर्वान्तर्यामी परमात्मा रहते हैं ॥ ४४ ॥

तत्र गत्वाऽथ ते सर्वे नापश्यन्पुरुषोत्तमम् ॥ नीलमेघप्रतीकाशं पद्मपत्रनिभेक्षणम् ॥ ४५॥ तत्रापश्यंस्ततो राजन् तप्यन्तं सुमहत्तपः ॥ विष्णोराराधनार्थाय शङ्खं च नियतेन्द्रियम् ॥४६॥ तानागतांस्ततो दृष्ट्वा शङ्खोऽथ नृपतेः सुतः ॥ रोमाञ्चिताङ्गः सहसा परां प्रीतिमुपागमत् ॥ ४७॥ कृतकृत्यं तदाऽऽत्मानं मेने नरवरात्मजः ॥ संस्मरन् पूर्वमेवोक्तं हरिणा हरिमेधसा ॥ ४८ ॥

वहांपर आकर वे सब नील मेघके समान, कमललोचन भगवान्के दर्शन नहीं कर सके, किन्तु हे राजन् उन्होंने विष्णु भगवान्की आराधनाके लिये उग्र तप करते हुए जितेन्द्रिय राजा शङ्खको देखा। राजपुत्र शङ्ख इनको आये देख कर रोमाञ्चित हो कर परम प्रसन्न हुआ और उसने उस समय हरिके पूर्वोक्त वचनोंको "कि अगस्त्यादिके आनेपर मैं प्रकट हूंगा" स्मरण करता हुआ अपनी आत्माको कृतकृत्य माना ॥ ४८ ॥

आगतेषु मुनीन्द्रेषु द्रष्टासीति वचः स्मरन् ॥ सहसोत्थाय तान्सर्वान् प्रणनाम नृपस्तदा ॥४९॥ व्याकुलीकृतसर्वाङ्गस्ततः सम्भ्रान्तमानसः ॥ सिद्धांश्चापि तथा सर्वाञ्श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ ५० ॥ वागीशं च तथा शुक्रं वसुं चापि महामतिम् ॥ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणनाम च तान्नृप ॥ ५१ ॥

तब शङ्खने "उन मुनियोंके आनेपर तुम मेरा दर्शन करोगे" हरिके इस वचनका स्मरण करता हुआ एकाएक उठ खड़ा हो कर उन सबको प्रणाम किया। प्रेमके मारे उस समय राजाके सब अङ्ग व्याकुल और पागलसे हो गये। राजाने सिद्ध और सब श्वेतद्वीप निवासी, गुरु, शुक्र एवं महामति वसु आदि सबको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया॥५१॥

अगस्त्यप्रमुखाश्चापि सिद्धाश्चापि सहस्रशः ॥ बृहस्पतिश्च भगवाञ्छुक्रश्चापि महामुनिः ॥ ५२ ॥ तथाच भगवद्भक्तो राजोपरिचरो वसुः ॥

श्रुतस्य तनयश्चापि शङ्खः परपुरञ्जय ॥ ५३ ॥ एते सर्वे महात्मानः सम-
वेता ह्यकल्मषाः ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे द्रष्टुकामा जनार्दनम् ॥ ५४ ॥
अपश्यन्तस्तु ते सर्वे गोविन्दं विभुमच्युतम् ॥ अनादिमध्यनिधनं सर्वभूत-
निवासिनम् ॥ ५५ ॥ तपः परममास्थाय प्रयता नियतेन्द्रियाः ॥ चिन्तय-
न्तस्तु देवेशं तत्रातिष्ठंस्ततो नृप ॥ ५६ ॥

अगस्त्यादि महर्षि और हजारों सिद्ध, बृहस्पति भगवान्, महामुनि शुक्र तथा भगवद्भक्त राजा उपरिचर वसु, शत्रुओंको जीतनेवाला श्रुतपुत्र शङ्ख, ये सब निष्पाप महात्मा भगवान् जनार्दनको देखनेकी इच्छासे स्वामिपुष्करिणीके तटपर इकट्ठे हुए और जिनका आदि मध्य अन्त नहीं है ऐसे सर्वान्तर्यामी अच्युत गोविन्द विभुको वे वहांपर भी नहीं देखकर भगवच्चिन्तन करते हुए एकाग्रचित्त हो वहांपर तप करने लगे ॥५६॥

तस्यामेव तदा सर्वे स्नात्वा पीत्वा मुदाऽन्विताः ॥ पुष्करिण्यां शु-
भायां तु विमलायां दिने दिने ॥ ५७ ॥ अर्चयन्तो हृषीकेशं दिव्यैः पुष्पैः
सुगन्धिभिः ॥ अकुर्वंस्ते तपो घोरं द्रष्टुमव्यक्तरूपिणम् ॥ ५८ ॥ त्रिरात्र-
मेवं भूपाल व्यतिष्ठंस्ते दिवानिशम् ॥ ततो विमल आदित्ये चतुर्थेऽह्नि
शुभे दिने ॥५९॥ तपसोऽन्ते च पुण्यर्क्षे विमले चाम्बरे शुभे ॥ तदा प्रस-
न्नः सर्वात्मा साक्षान्नारायणः स्वयम् ॥ ६० ॥ आविर्बभूव भगवान्नृपते
पुरुषोत्तमः ॥ भ्राजयन्सर्वलोकेशः सर्वाल्लोकान्स्वतेजसा ॥ ६१ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
शङ्खादीनां भगवत्सेवाप्राप्तिवर्णनं नाम त्रयस्त्रिं-
शोऽध्यायोऽत्र चतुर्दशः ॥१४॥

विमल शुभ जलवाली, उसी पुष्करिणीमें प्रति दिन स्नान और प्रेमसे जलपान करके दिव्य सुगन्धित पुष्पोंसे हृषीकेश भगवान्‌को पूजा करते हुए अव्यक्तरूपी भगवान्‌के दर्शनार्थ वे घोर तप करने लगे। हे भूपाल! इस तरह तीन दिन बीत गये। चौथे दिन रविवारको शुभ नक्षत्रयुक्त पुण्य दिनमें सर्वान्तर्यामी साक्षात् नारायण पुरुषोत्तम भगवान सर्वलोकस्वामी सब लोकोंको अपने तेजसे प्रकाशित करते हुए स्वयं प्रगट हुए ॥६१॥

इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥

पञ्चदशोऽध्यायः



मङ्गल विग्रह ईश का, वर्णन दिव्य प्रभाव।
पन्द्रहवें अध्यायमें, प्रेम भक्ति प्रभु भाव ॥१॥

अथाविर्भूतभगवद्दिव्यमङ्गलविग्रहवर्णनम्

जनक उवाच—

कीदृशं वै हरेस्तस्य रूपमव्यक्तरूपिणः ॥ कियन्तो वा भुजास्तस्य कियन्ति वदनानि च ॥ १ ॥ कियन्तो वा धृतास्तेन तीक्ष्णाः प्रहरणास्तथा ॥ ब्रूहि तद्रूपसंस्थानं विश्वमूर्तेर्हरेर्मुने ॥ २ ॥ दृष्टवन्तो यथा सिद्धा मुनयश्च पुरातनाः ॥

भगवान्‌के दिव्य मंगल विग्रहका वर्णन।

जनकने पूछा—उस अव्यक्तरूपी परमात्माका रूप कैसा है, कितनी भुजायें और कितने मुख हैं, इन्होंने कितने तीक्ष्ण आयुध धारण कर रखे हैं ? हे मुने ! विश्वमूर्त्ति हरिके उस रूपका आप वर्णन कीजिये जैसा पुरातन सिद्ध और मुनियोंने देखा है ॥ ३ ॥

शतानन्द उवाच—

जनकेनैवमुक्तस्तु वामदेवो महामुनिः ॥ ३ ॥ श्रूयतामित्यथाभाष्य जनकं तं वचोऽब्रवीत् ॥ वक्ष्येऽहं नृपते सम्यक्छ्रूयतामिदमादरात् ॥४॥ यथाश्रुतं मयाऽगस्त्यान्मुनीन्द्रात्कुम्भजन्मनः ॥

शतानन्दने कहा—हे राजन् ! जनकके इस प्रकार कहनेपर वामदेव मुनि "सुनो" ऐसा कह कर जनकके प्रति कहने लगे—हे राजन् मैं कहता हूं आप आदरपूर्वक सावधान हो कर श्रवण करें। कुम्भसे पैदा हुए महर्षि अगस्त्यसे मैंने जैसा सुना है, वैसा कहता हूं।

वामदेव उवाच—

तद्रूपं वासुदेवस्य हरेरव्यक्तरूपिणः ॥ ५ ॥ उद्यतादित्यसङ्काशैर्नयनैः
शोभितं शुभैः ॥ नानारत्नचितैश्चित्रैः किरीटैरुपशोभितम् ॥ ६ ॥ प्रस-
न्नैर्बहुभिश्चापि वदनैरुपशोभितम् ॥ प्रवालमणिहेमाद्यैश्चित्रितैर्हेमकुण्ड-
लैः ॥ ७ ॥ नानावर्णैरनेकैश्च रुचिरैः समलङ्कृतम् ॥ दिव्याभरणजालैश्च
नानारत्नविचित्रितैः ॥८॥ अनेकशतसाहस्रैः शोभितं शुभलोचनैः ॥ कम्बु-
ग्रीवं महोरस्कं महाबाहुं महाद्युतिम् ॥ ९ ॥ सहस्रबाहुकं दिव्यं रत्नजाल-
विभूषितम् ॥

वामदेव बोले— हे जनक ! अव्यक्तरूप वासुदेव हरिका वह रूप उदय हुए सूर्यके समान, शुभ नेत्रोंसे शोभित, अनेक रत्न जड़ित विचित्र किरीटोंसे मण्डित, अनेक प्रसन्न मुखोंसे शोभित, प्रकाशमान, अनेक प्रवाल (मूंगा) मणि और सोनेसे जड़े हुए विचित्र, नाना रङ्गवाले एवं मनोहर सुवर्ण कुण्डलोंसे शोभित, सैकड़ों सहस्रों नाना वर्णके रुचिर दिव्य आभरण समूह एवं सैकड़ों सहस्रों सुन्दर नेत्रोंसे शोभायमान, शङ्खके समान ग्रीवायुक्त, विशाल वक्षस्थल एवं बड़ी भुजासम्पन्न और अतितेजस्वी था ॥१०॥

आयताश्च सुपीनाश्च सुवृत्ताश्च भुजाः शुभाः ॥ १० ॥ नाना-
प्रहरणोपेताः नानाभूषणभूषिताः ॥ सालस्कन्धोपमाश्चापि भूषिता भूषणो-
त्तमैः ॥ ११ ॥ श्यामाः पृथुतरा दिव्यास्तरुणादित्यतेजसः ॥ तरुणाः
स्निग्धवर्णाश्च सुखस्पर्शनखाङ्कुराः ॥ १२ ॥ शुभरेखाः सुरक्ताश्च समा
मृदुतरास्तथा ॥ दृश्यन्ते शतशस्तत्र राजन् करिकरोपमाः ॥ १३ ॥

चौड़ी, मोटी और गोल, शुभ, अनेक अस्त्रोंसे युक्त, नाना प्रकारके भूषणोंसे भूषित, साल वृक्षकी मोटी डालियोंके समान बहुत मोटी, श्याम वर्णवाली, दिव्य तरुण सूर्यके समान तेजवाली, तरुण, चिकनी, स्पर्श करनेमें सुख कर अंकुरके समान नखवाली, सुलक्षण रेखावाली तथा लाल, समान, कोमल, हाथीके सूंड़के समान उस रूपमें सैकड़ों भुजायें थीं ॥१३॥

यैरण्डमेतद्भूपाल ससागरमहीधरम् ॥ सपातालतलं सर्वं सदेवासुर-
मानुषम् ॥ १४ ॥ ससप्तलोकं सद्वीपं सर्वभूतसमाकुलम् ॥ रक्षितं बहुशो
दिव्यैर्निहता यैश्च दानवाः ॥ १५ ॥ ये दुःखहानिदा नित्यं वैष्णवानां
विशेषतः ॥ वसन्ति यान्समाश्रित्य दैत्येभ्यो निर्भयाः सुराः ॥ १६ ॥

ते कराः सुरनाथस्य दृश्यमानाश्चकाशिरे ॥ उदयादुद्यतस्तस्य भास्करस्य
करा इव ॥ १७ ॥ सद्रत्नजालकाकीर्णहारेणापि सुशोभितम् ॥ मेघकाले
तडिन्मालाशोभितस्य महात्मनः ॥१८॥ मेघजालस्य वर्णेन सदृशं रुचिरं
वपुः ॥

हे भूपाल ! जिन हाथोंसे सागर, पर्वत, पाताल, तल, समस्त देवता, मनुष्य, राक्षस एवं सर्व प्राणियोंसे युक्त सातों लोक और द्वीप तथा सब जीवसमूहोंसे पूर्ण ब्रह्माण्ड मण्डल अनेक प्रकारसे रक्षित हैं, जिनसे वैष्णवोंको दुःख और हानि पहुंचानेवाले अनेक दानव मारे गये हैं और जिनके शरणमें रह कर देवता नित्य निर्भय रहा करते हैं वे सुरनाथके ये हाथ ऐसे प्रकाशमान हो रहे हैं मानो ये उदयाचलसे उदय होते हुए प्रकाशमान सूर्यकी कर (किरणें) ही हैं। परमात्मा नारायणका वह रूपश्रेष्ठ रत्नसमूहसे पूर्ण हारसे शोभित, बरसातमें बिजलियोंके जालसे शोभायमान घनघोर मेघमण्डलके वर्णके समान सुन्दर था ॥ १८ ॥

चारुरक्तलसोष्ठं तच्चारुरक्ततरेक्षणम् ॥ १९ ॥ मृदु चारुकपोलैश्च
कुण्डलैरुपशोभितम् ॥ शोभमानं ज्वलद्भिश्च ललाटफलकैरपि ॥ २० ॥
शोभमानैस्तथा चारुभ्रूचापैरुपशोभितम् ॥ ऐरावतकराकारचारुपीनशुभो-
रुकम् ॥२१॥ द्युतिमन्मणिरत्नाढ्यचलन्नूपुरशोभितम् ॥ काञ्चनेन विचित्रेण
ब्रह्मसूत्रेण शोभितम् ॥ २२ ॥ सहस्रादित्यसङ्काशमचिन्त्यं महदद्भुतम् ॥
मेरुमन्दरसङ्काशं नीलपर्वतसन्निभम् ॥ २३ ॥ समुच्छ्रितोरसं सौम्यं
समायतविलोचनम् ॥ दिव्यपीताम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ २४ ॥
दिव्यया वैजयन्त्या च सुस्कन्धगतया तथा ॥ चकाशे तद्यथा मेघो विद्यु-
न्मालाविराजितः ॥ २५ ॥ जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्निस्वनद्भिरनेकशः ॥ कि-
ङ्किणीजालसङ्घैश्च शोभनै रुचिरप्रभैः ॥२६॥ स्वनद्भिर्मणिजालैश्च शोभ-
यद्भिर्दिशो दश ॥ सुरक्तैर्बहुसाहस्रैर्ज्वलद्भिर्भास्करोपमैः ॥२७॥ उद्यदिन्दु-
प्रतीकाशैर्दिव्यैश्च नखमण्डलैः ॥ रक्तान्तैरुन्नतैश्चापि शोभमानं सदम्बु-
जैः ॥ २८ ॥ अङ्कुशध्वजचक्राब्जशङ्खवज्राङ्कितैस्तथा ॥ सुपादतलपद्मैश्च
शोभितं वसुधाधिप ॥ २९ ॥ मुक्तादामभिरन्यैश्च वज्रसूर्यांशुसन्निभैः ॥
प्रभया द्योतमानैश्च शोभमानपदाम्बुजम् ॥ ३० ॥ अनेकशतसाहस्रैरङ्गु-
लीयकभूषणैः ॥ नानारत्नचितैश्चापि संशोभिकरशाखिभिः ॥ ३१ ॥ मू-

द्धजैः कुञ्चितैश्चापि नीलैर्मृदुतरैस्तथा ॥ लम्बमानैर्विनिष्क्रान्तैः किरीटाच्छु-
भदर्शनात् ॥ ३२ ॥ प्रच्छाद्यमानवदनं मेघैरिव निशाकरम् ॥ रत्नस्यूतेन
सूत्रेण काञ्चनेन विराजितम् ॥ ३३ ॥ नानामणिनिबद्धेन शोभमानेन
शोभितम् ॥ शोभितं दिव्यमालाभिर्भूषितं पृथुलोचनम् ॥ ३४ ॥ नाना-
श्चर्यसमायुक्तं नानामणिगणान्वितम् ॥ समन्तादीप्यमानं तद्भूरिणा स्वेन
तेजसा ॥३५॥ आदित्य इव तेजोभिरुद्यन्तुदयाद्रितः ॥ तेजोभिः काञ्च-
नाभैश्च समन्तान्निर्गतैस्तथा ॥ ३६ ॥ जाज्वल्यमानं तद्रूपं चकाशेऽद्भुत-
दर्शनम् ॥

मनोहर और लाल ओठोंसे युक्त, सुन्दर और लाल नेत्रवाले, चापके समान भ्रुवों एवं उज्ज्वल ललाटसे शोभायमान, कोमल, सुन्दर कपोल एवं कुण्डलसे शोभित, ऐरावत हाथीकी सूँड़के समान मनोहर और पुष्ट जाँघवाले, कान्तिमान मणि और रत्नोंके समूहसे जटित झल झल बाजते हुए नूपुरयुक्त, कांचनमय विचित्र ब्रह्मसूत्रसे शोभित, हजारों आदित्यके समान, अचिन्त्य, महान्, अद्भुत, मेरु एवं मन्दरके तुल्य, नील पर्वतके समान, ऊँचे वक्षःस्थलवाले, मनोहर और विशाल रमणीय बड़े बड़े नेत्रवाले, दिव्य पीताम्बर धारण किये हुए, शरीरमें दिव्य चन्दनका लेप किये हुए, बिजलियोंके समूहसे प्रकाशमान मेघके समान, गलेमें दिव्य वैजयन्ती मालासे प्रकाशित, स्वर्णमय, दिव्य, शब्दायमान अनेक चमकते एवं रुचिर प्रभावाले किंकिणी जालके समूहोंसे युक्त, दशों दिशाओंको प्रकाशमान करते हुए मणि समूहोंसे भूषित, तथा रक्तवर्ण हजारों सूर्यके समान चमकीले और उदयको प्राप्त होनेवाले चन्द्रमाके समान ताम्रवर्ण, दिव्य, पद्मके समान अन्तमें लाल, एवं ऊँचे नख मण्डलोंसे सुशोभित अंकुश, ध्वजा, चक्र, कमल, शंख वज्रादि रेखाओंसे चिह्नित चरण कमलवाले, वज्र और सूर्यकी किरणोंके समान मोतियोंकी लड़ियों एवं अन्यान्य कान्तिसे चमकते हुए नाना प्रकारके हजारों रत्नोंसे जड़े हुए सुन्दर अंगूठियोंसे प्रकाशमान चरण कमलवाले, मस्तकके सुन्दर किरीटसे निकले हुए नील, मृदु या मृदुतर लम्बे लम्बे केशोंसे आच्छादित, मानों मेघोंसे आच्छादित चन्द्रमा ही हो, ऐसे मुखवाले, रत्नसे जड़े हुए नाना मणि जटित कांचनमय सूत्रसे विराजमान, दिव्य मालोंसे भूषित, विशाल नेत्रवाले, अनेक आश्चर्यमय नाना मणियोंसे युक्त, अपने तेजसे स्वयं सर्वत्र प्रकाशमान, मानों उदयाचलसे चारों ओर निकले हुए अपने स्वर्णमय किरणोंके साथ सूर्य ही उदय हो रहा हो, इस प्रकार प्रकाशमान वह अद्भुत रूप अपने तेजसे दीप्यमान हो रहा था ॥ ३७ ॥

स्वभासा दुर्निरीक्ष्यं तन्मुनिभिश्च सुरैरपि ॥ ३७ ॥ तप्यते तेजसा
तस्मान्निर्गतेन स्म भूरिणा ॥ ससुरासुरगन्धर्वं जगदेतच्चराचरम् ॥ ३८ ॥
ज्वलद्भिरर्कवर्णैश्च जाम्बूनदमयैस्तथा ॥ अनेकशतसाहस्रैः संयुक्तं हेमभू-

षणैः ॥ ३९ ॥ करेषु तेषु संयुक्तास्तीक्ष्णाः प्रहरणास्तथा ॥ ज्वलन्तश्च स्फुरन्तश्च मिथिलेश चकाशिरे ॥ ४० ॥ अर्चीपि तेभ्यो निष्पेतुर्यैर्दिशो विमलीकृताः ॥ उदयाद्रिसमारूढात्सूर्याद्दीप्तांशवो यथा ॥ ४१ ॥

उसे मुनि और देवता भी नहीं देख सकते थे। उससे निकलती हुई ज्वालासे सुर, असुर, गन्धर्व और समस्त चराचर संतप्त हो गया। वह रूप सुवर्णमय, प्रकाशमान, सूयवर्णके समान, अनेक सैकड़ों, सहस्रों सोनेके आभूषणोंसे युक्त था। हे मिथिलेश्वर! उन सब हाथोंमें प्रकाशमान तीक्ष्ण आयुध ज्वालायुक्त एवं शोभायमान हो रहे थे। उन आयुधोंसे तेज निकल रहे थे, जिनसे समस्त दिशायें निर्मल हो रही थी जैसे उदयाचलपर विराजमान सूर्यकी प्रदीप्त किरणें दिशाओंको निर्मल करती हैं ॥४१॥

व्यालोला लोकनाथस्य प्रसन्नाः शुभदर्शनाः ॥ आयताः कृष्णरक्ताश्च भ्रूचापा दृष्टिमार्गणाः ॥ ४२ ॥ रक्तपद्मदलप्रख्याः कान्तिमन्तः सुवर्चसः ॥ श्रिया परमया युक्ताः पक्ष्मराजिविराजिताः ॥ ४३ ॥ येषां निपातैर्दैतेया नेदुर्भीताः सहस्रशः ॥ रक्षांसि दानवाश्चापि जग्मुर्वैवस्वतक्षयम् ॥ ४४ ॥ दुर्लभं चापि देवत्वं प्राप्नुवन्ति नरा अपि ॥ अन्यांश्च दुर्लभान्कामान् मुक्तिं चापि सुदुर्लभाम् ॥ ४५ ॥

भगवान् लोकनाथके भ्रूकुटि रूपी धनुषोंके चञ्चल, प्रसन्न, शुभदर्शन, विस्तृत कृष्ण और लाल दृष्टिरूपी बाण, लालदल कमलके समान सुन्दर, तेजस्वी, स्वयं प्रकाशमान तथा परम शोभासे युक्त पलकोंकी कान्तिसे विशेषकर प्रकाशमान थे, जिन दृष्टिरूप बाणोंके गिरनेसे हजारों दैत्य डर कर चिल्लाने लगे, राक्षस और दानव यमलोकको पहुंच गये, जिनसे मनुष्य, दुर्लभ देवत्वको तथा अन्यान्य दुर्लभ कामों एवं अत्यन्त दुर्लभ मुक्तिको भी प्राप्त कर लेते हैं ॥ ४५ ॥

यान्द्रष्टुकामास्तद्भक्ताः शोचन्ति हि दिवानिशम् ॥ ते भूप शतशो दिव्या राजन्तो रुचिरप्रभाः ॥ ४६ ॥ अनेकशतसाहस्राः कालाग्निसदृशप्रभाः ॥ नानाप्रहरणा घोराः संयुक्तास्तत्र बाहुषु ॥ ४७ ॥ भयदाः सुरशत्रूणां दैत्येन्द्राणां महौजसाम् ॥ सर्वगाः सर्वदेशेषु भक्तानामभयप्रदाः ॥ ४८ ॥ जाज्वल्यमानास्तेजोभी रूक्षकैः सौम्यकैरपि ॥ अकुर्वन्निष्प्रभौ सद्यश्चन्द्रसूर्यौ स्वरश्मिभिः ॥ ४९ ॥

किन्तु जिनको देखनेकी अभिलाषासे भक्त अहर्निश चिन्ता किया करते हैं, हे भूप! मनोहर कान्तिवाले,

दिव्य, अनेक सैकड़ों सहस्रों कालाग्नियोंके सदृश नाना प्रकारके भयंकर आयुधवाले महातेजस्वी, देवताओंके शत्रु, दैत्योंको भय देनेवाले, सर्व देशोंमें सब जगह जाने और भक्तोंको अभय देनेवाले एवं प्रकाशमान सूर्य और चन्द्रमाको अपनी तीक्ष्ण और शीतल किरणोंसे तुरन्त निष्प्रभ बना देनेवाले भुज जिस रूपमें हैं ॥ ४९ ॥

तद्रूपमाश्चर्यमनेकवर्णं किरीटमालाभिरशेषमूर्तेः ॥ व्यराजतादित्य इवान्तकाले स्वरश्मिमालाभिरनेकरश्मिः ॥ ५० ॥ तद्दीप्तवक्त्रं विमलं विशोकं जाज्वल्यमानं महता स्वतेजसा ॥ अशोभतास्यं वपुरद्भुतेक्षणं युगान्तकालाग्निरिव प्रदीप्तम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
भगवद्दिव्यमङ्गलविग्रहवर्णनं नाम चतुस्त्रिं-
शोऽध्यायोऽत्र पञ्चदशः ॥ १५ ॥

वह अशेषमूर्ति भगवान्‌का अनेक वर्णवाला एवं आश्चर्यमयरूप किरीट मालाओंसे, जैसे सूर्य प्रलयकालके अन्तमें अपनी किरण मालाओंसे प्रकाशमान होता है, वैसा शोभायमान होता था। दीप्तमुख, निर्मल और शोकरहित अपने महान् तेजसे प्रकाशमान वह शरीर इस तरह शोभित हो रहा था मानो प्रलयकी अग्नि प्रदीप्त हो रही है ॥५१॥

इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥

षोडशोऽध्यायः

प्रकटित प्रभुको मुनिनका, बहु प्रणाम पर्याय।
सुर शंखादिक वाद्य बहु, प्रभु सेवन तहं आय ॥१॥
ब्रह्माकृत वेङ्कट विनय, स्तुति शङ्कर कृत शुद्ध।
स्तुति महर्षिकृत ईशकी, सप्तर्षि परि शुद्ध ॥२॥
स्तुति सनकादिक मुनिनकृत, इन्द्रादिक दिक्‌पाल।
दिव्य स्तुति सिद्धादिकृत, श्वेत द्वीप प्रतिपाल ॥३॥

अथाविर्भूतं प्रति महर्षिकृतप्रणामादिकम्

वामदेव उवाच—

एवंविधं हरिस्तेभ्योऽदर्शयद्भगवान्वपुः ॥ यन्न देवा न मुनयो नापि सिद्धा न चारणाः ॥ १ ॥ न योगिनो न गन्धर्वा नापि विद्याधरा अपि ॥ न च यक्षा न चाप्यन्ये वालखिल्याश्च तापसाः ॥ २ ॥ नोरगा नापि दैतेया नापि किंपुरुषास्तथा ॥ दृष्टवन्तः पुरा राजन् कृष्णस्य वपुरद्भुतम् ॥ ३ ॥

वामदेव बोले—हे नरेश ! श्रीहरिने उनको वह अद्भुत रूप दिखाया जिस श्रीकृष्णजीके शरीरको पहले देवता, मुनि, सिद्ध, चारण, योगी, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, वालखिल्य, तपस्वी, नाग और किम्पुरुष आदि किसीने भी न देखा था ।

ततस्तु मुनयो दिव्यं रूपं तद्विश्वतोमुखम् ॥ अनेकरत्नसञ्छन्नकिरीटोज्ज्वलिताननम् ॥ ४ ॥ व्यालोलमानैर्बहुभिः कुण्डलैः समलङ्कृतम् ॥ पिबन्त इव नेत्रैस्ते संक्षोभस्तिमितैस्तदा ॥ ५ ॥ ददृशुर्मुदिताः सर्वे नरेन्द्राऽनिमिषेक्षणाः ॥

हे नरेन्द्र ! इसके बाद उन महानुभाव मुनियोंने एकाग्र दृष्टि एवं बड़े प्रेमसे विश्वतोमुख, अनेक रत्नोंसे युक्त किरीटोंसे उज्ज्वल मुखवाले, बहुतसे लम्बायमान सुन्दर सुन्दर कुण्डलोंसे अलंकृत भगवान्‌के दिव्यरूपको चञ्चल एवं स्थिर नेत्रोंसे ऐसा देखा मनों भगवानको पी जा रहे हैं ॥ ५ ॥

भृशमार्ताः स्म देवेति सहसा भुवि भूपते ॥ ६ ॥ निपेतुरथ ते सर्वे सम्भ्रान्तमनसोऽमलाः ॥ अथ दृष्ट्वा जगन्नाथं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् ॥ ७ ॥ सहस्रशः समागम्य भक्तिभारावनामितैः ॥ शिरोभिरवनीपाल प्रणेमुः सहसा भुवि ॥ ८ ॥ बृहस्पतिरगस्त्यश्च शुक्रश्चापि वसुस्तथा ॥ भगवन्तं ततो दृष्ट्वा गरुडोपरि संस्थितम् ॥ ९ ॥ जाम्बूनदाद्रिशिखरे नीलमेघमिवोत्थितम् ॥ भक्त्या प्रणेमुस्तं देवं वीक्षमाणा इतस्ततः ॥ १० ॥ उत्थायोत्थाय ते सर्वे भूयो भूयो निरीक्षितम् ॥ प्रसीदेति ब्रुवन्तस्तं प्रणेमुर्बहुशो नृप ॥ ११ ॥

बड़े प्रेमसे तब सब अमल मुनिगण एकाएक व्याकुलचित्त हो पृथ्वीपर गिर पड़े । हे नाथ ! देव ! हम सब

बहुत दुःखी हैं। ऐसे बोलते हुए इसके बाद हे महिपाल! वेंकटाचलनिवासी भगवान जगन्नाथको देख कर भक्तिके भारसे अवनत मस्तकोंसे एकाएक हजारोंने आ कर भगवान्को प्रणाम किया। बृहस्पति, अगस्त्य, शुक्र और वसुने सुवर्णमय शिखरपर उठे हुए, नीलमेघकी तरह गरुड़पर बैठे हुए भगवान्को इधर उधर देखते हुए भक्तिसे प्रणाम किया। हे नृप! उन सबने उठ उठ कर बार बार उन निरीक्षण किये हुए भगवानको हे भगवन्! प्रसन्न हों, ऐसा कहते हुए प्रणाम किया ॥ ११ ॥

अथ भगवदाविर्भावकाले देवतायापूरितशङ्खादिमङ्गलवाद्यक्रमः

एतस्मिन्नन्तरे स्वस्थैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ पाञ्चजन्योपमाः शङ्खा
दध्मिरे हेमभूषणाः ॥१२॥ अवाद्यन्त च दिव्यानि वाद्यानि बहुशोऽम्बरे ॥
मृदङ्गादीनि सर्वाणि हेमरत्नचितानि वै ॥ १३ ॥ महता शङ्खनादेन वादि-
त्राणां स्वनेन च ॥ जगदापूरितं सर्वं क्षुभिताश्चापि दानवाः ॥ १४ ॥ निव-
सन्ति च ये तत्र नारायणगिरौ नृप ॥ ते सर्वे सहसा हृष्टाः समुत्तस्थुश्च
सङ्घशः ॥ १५ ॥ तस्मिञ्छब्दे श्रुते सर्वे सिंहपक्षिमृगास्तथा ॥ प्रसन्न-
तां ययुः सर्वे वेङ्कटाद्रिनिवासिनः ॥ १६ ॥

उसी समय आकाशमें सुवर्णभूषण भूषित पाञ्चजन्य शङ्खके समान सैकड़ों हजारों शङ्ख तथा हेमरत्नोंसे युक्त मृदङ्गादि बहुतसे दिव्य बाजे बजने लगे। शङ्ख और बाजोंके तुमुलशब्दसे सारा संसार पूरित हो गया और दानव क्षुभित हो उठे। हे नृप! उस नारायण गिरिपर जो बसते थे वे सब प्रसन्न हो उठ खड़े हुए और वेङ्कटाचल-निवासी सब सिंह, पक्षी और मृग बड़े प्रसन्न हुए ॥ १६ ॥

अथ भगवत्सेवार्थं वेङ्कटाचलं प्रति ब्रह्मरुद्राद्यागमनम्

श्रुत्वा तं शब्दमतुलं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १७ ॥ ज्ञात्वाथ वासु-
देवं तं हरिं प्रत्यक्षतां गतम् ॥ आजगामाथ तत्पार्श्वं कृष्णस्याक्लिष्टकारि-
णः ॥ १८ ॥ मुनीन्द्रैर्देवसङ्घैश्च गन्धर्वैश्च समावृतः ॥ भगवाञ्छंकरश्चापि
त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ १९ ॥ ज्वलद्भास्करसङ्काशजटामण्डलशोभितः ॥
तेन शब्देन विज्ञाय सान्निध्यं हरिमेधसः ॥ २० ॥ अभ्यगादाशु तत्पार्श्वं
द्रष्टुं तं वसुधाधिप ॥ दुर्वाससा मुनीन्द्रेण नन्दिना च समं विभुः ॥ २१ ॥

लोकपितामह ब्रह्माजी उस अनुपम शब्दको सुन कर और यह जान कर कि भगवान वासुदेव हरि नारायण प्रकट हो गये हैं, देवताओं और गन्धर्वोंसे आवृत हो कर सुखदायक भगवान् श्रीकृष्णके पास आये। दीप्यमान सूर्यके

समान जटामण्डलसे शोभित, त्रिपुरासुरका नाश करनेवाले, त्रिलोचन भगवान् शङ्कर भी, हे वसुधाधिप! उस शब्दसे भगवानका सान्निध्य जान कर शीघ्र उनको देखनेके लिये, मुनीन्द्र दुर्वासा और नन्दीके साथ उनके पास आये ॥२१॥

शक्रश्च त्रिदशश्रेष्ठः श्रुत्वा तं शब्दमद्भुतम् ॥ हरिं प्रत्यक्षतां यान्तं ज्ञात्वा देवं जनार्दनम् ॥ २२ ॥ देवैः परिवृतः पार्श्वं ययावव्यक्तजन्मनः ॥ ततः शङ्खध्वनिं श्रुत्वा विष्वक्सेनः प्रतापवान् ॥ २३ ॥ ज्ञात्वा प्रत्यक्षतां यान्तं नारायणमनामयम् ॥ सहसोत्थाय भूपालः शीघ्रमेवाभ्यगात्तदा ॥ २४ ॥ सप्तभिः सचिवैः सार्द्धं सकाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ अनुरक्तैर्महावीर्यैः प्रयतैः सुसमाहितैः ॥ २५ ॥

देवताओंमें श्रेष्ठ इन्द्र इस अद्भुत शब्दको सुन कर और भगवान जनार्दन हरिको प्रत्यक्ष हुए जान कर देवताओंको साथ ले कर अव्यक्तजन्मा भगवानके पास आये,बली विष्वक्सेन शङ्खकी ध्वनि सुन कर अनामय भगवान् नारायणको प्रकट हुए जान कर अनुरक्त महाबली और सावधान चित्तवाले सात सचिवोंको अपने साथ ले कर एकाएक शीघ्र भगवानके पास पहुंचे ॥ २५ ॥

सनन्दनाद्यश्चापि योगिनस्तेऽथ चक्रिणः ॥ पार्श्वमभ्याययुः श्रुत्वा तं शब्दं मिथिलेश्वर ॥ २६ ॥ सप्तर्षयश्च ये पूर्वं मयोक्ता मुनिसत्तमाः ॥ तेऽपि श्रुत्वा च तं शब्दं हरेः पार्श्वं ययुस्तदा ॥ २७ ॥ यश्चापि मुनिभिर्दृष्टो वायव्यां दिशि भूभृतः ॥ शिलातले समासीनः पुरुषोऽद्भुतदर्शनः ॥ २८ ॥ सोऽपि शङ्खध्वनिं श्रुत्वा भगवत्पार्श्वमाययौ ॥

हे मिथिलेश्वर! अनन्तर उस शब्दको सुन कर सनन्दनादि योगिगण भी चक्रधारी भगवान्के पास आये। हे राजन्! मैंने पहले जिन सप्तर्षियोंका वर्णन किया है वे भी सब उस शब्दको सुन कर भगवान हरिके पास गये। मुनियोंने वायव्यदिशामें पर्वतकी शिलाके नीचे बैठे हुए जिस अद्भुतदर्शन पुरुषको देखा था, वह भी शङ्खध्वनिको सुन कर भगवान्के पास चला गया ॥ २९ ॥

ब्रह्मा प्रजापतिश्चापि भगवाञ्शम्भुरेव च ॥ २९ ॥ विष्वक्सेनश्च भगवाञ्शक्रश्च त्रिदशाधिपः ॥ सप्तर्षयश्च मुनयः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ ३० ॥ वायव्यां दिशि यो दृष्टो मुनिभिः सोऽपि भूपते ॥ एते सर्वे समागम्य सकाशं शार्ङ्गधन्वनः ॥ ३१ ॥ भक्त्या परमया युक्ता राजन्सं-

हृष्टमानसाः ॥ ददृशुस्ते समारूढं वैनतेयं महाबलम् ॥ ३२ ॥ हरिं हेमाद्रिशिखरे नीलमेघमिव स्थितम् ॥ शिरोभिस्ते प्रणेमुस्तं विश्वेशं विश्वरूपिणम् ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा, प्रजापति, भगवान शम्भु, भगवान विष्वक्सेन, देवस्वामी इन्द्र, सप्तर्षि मुनि, सनकादि योगिगण और और दिशाओंमें जिनको मुनियोंने देखा था, इन सबोंने शार्ङ्गधर हो भगवानके पास एक साथ ही आ कर हे राजन् ! परम भक्तिपूर्वक बड़े प्रसन्न हो कर महा बलवान, गरुडपर चढ़े हुए, मानो स्वर्णमय पर्वतके शिखर पर ही बैठे हैं, ऐसे हरि भगवान्को देखा और सबने मस्तकोंसे विश्वरूपी विश्वेशको प्रणाम किया ॥ ३३ ॥

जय देव जयेशेति वदन्तः सहसा भुवि ॥ सर्वे देवगणाश्चापि प्रणेमुः पृथुलोचनम् ॥ ३४ ॥ प्रसीद देवदेवेति वदन्तस्ते पुनः पुनः ॥ ब्रह्माद्या देवताश्चापि मुनयश्च तपोधनाः ॥ ३५ ॥ सिद्धाश्चापि तथा सर्वे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ एते सर्वे हरेस्तस्य रूपं परपुरञ्जय ॥३६॥ द्रष्टुं नाशक्नुवन्नेत्रैस्तेजसा तस्य तापिताः ॥ प्रतपन्तमिवादित्यं संहारसमये नराः ॥ न्यमीलयन्त नेत्राणि ब्रह्माद्यास्ते ततो नृप ॥ ३७ ॥

हे देव ! आपकी जय हो, हे ईश ! आपकी जय हो, ऐसे कहते हुए एकाएक देवताओंने विशालनेत्र भगवानको प्रणाम किया । हे देवाधिदेव ! आप प्रसन्न हों, बार बार ऐसा कहते हुए ब्रह्मादिदेवता और तपोधन मुनिगण सिद्ध तथा सभी श्वेतद्वीपनिवासी उनके तेजसे सन्तापित होकर,हे पुरंजय ! हरिके उस विचित्र रूपको नेत्रोंसे देखनेमें समर्थ नहीं हो सके, जिस तरह प्रलयके समय प्रचण्ड तेजवाले आदित्यको नहीं देख सकते हैं। हे राजन् ! उस समय भगवान्के तेजसे संतप्त होकर ब्रह्मादि देवताओंने अपने नेत्र मींच लिये ॥ ३७ ॥

अथ ब्रह्मकृतभगवत्स्तुतिः

तेजसा पीडितास्तस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥ तुष्टावाथ तदा ब्रह्मा देवाधिपतिमव्ययम् ॥ ३८ ॥ पतत्रिराजमारूढं शिरोभिः प्रणिपत्य तम् ॥ ३९ ॥

देवाधिदेव ! शार्ङ्गधरके तेजसे पीडित ब्रह्माजी गरुडपर चढे हुए अव्यय, अविनाशी देव भगवान्को शिरोंसे प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३९ ॥

ब्रह्मोवाच—

नमामि त्वां जगन्नाथ सहस्रवदनेक्षण ॥ ३९ ॥ ज्वलत्किरीटसा-

हस्रधारिणं पुरुषोत्तम ॥ रुचिरैर्बहुभिर्दिव्यैर्बाहुभिः परिघोपमैः ॥ ४० ॥
संयुक्तं त्वां नमाम्याद्यं विश्वेशं विश्वतोमुखम् ॥ अणीयसामशेषाणा-
मणीयांसं सनातनम् ॥ ४१ ॥ भूतादीनां समस्तानां गरिष्ठं च गरीयसा-
म् ॥ नारायण त्वां वरदं नमामि परमेश्वरम् ॥ ४२ ॥

ब्रह्माजी कहने लगे—हे सहस्र मुख और नेत्रवाले जगन्नाथ ! मैं आपको नमस्कार करता हूं। उज्ज्वल सहस्रों किरीट धारण करनेवाले, पुरुषोत्तम ! परिधिके समान मनोहर दिव्य अनेक भुजाओंसे संयुक्त, विश्वेश विश्वतोमुख ! आप आदि भगवान्को मैं नमस्कार करता हूं। छोटे छोटे, बड़े बड़े परमेश्वर ! सनातन ! वरद ! आपको हे नारायण ! मैं प्रणाम करता हूं ॥ ४२ ॥

योगिभिर्गम्यमानं त्वां जनोलोकगतं विभुम् ॥ परं पुराणं पुरुषं
नमामि सुरनायकम् ॥ ४३ ॥ प्रसीदतु भवान्विष्णो रहितः प्राकृतैर्गुणैः ॥
शुद्धः पुमान्समस्तेभ्यो भूतेभ्यः सर्वसम्भवः ॥ ४४ ॥ साक्षिभूतः समस्त-
स्य जगतेऽस्य जगत्पते ॥ नमामि त्वामहं नित्यंव्यालोलायतलोचन-
म् ॥ ४५ ॥ यः प्रोच्यते विशुद्धो हि सर्वेश इति केशव ॥ तं त्वां नमाम्य-
शेषाणामात्मानं सर्वदेहिनाम् ॥ ४६ ॥

जनलोकगत, योगियोंसे ध्येय, विभु, पर, पुराणपुरुष तथा देवस्वामी आपको मैं प्रणाम करता हूं। हे विष्णो ! आप प्राकृतिकगुणोंसे रहित, शुद्ध, समस्त भूतोंके परे, सबके कारण, आप प्रसन्न हों। हे जगत्पते ! आप इस समस्त संसारके साक्षीभूत हैं। चंचल और विस्तृत नेत्रोंवाले नित्य आपको मैं प्रणाम करता हूं। हे केशव ! जो सर्वात्मा विशुद्ध कहा जाता है, जो समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं, ऐसे आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥४६॥

समस्तकारणानां त्वं कारणं प्रभुरव्ययः ॥ ब्रह्मविद्योगिनां चा-
सि प्रजानां च प्रजापतिः ॥४७॥ यं न जानन्ति मुनयो नापि देवा न मा-
नवाः ॥ नाहं न शम्भुर्विष्ण्वाख्यं तत्पदं परमं भवान् ॥ ४८ ॥ इन्द्राद्याः
शतशो यस्य देवास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ द्रष्टुकामा न जानन्ति रूपमव्यक्तरू-
पिणः ॥ तदहं विमलं देव शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ४९ ॥ न स्तोतुमीशो न
च देव वक्तुं गुणांस्तवेशाच्युत लोकनाथ ॥ प्रसीद देवाधिपते समस्ता-
लोकयास्मान्विमलैः सुनेत्रैः ॥ ५० ॥

समस्त कारणोंके आप कारण, प्रभु और अव्यय हैं। आप योगियोंमें ब्रह्मवित् और प्रजाओंमें प्रजापति हैं। जिनको मुनि, देव, दानव, नहीं जानते, न मैं जानता हूं, और न भगवान् शङ्कर जानते हैं, वह विष्णुनामक परमपद आप ही हैं। देखनेकी इच्छावाले त्रिभुवनेश्वर इन्द्रादि सैकड़ों देवता भी जिस अव्यक्तरूपी परमात्माके रूपको नहीं जानते हैं, उस विमल आपके शाश्वतपदकी स्तुति करनेमें ही हे देव ! मैं समर्थ नहीं हूं। और हे अच्युत ! लोकनाथ ! न मैं आपके गुणगान करनेमें समर्थ हूं। हे देवाधिपते ! आप प्रसन्न हों, और हम सबको विमल तथा शान्तिपूर्ण दृष्टिसे देखें ॥ ५० ॥

अथ शम्भुकृतभगवत्स्तुतिः

इत्युक्ते ब्रह्मणा तेन शम्भुरव्यक्तरूपिणम् ॥ अस्तौषीद्भगवन्तं तमच्युतं पुरुषोत्तमम् ॥ ५१ ॥

ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् भगवान् शम्भु अव्यक्तरूप अच्युत पुरुषोत्तम भगवान्की स्तुति करने लगे। ॥ ५१ ॥

शम्भुरुवाच

परावरेशं पुरुषं दुष्टदैत्येन्द्रघातिनम् ॥ जगत्पालनकर्तारं जगदुत्पत्तिकारणम् ॥ ५२ ॥ प्रजापतीनां सर्वेषां स्रष्टारममलेक्षणम् ॥ भक्तार्तिहानिदातारं भक्तानां प्रियकामदम् ॥ ५३ ॥ त्वां नमामि हरे दिव्यं परब्रह्मस्वरूपिणम् ॥ प्रधानपुंसोरजयोर्जगत्कारणभूतयोः ॥५४॥ नित्ययोर्व्यापिनोश्चापि प्रभुं त्वां कारणं परम् ॥ तं त्वां नमामि भूतेशं भूतानामपि कारणम् ॥ ५५ ॥

शम्भु बोले—पहिले और पीछेके उत्पन्न प्राणियोंके स्वामी, दुष्ट दैत्येन्द्रोंको नाश करनेवाले, जगत्के पालनकर्त्ता और संसारकी उत्पत्तिके कारण, समस्त प्रजापतियोंके रचयिता, निर्मलनेत्रवाले, भक्तवत्सल, भक्तोंके प्रिय, अभीप्सित फल देनेवाले, परब्रह्म स्वरूप आप हैं हे हरे ! आपके दिव्यरूपको मैं नमस्कार करता हूं। नित्य, व्यापक, अज, जगत्के कारण, भूत, प्रकृति और पुरुषके प्रभु तथा परमकारण, भूतोंके ईश और भूतोंके भी कारण आपको मैं नमस्कार करता हूं ॥ ५५ ॥

सूरयो यच्च पश्यन्ति परमं धाम शाश्वतम् ॥ तत्त्वमेतत्परं धाम परं ब्रह्म सनातनम् ॥ ५६ ॥ तं त्वां नमामि गोविन्दं सहस्रादित्यसन्निभम् ॥ मुनयस्त्वां समभ्यर्च्य बहुवर्षशतानि वै ॥ ५७ ॥ त्वत्प्रसादाच्च देवेश

त्वय्येव लयमागताः ॥ पुरन्दरोऽपि देवेश त्वामेव पुरुषोत्तम ॥ ५८ ॥
अश्वमेधशतैरिष्ट्वा देवेन्द्रत्वमवासवान् ॥ ब्रह्माऽश्वमेधसाहस्रैस्त्वामिष्ट्वा जग-
दीश्वरम् ॥५९॥ प्राप ब्रह्मपदं दिव्यं दुःखशोकविवर्जितम् ॥

विद्वान् लोग जिस शाश्वत परम धामको देखते हैं उस परमब्रह्म सनातन धाम, सहस्रों आदित्यके समान, गोविन्दरूप आपको मैं नमस्कार करता हूं। हे देवेश ! मुनिलोग सैकड़ों वर्ष आपकी पूजा करके आपके प्रसादसे आपमें ही लीन हो गये। हे देवेश पुरुषोत्तम ! इन्द्र भी सैकड़ों अश्वमेध यज्ञोंसे आपका भजन करके ही देवेन्द्र-त्वको प्राप्त हुआ है। ब्रह्माजी हजारों अश्वमेधोंसे, जगदीश्वर ! आपका भजन करके ही दुःख और शोकसे रहित दिव्य ब्रह्मपदको प्राप्त हो गये हैं ॥६०॥

अहमाराध्य देव त्वां सर्वमेधे महाक्रतौ ॥ ६० ॥ प्राप्तवान् देवदेवत्वं
दुर्लभं सर्वदैवतैः ॥ त्वमेवेश जगद्धाता त्वमेव जगतो गतिः ॥ ६१ ॥
स्रष्टा त्वमेव जगतः संहर्ता च त्वमेव हि ॥ तं त्वां नमामि शोकार्तिमोह-
हानिप्रदायिनम् ॥ ६२ ॥

हे देव ! मैं भी स्वयं सर्वमेध महाक्रतुमें आपकी आराधना करके सब देवताओंके दुर्लभ देवाधिदेव पदको प्राप्त हो गया। हे ईश ! आप ही जगत्‌के धाता (पोषक) हैं और आप ही संसारकी गति हैं। संसारके उत्पादक और संहारक आप ही हैं। शोक, दुःख और मोहादिको नाश करनेवाले आपको मैं प्रणाम करता हूं ॥६२॥

प्रसीदेश महामाय सहस्रवदनेक्षण ॥ सर्वलोकपते नाथ सर्वलोकपरा-
यण ॥६३॥ विष्णो तवैतद्बहुबाहुशाखं तमालवर्णं बहुवक्त्रनेत्रम् ॥ ज्वल-
त्किरीटैर्बहुरत्नवद्भिर्जाज्वल्यमानं प्रणमामि रूपम् ॥ ६४ ॥

हे महामाय ! सहस्रवदन ! और सहस्रलोचन ! हे सर्वलोकपति ! नाथ ! सर्वलोकपरायण ! आप प्रसन्न हों। हे विष्णो ! इन बहुत भुजारूपी शाखाओंसे युक्त, तमालवृक्षके वर्णके समान, बहुमुख और बहुनेत्रवाले एवं जाज्वल्यमान रत्नजड़ित किरीटोंसे प्रकाशमान आपके रूपको मैं प्रणाम करता हूं ॥ ६४ ॥

अथ महर्षिकृतभगवत्स्तुतिः

वामदेव उवाच—

एवं स्तुते जगन्नाथे शम्भुना परमेष्ठिना ॥ तुष्टुवुर्मुनयो भूप प्रण-
म्यामलचेतसः ॥ ६५ ॥

वामदेव कहने लगे—हे राजन् ! जब भगवान् शङ्कर परमात्माकी स्तुति कर चुके, तब शुद्धात्मा मुनिगण स्तुति करने लगे ॥ ६५ ॥

मुनय ऊचुः—

नमः कृष्णाय हरये परस्मै ब्रह्मरूपिणे ॥ नमो भगवते तस्मै विष्णवे परमात्मने ॥ ६६ ॥ सर्वभूतशरण्याय सर्वज्ञाय नमो नमः ॥ वासुदेवाय भक्तानां सर्वकामप्रदायिने ॥६७॥ नमः पङ्कजनेत्राय जगद्धात्रेऽच्युताय च ॥ हृषीकेशाय सर्वाय नमः कमलमालिने ॥ ६८ ॥ अनन्तनागपर्यङ्के सहस्रफणशोभिते ॥ दीप्यमानेऽमले दिव्ये सहस्रार्कसमप्रभे ॥ ६९ ॥ योगनिद्रामुपेताय तस्मै भगवते नमः ॥

मुनियोंने कहा—कृष्ण, हरि, परमात्मा ब्रह्मरूप आपको नमस्कार है। सर्व प्राणिओंके रक्षक, सर्वज्ञ, भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाले वासुदेवको नमस्कार है। कमलनेत्र, जगदादिकारण, अच्युत हृषीकेश, सर्व, कमलमाली, सहस्रों फणोंसे शोभित ,शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले, दीप्यमान, अमल, दिव्य, हजारों सूर्यके समान कान्तिमान तथा योगनिद्रामे लगे हुए आप भगवान्को नमस्कार है ॥७०॥

यद्रूपं न च पश्यन्ति सूरयो न च योगिनः ॥७०॥ तं नताः स्म जगन्नाथं क्षीरोदार्णवशायिनम् ॥ त्वामेवार्ताः प्रपन्नाः स्म शरण्यं वयमीश्वरम् ॥ ७१ ॥ अस्मान्पाहि शरण्येश प्रणतार्तिहराव्यय ॥ त्वद्रूपमेतद्गोविन्द सहस्रार्कसमद्युते ॥ ७२ ॥ जाज्वल्यमानं तेजोभिर्नेक्षितुं शक्नुमो वयम् ॥ कुरु प्रसादमस्माकं प्रसन्नवदनेक्षण ॥ त्वमेव गतिरस्माकं सर्वेषामेव केशव ॥ ७३ ॥ नताः स्म दिव्यं पुरुषं पुराणं त्वामेव सर्वेश्वरमीश्वराणाम् ॥ युगान्तकालाग्निसमप्रतापं प्रदीप्तवक्त्रेक्षणमप्रमेयम् ॥ ७४ ॥

जिसके रूपको न विद्वान् देखने हैं, और न योगिगण देख सकते हैं, उस क्षीरसागरमे शयन करनेवाले परमात्माको हम नमस्कार करते हैं। हे भगवन्! हम लोग आर्त हो कर सबके शरण्य सर्वात्मा आप हीकी शरणमे प्राप्त हुए हैं। हे शरण्य! हे ईश! प्रणतदुःखभञ्जन! अव्यय! आप हमारी रक्षा करें। हजारों सूर्यके समान हे परमात्मन्! हे गोविन्द! तेजसे दीप्यमान आपके इस रूपको हम देखनेमें असमर्थ हैं। हे प्रसन्नवदनेक्षण! आप हमपर अनुग्रह करें। हे केशव! हम सबके आप ही रक्षक हैं। दिव्य, पुण्यपुरुष, ईश्वरोंके भी ईश्वर, प्रलयकालाग्निके समान प्रतापी, प्रदीप्त मुख और नेत्रवाले अप्रमेय हे भगवन्! आपको शरणमें प्राप्त हुए हैं ॥ ७४ ॥

अथ सप्तर्ष्यादिकृतभगवत्स्तुतिः

वामदेव उवाच—

इति तेषां मुनीन्द्राणां वचः श्रुत्वा ततो नृप ॥ सप्तर्षयो महात्मानो वागीशश्च महाद्युतिः ॥७५॥ वसुश्च भगवद्भक्तो महेन्द्रश्च प्रतापवान् ॥ तुष्टुवुर्देवदेवेशं शिरोभिः प्रणिपत्य तम् ॥ ७६ ॥

वामदेव बोले–हे नृप ! इस तरह उन मुनियोंके वचन सुन कर महात्मा सप्तर्षि, महातेजस्वी बृहस्पति, भगवद्भक्त वसु और प्रतापी महेन्द्र, सब लोक परमात्माको प्रणाम करके उसकी स्तुति करने लगे ॥ ७६ ॥

सप्तर्ष्यादय ऊचुः

नमो नमोऽस्तु विश्वात्मंस्त्वं ब्रह्मा त्वं पिनाकधृक् ॥ चन्द्रेन्द्रार्काश्विमरुत्त्वमेव जगतः पते ॥७७॥ सहस्रादित्यसङ्काश चक्रहस्ताय ते नमः ॥ शङ्खहस्ताय ते नित्यं नमो विष्णो महात्मने ॥ ७८ ॥ नमः किरीटिने नित्यं नमः कौस्तुभधारिणे ॥ नीलमेघप्रतीकाशवपुषे ब्रह्मणे नमः ॥ ७९ ॥ असिरत्नगदाचापशक्तितोमरपाणये ॥ प्रदीप्तायुधजालाय प्रदीप्तवपुषे नमः ॥ ८० ॥

सप्तर्षियोंने कहा—हे विश्वात्मन् ! आपको बार बार नमस्कार है। आप ब्रह्मा है, और आप ही पिनाक धनुषधारी शङ्कर हैं। चन्द्र इन्द्र, सूय, अश्विनीकुमार, मरुत तथा समस्त संसारके स्वामी आप ही हैं। हे हजारों सूर्यके समान तेजस्वी ! चक्रधारी आपको प्रणाम है। हे विष्णो ! हाथमें शङ्ख लिये हुए महात्मा आपको नित्य नमस्कार है। किरीट और कौस्तुभधारी नीले मेघके समान शरीरवाले ब्रह्मरूप आपको नमस्कार है। खड्ग, रत्न, गदा, धनुष, शक्ति, तोमर हाथमें लिये हुए, प्रदीप्त आयुधसमूहवाले एवं प्रदीप्त शरीरधारी आपको नमस्कार है ॥ ८० ॥

यज्ञेशाय नमस्तुभ्यं ज्वलत्कुण्डलधारिणे ॥ नमोऽस्तु पद्मनाभाय नमस्ते विश्वयोनये ॥ ८१ ॥ परावराणां पतये करालवपुषे नमः ॥ कालनेमिहिरण्याक्षहिरण्यादिविघातिने ॥ ८२ ॥ उग्ररूपाय ते नित्यं नृसिंहायाप्यनादये ॥ नमोऽस्तु पद्मनाभाय नमोऽस्तु वदराय च ॥ भूयो भूयो नमो नित्यं व्यापिने शार्ङ्गपाणये ॥ ८३ ॥ नताः स्म चैतत्तव विश्वरूपं सर्वायु-

धोपेतमपास्तदोषम् ॥ विद्मो न चार्यं परमं तवाद्य रूपं परं वेद न चाब्ज-
योनिः ॥ ८४ ॥

यज्ञोंके स्वामी, जाज्वल्यमान कुण्डलधारी, पद्मनाभ, विश्वयोनि, पर और अपरोंके नियामक, करालपैप, कालनेमि, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु आदि राक्षसोंका नाश करनेवाले, अरूप, नृसिंह,अनादि, कमलनाभ, वरद, नित्य, सर्वव्यापी एवं शार्ङ्गपाणि आपको नमस्कार है। हे परमात्मन्, समस्त आयुधोंसे युक्त और सर्वदोषरहित आपके इस विश्वरूपको नमस्कार है। हे भगवन्! हम आपके इस परम रूपको नहीं जानते हैं और न ब्रह्माजी ही आपके इस अद्भुतरूपसे परिचित हैं ॥ ८४ ॥

अथ सनकादिपरमयोगिकृतभगवत्स्तुतिः

वामदेव उवाच—

एवमुक्ते ततस्ते तु सनकाद्याश्च योगिनः ॥ प्रणम्य तुष्टुवुर्देवं वैन-
तेयोपरि स्थितम् ॥ ८५ ॥

इस तरह मुनियोंके स्तुति किये जाने पर सनकादि योगिगण गरुड़पर चढ़े हुए परमात्माको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥ ८५ ॥

सनकाद्या ऊचुः—

जय यज्ञपते देव जय नाथ जयाक्षर ॥ जय शार्ङ्गधराचिन्त्य जय
चक्रधराव्यय ॥ ८६ ॥ विभो जय विशालाक्ष परमात्मञ्जयाच्युत ॥ जय
दंष्ट्राग्रविन्यस्तमहीपद्म जयेश्वर ॥ ८७ ॥ जय सर्वद सर्वेश जय सर्व-
हृदिस्थित ॥ पद्मनाभ जयाजय्य जय पूरुष मानद ॥ ८८ ॥

सनकादि कहने लगे—हे यज्ञपते! देव! नाथ! अक्षर! आपकी जय हो। हे शार्ङ्गधर! अचिन्त्य! चक्रधारण करने वाले आपकी जय हो। हे विभो! विशालाक्ष! परमात्मन्! अच्युत! आपकी जय हो। हे ईश्वर! पृथ्वीको कमलके समान दंष्ट्रापर धारण करनेवाले आपकी जय हो। हे सर्वद! सर्वेश! अन्तर्यामी! पद्मनाभ! अजय्य! पुरुष! मानद! आपकी जय हो ॥८८॥

मायया तव मोहिन्या देवाश्चापि विमोहिताः ॥ अनेकरत्नसञ्छ-
न्नसुवर्णमुकुटाय ते ॥ ८९ ॥ नताः स्मोऽचिन्त्यरूपाय योगिध्येयाय ते न-
मः ॥ नताः स्मोऽत्यन्तशुद्धाय सर्वज्ञायादिवेधसे ॥ ९० ॥ परब्रह्मस्वरूपाय
नताः स्मो वरदायिने ॥ अव्यक्तायाप्रमेयाय श्रीधराय स्तुवर्चसे ॥ ९१ ॥

श्रियः कान्ताय दान्ताय भक्तानां मुक्तिदायिने ॥ शक्रादिलोकपालानां पालयित्रे नमोऽस्तु ते ॥ ९२ ॥ पीताम्बराय ते नित्यं नताः स्म पुरुषोत्तम ॥ ९३ ॥

हे प्रभो ! आपकी मोहिनी मायासे सब देवता भी मोहित हो जाते हैं। अनेक रत्नोंसे आच्छादित सुवर्ण मुकुटवाले, अचिन्त्यरूप, योगियोंके ध्यान करने योग्य, अत्यन्त शुद्ध, सर्वज्ञ, आदिविधाता, परब्रह्म स्वरूप, वरदायक, अव्यक्त, अप्रमेय, श्रीधर, कान्तिमान्, श्रीपति, दान्त, भक्तोंको मुक्ति देनेवाले, शक्रादि लोकपालोंके रक्षक आपको नमस्कार है। हे पुरुषोत्तम ! पीताम्बरधारी आपको हम नित्य नमस्कार करते हैं ॥ ९३ ॥

व्याप्तं त्वया नाथ नभः सुदीप्तं विश्वात्मनाऽशेषनिवासिना विभो ॥ त्वामद्य सर्वे वयमीशितारं नताः स्म पद्माभविलोललोचनम् ॥९४॥ तन्नास्ति किञ्चिद्रहितं त्वया हरे समस्तलोकेष्वपि जातु यत्स्यात् ॥ वन्दामहे त्वा विमलार्कवर्णं किरीटहारोज्ज्वलितं शुभोरुकम् ॥ ९५ ॥ एतत्परं रूपमपेतजन्मजरादिदोषं विमलं विशोकम् ॥ अदृष्टपूर्वं मनुजामराद्यैर्नताः स्म विद्युज्ज्वलितोरुशोभम् ॥ ९६ ॥

हे विभो ! हे नाथ ! समस्त प्राणिओंमें निवास करनेवाले विश्वात्मा आपसे समस्त आकाश व्याप्त हो रहा है। हम आज पद्मके समान कान्तिमान, चञ्चल नेत्रवाले, सर्वान्तर्यामी आपको नमस्कार करते हैं। हे हरे! संसारमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिसमें कदाचित् आपका निवास न हो। विमल सूर्यके समान किरीट और हारोंसे उज्ज्वल, शुभ ऊरुवाले, आपको हम प्रणाम करते हैं। हे भगवन् ! आपके इस जन्म, जरा, शोकादि दोषोंसे रहित, मनुष्य और देवताओंने भी जिसको नहीं देखा एवं विद्युतसे अधिक प्रकाशवाले रूपको नमस्कार है।

अथेन्द्रादिदिक्पालकृतभगवत्स्तुतिः

वामदेव उवाच—

एवं स्तुते जगन्नाथे सनकादिमहात्मभिः ॥ शक्राद्या लोकपालास्तं तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥ ९७ ॥ वन्दमानाः शिरोभिस्तं भूतभावनभावनम् ॥ अञ्जलिं मूर्ध्नि सन्धाय विस्मयोत्फुल्ललोचनाः ॥ ९८ ॥

वामदेव बोले—सनकादि महात्मा जब जगन्नाथ भगवानकी स्तुति कर चुके तब इन्द्रादि लोकपाल सब प्राणिओंके अन्तरात्मा मधुसूदन, परमात्माको मस्तकसे वन्दना करते हुए अञ्जलि लगा कर विस्मयसे विकसित नेत्रवाले हो, परमात्माकी स्तुति करने लगे ॥ ९८ ॥

इन्द्रादय ऊचुः—

नमोऽस्तु विश्वरूपाय पीताम्बरधराय ते ॥ नमस्तेऽस्तु जगद्धात्रे
शार्ङ्गचापासिधारिणे ॥ ९९ ॥ मधुहन्त्रे नमो नित्यं नमः कैटभघातिने ॥
कालाग्निसमचक्रेण निहन्त्रे सुरवैरिणाम् ॥ १०० ॥ सर्वकल्याणभूताय
वरदाय वरार्थिनाम् ॥ नमो नित्यमदृश्याय दृश्यरूपाय ते नमः ॥ १०१ ॥
परस्मै ब्रह्मणे तुभ्यं नमो यज्ञस्वरूपिणे ॥ नमो भव्याय ते नित्यं श्रीवत्सा-
ङ्कितवक्षसे ॥१०२॥ भयदाय नमो नित्यं दैत्येन्द्राणां बलीयसाम् ॥ भोगदाय
नमो नित्यमस्माकं स्वर्गवासिनाम् ॥ १०३ ॥ वरेण्याय नमो नित्यमचलाया-
व्ययाय च ॥ शरण्याय नमो नित्यं नमः क्षीरोदशायिने ॥ १०४ ॥ योगा-
त्मने नमो नित्यं नमो दामोदराय च ॥ क्षयवृद्धिविहीनाय निर्गुणाय नमो
नमः ॥ १०५ ॥

इन्द्रादि बोले—पीताम्बरधारी, विश्वरूप, जगत्‌विधाता, शार्ङ्ग धनुष और खड्गधारी, मधुदैत्यके नाशक, कैटभघाती, कालाग्निके समान सुदर्शनचक्रसे देवताओंके शत्रुओंका नाश करनेवाले, सर्व कल्याणभूत, वरद, वरार्थी, नित्य, अदृश्य, दृश्यरूप, परब्रह्म, यज्ञस्वरूप, भव्य, नित्य, श्रीवत्सका चिन्ह जिनके वक्षस्थलमें अङ्कित है, बलवान् दैत्येन्द्रोंको भयदायक, हम लोगोंको नित्य भोग और स्वर्ग देनेवाले, वरेण्य, सदाके लिये अचल, अव्यय, शरण्य, क्षीरसागरमें शयन करनेवाले, योगात्मा, दामोदर, क्षय और वृद्धि विहीन तथा निर्गुण परमात्माको नमस्कार है ॥१०५॥

यत्तत्परमनिर्देश्यमचिन्त्यमजमक्षरम् ॥ अव्यक्तमजरं नित्यमव्ययं
धाम शाश्वतम् ॥ १०६ ॥ अरूपममलं ब्रह्म सर्वेशमचलं विभुम् ॥ यद्ब्रह्म
तत्परं धाम भवानेव न चापरः ॥ १०७ ॥ तन्न विद्मः परं रूपं तव यत्तु
पुरातनम् ॥ एतच्चापि न जानीमो यदेतद्दर्शितं त्वया ॥ १०८ ॥ प्रसीद
विश्वेश्वर विश्वतोमुख प्रसीद विश्वक्षयपालनेश ॥ प्रसीद विश्वालय विश्व-
मूर्ते विश्वस्य योने भगवन्प्रसीद ॥ १०९ ॥

जो निर्देश करनेमें अशक्य, अचिन्त्य, अज, अक्षर, अव्यक्त, अजर, नित्य, अव्यय, शाश्वत धाम है, जो रूप रहित, अमल, ब्रह्म, सर्वेश, अचल, विभु एवं ब्रह्म है, वह परमधाम आप ही हैं, दूसरा कोई नहीं है। आपका जो पुरातन परब्रह्म रूप है उसको हम लोग नहीं जानते और न इस रूपको ही जानते जो आपने दिखाया है।

हे विश्वेश्वर ! विश्वतोमुख ! संसारके क्षय और पालन करनेवाले ! हे संसारस्थान ! विश्वमूर्ते ! संसारके कारण, भगवन् ! आप प्रसन्न हों ॥ १०९ ॥

अथ श्वेतद्वीपवासिसिद्धकृतभगवत्स्तुतिः

वामदेव उवाच—

एवं स्तुतेऽथ देवेशे शक्राद्यैस्त्रिदशेश्वरैः ॥ तुष्टुवुस्तं प्रणम्येशं श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ ११० ॥

वामदेव बोले—इस तरह शक्रादि देवता जब भगवान्‌की स्तुति करके शान्त हो गये तब श्वेतद्वीपनिवासी सिद्धगण भगवान्‌को प्रणाम करके उनका स्तवन करने लगे ॥ ११० ॥

सिद्धा ऊचुः—

तं विष्णुमाद्यं पुरुषं पुराणं देवं नमस्यन्ति शुभोरुबाहुम् ॥ नताः स्म तं देवमजं सुरेशं विश्वस्य कर्तारमनादिमूर्तिम् ॥१११॥ येनैव दंष्ट्राग्रसमुद्धृता धरा बिभर्ति विश्वं ससुरासुरेन्द्रम् ॥ नताः स्म तस्मै वरदाय पुंसे सर्वात्मनेऽशेषविभूतिदायिने ॥ ११२ ॥ येनेदमण्डं सकलं महीयसा व्याप्तं त्वयैकेन सुरारिघातिना ॥ तं त्वा नताः स्माच्युतमीडितारो वयं विभुं लोकविभूतिहेतुम् ॥ ११३ ॥

सिद्ध कहने लगे—जिन, आदिकारण, मङ्गलमय जङ्घा तथा बाहुवाले, पुराण पुरुष विष्णुको देवता नमस्कार करते हैं, उन परमात्मा, अज, देवनाथ, संसारके कर्ता, अनादि मूर्तिमान्‌को हम नमस्कार करते हैं। जिनके दंष्ट्राके अग्रभागके द्वारा निकाली गयी पृथ्वी, देवता और असुरों सहित समस्त विश्वको धारण करती है, उन वरद, सर्वात्मा, सब ऐश्वर्य देनेवाले, परमात्माको हम प्रणाम करते हैं। जिस अकेले राक्षसोंके नाश करनेवाले परमात्माने इस सारे ब्रह्माण्डको व्याप्त किया, हम उन लोककल्याणकारक परमात्मा नारायणको नमस्कार करते हैं।

येनान्तकाले जगदेतदादिना ग्रस्तं त्वया सक्षयशक्तिरूपिणा ॥ ज्ञानैकदृश्यं परमार्थतत्त्वं तं कालरूपं प्रणमाम नित्यम् ॥ ११४ ॥ येनादिकाले विभुना महीयसा स्वनाभिपद्मान्तरुपेतमण्डलम् ॥ विसृष्टमप्सु स्वपताऽऽत्मलीलया तं त्वां नताः स्माऽमरलोकनाथ ॥११५॥ येनेदमण्डं बहुशोऽभिभूतं सुरान्मभिर्दैत्यवरैः सुघोरैः ॥ निहत्य दैत्यान्सहसा महारणे संरक्षितं तं प्रणमाम नित्यम् ॥ ११६ ॥ जानन्ति यं नैव पितामहाद्याः परं पदं नैव

वयं च नान्ये ॥ त्वं तत्पदं वृद्धिविनाशहीनं रक्षस्व चास्मान्भगवन्प्र-
सीद ॥ ११७

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
ब्रह्मादिकृतभगवत्स्तुति परम्परा नाम पञ्च-
त्रिंशोऽध्यायोऽत्र षोडशः ॥१६॥

अखण्डशक्ति और आदिकारण जिन आपने प्रलयकालमें इस जगत्को ग्रस लिया था, एक ज्ञानमात्र हीसे दर्शनके योग्य परमार्थ तत्त्वरूप उन बालकरूप आपको हम नित्य प्रणाम करते हैं। हे देवलोकके नाथ! सृष्टिके आरम्भकालमें जिन जलमें शयन करनेवाले महनीय आपने अपने नाभिकमलके भीतर धरे हुए ब्रह्माण्डकी लीलामात्रसे सृष्टि की है, उन आपको हम नमस्कार करते हैं। जिन परमात्माने भयंकर दुष्टात्मा दैत्यों द्वारा बार बार तिरस्कृत इस ब्रह्माण्डकी महा कुकर्मी उन दैत्योंका नाश करके रक्षा की। उन नारायणको हम नित्य नमस्कार करते हैं। जिन परम पदको ब्रह्मादि देवता, हम या अन्य भी नहीं जानते हैं, आप ही वह वृद्धि और विनाशहीन स्थान हैं। हे भगवन्! हमपर आप प्रसन्न हों, और हमारी रक्षा करें ॥११७॥

इति षोडशोऽध्यायः ॥



सप्तदशोऽध्यायः

श्रीवेङ्कट भगवानका, विश्वरूपका भास।
ब्रह्मादिक देवन किये, सफल मनोरथ आस ॥१॥
ब्रह्मासे भगवानका, सन्देशा वरदान।
सदा निवास गिरीन्द्र पर, करि प्रण मुनि सम्मान॥२॥

वामदेव उवाच—

एवं स्तुत्वाथ ते सर्वे ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ अगस्त्यप्रमुखाश्चापि मुनयोऽमलचेतसः ॥ १ ॥ सिद्धाश्चापि तथा सर्वे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ वागीशवसुशुकाश्च दुर्वासाश्च महामुनिः ॥२॥ सप्तर्षयश्च राजेन्द्र सनकाद्याश्च योगिनः ॥ सर्वे एते महीपाल ये चाप्यन्ये समागताः ॥ ३ ॥ द्रष्टुं तमीश्वरं देवं तत्प्रसादानुवर्तिनः ॥ भूयो भूयः प्रणम्येशं नारायणमरिन्दमम् ॥ ४ ॥ कृताञ्जलिपुटास्तं तु परिवार्योपतस्थिरे ॥

वामदेव बोले—हे राजेन्द्र ! इस तरह स्तुति करके ब्रह्मादि सब देवतागण, ब्रह्मवर्चस्वी अगस्त्यादि प्रमुख महर्षिगण, श्वेतद्वीपनिवासी सिद्ध, बृहस्पति, वसु, शुक, महामुनि दुर्वासा, सप्तर्षि, सनकादियोगी, ये सब और अन्य जो भी वहां भगवान्को देखने आये हुए थे, सबलोक शत्रुनाशक नारायणको बार बार प्रणाम कर हाथ जोड़ कर नारायणके चारों तरफ खड़े हो गये ॥ ५ ॥

ततस्तेषां स भगवान् मध्ये राजीवलोचनः ॥ ५५ ॥ स्मयन्निव महाबाहुर्विनतानन्दनास्थितः ॥ अतिष्ठद्देवदेवेशः स तान्सर्वान्विलोकयन् ॥ ६ ॥ दीप्यमानः स्वतेजोभिरंशुमानिव रश्मिभिः ॥ एतस्मिन्नन्तरे देवं वाय्वाहाराङ्गना नृप ॥ ७ ॥ अगायन् कर्मभिर्दिव्यैर्दिव्यभूषणभूषिताः ॥

कमलनयन, महाबाहु, देवाधिदेव, भगवान् गरुड़ारूढ़ नारायण अपने तेज एवं अपनी किरणोंसे सूर्यके समान प्रकाशमान हो कर उन सबको देखते हुए उन सबके बीचमें खड़े थे। हे नृप ! उसी समय दिव्य भूषणोंसे भूषित वायुका आहार करने वाली अङ्गनाएं, (अप्सरायें) भगवान्के दिव्य कर्मोंका उल्लेख करती हुई गान करने लगीं।

रावणादिवधं केचिद्गन्धर्वपतयो जगुः ॥ ८ ॥ कंसकेशिजरासन्धशाल्वादीनां वधं तथा ॥ बाणदुर्योधनादीनां वधं चापि महाद्भुतम् ॥ ९ ॥ अगायन्नपरे तत्र गन्धर्वपतयोऽमलाः ॥ हिरण्यकशिपोस्तत्र वधं चापि जगुः परं ॥ १० ॥ अवतारेषु चान्येषु यानि यानि कृतानि वै ॥

किसी गन्धर्वश्रेष्ठने रावणादिकोंके वधका गान किया और किसीने कंस, केशि, जरासन्ध, शाल्व, बाण, दुर्योधन आदिके अद्भुत वधका गान किया। अन्यान्य गन्धर्वपतियोंने हिरण्यकशिपुके वधका वर्णन किया और अन्यान्य अवतारोंमें भगवानने जो जो कार्य किये हैं उन सबका वर्णन किया ॥ ११॥

केचिज्जगुर्जगत्सृष्टिं ब्रह्मादिस्थावरान्तिकाम् ॥११॥ गन्धर्वपतयस्तत्र
सुस्वरा हरिसन्निधौ ॥ नृत्यन्त्योऽप्सरसस्तत्रादृश्यन्त शतशो नृप ॥१२॥
गायन्त्यो देवदेवेशं नादयन्त्यो दिशो दश ॥

कितने ही गन्धर्वोंने ब्रह्मासे ले कर स्थावर तक सारी सृष्टिका गान किया। हे नृप! वहाँ पर सैकड़ों अप्सरायें मीठे स्वरसे भगवान्के समीप दशों दिशाओंको शब्दायमान करती हुई देवाधिदेवका गुण-गान करती और नाचती हुई देखी गयीं ॥१३॥

अथ ब्रह्मादीनां भगवद्विश्वरूपदर्शनम्

अथ ते प्रेक्षमाणास्तं नारायणमनामयम् ॥१३॥ विस्मयाविष्टहृदया
ब्रह्माद्या देवतागणाः ॥ अगस्त्यप्रमुखाश्चापि मुनीन्द्राश्च सहस्रशः ॥१४॥
ददृशुर्देवदेवस्य दिव्ये रूपे महाद्भुते ॥ तस्मिन्महति भूपाल पद्मपत्रनिभे-
क्षणे ॥ १५ ॥ अण्डमेतदशेषं वै साद्रिग्रामनदीवनम् ॥ सपर्वतं सपातालं
सदेवासुरमानुषम् ॥१६॥ ससप्तलोकं सद्वीपं सयक्षोरगराक्षसम् ॥ सासुरं
सामरपुरं जङ्गमाजङ्गमाकुलम् ॥ १७ ॥ सतिर्यक्तरुपाषाणं सकाननमहोर-
गम् ॥ एवमाद्यैस्तथाऽन्यैश्च संयुक्तं महदद्भुतम् ॥ १८ ॥ अदृष्टपूर्वमा-
श्चर्यं दृष्ट्वा हर्षमुपागमन् ॥ विस्मिताश्चाभवंस्तेऽथ मुदिताश्चाभव-
न्नृप ॥ १९ ॥

अनामय नारायणको देखते हुए बड़े आश्चर्यचकित हो ब्रह्मादि देवता और अगस्त्य प्रमुख उन सब हजारों मुनीन्द्रोंने देवाधिदेव परमात्माके कमल लोचन, दिव्य महान्, अद्भुत रूपमें समस्त पहाड़, ग्राम, नदी, वन, पर्वत, पाताल, देवता, असुर, मनुष्य, सप्तलोक, द्वीप, यक्ष, राक्षस, उरग, असुर, देवलोक, सभी स्थावर जङ्गम, तिर्यक्, वृक्ष शिला, महारण्य, महोरग तथा अन्यान्य सबसे युक्त अदृष्टपूर्व ब्रह्माण्डको देख और प्रसन्न हो बड़ा ही विस्मय एवं आनन्द प्राप्त किया ॥ १९ ॥

व्याकुलीकृतनेत्रास्ते व्याकुलीकृतमानसाः ॥ व्याकुलीकृतसर्वाङ्गा
आसन् सर्वे भयाकुलाः ॥२०॥ अथ तान् भगवान् भूप प्रसन्नैर्विमलैः शु-
भैः ॥ पद्मोत्पलदलाभैस्तैर्नेत्रैस्तान्समलोकयत् ॥ २१ ॥ अथ ते भूपते
सर्वे ब्रह्माद्यास्तेन शार्ङ्गिणा ॥ प्रसन्नैर्नयनैर्दिव्यैरायतैरवलोकिताः ॥२२॥
प्रसन्नतां ययुः सर्वे त्यक्तमोहभयाः स्थिताः ॥

सब लोग नेत्रों, हृदयों और सब अङ्गोंसे व्याकुल हो भयसे कम्पित हो गये। तब हे भूप! उन सबको भगवान्ने प्रसन्न, विमल शुभ और कमलके समान नेत्रोंसे देखा। हे भूपते! शार्ङ्गधर भगवानसे प्रसन्न, दिव्य, आयत नेत्रोंसे देखे गये ब्रह्मादि सब देवता बड़े प्रसन्न हुए और मोह और भयसे रहित हो गये॥ २३॥

मुनीन्द्रानवलोक्याथ भगवानिदमब्रवीत्॥ २३॥ नृपते सर्वलोकेशो विश्वरूपधरो हरिः॥ शृण्वतां सर्वदेवानां ब्रह्मादीनां सनातनः॥ २४॥ मेघगम्भीरया वाचा श्राव्यया श्लक्ष्णरूपया॥ जगदापूरयन्सर्वं सुतरां प्रीतया तदा॥ २५॥

हे नृपते! सर्वलोकस्वामी विश्वरूपधारी सनातन हरि, ब्रह्मादि सब देवताओंके सुनते रहते, मेघके समान गम्भीर मधुर, प्रेमपूर्ण वचनसे जगत्को पूरित करते हुए सब मुनियोंको देख कर इस तरह कहने लगे॥ २५॥

अथ महर्षीन् प्रति भगवदुक्तिः

श्रीभगवानुवाच—

युष्माभिर्भूरितेजोभिर्मत्तो यत्प्रार्थ्यते द्विजाः॥ २६॥ व्रियतां तदशेषेण नात्र कार्या विचारणा॥ मां दृष्ट्वा प्रार्थितान् कामान् प्राप्नुवन्ति नरा भुवि॥२७॥ अचिरेणैव कालेन मुक्तिं चापि सुदुर्लभाम्॥ अप्राप्य प्रार्थितान्कामान्न यास्यन्ति द्विजोत्तमाः॥२८॥ मयि दृष्टेऽचिरात्तस्माद् ब्रूत प्रार्थितमुत्तमम्॥

श्री भगवान् बोले—हे अमित तेजस्वी द्विजो! आप लोगोंको मुझसे जो वरदान मांगना हैं सो मांगिये इस सम्बन्धमें किसी प्रकारका विचार मत करना। हे मुनियो! इस पृथ्वीमें मुझको देख कर मनुष्य थोड़े ही कालमें अभीष्ट सब कामों या सुदुर्लभ मुक्तिको भी पा जाते हैं, कोई भी मुझको देखने पर अभीष्ट मनोरथोंको बिना पाये विमुख नहीं जाते। इसलिये शीघ्र ही आपलोग उत्तम वर मांगिये॥ २९॥

मुनय ऊचुः—

कृतार्थाः स्म वयं देव त्वयि दृष्टे सनातने॥ २९॥ त्वत्प्रसादं विना नाथ न त्वं द्रष्टुं हि शक्यसे॥ त्वां द्रष्टुकामा गोविन्द विचरन्तो वयं विभो॥ ३०॥ नारायणगिरावस्मिंस्त्वत्पादतलवासिते॥ त्वां दृष्ट्वा

भृशमुद्विग्ना भगवन्पुरुषोत्तम ॥ ३१ ॥ संसारान्मोक्षमिच्छन्तो देव त्व-त्पादमाश्रिताः ॥ मुक्तिं प्रयच्छ देवेश संसाराद्भीतिवर्धनात् ॥

मुनि कहने लगे—हे देव ! सनातन ! आपका दर्शन कर ही हम कृतार्थ हो गये हैं। हे नाथ ! विना आपकी कृपासे आपको कोई नहीं देख सकता। हे गोविन्द ! हे विभो ! हे भगवन ! हे पुरुषोत्तम ! हे देव ! आपको देखनेकी अभिलाषासे चिन्ताक्रान्त हो कर हमने आपके चरणामृतसे सुगन्धित किये हुए, नारायण पर्वतपर भ्रमण करते करते आपको देख कर संसारसे मुक्ति पानेकी इच्छासे आपके चरणोंका आश्रय ले लिया है। हे देवेश ! आप हमलोगोंको भय बढ़ानेवाले इस संसारसे मुक्ति प्रदान कीजिये ॥ ३२ ॥

वामदेव उवाच—

एवमुक्त्वाऽथ गोविन्दो वरेण्यः पुरुषोत्तमः ॥ भगवान्भूतभव्येशः प्रोवाचेदं वचो नृप ॥ ३३ ॥ येन यत्प्रार्थितं मत्तो दत्तं तद्धि न संशयः ॥ मुक्तिर्नैषा भवतां प्रसन्ने मयि दुर्लभा ॥ ३४ ॥ कल्पान्ते मत्प्रसादेन मुक्तिं प्राप्स्यथ सत्तमाः ॥ तावत्कालं जगत्यस्मिन् तपसे कृतनिश्चयाः ॥ ३५ ॥ शृण्वन्तः श्रावयन्तश्च मत्कथां मुनिसत्तमाः ॥ तिष्ठन्तु तप आस्थाय महत्परमदारुणम् ॥ ३६ ॥

वामदेव बोले—हे नृप ! भूत और भविष्यके स्वामी वरेण्य गोविन्द भगवान् पुरुषोत्तमने उनकी प्रार्थना सुन कर यह वचन कहा—जिसने जो माँगा है मैंने उसे वही दिया है। मेरे प्रसन्न होने पर आपको मुक्ति भी दुर्लभ नहीं है। हे महानुभावो ! मेरी कृपासे आप कल्पके अन्तमें मुक्ति पायेंगे, तबतक आपलोग इस संसारमें तपके लिये निश्चय करके मेरी कथाको सुनने और सुनाते हुए परम दारुण महान तपका व्रत ले कर रहें ॥ ३६ ॥

अथ मुनीनाश्वासयन्तं भगवन्तं प्रति ब्रह्मकृतविज्ञप्तिः

एतस्मिन्नन्तरे राजन् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ शिरस्यञ्जलिमाधाय प्रणम्य जगतां पतिम् ॥ ३७ ॥ इदं विज्ञापयामास देवायामिततेजसे ॥

वामदेवने कहा—हे राजन् ! उसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी बद्धांजलि हो कर जगत्पति परमात्माको प्रणाम करके अमित तेजस्वी नारायणके प्रति यह वचन कहने लगे ३८ ॥

ब्रह्मोवाच—

भगवन्सर्वलोकेश सर्वयज्ञमयाच्युत ॥ ३८ ॥ दैत्यैर्निराकृता ह्येते

देवाः सर्वे सवासवाः ॥ यज्ञभागांश्च दैतेया भुञ्जन्ते न दिवौकसः ॥३९॥
तान्हन्तुं समरे ह्येते न शक्ता देवतागणाः ॥ विवृद्धान् घातयाद्येश ता-
न्सर्वानसुरोत्तमान् ॥४०॥

ब्रह्माजी बोले—हे भगवन्! सर्वलोकेश! सर्वयज्ञमय! अच्युत! दैत्योंने इन सब इन्द्रादि देवताओंका पराभव किया है। यज्ञ भागको दैत्यलोग खा जाते हैं और देवताओंको वह नहीं मिलता। युद्धमें उन दैत्योंका वध करनेमें ये देवतागण समर्थ नहीं हैं। हे ईश! बढ़ते हुए उन श्रेष्ठ दैत्योंका आप आज ही नष्ट कीजिये ॥ ४०॥

अथ भगवत्कृतब्रह्माद्यभीष्टवरप्रदानम्

वामदेव उवाच—

इत्युक्ते ब्रह्मणा राजन् प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥

वामदेव बोले—हे राजन् ब्रह्माजीके इस तरह प्रार्थना करने पर हँस कर भगवान् यह कहने लगे ॥४१ ॥

श्रीभगवानुवाच—

एते च दानवा घोरा बाधन्ते देवतागणान् ॥४१॥ महावीर्या महा-
माया महाकाया महौजसः ॥ रणकर्मणि संयुक्ता जैया दुर्निवार-
णाः ॥ ४२ ॥ एतांस्त्वमद्य दैत्येन्द्रान्हन्याः सर्वान् सबान्धवान् ॥ एव-
मुक्त्वा हृषीकेशो विष्वक्सेनं प्रतापिनम् ॥ ४३ ॥ विलोक्य सर्व-
भूतात्मा वसुं नारायणोऽब्रवीत् ॥

श्री भगवान्ने कहा—बड़े पराक्रमी, मायावी, बड़े बड़े शरीरवाले महातेजस्वी, इनको युद्धमें जीतना और हटाना बड़ा कठिन है। भगवान् सर्वान्तर्यामी हृषीकेश नारायण, प्रतापी विष्वक्सेनको "आज तुम सबान्धव इन सब दैत्योंका नाश करो" इस तरह कह कर वसुको देख कर कहने लगे ॥ ४४ ॥

तव दत्तं महावीर्य चेदिराज नृपोत्तम ॥ ४४ ॥ संसारबन्धनान्मो-
क्षमचिरेणाऽथ गच्छसि ॥ मद्भक्तस्त्वत्समो नैव त्रिषु लोकेषु
विद्यते ॥ ४५ ॥ हिरण्यकशिपोः पुत्रमृते दैत्येन्द्रसत्तमम् ॥ प्रह्लादः सर्व-
भूतेभ्यो यः पुरा रक्षितो मया ॥ ४३ ॥

हे महावीर्य! चेदिराज! नृपश्रेष्ठ! तुमको तुम्हारा अभीष्ट दे दिया है, तुम संसार बन्धनसे शीघ्र ही छूट जाओगे। हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादको, पूर्व समयमें सब भूतोंसे मैंने जिसकी रक्षा की थी, छोड़ कर तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान मेरा कोई भक्त नहीं है ॥४६ ॥

वामदेव उवाच—

एवमुक्त्वा महीपाल चेदिराजं प्रजापतिः ॥ अगस्त्यमवलोक्याथ बाष्पपर्याकुलेक्षणम् ॥ ४७ ॥ भक्त्या परमया युक्तं जगादेदं वचो विभुः ॥ प्रसन्नोऽहं द्विजश्रेष्ठ व्रियतां यत्तवेप्सितम् ॥ ४८ ॥ मत्तः सुदुर्लभं चापि तत्ते दास्याम्यसंशयम् ॥

वामदेवने कहा—हे महिपाल ! प्रजापति चेदिराजको ऐसा कह कर परम भक्तिसे युक्त और नेत्रोंमें जल भरे हुए महर्षि अगस्त्यके तरफ देखकर यह वचन बोले–हे द्विजश्रेष्ठ ! मैं प्रसन्न हूं तुमको जो अभीष्ट हो मुझसे वह मांगो, दुर्लभ होनेपर भी निःसन्देह मैं तुमको उसे दूंगा ॥४६॥

वामदेव उवाच—

एवमुक्तस्तु देवेन हर्षात्किञ्चिदिदं वचः ॥४९॥ विज्ञापयामास मुनिः परस्मै हरिमेधसे ॥ मूर्धन्यञ्जलिमाधाय प्रोत्फुल्लपुलकोद्गमः ॥ ५० ॥

वामदेव बोले—भगवान्‌के इस प्रकार कहने पर महर्षि अगस्त्यजी परम आनन्दित हो मस्तकमें अञ्जलि लगा कर ,परब्रह्म परमात्मासे हर्षसे कुछ वचन बोले ॥ ५० ॥

अगस्त्य उवाच—

नारायणगिरावस्मिंश्चरतो मम केशव ॥ समतीतं महाबाहो वर्षाणामधिकं शतम् ॥ ५१ ॥ सुचिरं कालमत्रैव विचरन्वै ततस्ततः ॥ न चापश्यं विशालाक्षं त्वामाद्यमजमक्षरम् ॥५२॥ ततोऽहं भृशमुद्विग्नो विषादं चाप्यवाप्तवान् ॥ दिष्ट्या दृष्टो जगत्स्वामी त्वमद्य पुरुषोत्तम ॥५३॥ वृणे तत्त्वत्प्रसादेन प्राप्तुं यद्वाञ्छितं मया ॥

अगस्त्यजीने कहा—हे केशव ! महाबाहो ! इस नारायण पर्वतपर भ्रमण करते हुए मुझे आज सौ वर्षसे अधिक बीत गये । चिरकाल यहीं इधर उधर घूम , कर भी अज, अक्षर, विशालनेत्र, आद्यकारण आपको मैंने नहीं देखा ; इसलिये मैं बहुत उद्विग्न और दुःखी हो गया था । हे पुरुषोत्तम ! आज प्रारब्धसे जगत्स्वामी आपको मैंने देखा है । इस कारण मैं आपसे वह वरदान मांगता हू जो मैने निश्चय कर रखा है ॥ ५४ ॥

भूते भव्ये तथा काले वर्तमाने तथा प्रभो ॥ ५४ ॥ सर्वेषामेव भूतानां दुर्ज्ञेया गतिरुत्तमा ॥ दुर्ज्ञेयामपि तां सम्यग् ज्ञातुमिच्छाम्यहं

हरे ॥ ५५ ॥ सहस्रशस्तु याः श्रुत्वा दुर्ज्ञेया च सुरैरपि ॥ त्वत्प्रसादेन भगवन् भवेत्सा विदिता मम ॥ ५६ ॥ त्वयि भक्तिः परा चापि निश्चला स्यान्ममामला ॥

हे विभो ! भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान कालमें सभी प्राणियोंको गति दुर्ज्ञेय है, किन्तु हे हरे ! उस दुर्ज्ञेय गतिको भी मैं जाननेकी इच्छा करता हूं। सहस्रों प्रकारकी सुनी हुई जिस गतिको देवता भी जाननेमें समर्थ नहीं हैं। हे भगवन्! आपकी कृपासे वह गति मुझे मालूम हो जाय और आपमें मेरी शुद्ध उत्कृष्ट अटल भक्ति भी हो ॥५५॥

वामदेव उवाच—

इत्युक्ते मुनिना भूप प्रहसन्निव लोकधृत् ॥ ५७ ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा मेघगम्भीरया तदा ॥

वामदेव बोले—हे भूप! महर्षि अगस्त्यके इस प्रकार कहने पर सब लोकोंको धारण करनेवाले लोकरक्षक भगवान हंसते हुए मेघके समान गंभीर मधुर वाणीसे बोले—

श्रीभगवानुवाच—

अगस्त्य यत्त्वया प्रोक्तमेतद्दत्तं मया तव ॥ ५८ ॥ प्रसन्नेनात्र भवता पूजितेन महीधरे ॥

श्री भगवान कहने लगे—हे अगस्त्य! इस पर्वतपर तुम्हारे पूजनसे प्रसन्न हो कर मैंने, जो तुमने कहा वह तुमको दे दिया ॥ ५९ ॥

अगस्त्य उवाच—

त्वं च दृश्यो वसेहेश सर्वेषां प्राणिनामपि ॥ ५९ ॥

अगस्त्य कहने लगे—हे ईश! अन्यान्य सब प्राणियोंको भी दर्शन देते हुए आप यहां निवास करें ॥ ६० ॥

श्रीभगवानुवाच—

अहं दृश्यो वसामीह श्रीभूमिसहितोऽनघ ॥ विमानं मम दिव्यं तु गूढं मुक्तिपरं भवेत् ॥ ६० ॥ आकाशगमचिन्त्यं च नानारत्नसमाहितम् ॥

श्री भगवान्ने कहा—हे निष्पाप! मैं इस पर्वतपर श्री और भूमि सहित प्रकट हो कर निवास करूंगा, परन्तु मेरा यह दिव्य, मुक्ति देनेवाला, आकाशगामी, अचिन्त्य और नाना रत्नोंसे युक्त विमान गुप्त ह रहेगा ॥६१॥

अन्येऽपि ये मुनीन्द्रास्मिन्नारायणगिरौ नराः ॥ ६१ ॥ समाकल्या-मलां चेमां स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ दृष्ट्वा स्नात्वाथ पीत्वा तु तस्याः

पुण्यजलं शुभम् ॥६२॥ अस्यास्तीरे महत्यस्मिन् विमाने मदधिष्ठिते ॥
मम प्रीतिकरे पुण्ये सर्वपापहरे शुभे ॥ ६३ ॥ भक्ता मामर्चयि-
ष्यन्ति मयि सन्न्यस्तमानसाः ॥ ददामीष्टतमान्कामांस्तेषामपि सुदुर्ल-
भान् ॥ ६४ ॥

हे मुनीन्द्र! और भी जो भक्त मनुष्य इस नारायणपर्वतपर चढ़ कर इस निर्मल स्वामिपुष्करिणीको देख और स्नान या इसके शुभ पुण्य जलका पान करके इसके तटपर मुझमें दत्तचित्त हो मेरे आश्रित, मेरी प्रीति करनेवाले, पुण्य, सर्वपापनाशक, शुभ, महान् विमानमें मेरी पूजा करेंगे, उनको भी मैं दुर्लभ अभीष्ट मनोरथोंको दूंगा ॥ ६४ ॥

ये नराः कुर्वते विप्र योजनानां शतेष्वपि ॥ प्रणामं दिशमुद्दिश्य भ-
क्त्या मत्पर्वतोत्तमे ॥ ६५ ॥ ते नरा मत्प्रसादेन पापराशिं व्यपोह्य वै ॥
प्राप्नुवन्ति पदं पुण्यमप्रविष्टं दुरात्मभिः ॥ ६६ ॥ य एनां सेवते नित्यं
स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ सोऽपि मुक्तिमवाप्नोति भुक्तिं चापि न सं-
शयः ॥ ६७ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
भगवत्कृतागस्त्याभीष्टवरप्रदानवर्णनं नाम
षट्त्रिंशोऽध्यायोऽत्र सप्तदशः ॥१७॥

हे विप्र! सौ योजनसे भी जो मनुष्य इस पर्वतको मेरा उद्देश्य ले कर भक्तिसे प्रणाम करेंगे, वे मेरे अनुग्रहसे पाप राशिको नष्ट कर दुरात्माओंसे अप्राप्य उस पुण्य पदको प्राप्त करेंगे। जो मनुष्य इस शुभ स्वामि-पुष्करिणीका नित्य सेवन करेगा, वह भी निःसन्देह भुक्ति और मुक्ति दोनोंको प्राप्त होगा ॥ ६७ ॥

इति सप्तदशोऽध्यायः ॥

अष्टादशोऽध्यायः



दर्शन दिव्य विमानका, शंखनका वरदान।
देवनका अफसोस–लखि, प्रभु का अन्तर्धान ॥१॥
दर्शन कर प्रभु यानका, देवन निज निज थान।
मत्स्यावर्तन की कथा, प्रभुमत युक्ति विधान ॥२॥

अथ महर्षीणां भगवद्दिव्यविमानदर्शनम्

वामदेव उवाच —

मुनयस्तेऽथ भूपाल तद्वाक्यसमनन्तरम् ॥ १ ॥ ददृशुर्विमलं दिव्यं
विमानं भास्करोपमम् ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे दक्षिणे लोकविश्रुते ॥ २ ॥
नारायणाश्रितं दिव्यं नित्यं च महदद्भुतम् ॥ पाण्डुराभ्रघनप्रख्यं नानाश्रृङ्गै-
रलङ्कृतम् ॥ ३ ॥ अनेकरत्नसञ्छन्नं मुक्तादामविभूषितम् ॥ भासयत्तेजसा
सर्वा दिशो दश नराधिप ॥ ४ ॥ दीप्यमानं स्वतेजोभिर्नानारत्नविभूषि-
तम् ॥ अत्युच्छ्रितं सुदुष्प्रेक्षं पश्यतां हर्षवर्धनम् ॥ ५ ॥ यन्न दृष्टं मुनी-
न्द्रैस्तैर्देवैरपि सवासवैः ॥ तस्मिन्महीधरे दिव्ये विचरद्भिरितस्ततः ॥ ६ ॥
मुनीन्द्रास्ते तु तद्दृष्ट्वा विमानं परमाद्भुतम् ॥ अदृष्टपूर्वमन्यस्मिन्काले नरव-
रात्मज ॥ ७ ॥ इतस्ततो विचिन्वद्भिस्तस्मिन्नेव महीधरे ॥ विस्मयं परमं
जग्मुस्ततो मुनिगणास्तदा ॥ ८ ॥

हे राजन्! भगवान्के वचनके समाप्त होने पर वामदेवने कहा—स्वामिपुष्करिणीके दक्षिण किनारेपर निर्मल, सूर्यके समान तेजस्वी एवं दिव्य विमानको महर्षियोंने देखा, जिसमें नारायण विराजते हैं, जो दिव्य, नित्य और अत्यन्त चमत्कारपूर्ण है, सफेद बादलोंका सा जिसका वर्ण है, जो अनेक शिखरोंसे युक्त है, जो अनेक रत्नोंसे

आच्छादित, मोतियोंकी लड़ियोंसे शोभित, अपने तेजसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करनेवाला अनेक प्रकार रत्नोंसे अलंकृत, अपने ही तेजसे प्रकाशमान, बहुत ऊंचा, देखनेमें अशक्य एवं देखनेवालोंको आनन्द देने वाला है। और जिस विमानको इन्द्रादि देवता और मुनिगणने चमत्कारपूर्ण उस दिव्य पर्वतपर इधर उधर भ्रमण करते हुए पहले कभी न देखा था, ऐसे उस परम अद्भुत विमानको देख कर वे सब विस्मित हो गये और परस्पर इस प्रकार कहने लगे कि यह क्या है! यहांपर सर्वत्र घूमते हुए पहले तो हमलोगोंने कभी इस आश्चर्यमय विमानको नहीं देखा था ॥८॥

किमिदं नैव चास्माभिर्दृष्टमासीत्पुरातनम् ॥ पुरा विमानमाश्चर्यं विचरद्भिरितस्ततः ॥९॥ विमानमद्भुताकारं तं चापि पुरुषोत्तमम् ॥ दृष्ट्वा तत्प्रोचुराश्चर्यं ते हर्षोत्फुल्ललोचनाः ॥१०॥ अहो बत महाश्चर्यं नूनमेतन्महात्मना ॥ अनेनान्तर्हितं यस्मात्पूर्वं तन्न व्यदृश्यत ॥ ११ ॥ विमानं पुण्यमाश्चर्यं ज्वलद्भास्करसन्निभम् ॥ अस्या एव शुभे तीरे पुष्करिण्याः स्थितैरपि ॥ १२ ॥ अस्माभिः सहितैः सर्वैः सद्भिरत्रैव चादरात् ॥ हरिणा ध्रुवमेतत्स्वप्रादनेनैव स्वमायया ॥ १३ ॥ अन्तर्हितं कृतं दिव्यं विमानं सिद्धसेवितम् ॥ एवंविधानि वाक्यानि मुनयस्ते परस्परम् ॥ प्रोचुर्देवाधिदेवस्य सन्निधौ तस्य शार्ङ्गिणः ॥ १४ ॥

हे राजन्! उस अद्भुत आकारवाले विमान और पुरुषोत्तमको देख कर उनके मन हर्षसे विकसित हो गये और आश्चर्ययुक्त हो कहने लगे कि अहो आश्चर्यकी बात है कि पवित्र, अद्भुत, चमकते हुए सूर्यके समान यह विमान पहले अन्तर्हित था और इसी पुष्करिणीके तटपर आनन्दसे रहने वाले हम सबसे भी अदृश्य था। यह निश्चय मालूम पड़ता है कि इन्हीं हरि भगवान्ने अपनी मायासे इस सिद्धसेवित दिव्य विमानको छिपा रखा था। ये सब मुनिलोग देवाधिदेव भगवान् शार्ङ्गधरके समीप परस्पर इस तरहके वचन बोल रहे थे ॥१४॥

अथ शङ्खनृपस्य वरं प्रदाय भगवत्तिरोधानम्

एतस्मिन्नन्तरे देवः शङ्खं प्रोवाच केशवः ॥ हैहयाधिपतेः पुत्रं श्रुतस्य सुमहात्मनः ॥ १५ ॥

उसी समय हैहयाधिपति महात्मा श्रुतके पुत्र शङ्खसे भगवान कहने लगे ॥ १५ ॥

श्रीभगवानुवाच—

वरं वरय भूपाल यत्ते मनसि वर्तते ॥ तदास्ये तव तुष्टोऽहं वरदः समुपस्थितः ॥ १६ ॥

श्री भगवान्ने कहा—हे भूपाल ! तुम्हें जो अभीष्ट हो वह वर मांग लो, मैं तुम्हें सन्तुष्ट हो कर उसे दूंगा, मैं वरदायक हो यहां उपस्थित हूं ॥१६॥

वामदेव उवाच—

इदं निशम्य वचनं गदितं तस्य शार्ङ्गिणः ॥ जगद्धातुरनन्तस्य विश्वयोनेर्महात्मनः ॥ १७ ॥ शङ्खः परमसंहृष्टो रोमाञ्चिततनुस्तदा ॥ इत्थं विज्ञापयामास ब्रह्मणेऽव्यक्तजन्मने ॥ १८ ॥ एतस्मै देवदेवाय परस्मै हरिमेधसे ॥

वामदेव बोले—हे महीपते ! उस शार्ङ्गधर, जगद्धाता, अनन्त, विश्वयोनि महात्मासे कहे गये इन वचनको सुन कर शङ्ख बड़ा प्रसन्न हुआ, उसका शरीर प्रेमसे रोमाञ्चित हो गया और देवाधिदेव परमात्मा अव्यक्तजन्म ब्रह्मके प्रति इस तरह कहने लगा ॥१८ ॥

शङ्ख उवाच—

त्वल्लोकं प्राप्तुमिच्छामि त्वत्प्रसादादधोक्षज ॥ १९ ॥ त्वत्पदे वस्तुकामोऽहं तपस्तीव्रं समास्थितः ॥ त्वं ममैतत्प्रयच्छाशु विष्णो राजीवलोचन ॥ २० ॥ नान्यदिच्छामि देवेश त्वत्तः प्राप्तुं सुरेश्वर ॥

राजा शङ्खने कहा—हे अधोक्षज ! आपकी कृपासे मैं आपके लोकको प्राप्त करना चाहता हूं । हे भगवन् ! मैं उग्र तप करता हुआ आपके स्थानमें बसनेकी इच्छा करता हूं, इसलिये हे विष्णो ! राजीवलोचन ! आप मुझे शीघ्र ही यह वर दीजिये । हे देवेश ! सुरेश्वर ! मैं आपसे दूसरा कोई वर नहीं चाहता ॥ २० ॥

वामदेव उवाच—

इत्युक्तस्तु प्रहस्यैनं शङ्खं प्राह जनार्दनः ॥ २१ ॥ हर्षयन्निव भूतानि स्वया मधुरया गिरा ॥

वामदेव बोले—इस तरह शङ्खके कहने पर भगवान् जनार्दन हंस कर समस्त प्राणीको अपनी मधुरवाणीसे सन्तुष्ट करते हुए राजा शङ्खसे कहने लगे ॥२२॥

श्रीभगवानुवाच—

यावत्कल्पं महाभाग स्वलोके निवसिष्यसि ॥२२॥ सदा सम्पूजितः सर्वैरिन्द्रलोकनिवासिभिः ॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाभाग! कल्पपर्यन्त तुम सदा इन्द्रलोक निवासियोंसे पूजित हो कर स्वर्गमें निवास करोगे ॥२३॥

वामदेव उवाच—

इत्युक्त्वा भगवान्देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ २३ ॥ पश्यतामेव सर्वेषां ब्रह्मादीनां सुरेश्वरः ॥ नारायणः परो नित्यः परमात्मा प्रजापतिः ॥ २४ ॥ सर्वस्वभूतो भक्तानां सर्वलोकपरायणः ॥

वामदेव बोले—इस तरह कहकर ब्रह्मादि देवताओंके देखते देखते ही सुरेश्वर, पर, नित्य, परमात्मा, प्रजापति, भक्तोंके सर्वस्व, सर्वलोकके स्वामी, देवाधिदेव भगवान् नारायण, वहीं अन्तर्धान हो गये ॥ २५ ॥

अथ भगवदन्तर्धानानन्तरं देवाद्यनुभूततानुतापवर्णनम्

अन्तर्हिते ततस्तस्मिञ्जगद्धातरि केशवे ॥ २५ ॥ विष्णौ समस्तजगतामाधारे पुरुषोत्तमे ॥ सर्वस्वभूते देवानां सर्वेशे परमात्मनि ॥ २६ ॥ तेजोराशियुते कृष्णे राजीवायतलोचने ॥ देवा ब्रह्मर्षयश्चापि मुनीन्द्राश्च तपोधनाः ॥ २७ ॥ सिद्धाश्चापि तथा सर्वे मुनीन्द्रा विमलाशयाः ॥ वागीशवसुमुख्याश्च सनकाद्याश्च योगिनः ॥ २८ ॥ सर्वे सप्तर्षयश्चापि श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ एते चान्ये च ये तत्र समेता द्रष्टुमीश्वरम् ॥२९॥ सर्व एते महीपाल भूयो भूयः सनातनम् ॥ अन्तर्धानं गतं देवं प्रणेमुर्विस्मितेक्षणाः ॥ ३० ॥

हे राजन्! उन जगद्रक्षक, केशव, विष्णु, समस्त जगत्के आधार, पुरुषोत्तम, सर्वान्तर्यामी, देवताओंके स्वामी, सर्वेश, तेज समूहसे युक्त, विशाल कमललोचन, परमात्मा कृष्णजीके अन्तर्हित हो जाने पर, देवता, ब्रह्मर्षि, तपोधन मुनि, सिद्ध, विमलाशय सब मुनीन्द्र, गुरु, वसु, सनकादि योगिगण, सप्तर्षि, सब श्वेतद्वीपनिवासी आदि सहित और भी जो भगवान्को देखनेके लिये वहां आये थे, सबने अन्तर्हित देव स्वामी सनातनको विस्मितनेत्र युक्त हो कर बार बार प्रणाम किया ॥ ३० ॥

दीनचित्तास्ततः सर्वे पश्यन्ति स्म दिशो दश ॥ एते सर्वे मुनिश्रेष्ठा रुरुदुस्तेऽथ तत्र वै ॥ ३१ ॥ प्रणम्य हरये तस्मै देवायान्तर्हिताय ते ॥ ब्रह्माद्यास्तेऽथ भूपाल सर्व एवेदमब्रुवन् ॥ ३२ ॥ अहो भगवतस्तस्य माहात्म्यममितौजसः ॥ ब्रह्माण्डकमशेषं तु तेन व्याप्तं स्वतेजसा ॥ ३३ ॥ आयुधानि ज्वलन्ति स्म चक्रादीनि धृतानि वै ॥ दहन्तीव जगत्सर्वं शोषयन्ती

च चादधीन् ॥३४॥ प्रसन्नास्ते कटाक्षाश्च दीपयन्तो दिशो दश ॥ चका-
शिरे स्वतेजोभिः शतशास्तस्य शार्ङ्गिणः ॥ ३५ ॥

इसके बाद दीनचित्त हो कर वे सब दशों दिशाओंको देखने लगे। अनन्तर वे सभी मुनि रोने लगे। हे भूपाल! फिर उन अन्तर्हित हरिको प्रणाम करके ब्रह्मादि सभी यह कहने लगे—अहो! जिन्होंने अपने तेजसे सारे ब्रह्माण्डको व्याप्त कर रखा है, उन अपार तेजस्वी भगवान्की महिमा धन्य है। उनके धारण किये चक्रादि आयुध ऐसे चमकते थे, मानों सारे संसारको भस्म कर देंगे और समुद्रोंको शोष डालेंगे। उन शार्ङ्गधर भगवान्के वे प्रसन्न कटाक्ष अपने तेजोंसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए शोभित हो रहे थे॥ ३५॥

शतशो बाहवश्चापि हरेः करिकरोपमाः ॥ स्पर्धन्त इव चान्योन्यं रे-
जिरे रुचिरप्रभाः ॥ ३६ ॥ वदनानि ज्वलन्ति स्म पूर्णेन्दुसदृशानि वै ॥
शोभितान्यमलैर्दिव्यैः सरत्नैः कुण्डलैस्तथा ॥ ३७ ॥ इन्दुमण्डलसङ्काश-
नखमण्डलशोभिते ॥ पादपद्मे हरेस्तस्य शोभिते विमलप्रभे ॥ ३८ ॥ अहो
हि भूधरेन्द्रस्य माहात्म्यममितौजसः ॥ यस्मिन्नेवंविधो देवो निवसत्यच्यु-
तो हरिः ॥ ३९ ॥ न शक्यमस्य माहात्म्यं वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ अस्माभिः
सहितैः सर्वैर्विमलेनापि तेजसा ॥ ४० ॥

हाथीकी सूंडके समान सैकड़ों हरिकी भुजायें परस्पर एक दूसरीकी स्पर्धा करती हुई प्रकाशमान हो रही थीं अमल, दिव्य और रत्न जड़ित कुण्डलोंसे शोभित भगवान्के मुख, पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान दीप्यमान हो रहे थे। चन्द्रमण्डलके समान नख मण्डलसे शोभित, विमल प्रभावाले, हरिके चरणकमल शोभायमान हो रहे थे। अहो! इस अमित पराक्रमी पर्वतेन्द्रकी महिमा धन्य है, जिसके ऊपर इस प्रकारके अच्युत हरि भगवान् निवास करते हैं। हम सब मिल कर अपने विशेष तेजका उपयोग करके भी सौ वर्षमें भी इस पर्वतके माहात्म्यको वर्णन नहीं कर सकते॥ ४०॥

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ॥ वेङ्कटेशसमो देवो न
भूतो न भविष्यति ॥ ४१ ॥ नास्ति पुण्यतमं तीर्थं स्वामिपुष्करिणीसमम् ॥
सममस्तीति यो ब्रूयात्तत्समो नास्ति पातकी ॥ ४२ ॥ याश्च सप्त महापुर्यः
कीर्त्यन्ते मुक्तिदायिकाः ॥ ता वेङ्कटाद्रिपर्यन्तग्रामकोट्यंशशक्तयः ॥४३॥

इस वेङ्कटाचलके समान ब्रह्माण्ड भरमें अन्य कोई स्थान नहीं है, वेङ्कटेशके समान न कोई देवता हुआ और न भविष्यमें होगा। स्वामिपुष्करिणीके समान कोई तीर्थ नहीं है। स्वामिपुष्करिणीके समान और तीर्थ है

ऐसा जो कोई कहेगा, उसके समान कोई पातकी नहीं है। जो मोक्षदेनेवाली सात महापुरी कही जाती हैं, वे इस वेङ्कटाचलके अग्र भागके करोड़वें अंशकी भी शक्ति रखनेवाली नहीं है ॥ ४३ ॥

अथ भगवद्विमानादि दृष्ट्वा ब्रह्मादिनिर्गमनम्

वामदेव उवाच—

एवंविधानि वाक्यानि वदन्तः सुबहूनि वै ॥ सर्वे संहृष्टमनसो ब्रह्माद्यास्ते सुरोत्तमाः ॥ ४४ ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा पीत्वा द्विजोत्तमाः ॥ ददृशुस्ते महाश्चर्यं विमानं पुनरद्भुतम् ॥ ॥ ४५ ॥ अप्यदृष्टं पुरा सर्वैर्ब्रह्माद्यैरपि सत्तमैः॥ प्रहृष्टास्ते महात्मानो विमाने हरिमेधसः॥४६॥ ददृशुर्देवदेवेशं विमलार्कसमप्रभम् ॥ चतुर्बाहुमशेषेशं दिव्यकुण्डलधारिणम् ॥ ४७ ॥ तिष्ठन्तमच्युतं देवं नानाभूषणभूषितम् ॥ शोभमानं किरीटेन नानारत्नचितेन वै ॥ ४८ ॥ सुधृतायुधजातं तं वरदं सर्वदेहिनाम् ॥ दिव्यरत्नचितैश्चित्रैर्वलयैरुपशोभितम् ॥४९॥ दिव्याम्बरधरं सौम्यं दिव्यरत्नविभूषितम् ॥ प्रणतार्तिहरं विष्णुं त्रैलोक्यतिलकं विभुम् ॥५०॥ स्फुरन्मणिगणच्छन्नचारुहारविराजितम् ॥ स्फुरन्नूपुरसंशोभिपादं पद्मनिभेक्षणम् ॥५१॥ सेव्यमानं श्रिया चापि स्वपार्श्वगतया तथा ॥ चारुमत्या पृथिव्या च सेव्यमानं स्वकान्तया ॥५२॥

वामदेव बोले—हे राजन्! ब्रह्मादि देवता इस प्रकारके बहुतसे वचन कहते हुए बड़े प्रसन्न हुए। और स्वामिपुष्करिणीतीर्थमें स्नान कर और उसके जल पीकर बादको उन्होंने एक अद्भुत विमानको देखा, जिसको उन्होंने पहिले कभी नहीं देखा था। उस विमानमें विमल सूर्यके समान कान्तिमान चार भुजावाले, दिव्य कुण्डल धारण किये, समस्त ब्रह्माण्डके स्वामी, नाना भूषणोंसे भूषित, नाना रत्नोंसे युक्त किरीटसे शोभायमान, आयुधोंके समूहको धारण किये हुए, सब प्राणियोंको वर देनेवाले, दिव्य रत्नोंसे जड़ित चित्र विचित्र कङ्कणोंसे शोभित, दिव्य वस्त्रधारी, सौम्य, दिव्य रत्नोंसे भूषित, भक्तोंके दुःखको दूर करनेवाले, त्रिलोकीमें श्रेष्ठ, चमकती हुई मणियोंसे आच्छादित सुन्दर हारसे विराजित, झन झन बजते हुए नुपूरोंसे जिनके चरण अलंकृत हैं, कमलनेत्र एवं अपने पार्श्वगत श्री और सुन्दरी अपनी कान्ता पृथ्वीसे सेवित देवाधिदेव भगवान्को उन्होंने देखा ॥ ५२ ॥

एवंभूतं यदा दृष्ट्वा ब्रह्माद्या विस्मितेक्षणाः ॥ प्रणेमुर्मुदिताः सर्वे शिरोभिर्भुवि केशवम् ॥ ५३ ॥ प्रस्तूय च जगद्योनिं स्तुतिभिः शुभलो-

चनाः ॥ निश्चक्रमुस्तदा तस्माद्विमानाद्दीप्तचक्रिणः ॥ ५४ ॥ निष्क्रम्य महिता नेमुः शिरोभिर्भुवि केशवम् ॥ कृत्वा प्रदक्षिणं चापि तद्विमानमनुत्तमम् ॥ ५५ ॥ यथागतं ययुः सर्वे प्रशंसन्तो महीधरम् ॥ पितामहश्च भगवान् खेचरैः परिवारितः ॥५६॥ संस्तूयमानस्त्रिदशैर्निजलोकमथाभ्यगात् ॥ पिनाकपाणिर्भगवाञ्छङ्करस्त्रिपुरान्तकः ॥ ५७ ॥ जगाम विश्रुतं दिव्यं कैलासं रजताचलम् ॥ नानारत्नैर्विराजन्तं पारिजातैरलङ्कृतम् ॥ ५८ ॥ नानातपस्विभिर्युक्तं नानासिद्धनिषेवितम् ॥ ऋषयश्च तथा सर्वे कैलासं प्रति निर्ययुः ॥ ५९ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
भगवद्विमानदर्शनपूर्वकब्रह्मादिनिर्गमनादिवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायोऽत्राष्टादशः ॥ १८ ॥

ऐसे अच्युत नारायणको देख कर विस्मितनेत्र ब्रह्मा दि समस्त देवताओंने बड़े प्रसन्न हो कर भगवान् केशवको पृथ्वीपर शिरसे प्रणाम किया। शुभलोचन ब्रह्मादि देवनागण जगत्के कर्ता उन परमात्माकी स्तुति करके प्रदीप्त चक्रोंसे युक्त, उस विमानसे निकले और निकल कर सबने पृथ्वीपर भगवान् केशवको शिरसे प्रणाम किया और उस उत्तम विमानकी प्रदक्षिणा कर उस पर्वतकी प्रशंसा करते हुए जैसे आये थे वैसे ही वे सब अपने अपने स्थानको चले गये। सिद्ध, विद्याधर एवं देवताओंसे स्तुति किये गये हुए ब्रह्माजी भी अपने धामको चले गये। पिनाकपाणि, त्रिपुरान्तक, भगवान् शंकर भी प्रसिद्ध, दिव्य नाना प्रकारके रत्नोंसे विराजित, पारिजात वृक्षोंसे अलंकृत, नाना तपस्वियों और अनेक सिद्धोंसे सेवित, रजताचल कैलास पर्वतपर चले गये। इसी तरह सब ऋषि भी कैलासपर चले गये।

इति अष्टादशोऽध्यायः ॥

ऊनविंशोऽध्यायः



श्री शङ्कर भगवानका, वेङ्कटसे प्रस्थान ।
हिमगिरिके कैलासपर, आना अपने स्थान ॥१॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलात्कैलासं प्रति शङ्करगमनम्

जनक उवाच—

कथं स भगवाञ्छम्भुः शङ्करश्चन्द्रशेखरः ॥ प्रयातः पर्वताद्दिव्यं कैलासं स्वालयं शिवः ॥ १ ॥ एतन्मुनिवराशेषं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ कथयैतन्महाश्चर्यं शृण्वतां हर्षवर्धनम् ॥ २ ॥

राजा जनकने पूछा—चन्द्रशेखर भगवान् शंकर उस वेङ्कटाचलसे अपने दिव्य कैलासको कैसे गये ? हे मुनिवर ! सुननेवालोंको आनन्द देनेवाली, आश्चर्यमयी इस कथाको आप पूर्ण रूपसे कहिये । मैं इस प्रसङ्गको बड़ी उत्कट अभिलाषासे सुनना चाहता हूं ॥ २ ॥

वामदेव उवाच—

श्रूयतामिदमाश्चर्यं वक्ष्यामि नृपते तव ॥ यदा हि भगवान्देवः प्रयातः स्वालयं प्रति ॥ ३ ॥ वृषभं तं महावीर्यं मेरुमन्दरसंनिभम् ॥ नानामणिगणैश्चित्रैः स्वनद्भिरनेकशः ॥ ४ ॥ अलङ्कृतं महावीर्यं महाकायं महाचलम् ॥ मेघाभं मेघसन्नादं द्विषतां शोकवर्धनम् ॥ ५ ॥ विश्रुतं सर्वलोकेषु सर्वरत्नविभूषितम् ॥ उदग्रककुदं दिव्यं वायुवेगसमं जवे ॥६॥ रज्जुभिश्व तदा दिव्यैर्जाम्बूनदमयैः शुभैः॥ स्फुरन्मणिगणाकीर्णैः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ आकाशगं महाशृङ्गं हेममालापरिष्कृतम् ॥ जाज्वल्यमानं

वपुषा दर्शनीयतमं शुभम् ॥ ८ ॥ अनेकशतसाहस्रैर्जाम्बूनदमयैस्तथा ॥
किङ्किणीजालसङ्घैश्च समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ ९ ॥ मुक्तादामभिरालोलै-
र्भ्राजमानैः सुरश्मिभिः ॥ अकङ्कृतमहाकर्णं महाकायं महोक्षकम् ॥ १० ॥
आरुह्य भगवान्देवः सर्वपापहरो हरः ॥ बलिभिर्भूतसङ्घैश्च वेतालैश्च
महाबलैः ॥ ११ ॥ अनेकबाहुभिश्चैव संवृतः परमेश्वरः ॥ संस्तूयमानः
सदशैः खेचरैरप्यभिष्टुतः ॥ १२ ॥ भासा भासयन्दिव्यं जगदेतच्चरा-
चरम् ॥ शृण्वन्वं वदतां तेषां नारायणगिरेः कथाः ॥ १३ ॥ शनैर्जगाम
भूपाल कैलासनिलये शिवः ॥

वामदेव बोले—हे नृपते ! इस आश्चर्य जनक प्रसंगको आप श्रवण करिये मैं आपसे कहूंगा। हे राजन ! जब भगवान्ने अपने स्थानके प्रति प्रस्थान किया तब महाकाय, महा बलशाली, मेरु तथा मन्दरके समान चित्र विचित्र नाना प्रकारके मणिगणोंसे अलंकृत, अनेक प्रकारके शब्द करते हुए, बादलोंकी तरह शब्द करने वाले, शत्रुओंके शोकको बढ़ानेवाले, सब लोकोंमें प्रसिद्ध, सब रत्नोंसे भूषित, ऊंचे ककुद (डिल्ला इति भाषा) वाले, वेगमें वायु वेगके समान, चारों तरफसे सुवर्णमय शुभ दिव्य और चमकते हुए मणिगणोंसे जटित रज्जुओंसे परिवेष्टित, आकाशगामी, बड़े सींगवाली सुवर्णकी मालाओंसे भूषित, शरीरसे जाज्वल्यमान, मनोहर, शुभ, अनेक सैकड़ों हजारों सुवर्णमय किङ्किणियोंके समूहोंसे युक्त, सुन्दर किरणोंवाली एवं चंचल चमकती हुई मोतियोंकी लड़ियोंसे जिसके कान अलंकृत हैं, ऐसे दिव्य अपने बैलपर चढ़ कर साथमें बलवान् भूत तथा अनेक भुजाओंवाले वेतालगणोंसे युक्त आकाशगामी, सिद्ध, विद्याधर, देवादिकोंसे स्तुत हो कर सब पापोंको हरनेवाले भगवान् शङ्कर एवं समस्त संसारको अपने दिव्य तेजसे प्रकाशमान करते तथा मार्गमें पार्षदोंसे नारायणपर्वतकी कथा सुनते हुए धीरे धीरे अपने निज स्थान कैलासको चले ॥ १४ ॥

समस्ताः परिवार्यैनं भूतसङ्घाः सहस्रशः ॥ १४ ॥ तन्निदेशकरा
जग्मुर्नानारूपभयावहाः ॥ केचिन्नीलाचलप्रख्याः केचिद्बिसनिभास्त-
था ॥ १५ ॥ सन्ध्यामेघनिभाः केचित्केचिद्वै सूर्यवर्चसः ॥ केचित्कालाग-
रुनिभाः केचिदग्निशिखोपमाः ॥१६॥ केचिद्दशभुजा राजन्केचिदेकभुजास्त-
था ॥ जानुदेशशिराः कश्चिदूरुदेशशिरास्तथा ॥ १७ ॥ पाणिदेशशिराः
कश्चित्तत्रासीन्मिथिलेश्वर ॥ तेषां वर्णं च रूपं च वक्तुं नाम न शक्यते॥१८

उस समय उनके साथ भयंकर रूपवाले हजारों भूतोंके समूह भगवान्के चारों तरफ घेरे और उनकी आज्ञाओंको पालन करते हुए चल रहे थे। उनमेंसे कोई नीलाचल पर्वतके समान, कोई कमलकी जड़के समान,

कितने ही सायंकालीन मेघके समान, कितने ही सूर्यके समान तेजस्वी, कोई काले अगरके समान और कोई अग्नि-ज्वालाके समान थे। किसीके दस भुजा और किसीके एक ही भुजाएं थीं। किसीका मस्तक घुटनामें और किसीका जंघामें था। हे मिथिलेश्वर! कोई उनमें ऐसा था, जिसके हाथमें मस्तक था। बहुत कहनेसे क्या? उनके वर्ण और रूपको कोई वर्णन नहीं कर सकता ॥ १८ ॥

केचित् द्विपमुखास्तत्र केचिदश्वमुखास्तथा ॥ केचित्खराभवदनाः केचिद्व्याघ्रमुखास्तथा ॥ १९ ॥ शक्यं देवैर्न कालेन महता चापि तानि वै ॥ रूपाणि तेषां भूतानां वक्तुं नानाकृतीनि वै ॥ २० ॥ एवंविधैरनेकैस्तु भूतसङ्घैः समावृतः ॥ त्रिपुरान्तकरो देवो जगाम रजताचलम् ॥२१॥

उनमेंसे कितने ही हाथीके मुखके समान मुखवाले, और कितने ही अश्व, गदहा और व्याघ्रके समान मुखवाले थे। हे राजन! उन भूतोंके नाना प्रकारके आकारवाले रूपोंको बहुत कालसे देवता भी वर्णन नहीं कर सके। इस प्रकार अनेक तरहके भूतोंके समूहसे घिरे गये हुए त्रिपुरान्तक भगवान् शङ्कर रजताचल कैलासको चले ॥ २१ ॥

हरस्य तद्रूपमपास्तदोषं सिताचलाभं शितिकण्ठकायम् ॥ व्यराजताशेषजगत्प्रभोस्तन्नारायणस्येव वपुस्त्रिविक्रमे ॥२२॥ नृपेन्द्र संशान्तमपेतदोषं समीक्ष्य देवं त्रिपुरारिमीशम् ॥ सर्वाणि भूतानि समेत्य पार्श्वे भक्त्या प्रणेमुः प्रणतैः शिरोभिः ॥ २३ ॥

भगवान् शङ्करका निर्विकार, नीलकंठ शरीरवाला और श्वेतपर्वतके समान यह रूप ऐसा शोभित हो रहा था, जैसे तीन पैरोंसे पृथ्वी नापते समय समस्त संसारके स्वामी वामनरूप भगवान् नारायणका रूप। हे नृपेन्द्र! शान्त और दोषरहित त्रिपुरारि भगवान् शङ्करको देख, मिल कर उनके पास आ, सबने अवनत मस्तकोंसे उनको प्रणाम किया ॥ २३ ॥

अथ तं भीमकर्माणं भगवन्तमुमापतिम् ॥ वहन् वृषेन्द्रः प्रययौ लीलयैवान्तरिक्षगः ॥२४॥ रराज सोऽत्यद्भुतचारुशृङ्गः सुतप्तचामीकरचारुभूषणः ॥ हंसेन्दुकुन्दस्फटिकाचलाभो गच्छन्महामेघ इवान्तरिक्षे ॥ २५ ॥ तं यान्तमनुजग्मुस्ते देवा ब्रह्मर्षयस्तदा ॥ कृताञ्जलिपुटा देवं स्तुवन्तस्त्रिपुरान्तकम् ॥ २६ ॥

हे राजन्! भीमकर्मा भगवान् उमापतिको अपनी पीठपर चढ़ाये हुए नन्दिकेश्वर आकाशगामी हो कर लीलामात्रसे चले। अति अद्भुत, सुन्दर शृङ्गवाले, उस समय अच्छी तरह तपे हुए सुवर्णके सुन्दर भूषणोंसे अलंकृत, हंस, इन्दु, कुन्द, तथा स्फटिक पर्वतकी कान्तिके समान वृषभराज आकाशमें चलते हुए मेघके समान जान पड़ते थे। श्रीशिवजीके चलने पर अञ्जलि बांधे स्तुति करते हुए ब्रह्मादि देवता भी उनके पीछे पीछे चले॥ २६॥

जनक उवाच—

स्तुवन्ति स्म कथं देवं देवा ब्रह्मर्षयस्तदा॥ शूलपाणिं प्रयास्यन्तं कैलासनिलयं प्रति॥ २७॥

जनकने कहा—हे मुनिवर! कैलासके प्रति जाते हुए भगवान् शङ्करकी देवता और ब्रह्मर्षियोंने किस तरह स्तुति की? ॥ २७॥

शतानन्द उवाच—

जनकेनैवमुक्तस्तु वामदेवो महातपाः॥ वक्ष्येऽहमेतद्भूपाल श्रूयतामित्यथाब्रवीत्॥ २८॥

शतानन्दने कहा—राजन्! जनकके इस तरह कहनेपर महातपस्वी वामदेव बोले—हे भूपाल! मैं इस विषयमें कहूंगा, आप श्रवण करें॥ २८॥

देवाद्या ऊचुः—

पिनाकपाणिं देवेशं नताः स्म गिरिजेश्वरम्॥ गरुत्मति तथा विष्णुं तद्रूपमिव संस्थितम्॥ २९॥ त्रिपुरस्य नियन्तारं त्रिणेत्रं शूलधारिणम्॥ विष्णुभक्तं विरूपाक्षं विष्णुप्रियकरं शुभम्॥ ३०॥ दुष्टदैत्यनिहन्तारं कैलासनिलयं हरम्॥ शर्वं भवन्तमीशानं शङ्करं कामरूपिणम्॥ ३१॥ उग्ररूपं महादेवमप्रधृष्यं दुरासदम्॥ नीलकण्ठं विरूपाक्षं सर्वसंहारमूर्तिकम्॥ ३२॥ कपिलाक्षं विशालाक्षं जटामुकुटधारिणम्॥ नताः स्म चर्मवसनं वयं त्वां वृषभध्वजम्॥ ३३॥ त्रायस्मान्सर्वलोकेश त्वामद्य शरणं गतान्॥ त्वमेव गतिरस्माकं सर्वेषामेव शङ्कर॥ ३४॥

देवादि कहने लगे—गरुडके ऊपर चढ़े हुए भगवान् विष्णुके समान पिनाकपाणि, गिरिजाके स्वामी शङ्करको हम प्रणाम करते हैं। त्रिपुरासुरका नियन्त्रण करनेवाले, त्रिनेत्र, शूलधारी विष्णुभक्त, विरूपनेत्र, विष्णुका प्रिय करनेवाले, शुभरूप, दुष्ट दैत्योंके नाशक, कैलासवासी, हर, शर्व, ईशान, कामरूप, शङ्कर, उग्ररूप, महादेव,

अजित, दुःखसे प्राप्त होनेवाले, नीलकण्ठ, सबके संहारकारी, कपिल और विशालनेत्र, जटा मुकुटधारी, कृत्तिवास, वृषभध्वज, एवं भूत आपको हम प्रणाम करते हैं। हे सर्वलोकस्वामी! आज शरणमें आये हुए हमारी रक्षा कीजिये। हे शङ्कर! हम सबके आपही रक्षक हैं ॥३४॥

एवं स्तुवन्तो देवेशं देवा ब्रह्मपुरःसरास्तदा ॥ अनुजग्मुर्महात्मानं नारायणमिवापरम् ॥ ३५ ॥ एवं संस्तूयमानोऽसौ तदा पशुपतिर्नृप ॥ प्रपेदे तं महापुण्यं कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार देवेश शङ्करकी स्तुति करते हुए ब्रह्मादि देवता दूसरे नारायणकी तरह उन भगवान् शङ्करके पीछे पीछे चलने लगे। इस तरह देवताओंसे स्तुति किये गये भूतनाथ महादेव महापुण्यशील पर्वतश्रेष्ठ कैलासपर पहुँचे ॥३६॥

तत्रापि स्वालयं दिव्यं सर्वभूतनिषेवितम् ॥ देवर्षिसिद्धमनुजैर्गन्धर्वैश्चापि सेवितम् ॥३७॥ अतीव शुभगन्धाढ्यं प्रपेदे त्रिदशेश्वरः ॥

वहां भी देवता, महर्षि, सिद्ध, मनुष्य, गन्धर्व आदि सर्व भूतोंसे सेवित, दिव्य, अत्यन्त शुभगन्धसे युक्त वे अपने वासस्थानपर जा पहुँचे ॥ ३८ ॥

तेषां मुनीनामथ पश्यतां तदा गौरीश्वरो देववरः प्रतापवान् ॥ अन्तर्दधे सानुचरप्रभावस्तत्रैव राजंस्तदभून्महाद्भुतम् ॥ ३८ ॥ अन्यदिच्छसि किम्भूयस्तत्तच्छ्रोतुं महीपते ॥ वासुदेवाश्रितं पुण्यं तत्पृच्छ कथये तव ॥३९॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीवेङ्कटाचलाच्छंकरस्य कैलासगमनादिवर्णनं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायोऽत्रैकोनविंशः ॥१९॥

हे राजन्! उस समय उन सब मुनीश्वरोंके देखते देखते गौरीश्वर भगवान् शङ्कर अपने अनुचरों सहित वहां अन्तर्धान हो गये। हे भूपाल! वह दृश्य बडा ही अद्भुत मालूम हुआ। हे महीपते! इसके अनन्तर अब आप वासुदेव सम्बन्धी और पुण्य पवित्र क्या क्या कथा सुनना चाहते हैं? वह पूछिये, हम आपको सुनायेंगे।

॥ इति ऊनविंशोऽध्यायः ॥

विंशोऽध्यायः



प्रभुके दिव्य विमानका, कारण अन्तर्धान ।
स्वामीसर पर ऋषिनका, भगवत भक्त निधान ॥१॥
महिमा अष्टाक्षर मन्त्रकी, तप समाप्तिके बाद ।
ऋषि अगस्त्य अरु मुनिनका, प्रत्यावर्तन बाद ॥२॥
दिव्य विमान लोपसे, मुनि सब चिन्ता लीन ।
आदि विचित्र पुनीत नित, लिखी कथा प्राचीन ॥३॥

अथ भगवद्विमानान्तर्धानहेतुनिरूपणम्

जनक उवाच—

अन्तर्हितं कथं तेषां मुनीनामञ्जनाचले ॥ आसीद्विमानमाश्चर्यं श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ १ ॥ आख्याहि मे महाश्चर्यमेतत्पुण्यमनुत्तमम् ॥

जनकने पूछा—हे मुने ! अञ्जनाद्रिपर उन महात्माओंके सन्मुख विमान कैसे अन्तर्धान हुआ ? यह मैं सुनना चाहता हूं । आप इस अद्‌भुत आश्चर्यप्रद अति पवित्र वृत्तान्तको कहिये ॥ २॥

वामदेव उवाच—

लीलया देवदेवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २ ॥ तदासीदद्भुतं दिव्यं विमानं मुनिसेवितम् ॥ अन्तर्हितं कृतं राजन्मायया दिव्यया स्वया ॥२ ॥ सर्व एते मुनिश्रेष्ठाः सुचिरं गिरिमूर्धनि ॥ चरेयुरिति देवेन ह्यादावन्तर्हितं कृतम् ।। ४ ॥ स्वेनैव तेषां सर्वेषां मुनीन्द्राणां महात्मनाम् ॥ मायामपास्य स्वं दिव्यं विमानं दर्शितं पुनः ॥ ५ ॥ तस्मान्मुनिवराः पूर्वं नापश्यन् दिव्यमुत्तमम् ॥ विमानं सर्वपापघ्नं सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ ६ ॥

वामदेव बोले—हे राजन्! अतुल पराक्रमी देवाधिदेव भगवान् विष्णुने दिव्य, मुनिजन सेवित, उस विमानको लीलादृष्टिसे अपनी मायासे अन्तर्हित कर दिया था। हे महिपाल! ये सब मुनिवर पर्वतके शिखरपर चिरकाल तक भ्रमण करेंगे, इस भावसे परमात्माने विमानको तिरोहित कर दिया था। फिर भगवान्ने स्वयं ही उन सब महात्माओंकी मायाको दूर कर उनको अपने दिव्य विमानका दर्शन कराया। हे राजन्! इस कारण उन मुनियोंने सर्व पापनाशक सर्वलोक प्रसिद्ध दिव्य उस उत्तम विमानको पहिले नहीं देखा था ॥ ६ ॥

अप्राकृतमनाद्यन्तं वैकुण्ठादागतं महत् ॥ श्रीसहायस्य तद्विष्णो-
र्विहारायतनं सदा ॥ ७ ॥ दृष्टवन्तश्च तद्दिव्यं प्रसादाज्जगदीशितुः ॥
हरेर्भगवतस्तस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ८ ॥ एतच्चापि समाख्यातं यत्पृष्टो-
ऽहं त्वया नृप ॥ श्रोतव्यं यत्त्वया चान्यत्तत्पृच्छ कथयामि ते ॥ १० ॥

हरि भगवान्की कृपासे सबने उस, अप्राकृत, आदि अन्तसे रहित, लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुके सदा क्रीड़ा-स्थान एवं वैकुण्ठसे आये हुए विमानके दर्शन पाये। उसका दृश्य बड़ा ही अद्भुत था। हे राजन्! यह भी मैंने आपको सुना दिया जो आपने पूछा था। अब आप क्या सुनना चाहते हैं, सो पूछिये। हम आपको वह भी सुनायेंगे ॥

जनक उवाच

अगस्त्यप्रमुखास्तत्र किमकुर्वंस्ततः परम् ॥ मुनयो मुनिशार्दूल तन्मे
कथय सुव्रत ॥ १० ॥

जनक बोले—हे मुनिशार्दूल! सुव्रत! इसके बाद अगस्त्यादि महर्षियोंने वहां क्या किया? कृपा करके आप उस प्रसङ्गको कहिये ॥१०॥

अथ स्वामिपुष्करिण्यामगस्त्यादिकृतभगवन्मन्त्रोपासनाप्रकारः

वामदेव उवाच—

अगस्त्याद्यास्ततस्तस्मिन् भगवत्यच्युतेऽमले ॥ अन्तर्हिते जगद्धा-
त्रि परे ब्रह्मणि केशवे ॥ ११ ॥ कृतवन्तो महात्मानो यत्तत्र कथयामि
तत् ॥

वामदेव कहने लगे—उन अच्युत, अमल, जगत्-रक्षक, परब्रह्म केशवके अन्तर्हित होने पर अगस्त्यादि महर्षियोंने वहांपर जो कुछ किया, वह मैं आपको सुनाता हूं।

चिरकालं विमानेऽस्मिन्पुण्ये पुण्यप्रदायिनि ॥ १२ ॥ वसाम तत्परं

ब्रह्म चिन्तयामो जनार्दनम् ॥ पुष्करिण्या विशालायास्तस्या एव शुभे ज-
ले ॥ १२ ॥ सर्वपापहरे शुद्धे स्नात्वा स्नात्वा दिने दिने ॥ सर्वं सम्पूज्य
तपसा तमासाद्य दिवानिशम् ॥ १४ ॥ एवमुक्त्वा ततः सर्वे मुनयोऽमल-
चेतसः ॥ ऊषुस्तस्मिन्विमाने ते द्वादशाब्दं नराधिप ॥ १५ ॥

हम लोग इस विशाल पुष्करिणीके, सब पापोंका नाश करने वाले शुभ, शुद्ध जलमें प्रति दिन स्नान करके निरन्तर तप करते हुए उन परब्रह्म जनार्दनका चिन्तन करते हुए इस पवित्र पुण्यप्रद विमानमें निवास करेंगे, हे नराधिप! इस तरह कहते हुए उन निर्मलचित्त सब मुनियोंने बारह बरस तक उस विमानमें निवास किया ॥ १५ ॥

तपस्तीव्रं समास्थाय विष्णोराराधनोद्यताः ॥ स्वामिपुष्करिणीं दिव्यां
सेवमाना अहर्निशम् ॥ १६ ॥ जेपुरष्टाक्षरं मन्त्रं मुक्तिबीजमनुत्तमम् ॥
विद्वद्भिः प्रेक्ष्यते पूर्वैर्यो मन्त्रो मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ १७ ॥ अर्थार्थिभिस्त-
थान्यैश्च कामसंसिद्धये नृप ॥ जजाप यं परं मन्त्रं पुरा ब्रह्मा सनातन-
म् ॥ १८ ॥ कल्पादौ सर्वदेवेशः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥ तथा संहारस-
मये सम्प्राप्ते चन्द्रशेखरः ॥ १९ ॥ यमभ्यस्य महामन्त्रं शक्तिं प्राप्नोति
दुर्लभाम् ॥ यत्समं चाधिकं वा न त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥२०॥ तथा सर्वेषु
मन्त्रेषु वैदिकेषु शुभेषु च ॥ यं ज्ञात्वा सर्वपापेभ्यो विमुच्यन्तेऽत्र मान-
वाः ॥२१॥ सर्वान् कामांश्च विन्दन्ति यं जप्त्वा मन्त्रमुत्तमम् ॥ तं मन्त्रं
सर्वपापघ्नं सर्वशोकप्रणाशनम् ॥ २२ ॥ जेपुस्ते मुनयः सर्वे द्वादशाब्दम-
हर्निशम् ॥

वे सब श्रीभगवान् विष्णुकी आराधनामें उद्यत हो कर दिन रात दिव्य स्वामिपुष्करिणीका सेवन करते हुए मोक्षदायक उत्तम अष्टाक्षर मन्त्रको जपने लगे, जिस मन्त्रको मुक्ति एवं अर्थ तथा अन्यान्य फलोंकी इच्छा करनेवाले पुरातन विद्वान् लोग खोजते हैं, जिस मन्त्रको और लोग कामसिद्धिके लिये जपते हैं जिस मन्त्रको कल्पके आदिमें नाना प्रकारकी प्रजा रचनेकी इच्छासे सर्व देवताओंके स्वामी ब्रह्माजीने जपा था, जिस महामन्त्रका जप करके संहारके समय भगवान चन्द्रशेखर शिवजीने दुर्लभ शक्ति प्राप्त कर ली है, जिसके समान या अधिक तीनों लोकोंमें तथा समस्त सब शुभ वेदमन्त्रोंमें कोई मन्त्र नहीं है, जिस उत्तम मन्त्रको जानकर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाते और सब मनोरथोंको प्राप्त कर लेते हैं उस सर्वपापहारी सर्व शोकोंको दूर करनेवाले अष्टाक्षर मन्त्रका उन मुनियोंने अहर्निश निरन्तर बारह बरस तक जप किया ॥

अथागस्त्यादिकृतो भगवत्सेवापूर्वकः स्वाश्रमगमनोद्योगः

समाप्ते द्वादशे वर्षे मुनयस्ते तपोधनाः ॥२३॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे समाराध्य जगत्पतिम् ॥ शङ्खचक्रधरं देवं चतुर्बाहुं किरीटिनम् ॥ २४ ॥ श्रीभूमिसहितं देवमुदयादित्यसन्निभम् ॥ सहस्रशो विमानं तत्कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ २५ ॥ प्रणम्य च जगन्नाथं सर्वलोकेश्वरं हरिम् ॥ गन्तुं प्रचक्रमुस्तस्माद्वेङ्कटाख्यान्नगोत्तमात् ॥ २६ ॥

हे राजन् ! जब बारह बरस समाप्त हो गये तब अगस्त्यादि सब मुनियोंने शङ्ख चक्रधारी, चतुर्भुज, किरीट धारण करनेवाले, उदय होते हुए सूर्यके समान, श्री और भूमि सहित जगत्पति भगवान्की आराधना एवं उस विमानकी हजारों प्रदक्षिणा तथा सर्वलोकेश्वर हरि भगवान् जगन्नाथको प्रणाम करके उस पर्वतश्रेष्ठ वेङ्कटाचलसे जानेका प्रबन्ध किया ॥ २६ ॥

अथ भगवद्विमानमन्तर्हितं दृष्ट्वाऽगस्त्यादिकृता चिन्ता

एतस्मिन्नन्तरे तत्र विमानं मुनिसेवितम् ॥ पश्यतामेव सर्वेषां मुनीन्द्राणां महात्मनाम् ॥ २७ ॥ पुनश्चापि जगद्धातुर्मायया दिव्यया स्वया ॥ अन्तर्हितं कृतं चासीत्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २८ ॥ ततस्तु मुनयः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥

हे राजन् ! उस समय इन सब महात्मा महर्षियोंके देखते देखते मुनिजन सेवित विमानको उन भगवान्ने अपनी दिव्य मायासे तिरोहित कर दिया। वह दृश्य बड़ा ही अद्भुत मालूम हुआ, इस प्रकार विमानको अन्तर्हित देख कर मुनि बड़े ही विस्मित हुए ॥ २८ ॥

मुनय ऊचुः—

अहोऽतीव महाश्चर्यं कृतमेतन्महात्मना ॥ २९ ॥ पुनश्च देवदेवेन हरिणाऽद्भुतकारिणा ॥ यदेतन्महदाश्चर्यं विमानं पुण्यसेवितम् ॥ ३० ॥ अन्तर्हितं कृतं पूर्वं दर्शितं च पुनस्तथा ॥ इदानीं च पुनस्तेन माययाऽन्तर्हितं कृतम् ॥ ३१ ॥ अहो बत महाश्चर्यमहो बत महाद्भुतम् ॥ दृष्टमेतत्तदध्यक्षे सेविते माधवे शुभे ॥३२ ॥ एवंविधानि वाक्यानि प्रोच्य प्रोच्य

पुनः पुनः ॥ विस्मयाविष्टहृदयास्तस्थुस्तत्रैव ते द्विजाः ॥ ३३ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये भगवद्वि-
मानान्तर्धानहेत्वादिनिरूपणं नामैकोनचत्वारिंशोऽ-
ध्यायोऽत्र विंशतितमः ॥ २० ॥

मुनि कहने लगे—अहो ! भगवान्ने यह कैसा ही अद्भुत कार्य किया । अद्भुत कारी देवाधिदेव भगवान हरिने यह महान् आश्चर्य किया है, कि पहिले विमानको अन्तर्हित कर फिर दिखाया । और इस समय फिर भी अपनी मायासे तिरोहित कर दिया । यह महान आश्चर्यकी बात है कि इस दिव्य विमानके अध्यक्ष भगवानकी सेवा करनेसे ही यह विमान दिखायी देता है । हे राजन् ! वे महर्षि बार बार इस प्रकारके वचन कह कर परम विस्मयको प्राप्त हो गये और वहीं ठहर गये ॥ ३३ ॥

इति विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः



शेषाचलके वायु दिशि, महा भूत आख्यान ।
नारायण गिरि नामसे, होनेका परमान ॥१॥
स्वामीसरके तीरपर, वसुका प्रभुपद ध्यान ।
श्वेत दीपके ऋषिनका, उस गिरिसे प्रस्थान ॥२॥
ऋषि अगस्त्यका कथन पुनि, भावी यानाऽख्यान ।
इक्कीसवें अध्यायमें, वर्णन साथ प्रमान ॥३॥

अथ शेषाद्रिवायव्यभागस्थितमहाभूतस्य नाराणाद्रित्वं वर्णनम्

जनक उवाच—

वायव्यां दिशि यो देवो गिरेस्तस्य महीयसः ॥ दृष्टो मुनिवरैः पूर्वं
कोऽसौ ब्रह्मन्वदस्व मे ॥ १ ॥

जनकने पूछा—हे ब्रह्मन् ! अगस्त्यादि मुनियोंने वेङ्कटाचलके वायव्य कोणमें जिस देवके दर्शन किये वह कौन था ? कृपा कर यह बात कहिये ॥ १ ॥

वामदेव उवाच—

स राजन्नगराजस्तु नारायणगिरिः स्वयम् ॥ आसीनो वपुरास्थाय स्वकं दिव्यं महाद्भुतम् ॥ २ ॥

वामदेव बोले—हे राजन् ! वह स्वयं अपना महान्, अद्भुत दिव्य शरीर धारण कर बैठे पर्वतराज नारायण गिरि ही थे ॥ २ ॥

अथ वसोर्भगवन्मन्त्रोपासनापूर्वकं स्वामितीर्थस्थितिवर्णनम्

जनक उवाच—

अन्तर्हिते जगन्नाथे वसुः परमधार्मिकः ॥ तपःपरं स राजर्षिरकरोत्किं महामुने ॥ ३ ॥

जनक बोले—हे महामुने ! भगवान् जगनाथके अन्तर्हित होने पर धार्मिक राजर्षि वसुने तपके बाद क्या किया ? ॥ ३ ॥

वामदेव उवाच—

स राजाऽन्तर्हिते देवे देवदेवे सनातने ॥ कृतवान्यन्महीपाल तदाख्यास्ये निशामय ॥ ४ ॥ तस्मिन्नेव विमानेऽसौ राजोपरिचरो वसुः ॥ आराधयन्हृषीकेशं वासुदेवं सनातनम् ॥ ५ ॥ द्वादशाक्षरमेवैकं परं मन्त्रं जजाप ह ॥ सेवमानश्च तां दिव्यां स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ ६ ॥ उवास परया भक्त्या द्वादशाब्दं महामतिः ॥ नृपेन्द्र कथयिष्येऽन्यच्छ्रूयतामित्यथाब्रवीत् ॥ ७ ॥

वामदेव कहने लगे—हे राजन् ! देवाधिदेव सनातन भगवान नारायणके तिरोहित हो जाने पर राजा वसुने जो कुछ किया वह मैं आपको कहता हूं, आप श्रवण करें। हे महिपाल ! राजा उपरिचर वसु उसी विमानमें सनातन वासुदेव हृषीकेशकी आराधना करता हुआ परम द्वादशाक्षर मन्त्र जप करने लगा। हे राजन् ! राजा वसु द्वादशाक्षर मन्त्रको जपता और दिव्य शुभ पुष्करिणीकी सेवा करता हुआ भक्तिपूर्वक बारह वर्ष तक वहां पर रहा। हे नृपेन्द्र ! और अन्य वृत्तान्त भी आप सुनिये मैं कहता हूं ॥ ६ ॥

अथ श्वेतद्वीपवासिसिद्धादीनां श्रीवेङ्कटाचलात्स्वावासगमनम्

ते सर्वे सङ्गतास्तत्र नारायणगिरौ नृप ॥ शङ्खचक्रधराः सर्वे श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥ ८ ॥ नमो भगवते वासुदेवायेत्यजपंस्तदा ॥ तस्मिन्विमाने न्यवसंश्चिरकालमथो नृप ॥ ९ ॥ अर्चयन्तश्च गोविन्दं भक्त्या परमया तदा ॥ अनुज्ञाताश्च देवेन श्वेतद्वीपमथागमन् ॥ १० ॥ एतच्चापि समाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वया नृप ॥ यदन्यत्तव वक्तव्यं तत्पृच्छ कथयामि ते ॥ ११ ॥

हे नृप ! वे श्वेतद्वीपनिवासी सब मिल कर शङ्ख, चक्र धारण कर परम भक्तिसे "नमो भगवते वासुदेवाय" इस मन्त्रको जपते एवं भगवान गोविन्दकी अर्चना करते हुए बहुत दिनतक उस विमानमें रहे, उसके बाद देवकी आज्ञा पा कर वे अपने स्थानको चले गये। हे राजन ! आपने जो पूछा था वह मैं ने कह दिया। अब और जो कुछ पूछना हो, पूछो, मैं सब कह दूंगा ॥ ११ ॥

जनक उवाच—

सनकाद्या महात्मानो येऽन्ये तत्र समागताः ॥ अन्तर्हिते जगन्नाथे किमकुर्वंस्ततः परम् ॥ १२ ॥

जनक बोले—हे मुने ! वहां पर आये हुए सनकादि योगिगण एवं अन्यान्य देवता महर्षि आदिने भगवान्के अन्तर्धान होने पर क्या किया ? ॥ १२ ॥

वामदेव उवाच—

सप्तर्षयश्च देवाश्च शुक्रश्चापि महामतिः ॥ बृहस्पतिश्च भगवान् सनकाद्याश्च योगिनः १३ ॥ सर्वे एते महाभागा नमस्कृत्य जनार्दनम् ॥ महीधरं प्रशंसन्तः स्वालयान्प्रतिपेदिरे ॥ १४ ॥ शक्रश्चापि जगद्धातुः प्रसादादेव भूपते ॥ विमानमद्भुताकारमप्सरोगणसेवितम् ॥ १५ ॥ आरुह्य गीयमानस्तैः शक्रलोकमवाप्तवान् ॥ विष्वक्सेनश्च भगवान्सचिवैर्बलिभिर्वृतः ॥ १६ ॥ सप्तभिर्भूरितेजोभिर्महेन्द्रसमविक्रमैः ॥ असुराणां वधं चक्रे यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ १७ ॥

वामदेवने कहा—हे नृप ! सप्तर्षि, देवता, महामति शुक्र, भगवान् देवगुरु बृहस्पति, सनकादि योगिगण ये सब महाभाग, भगवान् महीधर जनार्दनको नमस्कार करके उनकी ही प्रशंसा करते हुए अपने अपने स्थानको चले

गये। हे भूपते! शङ्ख भी भगवानकी कृपासे अद्भुत आकारवाला, अप्सराओंसे सेवित, विमानपर चढ़ कर, स्तूयमान हो इन्द्र लोकमें चला गया। भगवान् विष्वक्सेनने भी इन्द्रके समान पराक्रमी, अति तेजस्वी एवं महाबलवान् अपने सात मन्त्रियोंको संग ले कर परमात्माके आदेशानुसार दैत्योंका वध किया ॥ १७ ॥

जनक उवाच—

अन्तर्हिते ततस्तस्मिन्विमाने मुनिसेविते ॥ अगस्त्यो भगवान् ब्रह्म-
न्नकरोत्किं महामुनिः ॥ १८ ॥

जनकने पूछा—हे ब्रह्मन्! मुनिसेवित उस विमानके अन्तर्हित होने पर भगवान् महर्षि अगस्त्यने क्या किया? ॥ १८ ॥

अथागस्त्यकृतभाविविमानाविर्भावहेतुनिरूपणम्

वामदेव उवाच—

अगस्त्यो भगवान् भूप मुनीन्द्रानिदमब्रवीत् ॥ यदेतद्दर्शितं दिव्यं
विमानं लोकपावनम् ॥ १९ ॥ पूर्वं भगवता तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥
तदत्रैव महाशैले सदा तिष्ठति पूजितम् ॥ २० ॥ अन्तर्हितं न केनापि शा-
क्यते द्रष्टुमञ्जसा ॥ युगे युगे तु यः कश्चित्तपसा भावयेद्धरिम् ॥ २१ ॥
स तस्य कृपया दिव्यं विमानं पश्यति ध्रुवम् ॥

वामदेव बोले—हे भूप! भगवान् अगस्त्य मुनि सब महर्षियोंसे कहने लगे—कि पहले इसी जगह भगवान्ने लोक-पावन यह दिव्य विमान दिखाया है, इसी कारण वह इस महापर्वतपर पूजित हो कर सर्वदा रहता है। इसके अन्तर्हित होनेके कारण कोई भी उसे देख नहीं सकता। प्रति युगमें जो तपके द्वारा भगवान्को प्रसन्न करेगा वही उस परमात्माकी कृपासे इस दिव्य विमानको यहां देख सकेगा ॥ २२॥

आगामिनि कलौ चापि सम्प्राप्ते पुण्यमुत्तमम् ॥२२॥ विमानं सर्व-
पापघ्नं विष्णुनाऽधिष्ठितं सदा ॥ पश्यतां सर्वभूतानामाह्लादजनकं शुभ-
म् ॥२३॥ देवर्षिदैत्यगन्धर्वदेवसिद्धनिषेवितम् ॥ मनुजैरेव तद्भक्तैः कारितं
लक्षणान्वितम् ॥ २४ ॥ भविष्यति महाश्चर्यं मुनीन्द्रा नात्र संशयः ॥

भविष्यमें कलियुगके प्राप्त होने पर भी सदा विष्णुसे अधिष्ठित, सब पापोंको नाश करनेवाला, देखनेवाले सब प्राणियोंको आनन्द देनेवाला, देव, ऋषि, दैत्य एवं गन्धर्व, सिद्धजननिषेवित यह दिव्य विमान परमात्माके भक्त मनुष्यों द्वारा सर्व-लक्षण-सम्पन्न ही बनाया हुआ आश्चर्यमय हो कर रहेगा इसमें संशय नहीं है।

तत्रैव भगवान् विष्णुः स्थास्यत्यक्षयशक्तिधृक् ॥ २५ ॥ विमाने तु जगन्नाथः पूर्वं दृष्टो हरिः स्वयम् ॥ शङ्खचक्रधरः श्रीमांश्चतुर्बाहुस्वरूपवान् ॥ २६ ॥ अस्मिञ्जगति विप्रेन्द्रा विश्रुतं च भविष्यति ॥ विमानं तदघौघघ्नं त्रैलोक्यतिलकोपमम् ॥ २७ ॥

दिव्य विमानमें पहले देखे गये, शंख चक्रधारी, श्रीमान, चतुर्बाहु, अनुपम-पराक्रमी, हरि जगन्नाथ भी इस विमानमें निवास करेंगे। हे मुनियो ! त्रिलोकीमें श्रेष्ठ यह विमान इस संसारमें सब पापोंको नाश करनेवाला प्रसिद्ध होगा ॥ २७ ॥

वामदेव उवाच—

एवमुक्त्वा मुनीन्द्रास्तानगस्त्यो भगवांस्तदा ॥ गन्तुं चक्रे मनस्तस्मात्प्रणिपत्य जनार्दनम् ॥ २८ ॥ अगस्त्योऽथ महातेजा वरान्प्राप्य सुदुर्लभान् ॥ मुनिभिः संवृतो राजन्महेन्द्रमगमद्गिरिम् ॥२९॥ एवमेषा पुरा वृत्ता कथा ते कथिता मया ॥ विश्रुता सर्वलोकेषु किमन्यज्ज्ञातुमिच्छसि ॥ ३० ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये भविष्यद्विमानप्रादुर्भाववर्णनं नाम चत्वारिंशोऽध्यायोऽत्रैकत्रिंशः ॥३१॥

वामदेव बोले—हे राजन् ! महर्षि अगस्त्यने मुनियोंसे इस तरह कह कर भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके वहांसे जानेकी इच्छा की। हे महिपाल ! महा तेजस्वी महर्षि अगस्त्य दुर्लभ वरोंको प्राप्त कर मुनियोंके साथ वेङ्कटाचलसे महेन्द्र पर्वतपर चले गये। इस तरह सब लोकोंमें प्रसिद्ध पहिले कही गयी यह प्राचीन कथा मैंने आपसे कह दी। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ? ॥ ३० ॥

॥ इति एकत्रिंशोऽध्यायः ॥

द्वाविंशोऽध्यायः



दैत्य देवजित आदिका, लोकोपद्रव देख।
विष्वक्सेनाका गमन, करन हेतु बिन रेख ॥१॥
समर दैत्यगण संग कर, नारायण प्रायोग।
दैत्योंको संहार कर, स्तुती विनय विनियोग ॥२॥
विष्वक विजयोत्कर्षमें, देवनका उपचार।
विनय प्रार्थना अर्चना, पुनि जग शान्ति विचार ॥३॥

अथ देवजिदाद्यसुरकृतलोकोपद्रववर्णनम्

जनक उवाच—

ब्रह्मन्नियुक्तो देवेन विष्वक्सेनः स वीर्यवान् ॥ तेषां वधं कथं चक्रे दैत्येन्द्राणां तरस्विनाम् ॥ १ ॥ एतन्मे महदाश्चर्यं चरितं तस्य धीमतः ॥ विष्वक्सेनस्य देवस्य तत्त्वेनाख्यातुमर्हसि ॥ २ ॥

राजा जनकने पूछा—हे ब्रह्मन्! भगवान्का आदेश पा कर महाप्रतापी विष्वक्सेनजीने महा बलशाली दैत्योंका वध किस प्रकार किया? देव, धीमान्, श्रीविष्वक्सेनजीका यह आश्चर्यजनक चरित्र ठीक ठीक आप कहिये ॥ २ ॥

वामदेव उवाच—

एतत्ते कथयिष्यामि शृणुष्व श्रद्धयाऽन्वितः ॥ पुराऽवधीद्यथा दैत्यान्विष्वक्सेनो महाबलः ॥३॥ पुराऽभवन्महावीर्या हिरण्याक्षस्य वंशजाः ॥ देवजिन्मृत्युजिच्चापि शत्रुजिच्चेति ते त्रयः ॥४॥ भ्रातरः सुमहासत्त्वा महामाया महौजसः ॥ ब्रह्माणं ते समाराध्य स्रष्टारं भुवनेश्वरम् ॥५॥ सर्वैर्देवैरवध्यत्वमवापुर्मनुजेश्वर ॥

वामदेव बोले—हे राजन् ! महा बलवान् विष्वक्सेनजीने प्राचीन समयमें जिस प्रकार दैत्योंका वध किया वह कथा मैं आपको सुनाऊंगा, आप श्रद्धापूर्वक श्रवण करें। पहिले हिरण्याक्षके वंशमें पैदा हुए देवजित, मृत्युजित, एवं शत्रुजित् नामके अति पराक्रमी, बड़े शूरवीर, महा मायावी और अतुल बलवाले तीन भाई थे। हे मनुजेश्वर ! उन तीनों दैत्योंने संसारको रचनेवाले ब्रह्माजीकी आराधना करके यह वर मांग लिया कि उनको कोई देवता मार न सके ॥ ६ ॥

ततः सकलदैतेयैर्महामात्यैर्महाबलैः ॥६॥ अनेकशतसाहस्रैः संवृतास्ते महीमिमाम् ॥ विचेरुरवनीपाल नाशयन्त इमाः प्रजाः ॥ ७ ॥ क्षोभितास्तैस्तु सहसा शोषिताः वरुणालयाः ॥ तेषां वीर्येण महता पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ८ ॥ ययुर्विनाशं सहसा प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वर ॥ यज्ञभागभुजो देवा यज्ञभागं न लेभिरे ॥ ९ ॥ त एव बुभुजुर्दैत्या यज्ञभागान् सुदुर्मदाः ॥ न यज्ञाः समवर्तन्त तपश्चक्रुर्न तापसाः ॥ १० ॥ न तताप तदा सूर्यो न जज्वाल च पावकः ॥ निर्जिताश्चाभवन्देवा युद्धे परमदारुणे ॥ ११ ॥ दैतेयैर्विजिता देवाः शरणं प्रतिपेदिरे ॥ नारायणाचले दिव्ये वसन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ १२ ॥

हे राजन् ! ब्रह्माजीसे वर पा कर वे तीनों भाई अपने महा बलवान् अमात्य और अनेक सैंकड़ों सहस्रों दैत्योंको साथ ले कर प्रजाका नाश करते हुए पृथ्वीपर विचरने लगे। हे प्रजेश्वर! उन्होंने एकाएक समुद्रोंको सुखा डाला। उनके अतुल पराक्रमसे पर्वत कांपने लगे। एकाएक प्रजा नष्ट होने लगी। यज्ञके भागको लेनेवाले देवताओंने यज्ञका भाग नहीं पाया। मदोन्मत्त वे दैत्य ही यज्ञोंके भागको लेने लगे। न कोई यज्ञ होता था और न कोई तपस्वी तप कर सकता था। न सूर्य तपता था और न अग्नि जलती थी। परम दारुण युद्धमें सभी देवतागण पराजित हुए। असुरोंसे पराजित हो कर देवतागण दिव्य नारायणाचलनिवासी पुरुषोत्तमको शरणमें गये ॥१२॥

अथ देवजिदाद्यसुरवधार्थं सपरिकरस्य विष्वक्सेनस्य गमनम्

एवं प्रवृत्ते लोकेऽस्मिन् दैतेयैस्तैर्मदोत्कटैः ॥ विष्वक्सेनः समाज्ञप्तो विभुना हरिणा बली ॥ १३ ॥ तेषां वधार्थं सर्वेषां दैत्येन्द्राणां बलीयसाम् ॥ अभ्यगात्सचिवैः सार्धं सततिभिर्बलशालिभिः ॥१४॥ अनेकशतसाहस्रैर्भूतसङ्घैः समावृतः ॥ महाबलैर्महावीर्यैर्भूभारहरणक्षमैः ॥ १५ ॥

संवृतस्तैर्महातेजाः सोऽगच्छद्विमलेऽम्बरे ॥ व्यराजत यथा शक्रः संवृत-
स्त्रिदशेश्वरैः ॥ १६ ॥ आकाशं तदनाकाशं कृतमासीदभास्करम् ॥

हे महीप ! इस प्रकार मदोत्कट दैत्यों द्वारा संसारमें विप्लव मच जाने पर भगवान् हरि विभुकी आज्ञा पा कर सात बलशाली मन्त्रियोंके साथ अनेक सैकड़ों सहस्रों महा बलवान्, महावीर्य, पृथ्वीके भार हरनेमे समर्थ भूत समूहसे युक्त हो कर महातेजस्वी विष्वक्सेनने उन सब बलवान् दैत्योंके वधके लिये प्रस्थान किया। उस समय विष्व-क्सेनजी विमल आकाशमें ऐसे शोभित हुए, मानों देवताओंसे युक्त इन्द्र है। उन्होंने आकाशको अभ्यन्तर स्थान रहित तथा बिना सूर्य रहित कर दिया ॥ १७॥

आयान्तमथ चाकर्ण्य विष्वक्सेनं च तद्बलम् ॥ १७ ॥ तेऽपि दैत्या
महावीर्या बलवन्तो यशस्विनः ॥ आहूय सर्वानसुरान् पातालतलवासि-
नः ॥१८॥ सागरेषु च शैलेषु नदीषु च वनेषु च ॥ ये वसन्ति महावीर्या
दारुणा दानवेश्वराः ॥ १९ ॥ तान्सर्वांस्ते समाहूय समरेष्वनिवर्तिनः ॥
युद्धाभिमानिनस्तेऽथ सह दैतेयदानवैः ॥२०॥ देवजित्प्रमुखा जग्मुर्योद्धुं
तेन महात्मना ॥ विष्वक्सेनेन ते तेन गिरिशेनेव राक्षसाः ॥ २१ ॥

विष्वक्सेन और उनकी सेनाको आते हुए देख कर पाताल, समुद्र, नदी और वनादिमें जो महावीर्य, दारुण, दानवेश्वर बसते थे, उन सब युद्धमें डटनेवाले असुरोंको बुला कर युद्धाभिमानी देवजित आदि यशस्वी बलवान् महा-वीर्य वे दैत्य भी उन महात्मा विष्वक्सेनके साथ युद्ध करनेके लिये निकल पड़े जैसे महादेवजीके साथ राक्षस निकल पड़े थे ॥२१॥

अथ विष्वक्सेनासुरसैनिकयोर्युद्धक्रमः

देवस्य सैनिकाश्चापि दैत्येन्द्राणां च सैनिकाः ॥ ततो युद्धं महारौद्रं
समवर्तत दारुणम् ॥२२॥ सेनयोरुभयोश्चापि देवासुरमिवापरम् ॥ नाना-
प्रहरणैरुग्रैर्निजघ्नुस्ते परस्परम् ॥२३॥ विष्वक्सेनानुगाश्चापि दैत्येन्द्राश्च
बलीयसः ॥ तैर्मुक्तैरस्त्रजालैश्च शस्त्रौघैश्चापि संयुगे ॥ २४ ॥ दह्यमान-
मिवाकाशमासीत्सर्वंग्रहाकुलम् ॥

जब देव और दैत्यों कि सेनायें इकट्ठी हुईं, तब ऐसा भयानक युद्धका प्रारम्भ हुआ मानो दूसरा देवासुर संग्राम ही हो रहा है। और वे दोनों एक दूसरेको मारने लगीं। देव और दैत्योंके द्वारा छोड़े हुए नाना प्रकारके शस्त्र और अस्त्रोंके समूहसे सब ग्रहोंसे व्याप्त आकाश जलता हुआ मालूम पडने लगा ॥ २५ ॥

जाज्वल्यमानं तं दृष्ट्वा गगनं गगनेचराः ॥ २५ ॥ परित्यज्य नृपाकाशं भयाज्जग्मुर्दिशो दश ॥ ततो देवजिता मुक्ता घोरमाया महौजसा ॥ २६ ॥ तान्सर्वान्मोहयामासुर्विष्वक्सेनस्य सैनिकान् ॥ विष्वक्सेनस्य सचिवस्ततः क्रुद्धो महामतिः ॥ २७ ॥ मेधावी नाम बलवान् सर्वमायाविशारदः ॥ मायाबलेन तां मायामजयत्सर्वमोहिनीम् ॥ २८ ॥

आकाशको जाज्वल्यमान देख कर आकाश गामी प्राणि आकाशको छोड़ कर भयसे दशों दिशाओंमे भाग गये। इसके बाद महाबली देवजितके द्वारा प्रेरित भयानक मायाओंने अपने तेजसे विष्वक्सेनके सैनिकको मोहित किया। उसके बाद बलवान, सर्वमायाविशारद महामति मेधावी नामका, विष्वक्सेनके मंत्रीने बड़ा क्रुद्ध हो कर अपनी मायाके बलसे उस सर्वमोहिनी दैत्य मायाको जीत लिया ॥ २८ ॥

ततो धनुर्महद्दिव्यमादाय विमलप्रभम् ॥ अच्छेद्यं सर्वशत्रूणां दत्तमव्यक्तरूपिणा ॥ २९ ॥ अनेकरत्नसंछन्नं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ मुमोच निशितान्बाणान् दैत्येन्द्राणां महौजसाम् ॥३०॥ निहतास्तेन दैतेयाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ मुक्त्वा प्रियतरान्प्राणान्निपेतुर्धरणीतले ॥ ३१ ॥

उसके बाद उसने विमल कान्तिवाले, दिव्य, शत्रुओं द्वारा अच्छेद्य, अव्यक्त रूपी भगवान्के दिये हुए अनेक रत्नोंसे युक्त, सुवर्णसे परिष्कृत बड़े धनुषको ले कर तीक्ष्ण बाणोंको छोड़ा, जिनसे सैकड़ों हजारों दैत्य अपने प्रिय प्राणोंको छोड़ छोड़ कर पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ ३१ ॥

निहतांस्तानथालोक्य मृत्युजित्क्रोधमूर्छितः ॥ मोहयामास सर्वांस्तान्मायया देवसैनिकान् ॥ ३२ ॥ शत्रुघ्नो नाम शत्रुघ्नः क्रोधेन महताऽन्वितः ॥ असिरत्नं समादाय विमलार्कसमप्रभम् ॥ ३२ ॥ चिच्छेद तस्य दैत्यस्य शिरो ज्वलितकुण्डलम् ॥ तस्यासोद्भूय एवाशु शिरस्तुङ्गकिरीटवत् ॥ ३४ ॥ शत्रुजित्तस्य तत्कर्म शत्रुघ्नस्य बलीयसः ॥ सम्पश्यन् घोरसङ्काशो मायास्त्रामथाददे ॥ ३५ ॥ विजेतुं दुर्मदः सर्वान्विष्वक्सेनमुखान्मृधे ॥ तया ते निष्प्रभा आसन्विष्वक्सेनस्य सैनिकाः ॥ ३६ ॥

दैत्योंको मरे हुए देख कर मृत्युजितने क्रोधसे मूर्छित हो अपनी मायासे सब देव सैनिकोंको मोहित किया। उसी समय शत्रुओंको नाश करनेवाले शत्रुघ्नने क्रोधमें आ विमल उत्तम खड्ग ले कर उसके मस्तकको काट डाला, किन्तु उच्च किरीट वाला उसका मस्तक फिर भी पैदा हो गया। बलवान शत्रुघ्नके उस कर्मको देख कर शत्रुजित् नामक राक्षसने तथा तदनुयायीने प्रचण्ड मायाको छोड़ा, जिससे विष्वक्सेनजीके सैनिक निस्तेज हो गये ॥

तां दृष्ट्वा सहसा क्रुद्धः सचिवस्तस्य धीमतः ॥ मायामुग्रां महातेजाः कालाग्निर्नाम वीर्यवान् ॥३७॥ आसुरीं नाशयामास तदद्भुतमिवाभवत् ॥ आददे महतीं शक्तिं शत्रुजिद्वधकारणात् । मुमोचाथ स तां दीप्तां कालाग्निस्तरसा बली ॥ शक्त्या विदारितो दैत्यः पपाताथ महीतले ॥३९॥ गतासुरिव निश्चेष्टः पुनश्चापि समुत्थितः ।

उस मायाको देख कर वीर्यवान्, महा तेजस्वी कालाग्नि नामक विष्वक्सेनके सचिवने उस आसुरी मायाको नष्ट किया। यह दृश्य बड़ा विचित्र मालूम पड़ रहा था। कालाग्निने शत्रुजितको मारनेके लिये बड़े वेगसे, दीप्त बड़ी शक्तिका प्रयोग किया, जिससे विदारित हो कर यह दैत्य पृथ्वीमें गिर पड़ा और गिरते ही यह मुर्देके समान चेष्टा रहित हो फिर भी उठ खड़ा हुआ ॥ ४० ॥

देवजिन्मृत्युजिच्चापि शत्रुजिच्चाप्यथात्मवान् ॥४०॥ क्रोधेन महताऽऽविष्टास्त्रयस्त्रय इवाग्नयः ॥ धनूंष्याकृष्य दिव्यानि दत्तान्यव्यक्तजन्मना ॥ ४१ ॥ ब्रह्मणा देवदेवेन कल्पादौ परमेष्ठिना ॥ महास्त्रं च तथा दिव्यं भीमं पाशुपतं तथा ॥४२॥ वायव्यं वारुणं चापि सौरमाग्नेयमेव च ॥ ऐन्द्रं चापि तथा रौद्रं याम्यं चापि सुदुस्तरम् ॥ ४३ ॥ विमोहनकरं घोरं गान्धर्वं च सुदुर्जयम् ॥ जृम्भणास्त्रं तथा घोरं कौवेरं वारुणं तथा ॥ ४४ ॥ एवमादीनि चान्यानि दिव्यान्यस्त्राणि संयुगे ॥ मुमुचुः शतशो राजन् सेनायां तस्य धीमतः ॥ ४५ ॥

देवजित् शत्रुजित, मृत्युजित, मानों तीनों अग्नि ही हैं, ऐसे तीनों भाई बड़े क्रोधके वशमें हो, कल्पके आदिमें अव्यक्तजन्मा परमेष्ठी ब्रह्माके दिये हुए दिव्य धनुष पर चढ़ा कर दिव्य महास्त्र, भयङ्कर पाशुपतास्त्र, वायव्यास्त्र, वारुणास्त्र, सूर्यास्त्र, आग्नेयास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, रुद्रास्त्र, अनतिक्रमणीय याम्यास्त्र, मोहकरनेवाले दुर्जय गन्धर्वास्त्र, जृम्भणास्त्र, कौवेरास्त्र इत्यादि अन्यान्य सैकड़ों दिव्यास्त्रोंको धीमान् विष्वक्सेनजीकी सेना पर छोड़ने लगे ॥ ४५ ॥

ब्रह्मास्त्राद्यैस्तथा दीप्तैरस्त्रैः शत्रुभयङ्करैः ॥ ज्वालार्चिष्मत्तदाकाशमपेतग्रहभास्करम् ॥ ४६ ॥ अपेतचन्द्रतारौघं निपतच्छुकसारिकम् ॥ दृश्यते सङ्कुलं तत्र संहारसमये यथा ॥ ४७ ॥

शत्रुओंको भयभीत करनेवाले दीप्त ब्रह्मास्त्रादियोंके तेजकी कान्तिसे जाज्वल्यमान आकाश सूर्य, चन्द्रमा, और तारागण रहित, गिरते शुक और सारिकाओंसे युक्त एवं क्षोभित हो प्रलय कालीन आकाशकी तरह देख पड़ता है ॥ ४७ ॥

अथ विष्वक्सेनकृतनारायणास्त्रप्रयोगपूर्वकासुरवधप्रकारः

ततो देवः स भगवान्विष्वक्सेनः प्रतापवान् ॥ दृष्ट्वा विस्मयमापन्नो दैतेयांस्तानलोकयत् ॥ ४८ ॥ साधु साध्विति चाऽऽभाष्य जहर्ष च ननाद च ॥ स्वकं धनुर्महद्दिव्यं तप्तजाम्बूनदप्रभम् ॥४९॥ विस्फार्य स महातेजाः शार्ङ्गं चापमिवापरम् ॥ नारायणीयं सहसा सन्दधेऽस्त्रं शरासने ॥ ५० ॥

इसके बाद प्रतापवान् भगवान् विष्वक्सेनजी उन दैत्योंको देख विस्मित हो " साधु साधु " ऐसा कह कर हर्ष गर्जना करने लगे और महातेजस्वी उन्होंने दूसरे शार्ङ्गके समान, तपे हुए सोनेकी कान्तिवाले, अपने दिव्य महान् धनुषका टङ्कार करके उस पर एकाएक बहुत जल्दीसे नारायणास्त्रको चढ़ाया ॥ ५० ॥

तदस्त्रं मृत्युसङ्काशमनिवार्यं सुरासुरैः ॥ कालाग्निरिव जज्वाल कल्पान्ते सर्वनाशनः ॥ ५१ ॥ ततः संक्षोभमायातं जगदेतच्चराचरम् ॥ चुक्षुभुः सागराः सर्वे पर्वताश्च चकम्पिरे ॥ ५२ ॥ तदस्त्रं तेन निर्मुक्तं ज्वालामालि महात्मना ॥ समीक्ष्य सर्वभूतानि राजन्नेदुः सुदारुणम् ॥ ५३ ॥ आगतास्तेऽपि ये तत्र युद्धदर्शनलालसाः ॥ ते सर्वे गगनं त्यक्त्वा दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ ५४ ॥

मृत्युके समान, देवता और असुर किसीके द्वारा न रुक सकनेवाला वह अस्त्र, कल्पके अन्तमें सबके नाश करनेवाले कालाग्निकी तरह दीप्त हुआ। उससे सब चराचर जगत एवं सब समुद्र क्षोभित हो गये और पर्वत कांपने लगे । महात्मा विष्वक्सेनके द्वारा छोड़े हुए उन प्रदीप्त अस्त्रोंको देख कर हे राजन्! सब प्राणी हाहाकार मचाने लगे। केवल दर्शनकी अभिलाषासे जो जो वहां आये थे, वे सब भी आकाशको छोड़ कर चारों ओर भाग गये ॥ ५४ ॥

देवाश्चापि तदा सर्वे मुनयश्च तपोधनाः ॥ दृष्ट्वा तदस्त्रमत्युग्रं प्रोचुरेवं परस्परम् ॥ ५५ ॥ संहारसमयः प्राप्तो विस्मयः क्रियतेऽत्र किम् ॥ नारायणेन भूतानामादिभूतेन शार्ङ्गिणा ॥ ५६ ॥ संहारः क्रियते नूनं लोकानामद्य विष्णुना ॥ विष्वक्सेनेन सर्वात्मा जगत्संहारमीश्वरः ॥५७॥ करोति नूनं भगवान् संहारकुतुकी हरिः ॥ किमयं क्रियते तेन व्यापारः परमेष्ठिना ॥५८॥ अकाले जातमस्माकं निष्फलं दर्शनं विभोः ॥ एवंविधा-

न्यनेकानि वाक्यानि त्रिदशालयाः ॥ ५९॥ वदन्तो भृशमुद्विग्ना जग्मुस्ते सर्वतो दिशम् ॥

उस समय सब देवता और तपोधन महर्षि उन प्रचण्ड अस्त्रोंको देख कर परस्पर इस तरह बातें कहने लगे कि क्या संहारका समय उपस्थित हो गया है? इसमें आश्चर्य करनेकी बात ही क्या है? सब प्राणियोंके आदिकर्त्ता शार्ङ्गधर भगवान् विष्णु निश्चय आज लोकोंका संहार कर रहे हैं! सर्वात्मा, संहार कौतुकी भगवान् हरि ठीक विष्वक्सेनके द्वारा संहार कर रहे हैं। उन परमेष्ठीके द्वारा यह क्या व्यापार हो रहा है। असमयमें हमें विभुके दर्शन निष्फल हुए, इस तरह अनेक प्रकारके वचन कहते हुए देवतालोग उद्विग्न हो कर सब दिशाओंमें चले गये ॥ ६० ॥

अथ देवः स भगवान्विष्वक्सेनस्तदा नृप ॥६०॥ नारायणीयमस्त्रं तन्मुमोचादित्यसन्निभम् ॥ मुक्तं तदस्त्रमत्युग्रं सर्वसंहारकारणम् ॥६१॥ अदहद्वाहिनीं तां तु दैत्येन्द्राणां दुरात्मनाम् ॥ देवजित्प्रमुखैः सार्धं वृत्रकल्पैर्महाबलैः ॥ ६२ ॥ सा तु सेना प्रजज्वाल दह्यमानाऽस्त्रपावकैः ॥ शम्भुना दह्यमानानि त्रिपुराणि यथा पुरा ॥ ६३ ॥

इसके बाद उन देव भगवान् विष्वक्सेनने आदित्यके समान उन नारायणास्त्रको छोड़ा। सबका संहार करनेवाले, छूटे हुए उन अति उग्र अस्त्रने उन दुरात्मा दैत्योंकी सारी सेनाको वृत्रासुरके समान महाबली देवजित प्रमुख दैत्योंके साथ जला डाला। दैत्योंकी वह सब सेना अस्त्राग्निसे जलती हुई ऐसी शोभित हुई, मानों महादेव द्वारा जलते हुए त्रिपुर ही है ॥६३॥

अस्त्राग्निदग्धदेहास्ते साश्वाः सरथकुञ्जराः ॥ देवजित्प्रमुखाः सर्वे सानुगाः सहबान्धवाः ॥ निपेतुर्धरणीपृष्ठे दग्धपक्षा इव द्विजाः ॥ ६४ ॥ गतासवस्ते न्यपतन् सहस्रशो नरेन्द्र भूमौ दितिजेश्वरात्मजाः ॥ प्रच्छादयन्तः सकलां महीमिमां प्रदग्धकेशाम्बरभूषणोत्तमाः ॥ ६५ ॥ सा चोग्रवेगा दितिजेश्वराणां सेनाऽतिभीमा समरेष्वजेया ॥ अस्त्राग्निदग्धा न च भूतसङ्घैरदृश्यताकाशगतैर्न देवैः ॥ ६६ ॥

तब रथों, कुञ्जरों, अनुचरों और सब बान्धवों सहित देवजितप्रभृति सब लोग अस्त्राग्निसे दग्ध होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, जैसे पक्ष जल जानेसे पक्षी गिर पड़ते हैं। हे राजन्! प्रदग्ध केश, वस्त्र एवं भूषणोंवाले वे दैत्यप्रवर मर कर पृथ्वीको आच्छादित करते हुए गिर पड़े। युद्धमें अजेय, अति भयङ्कर, प्रबल वेगवाली राक्षसोंकी

यह सेना भल्लोंकी अग्निसे दग्ध हो गई, जिससे न तो उसको प्राणिसमूहने देखा और न आकाशगत देवताओंहीने देखा ॥ ६६ ॥

अथ देवादिकृतविजयोपचारस्तुत्यादिः

ततस्तु देवाश्च निशाचराश्च गन्धर्वयक्षोरगपन्नगाश्च ॥ महर्षय श्चाप्रतिमप्रभावा निपातितांस्तानवलोक्य दैत्यान् ॥६७॥ अपूजयंस्ते समुपेत्य सर्वे देवं महावीर्यमुपस्थितं तम् ॥ प्रणम्य देवाधिपतेरमात्यं शिरोभिरुत्फुल्लविलोललोचनैः ॥ ६८ ॥ तमूचुरेनं वचनैर्नरेन्द्र सर्वे सुराद्याः परमं प्रहृष्टाः ॥ समन्ततस्तं परिवार्य देवं गृहीतचापं निहतेन्द्रशत्रुम् ॥ ६९ ॥

इसके अनन्तर देवता, निशाचर, गन्धर्व यक्ष, उरग, पन्नग और अतुल प्रभावशाली महर्षियोंने पृथ्वीमें गिराये हुए उन दैत्योंको देख वहां उपस्थित महाबली देवाधिदेव विष्वक्सेनकी पूजा की और हे नरेन्द्र! उन भगवान् नारायणके अमात्यको उत्फुल्लनेत्रवाले मस्तकोंसे प्रणाम कर, प्रसन्न हो इन्द्रप्रमुख देवगण शत्रुओंका नाश करनेवाले, एवं हाथमें धनुष लिये हुए देवाधिदेवको चारों तरफसे घेर कर इन वचनोंसे उनकी स्तुति करने लगे ॥ ६९ ॥

इन्द्रादय ऊचुः—

कृतं त्वयैतद्भगवन् सुराणां सुदुष्करं कर्म तवानुरूपम् ॥ अन्येन नैते समरे निहन्तुं शक्या विना त्वां समुदग्रवीर्यम् ॥ ७० ॥ तैरेवमुक्तः सहसा महात्मा सम्पूजितस्तान्प्रतिपूज्य सर्वान्॥ अन्तर्दधे सानुचरः सवाहनस्तत्रैव तेषामथ पश्यतां तथा ॥ ७१

इन्द्रादिदेव बोले– हे भगवन्! आपने यह देवताओंका बड़ा ही अशक्य कार्य किया है। यह आपके ही अनुरूप है। अति बलशाली आपके बिना दूसरा कोई इनको मारनेमें समर्थ नहीं है। इस तरह देवादिकोंके कहने पर उनसे पूजित महात्मा विष्वक्सेन उन सबका सत्कार करके अपने अनुचर और वाहन सहित उन सबके देखते देखते अन्तर्धान हो गये ॥ ७१ ॥

मया नृपेन्द्राखिलमेतदुक्तं तवाद्भुतं देवजिदादिनाशनम् ॥ एवंविधं नैव पुरा प्रवृत्तमृते दशग्रीववधात्सुघोरात् ॥ ७२ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये विष्वक्सेनकृतदेवजिदादिवधवर्णनं नामैकचत्वारिंशोऽध्यायोऽत्र द्वाविंशः ॥ २२ ॥

हे नृपेन्द्र ! मैंने आपको अद्भुत देवजित् आदिकोंका वध सुना दिया है। इस प्रकारका भयङ्कर युद्ध घोर रावण वधको छोड़ कर पहले नहीं हुआ था॥ ७२ ॥

॥ इति द्वाविंशोऽध्यायः ॥



अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

श्रीवेङ्कट भगवानका, भावी दिव्य विमान ।
तेइसवें अध्यायमें, वर्णित शोभन यान ॥१॥

अथ भविष्यच्छ्रीभगवद्दिव्यविमानवर्णनम्

वामदेव उवाच—

एवं दैत्यवधं देवो विष्वक्सेनस्तु वीर्यवान् ॥ चक्रे पुरा महीपाल देवदेवाज्ञया बली ॥ १ ॥ एतन्मया समाख्यातं पुरावृत्तमनुत्तमम् ॥ इतिहासं महापुण्यं सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥ वेङ्कटाख्ये गिरौ तस्मिन्नर्थं तेन धीमता ॥ अगस्त्येन मुनीन्द्राणां भविष्यत्कथितं नृप ॥ ३ ॥ आगामिनि युगे चापि सम्प्राप्ते तु कलौ युगे ॥ अदृश्यत्वाद्विमानस्य नित्यस्यामिततेजसः ॥४॥ तस्या एव शुभे तीरे पुष्करिण्या महाद्भुतम् ॥ अतुलं कारितं भक्तैर्विमानं सूर्यसन्निभम् ॥ ५ ॥ भविष्यतीति तस्यापि माहात्म्यं कथये तव ॥

वामदेवने कहा—हे राजन् ! महाबली श्रीविष्वक्सेनजीने इस प्रकार देवाधिदेव श्रीवेङ्कटेशजीकी आज्ञासे दैत्योंका वध किया। हे नरेन्द्र ! यह पुरातन, उत्तम, महापुण्यप्रद, सर्व लोकोंमें प्रसिद्ध इतिहास मैंने आपको

सुनाया है, जिस भावीको वेङ्कटाचल पर्वतपर बुद्धिमान् अगस्त्यजीने मुनियोंको वर्णन किया था। आनेवाले कलियुगमें भी इस नित्य और अपार तेजस्वी विमानका दर्शन न हो सकेगा, क्योंकि वह अदृश्य है। इसलिये उसी स्वामिपुष्करिणीके किनारे सूर्यके समान प्रकाशमान, भगवद्भक्तोंके द्वारा बनाया हुआ जो महा अद्भुत विमान होगा उसका भी माहात्म्य मैं आपको सुनाता हूँ ॥ ६ ॥

तथापि महदाश्चर्यविमानं सुरपूजितम् ॥ ६ ॥ शोभितं देवदेवेन भविष्यति न संशयः ॥ बहुवर्षशतै राजन्न च शक्यं सुरैरपि ॥७॥ वक्तुं तस्य विमानस्य माहात्म्यं विस्तरेण तु ॥ यत्र देवाधिदेवोऽसौ सान्निध्यं कुरुते हरिः ॥८॥ स्वभक्तानां हितार्थाय त्रैलोक्यानुग्रहाय च ॥ शोभितं देवदेवेन श्रीभूमिसहितेन तत् ॥ ९ ॥ विमानं मनुजै राजन् यैर्दृष्टं पापनाशनम् ॥ विष्णोस्तस्य प्रसादेन ते नरा ध्वस्तबन्धनाः ॥ १० ॥ प्राप्नुवन्ति परं धाम ब्रह्म यत्तत्सनातनम् ॥

यह विमान भी महान्, आश्चर्यजनक, सुरपूजित एवं देवाधिदेवसे शोभित होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे राजन्! बहुत वर्ष पर्यन्त देवता भी उस विमानकी महिमाको विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर सकते ? जिसमें देवाधिदेव भगवान् हरि अपने भक्तोंके कल्याण और त्रिलोकीके अनुग्रहके लिये निवास करते हैं। हे राजन्! जो मनुष्य उस, श्री और भूमि सहित देवाधिदेव हरिसे शोभित तथा पापापहारी विमानका दर्शन करेंगे, वे विष्णुके प्रसादसे सब बन्धनोंसे छूट जायँगे और सनातन धामको प्राप्त करेंगे ॥ ११ ॥

तत्रापि तु युगे राजंस्तद्विमानं दिदृक्षवः ॥११॥ देवाः सर्वेऽपि गच्छन्ति सिद्धाश्च सहचारणैः ॥ ऋषयश्च सगन्धर्वा यक्षाश्च सह पन्नगैः॥१२॥ आदित्या वसवो रुद्रा दिक्पाला मरुतस्तथा ॥ ब्रह्मा चतुर्मुखो देवो भगवाञ्छम्भुरेव च ॥ १३ ॥ एवमाद्यास्तथान्ये च भक्त्या परमया युताः ॥ उपतिष्ठन्ति तं देवं देवदेवेशमीश्वरम् ॥ १४ ॥

हे राजन्! उस युगमें भी उस विमानको देखनेके लिये सिद्ध और चारणोंके सहित देवता, गन्धर्वों सहित महर्षि और पन्नगोंके साथ यक्ष, आदित्य, वसु, रुद्र, दिक्पाल, मरुत, चतुर्मुख ब्रह्मा, तथा भगवान् शङ्कर और अन्य जन आते हैं और उन देवाधिदेव ईश्वरकी स्तुति करते हैं ॥१४॥

स्नात्वा च मनुजास्तस्मिन् स्वामिपुष्करिणीजले ॥ प्रणम्य देवदेवेशं नारायणमनामयम् ॥१५॥ तस्मिन्विमाने गोविन्दं वसन्तं पुरुषोत्तमम् ॥

स्तुवन्ति दिव्यैः स्तोत्रैश्च नमन्तश्चाप्यहर्निशम् ॥ १६ ॥ सर्वे पातकिन-
श्चापि तं दृष्ट्वा पुण्यमुत्तमम् ॥ विमानं सर्वशोकघ्नं सर्वरोगप्रणाशनम्
॥१७॥ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यो भविष्यन्ति न संशयः ॥ यत्र क्वापि वसन्
देशे विमानाभिमुखं नरः॥१८॥ वेङ्कटाद्रिं नमस्कृत्य सद्यः पापैर्विमुच्यते ॥
संक्षेपेण मयाप्येतन्माहात्म्यं कथितं तव ॥ १९ ॥ तस्य पुण्यस्य भूपाल
विमानस्य महीयसः ॥

मनुष्य उस स्वामिपुष्करिणीके जलमे स्नान और देवाधिदेव अनामय नारायणको प्रणाम करके दिव्य स्तोत्रों-से उस विमानमे बसते हुए पुरुषोत्तम गोविन्दकी अहर्निश स्तुति करते हैं। सब पातकीगण भी, सब रोगोंको नाश करनेवाले उस उत्तम पुण्यप्रद विमानको देख कर निःसन्देह सब पापोंसे छुट जायेंगे। किसी भी देशमे बसता हुआ मनुष्य विमानके सन्मुख वेङ्कटाचलको प्रणाम करके तुरन्त सब बन्धनोंसे छूट जायगा। हे महीप! संक्षेपसे मैंने आपको उस विमानका माहात्म्य कह दिया है ॥ १९ ॥

अतः परन्तु स्नेहेन स्वयमेव वदाम्यहम् ॥ २० ॥ त्वया न पृष्टं
राजेन्द्र गुह्याद् गुह्यतरं महत् ॥ अत्यद्भुतमिदं भूप शृणुष्व गदतो
मम ॥ २१ ॥

हे भूपाल! इसके बाद मैं स्वयं ही महान् पुण्यमय माहात्म्य प्रेमसे कहता हूं। हे राजन्! आपने नहीं पूछा है तो भी, मैं गुप्तसे भी गुप्त अति अद्भुत माहात्म्यको कहता हूं, आप श्रवण करें ॥ २१ ॥

नारायणगिरौ तस्मिन्नास्ते नारायणः स्वयम् ॥ गुहासु चापि सर्वासु
सर्वेषु शिखरेषु च ॥ २२ ॥ कन्दरेषु च सर्वेषु निर्झरेषु शुभेषु च ॥ भग-
वान्देवदेवेशः सर्वस्मिन्गिरिमूर्धनि ॥ २३ ॥ नानाविधानि रूपाणि बिभ्रद्वि-
हरति स्वयम् ॥ क्वचिच्च देवरूपेण क्वचिन्मानुषरूपतः ॥ २४ ॥ क्वचिच्च
मृगरूपेण क्वचिद् वृक्षादिरूपतः ॥

उस नारायण पर्वतपर स्वयं भगवान् रहते हैं। सब गुफाओंमे, सब शिखरोंपर, कन्दराओंमे, सर्व शुभ झरनोंमे, एवं पर्वतकी सब चोटीपर भगवान् नारायण नानाप्रकारके रूप धारण करके स्वयं विहार करते हैं। कहीं देवरूपसे, कहीं मनुष्यरूपसे, कहीं मृगरूप और कहीं वृक्षादिरूपसे रहते हैं ॥ २५ ॥

यत्र कुत्रचिदासीनस्तस्मिन्दिव्ये महागिरौ ॥२५ ॥ देवदेवं समा-

राध्य य उपास्ते जनार्दनम् ॥ करोति तस्य सान्निध्यं भगवानादिकृ-द्धरिः ॥ २६ ॥ वृषभाचलभूभागे घटिकामपि यो वसेत् ॥ सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥२७॥ ये तत्र कुर्वते पापमज्ञानाद्वेङ्कटाचले ॥ हन्युस्तान् सर्व एवैते गन्धर्वाः शस्त्रपाणयः ॥ २८ ॥ आज्ञया तस्य देवस्य विष्वक्सेनस्य धीमतः ॥ तस्मान्न कुर्यात्पापं तु नरस्तस्मिन्मही-धरे ॥ २९ ॥

जहां कहीं भी उस दिव्य महान् पर्वतमें बैठ कर जो मनुष्य देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी या उनकी उपासना करेगा, भगवान् हरि सदा उनके समीप रहेंगे। वृषभाचलके भूभागपर जो घड़ी भर भी निवास करेगा, उसी समय उसके सात जन्मके किये हुए पाप नष्ट हो जायंगे। जो मनुष्य अज्ञानसे भी उस वेङ्कटाचलपर पाप करते हैं, श्रीमान् देव विष्वक्सेनकी आज्ञासे सब गन्धर्व हाथोंमें शस्त्र ले कर उन सबका नाशकर देते हैं। इस कारण उस पर्वतपर मनुष्यको पाप नहीं करना चाहिये ॥२९॥

नहि तत्र गिरौ कश्चिद्वृक्षः पक्षी मृगोऽथ वा ॥ प्राकृतो जायते देवाः सर्वे तद्रूपिणस्तथा ॥ ३० ॥ तस्य देवस्य सेवार्थं सान्निध्यं कुर्वते सदा ॥ एवं प्राह पुराऽगस्त्यो भगवान्मुनिसत्तमः ॥ ३१ ॥ मया पृष्टः समाचख्यौ गन्धमादनपर्वते ॥ नारायणगिरेस्तस्य माहात्म्यं परमाद्भुतम् ॥ ३२ ॥ विस्तरेण समाख्यातं मयापि तव भूपते ॥

उस पर्वतपर वृक्ष, पक्षी अथवा मृग कोई भी प्राकृत जीव नहीं है। सभी देव उन उनरूपमें भगवान्‌की सेवा करनेके लिये वहां प्रकट रहते हैं। इसी तरह मुनिश्रेष्ठ भगवान् अगस्त्यने पहिले गन्धमादन पर्वतपर मेरे पूछनेपर उस नारायणगिरिका परम अद्भुत माहात्म्य मुझसे कहा था, हे भूपते! मैंने भी आपको विस्तार से वह माहात्म्य सुना दिया है।

अन्यच्चापि समाख्यास्ये त्वयाऽपृष्टं नराधिप ॥ ३३ ॥ तस्मिन्नद्रौ तु यत्पुण्यं दानानि ददतां नृप ॥ इत्युक्तो जनकस्तेन पप्रच्छाऽथ मुनिं पुनः ॥ ३४ ॥ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये भविष्यद्विमानवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायोऽत्र त्रयोविंशः ॥ २३ ॥

हे राजन् ! अब मैं आपको नहीं पूछनेपर भी [redacted] प्रसंग सुनाऊंगा, जो वहांपर दान देनेवालोंको श्रेय प्राप्त होता है। वामदेव मुनिके ऐसा कहने पर राजा जनकने फिर उनसे पूछा ॥ ३४ ॥

॥ इति त्रयोविंशोऽध्यायः ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

स्वामीसरके तीरपर, अन्नदान माहात्म्य।
ब्रह्मकथित महिमा सरसि, नाशक सब दौरात्म्य ॥१॥
ब्रह्मा कल्पित यज्ञ की, लिखी बड़ाई पूर।
उत्सवमें सम्मिलन फल, पुण्य पुञ्ज अघ दूर ॥२॥

अथ स्वामिपुष्करिणीतीरकृतान्नदानादिप्रशंसा

जनक उवाच—

श्रुतमेतन्मयाऽऽख्यानं वामदेव त्वयोदितम् ॥ सर्वज्ञं परमं ब्रह्म जानीमो मुनिसत्तम ॥ १ ॥ क्षेत्रकाण्डे त्वया सर्वाण्युक्तानि तपतां वर ॥ क्षेत्राणि यानि पुण्यानि तीर्थानि विमलानि च ॥२॥ तेषु तेषु च दानानि प्रशस्तानि त्वया मुने ॥ नारायणगिरावस्मिन् कृत्वा दानमनुत्तमम् ॥ ३ ॥ यत्फलं प्राप्नुयाद्देही पापराशिं विधूय वै ॥ तद्वदस्व मुनिश्रेष्ठ श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ ४ ॥

राजा जनकने कहा—हे वामदेव ! सुनो, आपके कहे हुए आख्यानको मैंने सुना और सर्वज्ञ परब्रह्मको भी जाना। हे तपस्वियोंमें श्रेष्ठ ! मुने ! आपने क्षेत्रकाण्डमें जो जो विमल पुण्यमय तीर्थ एवं उन सबमें जो जो

प्रशस्त दान कहे हैं उन सबको भी मैंने जाना। अब हे मुनिश्रेष्ठ! इस नारायण पर्वत पर उत्तम दान करके मनुष्य पाप राशिको भस्म भूत कर जो फल पाता है आप उस को कहिये। मुझे सुननेका बड़ा कौतूहल है॥ ४॥

शतानन्द उवाच—

इति पृष्टस्तदा तेन जनकेन महात्मना॥ यत्पुण्यं ददतां तत्र दाना-
नां च यथा फलम्॥ ५॥ तत्सर्वं मुनिशार्दूलो वक्तुं समुपचक्रमे॥

शतानन्द बोले—हे राजन्! उन महात्मा जनकके इस तरह पूछने पर मुनिशार्दूल वामदेवने यहांपर दान देनेका जो फल होता है वह सब सुनाना आरम्भ किया॥ ६॥

वामदेव उवाच—

शृणुष्वावहितो राजन्यत्पृष्टोऽहमिह त्वया॥ ६॥ नारायणगिरा-
वस्मिन् स्वामिपुष्करिणीतटे॥ अन्नदानं प्रशस्तं हि दानानां दानमुत्तम-
म्॥७॥ नित्यमस्मिन्निवसतामन्नपानादिकं तु यः॥ प्रयच्छेत्स इहैवाशु
सर्वरोगैर्विमुच्यते॥८॥ भूमेर्गोश्च हिरण्यस्य वस्त्रगन्धादिकस्य च॥ कन्या-
याश्च चरेद्दानं तिलानामपि यो नरः॥९॥ प्रेत्य सोऽनुत्तमांल्लोकान् प्राप्नु-
यात्पुण्यकर्मणाम्॥ तेषां वसति लोकेषु यावत्कल्पमरिन्दम॥ १०॥ ततो
भक्तिं परां प्राप्य विष्णुलोके महीयते॥

वामदेव बोले—हे राजन्! आप सावधान हो कर श्रवण करें। आपने जो पूछा है, मैं उसको कहता हूं। इस नारायण पर्वतपर स्वामिपुष्करिणीके किनारे अन्नका दान करना सब दानोंमें उत्तम और प्रशस्त है। यहां पर नित्य ही निवास करनेवालोंको जो अन्न पानादि देता है वह तत्काल यहींपर सब रोगोंसे छूट जाता है। हे अरिन्दम! जो मनुष्य स्वामिपुष्करिणीके तटपर भूमि, गो, सुवर्ण, वस्त्र, गन्ध, कन्या, और तिलोंका दान करता है, वह उन पुण्यकर्मोंके प्रभावसे कल्प पर्यन्त उत्तम लोकोंमें निवास करता है और उससे परम भक्त हो कर वैकुण्ठमें पूजित होता है॥ ११॥

निष्कामो यो ददात्यन्नं स्वामिपुष्करिणीतटे॥ ११॥ स पुष्कलां
प्रशस्तात्मा विष्णुभक्तिं प्रयास्यति॥ तद्भक्तभावमापन्नः कालेनाल्पेन भू-
पते॥ १२॥ प्राप्य योगं मुनिप्रोक्तं परमां गतिमाप्नुयात्॥ स्वामिपुष्करि-
णीं प्राप्य स्नात्वा पीत्वा च तज्जलम्॥ १३॥ विधूय सर्वपापेभ्यो विष्णु-
लोके महीयते॥ यावच्छक्त्यनुसारं वै सुवर्णं गामथापि वा॥१४॥ वस्त्रा-

णि वसुधां चापि तिलान् गन्धाननुत्तमान् ॥ यो ददाति स दीर्घायुरारोग्यं चापि विन्दति ॥ १५ ॥ प्राप्नुयात्सर्वकामांश्च भोगान्भुङ्क्ते च पुष्कलान् ॥ मुक्तश्च सर्वपापेभ्यः प्राप्नुयात्परमां गतिम् ॥ १६ ॥

जो मनुष्य स्वामिपुष्करिणीके तटपर निष्काम हो कर अन्नदान करता है वह पुष्कल विष्णुभक्तिको पाता है और हे भूपते ! वह भक्त भावको प्राप्त हो कर थोड़े ही समयमें योगको प्राप्त कर मुनिश्रेष्ठसे कही गई परम गतिको पा जाता है। स्वामिपुष्करिणीपर जा कर उसमें स्नान करके और इसके जलको पी कर मनुष्य सर्व पापोंसे रहित हो विष्णु लोकमें चला जाता है। जो अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्ण अथवा गौ, वस्त्र, भूमि, तिल या उत्तम सुगन्ध वस्तुका दान करता है वह दीर्घायु और आरोग्यका लाभ करता और सब कामोंको भोगता है एवं सब पापोंसे मुक्त हो कर उत्तम गतिको भी पाता है ॥ १६ ॥

अथ वामदेवं प्रति ब्रह्मोपदिष्टस्वामिपुष्करिणीमाहात्म्यम्

शृणु चास्मिन्पुरावृत्तमाख्यानं पर्वतोत्तमे ॥ यथा मे कथितं पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ पूर्वं भूमिधरेन्द्रेऽस्मिन्ब्रह्माणं कमलासनम् ॥ उपासीनः समासीनो वर्षाणामधिकं शतम् ॥१८॥ अहं तीव्रं तपोऽकार्षं ब्रह्माणं प्रति भूमिप ॥ कालेन महता तात भगवान्कमलासनः ॥ १९ ॥ आविर्बभूव पुरतस्तपसा तोषितो मया॥ स्वयमेव चतुर्वक्त्रो मां प्रबोध्य जनाधिप॥२०॥ मेघगम्भीरया वाचा प्रसन्नो वाक्यमब्रवीत् ॥

हे राजन् ! इस पर्वतपर जो पहिले आख्यान हुआ था वह मैं आपको सुनाता हूं, आप श्रवण करें। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने मुझसे जो कहा था वही मैं आपको सुनाता हूं। हे राजन् ! एक समय उन कमलासन ब्रह्माजीको प्रसन्न करनेके लिये इस पर्वतपर बैठ कर उपासना करते हुए मैंने सौ वर्षसे अधिक तीव्र तप किया था। हे भूमिप ! बहुत कालके बाद मेरे तपसे प्रसन्न हो कर ब्रह्माजी मेरे सामने प्रगट हुए और हे जनाधिप ! वे स्वयं मुझको उठा कर मेघके समान गम्भीर वाणीसे यह वचन कहने लगे ॥२१॥

परितुष्टोऽस्मि ते ब्रह्मन्वामदेव द्विजोत्तम ॥ २१ ॥ यदिच्छसीह तद्दातुं वरदोऽहमिहागतः ॥ वरं वरय भद्रं ते यदिच्छसि महामुने ॥२२॥ इत्युक्तो ब्रह्मणा तेन प्रसन्नेन महात्मना ॥ अहमेवं नृपश्रेष्ठ वृणे वरमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ स्वामिपुष्करिणी येयमत्रास्ते पर्वतोत्तमे ॥ तस्या एव तु माहात्म्यं ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ २४ ॥ माहात्म्यं च फलं चापि दर्शने

स्नानपानयोः ॥ अस्यास्तीरे च दानानां यत्फलं तद्वदस्व मे ॥ २५ ॥

हे द्विजोत्तम वामदेव ! ब्रह्मन् ! मैं आपपर प्रसन्न हूं। आपको मनचाहा वर देनेके लिये मैं यहां आया हूं। इसलिये आप जो चाहें वर मांग लें। हे महीप ! प्रसन्न महात्मा ब्रह्माजीके ऐसा कहने पर मैंने उनसे यह उत्तम वर मांगा कि हे भगवन् ! इस पर्वतोत्तमपर जो स्वामिपुष्करिणी तीर्थ है, मैं उसीके महात्म्यको जाननेकी इच्छा करता हूं। माहात्म्य और दर्शनके फल तथा इसके तटपर दानका जो फल होता है वह आप सब मुझसे कहिये॥२५॥

ब्रह्मोवाच—

अस्यास्तीरे पुरा ब्रह्मंश्चन्द्रः क्षीरोदसम्भवः ॥ सौवर्णं भूषणं दत्त्वा लावण्यं परमं ययौ ॥ २६ ॥ कन्यां दत्त्वा पुरा ब्रह्मन् कामः कामत्वमासवान् ॥ धनदोऽपि धनेशत्वं स्वर्णदानादवासवान् ॥ २७ ॥ इन्द्रः षोडशदानानि स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ कृत्वा बलादीनसुरान् दुर्जयाजयत्पुरा ॥२८॥

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मन् ! क्षीरसमुद्रजात चन्द्रमाने इस स्वामिपुष्करिणीके तटपर सुवर्ण भूषणका दान कर परम सुन्दरताको प्राप्त किया था। काम कन्याका दान देकर कामदेव हो गया और यहांपर सुवर्णका दान करने सेही कुबेर धनाध्यक्ष हो गया और इन्द्रने भी यहां स्वामिपुष्करिणीमें सोलह प्रकारके दान देकर ही अजेय बल आदि दैत्योंपर विजय लाभ किया था॥ २८॥

अस्मिन्गिरौ पुरा कश्चिदागत्य ब्राह्मणोत्तमः ॥ जिज्ञासुः काव्यविन्नाम ब्रह्मज्ञानस्य मानद ॥२९॥ स्वयमाहूय विप्रेन्द्रं ब्रह्मज्ञानमनुत्तमम् ॥ ददत्परमधर्मात्मा वाचस्पतिरभून्मुने ॥ ३० ॥ धरण्यां नित्यसान्निध्यं वेङ्कटाद्रौ विशेषतः ॥ तस्मात्तत्रैव कार्याणि महादानानि पार्थिवैः ॥ ३१ ॥ यत्किञ्चिच्च मुने तस्मिन् स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ दद्यादनुत्तमांल्लोकानाप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ ३२ ॥

एक काव्यविन् नामक ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानकी इच्छावाला हो कर यहां आया था। श्रीवेङ्कटेशजीने स्वयं उसको बुला कर ब्रह्मज्ञान दिया था, जिसके प्रभावसे वह बृहस्पति हो गया। पृथ्वीपर नित्य भगवान् प्रकट रहते हैं, पर वेङ्कटाचलपर विशेष रूपसे रहते हैं। इसलिये राजालोगोंको वहींपर महादान करना चाहिये। हे मुने ! उस स्वामिपुष्करिणीके तटपर मनुष्य जो कुछ देता है उसके पुण्यप्रभावसे वह उत्तम लोकोंको पाता है ॥३२॥

अथ ब्रह्मकारितश्रीवेङ्कटाचलाधीशमहोत्सवप्रशंसा

मासि भाद्रपदे पुण्ये शुक्लपक्षे तु वैत्रभे ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे दे-

वस्य परमात्मनः ॥ ३३ ॥ उत्सवः कारितः पूर्वं मयैव प्रीतये हरेः ॥ तत्र
तत्र युगे चास्य विष्णोः स्वामिसरस्तटे ॥३४॥ उत्सवान्कारयिष्यन्ति नराः
पुण्यकृतोऽमलाः ॥ किञ्चिदाराधनेनैव विष्णुर्भाद्रपदोत्सवे ॥ ३५ ॥ ददाति
सर्वलोकानां वरानत्यन्तदुर्लभान् ॥ उत्सवेषु च देवस्य नारायणगिरिं प्रति ॥
गच्छन्ति ये नराः पुण्यास्तेषामपि फलं शृणु ॥ ३६ ॥

हे मुने ! मैंने ही पहिले पवित्र भाद्रपद मासके शुक्लपक्ष चित्रा नक्षत्रमे हरिको प्रसन्नताके लिये परमात्माका उत्सव कराया था, उसी समयसे ये उत्सव आरम्भ हुए हैं। सब युगोंमें भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये स्वामिपुष्करिणीके तटपर धर्मात्मा मनुष्य उत्सव करावेंगे। भाद्रपदके उत्सवमें थोड़ीसी उपासना करने मात्रसे ही भगवान् विष्णु सब लोकोंको अयन्त दुर्लभ वर प्रदान करते हैं। नारायणाचलपर देवके उत्सवोंके समय जो मनुष्य वहां चले जाते हैं, उनके भी फलको आप श्रवण करें ॥ ३६ ॥

यानि त्वादधते पदानि च मुने नारायणाद्रिं प्रति स्तोकं स्तोकमपि
द्विजा अपि जनास्तेषां फलं यच्छृणु ॥ यावद्वेङ्कटशैलमात्मगृहतस्तावत्पदा-
नां क्रमात्प्रायश्चैव पदे पदे क्रतुफलं भूयाद्भुवि प्राणिनाम् ॥ ३७ ॥

जो कोई श्रीनारायण पर्वतकी यात्राके निमित्तसे धीरे धीरे अपने पाव आगेको बढाते हैं, उनको निज भवनसे श्रीवेङ्कटेशजीके पास पहुंचनेतक प्रति पावमें एक एक यज्ञका फल मिलता है ॥३७॥

अथ महोत्सवसेवार्थमागतजनाराधकपुण्यफलवर्णनम्

ये सेवार्थमुपागतान् वृषगिरौ देवस्य दिव्योत्सवे यावच्छक्त्युपलाल
यन्ति भगवांस्तेषामभीष्टप्रदः ॥ यस्तेषामुपकारमोपदपि वा कुर्यान्न लो-
भादिना तस्याकल्पमवस्थितिः शृणु मुने घोरे महारौरवे ॥ ३८ ॥ यः
स्वामिसरसस्तीरे पुष्पोद्यानानि कारयेत् ॥ नन्दनोपवने तस्य यावत्कल्प-
मवस्थितिः ॥ ३९ ॥ किमनेन बहूक्तेन यः स्वामिसरसस्तटे ॥ यत्किञ्चि-
त्कुरुते पुण्यं तस्यान्तो नैव विद्यते ॥ ४० ॥

जो वृषाचलपर उत्सवमे देवकी सेवाके लिये आये यात्रियोंको सेवा यथा शक्ति करते हैं, उनको मनइच्छित वरदान भगवान् देते हैं और जो मनुष्य लालचमे पड कर उत्सवमे आये हुए यात्रियोंकी थोडी भी सेवा नहीं करता वह कल्पपर्यन्त महाघोर रौरव नरकमें गिरता है। जो मनुष्य स्वामिपुष्करिणीके तटपर बगीचे बनवाता है, वह

कल्पपर्यन्त नन्दन वनमें निवास करता है। बहुत ज्यादा कहनेसे क्या ? स्वामिपुष्करिणीके तटपर जो कुछ भी पुण्य करता है उसका अन्त नहीं है ॥ ४० ॥

वामदेव उवाच—

इत्युक्त्वा भगवान् ब्रह्मा लोककृल्लोकपूजितः ॥ अन्तर्दधे तदा त-
स्माच्छ्रुतमेतन्मया पुरा ॥ ४१ ॥

वामदेव बोले—संसारके रचनेवाले, लोकपूजित ब्रह्माजी इतना कह कर उस समय अन्तर्धान हो गये। यह माहात्म्य पहिले मैंने उन्हींसे सुना था ॥ ४१ ॥

शतानन्द उवाच—

इतीरितं तन्मुनिना समस्तं श्रुत्वा महौजा जनको महात्मा ॥ प्रफु-
ल्लनेत्रः पुलकाङ्कितांगो नारायणाद्रिं प्रययौ प्रहृष्टः ॥ ४२ ॥ समाप्य यज्ञं
जनको महात्मा धुरं धरित्र्याः सचिवे नियोज्य ॥ द्रष्टुं परं ब्रह्म वृषाद्रिमू-
र्ध्नि स्वयं ययौ मैथिलराजराजः ॥४३॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये
श्रीस्वामिपुष्करिणीतीरकन्यादानफलवर्णनं नाम
त्रिचत्वारिंशोऽध्यायोऽत्र चतुर्विंशः ॥२४॥

शतानन्दने कहा—हे प्रजानाथ ! महात्मा महातेजस्वी जनक, मुनि द्वारा कहे हुए समस्त आख्यानको सुन कर प्रफुल्ल नेत्र और प्रसन्नचित्त होकर नारायणचलपर चले गये। महात्मा राजा जनक यज्ञको समाप्त कर और पृथ्वीके भारको मन्त्रियोंको सौंप कर स्वयं वृषाचलके शिखरपर परब्रह्म नारायणको देखनेके लिये चले गये ॥४३॥

॥ इति चतुर्विंशोऽध्यायः ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः



स्वामीसरके तीर्थका, कोटिआध अरु तीन।
मिलन समय निर्णय किया; बहु महिमा प्राचीन ॥१॥
तीरथ यात्री जो किये, ऋषी मारकण्डेय।
इस माहात्म्यका श्रवण फल, वर्णन पुण्य अमेय ॥२॥

अथ स्वामिपुष्करिणीं प्रति सार्द्धत्रिकोटितीर्थागमनकालनिर्णयः

श्रुत्वैतदथ माहात्म्यं स्वामिपुष्करिणीं प्रति ॥ जनकस्तु शतानन्दं पप्रच्छेदं मुदान्वितः ॥ १ ॥

व्यासजी बोले—राजा जनकने स्वमिपुष्करिणीके माहात्यको सुन कर प्रसन्न हो कर फिर शतानन्दजीसे पूछा ॥ १ ॥

जनक उवाच—

लोकेषु सर्वतीर्थानि कथमायान्ति तज्जले ॥ किमर्थं वा तदेतन्मे कथयस्व महामुने ॥ २ ॥

जनक बोले—संसारके सब तीर्थ स्वामिपुष्करिणीके जलमें कैसे आते हैं ? और क्यों आते हैं। हे मुने ! आप यह मुझे कहिये ॥ २ ॥

शतानन्द उवाच—

पुरा भागीरथीतीरे मार्कण्डेयो महामुनिः ॥ तपः परममास्थाय स तेपे परमं तपः ॥ ३ ॥ ध्यायन्विश्वस्य जगतः स्रष्टारं भुवनेश्वरम् ॥ ततः कालेन महता ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४ ॥ सान्निध्यमकरोत्प्रीत्या मार्कण्डे-

यस्य धीमतः ॥ वचनं व्याजहारेदं मार्कण्डेयं पितामहः ॥ ५ ॥ वरं वरय दास्यामि यमिच्छसि महामुने ॥

शतानन्द कहने लगे—प्राचीन समयमें भागिरथीके तट पर महामुनि मार्कण्डेयने संसारको रचनेवाले, भुवनके स्वामी, ब्रह्माजीका ध्यान करते हुए बहुत वर्ष पर्यन्त कठिन तप किया। बहुत काल तक तप करने पर लोकपिता-मह ब्रह्माजी मार्कण्डेय मुनिके सन्मुख प्रीतिसे प्रकट हुए और मुनिसे इस प्रकार कहने लगे हे महामुने! जो चाहे वर मांगो ? आपको मैं वही वर दूंगा ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच—

वरं देहि मम ब्रह्मन् याचे श्रद्धासमन्वितः ॥ ६ ॥ त्रैलोक्ये यानि पुण्यानि सन्ति तीर्थानि वै प्रभो ॥ तेषु सर्वेषु तीर्थेषु यात्रायां शक्तिरस्त्वि-ति ॥ ७ ॥ तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भगवांश्चतुराननः ॥ प्रहसन्व्याजहारेदं मार्कण्डेयं तपस्विनम् ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय बोले—हे ब्रह्मन्! भक्तिपूर्वक मैं आपसे यह वरदान मांगता हूं कि संसारमें जितने पुण्य तीर्थ हैं उन सब तीर्थोंमें यात्रा करनेकी हमारी शक्ति हो जाय। भगवान चतुरानन ब्रह्माजी तपस्वी मार्कण्डेय मुनिका वचन सुन कर हंसते हुए कहने लगे ॥ ८ ॥

ब्रह्मोवाच—

लोके सर्वेषु तीर्थेषु स्नानं वर्षशतैरपि ॥ कर्तुं न शक्यते ब्रह्मन्न मया न च शम्भुना ॥ ९ ॥ अन्यं वक्ष्यामि ते ब्रह्मन्नुपायं मुनिसत्तम ॥ इतो दक्षिणदिग्भागे मुने द्विशतयोजने ॥ १० ॥ अस्ति श्रीवेङ्कटो नाम प्रथितः पर्वतोत्तमः ॥ द्रविडेषु महापुण्यः सेवितस्त्रिदशैर्गिरिः ॥ ११ ॥ तस्य शृङ्गे सुमहति पुण्या पापविनाशिनी ॥ स्वामिपुष्करिणी नाम सरसी सर्वकामदा ॥ १२ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मन्! संसारके समस्त तीर्थोंमें स्नान सौ वर्षमें भी नहीं कर सकते न मैं भी वह कर सकता हू और न शङ्कर ही कर सकते हैं। हे मुने! मैं आपको एक दूसरा ही उपाय बतलाता हूं। हे मुने। यहांसे दक्षिण दिग्भागमें दो सौ योजन पर द्रविड़ देशमें वेङ्कटाचल नामका उत्तम देवताओंसे सेवित महापुण्यप्रद पर्वत है। उसके विशाल शिखर पर सब कामोंको देनेवाली पापनाशनी स्वामिपुष्करिणी नामकी एक तलैया है ॥ १२ ॥

त्रैलोक्यवर्तिनां ब्रह्मंस्तीर्थानां स्वामिनी हि सा ॥ मासे तु मार्ग-

शीर्षाख्ये द्वादश्यां पूर्वपक्षके ॥ १३ ॥ अरुणोदयवेलायां त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां सुमहामते ॥१४॥ सान्निध्यं तत्र कुर्वन्ति स्वामिपुष्करिणीजले ॥ पापं स्वेषु विनिर्मुक्तं लोकैरघसमन्वितैः ॥ १५ ॥ निर्हरन्तीह तीर्थानि तस्यास्तीर्थसमन्वयात् ॥ मार्कण्डेय महाभाग भुवनत्रयवासिनाम् ॥ १६ ॥ तीर्थानां तत्र गत्वा त्वं सेवाफलमवाप्नुहि ॥

हे ब्रह्मन ! वह पुष्करिणी संसारके सब तीर्थोंकी स्वामिनी है। उस तलैयाके जलमें मार्गशीर्षके शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन अरुणोदय कालमें साढ़े तीन करोड़ तीर्थ निवास करते हैं। वे तीर्थ, स्वामिपुष्करिणीमें सम्मिलित होनेके कारण उनमें प्राणियोंके द्वारा छोड़े गये हुए सब पापोंको नष्ट कर लेते हैं। हे मार्कण्डेय मुने ! तुम वहां जा कर तीन लोकनिवासी सब तीर्थोंके फलको पाओ ॥ १७ ॥

स्वामिपुष्करिणीत्येतन्नामधेयं च तत्कृतम् ॥१७॥ मार्कण्डेय समस्तानां तीर्थानां स्वामिनी यतः ॥ अन्यच्च तव वक्ष्यामि रहस्यं धर्मगोचरम् ॥ १८ ॥ यज्ज्ञात्वा मुनिशार्दूल ज्ञातव्यं नावशिष्यते ॥ गङ्गादिपुण्यतीर्थानि यावन्तीह महीतले ॥१९॥ यानि वा मेरुशृङ्गाग्रे कैलासे मन्दरोपरि ॥ पाताले सिन्धुतीरेषु तथा द्वीपान्तरेष्वपि ॥ २० ॥ तेषु तेषु च दानानां व्रतानां जपहोमयोः ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु विविधं श्रूयते फलम् ॥ २१ ॥ तत्सर्वं युगपत्प्राप्तुं य इच्छेन्मुनिसत्तम ॥ स मार्गशीर्षद्वादश्यां शुक्लायां नियतात्मकः ॥ २२ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ कुर्यादेकसमं दानं विप्राय श्रुतशालिने ॥ २३ ॥ विष्णुभक्ताय शान्ताय दरिद्रयानसूयवे ॥ तेन सर्वेषु तीर्थेषु तद्दत्तं नात्र संशयः ॥ २४ ॥

उस तलैयाका नाम स्वामिपुष्करिणी रखा गया है, क्योंकि वह सभी तीर्थोंको स्वामिनी है। हे मुने ! इसके अतिरिक्त मैं आपको और भी धर्मका रहस्य कहूंगा, जिसको जान लेने पर और कुछ जानना शेष नहीं रहता। हे मुने ! इस पृथ्वीपर गङ्गादि जितने तीर्थ हैं, मेरु पर्वतके शिखरपर, कैलास और मन्दराचलपर, पाताल और सिंधुनदके तटों पर तथा अन्यान्य द्वीपान्तरमें जितने तीर्थ हैं उन सबमें दान देने और व्रत, जप होम, करनेके नाना प्रकारके फल वेद, स्मृति और पुराणोंमें कहे जाते हैं। हे मुनिसत्तम ! जो मनुष्य उन सब फलको एक ही बार प्राप्त करनेकी इच्छा करता हो, वह मार्गशीर्ष मासकी शुक्ल द्वादशीके दिन जितेन्द्रिय हो कर महा पुण्यप्रद वेङ्कटाचल पर स्वामि-

पुष्करिणीके किनारे वेदपाठी, विष्णुभक्त, शान्त, दीन, निन्दारहित ब्राह्मणके लिये एक भी दान करे, तो उसने निःसन्देह सब तीर्थोंमें दान दे दिया ॥२४॥

यानि षोडश दानानि महान्त्याहुर्मुनीश्वराः ॥ तेषामेकं तु यः कु-
र्यात्स्वामिपुष्करिणीतटे ॥ २५ ॥ मार्गशीर्षे सिते पक्षे द्वादश्यां विजिते-
न्द्रियः ॥ तेन षोडश दानानि तीर्थेषु सकलेष्वपि ॥२६॥ मार्कण्डेय कृता-
नि स्युर्युगपत्तन्महाद्भुतम् ॥ धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ॥२७॥
आयान्ति सर्वतीर्थानि स्वामिपुष्करिणीजले ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य स्नात-
स्तत्फलमाप्नुयात् ॥२८॥ एतद् गुह्यं पुरा विष्णुः प्रोवाच भगवान्मम ॥

मुनीश्वरोंने जो सोलह महादान कहे हैं, उनमेंसे एक भी दान मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीके दिन स्वामिपुष्करिणीके तट पर जितेन्द्रिय हो कर जो दे देवे तो उसने सभी तीर्थोंमें सब दान दे दिया। हे मुने ! उन सब सोलह दानोंके फल एक साथ ही मिल जाते हैं। यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि मार्गशीर्ष शुक्लपक्षके द्वादशीके दिन अरुणोदयके समय स्वामिपुष्करिणीके जलमें सब तीर्थ आ जाते हैं। उस समय "धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये। आयान्ति सर्वतीर्थानि स्वामिपुष्करिणीजले॥" इस मन्त्रका उच्चारण करके स्वामिपुष्करिणीके जलमें जो मनुष्य स्नान करता है वह सब तीर्थोंके फलको प्राप्त हो जाता है। यह माहात्म्य भगवान् विष्णुने पहले मुझसे कहा ॥ २८ ॥

अगस्त्य उवाच—

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा मार्कण्डेयस्य पश्यतः ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयस्तु
नृपते विस्मयाविष्टमानसः ॥ नारायणगिरिं प्रायात्तथैव प्रीतमानसः ॥३०॥
गत्वा तस्मिन्गिरौ पुण्ये स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ दृष्ट्वा स्नात्वाथ तस्या
वै विपुले विमले जले ॥ ३१ ॥ तस्यास्तीरे महीपाल भगवन्तं जनार्दनम् ॥
समभ्यर्च्य हृषीकेशं प्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ३२ ॥ वत्सराणां त्रयं राजन्नु-
वास स महीधरे ॥ प्रनिवर्षं च तीर्थानामागमं प्रेक्ष्य तत्तिथौ ॥ ३३ ॥ मा-
र्कण्डेयो महीपाल प्रसादाच्छार्ङ्गधन्वनः ॥ अवाप परमानन्दमनन्तं शाश्वतं
मुनिः ॥ ३४ ॥

शतानन्द बोले—इस तरह कह कर मार्कण्डेय मुनिके देखते देखते ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। हे नृपते ! मार्कण्डेय मुनि तो ब्रह्माजीके अन्तर्हित हो जाने पर चकित हो गये और प्रसन्न चित्त हो कर उसी तरह नारायणाचल पर चले गये। वहां जाने पर मुनिने शुभ स्वामिपुष्करिणीको देखा और उसके विपुलविमल जलमें स्नान कर और हे महीपते! उसके तट पर प्रसन्न अन्तःकरणसे भगवान जनार्दन हृषीकेशकी पूजा करके हे

राजन्! तीन वर्ष तक उन्होंने उस पर्वत पर निवास किया। प्रतिवर्ष उस शुभ तीर्थमें तीर्थोंके आगमनको देख कर हे महिपाल! मार्कण्डेय मुनि शार्ङ्गधर भगवानकी कृपासे शाश्वत आनन्दको प्राप्त हुए॥ ३४॥

वामदेव उवाच—

य इदं श्रावयेन्नित्यं स्वामितीर्थस्य वैभवम्॥ शृणोति परया भक्त्या
द्वादश्यां मार्गशीर्षके॥३५॥ तस्य प्रसन्नो भगवान् सर्वमिष्टं प्रयच्छति॥
एकादश्यामुपोष्यास्मिन्पर्वते वेङ्कटाह्वये॥३६॥ द्वादश्यां मार्गशीर्षे तु पूर्व-
पक्षे च ये नराः॥ स्नानं कृत्वा यथान्यायं स्वामितीर्थे समागताः॥ ३७॥
प्रणमन्ति जगन्नाथं तत्तीरतलवासिनम्॥ ते नरास्तत्प्रसादेन पापराशिं
विधूय वै॥ ३८॥ तत्प्रयान्ति परं धाम शाश्वतं ब्रह्मसंज्ञितम्॥

वामदेवने कहा—जो कोई स्वामिपुष्करिणी तीर्थके माहात्म्यको मार्गशीर्षके शुक्लपक्षकी द्वादशीके दिन परम भक्तिसे दूसरोंको सुनावेगा, या सुनेगा उसको भगवान प्रसन्न हो कर सब इष्ट फल देंगे। इस वेङ्कटाचल पर्वत पर एकादशीके दिन उपवास करके मार्गशीर्ष शुक्ल द्वादशीके दिन अरुणोदय कालमें स्वामिपुष्करिणीके तट पर स्नान कर वहां पर निवास करते हुए जगन्नाथको जो मनुष्य प्रणाम करते हैं वे भगवानकी कृपासे पापराशिको नष्ट कर उस परमात्माके सुखस्वरूप परम धामको प्राप्त करते हैं॥

अथ स्वामिपुष्करिणीस्नानार्थं श्रीवेङ्कटाचलं प्रति जनकनृपागमनम्

शास्त्राणां परमो वेदो वेदानां परमो हरिः॥ ३९॥ तीर्थानां परमं
तीर्थं स्वामिपुष्करिणी नृप॥ तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र गत्वा नारायणाचल-
म्॥ ४०॥ स्वामिपुष्करिणीतोये स्नात्वा नियतमानसः॥ तत्तीरवासिनं
देवं शरण्यं सर्वदेहिनाम्॥ ४१॥ नारायणं समाराध्य सर्वान्कामानवा-
प्स्यसि॥

जैसे शास्त्रोंका सार वेद और वेदोंका सार हरि है, वैसेही तीर्थोंमें स्वामिपुष्करिणी उत्तम है। इस कारण हे राजेन्द्र! आप भी नारायणाचलपर जा कर स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान कर जितेन्द्रिय हो कर उसके तीर पर निवास करनेवाले सब प्राणियोंके शरण्य नारायणको आराधना करें, जिससे सब मनोरथोंको पा जायंगे॥

एवं श्रुत्वा तु जनकः शतानन्दोदितं तदा॥४२॥ प्रहर्षमतुलं लब्ध्वा
मन्त्रिभिः सहितो नृपः॥ गत्वा वृषाचलं तीव्रं स्वामिपुष्करिणीजले॥४३॥

स्नात्वा दृष्ट्वाथ देवेशं श्रीभूमिसहितं ततः ॥ तत्र स्थित्वा चिरं कालं स-र्वान्कामानवाप्य च ॥ आगत्य मिथिलां राजा शशास पृथिवीमि-माम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीं प्रति सार्द्धत्रिकोटितीर्थागमनतत्कालकृतदानफलादिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायोऽत्र पञ्चविंशः ॥२५॥

श्री वेदव्यासजी बोले—राजा जनक शतानन्दजीके कहे हुए इन वचनोंको सुन कर अत्यन्त हर्षित हुए। और मन्त्रियों सहित उन्होंने सर्वश्रेष्ठ नारायणाचलपर जा स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान कर श्री और भूमि सहित भगवानको देखा। वहां पर चिरकाल तक रह कर राजाने और सब कामोंको प्राप्त किया और फिर मिथिलामें आ कर इस पृथ्वीका शासन किया॥ ४४ ॥

इति श्रीवामनपुराणे क्षेत्रकाण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीं प्रति सार्ध-त्रिकोटितीर्थागमनतत्कालकृतस्नानफलादिवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायोऽत्र पञ्चविंशः ॥२५॥

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥
यच्छरीरं त्रयो देवा यच्चेष्टाऽथर्वणः स्मृता ॥
यदङ्गानि षडङ्गानि तस्मै वागात्मने नमः ॥ २ ॥

॥ श्री श्रीनिवासपरब्रह्मणे नमः ॥

श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गत-

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥
यच्छरीरं त्रयो वेदा यच्चेष्टाऽथर्वणः स्मृता ।
षडङ्गानि षडङ्गानि तस्मै वागात्मने नमः ॥ २ ॥

प्रथमोऽध्यायः

तीर्थ गमन अभिलाषसे, विनती पिता समीप ।
पितु-आज्ञा तीरथ-गमन, मार्कण्डेय मुनीप ॥ १ ॥
गरुड़-मिलन महिमा-कथन, वेङ्कटाद्रि सुख-साज ।
इस पहले अध्यायमें, लिखा सूत महराज ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः—

ॐ सूत सर्वार्थतत्त्वज्ञ वेदवेदान्तपारग ॥ वेङ्कटाचलमाहात्म्यं वदस्व मुनिपुङ्गव ॥ १ ॥

ऋषिगण बोले—सब तत्त्वोंके ज्ञाता, वेद वेदान्तके पारंगत हे मुनिपुङ्गव सूतजी ! श्रीवेङ्कटाचलके माहात्म्यको कहिये ॥ १ ॥

श्रीसूत उवाच—

पुरा मृकण्डुतनयः पुरुषोत्तमसेवया ॥ दीर्घमायुरवाप्याथ मुदा परमया मुनिः ॥ २ ॥ स्वमाश्रमपदं गत्वा तपस्विजनसन्निधौ ॥ मातुः पितुः स मतिमान्प्रणाममकरोद्भुवि ॥ ३ ॥ अतस्ताभ्यां यथावृत्तमाख्याय मुनिपुङ्गवः ॥ श्रेयस्करं किंचिदिच्छन्कर्तुं वै वाक्यमब्रवीत् ॥४॥ मातः पितर्ममेष्टं यच्छृणुतं ब्रुवतो मम ॥ दैवतानुग्रहादायुः परिपूर्णमभूत्किल ॥ ५ ॥

श्रीसूतजी बोले—प्राचीनकालमें परम प्रसन्न श्रीपुरुषोत्तम भगवान्की सेवासे मार्कण्डेय मुनिने अत्यन्त दीर्घायुको लाभ किया और अपने आश्रममें जा कर तपस्वीजनोंके सामने उस बुद्धिमानने पृथ्वीको छू कर अपने माता पिताको प्रणाम किया। इसके बाद उन दोनोंसे वे मुनिपुङ्गव अपने यथार्थ तथ्य वृत्तान्तको कह कर कुछ परम श्रेयस्कर कार्य करनेकी इच्छासे वचन बोले। हे माता ! हे पिता !! मेरी इच्छा सुनिये, देवताके अनुग्रहसे मेरी आयु तो पूरी बढ़ गयी है ॥ ५ ॥

पुण्यस्थलेषु तीर्थेषु चरितुं विद्यते मतिः ॥ सुखं गच्छेति कृपया मां प्रस्थापयतं युवाम् ॥ ६ ॥ लौकिके वैदिके कार्ये पित्रनुज्ञा विशिष्यते ॥

अब तीर्थोंके पुण्यस्थानोंमें विचरण करनेकी मेरी इच्छा होती है। कृपा कर आप दोनों "सुखसे जाओ" ऐसी आज्ञा मुझको दे कर प्रस्थान करवा देवें। लौकिक तथा वैदिक दोनों कामोंमें पिताकी आज्ञा ही प्रधान होती है ॥ ७ ॥

अथाब्रवीन्मृकण्डुस्तु स्वपुत्रं पुत्रवत्सलः ॥ ७ ॥ पालितोऽहं त्वया पुत्रं कुलं च मम पालितम् ॥ पुण्यस्थले पुण्यतीर्थे चलनेच्छा यतस्तव ॥ ८ ॥ तस्मात्तव मतिः सौम्य सम्यगेवेति मे मतिः ॥ त्वां प्रस्थापयितुं पुत्र कथं भवति मानसम् ॥ ९ ॥

इसके बाद पुत्रवत्सल मृकण्डुऋषि अपने पुत्रसे बोले—हे पुत्र ! मैं तथा मेरा कुल दोनों ही तुमसे पवित्र हुए हैं, क्योंकि तुमको पुण्यस्थानों तथा पुण्यतीर्थोंमें विचरन करनेकी इच्छा उत्पन्न हुई है, हे सौम्य जिसमें तुम्हारी मति अच्छी तरह लगती हो उसमें मेरी मति भी अवश्य ही है. किन्तु हे पुत्र ! तुमको प्रस्थान वा बिदा कर देनेकी इच्छा किस प्रकार हो सकती है ? ॥ १० ॥

पुत्रमात्रस्य पित्रोस्तु विरहो दुःसहो भवेत् ॥ लोके सर्वत्र विदितं सत्पुत्रस्य तु किं पुनः ॥ १० ॥ उत्तमोत्तमपुत्रस्त्वं वियोगस्तेऽतिदुःसहः ॥ सत्पुत्रलक्षणं सद्भिरुच्यते तत्तथैव हि ॥ २१ ॥ यः प्रीणयेत्स्वचरितैः पितरं स पुत्रो यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ॥ तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यदेतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥ १२ ॥

यह बात लोकमें सर्वत्र विदित है कि पिताको पुत्रमात्रके ही विरहसे दुस्सह दुःख होता है, और सत्पुत्रकी तो फिर बात ही क्या है ? तुम उत्तमोंमें भी परमोत्तम पुत्र हो। तुम्हारा वियोग अत्यन्त दुस्सह है। सज्जनोंके द्वारा सत्पुत्रका लक्षण जो जो जैसे जैसे कहे गये हैं तुममें वे सब ठीक वैसे ही हैं। जो अपने सुचरित्रसे अपने पिताको प्रसन्न करता है वही सत्पुत्र है, तथा जो स्वामीहीकी भलाईकी इच्छा रखती है वह ही सद्भार्या है और जो विपद एवं सुख सबमें समस्थायी साथी रहता है, वही सद्मित्र है, इन तीनोंको पुण्यकर्मा लोग ही प्राप्त करते हैं ॥१२॥

आवयोः प्रियकृत्त्वं तु मतिमानास्तिकोऽप्यसि ॥ कथं त्वद्विरहः सह्यो भविष्यति सुतावयोः ॥ १३ ॥ आनन्देषु च सर्वेषु स एवानन्द उत्तमः ॥ मातापित्रोः समीपे तु वर्तते तनयो यतः ॥ १४ ॥ तनयस्य स चानन्दस्तदेव सुकृतं महत् ॥ पित्रोः शुश्रूषमाणस्तु सञ्चरेत समीपतः ॥ १५ ॥ अत आवां विहाय त्वं कथं गच्छसि तद्वद ॥

तुम परम बुद्धिमान, परम आस्तिक तथा हमलोगोंके परम प्रियकारी हो। हे पुत्र ! हम दोनोंसे तुम्हारा वियोगदुःख किस प्रकार सह्य होगा ? सभी आनन्दोंमें एक वही आनन्द परम उत्तम आनन्द है, जिसमें कि माता पिताके सामने पुत्र रहे। उनके महान् सुकृत रूप पुत्रका आनन्द तभीतक है, जबतक कि मातापिताकी सेवा करता हुआ पुत्र उनके पास रहे। इसलिये हे पुत्र ! हम दोनोंको त्याग कर तुम किस तरह जाते हो ? कहो ॥ १५ ॥

श्रीसूत उवाच—

मार्कण्डेयः स इत्युक्तः पितरौ वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥ मातः पितर्मा च शोको युवयोर्मत्कृते क्वचित् ॥ प्रत्यब्दं सर्वथागत्य युवां पश्यामि सर्व-

दा ॥ १७ ॥ पुण्यक्षेत्राऽभिगमने पुण्यतीर्थाऽवगाहने ॥ यत्पुण्यं तत्कुलं सर्वं पावयेदिति हि श्रुतम् ॥१८॥ कृत्वाशीर्वचनं भूयः प्रस्थापयतमञ्जसा ॥

श्रीसूतजी बोले—इस प्रकार कहे जाने पर मार्कण्डेयजी माता पितासे यह वाक्य बोले-हे माता! हे पिताजी!! मेरे लिये आप लोगोंको कोई भी शोक न होवे। मैं प्रतिवर्ष निश्चय ही यहां आ कर आप लोगोंके दर्शन करता रहूंगा। पुण्यक्षेत्रमें गमन तथा पुण्य तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है उससे उसका सम्पूर्ण कुल ही पवित्र हो जाता है, ऐसा सुना जाता है। इसलिये हे माता! हे पिता!! आप शीघ्र आशीर्वाद कर विदाई देवें॥ १७॥

इत्युक्तवाक्ये तनये नयशालिनि तावुभौ॥१९॥ आलिङ्ग्य तनयं गाढमाशीर्वादपरौ तदा ॥ चिरं जीव सुपुत्र त्वं चिरमानन्दवान्भव ॥ २० ॥ चिरं धर्मपरश्च त्वमावयोर्हर्षमावह ॥

नम्र स्वभाव तथा नीतिपूर्ण इन वाक्योंके कहने पर दोनों खूब गाढ़ालिङ्गन कर तुरन्त ही वे दोनों भी 'हे पुत्र! तुम बहुत दिनोंतक जीवित रहो, चिरकालतक आनन्दयुक्त रहो, तुम चिरकालतक हम दोनोंको आनन्द देता हुआ परम धर्मपरायण रहो, ऐसा आशीर्वाद देनेमें संलग्न हो गये॥ १६॥

अथ पित्रनुज्ञया मार्कण्डेयकृतपुण्यदेशतीर्थयात्राक्रमः

इत्युक्तस्तनयः कृत्वा प्रदक्षिणमुदारधीः ॥२१॥ तीर्थयात्रां जिगमिषुः खेचरेण जगाम ह ॥ काशीस्थलेऽवरुह्यासौ स्नात्वा गङ्गाजले शुचिः ॥२२॥ तीरमारुह्य विश्वेशं नत्वा क्वचिदवस्थितः ॥ तत्राकाशे चरन्तं तं ददर्श खगपुङ्गवम् ॥ २३ ॥ वैष्णवाग्रेसरं श्रीमद्गरुडं पृष्टवानसौ ॥

उनके ऐसा कहने पर उदार चेता मृकण्डु पुत्रने प्रदक्षिणा कर तीर्थयात्रामें जानेकी इच्छासे आकाशमार्गसे प्रस्थान किया और काशीस्थानमें उतर कर पवित्र गङ्गाजलमें स्नान कर, फिर तीरपर चढ़ कर विश्वनाथ भगवान्को प्रणाम किया और वहीं कुछ समयतक ठहरते हुए उन्होंने आकाशमें वैष्णवाग्रणी पक्षिश्रेष्ठ गरुड़को विचरण करते देख उनसे पूछा॥ २४॥

मार्कण्डेय उवाच—

विष्णुवाह नमस्तुभ्यं क्व गच्छसि महामते ॥ २४ ॥ पुण्यस्थलं पुण्यतीर्थमिच्छन्नहमिहागतः ॥ अतीवपुण्यं किं किं यत्तन्मे वद खगेश्वर ॥ २५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—हे विष्णुवाहन! आपको नमस्कार है। हे महामति! आप कहां जाते हैं? पुण्य-



काशीस्थलेऽवरुह्यासौ गरुड पृच्छानसौ ॥
विष्णुराह । नमस्तुभ्यं क गच्छसि महामते ॥ (पृष्ठ ३०४)

स्थल तथा पुण्यतीर्थों की यात्राकी इच्छा रखता हुआ मैं यहांतक आया हूं। हे खगेश्वर! बड़े बड़े पुण्यक्षेत्र या तीर्थ कौन कौन हैं, उन सबोंको मुझसे कहिये ॥ २५ ॥

अथ मार्कण्डेयं प्रति गरुडोपदिष्टश्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

श्रीसूत उवाच—

इत्युक्तो गरुडस्तस्मै रहस्यमुपदिष्टवान् ॥

श्री सूतजी बोले—ऐसा कहे जाने पर गरुडजीने उनको परम रहस्यका उपदेश दिया ॥ २६ ॥

गरुड उवाच—

मार्कण्डेय मुनिश्रेष्ठ शृणु तत्त्वं वदामि ते ॥ २६ ॥ तीर्थानामधिकं
तीर्थं स्थलानामपि चोत्तमम् ॥ सर्वेष्वपि च तीर्थेषु शृणु त्वं गदतो मम ॥

गरुड़जीने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ मार्कण्डेयजी! मैं तत्त्वकी बातें कहता हूं, आप सुनें। तीर्थ स्थलोंमें परम उत्तम तीर्थस्थान तथा सभी तीर्थों में सर्व श्रेष्ठ तीर्थके विषयमें बोलते हुए मुझसे श्रवण करें ॥ २७ ॥

इतो दक्षिणदिग्भागे सुवर्णमुखरीतटे ॥२७॥ अस्ति श्रीमान् वेङ्क-
टाख्यो नगेन्द्रः स्वस्ति प्राप्तुं शक्यते तत्र सर्वैः ॥ वस्तुं द्रष्टुं परमं योगि-
वर्याः स्तोतुं वासं सर्वदा कुर्वतेऽत्र ॥ २८ ॥ नामानि सन्ति सुबहूनि हि
तस्य लोके तानि ब्रवीमि शृणु पुण्यतमानि तत्र ॥ श्रीवेङ्कटाद्रिरिति शेष-
महीधरेति नारायणाद्रिरिति चाञ्जनभूधरेति ॥ २९ ॥ स्वर्णाचलेत्यपि च र-
त्नमहीधरेति भूयांसि सन्ति भुवनोत्तमपावनानि ॥

यहांसे दक्षिणकी ओर सुवर्णमुखरी नदीके तीरपर श्रीवेङ्कटाचल नामक महापर्वत है। वहीं सब कोई शान्ति तथा भलाई पा सकते हैं। परम वस्तुको देखने, प्रार्थना या स्तुति करनेके लिये सभी योगिवर वहीं निवास करते हैं। उसका नाम संसारमें अनेकों है, उनमेंसे परम पुण्यतम नामोंको मैं कहता हूं। श्रीवेङ्कटाद्रि, शेष-महीधर, नारायणाद्रि, अञ्जनाद्रि और भी सुवर्णाचल, रत्नगिरि इत्यादि अनेकों भुवनोत्तम, परम पवित्र करनेवाले इसके नाम हैं ॥ ३० ॥

तत्कीर्तनं सकलपापहरं मुनीन्द्र तद्वन्दनं सकलसौख्यदमेव लोके ॥३०॥
यात्रापि तं प्रति सुरैरपि पूजनीया तादृङ् महान् भवति वेङ्कटशैलमुख्यः॥
तस्यानुभावं प्रवदामि भूयः समस्ततीर्थानि भवन्ति तत्र ॥ ३१ ॥

हे मुनीन्द्र ! उनका कीर्तन सभी पापोंका नाश करनेवाला और उनकी वन्दना सब तरहके सुखको देनेवाली है। उसकी ओर केवल यात्रा भी देवताओंसे भी पूजित होती है। इस प्रकार वह श्रेष्ठ वेङ्कट पर्वत महा महनीय है। मैं पुनः उसकी महिमा कहता हूं कि समस्त तीर्थ उसी स्थान पर आ रहते हैं ॥ ३१ ॥

एवं समस्तेषु च मुख्यतीर्थं श्रीस्वामिनाम्नाऽस्ति सरोवरं तत् ॥ माहात्म्यमेतस्य मयोच्यते कथं यत्पश्चिमे रोधसि भूवराहः ॥३२॥ आलिङ्ग्य कान्तामतिसौम्यमूर्तिर्विराजते विश्वजनोपकारी ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार समस्त तीर्थोंमें मुख्य जो श्री स्वामिनामक पुण्य सरोवर वहां है, उसका माहात्म्य मुझसे किस प्रकार वर्णन किया जा सकता है, जिसके पश्चिम भागमें अत्यन्त सौम्य मूर्ति, एवं संसारके उपकारी साक्षात भूवराह भगवान अपनी प्रियाको आलिङ्गन करते हुए स्वयं विराजते हैं ॥ ३३ ॥

तद्दक्षिणतटे रम्ये वैकुण्ठपुरवल्लभः ॥ आलिङ्गितवपुर्लक्ष्म्या वरदो वर्तते चिरम् ॥ ३४ ॥ कुर्वन्त एव तत्सेवां वर्तन्ते सर्वनिर्जराः ॥ त्वं वेङ्कटाचलं गत्वा स्नात्वा स्वामिसरोजले ॥ ३५ ॥ विलोक्य वेङ्कटाधीशमानन्दात्मा भविष्यसि ॥ अहं च तत्र गच्छामि सेवितुं वेङ्कटेश्वरम् ॥ ३६ ॥ विष्वक्सेनश्च शेषश्च सेवेते तं दिवानिशम् ॥ पुण्यदेशो वेङ्कटाद्रेस्तुल्यो नैव महीतले ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थतुल्यं भुवि न विद्यते ॥ ३७ ॥

उसके रम्य दक्षिण तीरपर श्री वैकुण्ठपुरीके स्वामी, वरदाता श्री विष्णु भगवान श्री लक्ष्मीजीका आलिङ्गन करते हुए चिरकालसे रहते हैं। उनकी सेवा करते हुए सभी देवतागण वहां निवास करते हैं। हे मार्कण्डेय ! तुम भी श्रीवेङ्कटाचल पर जा कर स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान कर एवं श्रीवेङ्कटाधीश भगवान्के दर्शन कर परम आनन्दित हृदयवाले हो जाओगे। मैं भी वहीं श्रीवेङ्कटेश भगवानकी सेवा करनेको जाता हूं। विश्वक्सेन तथा शेषनाग दिन रात उनकी सेवा करते हैं। संसारमें वेङ्कटाद्रिके समान कोई भी पुण्यदेश तथा स्वामिपुष्करिणी तीर्थके समान कोई तीर्थ नहीं हैं ॥ ३७ ॥

श्रीसूत उवाच—

इत्युक्त्वा गरुडस्तत्र वेङ्कटाचलमागतः ॥ स मुनिर्गारुडगिरा विस्मयाविष्टमानसः ॥ ३८ ॥ अहो श्रुतं महापुण्यस्थलं तीर्थं गरुत्मता ॥ इति मत्वाऽद्रिसेवायामभवच्चाभिलाषवान् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये गरुडमार्कण्डेयसंवादो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्री सूतजी बोले—वहां इतना कह कर वेङ्कटाचलपर गरुड़जी चले आये। वह मुनि भी गरुड़जीके वचन सुननेसे विस्मितचित्त हो कर और सोच कर कि गरुड़जीसे मैंने पुण्यस्थल और पुण्यतीर्थका वृतान्त श्रवण कर लिया, पर्वतराजकी सेवाके लिये अभिलाषी हो गये ॥ ३९ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः



शिष्य शुद्धके संगमें, मार्कण्डेय मुनीश।
वेङ्कटगिरिपर आगमन, स्नान स्वामिसरसीश ॥१॥
सेवा श्रीवाराह की, श्रीनिवास स्तव पाठ।
अविचल भक्ति दान मुनि, शुद्ध मुक्ति अघगांठ ॥२॥
शुद्ध चरित आश्रम गमन, शंभू अज सेवार्थ।
प्रभु उद्भव गिरिवर गमन, विनय अपर ब्रह्मार्थ ॥३॥

अथ मार्कण्डेयस्य शुद्धाख्यागस्त्यशिष्येण सह वेङ्कटाचलागमनम्

श्रीसूत उवाच—

मार्कण्डेयोऽथ मतिमान् सुवर्णमुखरीं गतः ॥ तत उत्तरदिग्भागे दृष्ट्वाऽग्रेऽपभूधरम् ॥१॥ दैवादगस्त्यशिष्योऽपि शेषाद्रिनिकटं गतः ॥ वेङ्कटाद्रेरधोभागे तीर्थे किंचित्समागतः ॥ २ ॥ यत्तीर्थं कापिलं चापि चक्रतीर्थं विदुर्बुधाः ॥ तस्योपरि क्रमात्सन्ति तीर्थानि कतिचिद्गिरौ ॥ ३ ॥ इन्द्रस्य विष्वक्सेनस्य चक्रादीनां च पञ्चकम् ॥ अग्नितीर्थं ब्रह्मतीर्थं सप्तर्षीणां क्रमेण च ॥ ४ ॥

श्री सूतजी बोले—तब बुद्धिमान् मार्कण्डेयने सुवर्णमुखरी नदीके निकट जा कर उसके उत्तर दिशाभागमें शेषाचल पर्वतको देखा। दैवात् वेङ्कटाद्रिके निचले भागके किसी तीर्थमें, जिसको बुद्धिमानलोग चक्रतीर्थ या कापिल तीर्थके नामसे जानते थे, अगस्त्य ऋषिके एक शिष्य भी उसी शेषाचल के निकट गये हुए थे। उस (चक्रतीर्थ) के ऊपर ऊपर पर्वतपर कई तीर्थ, इन्द्रतीर्थ, विष्वक्सेनतीर्थ, अग्नितीर्थ, ब्रह्मतीर्थ, सप्तर्षितीर्थ इस क्रमसे चक्रादिके पांच तीर्थ हैं॥ ४॥

आगत्य शिष्यसहितो मार्कण्डेयो महामुनिः॥ चक्रादिसप्तदशसु
तीर्थेषु स्नानकृच्छुचिः॥ ५॥ तत्पश्चिमे च तीर्थानि विद्यन्ते वेङ्कटाचले॥
ब्रह्मक्षत्रविडन्त्यानामवरोहक्रमेण तु॥ ६॥ स्नात्वा तेष्वपि शुद्धेनागस्त्य-
शिष्येण संयुतः॥ आरुह्य वेङ्कटशैलं मध्येमार्गं ददर्श सः॥ ७॥ नार-
सिंहगुहास्थानं लोके विख्यातवैभवम्॥ लक्ष्मीनृसिंहप्रह्लादवरदानन्दवैभ-
वम्॥ ८॥

उस शुद्ध नामक अगस्त्यजीके शिष्यके साथ महामुनि मार्कण्डेयजीने चक्रादि सत्रह तीर्थोंमें स्नान कर, पवित्र हो कर, उसके भी पश्चिममें जो उतारके रास्तेमें वेङ्कटाचल पर्वतपर, अनेकों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रके तीर्थ हैं उनमें भी स्नान कर, वेङ्कट पर्वतपर चढ़ ठीक आधे रास्तेमें, प्रह्लादजीको वरदान देनेवाले लक्ष्मी नरसिंहके, आनन्दवैभव रूप, संसारमें प्रसिद्ध, नरसिंह गुहाके स्थानको देखा॥ ८॥

अथ मार्कण्डेयस्य स्वामितीर्थस्नानपूर्वकं श्रीवराहसेवाप्राप्तिः

दासानुदासं देवेश मां पाहि मधुसूदन॥ इति प्रणम्य शुद्धेन स्वा-
मिपुष्करिणीं गतः॥ ९॥ तत्र स्नात्वा महातीर्थे सङ्कल्प्य विधिपूर्वकम्॥
तत्पश्चिमतटे श्वेतसूकरं वसुधाधरम्॥ १०॥ साष्टाङ्गं च प्रणम्याथ
स्तोतुं समुपचक्रमे॥

हे मधुसूदन! मुझ दासानुदासकी रक्षा करें, इस प्रकार स्तुति एवं प्रणाम कर, शुद्धजीके साथ स्वामिपुष्करिणीके पास जा, उस महातीर्थमें विधिपूर्वक संकल्प एवं स्नान करके उसके पश्चिम तटपर पृथ्वीको धारण करनेवाले श्वेतवाराहको साष्टाङ्ग प्रणाम कर उन्होंने पुनः स्तुति करना प्रारम्भ किया॥ १२॥

मार्कण्डेय उवाच—

जलौघमग्ना सचराचरा धरा विषाणकोट्याऽखिलविश्वमूर्तिना॥ स-
मुद्धृता येन वराहरूपिणा स मे स्वयंभूर्भगवान्प्रसीदतु॥ ११॥ पोत्रिरूप

नमस्तुभ्यं पुरुषोत्तम ते नमः ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरवासिने वरदाच्युत ॥ १२ ॥ श्रीवेङ्कटवराहाय विश्वमङ्गलकारिणे ॥ भक्तानां रक्षिणे तुभ्यं भगवन् सततं नमः ॥ १३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—अखिल संसारमूर्ति जिस वाराहरूपी भगवान्‌ने महाजलमे चर और अचर सभीके साथ डूबी हुई पृथ्वीको अपने दांतोंके अग्रभागसे उद्धार किया, वही स्वयंभू भगवान् आप मुझपर प्रसन्न होवें। हे पुरुषोत्तम ! हे पोत्रि रूप आपको नमस्कार है। स्वामिपुष्करिणीके तीरपर निवास करनेवाले, वरदाता ! श्रीअच्युत, प्रभु, श्रीवेङ्कट, वाराह, संसारके मंगल करनेवाले, भक्तोंकी रक्षा करनेवाले, हे भगवन ! आपको नमस्कार हो ! नमस्कार हो !! ॥ १३ ॥

अथ श्रीमार्कण्डेयकृत श्रीश्रीनिवासस्तुतिः

इति स्तुत्वाऽथ पीत्वा च तत्पादसलिलं मुदा ॥ निर्गत्य दक्षिणे तीरे जगाम हरिमन्दिरम् ॥ १४ ॥ नमस्कृत्य विमानान्तः प्रविश्यासौ ददर्श ह ॥ शङ्खचक्रधरं देवं वरदं वारिजेक्षणम् ॥ १५ ॥ वेङ्कटेशं प्रणम्यासौ चकार स्तुतिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार स्तुति तथा उनके चरणोदकको आनन्दसे पान कर वे दक्षिण तटसे निकल हरि मन्दिरमें गये। नमस्कार करके विमानके भीतर प्रवेश कर इनमें शंख, चक्रधारी वरदाता एवं कमलनेत्र ,भगवान् श्रीवेङ्कटेशको उन्होंने देखा और पुनः वेङ्कटेशको प्रणाम कर अत्यन्त उत्तम स्तुति की ॥ १६ ॥

भास्वच्चन्द्रसमे यदीयनयने भार्या यदीया रमा यस्माद्विश्वसृडप्यभूद्यमिकुलं यद्ध्यानयुक्तं सदा ॥ नाथो यो जगतां नगेन्द्रदुहितुर्नाथोऽपि यद्भक्तिमांस्तातो यो मदनस्य यो दुरितहा तं वेङ्कटेशं भजे ॥ १७ ॥ पाहि मां वेङ्कटाधीश प्रणतार्तिप्रभञ्जन ॥ आत्मबन्धो कृपासिन्धो सततं ते नमो नमः ॥ १८ ॥ नारायणाद्रिकृतवास हरे नमस्ते नारायणाखिलजगत्पतये नमस्ते ॥ कारुण्यपूर्णकमलापतये नमस्ते कञ्जाक्ष रक्ष कमनीयतनो नमस्ते ॥ १९ ॥

जिनके चन्द्रमा तथा सूर्य दोनों नेत्र हैं, जिनकी रमादेवी भार्या हैं, जिनसे ही संसारकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए हैं, जिनके ध्यानमें लीन हो कर मुनिगण सदा रहते हैं, संसारके नाथ गिरिजापति शंकर भी जिनकी भक्ति करते हैं, जो मदनके पिता तथा दुःखोंका नाश करनेवाले हैं, उन्हीं वेङ्कटेश भगवानको भजता

हूं। हे भक्तजनोंके दुःखको नाश करनेवाले! हे वेङ्कटाधीश्वर! हमारी रक्षा करो। हे आत्मबन्धु! हे कृपासागर! मैं आपको सदा प्रणाम करता हूं। नारायण पर्वतपर निवास करनेवाले आप भगवान्को मेरा नमस्कार हो। आप अखिल संसारके स्वामी श्रीनारायण भगवान्को मेरा नमस्कार हो, आप करुणापूर्ण, कमलापति भगवान्को मेरा नमस्कार हो। कमलके समान नेत्र और कोमल शरीरवाले आपको नमस्कार हो॥ १९॥

विना वेङ्कटेशं न नाथो न नाथः सदा वेङ्कटेशं स्मरामि स्मरामि॥
हरे वेङ्कटेश प्रसीद प्रसीद प्रियं वेङ्कटेश प्रयच्छ प्रयच्छ॥ २०॥ अहं दूर-
तस्ते पदाम्भोजयुग्मप्रणामेच्छयाऽऽगत्य सेवां करोमि॥ सकृत्सेवया नि-
त्यसेवाफलं त्वं प्रयच्छ प्रयच्छ प्रभो वेङ्कटेश॥२१॥ अज्ञानिना मया दो-
षानशेषान्विहितान्हरे॥ क्षमस्व त्वं क्षमस्व त्वं शेषशैलशिखामणे॥२२॥

श्री वेङ्कटेशके बिना कोई नाथ वा स्वामी नहीं है। मैं सदा श्रीवेङ्कटेश भगवानको स्मरण करता हूं। हे वेङ्कटेश! प्रभु आप प्रसन्न होवें! प्रसन्न होवें!! हे वेंकटेश! आप हमलोगोंके लिये मङ्गल दान करें! दान करें!! मैं बहुत दूरसे आपके चरणोंको प्रणाम करनेकी इच्छासे आ कर आपकी सेवा करता हूं। एक बार सेवा करनेसे ही नित्य सेवाके फलको प्रदान करें, प्रदान करें। हे वेङ्कटेश प्रभु! हे शेषाचलके शिरोमणि! मुझ अज्ञानीसे किये गये अशेष दोषोंको क्षमा करें! क्षमा करें!!

मार्कण्डेय उवाच—

इति स्तुत्वा तु भावेन शुद्धेन सह सादरम्॥ तूष्णीं बभूव पुरतो
मस्तके विहिताञ्जलिः॥ २३॥

मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार शिष्य शुद्धके साथ भक्तिभावसे आदरके साथ स्तुति कर माथेपर अञ्जलि रख कर सामने चुप खड़े हो गये॥ २३॥

अथ मार्कण्डेयस्य भगवद्दत्तभक्तिनैरन्तर्यवरप्राप्तिः

तमाह वेङ्कटाधीशो मार्कण्डेयं महामुनिम्॥ मार्कण्डेय महाबुद्धे
प्रसन्नोऽस्मि तवानघ॥ २४॥ श्रुत्वा गरुडवाक्यं तदागतो वृषाचलम्॥
स्तुतिर्हि विहिता सम्यक्तस्मादिष्टं ददामि ते॥ २५॥ इत्युक्तः स मुनिः
प्राह ममेष्टं किं जनार्दन॥ यथा तव स्मृतिर्भूयात्सततं वेङ्कटेश्वर॥ २६॥
तथा मां पाहि देवेश भक्तवत्सल ते नमः॥ तथाऽस्त्विति कृपां कृत्वा
हरिः शुद्धमुवाच ह॥

तब उन मार्कण्डेय महामुनिसे श्रीवेङ्कटाधीश प्रभु बोले—हे महाबुद्धिमान्! निष्पाप मार्कण्डेयजी! आपसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। क्योंकि आप उन गरुड़के वचनको सुन कर वृषभाचल पर चले आये, और पूरी रीतिसे स्तुति भी आपने की। इसीलिये मैं आपको अभीष्ट वर देता हूं। ऐसा कहे जाने पर मुनिजी बोले- "हे जनार्दन! हे वेङ्कटेश जी! मेरा अभीष्ट यह है कि जिस प्रकार आपकी ही सदा स्मृति या भक्ति होवे। यही मेरा अभीष्ट है, अतः हे भक्तवत्सल! आप मुझे उसी प्रकार रक्षा करें, आपको नमस्कार है। "तथास्तु" (ऐसाही हो) कह कर पुनः भगवान शिष्य शुद्धसे बोले ॥ २९ ॥

अथ शुद्धाख्यागस्त्यशिष्यस्य भगवदनुग्रहेण निष्पापत्वप्राप्तिः

शुद्ध शुद्ध दुरन्तानि पापानि विहितानि ते ॥ तानि सर्वाणि शान्ता-
नि सेवया मे न संशयः ॥२८॥ गुर्वाश्रममितो गत्वा धर्मतन्त्रं समाचर ॥
प्रदक्षिणं मद्विमानं कुरुतादिति चोक्तवान् ॥ २९ ॥

हे पवित्र शुद्ध ऋषि! आपसे अनेकों दुष्कर्म तथा पाप किये गये थे। वह सभी मेरी सेवाके प्रभावसे शान्त या नाश हो गये। इसमें सन्देह नहीं है। मेरे विमानकी प्रदक्षिणा करें और यहांसे गुरुके आश्रमको जा कर धर्मका आचरण करें ॥ २६ ॥

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विमानं सम्प्रणम्य च ॥ त्रिरावृत्त्या क्वचित्ति-
ष्ठञ्छुद्धं मुनिरथाब्रवीत् ॥३०॥ कुतस्त्वमागतः शुद्धः को गुरुः कुत्र वाऽऽ-
श्रमः ॥ का आसन्कानि पापानि शान्तानि हरिसेवया ॥ ३१ ॥ एतत्सर्वं
वद क्षिप्रं सखे मयि दया यदि ॥

तब विमानकी तीन बार प्रदक्षिणा कर तथा प्रणाम कर कुछ ठहरने पर शुद्धसे मुनि बोले—हे शुद्धजी! आप कहांसे आये हैं? और आपके गुरु कौन है? आपका आश्रम कहां हैं? आपके कौन कौनसे पाप थे, जो हरि सेवासे अभी नष्ट हुए? हे सखे! यदि मेरे ऊपर दया है तो यह सब मुझसे आप अति शीघ्र बतावें ॥ ३२ ॥

अथ मार्कण्डेयं प्रति शुद्धकृतस्वोदन्तज्ञापनम्

इति पृष्टोऽगस्त्यशिष्यः सखे शृण्विति चाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ यथार्थं
शृणु मत्तस्त्वं मार्कण्डेय मुनीश्वर ॥ काञ्चीदेशे मध्यराष्ट्रे द्विजो बहुकुटु-
म्ब्यहम् ॥ ३३ ॥ कुटुम्बभरणार्थाय दुर्दानानि गृहीतवान् ॥ वसनाशनहो-
नत्वाद् भ्रमामि जगतीतले ॥३४॥ एकोद्दिष्टं षोडशानि बहु भुक्तानि पा-
पिना ॥ धनं धनमिति भ्रान्तं भ्रान्तचित्तेन केवलम् ॥ ३५ ॥ स्नानं सन्ध्या

जपो होमो देवार्चाऽतिथिकर्म च ॥ वैश्वदेवं ब्रह्मयज्ञो न कदाचित्कृतं म-
या ॥ ३६ ॥ पापिनं मां समालोक्य सर्वे ग्रामे महाजनाः ॥ महाब्राह्मण
इत्येव शपन्तो नाम चक्रिरे ॥ ३७ ॥

इस प्रकार पूछने पर अगस्त्यके शिष्य बोले—हे सखे! सुनिये, हे मार्कण्डेय मुनीश्वर! आप मुझसे यथातथ्य सब सुनिये। मैं काञ्चीदेशके मध्यराष्ट्रका बहु परिवारवाला एक ब्राह्मण हूं। अपने कुटुम्बियोंका पालन करनेके लिये मैंने बुरे बुरे दानको लिया है। मैं भोजन तथा वस्त्रके बिना संसारमें घूमता चलता हूं, पापी हमने बहुतसे एकोद्दिष्ट तथा षोडशश्राद्धके अन्न भोजन किये हैं। मै धन, धन इसी चिन्तासे सदा भ्रान्तचित्त हो कर घूमता रहा। स्नान, सन्ध्या, जप, हवन, देवपूजा, अतिथिपूजा, वैश्वदेवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ आदि कुछ भी कभी मुझसे न किया गया। मुझ पापीको देख कर ग्रामके सभी निवासी जन 'महाब्राह्मण' ऐसे शब्दोंसे अनादर करते हुए नाम लेते थे॥

रेवती नाम मे भार्या मामवोचन्मनीषिणी ॥ बहूनि पातकान्यत्र कुटु-
म्बभरणेच्छया ॥३८॥ कुर्वन्नपि धनं किञ्चिन्न प्राप्नोषि क्वचिद् द्विज ॥
प्रेतोद्देशकृता गावो गृहीताः प्रेतभोजनम् ॥३९॥ प्रेतवासांसि बहुशो निन्द्यं
कर्म सदा कृतम् ॥ एवं कृतेषु पापेषु गृहे किञ्चिन्न दृश्यते ॥४०॥ अत्रा-
हारो नैव गृहे क्षुधिताः पुत्रबालिकाः ॥ तव मे बालकानां चाच्छादनं नैव
विद्यते ॥४१॥ अतीव दीनोऽहमिति निश्चयं नाधिगच्छसि ॥

रेवती नामक मेरी बुद्धिमती स्त्री मुझसे बोली कि कुटुम्बोंके भरण करनेकी इच्छासे यहांपर बहुतसे पाप-कर्म करते हुए भी तुम कहींसे कुछ भी धन नहीं पाते हो। हे ब्राह्मण! प्रेतके उद्देशमें दिये गये बहुतसे गो वस्त्र और भोजन लिये हो, और सदा निन्द्यकर्म ही किये हो। इस प्रकार सदा पाप करनेपर भी घरमें कुछ नहीं है, और पुत्र तथा पुत्री दोनों ही भूखे हैं। तुम्हारे मेरे और बालकोंके लिये वस्त्र भी नहीं है। हम अत्यन्त दरिद्र हो गये हैं ऐसा ख्याल भी नहीं करते हो॥४२॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं दातुं सर्वं मनोरथम् ॥ ॥ ४२ ॥ सकृद्ध्यान-
तिकृतां शक्तो वेङ्कटनायकः ॥ इति प्राज्ञा वदन्तीह तत्प्रमाणं कुरु
द्विज ॥४३॥ उत्तरस्यां दिशि नदी सुवर्णमुखरीति वै ॥ तत्तीरे वेङ्कटो नाम
हरिक्षेत्रं महीधरः ॥४४॥ तत्र वेङ्कटनाथस्य सेवां कर्तुमितो व्रज ॥ लक्ष्म्यं-
शा योषितः सर्वा इति विद्वद्भिरीरितम् ॥४५॥ प्रमाणीकृत्य मद्वाक्यं शीघ्रं
गच्छ सुखाय वै ॥

एक बार भी नमस्कार करनेवालोंको श्रीवेङ्कटनायक आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य आदि सब कुछ देनेमें समर्थ हैं, ऐसा ज्ञानी लोग ही कहते हैं। इसलिये हे ब्राह्मण! आप वहां ही प्रस्थान करें। उत्तर दिशामें सुवर्णमुखरी नामक नदी है। उसीके तीरपर श्रीहरिके वेङ्कटाद्रि नामक क्षेत्र पर्वत है, वहीं वेङ्कटनाथकी सेवा करनेके लिये यहांसे जाइये। लक्ष्मीके अंश ही सभी स्त्रियां होती हैं, यही विद्वानोंसे कहा गया है, इसलिये मेरे वाक्योंको प्रमाणित कर सुखके लिये शीघ्र जाइये ॥४६॥

शुद्ध उवाच—

आकर्ण्य प्रेयसोवाक्यं पञ्चभिर्दिवसैरहम् ॥ ४६ ॥ सुवर्णमुखरीं प्रा-
प्यागस्त्याश्रममुपेयिवान् ॥ सुवर्णमुखरीतीरे तपस्यन्तं शिवाग्रतः ॥४७॥
प्रणाममाचरं दृष्ट्वा नमस्तुभ्यमिति ब्रुवन् ॥ कुम्भोद्भवोऽथ मां दृष्ट्वा कृपालु-
र्ऋषिसत्तमः ॥ ४८ ॥ कुतस्त्वं केन दुःखित्वं किं कार्यमिति पृष्टवान् ॥

शुद्धने कहा—अपनी प्रियाको बातोंको सुन कर मैं पांच दिनोंमें सुवर्णमुखरीको पा कर अगस्त्य ऋषिके आश्रममें पहुंचा। सुवर्णमुखरीके तीरपर शिवजीके आगे तपस्या करते हुए अगस्त्यजीको देख कर "आपको प्रणाम करता हूं" ऐसा कहता हुआ मैंने उनको प्रणाम किया। परम कृपालु ऋषिसत्तम अगस्त्यजीने मुझको देख कर मुझसे पूछा—कि तुम कहांसे आते हो? किस कारणसे तुम दुखी हो? और क्या काम है?॥ ४९ ॥

शुद्ध उवाच—

मां पाहि करुणासिन्धो पापिनामपि पापिनम् ॥ ४९ ॥ मत्कृत्यं
तपसा सर्वं त्वमेव ज्ञातुमर्हसि ॥ काञ्चीप्रदेशे मद्ग्रामस्तद्ग्रामस्य महा-
जनाः ॥ ५० ॥ पापीति कृत्वा मां सर्वे महाब्राह्मणमब्रुवन् ॥ तस्मादहं
दुःखितः सन् वेङ्कटाद्रीच्छयाऽऽगतः ॥ ५१ ॥ मत्पुण्येन भवान्मध्येमार्गे
दृष्टोऽसि केवलम् ॥ पूर्वपुण्यविपाकेन दृश्यन्ते खलु सज्जनाः ॥ ५२ ॥
प्रतिगृह्णीष्व मां शिष्यं तव शिष्योऽस्मि साम्प्रतम् ॥ पापोऽहं पापकर्माणं
पावनीकुरु मां मुने ॥ ५३ ॥

शुद्ध बोला—हे कृपासागर! मुझ पापियोंमें भी पापीकी रक्षा करो। आप स्वयं अपनी तपस्याके बलसे मेरे सभी कृत्यको जान सकते हैं। काञ्चीप्रदेशमें मेरा ग्राम है। उसी ग्रामके महाजनलोग मुझको पापी जान कर महाब्राह्मण कहने लगे। उससे दुःखित हो कर मैं वेङ्कटाद्रिके दर्शनकी इच्छासे चला आया हूं। मेरे पुण्य फलवश आप मुझे रास्तेके मध्यमें ही दिखाई दिये। प्राचीन जन्मके फलसे ही सज्जन लोग दिखाई देते हैं।

आप मेरे शिष्यभावको स्वीकार करें, मैं अब आपका शिष्य हो गया हूं। हे मुने! मैं पापी पापकर्मा हूं, मुझको पवित्र करें ॥५३॥

इति वादिनमालोक्य मामुवाच महामुनिः ॥ बहु त्वया कृतं पापं विदितं तपसा मम ॥ ५४॥ बुद्धिर्वैङ्कटयात्रायां यतः शुद्धोऽसि साम्प्रतम् ॥ अयं शुद्धोऽस्त्विति ब्रूत सर्वे विप्रा इति ब्रुवन् ॥ ५५ ॥ मामाह त्वरितं गत्वा वेङ्कटाह्वयभूधरम् ॥ भूवराहं च लक्ष्मीशं सेवित्वा पुनराव्रज ॥ नष्टपापस्य ते पश्चाच्छ्रेयो दास्यामि मा चिरम् ॥ ५६ ॥ इत्येवमुक्त्वा भगवानगस्त्यः सेवाक्रमं चापि ममोपदिश्य ॥ प्रस्थापयामास तदागतोऽहं मार्गे भवन्तं खलु दृष्टवान्मुदा ॥५७॥ एवं त्वगस्त्यशिष्योऽहं शुद्धनामाऽस्मि साम्प्रतम् ॥

इस प्रकार बोलते हुए मुझको देख कर महामुनि बोले—तपोबलसे मुझको सब विदित होता है कि तुमने बहुत पाप किया है। वेङ्कटकी यात्राके लिये बुद्धि हुई, इसीलिये अब शुद्ध हो गये। हे ब्राह्मणगण! आप यह शुद्ध है ऐसा बोलें—ऐसा कहते हुए मुझसे कहा कि शीघ्र वेङ्कट नामक पर्वतपर जा कर भूवराह तथा लक्ष्मीपतिकी सेवाकरके पुनःलौट आओ। तुम्हारे पाप नाश होने पर पीछे तुमको सुफल शीघ्र दूंगा भगवान् अगस्त्यजीने मुझको इस प्रकार कह कर सेवाक्रमको उपदेश दे कर प्रस्थान कराया। वहांसे आते हुए मार्गमें आनन्दसे आपको देखा। इस प्रकार मैं अगस्त्यऋषिका शुद्ध नामक शिष्य हूं ॥५८॥

अथ मार्कण्डेयस्य शुद्धेन सह स्वर्णमुखरीतीरस्थागस्त्याश्रमगमनम्

यास्याश्रमं नदीतीरे ह्यगस्त्यस्य दयानिधेः ॥५८॥ वेङ्कटाचलमाहात्म्यविदामग्रेसरं मुनिम् ॥ द्रष्टुं मया सह त्वं च किमयासि वदाधुना ॥ ५९ ॥ इति ब्रुवन्तं तं शुद्धं मार्कण्डेयोऽब्रवीद्वचः ॥ अहमप्यागमिष्यामि द्रष्टुं तं मुनिपुङ्गवम् ॥ ६० सुवर्णमुखरीतीरे मां नयस्व तदाश्रमम् ॥ इत्युक्त्वा सहितौ विप्राववरुह्य गिरेरधः ॥६१॥ सुवर्णमुखरीतीरं त्वगस्त्याश्रममीयतुः ॥

मैं नदी तीरपर दयानिधि श्रीअगस्त्यऋषिके आश्रमको जाता हूं। आप भी क्या वेङ्कटाचल माहात्म्यको जाननेवालोंमें पूज्य मुनिजीको देखनेके लिये मेरे साथ चलते हैं? अभी बोलिये। उस शुद्धके इस प्रकार बोलने पर मार्कण्डेय मुनि बोले—मैं भी उन मुनिपुङ्गवको देखनेके लिये आऊंगा। मुझको भी सुवर्णमुखरी नदीके तीरपर उनके

आश्रममें ले चलो। यह कह कर दोनों ब्राह्मण भी साथ ही पर्वतसे नीचे उतर कर सुवर्णमुखरी नदीके तीरपर अगस्त्यजीके आश्रममें चले आये ॥६२॥

तत्राश्रमे महर्षिभिः सेव्यमानमनेकशः ॥६२॥ वेङ्कटेशकथाव्याख्यातत्परं तमपश्यताम् ॥ तेभ्यो नमस्कृत्य तदा तं प्रणम्य विशेषतः ॥६३॥ तपोधनेनागस्त्येन बहुमानेन पूजितौ ॥ मार्कण्डेयश्च शुद्धश्च तस्मिन्सदसि तस्थतुः ॥ ६४ ॥ विप्रा वेङ्कटमाहात्म्यं शृणुतेति प्रसन्नधीः ॥ उवाचानन्दभरितो लोपामुद्रापतिस्तदा ॥६५ ॥

उस आश्रममें अनेक मुनियोंसे सेवित, वेङ्कटेश भगवान्‌की कथाके व्याख्यानमें लीन उन अगस्त्यऋषिको उन्होंने देखा। उन मुनियों तथा विशेष रूपसे अगस्त्य मुनिको प्रणाम कर तपोधन, अगस्त्यजीसे बहुमानित तथा अत्यन्त पूजित हो कर मार्कण्डेयजी एवं शुद्धजी उस सभामें बैठे। तब प्रसन्नचेता आनन्दमय, श्रीलोपामुद्राजीके स्वामी श्रीअगस्त्यजी बोले—हे ब्राह्मणो! वेङ्कटमाहात्म्यको आप श्रवण करें ॥६५॥

अथ अगस्त्यवर्णितश्रीवेङ्कटाचलवैभवम्‌

अगस्त्य उवाच—

सुवर्णमुखरीतीरद्वयनित्यनिवासिनः ॥ वेङ्कटाचलमाहात्म्यं श्रोतव्यं पापनाशनम् ॥ ६६ ॥ श्रीवेङ्कटाचलो नाम पुण्यक्षेत्रं महीतले ॥ शेषाद्रिर्वृषशैलश्च गरुडाचल इत्यपि ॥ ६७ ॥ पुण्यानि सन्ति नामानि पुनरन्यानि कानिचित् ॥६८॥ वैकुण्ठलोकाद्गरुडेन विष्णोः क्रीडाचलो वेङ्कटनामधेयः ॥ आनीय च स्वर्णमुखीसमीपे संस्थापितो विष्णुनिवासहेतोः ॥ ६९ ॥ तत्राचले वसन्विष्णुः कमलालयया सह ॥ आनन्दनिलये चैव वर्तते लोकरक्षकः ॥ ७० ॥

अगस्त्यजी बोले—सुवर्णमुखरीके दोनों तीरोंपर निवास करनेवालेको पापनाशन वेङ्कटाचल माहात्म्य सुनने लायक है। वेङ्कटाचल पृथ्वीतलपर प्रसिद्ध पुण्य क्षेत्र है। शेषाद्रि, वृषभाद्रि, गरुडाचल और भी कितने ही इसके पुण्य नाम हैं। विष्णुका वेङ्कटनामका क्रीडाचल स्वर्णमुखरीके निकट विष्णु भगवान्‌के निवासके लिये वैकुण्ठ लोकसे गरुड़ द्वारा लाया जा कर संस्थापित किया गया है। उसी पर्वतपर लोकरक्षक भगवान श्री लक्ष्मीके साथ निवास करते हुए आनन्दमें लीन हो कर रहते हैं ॥ ७० ॥

अथ श्रीनिवाससेवार्थं ब्रह्मरुद्रादीनां श्रीवेङ्कटाचलगमनवर्णनम्

पुरा कदाचित्कतिचित्समेता वयं हरिं सर्वजगच्छरण्यम् ॥ अन्विष्य वैकुण्ठपुरेऽप्यदृष्ट्वा समागता ब्रह्मगिरा वृषाद्रिम् ॥७१॥ समागतास्तत्र तपो विधातुं समाः शतं सर्वतपस्विसङ्घाः ॥ श्रीस्वामितीर्थस्य जले पवित्रे स्नानादि सर्वं कृतवन्त एव ॥ ७२ ॥ तत्रागता ब्रह्ममुखाः समस्तास्तत्रागता जिष्णुमुखाः सुराश्च ॥ तत्रागतास्ते सनकादियोगिनः सेवापरास्ते वृषशैलभर्तुः ॥७३॥ गणैश्च सर्वैः सह शम्भुरागतः क्षीराब्धिवासा अपि सिद्धसङ्घाः ॥

प्राचीन कालमे किसी समय कितने ही हमलोग मिल कर सर्व जगतके शरण्य भगवान विष्णुको खोज कर वैकुण्ठपुरीमें भी उन्हें न देख कर ब्रह्माजीके आज्ञानुसार वृषाचलपर आये थे। वहीं सौ वर्ष तक तपस्या करनेके लिये एकत्र हो कर श्री स्वामितीर्थके पवित्र जलमें स्नानादि करते हुए कई तपस्विवृन्द ब्रह्मादि, इन्द्रादि सभी देवतागण, सनकादि, सिद्ध, योगिवृन्द, सभी गणोंके साथ शिवजी तथा क्षीर सागरनिवासी सिद्ध संघ भी श्रीवृषभाचल स्वामीकी सेवाके लिये आये थे ॥ ७४ ॥

बृहस्पतिश्चैव शुकश्च शुक्रो वसुश्च राजा हरिभक्तमुख्यः ॥ ७४ ॥ देवाश्च ऋषयः सिद्धाश्चारणा वसुकिन्नराः ॥ सर्वे च स्वामिसरसि स्नात्वा प्रयतमानसाः ॥ ध्यायन्तो देवदेवेशमवतस्थुश्च तत्तटे ॥ ७५ ॥

बृहस्पतिजी, शुक्रमहाराज, हरिभक्तोंमें मुख्य महाराज वसु, देवता, ऋषि, सिद्ध, चारण, वसु, किन्नर इत्यादि सभी स्वामीपुष्करणीमें स्नान करके एकाग्रचित्त हो कर देवदेवेशको ध्यान करते हुए उसी सरोवरके तीरपर ठहर गये।

अथ श्रीभगवत्प्रादुर्भाववर्णनम्

प्रादुर्भूतं ततस्तेज एकमत्यद्भुतं तदा ॥ विमानमेकं तन्मध्ये ददृशे दिव्यमङ्गलम् ॥७६॥ तन्मध्यस्थं दिव्यमूर्तिं वरेण्यं शङ्खं चक्रं धारयन्तं कराभ्याम् ॥ सेव्यत्वेन स्वं पदाम्भोजयुग्मं सर्वेषां सन्दर्शयन्तं करेण ॥७७॥ स्वाङ्घ्रिद्वन्द्वं संश्रितानां जनानां संसाराब्धिर्जानुदघ्नः किलेति ॥ न्यस्तेनोरौ वामतो दर्शयन्तं सव्यं चान्येनापि हस्तेन सम्यक् ॥ ७८ ॥ सर्वाभीष्टं

दातुमुद्युक्तहेतिं भक्तानां श्रीवासवक्षःस्थलं च ॥ मन्दस्मेरश्रीमुखं भूषणाढ्यं सर्वे श्रीमद्वेङ्कटेशं ह्यपश्यन् ॥ ७९ ॥ कृतप्रणामास्ते सर्वे स्तोत्रयामासुरीश्वरम् ॥

तब उससे एक अत्यन्त अद्भुत तेज उत्पन्न हुए और उसके बीचमे एक मङ्गलमय परम दिव्य विमान देखा गया। उसके मध्यमे बैठे हुए दिव्य मूर्तिवाले, श्रेष्ठ हाथोंसे शङ्ख और चक्र धारण किये हुए, वाम जघेमे रखे हुए अपने वाम हाथसे अपने चरण कमलोंकी शरणमें आये हुए मनुष्योंको संसार सागर जानु प्रमाण ही है, अतएव मेरा चरण कमल ही सबकी गति है ऐसा दिखलाते हुए, दूसरे हाथसे भक्तोके चिन्तित मनोरथोंको देनेके लिये अपनेको कटिबद्ध दिखलाते हुए, लक्ष्मीजीके निवास स्थान वक्षस्थलवाले, मन्द मुसकान युक्त श्री मुखवाले, समस्त आभूषण धारण किये श्री वेङ्कटेश जीको सबने देखा। तब वे सब उन ईश्वरको प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे ॥८०॥

अथ ब्रह्मरुद्रादिकृतश्रीश्रीनिवासस्तुतिः

जय देव जगन्नाथ सर्वलोकैकवन्दित ॥ ८० ॥ जय वेङ्कटशैलेश करुणाकर पाहि नः ॥ त्वां नमामो वयं विष्णो वेङ्कटाचलनायक ॥ ८१ ॥ अस्माकं वाञ्छितं दत्वा पाहि पाहि जगद्गुरो ॥ इति स्तुतः श्रीनिवासो देवैः सिद्धैश्च चारणैः ॥ ८२ ॥ मुनिभिर्वसुमुख्यैश्च ब्रह्माद्यैः शङ्करेण च ॥ सर्वान्विलोक्य तानाह करुणापयसां निधिः ॥ ८३ ॥

हे जगन्नाथ। सम्पूर्ण लोकोंके एक ही पूज्य। आपकी जय हो। वेङ्कटशैलेश ! दयासिन्धो। हमारी रक्षा करे। वेङ्कटाचल नायक आपको हम नमस्कार करते हैं। आप हमारे इच्छित वरदान दे कर हमारी रक्षा करें। इस प्रकार देवता, सिद्ध, चारण, मुनि, वसु आदि प्रमुखगणों, ब्रह्मादि देवता तथा शङ्करजी आदि सभीने श्रीनिवास भगवानकी स्तुति की। करुणाके समुद्र श्रीनिवास भगवान उनकी ओर देख कर कहने लगे ॥ ८३ ॥

सर्वेषामपि युष्माकं प्रसन्नोऽस्मि सुरेश्वराः ॥ युष्माकं यद्यदिष्टं स्यात्तत्तद्दत्तं मयाऽनघाः ॥८४॥ इति तेभ्यो वरं प्रादात्सर्वेभ्यो वेङ्कटेश्वरः ॥ अथ ते मुनयः सर्वे ब्रह्माद्याः किञ्चिदब्रुवन् ॥ ८५ ॥

हे देवतागण ! मैं आप सब लोगोंसे ही प्रसन्न हूं। हे अनघ। आप लोगोंकी जो जो इच्छा हो वह वह सब कुछ मैंने आपको प्रदान कर दिया है। इस प्रकार वेङ्कटेश्वरने उन सभी देवताओंको वर प्रदान किया। तब वे सभी मुनिवृन्द तथा ब्रह्मादि देवतागण यह बोले ॥८५॥

कृपानिधे नमस्तुभ्यं वरदाय नमो नमः ॥ वेङ्कटाधीश चिद्देश शतक्रु-

त्यो नमो नमः॥८६॥ विज्ञाप्यं किञ्चिदस्तीह शृणुष्व करुणाकर ॥ अनुगृह्ण-
न्नशेषांस्त्वं ददद्दिष्टानि सर्वशः ॥ ८७ ॥ मानवानामपि सहन्नपराधानशे-
षतः ॥ दयालुत्वं प्रकटयन्निह त्वं तिष्ठ केशव ॥८८ ॥ दृग्गोचरं त्वामा-
लोक्य वेङ्कटाद्रिशिरोमणे ॥ कलौ युगे मनुष्याश्च भूयासुर्वीतकल्म-
षाः ॥८९॥ एवं सर्वोपकारार्थमत्र स्वामिसरस्तटे ॥ रमासमेतः सन्तिष्ठस्वै-
तन्नः प्रार्थितं हरे ॥ इति सम्प्रार्थितः सर्वैस्तत्रैवाऽऽस्ते कृपानिधिः ॥९०॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीश्रीनिवासा-
विर्भाववर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

हे कृपानिधान ! हे वरदाता ! आपको नमस्कार है। हे वेङ्कटाधीश ! हे संसारके स्वामी ! आपको वारम्वार नमस्कार है। हे करुणानिधान ! हमारा कुछ निवेदन है, उसे आप श्रवण करें। हम सबपर अनुग्रह करते हुए आप सब प्रकारसे इष्टदान करें। मनुष्योंके भी अशेष अपराधोंको सहन करते हुए आप अपनी परम दया प्रकट करते हुए हे केशव भगवान् ! आप यहां ही स्थिर रहें। हे वेङ्कटाद्रि शिरोमणि ! आपको दृष्टिगोचर देख कर कलियुगमें सभी मनुष्य पापरहित होवें। इसी प्रकार आप इस स्वामीसरके तीरपर सबको उपकार करनेके लिये श्रीरमादेवीके साथ स्थित रहें, यही हमलोगोंकी प्रार्थना है। इस प्रकार सबसे प्रार्थित हो कर कृपाके निधान श्रीभगवान उसी स्थानमें रहते हैं ॥९०॥

॥ इति द्वितीयोऽध्यायः ॥

तृतीयोऽध्यायः



स्वामि सरोवर प्रभु-विभव, कथित अगस्त्य मुखात ।,
महिमा धार कुमारकी, दुखसे द्विज भृगुपात ॥१॥
प्रभु-दर्शन-भापन वरन, वारन द्विज भृगुपात ।
मज्जन धार कुमार द्विज, प्राप्ति युवा धन गात ॥२॥

अथ अगस्त्यकृतस्वामितीर्थमाहात्म्यभगवाद्दिव्योत्सवयोर्वर्णनम्

अगस्त्य उवाच—

एतादृशो वेङ्कटाद्रिः सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ गङ्गादिकानि तीर्थानि तत्र सन्ति बहून्यपि ॥१॥ तानि वक्तुं न शक्नोमि बहुत्वादृषिसत्तमाः ॥ राजते सर्वतीर्थानां स्वामि स्वामिसरोवरम् ॥ २ ॥ तत्र स्नातुं समायान्ति प्रतिवर्षं जना भुवि ॥ धनुर्मासे शुक्लपक्षे द्वादश्यामरुणोदये ॥ ३ ॥ आयान्ति सर्वतीर्थानि तत्र स्नाता निरेनसः ॥

श्री अगस्त्यजी बोले—सब लोकोंमें श्री वेङ्कटाद्रि इस प्रकार प्रसिद्ध है । वहां गङ्गा आदि अनेकों तीर्थ हैं । हे ऋषिसत्तमो ! अधिक होनेके कारण मैं उनका (तीर्थोंका) वर्णन नहीं करता, सब तीर्थोंका स्वामी हो कर वहां स्वामिसरोवर विराजता है । प्रति वर्ष वहां स्नान करनेके लिये पृथ्वीके बहुत मनुष्य आते हैं । धनुर्मासके शुक्ल पक्षकी द्वादशीको अरुणोदय कालमें सभी तीर्थ वहां आते हैं । अतः वहां उस समय स्नान करनेवाले निष्पाप हो जाते हैं ॥

तस्य श्रीवेङ्कटेशस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ४ ॥ चकार कन्यामासे तु ध्वजारोहमहोत्सवम् ॥ प्रतिवर्षं च तत्सेवानिमित्तं सर्वमानवाः ॥ ५ ॥ अङ्गकोमलकर्नाटकाशीगुर्जरदेशगाः ॥ चोलकेरलपाण्ड्यादिसर्वदेशसमु-

द्रवाः ॥६॥ सकुटुम्बाश्च सेवार्थमायान्ति प्रतिवत्सरम् ॥ देवाश्च ऋषयः सिद्धा योगिनः सनकादयः ॥७॥ ये भाद्रपदमासे तु वेङ्कटेशमहोत्सवे ॥ सेवां कुर्वन्ति ते सर्वे निष्पापा उत्तमोत्तमाः ॥ ८ ॥

सब लोकोंके पितामह श्री ब्रह्माजीने कन्या मासमें इन्हीं श्रीवेङ्कटेश भगवानका ध्वजारोपण महोत्सव सम्पादन किया था। उनकी सेवा करनेके लिये प्रतिवर्ष अङ्ग, कोसल, कर्नाटक काशी, गुजरात, चोल, केरल, पाण्ड्यादि सभी देशमें रहनेवाले सभी मनुष्य अपने सम्पूर्ण कुटुम्बके साथ आया करते हैं। प्रतिवर्ष देवता, ऋषि, सिद्ध, योगी, सनकादि मुनि भी आया करते हैं! जो कोई भी भाद्रपद मासमें श्री वेङ्कटेश महोत्सवमें उनकी सेवा करते हैं, वे सभी पापमुक्त हो कर, स्वयं भी उत्तमसे भी उत्तम हो जाते हैं ॥८॥

पुनस्त्वहं प्रवक्ष्यामि तीर्थवैभवमद्भुतम् ॥ तच्छृणुध्वं सावधानं श्रवणेऽपि महाफलम् ॥ ९ ॥ उत्तरे स्वामितीर्थस्य पापनाशनसंज्ञकम् ॥ तीर्थं महत्सर्वपापविनिर्मोचनसाधनम् ॥ १० ॥

फिर भी मैं आप लोगोंसेअत्युत्तम तीर्थ वैभवका वर्णन करता हूं। श्रवण करनेसे भी बहुत महान फल देनेवाला उसको आपलोग सावधान हो कर श्रवण करें। स्वामितीर्थके उत्तर पापनाशन नामका सब पापको नाश करनेवाला महान तीर्थ है ॥ १० ॥

अथ कुमारधारामाहात्म्यम्

ततो वायव्यदिग्भागे कौमारं तीर्थमुत्तमम् ॥ कुमारधारिका चेति नाम लोके प्रशस्यते ॥११॥ अद्भुतं तस्य माहात्म्यं श्रृणुत द्विजपुङ्गवाः ॥

उसके वायव्य दिशामें परमोत्तम कुमारतीर्थ है जो कुमार धारिकाके नामसे ही संसारमें प्रसिद्ध है। हे द्विजपुङ्गवो! उसका अति अद्भुत माहात्म्य आप लोग भी श्रवण करें ॥ १२ ॥

पुरा कश्चिद् द्विजो वृद्धो दारिद्र्येण च पीडितः ॥ १२ ॥ कुटुम्बभरणायोग्यो विललाप दिवानिशम् ॥ इह लोके परे लोके सौख्यहेतुर्धनं किल ॥ १३ ॥ तन्नास्ति मम पापेन पूर्वजन्मकृतेन च ॥ परलोकहितं धर्माचरणेन हि साध्यते ॥ १४ ॥ शक्तिस्तदस्ति कर्तुं न वृद्धत्वाद्दुर्बलस्य मे ॥ वृथा जन्म ममैतद्धि कर्तव्यं किमतः परम् ॥ १५ ॥

प्राचीन कालमें दरिद्रतासे पीड़ित कोई वृद्ध ब्राह्मण अपने कुटुम्बका भरण पोषण करनेमें एकदम असक्त हो कर दिन रात विलाप करता रहता था कि, इस लोक तथा परलोकमें सुखके लिये धन ही है। वही मुझको पूर्व

जन्मकृत पापके कारण नहीं है। परलोकमें भलाई और सुख धर्माचरण करनेसे ही सिद्ध होता है। बुढ़ापा तथा दुर्बलताके कारण वह सब करनेको मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं है। मेरा यह जन्म वृथा ही है। इसके बाद अब क्या कर सकते हैं ॥ १५ ॥

अथ दारिद्र्यदुःखासहवृद्धद्विजकृतभृगुपतनयत्नः

इति निन्दापरो भूत्वा पुत्रदारान्विहाय च ॥ आगत्य दुःखितः सोऽथ स्वर्णमुख्याः समीपतः ॥ १६ ॥ अहं शेषाद्रिशिखरात्पतिष्य इति निश्चितः ॥ आरुह्य वेङ्कटं शैलं भृगोः पातसमीहया ॥ १७ ॥ उच्चैः स्वरेण चुक्रोश तत्र स्थित्वा स भूसुरः ॥ ब्रह्मविष्णुमहेशानाश्चन्द्रसूर्यौ तथाऽश्विनौ ॥ १८ ॥ सर्वभूतानि शृण्वन्तु दुःखितस्य वचो मम ॥ दारिद्र्यावृद्धभावाच्च जन्म व्यर्थमभूदिति ॥ १९ ॥ पतिष्येऽहं पतिष्येऽहं पतिष्येऽहं न संशयः ॥

इस प्रकार विलापपरायण हो कर लड़कों एवं स्त्रीको छोड़ कर परम दुःखित हो वह इस सुवर्ण- मुखरीके निकट आ कर और "मैं शेषाद्रिके शिखरपरसे गिर पड़ूंगा" ऐसा निश्चय करके ऊंचे स्थानसे गिरनेकी इच्छासे वह ब्राह्मण वेङ्कट पर्वतपर चढ़ खड़ा हो कर खूब उच्चस्वरसे चिल्लाया कि "ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चन्द्रमा, सूर्य, अश्विनीकुमारों, सर्व भूतों ! मुझ अत्यन्त दुःखितका वचन श्रवण करो—दरिद्रता तथा बुढापाके कारण मेरा जन्म व्यर्थ हो गया। मैं अवश्य ही गिरूंगा, अवश्य गिरूंगा, इसमे कुछ सन्देह नहीं है ॥ २० ॥

अथ भृगुपतनोद्युक्तं वृद्धं प्रति भगवदुक्तिः

इत्याक्रोशन्तमागत्य वेङ्कटेशो ददर्श ह ॥ २० ॥ मृगयारसिकस्तत्र सञ्चरन्मुनिपुङ्गव ॥ अधस्तात्पर्वतप्रान्ते राजपुत्राकृतिं दधत् ॥ २१ ॥ हस्तमुद्धृत्य तं पश्यन्नुवाचेदं द्विजं तदा ॥

इस प्रकार चिल्लाते हुए उस ब्राह्मणको उसी पर्वतके निम्नतलमें राजकुमारके पुत्रका वेष ले कर विचरण करते हुए मृगयारसिक श्री वेङ्कटेश भगवानने देखा और देखते ही हाथ उठा कर बोले ॥ २२ ॥

विप्र विप्रावरोह त्वं मा साहसमिदं कुरु ॥ २२ ॥ विप्रस्य तु भृगोः पातः शास्त्रेषु न हि निश्चितः ॥ तस्मात्प्रेत्य च दुःखाय मा साहसमिदं कुरु ॥ २३ ॥ मयोच्यते तव हितमवरुह्य शृणुष्व तत् ॥ श्रुत्वेति तं नृपा-

कारं दृष्ट्वा वृद्धो महीसुरः ॥ २४ ॥ अवरुह्य तमाहेदं पुण्याच्छैलोत्तमा-
त्तदा ॥ पुत्रदारांश्च मां रक्ष महैश्वर्यप्रदो भव ॥२५॥

हे विप्र ! हे विप्र !! तुम उतरो, ऐसा साहस मत करो । ब्राह्मणोंको भृगुपात करना शास्त्रमें नहीं माना गया है। इसीलिये प्रेत हो कर भी दुःख पानेके लिये ऐसा साहस मत करो, तेरी हितकी बात मुझसे कही जाती है। तुम उतर कर श्रवण करो। यह सब सुन कर, उसका राजवेष देख कर वृद्ध ब्राह्मणने उस परमोत्तम पर्वतपरसे उतर कर कहा कि आप मेरी, मेरी स्त्री और बच्चोंकी रक्षा कर महा ऐश्वर्यको प्रदान करनेवाले हूजिये ॥ २५ ॥

इत्युक्तवति विप्रेऽस्मिन् माधवो वाक्यमब्रवीत् ॥ सर्वं ददामि हस्तं
त्वमवलम्ब्यानुयाहि माम् ॥ २६ ॥

ब्राह्मणके यह कहने पर माधव भगवान बोले—मैं सब कुछ दूंगा, तुम मेरे हाथको पकड़कर मेरे पीछे पीछे चले आओ ॥ २६ ॥

अथ वृद्धस्य कुमारधारास्नानेन कौमारसंपत्प्राप्तिः

इत्युक्तस्तत्करालम्बं कृत्वा मन्दं ययौ द्विजः ॥ तमादाय हरिः श्री-
मद्वेङ्कटाचलनायकः ॥ २७ ॥ पापनाशादुत्तरत एतत्तीर्थं निनाय तम् ॥
उवाच खिन्नं स भृशं खेदशान्त्यर्थमत्र वै ॥ २८ ॥ स्नानं कुरु ततः
खेदशान्तिस्तव भविष्यति ॥

ऐसा कहे जाने पर वह ब्राह्मण उनके हाथको पकड़ कर धीरे धीरे चला। श्रीमान् वेङ्कटनायक भगवान पाप नाशन तीर्थके उत्तरस्थ इस तीर्थ पर ले आ कर उस अत्यन्त दुःखी ब्राह्मणसे बोले कि खेद शान्ति करनेके लिये तुम यहां स्नान करो, उसीसे तुम्हारा खेद शान्त हो जायगा ॥ २८ ॥

इत्युक्ते तत्र तत्तीर्थे स्नात्वोत्थाय युवाऽभवत् ॥२९॥ मनः प्रसन्नतां
यातं कुमारश्च तदाऽभवत् ॥ तीरं तु सर्वतः पश्यंस्तमदृष्ट्वाऽन्वतप्य-
त ॥३०॥ मदिष्टदेवो मामत्र त्यक्त्वा कुत्र गतो नु किम् ॥

ऐसा कहने पर वह उसी तीर्थमें स्नान कर निकला तो युवक हो गया। मन प्रसन्न हो गया और वह एकदम कुमार हो गया। तीर्थ तीरके चतुर्दिक देखते हुए उसने जब उस राजपुत्रको नहीं देखा तब वह अत्यन्त पश्चाताप करने लगा। हे मेरे इष्टदेव ! मुझको त्याग कर आप कहां और किस लिये चले गये ॥ ३१ ॥

अथ कुमारधारास्नानप्राप्तयौवनं वृद्धं प्रत्यन्तर्हितभगवदुक्तिः

अन्तर्हितः स भगवानाकाशस्थोऽब्रवीदिदम् ॥ ३१ ॥ अहं तु वेङ्क-

टाधीशस्तव स्वामी न संशयः ॥ दत्तं तव कुमारत्वं तीर्थस्नानेन भूसुर ॥ ३२ ॥ वेङ्कटेशेन ते दत्तमैश्वर्यमिह भूसुर ॥ स्वदेशं गच्छ शीघ्रं वै स्त्रीबालसहितो भव ॥३३॥ शरीरे च बलं जातं शारीरं धर्ममाचर ॥ दानानि दिश विप्रेभ्यो बन्धुभ्यश्च धनं दिश ॥ ३४ ॥ भोजनं दिश विप्रेभ्यः स्वयं भुङ्क्ष्व यथासुखम् ॥ अनिषिद्धसुखत्यागी पशुरेव न संशयः ॥३५॥ निषिद्धसुखभोक्ता च पशुरेव न संशयः ॥ श्रीवेङ्कटेशः प्रीयतामित्येव सकलं कुरु ॥३६॥ स्त्रीत्यागभोगाकरणे निन्द्यमेव विदुर्बुधाः ॥

तब तिरोहित भगवान आकाशमें ठहर कर यह वचन बोले—मैं तो तुम्हारा स्वामी वेंकटाधीश हूं। इसमें संशय नहीं है। हे भूदेव! तुमको तीर्थ स्नानसे मैंने कुमारभावको प्रदान किया। हे भूसुर! यहां पर तुमको वेङ्कटेशजीसे ही ऐश्वर्य भी दिया गया है। अपने देशमें जाओ और अपनी स्त्री तथा बालकके साथ रहो। तुम्हारे शरीरमें अब बल हो गया। अब शारीरिक धर्मोंका आचरण करना, ब्राह्मणोंको दान देना, बन्धुवर्गोंको धन देना, ब्राह्मणोंका भोजन देना तथा स्वयं भी यथारुचि भोजन करना। अनिषिद्ध भोगोंको त्यागनेवाला तथा निषिद्ध सुखको भोग करनेवाला भी निस्सन्देह पशुके समान है। श्री वेङ्कटेश भगवानकी प्रसन्नताके लिये यही सब कुछ करना। स्त्रीको त्याग देना, अथवा नर्मभोग न करना विद्वानने निन्द्य ही कहा है॥ ३७॥

इत्युक्ते सर्वदेवाश्च समागत्याब्रुवन्वचः ॥ ३७ ॥ अस्य तीर्थस्य महिमा ह्यहो वाचामगोचरः ॥ कुमारत्वं धनित्वं च सद्य एव द्विजेऽभवत् ॥३८॥ यतः कुमारतां यातः सद्यो वृद्धमहीसुरः ॥ तस्मात्कुमारधारेति लोके ख्यातिं गमिष्यति ॥ ३९ ॥ कुमारतीर्थे यः स्नातो निष्पापः स सुखी भवेत् ॥

इतना कहने पर सब देवता आ कर यह वचन बोले—कि अहो! इस तीर्थकी महिमा वचनसे परे है। प्रत्यक्ष ही इस ब्राह्मणके कौमार तथा ऐश्वर्य दोनों प्राप्त हुए। जिससे इस ब्राह्मणने सद्यः कुमारत्वको पाया, इसीसे कुमारधाराके नामसे लोकमें इसकी ख्याति होगी। कुमारतीर्थमें जो स्नान करता है वह निष्पाप हो कर सुखी हो जाता है॥ ४०॥

इत्युक्त्वा सर्वदेवेषु गतेषु त्रिदिवं द्विजः ॥ ४० ॥ यातः स्वदेशं सन्तोषान्महदैश्वर्यमाप्तवान् ॥ पुत्रदारादिसहितो गृहधर्मं चकार ह ॥४१॥

श्रीवेङ्कटेशः प्रीयतामित्येव कथयन्सदा ॥ इष्टं फलमवाप्यान्ते विष्णुलोकं जगाम ह ॥ ४२ ॥ कुमारधारिकेत्येव विष्णुनाऽप्येकदोदितम् ॥

इस प्रकार कह कर सब देवताओंके स्वर्गमें चले जानेके बाद यह ब्राह्मण भी अपने देशको चला गया और सन्तोषसे उसने महान ऐश्वर्यको लाभ किया और पुत्र तथा स्त्रीके साथ बहुतसे धर्म किये। " श्री वेङ्कटेशजी प्रसन्न हो " सदा ऐसा कह कर सब कुछ करता हुआ अपना इष्टफलको पा कर अन्तमें वह श्री विष्णुलोकमें चला गया। एक बार विष्णुसे भी " यह कुमारधारिका ही है " ऐसा कहा गया था ॥

ऋषय ऊचुः—

तत्कदाऽऽगत्य देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥४३॥ कुमारधारिकेत्ये-तदुक्तं तद्विस्तराद्वद ॥ ४४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्ये कुमारधारा-माहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

ऋषिगण बोले—श्री महाप्रभु विष्णु भगवानसे यह कुमारधारिका ही है, ऐसा कब कहा गया था उसे विस्तार पूर्वक कहिये ॥ ४४ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः

चतुर्थोऽध्यायः

स्कन्ध तपस्या तीर्थबल, तारक - बध अघनाश ।
पाप मुक्ति-हित प्रश्न, शिव - कथन उपाय-निवास ॥१॥
बहु तीरथ महिमा-कथन स्कन्द-गमन सोइ धाम ।
ब्रह्म - रुद्र - देवा - गमन, सेवन धार ललाम ॥२॥
स्कन्द विनय भगवत कथन, महिमा धार कुमार ।
स्नान समय निर्धार तहं, सदा निवास कुमार ॥३॥

अथ स्कन्दस्य कुमारधारातीर्थे तपःकरणेन तारकवधोत्थब्रह्महत्याविमुक्तिः

अगस्त्य उवाच—

कुमारधारिकाख्यानं वेङ्कटेशकथान्वितम् ॥ सर्वे शृणुत विप्रेन्द्रा वाजपेयफलाधिकम् ॥ १ ॥

श्री अगस्त्यजी बोले—हे विप्रेन्द्रवर्ग ! श्री वेङ्कटेशजीकी कथाके साथ वाजपेय यज्ञके फलसे अधिक फल देने वाली कुमारधारिकाकी कथाको श्रवण करें ॥ १ ॥

कदाचिच्छङ्करसुतस्तारकाख्यं महासुरम् ॥ हत्वा तत्कर्मपापेन ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥२॥ शम्भोः सकाशमागत्य दुःखितस्तारकान्तकः ॥ उवाच पितरं स्वामिन्मत्पापं शृणु मे पितः ॥ ३ ॥ देवानामुपकारार्थे तारको निहतो मया ॥ तेन तस्य वधेनैव हत्या मां बाधतेऽधिकम् ॥ ४ ॥ तत्प्रायश्चित्तमधुना प्रब्रूहि मम शङ्कर ॥

किसी समय श्री शङ्करजीके पुत्र कार्तिकेयजीने तारक महा असुरको मार कर उस कर्मके पापसे ब्रह्महत्याको प्राप्त किया। तारकासुरको नष्ट करनेवाले श्री कार्तिकेय जी दुःखित हो कर अपने पिता श्री शङ्करजीके निकट जा कर बोले—हे पिताजी ! हे प्रभो ! मेरे पापको सुनिये। देवताओंके उपकारके लिये मुझसे तारकासुर मारा गया है। उसके वध करनेसे पापकी पैदा हुई हत्या मुझको अत्यन्त बाधा दे रही है। इसलिये हे शङ्करजी ! अभी उसका प्रायश्चित्त मुझको बतावें ॥ ५ ॥

सर्वज्ञः शङ्करः प्राह पुत्रं देवहितावहम् ॥ ४ ॥ सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम् ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति पुत्रक ॥ ६॥ एतत्प्राह रहस्यं वै सदा मनसि तिष्ठतु ॥ अन्यच्च किञ्चित्ते वक्ष्ये प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥ ७ ॥

देवताओंके हितकारी अपने पुत्रसे सर्वज्ञ श्रीशङ्करजी बोले—हे पुत्र ! मनुष्य एक बार नारायणका कीर्तन करनेसे तीन सौ कल्पपर्यन्त गङ्गादि सब तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पाता है। यह भी उन्होंने कहा कि यह परम-रहस्य सदा मनमें रखना और भी कुछ परमोत्तम प्रायश्चित्त कहता हूं ॥ ७ ॥

सुवर्णमुखरीतीरे लक्ष्मीपतिनिवासभूः ॥ वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकेषु वर्तते ॥ ८ ॥ तत्र तीर्थान्यनन्तानि तेषु किञ्चिद्वदामि ते ॥ चक्र-

तीर्थं स्वामितीर्थं मत्स्यपाण्डवतीर्थकम् ॥९॥ नागतीर्थं बिल्वतीर्थं जाबालेस्तीर्थमेव च ॥ आकाशगङ्गातीर्थं च पापनाशनमेव च ॥१०॥ तुम्बुरुवामनतीर्थं च कौमारं मुख्यमेव च ॥ वेङ्कटाचलतीर्थानि यः कीर्तयति सर्वदा ॥ ११ ॥ अनेकजन्मपापानि नश्यन्त्येव न संशयः ॥

स्वर्णमुखरी नदीके तीरपर श्रीलक्ष्मीपति भगवानका निवास स्थान सब लोकोंमें प्रसिद्ध वेङ्कटाद्रि इस नामसे है। वहां अनन्त तीर्थ हैं। उनमेंसे कुछ मैं तुमसे कहता हूं। चक्रतीर्थ, स्वामितीर्थ, मत्स्यतीर्थ, पाण्डवतीर्थ, नागतीर्थ, बिल्वतीर्थ जाबालिके तीर्थ, आकाशगङ्गातीर्थ, पापनाशनतीर्थ, तुम्बुरुतीर्थ, वामनतीर्थ कुमारतीर्थ, आदि ये सभी मुख्य तीर्थ हैं। जो कोई वेङ्कटाचलपर्के तीर्थोंका सदा कीर्तन करेगा, तो उसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं है॥ १२॥

स्वामितीर्थस्य तीरे तु श्रीनिवासः परात्परः ॥ १२ ॥ नित्यं वसति सर्वेषां लोकानां हितकाम्यया ॥ तत्र वेङ्कटशैलेशं वेङ्कटेशेति सर्वदा ॥१३॥ यो वै स्मरति तं नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति ॥ गत्वा तं च प्रणम्य त्वं कौमारं व्रज तीर्थकम् ॥ १४ ॥ तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये त्रिकालं विजितेन्द्रियः ॥ श्रीवेङ्कटेशाय नम एवं प्रणवपूर्वकम् ॥१५॥ मन्त्रं जपन्महाबुद्धे तपः कुर्वित्यचोदयत् ॥

स्वामितीर्थके तीर ही पर परात्पर श्रीनिवास भगवान सब लोकोंकी हितकामनासे नित्य निवास करते हैं। वहां जो वेङ्कटपर्वताधीशको श्री वेङ्कटेश्वर ऐसा सदा स्मरण करता है, उसको विष्णु भगवान प्रसन्न हो जाते हैं। तुम उनको प्रणाम कर कुमारतीर्थको जाओ और वहां जा कर उस श्रेष्ठ तीर्थमें त्रिकाल जितेन्द्रिय हो कर स्नान कर ॐ प्रणवमन्त्रके साथ "श्री वेङ्कटेशाय नमः" इसी मन्त्रको जपते हुए तपस्या करो ॥ १६ ॥

पितृवाक्यं ततः श्रुत्वा देवसेनापतिस्तदा ॥ १६ ॥ चक्रतीर्थे कृतस्नानः स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥ वेङ्कटाद्रेः क्रोशमात्रे क्रोशन्ती विस्वरं स्थिता ॥ १७ ॥ ब्रह्महत्या तस्य गिरेर्माहात्म्यं वर्ण्यते कथम् ॥ प्रयातः स्वामिसरसि स्नात्वा सुतुमापतेः ॥ १८ ॥ वेङ्कटेशं प्रणम्याथ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम्॥ ब्रह्मरुद्रादिवन्द्यं त्वां भजे वेङ्कटनायकम् ॥१९॥ निवारयन्ननिष्टानि साधयेष्टानि माधव॥ इति स्तुत्वा वेङ्कटेशं पापनाशनमाययौ ॥२०॥ तत्र स्नानेन सर्वाणि पापानि विलयं ययुः ॥ ततो वायव्यदि-

ग्भागे काश्चिद्धारां जगाम सः ॥ २१ ॥ धारारूपेण पतितामत्यन्तगिरि-
गह्वरे ॥

तब देवताओंके सेनापति कार्तिकेयजी पिताके वाक्य सुन कर चक्रतीर्थमें स्नान कर पुनः स्वामिपुष्करिणीको चले गये। उनकी ब्रह्महत्या वेङ्कटाद्रिसे कोशभर दूर ही विकृत स्वरसे चिल्लाती हुई रह गई, तो फिर पर्वतका माहात्म्य किस तरह वर्णन किया जाय। स्वामिसरोवरमें जा कर स्नान कर श्री उमापतिके पुत्र कार्तिकेयजी श्रीवेङ्कटेश भगवानकी प्रदक्षिणा एवं प्रणाम करके हे माधव ! ब्रह्मा, रुद्र आदि सबसे वन्दनीय, वेङ्कटनाथ आपको प्रणाम करता हूं, आप अनिष्टोंको निवारण करते हुए हमारे इष्टोंकी सिद्धि कीजिये, इस प्रकार श्रीवेङ्कटेश भगवानकी स्तुति कर, पाप नाशन तीर्थमें चले आये। उस स्थानमें स्नान करनेसे सभी पाप नष्ट हो गये। तब वायव्य दिशामें किसी धाराके पास गये जो धारारूपसे पर्वतके अत्यन्त गम्भीर गह्वरमें गिरती थी ॥ २२ ॥

चूतमन्दारपनसकुटजैश्चापि चार्जुनैः ॥ २२ ॥ नयनानन्दजननैर्य-
हुशाखिभिरावृते ॥ सिंहशार्दूलशरभैर्हरिणादिमृगान्विते ॥२३॥ तापसै-
र्नियताहारैस्तपोनिष्ठैः समन्विते ॥ तस्मिंस्तीर्थे कृतस्नानः कृतदेवपितृत-
र्पणः ॥ २४ ॥ वसानो वाससी शुद्धे यतवाक्कायमानसः ॥ प्राङ्मुखः-
सुखमासीनो वेङ्कटेशमनुस्मरन् । २५ ॥ लक्ष्मीमहीभ्यां सहितं भूषणोत्त-
मभूषितम् ॥ स्मेराननाम्बुजं पीतवाससं तमधोक्षजम् ॥ २६ ॥ महादेवो-
क्तमन्त्रेण जपं कुर्वन्दिवानिशम् ॥ फलाहारो जलाहारो निराहारस्ततः
स्थितः ॥ २७ ॥

चूत, मन्दार, पनस, कुटज, अर्जुन आदि नयनोंको आनन्द देनेवाले वृक्षोंके साथ बहुत तरहके वृक्षोंसे आवृत, सिंह, शार्दूल, शरभ, हरिण आदि पशुसे समन्वित, नियत आहार करनेवाले तपस्वियोंसे परिपूर्ण, उस धारातीर्थमें स्नान तथा देव और ऋषियोंका तर्पण करके शुद्ध वस्त्रोंको धारण कर, काय, मन, वचनको संयमित कर, श्रीलक्ष्मीजी तथा पृथ्वी देवी दोनोंसे युक्त, उत्तमोत्तम भूषणोंसे भूषित, हास्ययुक्त मुखकमलवाले, पीताम्बरधारी उन अधोक्षज श्रीवेङ्कटेश भगवानको स्मरण करते हुए कार्तिकेयजी महादेवके बताये हुए महामन्त्रसे दिन रात जप करते हुए, फलाहारी, जलाहारी, अथवा निराहारी तक रह कर वहां स्थित रहे ॥२७ ॥

अथ कुमारधारातीरे स्कन्दतपस्तुष्टभगवदाविर्भावः

तपः कुर्वति शेषाद्रौ नीलकण्ठात्मजे शुभे ॥ कुम्भमासे पौर्णमास्यां
मघायां सौम्यवासरे ॥ २८ ॥ मध्याह्ने प्रादुरभवद्यथा मनसि चिन्तितः ॥

भो कुमार कुमारेति प्राह गम्भीरया गिरा ॥ उन्मील्य चक्षूंषि तदा षण्मुखोऽपश्यदन्तिके ॥ २९ ॥ शङ्खं चक्रं धारयन्तं कराभ्यां फलप्रदर्श्यूरुगवामहस्तम् ॥ प्राप्ये इमे इत्यपरेण पादे सन्दर्शयन्तं करपङ्कजेन ॥ ३० ॥ लक्ष्मीमहीभ्यां ललिताकृतिभ्यामशेषभूषोत्तमभूषिताभ्याम् ॥ अतिप्रसन्नाननपङ्कजाभ्यां निषेव्यमाणं नितरां प्रहृष्टम् । ३१ ॥ दृष्ट्वोत्थितो देववरः कुमारः प्रदक्षिणानां त्रितयं विधाय ॥ प्रणम्य साष्टाङ्गमनन्यचेताः कृताञ्जलिः स्तोत्रमथो चकार ॥ ३२ ॥ जय देव जगन्नाथ जय लक्ष्मीपते हरे ॥ जय लोकेश सर्वेश दोषापह नमो नमः ॥ ३३ ॥

मंगलमूर्ति, श्री नीलकण्ठ भगवान शंकरके पुत्रके शेषाद्रि पर तपस्या करते समय कुम्भमासकी पूर्णिमाके मघानक्षत्रके सोमवारके मध्याह्न समयमें ठीक वैसे ही भगवान प्रकट हुए, जैसा मनमें चिन्तन किये गये थे और गम्भीर रीतिसे 'हे कुमार ! हे कुमार !' ऐसा पुकारा—तब षण्मुख कार्तिकेयजीने आंखें खोल कर, शंख तथा चक्रको हाथोंसे धारण किये, फलको दिखाते हुए, बायें जांघमें लगाये हुए हस्तवाले, दूसरे हाथसे प्रणतार्तिरूप श्रीचरणोंको दिखाते हुए—सुन्दर स्वरूपवाली, अशेष भूषणोंसे भूषिता, अत्यन्त प्रसन्न मुख कमलवाली लक्ष्मीजी तथा धरणीदेवियोंसे सदा सेवित—एवं प्रसन्नचित्त भगवानको देखा और देखते ही उठ कर तीन प्रदक्षिणा कर, पुनः अनन्यचेता भगवान्‌को साष्टाङ्ग प्रणाम कर एवं अञ्जलि बांधकर देववर कुमार फिर स्तोत्र पाठ करने लगे हे देव ! हे जगन्नाथ ! हे लक्ष्मीपति !!! आपकी जय हो। हे लोकेश ! हे सर्वेश !! हे दोषोंको नाश करनेवाले आपको प्रणाम है ॥३३॥

अथ भगवत्सेवार्थं कुमारधारां प्रति ब्रह्मरुद्राद्यागमनम्

सर्ववाद्यान्यवाद्यन्त शङ्खध्वनिरभून्महान् ॥३४॥ तुम्बरुर्नारदश्चैव वीणाहस्तौ समागतौ ॥ब्रह्मा च स्कन्दसान्निध्यं ज्ञात्वा सर्वैः समागतः॥३५॥ पार्वतीसहितः शम्भुः पुत्रस्नेहादुपागतः ॥ आरुह्य वृषभं विघ्नराजाद्यैः प्रमथैर्वृतः ॥ ३६ ॥ इन्द्रादयो लोकपालास्त्वशेषा अमृतान्धसः ॥ वैखानसा वालखिल्या ऋषयो ये तपोधनाः ॥३७॥ गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा नागविद्याधरादयः ॥ ये देवयोनयः सन्ति तेऽपि सर्वे समागताः ॥ ३८ ॥

सभी बाजायें बजने लगे तथा महान् शङ्खध्वनि हुई। हाथोंमे वीणा ले कर तुम्बरु, और नारद आये। भगवान्‌को कार्तिकेयजीके पास आये हुए जान कर ब्रह्माजी भी सबके साथ आये। पुत्रके प्रेमसे वृषभपर सवार हो विघ्नराज आदि प्रमथ गणोंसे आवृत हो कर पार्वतीके साथ शंकरजी भी आये। इन्द्रादि लोकपाल, अशेष

देवतागण तथा वैखानस, वालखिल्य, ऋषिगण तथा सभी तपस्विगण, गन्धर्व, अप्सरासमूह, नारायण, विद्याधर आदि जितने देवयोनि थे सभी आ गये ॥३८॥

जय जय वेङ्कटशैलनाथ विष्णो मुनिजनसेवित शेषशैलवास ॥
सकलजनहितावतीर्ण देव जय जय भक्तजनाभिराम पाहि ॥ ३९ ॥ इति
स्तुत्वा प्रणम्याथ ददृशुर्वेङ्कटेश्वरम् ॥ श्रीभूमिसहितं विष्णुं चतुर्बाहुं किरी-
टिनम् ॥ ४० ॥ शङ्खचक्रधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ शेषेण पक्षिरा-
जेन विष्वक्सेनेन पार्षदैः ॥ ४१ ॥ प्रत्यहं सेव्यमानं च प्रह्लादादिभिरे-
व च ॥ शुकेन शुकसन्तानैश्छत्रचामरधारिभिः ॥ प्रसन्नं वेङ्कटाधीशं
प्रणम्य पुनरुत्थिताः ॥ ४२ ॥ व्यासादयः प्रणम्याथ सर्वे तूष्णीं स्थिता-
स्तदा ॥ सर्वेषु शृण्वत्सु तदा हरसूनुरभ्यब्रवीत् ॥ ४३ ॥

व्यासादि सभी लोक—हे वेङ्कटाचलनाथ! विष्णु! मुनिजनोंसे सेवित, शेषाचल निवासी! सभी लोकोंकी भलाई-के लिये अवतीर्ण, देवभक्तोंके आनन्ददाता! आपकी जय हो! जय हो! हमारी आप रक्षा करें'। ऐसी स्तुति कर और प्रणाम कर, और शङ्ख, चक्रधारी, वनमालासे शोभित, शेषनाग, पक्षिराज गरुड, विष्वक्सेन आदि पार्षदोंसे नित्य सेवित, तथा प्रह्लाद, शुकदेव, शुकदेवकी सन्तानो आदिसे छत्र तथा चमर धारण करनेवालोंसे सेवित, परम प्रसन्नचेता भगवान् श्रीवेङ्कटाधीशको बार बार प्रणाम कर पुन उठ चुप हो कर खडे हो गये। तब सबको सुनाते हुए श्रीमहादेव-के पुत्र कार्तिकेयजी बोले ॥४५॥

अथ स्कन्दकृत श्रीश्रीनिवासस्तुतिः

नमाम्यहं वेङ्कटनाथ विष्णो नारायणाशेषजगन्निवास ॥ भक्तार्तिहा-
रिन्भगवन्मुरारे भानिवन्हुनेत्राखिललोकपूज्य ॥ ४४ ॥ ब्रह्मरुद्रादिव-
न्द्याय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ नारायणगिरीशाय नमो नारायणाय ते ॥४५॥
देवाधिदेवतपते सततं नमस्ते सेवापरेषु सुनरां करुणाकराय ॥ दावान-
लाय महते दनुजाटवीनां श्रीवास वक्षसि धृतोत्तमकौस्तुभाय ॥ ४६ ॥
पश्यन्ति त्वां भाग्यवन्तो हि लोके विश्वत्राणायोद्यतं वेङ्कटेशम् ॥ लक्ष्मी-
भूभ्यां पार्श्वयुग्मस्थिताभ्यां ताभ्यां नित्यं सेवितं नित्यमन्घम् ॥ ४७ ॥
अहो भाग्यमहोभाग्यमहोभाग्यमहो महत् ॥ वेङ्कटेशं कृपासिन्धुं दृष्टवान-
स्मि साम्प्रतम् ॥ ४८ ॥

हे नारायण ! सम्पूर्ण संसारमें निवास करनेवाले वेङ्कटनाथ ! विष्णु ! मैं आपको प्रणाम करता हूं । हे भक्तोंके दुःखको हरण करनेवाले मुरारि भगवन् ! हे सूर्य और चन्द्रमाके समान नेत्रवाले, समस्त लोकोंमें पूज्य ! ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओंसे वन्दित ! अनन्त शक्तिवाले, परब्रह्मन् ! नारायण ! गिरीश ! आपको प्रणाम है, प्रणाम है । देवाधिदेव, देवपतिको सदा नमस्कार है, सेवापरायण भक्तोंके ऊपर सदा करुणाकरनेवालेको सदा नमस्कार है । राक्षसरूप महावनके महादावानलरूप तथा श्रीनिवास, वक्षस्थलपर उत्तम कौस्तुभधारी आप भगवानको नमस्कार है । संसारकी रक्षाको तैयार श्रीवेङ्कटेश भगवान् आपको संसारमें भाग्यवान लोग ही देखते हैं । भूदेवी तथा लक्ष्मीदेवी दोनों ही देवियोंको दोनों पार्श्वमें बैठाये दोनों हीसे नित्य सेवित, नित्य बन्धुको भाग्यवान ही देखते हैं। मेरा अहोभाग्य ! मेरा अहोभाग्य !! मेरा महा अहोभाग्य है !!! मैंने अभी कृपासिन्धु श्रीवेङ्कटेश भगवानको देखा ।

इत्युक्त्वा पार्वतीपुत्रः प्रेमावेशवशात्तदा ॥ अशेषवदनैर्विष्णुमाय-
भाषे घनध्वनिः ॥४९॥ चक्षूंषि मे कृतार्थानि दर्शनाद्वेङ्कटेश ते॥ श्रीसूक्ता-
मृतसेकेन कर्णानपि तथा कुरु ॥५०॥ इति वादिनि पुत्रे तु महादेवमुवाच
ह ॥ हरिः स्मेरमुखाम्भोजः शृण्वत्सु सकलेष्वपि ॥५१॥ धन्योऽसि सुतरां
शम्भो सत्पुत्रेणामुना त्वहो ॥ अनेकजन्मतपसां फलं सत्पुत्रता
खलु ॥ ५२ ॥ अनेकजन्मपापानां फलं दुष्पुत्रता भुवि ॥ इत्युक्त्वा पुन-
रूचे तं तनयं शूलपाणिनः ॥ ५३ ॥

उस समय यह कह कर पार्वतीपुत्र कार्तिकेय भी प्रेमके आवेशसे मेघध्वनिके समान ध्वनिसे अपने अशेष मुखोंसे विष्णुसे बोले—हे वेङ्कटेश ! आपके दर्शनसे मेरे नेत्र कृतार्थ हो गये । श्रीसूक्त रूप अमृत सिञ्चनसे मेरे कानोंको भी वैसे ही आप कृतार्थ करें । महादेवके पुत्रने इतना कहनेपर हास्यपूर्ण कमलवदनवाले हरि भगवान् सबको सुनाते हुए महादेवसे बोले—हे शम्भो ! इस सुपुत्रसे आप विशेषरूपसे धन्य है । अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलसे ही सत्पुत्र होता है, तथा संसारमें अनेक जन्मोंके पापसे दुष्पुत्र होता है । इतना कह कर पुनः शूलपाणि शंकरजीके पुत्रसे उन्होंने कहा ॥५३॥

धन्योऽसि कृतकृत्योऽसि वरं वरय साम्प्रतम् ॥ तपसा तव सन्तु-
ष्टिः स्तोत्रेण च ममाभवत् ॥५४॥ प्रमाणीकृत्य वचनं पितुः प्रामाणिको-
त्तम ॥ द्वादशाब्दं तपः कृत्वा शान्तोऽसीह सुखी भव ॥ ५५ ॥

धन्य हो ! कृतकृत्य हो !! अभी कोई वरदान मांगो । तुम्हारी तपस्या तथा स्तोत्रसे मुझको परम सन्तोष हुआ । हे प्रामाणिकोंमें परमोत्तम, अपने पिताके वचनोंको प्रमाण कर बारह वर्ष तक तपस्या कर शान्त हुए हो, अब सुखी रहो ॥ ५५ ॥

स्कन्द उवाच—

अतः परं किं करणीयमास्ते मयाद्य लब्धा तव देव सेवा ॥ समस्त-
लोकैरपि वेङ्कटेश सम्प्रार्थ्यते तावकपादसेवा ॥५६॥ अहो स्वस्यापि भूभर्तु-
र्महिमा सुतरां हरेः ॥ ममाद्य तारकवधोद्भूता हत्या पृथक् स्थिता ॥
श्रीनिवास दयाम्भोधे दुरितक्षयतारक ॥ ५७ ॥

कार्तिकेयजी बोले—हे वेङ्कटेश ! अब इसके बाद मेरा क्या कर्तव्य है ? आज ही मेरे द्वारा आपकी सेवाका भार लाभ किया गया। हे वेङ्कटेश ! सारे संसारसे ही आपकी पादसेवाकी प्रार्थना की जाती है। हे हरे ! इस पर्वतकी महिमा भी अत्यन्त धन्य है। अहो ! हे श्रीनिवास ! हे दयासागर !! हे पापोंको क्षय करनेवाले !! आज मेरा तारकवधसे उत्पन्न पाप भी अलग कर दिया गया है ॥५७॥

अथ भगवद्वर्णितकुमारधारास्नानकालादिनिर्णयः

श्रीभगवानुवाच—

मदीयं मन्त्रमुच्चार्य सुखी भव महामते ॥ एतत्पर्वतमारोढुं वाञ्छा
यस्याविवेकिनः ॥५८॥ पातकं दूरतो नश्येत्किमु भक्तिमतस्तव ॥ तत्रापि
स्वामिसरसि स्नानं कोट्यघनाशनम् ॥५९॥ ॥ शृण्वन्तु देवताः सर्वाः शृणु
स्कन्द वचो मम ॥ कुमारधारिकेत्येव त्वन्नाम्नेदं भविष्यति ॥ ६० ॥ तत्र
स्नाति पुमान्स्त्री वाऽवश्यं कोऽपि तु मानवः ॥ तस्य पापानि नश्यन्ति
सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ ६१ ॥

श्रीभगवान्‌जी बोले—हे महामते ! मेरे मन्त्रको उच्चारण करके सुखी होओ। जिस किसी अविवेकीको भी इस पर्वतपर चढ़नेकी इच्छा होगी, उसके पाप दूरसे ही नष्ट हो जायँगे। फिर भक्तिसम्पन्न आपके विषयमें कहना क्या है ? उसे भी स्वामिसरसीमें स्नान करना करोड़ों पापोंको नाश करनेवाला है। हे सब देवता ! तथा हे कार्तिकेयजी ! आप सब मेरा वचन सुनें। आपके नामसे ही इसका नाम भी कुमारधारा ही होगा। उसमें पुरुष, स्त्री अथवा कोई भी मानव स्नान करता है, उसके सभी पाप अवश्य ही नष्ट हो जाते हैं यह मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥६१॥

यो माघमासे वरपञ्चदश्यां मघायुतायामथ वापि कश्चित् ॥ स्नात्यत्र
भक्त्या न कुमारधारिकातीर्थे स वन्द्यो विधिरुद्रजिष्णुभिः ॥ ६२ ॥ मदा-
विर्भावदिवसे यः स्नाति मनुजोत्तमः ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं शेषेणापि न
शक्यते ॥ ६३ ॥ वर्षे वर्षे च दिवसे स्नातव्यमखिलैरपि ॥ कुमारधारिका-

स्नानमशेषाघहरं विदुः ॥६४॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं शेषेणापि न शक्यते ॥

जो कोई माघमासकी उत्तम पूर्णिमाको मघानक्षत्रके युक्त होने पर अथवा कभी भी यहांके कुमारधारिका तीर्थमें भक्तिके साथ स्नान करता है, वह ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सबसे वन्दित होता है। जो मनुष्य उत्तम मेरे आविर्भावके दिन वहां स्नान करता है, उसके पुण्य फलको शेषनाग भी कह नहीं सकते हैं। प्रतिवर्ष इसी दिन अखिल लोकको यहां स्नान करना चाहिये। विद्वान लोग कुमारधारामें स्नानको अशेष पापोंको नाश करनेवाला बताते हैं। उसके पुण्यफलको कहनेमें शेषनाग भी समर्थ नहीं है ॥६५॥

तस्मिंस्तीर्थे स्वर्णदानमणु मेरुसमं भवेत् ॥६५॥ वस्त्रदानं च गोदा-
नं भूदानं च ततोऽधिकम् ॥ यो वा ददाति मत्प्रीत्या तस्य लक्ष्मीर्गृहे स्थि-
ता ॥ ६६ ॥ अन्नं ददाति चैकस्मै तत्तीर्थदिवसे तु यः ॥ फलं स लभते
विप्रसहस्रान्नप्रदानजम् ॥ ६७ ॥ प्रपां यः कुरुते मार्गे शीतलोदकपूरिता-
म् ॥ तत्सन्ततिमहं सर्वां रक्षामि कृपयाऽनघ ॥६८॥ ताम्बूलं चन्दनं वापि
ब्राह्मणानां ददाति यः ॥ ते निष्पापा भवन्त्येव दशपूर्वैर्दशापरैः ॥६९॥

उन तीर्थमें अणुमात्र स्वर्णदान सुमेरुके समान बड़ा हो जाता है। वस्त्रदान, गोदान तथा उससे भी अधिक पृथ्वीदान जो मुझमें प्रेम करता हुआ देता है, उसके घरमें लक्ष्मी सदा वास करती हैं। जो उस तीर्थके प्रति एक दिन भी अन्नदान करता है वह हजारों ब्राह्मणोंके अन्नदानके फल पाता है। जो मार्गमें शीतल जलसे पूर्ण पौसरा बनाता है उसके सभी सन्तानोंको मैं कृपा करके रक्षा करता हूं। जो ब्राह्मणोंको पान या चन्दन कुछ भी देते हैं, वे दश पहलेके (पूर्वजों) तथा दश पीछेके (वंशजों) के साथ पापमुक्त हो जाते हैं ॥ ६९ ॥

कुम्भमासे पौर्णमास्यां प्रादुर्भावदिने हरेः ॥ कुमारधारिकास्नानं कु-
लकोटिं समुद्धरेत् ॥ ७० ॥ इति मन्त्रं समुच्चार्य स्नात्वानन्तफलं लभेत् ॥
वर्षे वर्षे कुम्भमासे पौर्णमास्यां मघायुजि ॥ ७१ ॥ देवा मनुष्याः सर्वे च
स्नातुमायान्तु सर्वदा ॥ पुण्यदेशेषु सर्वेषु वेङ्कटाद्रिर्विशिष्यते ॥ ७२ ॥ तत्र
सर्वेषु तीर्थेषु स्वामिपुष्करिणी वरा ॥ ततोऽप्येतद्वरं तीर्थं मदाविर्भाववास-
रे ॥ ७३ ॥ इह शम्भुकुमार त्वमाकल्पं पूजयन्वस ॥

कुम्भमासे पौर्णमास्याम, प्रादुर्भाव दिने हरेः। कुमारधारिकास्नानं, कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥
(कुम्भ मासमें पूर्णिमाको भगवानके प्रादुर्भावके दिन कुमारधारिकाका स्नान करोड़ों कुलको उद्धार करता है।)

इस मन्त्रको उच्चारण कर स्नान करनेसे मनुष्य अत्यन्त उत्तम फलको लाभ करता है। प्रतिवर्ष कुम्भमासमें मघान-क्षत्रयुक्त पूर्णिमाको देवता, मनुष्य सभी स्नान करनेके लिये सदा आया करें। सभी पुण्य देशोंमें वेङ्कटाद्रि बहुत उत्तम ही है। उस पर सब तीर्थोंमें स्वामिपुष्करिणी परम श्रेष्ठ है। उसमें भी मेरे आविर्भावके दिन यह तीर्थ और श्रेष्ठ हो जाते हैं। हे शम्भुकुमार! तुम यहां कल्पपर्यन्त पूजन करते हुए निवास करो ॥७४॥

एतत्तीर्थस्य माहात्म्यं बुद्ध्वा वै सर्वदेवताः ॥७४॥ प्रतिवर्षं स्नातु-
मत्र मां द्रष्टुं च तपोधनाः ॥ आयान्ति सावधानं वै ममाविर्भाववासरे ७५
तस्माच्छम्भुकुमार त्वं सर्वदा वस पर्वते ॥ इत्युक्त्वा तं तु हस्तेन पस्पर्श
गुहमच्युतः ॥ ७६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये कुमारधारा-
स्नानेन स्कन्दस्य तारकवधजनितब्रह्महत्याविनिर्मु-
क्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

सब देवता ऋषि इस तीर्थोंका माहात्म्य जान कर ही प्रतिवर्ष यहां स्नान करने तथा मुझको देखनेको मेरे आविर्भावके दिन सावधान हो कर आया करते हैं। इसीसे हे शम्भुकुमार! तुम इस पर्वत पर सर्वदा निवास करो। यह कह कर उसके शरीरको अच्युत भगवानने अपने हाथसे स्पर्श किया ॥ ७६ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः



ऋषि अगस्त्य आदिक मुनिन, सुर-नर-किन्नर-नाग।
मज्जनार्थ तेहि धारमें, स्कन्ध-गमन-सुचियाग ॥१॥
स्कन्ध - तपस्या - तुष्ट होइ, प्रभुका प्रादुर्भाव।
अखिल लोक वरदान बहु, महिमा श्रवण प्रभाव ॥२॥
मार्कण्डेय मुनीशका, पितु - सेवा - आदेश।
विप्र शुद्ध धर्म्माचरण, उभया गमन स्वदेश ॥३॥
मार्कण्डेय मुनीशका, कथन सकल उपदेश।
इस पञ्चम अध्यायमें, लिखा सूत अवशेष ॥४॥

अथागस्त्यादीनां कुमारधारातीर्थस्नानार्थं श्रीवेङ्कटाचलागमनम्

अगस्त्य उवाच—

ततस्तु देवा ऋषयश्च सर्वे गन्धर्वविद्याधरयक्षसिद्धाः ॥ आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवाणा दिव्यं हरेर्नाम च कीर्तयन्तः ॥ कुमारधारां सततं स्तुवन्तो ययुः स्वधामानि मुदान्विनास्ते ॥१॥ शिवात्मजोऽपि तत्रैव भजन् वेङ्कटनायकम् ॥ कुमारधारिकातीरे तिष्ठत्येव चिरं किल ॥२॥ वर्षेवर्षे समायान्ति सिद्धगन्धर्वदानवाः ॥ ऋषयश्च तथा सर्वे भूलोके प्राणिनस्तथा ॥३॥ स्नातुं तस्मिन्महातीर्थे त्वद्दो वेङ्कटवैभवम् ॥ सुवर्णमुखरीतीरे लोपामुद्रापतिः स्वयम् ॥ ४ ॥ इत्युक्त्वा मुनिमुख्येभ्यः पुनरेवमुवाच ह ॥

अगस्त्यजी बोले—तत्पश्चात् सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, सिद्धगण आदि 'आश्चर्य है' आश्चर्य है" ऐसा कहते, भगवानके दिव्यनामोंको कीर्तन करते तथा कुमारधाराकी अनन्त प्रशंसा करते हुए, परम

आनन्दित हो कर अपने अपने निवासस्थानको लौट आये। शिवजीके पुत्र भी वहींपर श्री वेङ्कटनायक भगवानको भजन करते हुए कुमारधाराके तीर पर चिरकालसे निवास करते हैं। प्रति वर्ष उस महातीर्थमें स्नान करनेको सिद्ध, गन्धर्व, दानव ऋषिगण, तथा पृथ्वीलोकके सभी प्राणी आया करते हैं। श्रीवेङ्कटका वैभव अहो। धन्य है !! सुवर्णमुखरी नदीके तीर पर लोपमुद्राके पति स्वयं अगस्त्य महर्षि इतना कह कर पुन मुनिसमूहने बोले ॥ ५ ॥

पञ्चषेभ्यो दिनेभ्योऽथ सेयं पञ्चदशी शुभा ॥५॥ यूयं सर्वेऽपि मुनयो मार्कण्डेय महामुने ॥ शुद्धकाञ्चीप्रदेशीयाः सर्वे गच्छत वेङ्कटम् ॥ ६ ॥ पुनः स्वामिसरस्तीरे वेङ्कटेशं विलोक्य च ॥ तदुत्तरे पापनाशनतीर्थे स्नानादिकारिणः ॥७॥ कुमारधारिकां गत्वा स्नानं कुरुत सत्तमाः ॥ सर्वपापविशुद्ध्यर्थमैश्वर्यसमवाप्तये ॥ ८ ॥ मार्कण्डेय महाभाग किं तीर्थाचरणेन ते ॥ सर्वतीर्थस्नानफलमनेनैव भविष्यति ॥ ९ ॥

पाच या छ दिनके बाद वही मङ्गलमय माघी पूर्णिमा है, आप सब मुनिगण, महामुनि मार्कण्डेय जी, शुद्धजी तथा सभी काञ्ची प्रदेश वासी वेङ्कट पर्वतपर जायें और स्वामिसरोवरके तीर पर श्रीवेङ्कटेशको देख कर उसके उत्तर पापनाशन तीर्थमे स्नान करके कुमारधाराको आ कर आप मुनिवृन्द अपने सभी पापोको शुद्ध करने तथा परम ऐश्वर्यको पानेके लिये उसमे स्नान करें। हे महाभाग मार्कण्डेयजी। बहुत तीर्थका भ्रमण करनेसे क्या लाभ है ? सभी तीर्थोमे स्नान करनेका फल केवल इसीसे हो जायगा।

श्रीसूत उवाच—

इत्युक्ताः सर्व एवैते समारुह्य वृषाचलम् ॥ स्वामिपुष्करिणीस्नानं कृत्वा दृष्ट्वा च केशवम् ॥१०॥ पूर्णिमादिवसे माघे पापनाशे कृताप्लवाः ॥ कुमारधारिकातीर्थे स्नातुं सर्वे समागताः ॥ ११ ॥

श्री सूतजी बोले—ऐसा कहे जानेपर वे सभी वृषाचलपर चढ कर स्वामिपुष्करिणीमे स्नान कर पुन केशव भगवान्के दर्शन कर माघमासकी पूर्णिमाको पापनाशनतीर्थमे स्नान करके पुन कुमारधारिका तीर्थमे स्नान करनेके लिये आये ॥११॥

समस्तदेशजान्मर्त्यान् सर्वान्देशान्नृपानपि ॥ योगिनः सनकाद्यांश्च सिद्धगन्धर्वकिन्नरान् ॥१२॥ समागतान् स्वर्गमुखानीरजान्नृपसत्तमान् ॥

अगस्त्यशिष्यं शुद्धं च मार्कण्डेयमथाग्निजः ॥ १३ ॥ दृष्ट्वा स स्नातुमायातान् प्रहृष्टहृदयोऽभवत् ॥ सर्वे कुमारधारायां सस्नुः सङ्कल्पपूर्वकम् ॥१४॥

सारे देशके निवासी सभी मानवों, सभी देवताओं, सभी ऋषियों, सनकादि योगिगणों, सिद्ध गन्धर्वों, किन्नरों, सुवर्णमुखरी तीर निवासी मुनिसत्तमों तथा अगस्त्यके शिष्य शुद्धमुनि तथा मार्कण्डेयको स्नान करनेके लिये आये हुए देख कर कार्तिकेय परम प्रसन्न हुआ और सभीने संकल्पपूर्वक कुमारधारामें स्नान किया ॥ १४ ॥

वेङ्कटेशार्पणं कृत्वा दानं चक्रुश्च केचन ॥ गन्धर्वयक्षोरगसिद्धसाध्यदेवादिवृन्देष्वपि तीर्थतोये ॥ स्नातेषु सर्वेषु मुदान्वितोऽसौ सस्नौ स्वयं शङ्करनन्दनोऽपि ॥ १५ ॥ विष्णोर्नुकं च श्रीसूक्तं भूसूक्तं च जपन्सदा ॥ तीरमारुह्य विप्राणां नमश्चक्रे प्रसन्नधीः ॥ १६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवायेत्युच्चरन्पार्वतीसुतः ॥

श्रीवेङ्कटेशको अर्पण करके कितनोंने दान दिया। गन्धर्व, यक्ष, नाग, सिद्ध, साध्य देवतावृन्दोंके भी तीर्थ श्रेष्ठमें स्नान करनेपर उस शंकरनन्दन कार्तिकेयजीने भी परम आनन्दित हो कर स्वयं स्नान किया। फिर विष्णोर्नुकम्" श्रीसूक्त, भूसूक्त मन्त्रोंको सदा जपते हुए उन्होंने प्रसन्नचित्तसे तीरपर चढ़ कर ब्राह्मणोंको 'नमः ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ॥ जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः" ऐसा कहते हुए नमस्कार किया ॥१६॥

तदा प्रादुरभूद्देवो वरदः शङ्खचक्रधृक् ॥ १७ ॥ पश्यन्तस्तं सिन्धुजाकाश्यपीभ्यां युक्तं देवा ऋषयो मानुषाश्च ॥ मार्कण्डेयः स्वर्णमुख्या द्विजाश्च शुद्धास्तेनुः सर्व एव प्रणामम् ॥ १८ ॥

पार्वती पुत्रके सामने उस समय, शंख चक्रधारी वरदाता भगवान् प्रगट हुए। लक्ष्मी तथा धरणीदेवीसे युक्त उनको देखते हुए देवता, ऋषि, मनुष्यगण, मार्कण्डेय स्वर्णमुखरीके ब्राह्मणगण तथा शुद्धजी आदि सभीने उनको प्रणाम किया ॥ १८ ॥

लक्ष्मीमहीसेवित वेङ्कटेश कृपानिधे कृष्ण जगत्त्रयेश ॥ मां पालयानाथमनाथबन्धो नमो नमस्ते चरणाम्बुजाय ॥१९॥ इति कृतनतीन् दृष्ट्वा देवः प्रसन्नमनास्तदा विजितजलदध्वानं वाक्यं स्वयं हरिरब्रवीत् ॥

लक्ष्मी तथा पृथ्वीसे सेवित, कृपानिधान, तीनों लोकोंके स्वामी, कृष्णरूप, हे वेङ्कटेशजी ! हे अनाथनाथ !

मुझ अनाथका पालन करो। हे भगवन्! आपके चरणकमलोंमें मेरा प्रणाम है, प्रणाम है। इस प्रकार प्रणाम करते हुए सबको देख कर प्रसन्नचेता हरि भगवान् मेघके गम्भीर ध्वनिको जीतनेवाले शब्दोंसे स्वयं बोलने लगे ॥ २० ॥

इह विधिकृतं स्नानं दानं मम प्रियबुद्धितः सकलदुरितं हत्वा दत्ते
सुखान्यखिलान्यपि ॥ २० ॥ मार्कण्डेय महाबुद्धे सर्वतीर्थफलं तव ॥
अनेन दत्तं शुश्रूषां मातापित्रोः कुरुष्व ह ॥ २१ ॥ अगस्त्यशिष्य विप्रेन्द्र
त्वत्पापान्यखिलान्यपि ॥ गतान्यनेन दत्तानि श्रेयांसि बहुशो मया ।२२।
पुत्रदारादिसंयुक्तः सदाचाररतः सदा ॥ दानानि बहु कुर्वाणः सुखी भव
सुखी भव ॥ २३ ॥ इति ब्रुवन्वेङ्कटेशोऽदृग्गोचरमथो ययौ ॥

यहां विधिपूर्वक मेरे प्रति प्रेम भावसे किया हुआ स्नान या दान, सकल पापोंको हरण कर अखिल आनन्दको देता है। हे महाबुद्धिमान मार्कण्डेय महर्षिजी! इससे आपको सभी तीर्थोंका पुण्य फल दिया गया है, अतः अब आप अपने माता पिताकी सेवा करें। हे अगस्त्यशिष्य विप्रेन्द्र श्रीशुद्धजी! आपके सभी पाप नष्ट हो गये तथा बहुतसे श्रेय आपको मेरे द्वारा दिये गये हैं। पुत्र, स्त्री आदि सबके साथ रह कर सदा सदाचारमें रहते हुए आप सुखी होवें, सुखी होवें। ऐसा बोलते हुए वेङ्कटेश भगवान् अन्तर्धान हो गये ॥२४॥

इत्थं देवस्वामिनोक्ते गतेष्वपि सुरेषु च ॥ २४ ॥ शुद्धः स्वदेशमा-
गत्य पुत्रदारसमन्वितः ॥ स्नानं दानं जपं कुर्वन्वेङ्कटेश इति ब्रुवन् ॥२५॥
इह लोके परत्रापि परं सौख्यमवाप्तवान् ॥

महाप्रभुके ऐसा कहने तथा देवताओंकेभी चले जाने पर शुद्धजीने अपने देशमें आ कर स्त्री, पुत्रों के साथ स्नान, दान, जप, तप तथा श्री वेङ्कटेश! श्री वेङ्कटेश! ऐसा जपते हुए इस लोक तथा परलोकमें भी परम सुखको प्राप्त किया ॥ २६ ॥

मृकण्डोराश्रमं गत्वा मार्कण्डेयः प्रसन्नधीः ॥ २६ ॥ पितरौ तु नम-
स्कृत्य वृत्तान्तं सर्वमब्रवीत् ॥ वाक्यं गरुत्मतः पूर्वं वेङ्कटाचलवैभवम् ॥२७॥
अगस्त्यशिष्यवृत्तान्तं सुवर्णमुखरीस्थलम् ॥ श्रीवेङ्कटेशसेवां च स्वामिपु-
ष्करिणीतटे ॥ २८ ॥ कुमारधारिकातीर्थमाहात्म्यं स्कन्दवैभवम् ॥ आवि-
र्भावं तस्य हरेर्वाक्यं तस्य सुधामयम् ॥ २९ ॥ उक्त्वा स्वपित्रोः सकलं
शुश्रूषामकरोत्तदा ॥

प्रसन्न बुद्धिवाले श्री मार्कण्डेयजीने मृकण्डु आश्रममें जा कर माता पिताको प्रणाम कर पहले श्रीगरुड़जीके वाक्य, पुनः वेङ्कटाचलका वैभव, पुनः अगस्त्य ऋषिके शिष्यका वृत्तान्त, पुनः सुवर्णमुखरी स्थान, स्वामिपुष्करिणीके तट पर श्रीवेङ्कटेश भगवानकी सेवा, पुनः कुमारधारिकातीर्थका माहात्म्य, पुनः कार्तिकेयजीका वैभव, वहां श्री हरि भगवानका आविर्भाव तथा उनका अमृतमय वचन आदि सभी वृत्तान्तोंको कहा और फिर वे अपने माता पिताकी सेवा करने लगे ॥ २९ ॥

श्रीसूत उवाच—

वेङ्कटेशस्य माहात्म्यं यः शृणोत्यपि वा सकृत् ॥ ३० ॥ सर्वपाप-
विनिर्मुक्तः सर्वश्रेयो भविष्यति ॥ वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं कुमारसरसस्त-
था ॥ शृणोति वा पठति वा तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥३१॥ कुमारधारिकाती-
र्थतीरे पठति यस्त्विदम् ॥ शृणोति वा तस्य तस्य सर्वाभीष्टप्रदो
हरिः ॥ ३२ ॥ हरिः ॐ ॐ तत्सत् ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अगस्त्यादीनां
कुमारधारातीर्थस्नानादिवर्णनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५

श्री सूतजी बोले—जो श्रीवेङ्कटेश भगवानका माहात्म्य एक बार भी सुनता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो कर सर्व श्रेयको प्राप्त हो जाता है। वेङ्कटाद्रि तथा कुमारसरोवरका माहात्म्य जो कोई श्रवण करता अथवा पढ़ता है, उसके भी पुण्य फल अनन्त हैं। जो कुमारधारिकातीर्थके तीर पर इसको पाठ करता है, अथवा श्रवण ही करता है उसको हरि भगवान सब अभीष्टोंको देते हैं ॥३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गतश्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये अगस्त्यादीनां
कुमारधारातीर्थस्नानादिवर्णनं नाम
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥
श्रीवेङ्कटाचलाधीशं श्रियाऽध्यासितवक्षसम् ॥
श्रितचेतनमन्दारं श्रीनिवासमहं भजे ॥

॥ श्री श्रीनिवासपरब्रह्मणे नमः ॥

श्रीगरुडपुराणान्तर्गत-

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ।
कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने ॥
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥

प्रथमोऽध्यायः



महामहर्षि वशिष्ठसे, सतीशिरोमणि वाम ।
अरुन्धतीने प्रेमसे, पूछा प्रश्न ललाम ॥१॥
नारि-धर्म उत्तम तदपि, विष्णु क्षेत्रके याग ।
अधिकाधिक फल देत कस, कहहु सहित अनुराग ॥२॥
तुम्बूतीर्थ नद गङ्गके, अघ-नाशक शुभ ठाम ।
इसमें वर्णित है सभी, विश्व विदित जो धाम ॥३॥
अरुन्धती तप ध्यान-हित, शेषाचलको जाय ।
दर्शन करि भगवान की, अस्तुति की हर्षाय ॥४॥

श्रीगरुड उवाच—

ॐ अरुन्धती समस्तानामङ्गनानां पतिव्रता ॥ पतिं स्वं परिपप्रच्छ
लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥

श्रीगरुड़ने कहा—सम्पूर्ण स्त्रियोंमें प्रधान पतिव्रता अरुन्धतीने सब लोकोंकी हितकामनासे अपने पतिसे प्रश्न किया ॥ १ ॥

अरुन्धत्युवाच—

ब्रह्मात्मज नमस्तुभ्यमिदं विज्ञापनं शृणु ॥ पतिशुश्रूषणादन्यः स्त्रीणां
धर्मो न विद्यते ॥ २ ॥ न यागयोगौ न तपो न तीर्थं न सुरार्चनम् ॥
सर्वधर्माधिकं स्त्रीणां पत्युरेव प्रहर्षणम् ॥ ३ ॥ इति श्रुतं मया त्वत्त ऋषि-
भ्योऽन्येभ्य एव च ॥ तथापि जायते प्रीतिर्मम काचिद्गरीयसी ॥ ४ ॥
विष्णुक्षेत्रे क्वचित्पुण्ये तीर्थे सर्वातिशायिनि ॥ कञ्चित्कालं तपः कृत्वा
विष्णुमुद्दिश्य यत्नतः ॥ ५ ॥ विष्णोर्मुखेन सद्धर्मं वाचयित्वा जगत्कृते ॥
सर्वधर्मोत्तमं नृणां दर्शयामीति मे मतिः ॥ ६ ॥ अनुज्ञया स्त्रियो भर्तुर्द्ध-
र्मोचरणमुत्तमम् ॥ विष्णुक्षेत्रं तादृशं मे वद तीर्थोत्तमं तथा ॥७॥

अरुन्धतीने पूछा—हे ब्रह्मपुत्र ! आपको नमस्कार है, आप मेरी विज्ञप्तिको श्रवण कीजिये। हे स्वामिन् ! स्त्रियोंके लिये पतिकी शुश्रूषासे बढ़ कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। न याग, न योग, न तपस्या, न तीर्थ, न देव-पूजा ही है। स्त्रीके लिये सभी धर्मोंसे अधिक यही धर्म है कि, वह सेवा कर अपने पतिको प्रसन्न रखे। ऐसी बातें आपसे और अन्यान्य ऋषियोंसे सुनी है। तथापि मुझे एक बड़ी भारी आकांक्षा होती है कि किसी पवित्र विष्णु तीर्थमें जो सभीसे बढ़ कर हो,श्रीविष्णु भगवान्‌के उद्देश्यसे तपस्या कर संसारके लिये श्रीविष्णुके मुखसे स्वधर्म कहवा कर सभी धर्मोंसे उत्तम धर्म मनुष्योंको दिखा दूं, ऐसा मेरा विचार है। पतिकी आज्ञा ले कर ही स्त्रीके लिये धर्मा-चरण करना उत्तम है। अतः आप मेरी प्रार्थनाके अनुसार मेरे लिये तीर्थोंमें उत्तम एक विष्णुक्षेत्रका निरूपण कीजिये ॥७॥

गरुड उवाच—

अरुन्धत्या पृष्ट इत्थं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ सम्यक्पृष्टमिदं
देवि सर्वलोकहितेच्छया ॥ ८ ॥ तथा वदामि शृणु मे यथा हृत्सम्प्र-
हृष्यति ॥ श्रोतर्यप्रतिपत्तौ तु वक्तुर्वाक्यं वृथा भवेत् ॥ ९ ॥ यथान्धे

भर्तरि स्त्रीणां सौन्दर्यं सकलं मृथा ॥ सावधानमना भूत्वा शृणु तस्माद्वचो मम ॥ १०॥

गरुड़जीने कहा—अरुन्धतीका यह प्रश्न सुन कर वसिष्ठ मुनिने कहा–हे देवि ! तुमने सभी लोगोंकी कल्याणेच्छासे बहुत उत्तम प्रश्न किया है। मैं इस प्रकार निरूपण करूंगा जिससे तुम्हारा हृदय प्रसन्न हो जायगा। देखो, जैसे पतिके अन्धा होनेपर स्त्रीकी सुन्दरता व्यर्थ हो जाती है, ठीक उसी तरह यदि श्रोता ठीक न हो तो, वक्ताका वक्तृत्व व्यर्थ हो जाता है। अतएव तुम अब सावधान हो कर सुनो ॥१०॥

अथ वसिष्ठवर्णितश्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

सुवर्णमुखरीतीरे कश्चिदस्ति महीधरः ॥ वेङ्कटाचलनामाऽसौ सर्वभूभृत्कुलोत्तमः ॥ ११ ॥ अतिप्रीतिर्महाविष्णोस्तत्र वेङ्कटभूधरे ॥ श्वेतद्वीपाच्च वैकुण्ठाद्भानुमण्डलमध्यतः ॥ १२ ॥ यन्नाम कीर्तयित्वापि सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ समस्तश्रेयसां सिद्धिस्तादृशो वेङ्कटाचलः ॥ १३ ॥ यस्मै वेङ्कटशैलाय नमस्कृत्यापि दूरतः ॥ सर्वपापैः प्रमुच्येत तत्पुण्यं क्षेत्रमुत्तमम् ॥ १४ ॥ तत्र स्वामिसरो नाम तीर्थमेकं विराजते ॥ तत्पश्चिमे भूमिकोलस्तटे राजति देवराट् ॥ १५ ॥ श्रीमद्वराहदेवस्य वेङ्कटाचलवासिनः ॥ न मया शक्यते वक्तुं महिमा बहुहायनैः ॥ १६ ॥

सुवर्णमुखरीके तीरपर वेङ्कटाचल नामक एक पर्वत है। यह सभी पर्वतोंमें श्रेष्ठ है। उस पर्वतपर श्रीविष्णु भगवानका श्वेतद्वीप, वैकुण्ठ और सूर्यमण्डलके मध्य भागसे भी बड़ा प्रेम है। जिसके नामके कीर्तन करनेसे भी समस्त पाप नाश एवं यहीं समस्त कल्याणोंकी सिद्धि हो जाती है। और जिसे दूरसे भी नमस्कार करनेसे मनुष्यके सब पाप छूट जाते हैं ऐसे पवित्र और उत्तम क्षेत्र वेङ्कटाचल है। वहा एक स्वामिसरोवर तीर्थ है। उसके पश्चिममें देवनायक और भूमिवराह विराजमान हैं। वेङ्कटपर्वतनिवासी श्रीवाराह भगवान्की महिमा मैं बहुत वर्षों में भी वर्णन नहीं कर सकता ॥१६॥

दक्षिणे स्वामितीर्थस्य तीरे नीरजलोचनः ॥ श्रीवेङ्कटेशो भक्तानां वरदः श्रीनिकेतनः ॥१७॥ निवसत्यच्युतो नित्यं सुलभः सर्वदेहिनाम् ॥ तस्य सेवामपेक्षन्ते ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ॥ १८ ॥ तस्य वेङ्कटशैलस्य सन्ति नामान्यनेकशः ॥ कीर्तनात्पापहारीणि श्रेयोदानि शृणुष्व मे ॥१९॥

स्वामिपुष्करिणीके दक्षिणतीरमें भक्तोंके वरदायक, कमलनयन, श्रीनिवास, नारायदिन तथा सभी जीवोंके अनुकूल श्रीवेङ्कटेश भगवान निवास करते हैं, जिनकी सेवा ब्रह्मरुद्रादि देवता सदा चाहते हैं। उस वेङ्कटाचलके

अनेक नाम हैं, जो कीर्तन करनेसे ही सभी पापोंको नाश कर कल्याण प्रदान करते हैं। अब उन नामोंको तुम मुझसे सुनो ॥ १९ ॥

अञ्जनाद्रिः शेषगिरिर्वृषाद्रिर्वृषभाचलः ॥ नारायणाद्रिः सिंहाद्रिः श्रीशैलः सिंहभूधरः ॥२०॥ एवमादीनि नामानि यः कीर्तयति मानवः॥ प्रातःकाले प्रतिदिनं तस्य पुण्यमनन्तकम् ॥२१॥ तस्मिञ्छ्रीवेङ्कटाधीशे भक्तिमन्तः कलौ युगे ॥ मनोरथान् प्राप्नुवन्ति मनुष्या भाग्यशालिनः ॥२२॥

अञ्जनाद्रि, शेषगिरि, वृषाद्रि, वृषभाचल, नारायणाद्रि, सिंहाद्रि, श्रीशैल, सिंहभूधर इत्यादि इन सब नामोंको जो मनुष्य नित्य सवेरे स्मरण करता है उसे अनन्त सुख प्राप्त होते हैं। उस वेङ्कटाचलपर भक्तिमान तथा भाग्यशाली मनुष्य कलियुगमें अपने सब मनोरथोंको प्राप्त करते हैं ॥ २२ ॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलस्थाकाशगङ्गापापनाशनतुम्बुतीर्थप्रशंसा

उत्तरे स्वामितीर्थस्य वियद्गङ्गा विराजते ॥ तस्या माहात्म्यमतुलं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २३ ॥ ततः पापविनाशाख्य उत्तरे तीर्थनायकः ॥ स्नानेन तत्र नश्यन्ति पापानि विविधान्यपि ॥ २४ ॥ तत उत्तर ऐशाने भागे गिरिवनान्तरे ॥ तुम्बुतीर्थमिति ख्यातः कश्चिदस्ति वरानने ॥ २५ ॥ अनेकवृक्षवितति र्सिंहशार्दूलसंयुतः ॥ निम्नोन्नतस्थले तत्र प्रकृष्टस्तीर्थनायकः ॥ २६ ॥ देवगन्धर्वमुनयस्तुम्बुतीर्थे कृतप्लवाः ॥ कृतार्था अभवन्पूर्वमिति मे ब्रह्मणः श्रुतम् ॥ २७ ॥

स्वामितीर्थके उत्तरमें आकाश गङ्गा बहती है। विद्वानलोग इसकी अतुल महिमा बतलाते हैं। पुनः वहांसे उत्तरकी ओर तीर्थराज पापविनाशन है। वहां स्नान करनेसे अनेक पाप नष्ट हो जाते हैं। वहांसे ईशान कोणमें ऊंचे नीचे पर्वतके जङ्गलोंके भीतर वृक्ष, सिंह, बाघ आदि जन्तुओंसे व्याप्त एक तुम्बुरु नामक विख्यात तीर्थराज विराजमान है। मैंने ब्रह्माजीसे उस ऊंचे स्थानको सुना है। तुम्बुरुतीर्थमें स्नान करनेसे देवता, मुनि तथा गन्धर्वगण भी कृतकृत्य हो गये हैं ॥ २७ ॥

स्वामिपुष्करिणीं गत्वा स्नात्वा तत्र यथाविधि ॥ आदिपोत्रिणमालोक्य वेङ्कटेशे कृतानतिः ॥ २८ ॥ आकाशगङ्गातीर्थे च पापनाशे कृताप्लवा ॥ तत्र गत्वा तुम्बुतीर्थे स्नात्वा निर्मलमानसा ॥ २९ ॥ प्राङ्मुखी त्वं स्थिता भूत्वा तपः कुर्वित्यचोदयत् ॥

तुम स्वामिपुष्करिणी तीर्थपर जा कर वहां विधिपूर्वक स्नान, आदिवराहके दर्शन एवं श्री वेङ्कटेशजीको नमस्कार करके पुनः आकाश गङ्गामें, तदनन्तर पापनाशनमे, इसके बाद तुम्बुरु तीर्थमे स्नान करके विमलचित्त हो पूर्वकी ओर मुख करके तपस्या करो। ऐसी वसिष्ठजीने आज्ञा दी ॥ ३० ॥

अथ वसिष्ठोक्त्याऽरुन्धत्यास्तुम्बुतीर्थे तपःकरणाय शेषाचलागमनम्

वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञाताऽरुन्धती तं प्रणम्य च ॥ ३० ॥ आगत्य वेङ्कटा-
धस्तात्कापिलाख्ये सरोवरे ॥ कृत्वा स्नानं तदारुह्य वेङ्कटाद्रितटे शुभे ॥३१
कृतस्नाना स्वामितीर्थे भूवराहं प्रणम्य च ॥ श्रीनिवासं वेङ्कटेशं नमस्कृ-
त्यास्य सन्निधौ ॥ ३२ ॥ प्रार्थयामास भगवन् परिपालय मां हरे ॥ तपः
करोम्यहं तुम्बुतीर्थे गत्वा कृपानिधे ॥ ३३ ॥ तत्र त्वं रमया सार्द्धं सन्नि-
धेह्यचिरेण मे ॥

वसिष्ठकी आज्ञासे शेषाद्रिपर तपस्या करनेके लिये अरुन्धतीका जाना।

मुनि वसिष्ठजीसे यह आज्ञा पा कर उनको प्रणाम करके श्रीवेङ्कटाचलके अधोभागमें कापिल सरोवरमे स्नान कर सुन्दर वेङ्कटपर्वतके तट पर जा कर वहां स्वामितीर्थमे फिर स्नान कर भूवराह तथा वेङ्कटेश भगवानको नमस्कार करके, उनके सामने उसने प्रार्थना की, कि हे हरे भगवान्! मैं तुम्बुरुतीर्थमे जा कर तपस्या करती हूं। हे दयानिधे! आप मेरी रक्षा करें और वहां लक्ष्मीके साथ शीघ्र मेरे निकट निवास कीजिये ॥ ३४ ॥

इति विज्ञाप्य गगनगङ्गापापविनाशिनीम् ॥ ३४ ॥ गत्वा तत्र निम-
ज्याशु तुम्बुतीर्थमुपागता ॥ स्मरन्ती भर्तृवचनं तत्र स्नात्वा विधान-
तः ॥ ३५ ॥ पतिप्रोक्तं विष्णुमन्त्रं जपन्ती तपसि स्थिता ॥ वयस्या सुम-
तिर्नाम शुश्रूषामकरोत्सदा ॥ ३६ ॥ द्वादशाब्दं तपश्चक्रे निराहारा यत-
व्रता ॥ देवगन्धर्वमुनयस्तां दृष्ट्वा तपसि स्थिताम् ॥३७॥ आश्चर्यमाश्चर्य-
मिति ब्रुवाणा मुदमाययुः ॥

ऐसा कह कर वह पापविनाशनी आकाशगङ्गामे स्नान कर वहासे तुरन्त तुम्बुरु तीर्थमें पहुंची। वहां पर वह अपने पतिकी बात स्मरण करती हुई, विधिपूर्वक स्नान करके पतिके बताये विष्णुका महत्त्व जपती हुई तपस्या करने बैठ गई। सुमती नामक उसकी सखी सदा उसकी सेवा या शुश्रूषा करती रही। इस प्रकार उसने नियमपूर्वक

निराहार रह कर बारह वर्ष तक तपस्या की। देवता, गन्धर्व और मुनि उस तपस्विनीको देख कर "बहुत आश्चर्य! बहुत आश्चर्य" ऐसा कहते हुए आनन्दित हो गये ॥

अथारुन्धतीसमीपे भगवदाविर्भावः

तस्यास्तपस्सुप्रसन्नः प्रादुरासीत्परः पुमान् ॥ ३८ ॥ फाल्गुने मासि पौर्णिम्यां मीने भास्वति भास्वति ॥ तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयो व्यासपूर्वकाः ॥३९॥ सनन्दसनकाद्याश्च योगिनः सर्व एव हि ॥ मुनिपत्न्यो देवपत्न्यः समीयुः सङ्घशो मुने ॥४०॥ अरुन्धती महाभागा लक्ष्म्यालिङ्गितवक्षसम् ॥ दृष्ट्वा हरिं वेङ्कटेशं प्रणनाम मुदान्विता ॥ ४१ ॥ तां दृष्ट्वा प्रणतां विष्णुरिदमाह दयानिधिः ॥ उत्तिष्ठारुन्धति देवि तपसा क्लेशवत्यसि ॥ ४२ ॥ तवेप्सितमहं दास्ये वरं वरय सुव्रते ॥

उसकी तपस्यासे फाल्गुन सुदी पूर्णिमाको मीन संक्रान्तिके सूर्य थे। उस दिन भगवान परमपुरुष श्री वेङ्कटेशजी प्रसन्न हो कर प्रकट हुए। वहां ब्रह्मादि देवता, व्यासादि, महर्षि, सनक सनन्दन, योगिगण सभी मुनियों और सब देवताओंकी स्त्रियां झुण्ड बांध बांध कर आयीं। भाग्यवती अरुन्धतीने लक्ष्मीको हृदयमें लगाये हुए श्री वेङ्कटेश भगवानको देख कर हर्षपूर्वक प्रणाम किया। दयानिधि श्रीविष्णु उसको प्रणाम करते देख कर यह वचन बोले—हे अरुन्धती देवी! उठो, तुमने तपस्या करके बड़ा कष्ट उठाया है। हे सुव्रते! मैं तुम्हारा अभिलषित वर दूंगा, जो इच्छा हो मांगो ॥

अथारुन्धतीकृतभगवत्स्तुतिः

सुप्रीतं तं विदित्वा सा तुष्टावाऽञ्जनशैलपम् ॥ ४३ ॥

अरुन्धती अञ्जनाचलाधीशको प्रसन्न जान कर स्तुति करने लगी ॥ ४३ ॥

अरुन्धत्युवाच—

नमस्तुभ्यं महादेव नारायण कृपानिधे ॥ पाहि मां फणिशैलेश भक्तबन्धो दयानिधे ॥ ४४ ॥ न जाने वेङ्कटाधीश लक्ष्मीनायक केशव ॥ त्वां विना सर्वलोकानां दृष्टादृष्टफलप्रदम् ॥४५॥ यस्योरस्यनिशं विभाति जगतो सौभाग्यधात्री रमा धत्ते यस्य पदावनेजनजलं मूर्ध्ना पुरारिः सदा ॥ श्रीमद्वेङ्कटशैलनित्यनिलयं देवोत्तमं त्वां विना दृष्टादृष्टफलप्रदं किमपरं दृष्टं क्षितौ दैवतम् ॥ ४६ ॥

अरुन्धतीने कहा—हे महादेव ! हे नारायण ! कृपानिधे ! आपको नमस्कार है । हे शेषशैलेश, भक्तोंके बन्धु, दयानिधे ! मेरी रक्षा कीजिये । हे वेङ्कटाधीश ! लक्ष्मीनायक, केशव ! मैं आपके सिवाय लोगोंके दृष्ट या अदृष्ट फलके दाता अन्य किसीको नहीं जानती, जिनके हृदयमें सौभाग्यदायिनी लक्ष्मी सदा निवास करती हैं, जिनके चरण धोये हुए जलको (गङ्गाजीको) श्रीशिवजी सदा मस्तकमें धारण करते हैं, और जिन्होंने श्री वेङ्कटाचल पर नित्य निवास स्थल बनाया है, हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! ऐसे आपके सिवाय दृष्ट और अदृष्ट फल देनेवाला देवता पृथ्वीतलमें कौन है ? ॥ ४६ ॥

इति स्तुत्वा पुनः प्राह शेषशैलशिखामणिम् ॥ यदि प्रीतिर्मत्तपसा तव शेषाद्रिवैभवम् ॥ ४७ ॥ तुम्बुतीर्थस्य माहात्म्यं वद लोकोपकारकम् ॥ वसिष्ठपत्न्येति पृष्टः प्राह वेङ्कटवैभवम् ॥४८॥ शृण्वत्सु सर्वलोकेषु ब्रह्मादिषु सुरेषु च ॥

शेषाचलके मुकुटमणि श्रीवेङ्कटेशजीकी ऐसी प्रार्थना कर फिर अरुन्धतीने कहा—हे भगवन् ! यदि मेरी तपस्यासे आप प्रसन्न हैं तो, कृपा कर तुम्बुरुतीर्थ तथा शेषाचलके लोकोपकारक माहात्म्य सुनाइये । वसिष्ठकी धर्मपत्नीके इस प्रश्नको सुन कर श्री वेङ्कटेशजीने ब्रह्मादि देवताओंके सुनते हुए वेङ्कटेश माहात्म्यको सुनाया ॥

अथ भगवद्वर्णितवेङ्कटाचलतुम्बुतीर्थमाहात्म्यम्

श्रीनिवास उवाच—

शृण्वरुन्धति मद्वाक्यं सर्वलोकोपकारकम् ॥४९॥ वेङ्कटाद्रौ स्वामितीर्थे वेङ्कटेशे च ये मयि ॥ भक्तिमन्तः प्रजैश्वर्यायुष्मन्तश्च भवन्ति ते ॥५०॥ वेङ्कटाद्रिस्वामितीर्थं मन्नामानि च कुर्वते ॥ पुत्राणां ते पुनः सर्वसम्पदामेकभाजनम् ॥५१॥ श्रीवेङ्कटेशेति सदा वाचि पञ्चाक्षरं यदि ॥ ब्रह्मादीनां च सर्वेषां वन्द्या एव न संशयः ॥ ५२ ॥ ये तुम्बुतीर्थाभिषेकमाचरन्ति यदा तदा ॥ ते निष्पापा मत्कृपया लक्ष्म्याः पात्रं न संशयः ॥ ५३ ॥ फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां तु प्रत्यक्षदिवसे मम ॥ स्नास्यन्ति भक्तिमन्तो ये तेषां शृणु फलोन्नतिम् ॥ ५४ ॥

श्री निवासजीने कहा—हे अरुन्धती ! सभी लोगोंका उपकार करनेवाली मेरी बात तुम सुनो । जो लोग वेङ्कटाचल पर्वतमें, स्वामितीर्थमें और वेङ्कटाधीश मुझमें भक्ति करते हैं, वे पुत्रवान, ऐश्वर्यवान और आयुष्मान होते हैं । जो वेङ्कटाद्रि, स्वामितीर्थ और मेरे नामोंको स्मरण करते हैं, वे पुत्र और सब सम्पत्तिके एकमात्र पात्र हो

जाते हैं। यदि "श्रीवेङ्कटेश" ये पञ्चाक्षर मन्त्र किसीके प्राणोंमें सदा रहते हैं, तो वह ब्रह्मादि सभीके वन्दनीय होता है ;इसमें सन्देह नहीं है। जो तुम्बुरुतीर्थमें स्नान करते हैं, वे मेरी कृपासे निष्पाप हो कर लक्ष्मीपात्र वन जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। मेरे आविर्भाव दिवस, फाल्गुन पौर्णमासीके दिन जो भक्तिपूर्वक (तुम्बुरु तीर्थमें) स्नान करेंगे उन लोगोंकी फलश्रुति सुनो ॥ ५४ ॥

यत्सर्वतीर्थस्नानेन तत्फलं भवति ध्रुवम् ॥ फल्गुनीतीर्थमित्यस्य नाम लोके भविष्यति ॥५५॥ ब्रह्मविट्क्षत्रशूद्राणामपि स्त्रीणामरुन्धति ॥ अत्र स्नानेन दुरितं नश्यति श्रेय एति च ॥५६॥

जो सब तीर्थोंमें स्नान करनेसे फल होते हैं वे सब फल अवश्य उससे होते है। इसका 'फाल्गुनी तीर्थ" ऐसा नाम संसारमें विख्यात होगा। हे अरुन्धती! इस तीर्थमें स्नान करनेसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्रियोंका भी पाप नष्ट हो कर कल्याणकी प्राप्ति होती है ॥ ५६ ॥

मनोवाक्कायविहितं पापं नश्यति सर्वथा ॥ यत्किञ्चिदर्थमुद्दिश्य पुरुषा वा स्त्रियोऽपि वा ॥ ५७ ॥ स्नास्यन्त्यत्राऽऽप्नुवन्त्येव तं तमर्थं न संशयः ॥ पुत्रार्थी पुत्रमाप्नोति धनार्थी लभते धनम् ॥ ५८ ॥

और तन, मन, वचनसे किये हुए पाप सर्वथा नष्ट होते हैं। जो कोई पुरुष अथवा स्त्री किसी भी उद्देशको ले कर इसमें स्नान करती है, तो स्नानमात्र हीसे उसको अभिलाषा पूरी हो जाती है। पुत्र चाहनेवालेको पुत्र मिलता है, धनकी इच्छा रखनेवालेको धन प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ५८ ॥

आरोग्यकाम आरोग्यमपत्यं पुत्रकामवान् ॥ नश्यन्त्यापद आश्वस्य सिद्धयो हस्तसङ्गताः ॥ ५९ ॥

आरोग्य कामनावालेको आरोग्य लाभ और पुत्र चाहनेवालेको पुत्रकी प्राप्ति होती है तथा उनकी विपत्तियां शीघ्र ही नष्ट हो कर सिद्धियां हस्तगत हो जाती हैं ॥ ५९ ॥

अत्र स्नात्वा तु दानानि कुर्वतां बहुलं फलम् ॥ ये चन्दनं च ताम्बूलं प्रयच्छन्त्यपि चोदकम् ॥६०॥ ते मत्प्रियास्तु विज्ञेयाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥ अयं सर्वोत्तरो धर्म उक्तस्तव वरानने ॥६१॥ पतिव्रतानां मुख्या च भव त्वं च सुपुत्रिणी ॥ इति सर्वं वरं दत्त्वाऽन्तर्दधे वेङ्कटेश्वरः ॥ ६२ ॥

इसमें स्नान कर दान करनेसे बहुत फल प्राप्त होते है। जो चन्दन, पान, या जल भी प्रदान करते है, वे मेरे परम प्रिय होते हैं, यह मैं सत्य सत्य कहता हूं। हे वरानने। यह सबसे उत्तम धर्म तुमको मैंने कह सुनाया।

हे अरुन्धती ! तुम पतिव्रताओंमें प्रधान और सुन्दर पुत्रवाली होओ। इस प्रकार सबको वरदान दे कर श्रीवेङ्कटेशजी अन्तर्धान हो गये ॥ ६२ ॥

य इदं पठति ध्यायञ्छृणुयाच्च समाहितः ॥ घोणतीर्थस्नानफलं प्राप्नोति हि न संशयः ॥ ६३ ॥

इति श्रीगरुडपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायोऽत्र प्रथमः ॥ १ ॥

जो कोई इस माहात्म्यको एकाग्रचित्त हो ध्यानसे पढ़ेगा या सुनेगा, वह घोणतीर्थके स्नानका फल पाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ६३ ॥

इति श्रीगरुड पुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायोऽत्र प्रथमः ॥ १ ॥

ॐ श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥ श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥



युधिष्ठिर उवाच—

देवव्रत महाभाग सुरसिन्धुसुत प्रभो ॥ श्रीनिवासस्य माहात्म्यं
वद नो वदतां वर ॥ १ ॥ वैकुण्ठवासी देवेशो विष्णुः सर्वगतः प्रभुः ॥
कथं प्राप्तो वृषगिरिं तन्मे त्वं कृपया वद ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने कहा हे प्रभो ! देवव्रत ! महाभाग ! विद्वानोंमें श्रेष्ठ ! गाङ्गेयजी ! कृपा कर श्रीनिवासजीके माहात्म्य कहिये । आप हमपर दया कर यह कहिये, कि वैकुण्ठवासी देवताओंके देव सर्वव्यापी, प्रभु, विष्णु भगवान वृषाचलमें कैसे आये ॥ २ ॥

श्रीभीष्म उवाच—

पुरा वै नारदः श्रीमान् ब्रह्मपुत्रो महाद्युतिः ॥ हरिं द्रष्टुमनास्तात
वैकुण्ठं समुपागतः ॥ ३ ॥ तत्रादृष्ट्वा हरिं पार्थ क्षीरोदाद्युपकण्ठतः ॥
आयान्तमृषयो दृष्ट्वा मुदमापुश्च नारदम् ॥४॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे पारा-
शर्यपदानुगाः ॥ अनुज्ञातो मुनिगणैः पराशर्यो महाद्युतिः ॥ ५ ॥ व्यासो
वचनमक्लीबं नारदं प्रत्युवाच ह ॥

श्री भीष्मने कहा—पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पुत्र महा तेजस्वी नारद मुनि विष्णुकी दर्शनेच्छासे बैकुण्ठ गये । वहां श्री हरिको न देख कर वह क्षीरसागरके समीप गये । इतनेमें व्यासजीके चरणोंके अनुगामी अगस्त्यादिसभी ऋषिगण नारदजाको आते हुए देख प्रसन्न हुए । महर्षिकी आज्ञा पा कर महातेजस्वी परम पुरुष व्यासजी ने नारद-जीसे पुरुषार्थ पूर्ण वचन कहा ।

कृतकृत्यो मुने ब्रह्मंस्त्वमेको जगतीतले ॥ ६ ॥ विष्णुभक्तोऽसि
नान्योऽस्ति सदा कीर्तयसे यतः ॥ अहो खलु मनुष्याणां मोक्षदो विष्णु-
रव्ययः ॥७॥ स त्वया सेव्यते नित्यं कृतकृत्यो भवानतः ॥ स्रष्टा पाल-
यिता हन्ता ह्येक एव जनार्दनः ॥८॥ स त्वया पूजितो नित्यं तस्मात्खलु
कृती भवान् ॥

"हे मुनिवर ब्रह्मन् ! इस भूतल पर आप ही कृतकृत्य और विष्णुभक्त हैं, और दूसरा कोई नहीं है । क्योंकि आप सदा हरि कीर्तन करते हैं । अहा ! हा ! आप मनुष्योंके मोक्षदाता अव्यय विष्णुको नित्य सेवन करते हैं, अत एव आप कृतकृत्य हैं । जनार्दन सृष्टि-पालन और संहार करनेवाले एक ही हैं । उनकी पूजा आप नित्य करते हैं, इसलिये आप धन्य हैं ॥ ८ ॥

योऽनन्तः सर्वभूतानां सेतुभूतो जगन्मयः ॥९॥ संसारपाशविच्छेदी

स त्वया पूजितो हरिः ॥ एते वयं मुनिश्रेष्ठ द्रष्टुकामा जनार्दनम् ॥११ ॥
तन्निवेशितचित्ता हि प्राप्ता परमधार्मिक ॥

जो अनन्त, सभी प्राणियोंको अन्तर्यामिरूपसे धारण करनेवाले और संसार व्यापी हैं, भवसागररूपी फांसीको विच्छेद करनेवाले वे हरि भगवान आपसे पूजित हैं। हमलोग ये सब मुनिगण उन जनार्दनके दर्शन करना चाहते हैं। हे परम धार्मिक ! हमलोग उन्हींमें चित्त लगा कर यहां आये हैं ॥११॥

ईदृशं वचनं श्रुत्वा व्यासस्य जगतीपते ॥ ११ ॥ प्रोवाच नारदो धीमान्वेदविदां वरः ॥ कृतकृत्योऽस्मि भद्रं वो यूयं भूतहिते रताः ॥ १२ ॥ ॥ शास्त्रैर्धर्मैः सदा लोकान् भक्त्या रक्षितुमिच्छत ॥ वैकुण्ठलोके सम्भूता वार्ता परमपावनी ॥१३॥ अश्रावि सा मया सन्तो वक्ष्ये शृण्वन्तु तां कथाम् ॥

हे जगतपालक ! व्यासकी ऐसी बातें सुन कर बुद्धिमान वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजीने ऋषियोंसे कहा—मैं कृतकृत्य हो गया। आप लोगोंका कल्याण हो, क्योंकि प्राणियोंके कल्याणमें आप निरत हैं। आप शास्त्रोंसे, धर्मसे और भक्तिसे मनुष्योंकी रक्षा करनेकी इच्छा रखिये। वैकुण्ठलोकमें बडीही पवित्र विचित्र बात चली। हे सन्तो ! वह बात मुझे सुन पडी, उसे आप लोगोंसे कहता हूं। उस कथाको आप सुनिये ॥ १४ ॥

मायावी परमानन्दस्त्यक्त्वा वैकुण्ठमुत्तमम् ॥१४॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे रमया सह मोदते ॥ इत्यद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वा सेन्द्रा मरुद्गणाः ॥ १५ ॥ तत्र सेवितुमुद्युक्तास्तदाहं च जगद्गुरुम् ॥ किं करिष्यथ विप्रेन्द्रा यत्र दुर्लभदर्शनम् ॥ १६ ॥

मायावी परमानन्द भगवान उत्तम वैकुण्ठको छोड कर स्वामिपुष्करिणीके किनारे लक्ष्मीसहित विहार करते हैं। इन्द्र सहित देवतागण इस महान् आश्चर्य वचनको सुन कर उनकी सेवा करनेको उद्यत हुए और मैं भी उन्हीं जगद्गुरुका सेवन करनेके लिये तैयार हुआ। वहां दर्शन होना दुर्लभ है। द्विज श्रेष्ठो ! आप क्या करेंगे ॥ १६ ॥

तस्मात्तत्र गमिष्याम इत्युक्त्वा खं समारुहन् ॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ १७ ॥

अतएव अब वहीं, हमलोग चलें ऐसा कह कर अगस्त्यादि सभी ऋषिगण और तपस्विवृन्दने आकाश मार्गसे प्रस्थान किया ॥ १७॥



॥ श्री श्रीनिवासाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥

हरिवंशान्तर्गतश्रीशेषधर्मघटकं

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

ॐश्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥

प्रथमोऽध्यायः

नारदादि मुनि वृन्दने, भगवत् सेवा अर्थ ।
शेषाचलपर तप किया, पाया फल परमार्थ ॥१॥
शेषाचल पै रहत जो, धनिक महाजन वृन्द ।
तेहि चरित्र-वर्णन किया, पूजत वृन्दहि वृन्द ॥२॥
भीष्म अनुज्ञा पायके, धर्मराज महराज ।
श्रीनिवास भगवानका, किया सुसेवा साज ॥३॥

युधिष्ठिर उवाच—

देवव्रत महाभाग सुरसिन्धुसुत प्रभो ॥ श्रीनिवासस्य माहात्म्यं वद नो वदतां वर ॥ १ ॥ वैकुण्ठवासी देवेशो विष्णुः सर्वगतः प्रभुः ॥ कथं प्राप्तो वृषगिरिं तन्मे त्वं कृपया वद ॥ २ ॥

युधिष्ठिरने कहा हे प्रभो । देवव्रत ! महाभाग ! विद्वानोंमें श्रेष्ठ ! गाङ्गेयजी । कृपा कर श्रीनिवासजीके माहात्म्य कहिये । आप हमपर दया कर यह कहिये, कि वैकुण्ठवासी देवताओंके देव सर्वव्यापी, प्रभु, विष्णु भगवान वृषभाचलमें कैसे आये ॥ २ ॥

श्रीभीष्म उवाच—

पुरा वै नारदः श्रीमान् ब्रह्मपुत्रो महाद्युतिः ॥ हरिं द्रष्टुमनास्तात वैकुण्ठं समुपागतः ॥ ३ ॥ तत्रादृष्ट्वा हरिं पार्थ क्षीरोदाद्युपकण्ठतः ॥ आयान्तमृषयो दृष्ट्वा मुदमापुश्च नारदम् ॥४॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे पाराशर्यपदानुगाः ॥ अनुज्ञातो मुनिगणैः पराशर्यो महाद्युतिः ॥ ५ ॥ व्यासो वचनमङ्कीर्यं नारदं प्रत्युवाच ह ॥

श्री भीष्मने कहा—पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पुत्र महा तेजस्वी नारद मुनि विष्णुकी दर्शनेच्छासे वैकुण्ठ गये । वहा श्री हरिको न देख कर वह क्षीरसागरके समीप गये । इतनेमे व्यासजीके चरणोंके अनुगामी अगस्त्यादिसभी ऋषिगण नारदजीको आते हुए देख प्रसन्न हुए । महर्षिकी आज्ञा पा कर महातेजस्वी परम पुरुष व्यासजीने नारद जीसे पुरुषार्थपूर्ण वचन कहा ।

कृतकृत्यो मुने ब्रह्मंस्त्वमेको जगतीतले ॥ ६ ॥ विष्णुभक्तोऽसि नान्योऽस्ति सदा कीर्तयसे यतः ॥ अहो खलु मनुष्याणां मोक्षदो विष्णुरव्ययः ॥७॥ स त्वया सेव्यते नित्यं कृतकृत्यो भवानतः ॥ स्रष्टा पालयिता हन्ता ह्येक एव जनार्दनः ॥८॥ स त्वया पूजितो नित्यं तस्मात्खलु कृती भवान् ॥

"हे मुनिवर ब्रह्मन् । इस भूतल पर आप ही कृतकृत्य और विष्णुभक्त हैं, और दूसरा कोई नहीं है । क्योंकि आप सदा हरि कीर्तन करते हैं । अहा ! हा ! आप मनुष्योंके मोक्षदाता अव्यय विष्णुको नित्य सेवन करते हैं, अत एव आप कृतकृत्य हैं । जनार्दन सृष्टि पालन और संहार करनेवाले एक ही हैं । उनकी पूजा आप नित्य करते हैं, इसलिए आप धन्य हैं ॥ ६ ॥

योऽनन्तः सर्वभूतानां सेतुभूतो जगन्मयः ॥९॥ संसारपाशविच्छेदी

स त्वया पूजितो हरिः ॥ एते वयं मुनिश्रेष्ठ द्रष्टुकामा जनार्दनम् ॥१ ॥
तन्निवेशितचित्ता हि प्राप्ता परमधार्मिक ॥

जो अनन्त, सभी प्राणियोंको अन्तर्यामिरूपसे धारण करनेवाले और संसार व्यापी हैं, भवसागररूपी फांसीको विच्छेद करनेवाले वे हरि भगवान आपसे पूजित हैं। हमलोग ये सब मुनिगण उन जनार्दनके दर्शन करना चाहते हैं। हे परम धार्मिक ! हमलोग इन्हींमें चित्त लगा कर यहां आये हैं ॥११॥

ईदृशं वचनं श्रुत्वा व्यासस्य जगतीपते ॥ ११ ॥ प्रोवाच नारदो
धीमान्धीन्वेदविदां वरः ॥ कृतकृत्योऽस्मि भद्रं वो यूयं भूतहिते
रताः ॥ १२ ॥ ॥ शास्त्रैर्धर्मैः सदा लोकान् भक्त्या रक्षितुमिच्छत ॥
वैकुण्ठलोके सम्भूता वार्ता परमपावनी ॥१३॥ अश्रावि सा मया सन्तो
वक्ष्ये श्रृण्वन्तु तां कथाम् ॥

हे जगतपालक ! व्यासकी ऐसी बातें सुन कर बुद्धिमान वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारदजीने ऋषियोंसे कहा—मैं कृतकृत्य हो गया। आप लोगोंका कल्याण हो, क्योंकि प्राणियोंके कल्याणमें आप निरत हैं। आप शास्त्रोंसे, धर्मसे और भक्तिसे मनुष्योंकी रक्षा करनेकी इच्छा रखिये। वैकुण्ठलोकमें बड़ीही पवित्र विचित्र बात चली। हे सन्तो ! यह बात मुझे सुन पड़ी, उसे आप लोगोंसे कहता हूं। उस कथाको आप सुनिये ॥ १४ ॥

मायावी परमानन्दस्त्यक्त्वा वैकुण्ठमुत्तमम् ॥१४॥ स्वामिपुष्करि-
णीतीरे रमया सह मोदते ॥ इत्यद्भुततमं वाक्यं श्रुत्वा सेन्द्रा मरुद्ग-
णाः ॥ १५ ॥ तत्र सेवितुमुद्युक्तास्तदाहं च जगद्गुरुम् ॥ किं करिष्यथ
विप्रेन्द्रा ह्यत्र दुर्लभदर्शनम् ॥ १६ ॥

मायावी परमानन्द भगवान उत्तम वैकुण्ठको छोड कर स्वामिपुष्करिणीके किनारे लक्ष्मीसहित विहार करते हैं। इन्द्र सहित देवतागण इस महान् आश्चर्य वचनको सुन कर उनकी सेवा करनेको उद्यत हुए और मैं भी उन्हीं जगद्गुरुका सेवन करनेके लिये तैयार हुआ। यहां दर्शन होना दुर्लभ है। द्विज श्रेष्ठो ! आप क्या करेंगे ॥ १६ ॥

तस्मात्तत्र गमिष्याम इत्युक्त्वा खं समारुहन् ॥ अगस्त्यप्रमुखाः
सर्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ १७ ॥

अतएव अब वहीं, हमलोग चलें ऐसा कह कर अगस्त्यादि सभी ऋषिगण और तपस्विवृन्दने आकाश मार्गसे प्रस्थान किया ॥ १७॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलवासिमहाजनचरित्रवर्णनम्

जग्मुस्ते व्योममार्गेण यत्र धर्मगिरौ हरिः ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरं गत्वा तमृषयः सुराः ॥ १८ ॥ स्नात्वा पीत्वा शुभं तोयं हरिं द्रष्टुं तदाऽचरन् ॥ पश्चिमं भागमासाद्य मुनयो विष्णुतत्पराः ॥ १९ ॥

वेङ्कटपर्वतके महाजनोंका चरित्र वर्णन।

इन सब ऋषिगण और देवता लोग आकाश मार्ग द्वारा वेङ्कटाचलपर स्वामिपुष्करिणीके किनारे, जहां हरि भगवान् थे, चले गये। और उन्होंने स्नान करनेके बाद जल पी कर हरि भगवान्के दर्शन करनेका यत्न किया फिर ये मुनिवर पश्चिमकी ओर जा कर विष्णुपरायण हो गये ॥१९॥

तत्रापश्यन्महद्भूतं मेरुमन्दरसन्निभम् ॥ सहस्रादित्यसङ्काशं विद्युच्चञ्चललोचनम् ॥२०॥ सर्वायुधरं देवं दृष्ट्वा विस्मयमागताः ॥ दक्षिणां दिशमाजग्मुः स्वामिपुष्करिणीतटात् ॥ २१ ॥

वहां उन्होंने मेरु पर्वत और हजार सूर्यके समान, एक बड़ा भारी भूतको देखा और बिजुलीके समान चञ्चल नेत्रवाले तथा सब शस्त्र धारण किये हुए उन देवको देख कर सब कोई आश्चर्यमें भर गये, और स्वामिपुष्करिणीके तटसे दक्षिण दिशाको चले गये ॥२१॥

तत्रासुरान् दानवादीन् राक्षसान्पिशिताशनान् ॥ नमस्यतो ध्यायतश्च जपतश्चापि तान्बहून् ॥ २२ ॥ दृष्ट्वा विस्मयमापन्नाः पूर्वां दिशमुपाययुः ॥

वहांपर जप और ध्यान करते हुए बहुतसे दैत्य, दानव, मांसभक्षी राक्षसोंको देख कर वे परम आश्चर्यचकित हो पूर्व दिशाकी ओर चले।

तत्रासीनं देवपतिं त्रिदशैरुपसेवितम् ॥२३॥ यक्षकिन्नरगन्धर्वचारणाद्यैरभिष्टुतम् ॥ सिद्धकिम्पुरुषाद्यैश्च ऋषिभिश्चाप्सरोगणैः ॥२४॥ स्तूयमानं हरिं साक्षाच्छ्रीनिवासं जगत्पतिम्। "कदा द्रक्ष्यामि तद्रूपं योगिनामपि दुर्लभम् ॥२५॥ कदा मे जन्मसाफल्यं भविष्यति सुरार्चित ॥ देहि मे दर्शनं देव प्रणतार्तिप्रणाशन ॥२६॥ त्वं गतिः सर्वभूतानां देवानामपि मोक्षदः ॥ पाहि पाहि जगन्नाथ भूयो भूयो नमोऽस्तु ते" ॥२७॥ इति

स्तुवन्तं देवेशं देवराजं पुरन्दरम् ॥ वेङ्कटाद्रेः पुरोभागे स्वामिपुष्करिणी-
तटे ॥ २८ ॥ देवताभिः समासीनं ध्यायन्तं पुरुषोत्तमम् ॥

वहां पर बैठे, देवताओंसे उपसेवित, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, चारण, बन्दीगण, सिद्ध, किम्पुरुष, ऋषि तथा अप्सरासमूहसे प्रशंसित "योगियोंके भी दुर्लभ, इस रूपको मैं कब देखूंगा। हे देवपूजित! कब मेरा जन्म सफल होगा। हे भक्तजन पीड़ाहारक भगवन्! मुझे दर्शन दीजिये। आप ही प्राणिमात्रकी गति तथा देवताओंके मोक्षदाता हैं। हे जगन्नाथ! आप रक्षा करें, रक्षा करें, आपको वारम्वार नमस्कार है"। इस तरह स्वामिपुष्करिणीके अग्रभागके किनारेपर देवदेव, श्रीलक्ष्मीपति, पुरुषोत्तम भगवान्का ध्यान तथा स्तुति करते हुए, देवराज इन्द्रको उन्होंने देखा।

तं दृष्ट्वा विस्मिताः सर्वे ह्यगस्त्यप्रमुखा द्विजाः ॥ २८ ॥ कौबेरीं
दिशमाजग्मुर्द्रष्टुकामा जनार्दनम् ॥ तत्रापश्यन्द्विजवरान्सप्तद्वीपनिवा-
सिनः ॥ ३० ॥ राज्ञो मुनिगणांश्चैव भूसुरान्वेदवादिनः ॥ भूलोकवासि-
नश्चैव मनुजान्मनुजेश्वर ॥ मुदमापुर्महात्मानो मुनयः शुद्धबुद्धयः ॥३१॥

उनको देख कर अगस्त्यादि ब्राह्मणगण परम विस्मयको प्राप्त हो कर वहांसे जनार्दन भगवान्की दर्शनेच्छासे उत्तर दिशाकी ओर चले गये। वहां उन्होंने श्वेतद्वीप निवासी ब्राह्मणों, मुनिवरों, राजागण, वेदज्ञ ब्राह्मणवृन्द, भूलोकवासी मनुष्यगण और उनके राजाओंको देखा और इससे शुद्ध बुद्धिवाले महात्मा, मुनिगण तो बहुत प्रसन्न हो गये॥ ३१॥

स्तुवन्ति नृत्यन्ति नमन्ति केचिदानन्दजाश्रूणि सृजन्ति केचित् ॥
आप्लुत्य चाप्लुत्य नदन्ति केचिद्गायन्ति गीतं परितो महान्तः ॥ ३२ ॥
रात्र्यां शशी देहभृतां च चक्षुर्दोषातिहा नो दिनकृद्दिवा च ॥३३॥ एकोऽपि
विष्णुर्बहुधा विभिन्नो धाता जनानां दिवि देवनानाम् ॥ कृपानिधिस्तत्र
बभूव लक्ष्यः सर्वस्य लोकस्य हिताय नूनम् ॥ ३४ ॥

कोई तो स्तुति करने, कोई नाचने, कोई गाने, कोई नमस्कार करने, कोई आनन्दके आंसू बहाने, कोई कोई उछल उछल कर आनन्द मनाने तथा कोई भगवान्के समीप गीत गाने लगे। रात्रिमें चन्द्रमा, दिनमें प्राणियोंके नेत्ररूप, दुखहर्त्ता सूर्य, एक हो कर भी बहुत रूपोंमें विभिन्न हो कर मनुष्यों और स्वर्ग देवताओंकी रक्षा करनेवाले वही कृपानिधान परमात्मा जगत्के कल्याणके लिये ही वहां लक्ष्मी सहित प्रत्यक्ष देख पड़े॥३४॥

धन्यैः पुष्पफलैः केचित्स्तोत्रैश्च विविधैर्जपैः ॥ वेदपारायणैः केचित्पू-
जयन्ति जनार्दनम् ॥ ३५ ॥ धूपदीपैर्गन्धमाल्यैरन्यैः सामादिकीर्तनैः ॥ दी-

सहाटककुम्भैश्च तोरणैर्ध्वजराशिभिः ॥ ३६ ॥ विचित्रकुसुमैः केचित्पूज-
यन्ति जनार्दनम् ॥ तुलसीमञ्जरीभिश्च करवीरैश्च जातिभिः ॥ ३७ ॥
मल्लिकाकेतकीपुष्पैश्चम्पकैः पूजयन्ति ते ॥

कोई वनमें पैदा हुए फूलों, फलोंसे, कोई विचित्र स्तोत्रोंसे, विविध जपोंसे और वेदोंके पारायणसे श्रीविष्णु भगवान्‌का पूजन कर रहे हैं। कोई धूप, दीप, गन्धमाला, सामवेदोंके गान, चमकते हुए सुवर्ण कलशों, तोरणों, ध्वजासमूहों, विचित्र एवं पुष्पोंसे जनार्दन भगवानका पूजन कर रहे हैं। कोई तुलसीकी मञ्जरी, कनेर, चमेली, मल्लिका, केवड़ा तथा चम्पाके फूलोंसे पूजा कर रहे हैं।

भूसुरा ऋषयश्चैव कलशैः परिपूरितैः ॥ ३८ ॥ पुण्योदकैर्मन्त्रपूतैः
कमण्डलुगतैः शुभैः ॥ पत्रकुम्भाहृतैः केचित्पूजयन्ति जनार्दनम् ॥ ३९ ॥
पत्रशाकैर्मूलफलैर्नैवेद्यं कल्पयन्ति च ॥ शुद्धोदकैर्मन्त्रपुष्पैर्ध्यानैः स्तोत्रजपैः
परे ॥ ४० ॥

कोई ब्राह्मण और ऋषिगण जलपूर्ण कलशोंसे, मन्त्रपूत कमण्डलु स्थित जलोंसे एवं पत्तोंसे बनाये घटोंद्वारा लाये हुए जलसे जनार्दन भगवान्‌की पूजा कर रहे हैं। कोई शुद्धोदकसे आचमन अर्पण कर मन्त्र पुष्पाञ्जलि प्रदान, ध्यान करते तथा स्तोत्रोंके साथ पत्ते, शाक, मूल, फलोंका नैवेद्य चढ़ाते हैं ॥४०॥

एवं तेषां तु पूजाभिः पूजितो मधुसूदनः ॥ आस्ते तत्र जगन्नाथः स्वा-
मिपुष्करिणीतटे ॥४१॥ हरे मुरारे पुरुषोत्तमेति वदन्ति केचित्परिरम्भय-
न्ति ॥ तूष्णीं तु तिष्ठन्ति हसन्ति केचिद्ध्यायन्ति केचित्कलशं वहन्ति
॥४२॥ पूर्णं मुरारेरभिषेकहेतोः पुष्पाणि सौरभ्ययुतानि गन्धैः ॥ कर्पूर-
कस्तूरिसुगन्धवासितानादाय सर्वे वृषभाद्रिनाथम् ॥ ४३ ॥ ते मार्गमाणा
विचरन्ति तत्र देवा मनुष्या अपि योगिनश्च ॥

इस तरह उनकी पूजाओंसे पूजित जगन्नाथ मधुसूदन स्वामिपुष्करिणीके तटपर विराजमान हैं। कोई हरे मुरारे! पुरुषोत्तम ऐसा कहते और भगवान्‌का आलिङ्गन करते हैं। कोई चुपचाप बैठे और कोई हंसते हैं, कोई ध्यान करते और कोई भगवान्‌के अभिषेक निमित्त जलपूर्ण कलश को उठाते हैं। कई देवता, मनुष्य और योगी श्रीमुरारीके पूर्णाभिषेकके लिये अनेक सुगन्धोंसे युक्त पुष्प, कपूर, कस्तूरी आदि मिश्रित करके वृषभाचलके स्वामी भगवान्‌को ढूढ़ते फिरते हैं ॥ ४४ ॥

भीष्म उवाच—

एवंकृतेषु देवेषु ऋषिगन्धर्वकोटिषु ॥ ४४ ॥ शङ्खकाहलसन्नादैः सङ्कुलं समजायत ॥ तस्मिन्नवसरे विष्णुः प्रादुरासीत्सरस्तटे ॥ ४६ ॥ मेरुमन्दरसङ्काशैर्जाम्बनदपरिष्कृतैः ॥ नानारत्नचितैर्दिव्यैर्विमानैरुपशोभितः ॥ ४७ ॥ कोटिसूर्यप्रतीकाशश्चन्द्रकोटिसुशीतलः ॥ स्वर्लोकाद्भूमिपर्यन्तं प्रादुरासीच्छ्रियः पतिः ॥४८ ॥

भीष्मने कहा—इस प्रकार करोड़ों ऋषि, गन्धर्व तथा देवताओंकी पूजा करते समय चारों ओरसे पर्वतपर पुष्प वृष्टि हुई और भेरी, मृदङ्ग, पटह और नगारा आदि निशान बजाने लगे। शङ्ख और काहलिके शब्दसे पर्वत गूंज उठा। उस अवसरपर स्वामिसरोवरके तटपर श्रीविष्णु भगवान् प्रकट हुए। मेरु पर्वतके समान चमकीले, स्वर्ण और अनेक रत्नोंसे जड़ित, दिव्य विमानोंसे शोभित, कोटि चन्द्र तुल्य शीतल और पृथ्वीतलसे स्वर्गतक कोटि सूर्यके समान प्रकाशयुक्त हो कर श्रीलक्ष्मीपति प्रकट हुए ॥ ४८ ॥

स्वामिपुष्करिणीतीरे रविमण्डलसन्निभे ॥ विमाने सेवितो देवैः श्रीनिवासोऽवसत्प्रभुः ॥ ४९ ॥

स्वामिपुष्करिणीके तीरपर सूर्यमण्डलके समान प्रकाशमान, दिव्य विमानमें देवगणोंसे सेवित होते हुए श्री निवास भगवान् विराजमान थे ॥४९॥

ब्रह्मा शिवश्चन्द्रदिवाकरौ च सेन्द्रौ यमाग्नी धनराट् च पाशी ॥ रक्षोऽनिलोऽसौ वसवश्च दस्रौ विरिञ्चिकोट्यो गणदेवताश्च ॥५० ॥ पिता पितॄणां जनकः सुराणां माता शिशूनां महतां महात्मा ॥ पतिः प्रियाणां तरणिर्जनानां निधिः कृशानामिव निर्धनानाम् ॥ ५१ ॥ आविर्बभूवात्र महोज्ज्वलाङ्गः प्रियायुतः श्रीवृषभाद्रिनाथः ॥ प्रसन्नमूर्तिर्जगदेकबन्धुः प्रसन्नधामाऽथ जगन्निवासः ॥ ५२ ॥

जो ब्रह्मा, शिव, चन्द्र, सूर्य, इन्द्र, यमराज, अग्नि, कुबेर, वरुण, राक्षस, वायु, आठों वसु, अश्विनीकुमार, ब्रह्माके करोड़ों देवतागण, पिताओंके भी पिता, देवताओंके भी पिता, बालकोंके माता, महानोंके महान, प्यारियोंके पति, भक्तोंके स्वामी, और संसारमें डूबनेवालोंके लिये नौका स्वरूप, निर्धन, गरीबोंके लिये खजानाके समान है, वह महा चमकीले अङ्गवाले वृषभाचलके स्वामी परमात्मा, प्रसन्न रूप, जगतके एकमात्र बन्धु, प्रसन्नचेता और जगन्निवास हैं वही लक्ष्मीसहित प्रकट हुए ॥ ५२ ॥

अथ श्रीनिवाससेवार्थं श्रीभीष्मकृतयुधिष्ठिरप्रेषणम्

तस्मात्पूजयितुं राजञ्छ्रीनिवासं जगद्गुरुम् ॥ गच्छ सौम्य सदानन्दं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ ५३ ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ यस्य स्मरणमात्रेण नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ ५४ ॥ श्रीनिवासस्य सेवार्थं यो वा को वा व्रजेद्यदि ॥ तस्यैव वंशजाः सर्वे मुक्ता एव न संशयः ॥ ५५॥ यानि क्षेत्राणि पुण्यानि तीर्थान्यायतनानि च ॥ तानि सर्वाणि सेवन्ते श्रीनिवासं जगन्मयम् ॥ ५६ ॥

हे राजा युधिष्ठिर ! हे सौम्य ! इसलिये तुम उन जगद्गुरु, श्रीनिवास, सदा आनन्द स्वरूप और भोग, मोक्ष, फलके देनेवाले भगवानकी पूजा करनेके लिये जाओ, जिनका स्मरण कर लेनेसे मनुष्य महापातकों या सब पापोंसे युक्त होने पर भी पवित्र हो जाता है। जो कोई भी मनुष्य श्रीनिवास भगवानकी सेवा करनेके लिये वहां जावे, तो उसके वंशके सभी लोग मुक्त हो जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। जितने पवित्र क्षेत्र, मन्दिर या स्थान हैं, वे सभी जगन्मय श्रीनिवास भगवानका सेवन करते हैं ॥ ५६ ॥

इदं ये पुण्यमाख्यानं शृण्वन्ति श्रद्धया नराः ॥ तेषां मुक्तिः करस्थैव गतानां किमु वैभवम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीहरिवंशे श्रीशेषधर्मे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायोऽत्र प्रथमः ॥ १ ॥

जो कोई इस पवित्र कथाको श्रद्धासे श्रवण करेंगे, उनको मुक्ति हस्तगत होगी, फिर जो वेङ्कटाद्रि पर जावे, उनके वैभवका तो कहना ही क्या है ॥ ५७ ॥

इति श्री हरिवंशे शेषधर्मे श्री वेङ्कटाचल माहात्म्यवर्णनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायोऽत्र प्रथमः ॥

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥
श्रीवेङ्कटाचलाधीशं श्रियाऽध्यासितवक्षसम् ॥
श्रितचेतनमन्दारं श्रीनिवासमहं भजे ॥

॥ श्री श्रीनिवासाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ।

श्रीब्रह्मोत्तरखण्डान्तर्गत-

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ।
कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने ॥
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥

प्रथमोऽध्यायः



ब्रह्माजीको विनय कर, ऋषि वसिष्ठ मुनि श्रेष्ठ ।
पौरोहितके पापको, जड़से कीन्ही नष्ट ॥१॥
सकल पापके पुञ्जका, नाशक कथा अनन्य ।
घोणतीर्थ मज्जन सुफल, पापनाश फल पुन्य ॥२॥

अथ वसिष्ठप्रार्थनया ब्रह्मोपदिष्ट तत्पौरोहित्योत्थपापनिवृत्तिमार्गः

ऋषय ऊचुः —

ॐ सूत वेदार्थतत्त्वज्ञ वेदव्यासकृपानिधे ॥ ब्रूहि नः सर्वतीर्थेषु तीर्थं सर्वाघनाशनम् ॥ १ ॥

ऋषि बोले—वेदके तत्त्व और अर्थको जाननेवाले और वेदव्यासजीके कृपापात्र हे सूतजी ! सब तीर्थोंमें श्रेष्ठ एवं सब पापोंके नाश करनेवाले तीर्थको कहिये ॥ १ ॥

श्रीसूत उवाच—

कथयामि कथां सम्यक्सर्वपापापनोदिनीम् ॥ यस्याः श्रवणमात्रेण दृष्टादृष्टफलागमः ॥ २ ॥ प्राप्नुवन्ति महत्पुण्यमिति सर्वर्षिसम्मतम् ॥ कथायां कथ्यमानायां ये भवन्त्यपराङ्मुखाः ॥ ३ ॥ तस्मादेकाग्रहृदयैः कर्तव्यान्तरनिःस्पृहैः ॥ भवादृशैः पुण्यकथा श्रोतव्याऽञ्जलिकारिभिः ॥४॥

श्री सूतजी बोले —सब पापोंको छुड़ानेवाली कथा मैं अच्छी प्रकारसे कहता हूं, जिसके सुननेसे दृष्ट और अदृष्ट फलोंकी प्राप्ति होती है। यह सब ऋषियोंकी सम्मति है कि कथा कहे जानेके समय एकाग्र मनवाले बड़े पुण्यको पाते हैं, इसलिये आपके जैसे दूसरे कर्मोंसे निस्पृह मनुष्यको एकाग्रचित्त हो कर अञ्जलि बांधे हुए यह पवित्र कथा सुननी चाहिये ॥ ४ ॥

पुरा कदाचिद्विप्राणामुत्तमोत्तमतां गताः ॥ वसिष्ठाद्या ब्रह्मसदः किञ्चित्कार्येच्छया गताः ॥ ५ ॥ तत्र देवैस्तथा सिद्धैः पुण्यश्लोकैश्च राजभिः ॥ सनन्दसनकाद्यैश्च योगाचार्यैश्च सत्तमैः ॥६॥ गङ्गाद्याभिर्नदीभिश्च सर्वतीर्थैः सविग्रहैः ॥ संसेव्यमानं सदसि ब्रह्माणं चतुराननम् ॥ ७ ॥ वेदैरनन्तैः शास्त्रैश्च मूर्तिमद्भिरुपासितम् ॥ सुरज्येष्ठमुपागम्य वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥८॥ प्रणम्य सहजानन्दो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ब्रह्मन्समस्तलोकानां नायकामन्दशेखर ॥ ९ ॥ इदं वन्दनमायाति दयया मां विलोकय ॥

पहले किसी समय वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ ब्राह्मण किसी कार्यकी इच्छासे ब्रह्माकी सभामें गये। वहां पर देवताओं, सिद्धों, पुण्य चरित्रवाले राजर्षियों, सनन्दन सनक आदि उत्तम योगियों, गङ्गा आदि सब नदियों, तीर्थों वेदों और शास्त्रोंसे शरीर धारण कर उपासना किये जाते हुए चार मुखवाले तथा देवताओंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके पास आकर

स्वभावसे आनन्द रूप श्रेष्ठमुनि वसिष्ठ यह वचन बोले—हे समस्त लोकके नायकोंमें श्रेष्ठ ! ब्रह्माजी ! यह हमारा प्रणाम आता है। कृपा कर मेरी ओर देखिये ॥

इति प्रणम्योत्थितं तं वसिष्ठमृषिसत्तमम् ॥ १० ॥ दयया विधिरा-
लोक्य निषीदेत्यब्रवीत्तदा ॥ तत्र ब्रह्मसभामध्ये वर्तमानकथासु च ॥११॥
निवृत्तासु ततः पश्चादुवाच च पितामहः ॥ किमर्थमागतोऽसीति वसिष्ठं
वाक्यमब्रवीत् ॥१२॥ ततो वसिष्ठः प्रणतो विनयावनतो मुनिः ॥ वाक्यं
विज्ञापयामास ब्रह्मणेऽनन्ततेजसे ॥१३॥

इस प्रकार प्रणाम करके उठे हुए उस श्रेष्ठ ऋषि वसिष्ठजीको दयासे देख कर ब्रह्माने– "बैठो" ऐसे कहा। तब ब्रह्माकी उस सभामें कही जाती हुई कथाके समाप्त होनेपर ब्रह्मा कहने लगे।" और यह वचन वसिष्ठसे बोले— "किसलिये आये हो,–तब विनयसे झुके हुए एवं प्रणाम करते हुए वसिष्ठ मुनि अनन्त तेजवाले ब्रह्मासे बोले ॥ १३ ॥

वसिष्ठ उवाच—

प्रसीद भगवन्ब्रह्मन्पङ्कजासन ते नमः॥ विज्ञाप्यं किञ्चिदस्त्येतदय-
याऽऽकर्णय प्रभो ॥ १४ ॥ वसिष्ठ वसिष्ठेति मानं कुर्वन्ति मे जनाः ॥
तत्सर्वं मम दुःखाय जायते नात्र संशयः ॥ १५ ॥ जानाति मां राजपु-
रोहितं भवान्पुरोहितानां बहुलं हि पापम् ॥ ते राजानो यद्यदघं चरन्ति
पुरोहितानां तदिति प्रवादः ॥ १६ ॥

वसिष्ठ बोले—हे भगवन ! कमलासन ! ब्रह्मा ! आपको प्रणाम है। मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। मुझे आपसे कुछ कहना है। हे प्रभु ! दयापूर्वक आप सुनिये ॥ सब लोग मुझको "वसिष्ठ, वसिष्ठ" ऐसा मान करते हैं, इससे मैं दुःख ही पाता हूं। इसमें संशय नहीं। आप मुझको राजपुरोहित जानते हैं। पुरोहितोंको बहुत पाप होता है राजा-गण जो जो पाप करते हैं वे सब पुरोहितोंको प्राप्त होते हैं, यह प्रवाद है।

प्रायश्चित्तेनापवार्यं बहुलं पापमस्ति मे ॥ तत्पापशान्तिमिच्छन्वै
सदा व्यग्रो भवाम्यहम् ॥ १७ ॥ अन्यच्च किञ्चिदस्तीह तच्छृणुष्व महा-
मते ॥ १८ ॥

प्रायश्चित्तसे छूटनेवाले मेरे बहुतसे पाप हैं, उन पापोंकी शान्ति करनेमें मैं सदा व्यग्र रहता हूं। हे महामते ! और कुछ कहनेको है। उसे सुनिये ॥ १८ ॥

सर्वावद्धोपाख्यानम्

क्वचिद् ग्रामे कश्चिदस्ति सर्वदा मत्परायणः ॥ स नास्तिको दुष्प्रकृ-
तिः सर्वपापरतः सदा ॥१९॥ दरिद्रश्च दुराचारः सर्वावद्ध इति द्विजः ॥
यज्ञस्थानेषु सर्वेषु सन्तिष्ठत्सु द्विजातिषु ॥२०॥ यत्किञ्चिद्दक्षिणापेक्षी सो-
ऽप्यागत्य स्थितः क्वचित् ॥ तं दृष्ट्वाऽवददन्यो वै द्विजो रोषेण पूरितः ॥२१॥
सर्वावद्ध किमर्थं त्वमिहागत्य द्विजातिषु ॥ वसिष्ठवत्तिष्ठसि त्वं स्नानाचा-
रविवर्जितः ॥ २२ ॥

किसी गांवमें नास्तिक, दुष्ट प्रकृतिवाला, सदा सब पापोंमें लगा हुआ, दरिद्र तथा दुष्ट आचरणवाला होकर भी सदा मेरा भक्त, सर्वावद्ध नामका एक ब्राह्मण था। वह सब यज्ञस्थानोंमें ब्राह्मणोंके रहते हुए कुछ दक्षिणाकी इच्छासे गया। उसको देख कर क्रोधयुक्त होकर दूसरा ब्राह्मण बोला—हे सर्वावद्ध ! किसलिये स्नान और आचार से हीन होनेपर तुम यहां आ कर द्विजातियोंमें वसिष्ठके ऐसा बैठे हो ॥ २२ ॥

सर्वावद्धस्तु तच्छ्रुत्वा गतोऽन्यत्रातिदुःखितः ॥ कोपाद्वसिष्ठवदिति
मां प्रत्युक्तं द्विजजन्मना ॥ २३ ॥ स वसिष्ठो रक्षतु मां पावनं च करोतु
माम् ॥ इति नित्यं वदत्येवं ध्यायते हृदये च तम् ॥२४॥ वाग्वसिष्ठ व-
सिष्ठेति सर्वदा तस्य वर्तते ॥ कायिकं मानसं पापं वाचिकं नास्ति तद्भु-
वि ॥ २५ ॥ यन्नानेन कृतं पापं तादृक्क्वापि न मे मतः ॥ तथापि मा-
माश्रयते तस्मात्तस्मिन्कृपा मम ॥ २६ ॥ मामाश्रितस्य मम च पापं राज-
पुरोधसः ॥ यथा शुद्ध्यति तन्मे त्वं वद लोकपितामह ॥ २७ ॥

यह सुन कर सर्वावद्ध अत्यन्त दुःखित हो कर दूसरी जगह चला गया और हृदयमें मेरा ही ध्यान करता हुआ वह ऐसा कहता रहा कि ब्राह्मणोंने क्रोधसे मुझको वसिष्ठके समान कहा है। अतः वे वसिष्ठ ही मेरी रक्षा करें और पवित्र भी करें। उसकी बोली सदा "वसिष्ठ, वसिष्ठ" ऐसी ही थी। संसारमें कायिक, वाचिक और मानसिक ऐसा कोई भी पाप नहीं है जो उसने न किया हो। जिसने पाप कर्म ही किया है, वह कभी भी मेरे प्रिय नहीं होता है, तथापि वह मेरे आश्रयमें है, इसलिये उस पर मेरी कृपा है। मेरे भक्त और मुझ राजपुरोहितका पाप जिस प्रकार शान्त होगा, हे लोकपितामह ! आप वह मुझसे कहिये ॥ २७ ॥

श्रीसूत उवाच—

ब्रह्मा तदाब्रवीदेनं वसिष्ठं मुनिसत्तमम् ॥ प्रायश्चित्तापनोद्यानि पा-
पानीत्यवधारय ॥ २८ ॥

श्री सूतजी बोले—ब्रह्माने तब उन मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजीसे कहा—सब पाप प्रायश्चित्तसे छूटनेवाले हैं, ऐसा समझो ॥ २८ ॥

वसिष्ठ उवाच—

मुनिर्ब्रह्माणमवदत्स्वामिंस्तच्छृणु साम्प्रतम् ॥ मम तस्य च पापानि
घनानि बहुलानि च ॥ २९ ॥ प्रायश्चित्तैर्न नश्यन्ति तस्मात्त्वामागतोऽस्म्य-
हम् ॥ नमस्करोमि धर्मात्मंस्त्वामेव शरणं गतः ॥३०॥ आवयोरल्पयत्नेन
नश्यन्ते पापराशयः ॥ येन दृष्टं फलं च स्यात्तमुपायं वदस्व मे ॥ ३१ ॥

वसिष्ठ बोले—हे स्वामी ! सुनिये। इस समय मेरे और उसके बहुतसे पापपुञ्ज प्रायश्चित्तसे नहीं नष्ट होनेवाले हैं, इसलिये मैं आपके पास आया हू। हे धर्मात्मा ! मैं आपको प्रणाम करता हू। आपही मेरी गति हैं। जिस थोड़े उपायसे हम दोनोंके पापराशि नष्ट हो जाये और उसका प्रत्यक्ष फल दिखलाई पड़े सो मुझसे कहिये ॥ ३१ ॥

सूत उवाच—

इति पृष्टस्ततो ब्रह्मा विचार्य हृदये हरिम् ॥ वेङ्कटेशं नमस्कृत्य
वसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥

श्रीसूतजी बोले—इस प्रकार वसिष्ठ द्वारा पूछे हुए ब्रह्मा, अपने हृदयमें श्रीवेङ्कटेशको ध्यान एवं प्रणाम कर वसिष्ठसे यह वचन बोले ॥ ३२ ॥

अथ ब्रह्माज्ञया श्रीवेङ्कटाचलं प्रति वसिष्ठाद्यागमनम्

ब्रह्मोवाच—

काश्या दक्षिणदेशे वै कश्चिदस्ति महीधरः ॥ वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातो
विश्वलोकैकसम्मतः ॥ ३३ ॥ श्रीवेङ्कटेति यन्नाम मर्त्यो वाचा वदन्नपि ॥
देवानां वन्दनीयत्वं याति तादृङ् महीधरः ॥ ३४ ॥ तत्र तीर्थानि सर्वाणि
सर्वपापहराणि च ॥ षट्षष्टिकोटितीर्थानि विद्यन्ते वेङ्कटाचले ॥३५॥

ब्रह्मा बोले—काशीके दक्षिण देशमें समस्त ब्रह्माण्डमें एक ही माना हुआ वेङ्कटाचल ऐसा प्रसिद्ध कोई पर्वत है जिसका श्रीवेङ्कट ऐसा नामको बोलता हुआ मनुष्य देवताओंसे भी प्रणाम किया जाता है, इस प्रकारका प्रभाववाला वह पर्वत है। उस श्रीवेङ्कटाचलपर सब पापोंको हरण करनेवाले छियासठ करोड़ तीर्थ हैं ॥३६॥

स्वामितीर्थमिति ख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ तत्तीरे दक्षिणे विष्णुर्लक्ष्म्या सह विमोदते ॥ ३६ ॥ अगस्त्यशङ्खणादीनामभीष्टवरदायकम् ॥ वेङ्कटेशं नमस्कृत्य दृष्टादृष्टं च विन्दति ॥ ३७ ॥ तस्य वेङ्कटशैलस्य मध्ये घोणमिति स्मृतम् ॥ एकं तीर्थं पवित्रं वै तत्र स्नातः शुचिः सदा ॥ ३८ ॥ मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ घोणस्नानेन सर्वाणि नश्यन्ति दुरितानि हि ॥ ३९ ॥

सब तीर्थोंमें स्वामीतीर्थ ऐसा प्रसिद्ध एक उत्तम तीर्थ है। उसके दक्षिण तीरपर विष्णु भगवान लक्ष्मीके साथ आनन्दसे रहते हैं। अगस्त्य और शंखण आदिको अभीष्ट वर देनेवाले वेङ्कटेशको प्रणाम कर मनुष्य दृष्ट और अदृष्ट सब फलको पाते हैं। उस वेङ्कट पर्वतके बीचमें "घोण" ऐसा प्रसिद्ध एक पवित्र तीर्थ है, वहांपर स्नान करनेसे मनुष्य सदा पवित्र होता है। मीन राशिके सूर्य होने पर महातिथि पूर्णमासीको घोणमें स्नान करनेसे सब पाप नष्ट होते हैं ॥ ३९ ॥

त्वदाश्रितस्त्वं च तत्र गत्वा वेङ्कटभूधरे ॥ मीनमासे पौर्णमास्यां स्नातौ पूतौ भविष्यथः ॥ ४० ॥ इत्युक्तवन्तं ब्रह्माणं नमस्कृत्याऽथ हृष्टधीः ॥ अवरुह्य ब्रह्मलोकादत्यन्तं त्वरयान्वितः ॥ ४१ ॥ सर्वाबद्धमुपागम्य वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ रे रे ब्राह्मण मां नित्यमाश्रितोऽसि सदा वदन् ॥ ४२ ॥ तत्पापपरिहाराय किञ्चिद्वक्ष्यामि तच्छृणु ॥ गच्छामि वेङ्कटगिरिमेहि शीघ्रं मया सह ॥ ४३ ॥ इत्युक्तमात्रो विप्रोऽसौ तेन सार्धं जगाम ह ॥

तुम्हारा भक्त और तुम वेङ्कटाचलको जा कर मीनराशिको पूर्णिमामें स्नान करनेसे पवित्र हो जाओगे। इस प्रकार कहने पर ब्रह्माको प्रणाम करके प्रसन्न मन वसिष्ठमुनि ब्रह्मलोकसे उतर कर शीघ्रतासे सर्वाबद्धके पास आ कर वचन बोले—हे ब्राह्मण! सदा मेरा ही नाम लेता हुआ तुम मेरे ही आश्रयमें रहते हो। तुम्हारे पाप छुड़ानेके लिये कुछ उपाय कहता हूं, सो सुनो। मैं वेङ्कटाचलको जाता हूं, मेरे साथ तुम भी आओ। इतना कहनेसे ही वह ब्राह्मण उनके (वसिष्ठके) साथ गया ॥ ४४ ॥

अथ घोणतीर्थस्नानेन वसिष्ठादीनां पापनिवृत्तिः

सब्राह्मणो वसिष्ठोऽसौ वेङ्कटाचलमीयिवान् ॥ शुकस्य वरदं कृष्णं सुवर्णमुखरीतटे ॥ ४४ ॥ दृष्ट्वा प्रणम्य पश्चात्स वेङ्कटाचलमूलगः ॥ कापिलाख्ये कृतस्नानस्तीर्थे पापप्रणाशने ॥ ४५ ॥ आरुह्य वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥४६॥ तत्र स्नात्वा भूवराहं प्रणम्य स्वैनःशान्तिं प्रार्थयित्वा स विप्रः ॥ लक्ष्मीनाथं दक्षिणे कूलभागे नत्वा नाथं स्तोत्रयामास सम्यक् ॥ ४७ ॥

ब्राह्मणके साथ वसिष्ठ मुनि वेङ्कटाचलको आये और सुवर्णमुखरीके तटपर शुकको वर देनेवाले कृष्णके दर्शन और प्रणाम कर पीछे वेङ्कटाचलके मूलमें जा कर पापको नाश करनेवाले कापिलतीर्थमें स्नान कर, श्री वेङ्कटाचल पर स्वामिपुष्करिणीको आ पहुचे। वहांपर स्नान करनेके बाद भूवराहको प्रणाम कर, उनसे पापकी शान्तिकी प्रार्थना करके उन ब्राह्मणने दक्षिण तीरपर लक्ष्मीपतिको प्रणाम कर, अच्छी प्रकार उनकी प्रार्थना की ॥४७॥

जय धातृगिरा निदर्शितो जय लोकावनदक्ष रक्ष माम् ॥ जय शङ्खणपूजितेह मां द्विजमेनं च पुनीहि केशव ॥ ४८ ॥ तव वेङ्कटनायकाचले महति श्रीधर घोणतीर्थके ॥ अभिषेकविधित्सयाऽऽगतो भगवंस्तत्र फलं प्रयच्छ मे ॥४९॥

ब्रह्माके बतलानेसे देखे गये हुए आपकी जय हो! संसारके पालन करनेमें समर्थ आपकी जय हो! मुझको बचाइये। हे शङ्खणसे पूजित! आपकी जय हो। हे केशव! यहांपर इस ब्राह्मणको और मुझको पवित्र कीजिये। आपके वेङ्कटाचल पर्वतपर, अत्यन्त शोभासे युक्त घोणतीर्थमें स्नान करनेकी इच्छासे मैं आया हूं। हे भगवन्! उसका फल मुझको दीजिये ॥४९॥

इति स्तुत्वोत्तरे देशे पापनाशनतीर्थके ॥ सर्वावद्धेन सहितः स्नात्वा घोणं जगाम ह ॥ ५० ॥ एकादश्यां तत्र गत्वा पञ्चरात्रमुवास ह ॥ मीनमासे पञ्चदश्यां मध्याह्ने स्नातुमागतान् ॥ ५१ ॥ ऋषीन् देवांश्च यक्षांश्च गन्धर्वान्किन्नरांस्तथा ॥ आश्चर्यं परमं गत्वा वसिष्ठो विप्रसंयुतः ॥ ५२ ॥ स्नात्वा सङ्कल्प्य विधिवद्देवर्षीनभितर्प्य च ॥ सह विप्रेणोपविश्य जपं चक्रे विधानतः ॥ ५३ ॥ जपान्ते श्रीहरिं ध्यायन् समाधिस्थोऽभवन्मुनिः ॥

इस प्रकार स्तुति कर वे उत्तरमें पापनाशन तीर्थमें सर्वाग्रद्धके साथ स्नान करके "घोण तीर्थ" को गये। एकादशीको जा कर पांच रात्रि वहां ठहर गये। मीनराशिकी पूर्णिमाको मध्याह्नमें स्नान करनेको आये हुए ऋषियों, देवताओं, यक्षों, गन्धर्वों और किन्नरोंको देख कर ब्राह्मणके साथ वसिष्ठ अत्यन्त आश्चर्य्यान्वित हो, नियमके साथ संकल्पपूर्वक स्नान कर, देवताओं एवं ऋषियोंको तर्पण करके बैठ कर ब्राह्मणके साथ विधिपूर्वक जप करने लगे और हरिको ध्यान करते हुए वे मुनि जपके अन्तमें समाधिमें लग गये ॥५३॥

अथ वसिष्ठं प्रति भगवद्वर्णितघोणतीर्थमाहात्म्यम्

स्नात्वा तिष्ठत्सु सर्वेषु तत्र घोणे पुरो मुनेः ॥ ५४ ॥ आविरासी-
द्वेङ्कटेशः श्रिया सार्धं जगत्पतिः ॥ गरुडासनमारूढः पीताम्बरधरो
हरिः ॥५५॥ प्रसन्नवदनाम्भोजः सर्वप्राणिदयापरः ॥ कटाक्षयन् करुणया
सर्वांस्तीर्थार्थमागतान् ॥ ५६ ॥ सनन्दसनकाद्यैश्च सेनेशानन्तसंयुतः ॥
सेव्यमानो वेङ्कटेशो वसिष्ठं वाक्यमब्रवीत् ॥ ५७ ॥

वसिष्ठके प्रति भगवानका कहा हुआ घोणतीर्थका माहात्म्य

वहांपर घोणतीर्थमें स्नान कर बैठे हुए सब मुनियोंके आगे लक्ष्मीके साथ, संसारके स्वामी, पीतवस्त्रधारण किये हुए, प्रसन्न मुखकमलवाले तथा सब प्राणियोंपर दया करनेवाले श्रीवेङ्कटेश गरुड़के आसनपर बैठे हुए, प्रकट हुए। विष्वक्सेन एवं शेषके साथ, सनन्दन और सनक आदिसे सेव्यमान श्रीवेङ्कटेश तीर्थमें स्नानको आये हुए सबको करुणाकी दृष्टिसे देखते हुए, वसिष्ठसे वचन बोले ॥५७॥

वसिष्ठाहं प्रसन्नोऽस्मि तव वर्धस्व वैभवात् ॥ मम तीर्थस्य मा-
हात्म्यं श्रुत्वा ब्रह्ममुखाद्भवान् ॥ ५८ ॥ भक्त्या समागतो यस्मात्ततस्तु-
ष्टोऽस्मि ते मुने ॥ वरं वरय विप्रेन्द्र यत्ते मनसि वर्तते ॥ इत्युक्तो वेङ्कटे-
शेन मुनिः प्रोवाच केशवम् ॥ ५९ ॥

हे वसिष्ठ! मैं तुमसे प्रसन्न हूं, तुम वैभवसे बढ़ो। मेरे तीर्थके माहात्म्यको ब्रह्माके मुखसे सुन कर भक्तिपूर्वक जो तुम आये हो, हे मुनि! उसीसे मैं प्रसन्न हूं। हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! तुम्हारे मनमें जो है, सो वर मागो। श्रीवेङ्कटेशसे इस प्रकार कहे हुए वे मुनि सादर वचन बोले ॥ ५९ ॥

वसिष्ठ उवाच—

नमोऽस्तु वेङ्कटाधीश विश्वरक्षामणे हरे ॥ विज्ञापनां मदीयां त्वं

सावधानमनाः शृणु ॥ ६० ॥ अयं विप्रो मम सखा कृतवानपि पात-
कम् ॥ मय्यनुग्रहबुद्ध्या च तीर्थस्यास्य प्रभावतः ॥ ६१ ॥ सर्वं सोढ्वा
पवित्रं च कुरु पापविवर्जितम् ॥ उक्तो वसिष्ठेनैवं तु वेङ्कटाचलना-
यकः ॥ ६२ ॥

वसिष्ठ बोले—हे वेङ्कटेश ! संसारकी रक्षा करनेवाले, हरि ! मेरी प्रार्थनाको आप सावधानचित्त हो कर सुनिये । यह ब्राह्मण मेरा मित्र और घोर पाप करनेवाला भी है, मेरे ऊपर कृपा करके सबको सहन कर इस तीर्थके प्रभावसे इस ब्राह्मणको पवित्र और पापसे हीन कर दीजिये । श्रीवेङ्कटेश इस प्रकार वसिष्ठसे प्रार्थित हुए ॥ ६२ ॥

श्रीभगवानुवाच—

वसिष्ठ जातः सन्तोषो ममातीव महामुने ॥ ममाश्रितोऽयमित्येव
दया तस्मिंस्त्वया कृता ॥ ६३ ॥ य आश्रितेषु वात्सल्यं कुरुते स इहोत्त-
मः ॥ तस्मिन्मम महाप्रीतिस्तन्मदीयगुणो महान् ॥ ६४ ॥ अयं च त्वयि
विश्वासाद्भक्तिं विहितवानहो ॥ महत्सु भक्तिं यः कुर्यात्स एव पुरुषोत्त-
मः ॥६५॥ तस्य लक्ष्म्या समेतोऽहं वसामि सततं हृदि ॥ अयं तु बहुपा-
पानि कृतवांल्लोकगर्हितः ॥६६॥ एको गुणोऽपि नास्त्यस्मिन्सर्वावद्ध इती-
रितः ॥ तथापि त्वत्सहायेन तीर्थमागत्य भक्तितः ॥६७॥ स्नातश्च पूर्णि-
मायोगे पापं सर्वं लयं गतम् ॥

श्री भगवान बोले—हे महामुनि ! वसिष्ठ ! मुझको अत्यन्त सन्तोष हुआ है, क्योंकि आपने यह मेरा आश्रित है, ऐसा जानकर इसपर दया की है । जो अपने आश्रितों पर वात्सल्य भाव प्रदर्शित करते हैं, वे इस लोकमें श्रेष्ठ हैं, उनके ऊपर मेरा अत्यन्त प्रेम होता है । क्योंकि यह मेरा महान् गुण है । और इसने आपमें विश्वास करके भक्ति भी की है । बड़ोंमें जो भक्ति करता है वही श्रेष्ठ पुरुष है । उसके हृदयमें मैं लक्ष्मीके साथ रहता हूँ । संसारमें यह निन्द्य ब्राह्मणने बहुतसे पाप किये हैं । इसमें एक भी गुण नहीं है । यह सर्वावद्ध नामसे प्रसिद्ध है, तथापि तुम्हारी सहायतासे इसने तीर्थमें आ कर भक्तिपूर्वक पूर्णिमाके योगमें स्नान किया है, इससे इसके सब पाप नष्ट हो गये ॥६६

सर्वे चास्मिन्गुणा जाताः सहवासेन ते मुने ॥ ६८ ॥ तस्मात्स सर्व-
सिद्धाख्यामद्य प्रभृति यास्यति ॥ अस्याहं हृदये तिष्ठन्सत्कर्माणि प्रवर्तय-
न् ॥६९॥ धनिकं धार्मिकं चैव करोमि सुखिनं तदा॥ वसिष्ठ शृणु मद्वाक्य-
मेतेषां सन्निधौ ब्रुवे ॥ ७० ॥ पौरोहित्येन सञ्जातं तव दोषं हराम्यहम् ॥

पुरुषो वाऽथवा नारी ब्राह्मणः क्षत्रियोऽपि वा ॥७१॥ पापान्मुक्तो वाञ्छि-
तानि प्राप्नोति हि न संशयः ॥

और हे मुनि ! तुम्हारी सङ्गतिसे इसमें सब गुण आगये। इसलिये आजसे यह सर्वसिद्ध ऐसा प्रसिद्ध होगा। मैं इसके हृदयमें रहते एवं सत्कर्मोंको कराते हुए इसको, धनी, धार्मिक और सुखी बनाऊंगा। हे वसिष्ठ! मेरे वचनको सुनो, मैं इन लोगोंके सन्मुख कहता हूं। पौरोहित्यसे उत्पन्न तुम्हारे सब पापोंको मैं हरण करूंगा। पुरुष हो अथवा स्त्री, ब्राह्मण हो अथवा क्षत्रिय, मेरे उद्देश्यसे तपस्या करके पापसे छूट कर वाञ्छित फलको पाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ७२ ॥

मामुद्दिश्य तपस्तप्त्वा तुम्बुरुर्भगवानिह ॥७२॥ तीर्थस्य स्वस्य नाम्नैव
ख्यातिं प्रार्थितवानभूत् ॥ अज्ञानाद्विहितं ज्ञानान्मनोवाक्कायकर्मभिः ॥७३॥
यत्पापं तदशेषं चाप्यत्र स्नानेन शाम्यति ॥ नारी वा पुरुषो वाऽपि स्नात्वा
तीर्थे शुभे दिने ॥७४॥ इष्टार्थं स्वं स्वमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥
दत्ता तुम्बुरुतीर्थाख्या तीर्थस्यास्य महामुने ॥ ७५ ॥

तुम्बुरु भगवानने इस तीर्थकी ख्याति अपने नामसे होनेके लिये प्रार्थना की। ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे मन, वचन और कर्मसे जो पाप किये जाते हैं वे सब यहां पर स्नान करनेसे नष्ट हो जाते हैं। स्त्री अथवा पुरुष इस तीर्थमें शुभदिनमें स्नान करके अपने अपने इच्छित फलको पाते हैं, इसमें संशय नहीं है। हे महामुनि! इस तीर्थका नाम तुम्बुरु तीर्थ किया गया है ॥ ७५ ॥

वर्षे वर्षे मीनमासे पूर्णिमायां शुभे दिने ॥ स्नाति तुम्बुरुतीर्थेऽस्मिन्स
धन्यो भुवनत्रये ॥७६॥ कन्या भर्तारमाप्नोति लोके सर्वगुणोत्तरम् ॥ युवती
दीर्घमाङ्गल्यं कुलोत्तारं सुतं तथा ॥ ७७ ॥ वृद्धा पापविनिर्मुक्ता पुत्रपौत्रा-
दिसंयुता ॥ धनान्विता बन्धुमती जीवद्भर्त्री चिरं वसेत् ॥ ७८ ॥ वन्ध्या
पुत्रं प्रसूते ह स्नानादत्र न संशयः ॥ पुरुषो धनमन्विच्छन्धनो भवति नि-
त्यदा ॥७९॥ पुत्रार्थी लभते पुत्रं पौत्रं पौत्रेप्सुराप्नुयात् ॥ मानार्थी लोक-
सम्मानं विद्यार्थी बहुविद्यताम् ॥ लौकिके वैदिके कार्ये पटुर्भवति
सर्वदा ॥ ८० ॥

प्रतिवर्ष मीन राशिकी पूर्णिमाके शुभ दिनमे जो इस शुभ तुम्बुरु तीर्थमें स्नान करता है, वह तीनों भुवनोंमें धन्य है। कन्या संसारमें सब गुणोंसे श्रेष्ठ पति पाती है, एवं युवती चिर सौभाग्य और कुलको तारने वाला पुत्र

पाती है। वृद्धा स्त्री पापसे छूटकर, पुत्र-पौत्रादिके साथ, धनवती और बन्धुमती हो कर पतिके जीते हुए बहुत दिनतक जीती है। यहां पर स्नान करनेसे वन्ध्या स्त्रीको पुत्र होता है। धनको चाहता हुआ पुरुष सदा धनी होता है, पुत्रको चाहनेवाला पुत्रको, पौत्रको चाहनेवाला पौत्रको पाता है। सम्मानको चाहनेवाला संसारमें सम्मान और विद्याको चाहनेवाला बहुत विद्या पाता और लौकिक एवं वैदिक कर्मों में सदा पटु होता है ॥ ८० ॥

अत्र स्नाता मुक्तपापाः समस्ता धान्यं द्रव्यं पुत्रभाग्यं च लब्ध्वा ॥ सौख्यं लब्ध्वा बन्धुमध्ये समस्तमायुष्मन्तो विष्णुलोकं व्रजन्ति ॥ ८१ ॥ अत्र तीर्थेऽत्र दिवसे स्नात्वा ये भाग्यशालिनः ॥ दानं कुर्वन्ति विप्रेभ्यस्तेष्वत्यन्तदया मम ॥ ८२ ॥ सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति तेषां लक्ष्मीः स्थिरा भवेत् ॥ गोदानं राजतं दानं भूदानं च फलं तिलान् ॥८३॥ विद्यां वस्त्रं च विप्रेभ्यो दाता सोऽतीव मे प्रियः ॥ ताम्बूलं च सुगन्धं च दधि तक्रं गुडोदकम् ॥ ८४ ॥ दत्त्वा ब्रह्मशिवादीनां वन्दनीया भवन्ति ते ॥

यहांपर स्नान किये हुए सब मनुष्य धान्य द्रव्य और पुत्रका सौभाग्य एवं बन्धुमें समस्त सुख लाभ कर बहुत दिन जी कर विष्णुलोकमें जाते हैं। इस तीर्थमें इस दिनको स्नान करके जो भाग्यवान पुरुष ब्राह्मणोंको दान देते हैं उनके ऊपर मेरी अत्यन्त कृपा रहती है। जो यहां सुवर्ण दान करते हैं उनकी लक्ष्मी स्थिर होती है, गोदान, चान्दी दान, भूमिदान, फल, तिल, वस्त्र एवं विद्याको ब्राह्मणोंको देनेवाला मेरा अत्यन्त प्रिय होता है। ताम्बूल, सुगन्ध, दही, तक्र, गुडका जल, (शर्बत) दान कर वे ब्रह्मा शिव आदिसे वन्दनीय होते हैं ॥८४॥

ये ब्राह्मणान्भोजयन्ति भक्त्या भागवतानिह ॥ ८५ ॥ तानालोक्य महानन्दो मम लक्ष्म्याश्च जायते ॥ कलौ युगे च प्रख्यातं तीर्थमेतद्भविष्यति ॥ ८६ ॥ स्नानं दानं मनुष्याणां सर्वाघौघविनाशनम् ॥ अत्र मार्गे प्रपां ये वै कुर्वन्ति श्रमहारिणीम् ॥ ८७ ॥ तान्मदंशान्नृषिगणा वदन्त्यत्र न संशयः ॥ सर्वं दानं कोटिगुणं भवत्यत्र न संशयः ॥ ८८ ॥ तस्मात्कुर्वन्तु दानानि सर्वे मनुजपुङ्गवाः ॥ सर्वदाऽस्मिन्पुण्यदिने सन्निधिं विदधाम्यहम् ॥ ८९ ॥

जो भक्तिपूर्वक वैष्णव ब्राह्मणोंको यहां भोजन कराता है, उसको देख कर मुझे एवं लक्ष्मीको अत्यन्त आनन्द होता है। कलियुगमें यह तीर्थ प्रसिद्ध होगा। यहांपर स्नान और दान करना मनुष्योंके सब पापोंको नाश करता है। यहांपर जो लोग थकावटको मिटानेवाले प्याऊ (जल पीनेका स्थान) बनायेंगे उनको ऋषिगण मेरे अंशसे उत्पन्न

कहते हैं, इसमें संशय नहीं है। सब दान यहांपर करोड़ गुना होता है, इसमें संशय नहीं है। इससे सब मनुष्य-श्रेष्ठ यहांपर दान करें। सदा पुण्य दिनमें मैं यहांपर प्रत्यक्ष रहता हूं। यहांपर स्नान किये हुए सबको इच्छित फलको देता हूं ॥ ८९ ॥

स्नातानामत्र सर्वेषां वाञ्छितानि ददाम्यहम् ॥ तीर्थार्थमागतान्सर्वानाहूय घननिःस्वनः ॥ ९० ॥ भगवान् वेङ्कटाधीशो वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥९१॥ सर्वेषां वः सर्वपापक्षयोऽभूत्सर्वेषां वो वाञ्छितं दत्तमेव ॥ सर्वेषां वः सन्तु कालान्तरे च लोकाःश्रेष्ठा योगिनामप्यलभ्याः ॥९२॥ कलौ तु भारते वर्षे मानुषं जन्म दुर्लभम् ॥ ततो वेङ्कटयात्रा तु दुर्लभा सुकृतं विना ॥९३॥ ततोऽप्यस्मिन्दिने पुण्ये तीर्थे तुम्बुरुनामके ॥ स्नानं दानं च लब्धं चेत्ते कृतार्था न संशयः ॥९४॥

तीर्थके लिये आये हुए सबोंको बुलाकर मेघके समान शब्दवाले श्रीवेङ्कटेश सार्थक वचन बोले—कि आप सब किसीका पाप क्षय हो गया, आप सब किसीको मैंने वाञ्छित फल दे दिया, आप सब किसीको मृत्युके बाद श्रेष्ठ एवं योगियोंको भी अलभ्य लोक मिलेगा। कलियुगमें भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म दुर्लभ है। पुण्यके बिना वेङ्कटाचलको जाना उससे भी दुर्लभ है। जिनको पुण्य दिनमें इस तुम्बुरुतीर्थमें उससे भी दुर्लभ स्नान और दान मिल जाय तो वे कृतार्थ हो गये, इनमें संशय नहीं है ॥ ९४ ॥

इत्युक्त्वा वेङ्कटाधीशो हरिर्गरुडवाहनः ॥ रमया सहितो रेमे वेङ्कटाख्ये महीधरे ॥ ९५ ॥

ऐसा कह कर गरुड़वाहन श्री वेङ्कटेश वेङ्कटाचल पर लक्ष्मीके साथ रमण करने लगे ॥ ९५ ॥

एवं तुम्बुरुतीर्थे वै स्नात्वा देवर्षिमानवाः ॥ हरिं नत्वा तद्वदनसुधां पीत्वा यथागतम् ॥ ९६ ॥ प्रशंसन्तस्तु तत्तीर्थं ययुः सन्तुष्टमानसाः ॥

इस प्रकार तुम्बुरु तीर्थमें स्नान कर देवता, ऋषि, मनुष्य आदि हरिको प्रणाम कर उनके मुख कमलके दर्शन कर उस तीर्थकी प्रशंसा करते हुए आनन्दमनसे जैसे आये थे वैसे चले गये ॥

अथ घोणस्नानेन सर्वसिद्धं सर्वाबद्धं प्रति वसिष्ठादिप्रशंसा

वसिष्ठः सर्वसिद्धेन तुष्टः स्वावासमागमत् ॥ किञ्चित्कालानन्तरं तं वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥९७॥ गच्छ विप्र स्वकं ग्रामं धनवत्स्वगृहं व्रज ॥ वेङ्कटेशप्रसादेन धनधान्यादिकं बहु ॥ ९८ ॥ स्नानदानजपादीनि विप्रकृ-

र्माणि चाऽऽचर ॥ महत्सु पूजां कुर्वाणो भोजयन्ब्राह्मणानपि ॥ ९९ ॥
वेङ्कटेशेत्यभिवदन् पुत्रपौत्रैः सुखी भव ॥

धोण स्नानसे सर्वसिद्ध सर्वसिद्धके प्रति वसिष्ठ आदिकी प्रशंसा

प्रसन्न वसिष्ठ सर्वसिद्धके साथ अपने निवासस्थानको आये और कुछ समयके बाद वसिष्ठ उससे वचन बोले—हे प्रिय ब्राह्मण ! अब अपने गावको जाओ और धनसे पूए अपने घरको जाओ, वेङ्कटेशकी प्रसन्नतासे तुमको बहुत धन और धान्य हो गया। अब स्नान, दान, जप आदि ब्राह्मणकर्मोंको करो। बड़ोंकी पूजा करते, ब्राह्मणको भोजन भी कराते एवं वेङ्कटेश ऐसा कहते हुए पुत्र पौत्रके साथ सुखी होओ ॥ १००॥

इत्युक्तः स वसिष्ठेन नत्वा तत्पादपङ्कजम् ॥ १०० ॥ स्वग्राममगमत्सिद्धः सर्वैरभ्युद्गतोऽभवत् ॥ सर्वसिद्ध भवान् धन्यो वेङ्कटेशकृपानिधिः ॥ १०१ ॥ वसिष्ठस्य प्रसादेन त्वत्समः पुरुषो न हि ॥ एवं सम्पूजितः सर्वैर्ब्राह्मणक्षत्रियादिभिः ॥ १०२ ॥ धनधान्ययुतः सपुत्रपौत्रः स सदाचारयुतः सदानधर्मः ॥ अथ वेङ्कटनायकेति जल्पन्नवनौ ब्राह्मणपुङ्गवो बभूव ॥ १०३ ॥ एवं सत्सङ्गमहिमा त्वेवं वेङ्कटवैभवः ॥ एवं तुम्बुरुतीर्थस्य महिमा लोकसम्मतः ॥ १०४ ॥

वसिष्ठसे इस प्रकार कहा गया हुआ वह सिद्ध उनके चरण कमलको प्रणाम करके अपने ग्रामको गया, और सबने आदरसे उसकी अगुवानी की—हे सर्वसिद्ध ! वेङ्कटेशकी कृपासे तुम धन्य हो ! वसिष्ठकी कृपासे तुम्हारे समान पुरुष नहीं है। इस प्रकार सब ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिसे पूजित, धनधान्यसे युक्त, पुत्रपौत्रसे युक्त, सदाचारी और दान धर्मके सहित वह "वेङ्कटेश" ऐसा कीर्तन करता हुआ पृथ्वी पर श्रेष्ठ ब्राह्मण बन गया। इस प्रकार सत्सङ्गकी महिमा और वेङ्कटका वैभव है, इस प्रकार तुम्बुरुतीर्थकी लोकसम्मत महिमा है ॥ १०४ ॥

इमं प्रसङ्गं यो विद्वान्वेङ्कटाचलवैभवम् ॥ मीनमासे पूर्णिमायां पठते जनसंसदि ॥ १०५ ॥ वक्तुश्च भक्त्या श्रोतॄणां वाञ्छितानि ददात्यसौ ॥ यस्तु वेङ्कटमाहात्म्यकथाकथनकोविदः ॥ १०६ ॥ विष्ण्वंशं तं प्रशंसन्ति व्यासाद्या मुनयस्तथा ॥ १०७॥

वेङ्कटाचलके वैभववाले इस प्रसङ्गको जो विद्वान् मीनराशिकी पूर्णमाको मनुष्योंकी सभामें पढता है, उसको और भक्तिपूर्वक उसके सुननेवालोंको ये वेङ्कटेश वाञ्छित फल देते हैं। जो वेङ्कटेशके माहात्म्यकी कथा कहनेमें चतुर होते हैं, व्यास आदि मुनिगण उनकी 'विष्णुके अंश' ऐसा प्रशंसा करते हैं ॥ १०७ ॥

सूत उवाच—

वेङ्कटाचलमाहात्म्यं श्रुतं वा पावनं द्विजाः ॥ यस्मिञ्छ्रुतेऽन्यमाहा-
त्म्यश्रवणेच्छा न जायते ॥ १०८ ॥ नास्ति तुम्बुरुतीर्थस्य समं पापप्रणा-
शनम् ॥ तन्मीनपूर्णमास्यां चेत्सर्वपुण्योत्तमोत्तमम् ॥ १०९ ॥

इति श्रीब्रह्मोत्तरखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यान्तर्गते
तीर्थमाहात्म्ये घोणतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चाशत्तमोऽध्यायोऽत्र प्रथमः ॥१॥

श्री सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! आपलोगोंने वेङ्कटाचलके पवित्र माहात्म्यको सुना, जिसके सुननेसे दूसरा माहात्म्य सुननेकी इच्छा नहीं होती है। तुम्बुरुतीर्थके समान पाप नाश करनेवाला दूसरा कोई तीर्थ नहीं है। यदि वह मीनराशिकी पूर्णिमाको मिले तो वह सब पुण्योंसे उत्तम है ॥१०९॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः



नारद ऋषिके शापसे, घोण तुम्बरु प्राप्ति।
तुम्बरु तप सन्तुष्ट हो, स्वयं प्रभू सम्प्राप्ति ॥१॥
तीर्थनाम तुम्बरु करन, ऋषि अगस्त्य कृत स्नान।
इस द्वितीय अध्यायमें, तुम्बरु तीर्थ बखान ॥२॥

अथ तुम्बुरोर्नारदशापेन घोणतीर्थप्राप्तिः

ऋषय ऊचुः—

सूत सर्वार्थविज्ञानविचक्षण महामते ॥ किञ्चिद् ब्रूमो वयं सर्वे तन्नो वक्तुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥ तुम्बुरुर्नाम भगवान्कस्माद्वेङ्कटपर्वते ॥ तपस्तप्त्वा क-चित्तीर्थे लब्धवान्किं फलं वद ॥ २ ॥ कस्माद्वा घोणतीर्थस्य स्वाख्यां प्रार्थि-तवानभूत् ॥ किमुद्दिश्य तपस्तप्तमस्माकं वक्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

नारदके शापसे तुम्बुरुका घोणतीर्थको आना

ऋषि बोले—हे सूत ! सब अर्थोंके जाननेमें चतुर ! महामते ! हमलोग कुछ पूछते हैं, वह हमसे कहिये ! भगवान तुम्बुरुने किसलिये वेङ्कटाचलके किस तीर्थमें तपस्या करके क्या फल पाया, सो कहिये । तथा किसलिये उन्होंने घोणतीर्थको अपने नामसे प्रसिद्ध होनेकी प्रार्थना की ? किस उद्देश्यसे तपस्या की ? यह सब हमसे कहिये ॥ ३ ॥

सूत उवाच—

वेङ्कटेशं नमस्कृत्य कथां कल्मषनाशिनीम् ॥ प्रवदामि मुदा युक्ताः शृणुत ब्रह्मवादिनः ॥ ४ ॥

श्रीसूतजी बोले—श्रीवेङ्कटेशको प्रणाम कर पापको नाश करनेवाली कथा मैं कहता हूं, हे ब्राह्मणो ! आनन्दसे आपलोग सुनिये ॥ ४ ॥

कदाचिद्गगने यान्तौ वीणावादनतत्परौ ॥ ध्यायन्तौ हरिमेकाग्रौ मुनी तुम्बुरुनारदौ ॥५॥ आकाशमार्गे देवर्षिस्तुम्बुरुं वीक्ष्य विस्मितः ॥ सर्वरत्न-मयीं वीणां दधतं वाक्यमब्रवीत् ॥ ६ ॥ तुम्बुरो तव वीणेयं मद्वीणातो विराजते ॥ केनैवं शोभते वीणा पूर्वमेवं न शोभिता ॥ ७ ॥ सत्यं वदेति पृष्टोऽसौ तुम्बुरुर्वाक्यमब्रवीत् ॥

किसी समय एकान्त मनसे हरिके ध्यान करते एवं वीणा बजाते हुए आकाशमें तुम्बुरु और नारद जाते थे । आकाश मार्गमें देवर्षि नारदने तुम्बुरुको सब रत्नोंसे युक्त वीणा धारण किये हुए देख विस्मित हो कर कहा—हे तुम्बुरु ! यह तुम्हारी वीणा मेरी वीणासे अधिक शोभती है, यह किस कारणसे ऐसी शोभती है ? पहले तो यह इतनी नहीं शोभती थी, सच कहो । ऐसा पूछने पर तुम्बुरु वचन बोले ॥८ ॥

प्राचीनबर्हिषं भूपं गत्वाऽहं स्तुतिमुक्तवान् ॥ ८ ॥ सन्तुष्टस्तेन मे

वीणामेवं राजा त्वकारयत् ॥ नारदस्तद्वचः श्रुत्वा कोपाविष्टो जगाद ह ॥९॥

मैंने प्राचीन बर्हिष राजाके पास जा कर उनकी स्तुति की । उसी राजाने प्रसन्न हो कर इस प्रकारकी वीणा बनवा दी है। उसके वचनको सुन कर क्रोधसे भरे हुए नारद यह वचन बोले ॥ ९ ॥

नारद उवाच—

नरस्तुतिः कृताऽसाधो लोके सत्सु विनिन्दिता ॥ तस्मान्मत्सङ्गयोग्यत्वं न पश्याम्यधमे त्वयि॥१०॥ सर्वेषामपि लोकानां नायकं केशवं विना ॥ नरं न स्तोष्याम्येव तादृगस्मि हरिप्रियः ॥ ११ ॥ मया सह न ते सख्यमुचितं तन्नरस्तुतेः ॥ अवाक्छिराः पत त्वं तु खेचरत्वं न ते भवेत् ॥१२

नारद बोले—हे असाधु! संसारमें सन्तोंसे निन्दित, मनुष्योंकी स्तुति तुमने की है, इसलिये नीच तुममें मेरे साथ रहनेकी योग्यता मैं नहीं देखता हूं। सब लोकोंके स्वामी केशवको छोड़ कर मैं मनुष्यकी स्तुति नहीं करता हूं। इस प्रकार हरि हमारे अत्यन्त प्रिय हैं। मनुष्योंकी स्तुति करनेवाले तेरी मेरे साथ मित्रता नहीं हो सकती है, नीचा शिर करके गिरो। तुम्हारा आकाशमें चलना नहीं हो सकता ॥ १२॥

इत्युक्तमात्रे मुनिना नारदेन तथैव सः ॥ अवाक्छिराः पपाताशु वेङ्कटाचलमध्यतः ॥१३॥ घोणतीर्थे क्वचिद्भागे मनुष्यादिविवर्जिते ॥ सिंहशार्दूलसहिते भीरूणां भयदायिनि ॥ १४ ॥ पतन्नपि हरिं ध्यायन्प्रणतः प्रीतिकारकम् ॥ न व्यथामाप्तवान्घोणमध्यं केवलमाप्तवान् ॥१५॥

नारद मुनिसे इस प्रकार कहे जाने पर उसी प्रकार वह नीचा शिर हो कर वेङ्कटाचलके मध्यमें, मनुष्य आदिसे रहित भयङ्कर स्थानमें शीघ्र गिरा। उसने गिरते हुए भी नम्र हो कर आनन्द देनेवाले हरिके ध्यान करते हुए कुछ भी व्यथा मालूम नहीं किया और घोणतीर्थके मध्यको ही प्राप्त किया ॥ १५ ॥

अथ घोणतीर्थे भगवद्ध्यानपूर्वकतुम्बुरुकृततपःमकारः

ततो दृष्ट्वा तु तं घोणं दिशः समवलोक्य च ॥ हरिभक्त्या धीरबुद्धिरेवं चिन्तां चकार ह ॥ १६ ॥ वेङ्कटाद्रेर्मध्यदेशो नान्यो भवितुमर्हति ॥ तस्मादेतद्वेङ्कटेशो मां रक्षतु सदा हरिः ॥ १७ ॥ गतिर्वेङ्कटनाथो मे नान्या गतिरिति ब्रुवन् ॥ सशङ्खचक्रं लक्ष्मीशं तं ध्यातुमुपचक्रमे ॥१८॥ स्नात्वा तीर्थे तत्र भक्त्या प्राङ्मुखस्तूपविश्य च ॥ प्राणायामशतं कृत्वा तुम्बुरुर्ध्यानमास्थितः ॥ १९ ॥



इत्युक्तमात्रे मुनिना नारदेन तथैव सः । अवाक्शिराः पपाताशु वेङ्कटाचलमध्यतः ॥
घोणतीर्थे क्वचिद्भागे मनुष्यादिविवर्जिते । सिंहशार्दूलसहिते भीरूणां भयदायिनि (पृष्ठ ३७०)

घोणतीर्थमें ध्यानपूर्वक तुम्बुरुका तपस्या करना

तब उस घोणतीर्थको देख कर, दशों दिशाओंमें दृष्टि डाल कर भगवान्‌की भक्तिसे वे धीरबुद्धि इस प्रकार चिन्ता करने लगे कि वेङ्कटाचलके मध्यमें भगवान्‌के अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसलिये ये वेङ्कटेश सदा मेरी रक्षा करें। मेरी गति श्रीवेङ्कटेश ही हैं, दूसरे नहीं। ऐसा कहते हुए वे शङ्ख, चक्रको धारण करनेवाले हरिका ध्यान करने लगे। उस तीर्थमें भक्तिपूर्वक स्नान करके पूर्व मुख बैठ कर सौ प्राणायाम करके तुम्बुरु महर्षि ध्यानमें लग गये ॥ १९ ॥

पीताम्बरं पीनभुजाचतुष्कं भुजान्तरालस्थितलक्ष्मियुक्तम् ॥ प्रस-
न्नवक्त्रं प्रकटीभवत्कृपापाथोधिनेत्रं परमं पुमांसम् ॥ २० ॥ अनन्तपक्षी-
शचमूपमुख्यभक्तैः समेतं परमर्षिसेव्यम् ॥ देवादिदेवं दितिजान्तचक्रं
सेवापराणां सुलभं निधानम् ॥ २१ ॥ हृदम्बुजे हव्यवपुर्धरं तं सञ्चिन्तय-
न्वेङ्कटशैलनाथम् ॥ समुच्चरंस्त्र्यक्षरमर्थयुक्तं निवातनिष्कम्प इव स्थितोऽ-
भूत् ॥ २२ ॥

पीताम्बरको धारण किये हुए, पुष्ट चार भुजावाले, भुजाओंके बीचमें बैठी हुई लक्ष्मी सहित, प्रसन्न मुखवाले, कृपापूर्णनेत्रवाले, उत्तम पुरुष, शेष, गरुड़, विष्वक्सेन इत्यादि भक्तों तथा उत्तम ऋषियोंसे सेवित, देवादिदेव, दैत्योंका नाश करनेवाले, चक्रको धारण किये हुए, सेवकोंके सुलभ, निधिस्वरूप एवं सुशरीर धारण किये, श्रीवेङ्कटाचलके स्वामीका ध्यान करते हुए, अर्थके साथ तीन अक्षरवाले मन्त्रको उच्चारण करते हुए वे वायुरहित स्थान निष्कम्प दीपके समान स्थित हो गये ॥ २२ ॥

अथ तुम्बुरुतपस्तुष्टभगवदाविर्भावादिः

एवं तु नियमेनैव संवत्सरमुवास ह ॥ ततः फाल्गुनमासे ते पौर्ण-
मास्यां महातिथौ ॥ २३ ॥ प्रादुर्बभूव भगवांस्तत्र वेङ्कटनायकः ॥ पीता-
म्बरो दिव्यगन्धस्रग्भूषाभिरलङ्कृतः ॥ २४ ॥ राकाचन्द्रोपममुखो राजीवा-
यतलोचनः ॥ लक्ष्म्या सर्वजगन्मात्रा रमणीयभुजान्तरः ॥ २५ ॥ समस्त-
वाद्यनिनदः सङ्घुष्टगिरिकन्दरः ॥ २६ ॥

इस प्रकारके नियमसे वे एक वर्ष तक रहे, तब फाल्गुन मासकी महातिथि पौर्णमासीको वहांपर पीताम्बर धारण किये हुए, दिव्य गन्ध, स्रक्, भूषण इत्यादिसे शोभित, पूर्णिमाके चन्द्रके समान मुखवाले, राजीवके समान चौड़े नेत्रवाले, सब संसारकी माता लक्ष्मीसे शोभित वक्षस्थलवाले, श्रीवेङ्कटेश अपने सब बाजाओंके नादसे गिरि कन्दराओंको पूर्ण करते हुए प्रकट हुए ॥ २६ ॥

श्रीभगवान् उवाच—

तुम्बुरो तुम्बुरो वत्स मां पश्य किमपेक्षसे ॥ इति ब्रुवन्तं तमृषिर्दद-
र्शोन्मील्य चक्षुषो ॥ २७ ॥ साष्टाङ्गं तं प्रणम्याथ देवदेवं ददर्श ह ॥

श्रीभगवान् बोले—हे तुम्बुरु ! हे वत्स तुम्बुरु ! हमारे तरफ देखो तुम क्या चाहते हो ? ऐसा कहते हुए उनको आंख खोल कर उन्होंने देखा और देवाधिदेवको देख साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ २८ ॥

तस्य पार्श्वे सेवमानं ददर्शानन्तमव्ययम् ॥२८॥ गरुडं गिरिसङ्काशं
विष्वक्सेनं महाप्रभुम् ॥ अगस्त्यमृषिमुख्यं च देवपादावलोकिनम् ॥२९॥
अन्यान्द्वैपायनादींश्च ऋषीनञ्जलिबन्धनान् ॥ सनकाद्यान्योगिनश्च वैखा-
नसमुनीनपि ॥ ३० ॥ शुकमानसपुत्रांश्च शुकं च मुनिसत्तमम् ॥ देवग-
न्धर्वसिद्धांश्च विश्वावसुमुखानपि ॥ ३१ ॥ यक्षान्किम्पुरुषांश्चैव किन्न-
रोरगनायकान् ॥ जय देव जगन्नाथ सावधानमनो जय ॥ ३२ ॥ इति
मेघरवोदग्रान्वेत्रपाणींश्च कांश्चन ॥ आब्रह्मलोकादायातानप्सरोगणमा-
गतम् ॥३३॥ आहूयाशेषलोकं तमाह शेषगिरीश्वरः॥

और उनके पार्श्वमें सेवा करते हुए अव्यग्र, अनन्त, पर्वतके समान गरुड़, महाप्रभु विष्वक्सेन, देवके चरणको दर्शन करनेवाले ऋषिमुख्य अगस्त्य, अञ्जलि बांधे हुए द्वैपायन आदि ऋषि, सनकादि योगिगण, वैखानस मुनि,मानस पुत्र, श्रेष्ठ मुनि शुक, देवता, गन्धर्व, सिद्ध, विश्वावसु आदि यक्ष, किम्पुरुष, किन्नर तथा सर्पके नायकोंको देखा। फिर हे देव ! जगन्नाथ ! आपकी जय हो। हे सावधान मनवाले आपकी जय हो ! इस प्रकार मेघके शब्दसे कहते हुए, ब्रह्मलोक पर्यन्तसे आये हुए वेत्रधारी रक्षकगण,अप्सरागण तथा सम्पूर्ण लोकको बुला कर उनसे श्रीवेङ्कटेशने कहा।

भो भोः सर्वेऽपि तीर्थेऽस्मिन्स्नानं कुरुत मा चिरम् ॥३४॥ समस्त-
पापहरणे सर्वश्रेयोविधायिनि ॥ इति वाक्यं समाकर्ण्य भक्त्या सङ्कल्प्य
वाग्यताः ॥ ३५ ॥ गोविन्देति ततः स्नात्वा तीरमारुरुहुश्च ते ॥ शुद्धस्तु-
म्बुरुश्चापि स्नात्वा तैः सहितस्तथा ॥ ३६ ॥ भगवत्सन्निधिं प्राप्ताः स्तोत्रं
चक्रुः पृथक् पृथक् ॥ जय सर्वगुहावास लोकरक्षामणे हरे ॥३७॥ भक्तार्त-
पालनपर प्रणतार्तिहर प्रभो ॥ लक्ष्मीनाथ जयानन्त रक्षिताशेषभूसुर॥३८॥
पुनीहि सकलांल्लोकान् पालय त्वं कृपालय ॥३९॥

आप सब कोई सब पापोंको हरण करनेवाले, सब कल्याणके देनेवाले इस तीर्थमें शीघ्र स्नान कीजिये। इस

वचनको सुन कर, भक्तिसे संकल्प करके 'गोविन्द' कहते हुए स्नान करके वे सब तीरपर आये। शुद्ध हृदय वे तुम्बुरु भी उन्हींके साथ स्नान करके भगवान्के पास आये और उन सबोंने पृथक् पृथक् उनकी स्तुति की कि हे सबके हृदयमें रहनेवाले! लोकको रक्षा करनेवाले हरि! आपकी जय हो। भक्तों और आर्तोंके पालन करनेवाले! शरणागतोंके दुःखको छुड़ानेवाले हे प्रभु! लक्ष्मीनाथ! अनन्त! सब ब्राह्मणोंको रक्षा करनेवाले आपको जय हो। हे कृपालु! आप सब लोकको पवित्र कीजिये और पालन कीजिये ॥३९॥

तुम्बुरुरुवाच—

वन्दे सदा वेङ्कटशैलनाथं त्वामेव मे पापहरो भव त्वम् ॥ तीर्थानुभावं च तवानुभावं श्रोतुं ममेच्छा परिवर्धते हि ॥४०॥

तुम्बुरु बोले—श्रीवेङ्कटाचलके स्वामी तुमको मैं सदा प्रणाम करता हूं, आप मेरे पापोंको हरण कीजिये। तीर्थके और आपके माहात्म्यको सुननेकी मेरी इच्छा बढ़ती है ॥ ४० ॥

अथ भगवदाज्ञयाऽगस्त्यवर्णिततुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यम्

श्रीसूत उवाच—

इति स्तुतो वेङ्कटेशः कुम्भसम्भवमब्रवीत् ॥ एतेषामद्य सर्वेषां वेङ्कटाचलवैभवम् ॥४१॥ माहात्म्यमपि तीर्थस्य वद किञ्चिन्महामते ॥ इत्युक्तो देवदेवेन तत्रागस्त्योऽब्रवीदिदम् ॥४२॥ पुण्योऽयं वेङ्कटगिरिः सर्वपुण्यस्थलेष्वपि ॥ समस्ततीर्थान्यत्रैव पुण्यानि निवसन्ति हि ॥४३॥ भक्तापराधान् सोढ्वैव वेङ्कटेशो दयापरः ॥ रक्षत्येव ततः सोऽयं सेव्यः श्रीवेङ्कटेश्वरः ॥४४॥ स्नातानामत्र तत्तीर्थे सर्वपापक्षयो भवेत् ॥ सर्वश्रेयांसि सिद्ध्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ४५ ॥ सुवर्णमन्नं ताम्बूलं सुगन्धं शीतलं जलम् ॥ अत्र दत्त्वा नरः पूतः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ४६ ॥

सूतजी बोले—इस प्रकार स्तुति किये हुए श्री वेङ्कटेशने अगस्त्यसे कहा, हे महामते! आज इन सबोंको श्री वेङ्कटाचलके वैभव और तीर्थके माहात्म्यको भी कुछ कहो। देव देवसे इस प्रकार कहे गये अगस्त्यजी यहां पर बोले—यह वेङ्कटाचल सब पुण्य स्थानमें पवित्र है। सब पवित्र तीर्थ यहां पर रहते हैं। भक्तोंके अपराधोंको सहन कर दयालु श्री वेङ्कटेश्वर उनकी रक्षा करते ही रहते हैं। इसलिये यह सेवा करनेके योग्य हैं। यहां पर इस तीर्थमें स्नान करनेवालोंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं और सब कल्याण सिद्ध हो जाता है। इसमें विचार नहीं करना चाहिये। सोना, अन्न, ताम्बूल, सुगन्ध, शीतल जलका यहां पर दान करके मनुष्य पवित्र हो कर सब कामोंको पाता है ॥४६॥

भगवन्मम नाम्नैव तीर्थमेतत्प्रसिध्यतु ॥ तथास्त्वित्युक्त्वा विष्णुस्तु-
म्बुरुं पुनरब्रवीत् ॥ ४७ ॥

तुम्बुरु बोले—हे भगवन्! यह तीर्थ मेरे ही नामसे प्रसिद्ध हो। विष्णुजी "ऐसाही हो" ऐसा कह कर पुनः तुम्बुरुसे बोले ॥ ४७ ॥

नारदेन सहैव त्वं पूतो मत्कीर्तनं कुरु ॥ येऽत्र फाल्गुनराकायां
स्नानदानानि कुर्वते ॥ ४८ ॥ इह लोके परत्रापि तेषामिष्टं ददाम्यहम् ॥
इत्युक्तास्तुम्बुरुमुखास्तुष्टा याता यथागतम् ॥ ४९ ॥

इति श्री प्रश्नोत्तरखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यान्तर्गते
तीर्थमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यं नामैक-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायोऽत्र द्वितीयः॥२॥

श्री भगवान बोले—पवित्र हुए तुम नारदके साथ ही मेरा कीर्तन करो। फाल्गुनकी पूर्णिमाको जो यहां पर स्नान, दान आदि करते हैं, मैं इस लोक और परलोकमें भी उनके अभीष्टको देता हूं। ऐसा कहे हुए तुम्बुरु आदि प्रसन्न हो कर जैसे आये थे वैसे ही चले गये ॥ ४९ ॥

इति श्री प्रश्नोत्तरखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यान्तर्गते
तीर्थमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थमाहात्म्यं नामैक-
पञ्चाशत्तमोऽध्यायोऽत्र द्वितीयः॥२॥

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम्।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥

॥ श्री श्रीनिवासाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत-

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यस्य

प्रथमो भागः

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥
कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने ॥
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥

प्रथमोऽध्यायः

स्वामीसरमें स्नानसे, काश्यप पाप विनाश।
कथा परीक्षित भूपका, वर्णित "कान्त" प्रकाश ॥ १॥

श्रीनिवास उवाच—

ॐ अथातः सम्प्रवक्ष्यामि स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ लक्षीकृत्य क-
थामेकां पवित्रां द्विजसत्तमाः ॥१॥ काश्यपाख्यो द्विजः पूर्वमस्मिंस्तीर्थवरे
शुभे ॥ स्नात्वाऽतिमहतः पापाद्विमुक्तो नरकप्रदात् ॥ २ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! अब स्वामिपुष्करिणीको लक्ष्य करके एक पवित्र कथा कहता हूं । पहले काश्यप नामका ब्राह्मण इस शुभ पवित्र तीर्थमें स्नान कर नरक देनेवाले महापापसे छूट गया था ॥२॥

ऋषय ऊचुः—

मुने काश्यपनामाऽसावकरोत्किं हि पातकम् ॥ स्नात्वा तीर्थवरे ह्यत्र
यस्मान्मुक्तोऽभवत्क्षणात् ॥ ३ ॥ एतन्नः श्रद्दधानानां ब्रूहि सूत कृपाबला-
त् ॥ त्वद्वचोमृततृप्तानां न पिपासापि विद्यते ॥ ४ ॥

ऋषि बोले—हे मुनि ! इस काश्यप नामक मुनिने कौन बड़ा पाप किया था जो इस श्रेष्ठ तीर्थमें स्नान करनेसे क्षणभरमें छूट गया था ? हे सूत ! हम श्रद्धालुओंसे कृपा करके यह कहिये, आपके वचनरूपी अमृतसे तृप्त हमलोगोंको प्यास भी नहीं लगती है ॥४॥

श्रीसूत उवाच—

श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च माहात्म्यप्रतिपादकम् ॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामि
पठतां पापनाशनम् ॥ ५ ॥

श्रीसूतजी बोले—मैं स्वामिपुष्करिणीके माहात्म्यको बतानेवाली एक कथा मैं कहता हूं, जिसके पढनेसे पाप का नाश होता है ॥ ५ ॥

अथ परीक्षिद्वृत्तान्तः

अभिमन्युसुतो राजा परीक्षिन्नाम नामतः ॥ अध्यास्त हास्तिनपुरं
पालयन्धर्मतो महीम् ॥ ६ ॥ स राजा जातु विपिने चचार मृगयारतः ॥
षष्टिवर्षवया भूपः क्षुत्तृष्णापरिपीडितः ॥ ७ ॥ नष्टमेकं स विपिने मार्ग-
यन्मृगमादरात् ॥ ध्यानारूढं मुनिं दृष्ट्वा प्राह भूपालकोत्तमः ॥ ८ ॥ मया
व येन विपिने मृगो विद्धोऽधुना मुने ॥ दृष्टः स किं त्वया विद्वन्विद्रुतो भ-
यकातरः ॥ ९ ॥ समाधिनिष्ठो मौनित्वान्न किञ्चिदपि सोऽब्रवीत् ॥ ततो



ततो धनुरटन्या स स्कन्धे तस्य महामुने. ॥
निधाय मृतसर्पं तु कुपितः स्वपुरं ययौ ॥ (पृष्ठ ३७६)

धनुरट्न्या स स्कन्धे तस्य महामुनेः ॥ १० ॥ निधाय मृतसर्पं तु कुपितः स्वपुरं ययौ ॥

राजा परीक्षितका वृत्तान्त ।

अभिमन्युका पुत्र परीक्षित नामक राजा धर्मसे पृथ्वीका पालन करता हुआ हस्तिनापुरमें रहता था। वह राजश्रेष्ठ एक बार आखेटमें लगा हुआ जङ्गलमें घूमता था। साठ वर्षकी अवस्थावाला भूख और प्याससे पीड़ित उस राजाने एक भूले हुए मृगको आदरसे ढूंढ़ते ढूंढ़ते ध्यान करते हुए मुनिको देख कर उनसे पूछा–हे मुनि! मेरे बाणसे अभी जङ्गलमें विंधे तथा भयभीत हो कर भागते हुए एक मृगको आपने देखा क्या? समाधिमें लगे हुए वे मुनि मौन रहनेके कारण कुछ नहीं बोले। तब वह राजा क्रोधित हो कर अपने धनुषकी छोरसे एक मरे हुए सर्पको उस महामुनिके कन्धेपर रख कर अपने नगरको चला गया ॥ १० ॥

मुनेस्तस्य सुतः कश्चिच्छृङ्गी नाम बभूव वै ॥११॥ सखा तस्य कुशाख्योऽभूच्छृङ्गिणो द्विजसत्तमः ॥ सखायं शृङ्गिणं प्राह कुशाख्यः स सखा ततः ॥१२॥ पिता तव मृतं सर्पं स्कन्धेन वहतेऽधुना ॥ मा भूद्दर्पस्तव सखे मा क्रुध्यस्त्वमिदं वृथा ॥ १३ ॥ सोऽभणत्कुपितः शृङ्गी दित्सुः शापं नृपाय वै ॥ मत्ताते शवसर्पं यो न्यस्तवान्मूढचेतनः ॥१४॥ स सप्तरात्रान्म्रियतां सन्दष्टस्तक्षकाहिना ॥ शशापेयं मुनिसुतः सौभद्रेयं परीक्षितम् ॥ १५ ॥

उस मुनिका शृंगी नामका कोई पुत्र था, उस शृंगीका सखा कुश नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण था। यह कुश नामक सखा शृंगीसे बोला। अभी तुम्हारे पिता कन्धेपर मरा हुआ सांपको धारण करते हैं। हे सखे! तुम अभिमान मत करो, तुम इसपर व्यर्थ ही क्रोध भी न करो। उस मुनिके पुत्र शृंगीने क्रोधित हो कर राजाको शाप देनेकी इच्छासे "जिस उन्मत्त मूर्खने मेरे पिताजीके ऊपर मरे हुए सर्पको रख दिया है, वह तक्षक सर्पसे काटा जा कर सात रातमें मर जाय" इस प्रकार सुभद्राके पुत्र परीक्षित्को शाप दिया ॥१५॥

शमीकाख्यः पिता तस्य शप्तं श्रुत्वा सुतेन तम् ॥ नृपं प्रोवाच तनयं शृङ्गिणं मुनिपुङ्गवः ॥ १६ ॥ रक्षकं सर्वलोकानां नृपं किं शप्तवानसि ॥ अराजके वयं लोके स्थास्यामः कथमञ्जसा ॥ १७ ॥ कोपेन पातकं भूयाद्यया प्राप्यते सुखम् ॥ यः समुत्पादितं कोपं क्षमयैव निरस्यति ॥ १८ ॥ इह लोके परत्रासावत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ क्षमायुक्ता हि पुरुषा लभन्ते श्रेय उत्तमम् ॥ १९ ॥

शमीक नामक उसके पिता राजाको शाप दिया जाना सुन कर पुत्रसे बोले—हे पुत्र! सब लोगोंके दया करनेवाले राजाको तुमने क्यों शाप दिया? हम लोग बिना राजाके राज्यमें कैसे रहेंगे? क्रोधसे पाप होता है दयासे सुख होता है, और जो इन्द्रोंके द्वारा उत्पादित क्रोधको क्षमासे ही शान्त करता है, वह इस और दूसरे लोकमें अत्यन्त सुख पाता है। क्षमायुक्त पुरुष उत्तम कल्याणको पाता है॥ १९॥

ततः शमीकः स्वं शिष्यं प्राह गौरमुखाभिधम्॥ भो गौरमुख गत्वा त्वं वद भूपं परीक्षितम्॥ २०॥ इमं शापं मत्सुतोक्तं तक्षकाधिपदंशनम्॥ पुनरायाहि शीघ्रं त्वं मत्समीपं महामते॥ २१॥

तब शमीकने अपने शिष्य गौरमुखसे कहा—हे गौरमुख! तुम यहांसे जा कर मेरे पुत्रका 'तक्षकसे राजाका काटा जाना' यह शाप परीक्षितसे कहो और हे महामति! फिर तुम शीघ्रही मेरे पास आ जाओ॥ २१॥

एवमुक्तः शमीकेन ययौ गौरमुखो नृपम्॥ समेत्य चाब्रवीद्भूपं सौभद्रेयं परीक्षितम्॥२२॥ दृष्ट्वा सर्पं पितुः स्कन्धे त्वया विनिहितं मृतम्॥ शमीकस्य सुतः शृङ्गी शशाप त्वां रुषान्वितः॥ २३॥ एतद्दिनात्सप्तमेऽह्नि तक्षकेण महाहिना॥ दष्टो विषाग्निना दग्धो भूयादाश्वभिमन्युजः॥२४॥ एवं शशाप त्वां राजन् शृङ्गी तस्य मुनेः सुतः॥ एतद्वक्तुं पिता तस्य प्राहिणोन्मां त्वदन्तिकम्॥२५॥ इतीरयित्वा तं भूपमाशु गौरमुखो ययौ॥

शमीकसे यह सुन कर वह गौरमुख उस राजाके पास गया और सुभद्राके पुत्र परीक्षित राजासे कहा—आपसे रखे हुए मरे सपको पिताके कन्धे पर देख कर शमीकके पुत्र शृङ्गीने क्रोधित हो कर आपको शाप दिया है कि, अभिमन्युका पुत्र आजसे सातवें दिन विषैले सर्प तक्षकसे काटा जा कर शीघ्र ही विषकी अग्निसे जल जायगा।" हे राजन्! उस मुनिके पुत्र शृङ्गीने तुमको इस प्रकारसे शाप दिया है। यही कहनेके लिये उसके पिताने मुझको आपके पास भेजा है। उस राजाको यह कर, गौरमुख शीघ्र ही चला गया॥ २६॥

गते गौरमुखे पश्चाद्राजा शोकपरायणः॥ २६॥ अभ्रंलिहमथोत्तुङ्गमेकस्तम्भं सुविस्तृतम्॥ मध्येगङ्गं व्यतनुत मण्डपं नृपपुङ्गवः॥ २७॥ महागारुडमन्त्रज्ञैरोषधिज्ञैश्चिकित्सकैः॥ तक्षकस्य विषं हन्तुं यत्नं कुर्वन्समाहितः॥ २८॥ अनेकदेवब्रह्मर्षिराजर्षिप्रवरान्वितः॥ आस्ते तस्मिन्नृपस्तुङ्गे मण्डपे विष्णुभक्तिमान्॥ २९॥



इतीरयित्वा तं वृक्षं भस्मीभूतं विषाग्निना । अजीवयन्मन्त्रशक्त्या काश्यपो मान्त्रिकोत्तमः ॥
स नरस्तेन वृक्षेण साकमुज्जीवितोऽभवत् ॥ (पृष्ठ ३८२)

गौरमुखके चले जाने पर शोकसे दुःखी राजाने आकाशको चूमता हुआ, ऊंचा बहुत फैला हुआ एक स्तम्भका एक मण्डप गङ्गाके मध्यमें बनवाया और महागारुडमन्त्र तथा औषधिके जाननेवालों चिकित्सकोंके द्वारा तक्षकके विषको मारनेका यत्न करता हुआ सावधान हो विष्णुका भक्त राजा परीक्षित देवर्षि, ब्रह्मर्षि एवं श्रेष्ठ राजर्षियोंके साथ उस ऊंचे मण्डपमें रहने लगा ॥ २९ ॥

तस्मिन्नवसरे विप्रः काश्यपो मान्त्रिकोत्तमः ॥ राजानं रक्षितुं प्रायात्तक्षकस्य महाविषात् ॥ ३० ॥ सप्तमेऽहनि विप्रेन्द्रो दरिद्रो धनकामुकः ॥ अत्रान्तरे तक्षकोऽपि विप्ररूपी समाययौ ॥ ३१ ॥ मध्येमार्गं विलोक्याथ काश्यपं प्रत्यभाषत ॥ ब्राह्मण त्वं कुत्र यासि वद मेऽद्य महामुने ॥ ३२॥

उसी अवसर पर सातवें दिन एक दरिद्र, उत्तम मन्त्रको जाननेवाले, काश्यप नामके श्रेष्ठ ब्राह्मण धनकी इच्छावाले हो तक्षकके विषसे उस राजाको रक्षा करनेके लिये चले। इसी बीचमें तक्षक भी ब्राह्मणका रूप धारण करके आया और उसने कश्यपको मार्गमें देख कर कहा—हे ब्राह्मण आप कहां जाते हैं ? मुझे बतलाइये ॥ ३२ ॥

इति पृष्टस्तदाऽवादीत्काश्यपस्तक्षकं द्विजः ॥ परीक्षितं महाराजं तक्षकोऽद्य विषाग्निना ॥ ३३ ॥ धक्ष्यते तं शमयितुं तत्समीपमुपैम्यहम् ॥ इत्युक्तः स च तं विप्रं तक्षकः पुनरब्रवीत् ॥ ३४ ॥ तक्षकोऽहं द्विजश्रेष्ठ मया दष्टश्चिकित्सितुम् ॥ न शक्योऽब्दशतेनापि महामन्त्रायुतैरपि ॥३५॥ चिकित्सितुं चेन्मदष्टं शक्तिरस्ति तवाधुना ॥ अनेकयोजनोच्छ्रायं दशाम्युज्जीवय द्रुमम् ॥३६॥ ततो भवान्समर्थोऽसीत्येवं मे भाति हे द्विज ॥

ऐसा पूछने पर ब्राह्मण काश्यपने तक्षकसे कहा—आज महाराज परिक्षितको तक्षक अपने विषकी अग्निसे जलावेगा। उसीके शमन करनेके लिये मैं उसके पास जाता हूं। यह सुन कर तक्षक पुनः ब्राह्मणसे बोला—हे ब्राह्मण ! मैं ही तक्षक हूं, मेरे काटे हुएकी चिकित्सा सैकड़ो वर्षमें दस हजार मन्त्रोंसे भी नहीं हो सकती है। यदि मेरे काटे हुएकी चिकित्सा करनेकी आपमें शक्ति है, तो अभी मैं अनेक योजनोंमें फैले हुए इस वृक्षको काटता हूं और आप इसको जिलाइये। हे ब्राह्मण ! तब मुझको मालूम पड़ेगा कि आप समर्थ हैं ॥

इतीरयित्वा तं वृक्षमदशत्तक्षकस्तदा ॥३७॥ अभवद्भस्मसात्सोऽपि वृक्षोऽत्यन्तसमुच्छ्रितः ॥ पूर्वमेव नरः कश्चित्तं वृक्षमधिरूढवान् ॥ ३८ ॥ तक्षकस्य विषोल्काभिः सोऽपि दग्धोऽभवत्तदा ॥ तन्नरं न विजज्ञाते तौ च काश्यपतक्षकौ ॥ ३९ ॥

ऐसा कह कर उस तक्षकने उस वृक्षको काटा। अत्यन्त ऊंचा वह वृक्ष भस्म हो गया। कोई मनुष्य पहिले ही उस वृक्ष पर चढ़ गया था। तक्षककी विषज्वालासे वह भी जल गया। उस मनुष्यको काश्यप और तक्षक नहीं जानते थे ॥ ३९ ॥

काश्यपः प्रतिजज्ञेऽथ तक्षकस्यापि शृण्वतः ॥ मन्मन्त्रशक्तिं पश्य-
न्तु सर्वे विप्रादयोऽधुना ॥ ४० ॥ इतीरयित्वा तं वृक्षं भस्मीभूतं विषाग्नि-
ना ॥ अजीवयन्मन्त्रशक्त्या काश्यपो मान्त्रिकोत्तमः ॥ ४१ ॥ स नर-
स्तेन वृक्षेण साकमुज्जीवितोऽभवत् ॥

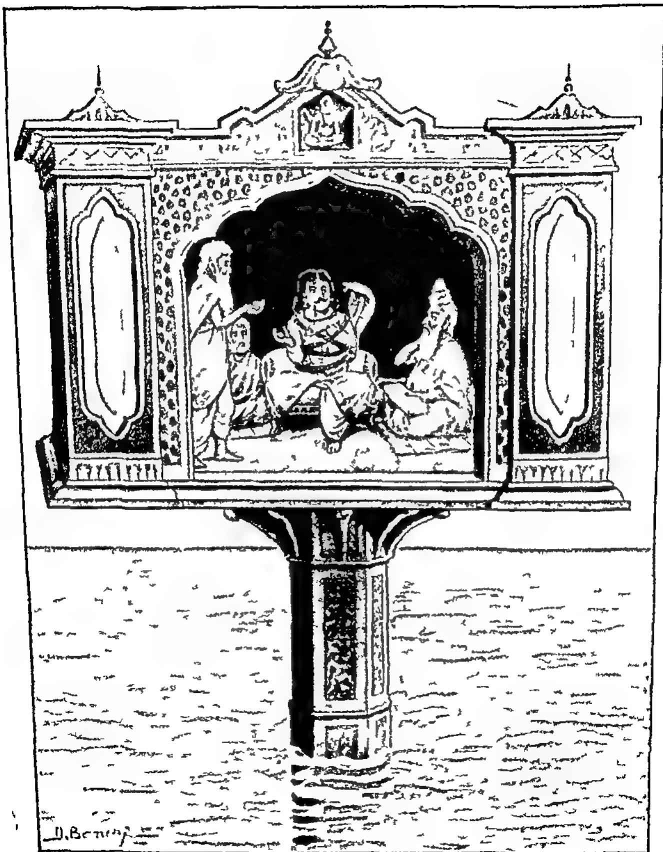
कश्यप भी तक्षकके सुनते हुए ही इस प्रकार निश्चित रूपसे कहने लगे—अब मेरे मन्त्रकी शक्तिको इत्यादि सब ब्राह्मण देखें। ऐसा कह कर उस उत्तम मन्त्रको जानने वाले काश्यपने अपने मन्त्रकी शक्तिके द्वारा विषकी अग्निसे जले हुए उस वृक्षको जिला दिया। वह मनुष्य भी उस वृक्षके साथ जी गया ॥४२॥

अथाब्रवीत्तक्षकस्तं काश्यपं मन्त्रकोविदम् ॥ ४२ ॥ यथा न मुनि-
वाङ् मिथ्या भवेदेवं कुरु द्विज ॥ यत्ते राजा धनं दद्यात्ततोऽपि द्विगुणं
धनम् ॥ ४३ ॥ ददाम्यहं निवर्तस्व शीघ्रमेव द्विजोत्तम ॥ इत्युक्त्वाऽनर्घर-
त्नानि तस्मै दत्त्वा स तक्षकः ॥ ४४ ॥ न्यवर्तयत्काश्यपं तं ब्राह्मणं मन्त्र-
कोविदम् ॥ अल्पायुषं नृपं मत्वा ज्ञानदृष्ट्या स काश्यपः ॥ ४५ ॥ स्वा-
श्रमं प्रययौ तूष्णीं लब्धरत्नश्च तक्षकात् ॥

तब मन्त्रके जाननेवाले उस कश्यपसे तक्षकने कहा—हे ब्राह्मण! जिस प्रकार मुनिके वचन झूठा नहीं हो, वही कीजिये। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! राजा आपको जितना धन देंगे, उससे दूना धन मैं आपको देता हूं, आप लौट जाइये। ऐसा कहकर तक्षकने उसको अमूल्य रत्न दे कर मन्त्र जाननेवाले उस ब्राह्मण काश्यपको लौटा दिया। ज्ञान दृष्टिसे राजाको अल्पायु जान कर, तक्षकसे रत्न पाये हुए वह काश्यप भी चुपचाप अपने आश्रमको चले गये।

सोऽब्रवीत्तक्षकः सर्पान्सर्वानाहूय तत्क्षणे ॥ ४६ ॥ यूयं तं नृपतिं
प्राप्य मुनीनां वेषधारिणः ॥ उपहारफलान्याशु प्रयच्छथ परीक्षिते ॥४७॥
तथेत्युक्त्वा सर्वसर्पा ददू राज्ञे फलान्यमी ॥ तक्षकोऽपि तथा तत्र कस्मिं-
श्चिद्बदरीफले ॥ ४८ ॥ कृमिवेषधरो भूत्वा व्यतिष्ठद्दंशितुं नृपम् ॥

उसी क्षणमें उस तक्षकने भी सब सर्पोंको बुला कर कहा— तुम लोग मुनियोंका वेष धारण करके



गंगा तटपर सचक द्वारा पोहितका मन्य

राजा परीक्षितको उपहार फल शीघ्र दो। ऐसी आज्ञा पा कर सब सांपोंने इस राजाको फल दिया। तक्षक भी वहांपर किसी बेरके फलमें कीडाका वेष धारण करके राजाको काटनेके लिये बैठा ॥४९॥

अथ राजा प्रदत्तानि सर्वैर्ब्राह्मणरूपकैः ॥४९॥ परीक्षिन्मन्त्रिवृद्धेभ्यो दत्त्वा सर्वफलान्यपि ॥ ५० ॥ कौतूहलेन जग्राह स्थूलमेकं करे फलम् ॥ तस्मिन्नवसरे सूर्योऽप्यस्ताचलमगाहत ॥ ५१ ॥ मिथ्या ऋषिवचो मा भूदिति तत्रत्यमानवाः ॥ अन्योन्यमवदन्सर्वे ब्राह्मणाश्च नृपास्तदा ॥५२॥ एवं वदत्सु सर्वेषु फले तस्मिन्नदृश्यत ॥ साधु रक्तः कृमिः सर्वै राज्ञा चापि परीक्षिता ॥ ५३ ॥

राजाने सब ब्राह्मण रूपधारियोंके दिये हुए फलोंको मन्त्री और वृद्धोंको दे कर एक मोटे फलको कौतूहलसे अपने हाथमे लिया। उसी समय सूर्य्य अस्ताचलको जा रहे थे, वहांपर आये हुए मनुष्य, राजा और ब्राह्मण एक दूसरेसे कहते थे कि ऋषिका वचन झूठा तो नहीं होगा। सब किसीके ऐसा कहते हुए उस फलमें बहुत लाल कीडा सबके साथ राजा परीक्षितने देखा ॥५३॥

अयं किं मां दशेदद्य कृमिरित्युक्तवान्नृपः ॥ निदधे तत्फलं कण्ठे सकृमि द्विजसत्तमाः॥५४॥ तक्षकोऽस्मिन्स्थितः कण्ठे कृमिरूपी फले तदा॥ निर्गत्य तत्फलादाशु नृपदेहमवेष्टयत् ॥ ५५ ॥ तक्षकावेष्टिते भूपे पार्श्वस्था दुद्रुवुर्भयात् ॥ अनन्तरं नृपो विप्रास्तक्षकस्य विषाग्निना ॥५६॥ दग्धोऽभूद्भस्मसादाशु सप्रासादो बलीयसा ॥

हे ब्राह्मणो। इस प्रकार राजाने कहा—कि यह कीड़ा मुझको अब क्या काटेगा? और उसने कीडाके साथ उस फलको अपने कण्ठमे लगाया। उस फलमे कीड़के बैठे तक्षकने उस फलसे शीघ्र ही निकल कर राजाके देहको लपेट लिया। तक्षकसे लपेटे हुए राजाके पासमे बैठे हुए लोग भयसे भाग गये। उसके अनन्तर हे ब्राह्मण! तक्षकके घोर विषसे प्रासादके साथ राजा जल कर भस्म हो गया ५६॥

कृत्वौर्ध्वदेहिकं तस्य नृपस्य स पुरोहितः ॥ ५७ ॥ मन्त्रिणस्तत्सुतं राज्ये जनमेजयनामकम् ॥ राजानमभ्यषिञ्चन्वै जगद्रक्षणवाञ्छया ॥५८॥ तक्षकाद्रक्षितुं भूपमायातः काश्यपाभिधः ॥ यो ब्राह्मणो मुनिश्रेष्ठः स सर्वैर्निन्दितो जनैः ॥ ५९ ॥ यग्राम सकलान्देशाञ्छिष्टैः सर्वैश्च दूषितः ॥ अवस्थानं न लेभे स ग्रामे वाऽप्याश्रमेऽपि वा ॥ ६० ॥ यान्यान्देशानसौ

यातस्तत्र तत्र महाजनैः ॥ तत्तद्देशान्निरस्तः सञ्छाकल्यं शरणं ययौ ॥६१॥ प्रणम्य शाकल्यमुनिं काश्यपो निन्दितो जनैः ॥ इदं विज्ञापयामास शाकल्याय महात्मने ॥ ६२ ॥

तब पुरोहितने राजाकी क्रिया की। संसारको रक्षाकी इच्छासे मन्त्रियोंने जनमेजय नामक उनके पुत्रको राज्यपदपर अभिषेक करवाया। तक्षकसे राजाकी रक्षा करनेको आया हुआ, जो काश्यप नामका मुनिश्रेष्ठ ब्राह्मण था, वह सब मनुष्योंसे निन्दित एवं सब सज्जनोंसे दोषी हो कर सब देशोंमें घूमने लगा। वह ग्राम अथवा आश्रममें कहीं भी स्थान नहीं पाता था। जिस जिस देशमें वह गया वहां वहां बड़े लोगोंसे उन उन देशोंसे निकाला जा कर वह शाकल्य मुनिके शरणमें गया। शाकल्य मुनिको प्रणाम करके लोगोंसे निन्दित वह काश्यप उस महात्माको ऐसा बोला॥ ६२॥

काश्यप उवाच—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ शाकल्य हरिवल्लभ ॥ मुनयो ब्राह्मणाश्चान्ये मां निन्दन्ति सुहृज्जनाः ॥ ६३ ॥ नास्याहं कारणं जाने किं मां निन्दन्ति मानवाः ॥ ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुस्त्रीगमनं तथा ॥ ६४ ॥ स्तेयं संसर्गदोषो वा मया नाचरितं क्वचित् ॥ अन्यान्यपि च पापानि न कृतानि मया मुने ॥ ६५ ॥ तथाऽपि निन्दन्ति जना वृथा मां बान्धवादयः ॥ जानासि चेत्त्वं शाकल्य मया दोषं कृतं वद ॥ ६६ ॥ उक्तोऽथ काश्यपेनैवं शाकल्याख्यो महामुनिः ॥ क्षणं ध्यात्वा बभाषे तं काश्यपं द्विजसत्तमाः ॥६७॥

काश्यप बोले—सब धर्मोंके जाननेवाले, भगवानके प्रिय, हे मुनि महाराज! मुनि, ब्राह्मण और मेरे सुहृद्जन मेरी निन्दा करते हैं, इसका कारण मैं नहीं जानता हूं कि क्यों ये मेरी निन्दा करते हैं? ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरुस्त्रीगमन, और स्तेय (चोरी) अथवा इनका संसर्गरूपी दोष मैंने कुछ भी नहीं किया है। हे महामुनि! और भी कोई पाप नहीं किया है, तथापि मनुष्य और बन्धुगण इत्यादि मेरी व्यर्थ निन्दा करते हैं। हे शाकल्य! यदि आप जानते हैं तो मेरे किये हुए दोषको कहिये। हे ब्राह्मणो! काश्यपसे इस प्रकार पूछा गया शाकल्य नामक मुनि क्षणभर ध्यान कर उनसे बोले॥६७॥

अथ शाकल्योक्तधर्माः

शाकल्य उवाच—

परीक्षितं महाराजं तक्षकाद्रक्षितुं भवान् ॥ आयासीद्धर्ममार्गं तु

तक्षकेण निवारितः ॥ ६८ ॥ चिकित्सतुं समर्थोऽपि विषरोगादिपीडि-
तम् ॥ यो न रक्षति लोकेऽस्मिंस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम् ॥६९॥ क्रोधात्कामा-
द्भयाल्लोभान्मात्सर्यान्मोहतोऽपि वा ॥ यो न रक्षति विप्रेन्द्र विषरोगातुरं
नरम् ॥ ७० ॥ ब्रह्महा च सुरापी वा स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ संसर्गदोष-
दुष्टश्च नापि तस्य विनिष्कृतिः ॥ ७१ ॥

शाकल्य बोले –महाराज परीक्षितको तक्षकसे रक्षा करनेके लिये आप आते थे और रास्तेमें तक्षकने लौटा दिये गये थे। विष रोग इत्यादिसे पीड़ितकी चिकित्सा करनेमें समर्थ होनेपर भी जो उसकी रक्षा नहीं करता है, उसको ब्रह्मघातक कहते हैं। हे विप्रेन्द्र ! क्रोध, लोभ, भय, काम अथवा मात्सर्यसे मोहित हो कर जो कोई विषरोगसे आतुरकी रक्षा नहीं करता है, वह ब्राह्मणको मारने, सुरापीने, चोरी करने और गुरु स्त्री गमन करनेका भागी होता है तथा उनके संसर्गके दोषसे दोषी होता है, उसका उद्धार नहीं होता है ॥ ७१ ॥

कन्याविक्रयिणश्चापि हयविक्रयिणस्तथा ॥ कृतघ्नस्यापि शास्त्रेषु
प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ७२ ॥ विषरोगातुरं यस्तु समर्थोऽपि न रक्षति ॥
न तस्य निष्कृतिः प्रोक्ता प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ ७३ ॥ न तेन सह पङ्क्तौ
च भुञ्जीत सुकृती जनः ॥ न तेन सह भाषेत न पश्येत्तं नरं क्वचि-
त् ॥७४॥ तत्सम्भाषणमात्रेण महापातकभाग्भवेत् ॥

कन्या तथा घोड़ा बेचनेवाले और कृतघ्न (उपकारको नहीं माननेवाला) का भी प्रायश्चित्त शास्त्रोंमें नहीं है, और विषरोगसे व्याकुलको जो समर्थ होनेपर भी रक्षा नहीं करता है, उसका दश हजार प्रायश्चित्तोंसे भी उद्धार नहीं है। पुण्यवान मनुष्य उसके साथ एक पंक्तिमें भोजन न करें, उसके साथ बोले नहीं और कहीं भी उसको नहीं देखें। उसके भाषणमात्रसे ही वह महापापोंका भागी हो जाता है ॥ ७५ ॥

परीक्षित्स महाराजः पुण्यश्लोकश्च धार्मिकः ॥ ७५ ॥ विष्णुभक्तो
महायोगी चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥ व्यासपुत्राद्धरिकथां श्रुतवान्भक्तिपू-
र्वकम् ॥ ७६ ॥ अरक्षित्वा नृपं तं तु वचसा तक्षकस्य यत् ॥ निवृत्तस्तेन
विप्रेन्द्रैर्योन्यवैरपि दूष्यसे ॥ ७७ ॥ स परीक्षिन्महाराजो यद्यपि क्षणजी-
वितः ॥ तथापि यावन्मरणं बुधैः कार्यं चिकित्सितम् ॥७८॥ "यावत्कण्ठ-
गताः प्राणा मुमूर्षोर्मानवस्य हि ॥ तावच्चिकित्सा कर्तव्या कालस्य कुटिला
गतिः ॥७८॥" इति प्राहुः पुरा श्लोकं भिषग्विद्याब्धिपारगाः ॥ ततश्चिकि-

त्साशक्तोऽपि यस्मादकृतभेषजः ॥८०॥ अधर्ममार्गनिवृत्तश्च तेन त्वं गर्हितो ह्यसि ॥ शाकल्येनैवमुदितः काश्यपः प्रत्यभाषत ॥ ८१ ॥

उस पुण्यश्लोक, धर्मात्मा, विष्णुके भक्त, महायोगी और चारों वर्णोंकी रक्षा करनेवाले, महाराज परीक्षितने भक्तिपूर्वक व्यासके पुत्रसे भगवत्कथाका श्रवण किया है—तक्षकके वचनसे उस राजाको बिना रक्षा किये आप लौट गये, उसीसे आप ब्राह्मणों और बान्धवोंसे दूषित हुए हैं। वह महाराज परीक्षित यद्यपि क्षणजीवी (थोड़ी देर जीनेवाला) था, तथापि मरने पर्यन्त विद्वानोंसे चिकित्सा करानी चाहिये। जबतक कण्ठमें प्राण है तबतक "देहोश मनुष्योंकी चिकित्सा करानी चाहिये, क्योंकि कालकी चाल टेढ़ी है" ऐसा वैद्य विद्याके पारङ्गत लोगोंने कहा है। इसलिये चिकित्सामें समर्थ होने पर भी बिना औषधि किये आधे रास्तेसे जिससे आप लौट गये, उसीसे आप दूषित हैं। शाकल्यके यह वचन सुन कर काश्यप बोला ॥८१॥

काश्यप उवाच—

ममैतद्दोषशान्त्यर्थमुपायं वद सुव्रत ॥ येन मां प्रतिगृह्णीयुर्बान्धवाः ससुहृज्जनाः ॥ ८२ ॥ कृपां मयि कुरुष्व त्वं शाकल्य हरिवल्लभ ॥ काश्यपेनैवमुक्तस्तु शाकल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ ८३ ॥ क्षणं ध्यात्वा जगादैवं काश्यपं कृपया तदा ॥ ८४ ॥

काश्यप बोले—हे सुव्रत! मेरे इस दोषकी शान्तिके लिये आप उपाय बताइये, जिससे मेरे बान्धव और मित्रगण मुझको ग्रहण कर लें। हे भगवानके प्रिय शाकल्यजी! आप मेरे ऊपर कृपा करें। काश्यपकी प्रार्थना सुन कर तब उस मुनीश्वर शाकल्यने क्षणभर ध्यान कर कृपासे काश्यपसे कहा ॥८४॥

शाकल्य उवाच—

अस्य पापस्य शान्त्यर्थमुपायं प्रवदामि ते ॥ तत्कर्तव्यं त्वया शीघ्रं विलम्बं मा कृथा द्विज ॥ ८५ ॥

शाकल्य बोले—हे ब्राह्मण! :इस पापकी शान्तिके लिये मैं आपको उपाय बताता हूं,: उसको आप शीघ्र कीजिये, विलम्ब मत कीजिये ॥ ८५ ॥

सुवर्णमुखरीतीरे लक्ष्मीपतिनिवासभूः ॥ वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकेषु पूजितः ॥ ८६ ॥ तस्मिञ्छेषगिरौ पुण्ये सुरासुरनमस्कृते ॥ ब्रह्महत्यासुरापानस्वर्णस्तेयादिनाशके ॥८७॥ स्वामिपुष्करिणी चेति सर्वपापप्रणोदिनी ॥ उत्तरे श्रीनिवासस्य वर्तते मङ्गलप्रदा ॥ ८८ ॥ तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीं शुभाम् ॥ स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वं तु वराहस्वामिनं हरि-

म् ॥८९॥ सेवित्वा पश्चिमे तीरे निर्गत्य हरिमन्दिरम् ॥ गत्वा तत्र विधानेन स्वर्णाचलनिवासिनम् ॥ ९० ॥ श्रीनिवासं परं देवं भक्तानामभयप्रदम् ॥ शङ्खचक्रधरं देवं वनमालाविभूषितम् ॥ ९१ ॥ दृष्ट्वा निर्धूतपापोऽसि संशयं मा कृथा द्विज ॥

सुवर्णमुखरीके तीर पर लक्ष्मीपतिके रहनेकी भूमि, सब लोकमें पूजित, वेङ्कटाचल नामसे प्रसिद्ध पर्वत है। उस पवित्र, देवता और राक्षसोंसे नमस्कृत, ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी इत्यादिको नाश करनेवाले शेषाचल पर श्रीनिवासके उत्तरमें सब पापोंको नाश करनेवाली तथा मङ्गलको देनेवाली पवित्र स्वामिपुष्करिणी (तालाब) है। उस वेङ्कटाचलपर जा कर शुभ स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करके सङ्कल्पपूर्वक बारह वर्ष स्वामी हरिकी सेवा करके पश्चिम तीरमें निकल कर हरिके मन्दिरको जा कर वहां विधिपूर्वक स्वर्णाचल निवासी, उत्तम देवता, भक्तोंको अभय देने, शङ्खचक्र धारण करनेवाले एवं वनमालासे शोभित श्रीनिवासको देख कर (दर्शन करके) तुम पापसे मुक्त हो जाओगे। हे ब्राह्मण! इसमें सन्देह मत करो ॥ ९२ ॥

शाकल्येनैवमुक्तस्तु काश्यपो मुनिपुङ्गवः ॥ ९२ ॥ गत्वा वेङ्कटशैलेन्द्रं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ पुष्करिण्यां शुभायां तु स्नातो नियमपूर्वकम् ॥९३॥ स्वस्थोऽभूत्काश्यपो विप्रो भिषग्विद्याब्धिपारगः ॥ सर्वे बन्धुजना विप्राः काश्यपं ब्राह्मणोत्तमम् ॥९४॥ पूजयित्वा विधानेन पूज्योऽसि न च संशयः ॥

शाकल्यसे ऐसी सलाह पा कर मुनिश्रेष्ठ काश्यपने "देवता और राक्षसोंसे नमस्कृत श्रीवेङ्कट पर्वतराजको जा कर शुभ पुष्करिणीमें नियमपूर्वक स्नान किया, और वैद्यविद्यारूपी समुद्रको पार हो गया हुआ वह काश्यप स्वस्थ हुआ। हे ब्राह्मणो! सब बन्धुवर्गने उस श्रेष्ठ ब्राह्मणकी विधिपूर्वक पूजा की कि तुम पूज्य हो, इसमें संशय नहीं है ॥ ९५ ॥

एवं वः कथितं विप्रा वेङ्कटाचलवैभवम् ॥ ९५ ॥ यः शृणोति नरो भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ ९६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीवेङ्कटाचलस्थस्वामिपुष्करिणीमाहात्म्ये काश्यपदोषनिवृत्तिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार आप लोगोंसे हमसे कहे गये श्री वेङ्कटाचलके माहात्म्यको जो मनुष्य भक्तिसे सुनता है, वह विष्णु लोकमें पूजित होता है ॥ ९६ ॥

इति प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः



स्वामी पुष्करिणी विभव, नर्क अठाइस ज्ञान ।
नर्क उधारन स्वामी सर, पापिन एक निदान ॥१॥
अविश्वासकारी नरन, रौरव मध्य न ठाम ।
इस द्वितीय अध्यायमें, महिमा सर अभिराम ॥२॥

अथ स्वामिपुष्करिणीस्नानात्तामिस्रादिनरकनिस्तारः

ऋषय ऊचुः—

सूत सर्वार्थतत्त्वज्ञ वेदवेदाङ्गपारग ॥ श्रीस्वामिपुष्करिण्याश्च वैभवं वद नः प्रभो ॥ १ ॥ यस्याः स्मरणमात्रेण मुक्तः स्यान्मानवो भुवि ॥ २॥

ऋषिगण बोले—हे सब शास्त्रके तत्त्व, वेद और वेदाङ्गके जाननेवाले सूतजी ! हे प्रभु ! हमलोगोंसे स्वामिपुष्करिणीका माहात्म्य कहिये , जिस पुष्करिणीके स्मरण करनेसे ही मनुष्य संसारसे मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

श्रीसूत उवाच—

स्वामितीर्थं प्रशंसन्ति स्नान्ति वा कथयन्ति ये ॥ अष्टाविंशतिभेदांस्ते नरकान्नोपभुञ्जते ॥ ३ ॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं महारौरवरौरवौ ॥ कुम्भीपाकं कालसूत्रमसिपत्रवनं तथा ॥ ४ ॥ कृमिभक्षोऽन्धकूपश्च सन्दंशः शाल्मली तथा ॥ लालाभक्षो ह्यवीचिश्च सारमेयादनं तथा ॥५॥ रक्षोगणाशनं चापि शूलप्रोतनिरोधनम् ॥ तिरोधानाभिधं विप्रास्तथा सूचीमुखाभिधम् ॥ ६ ॥ तथैव वज्रकणकः क्षारकर्दमपातनम् ॥ पूयशोणितभक्षं च विपाग्निपरिपीडनम् ॥ ७ ॥ अष्टाविंशतिसंख्यातमेतन्नरकसञ्चयम् ॥ न याति मनुजो विप्राः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ८ ॥

श्री सूतजी बोले—जो कोई स्वामिपुष्करिणीकी प्रशंसा तथा उसमें स्नान करते हैं अथवा उसकी कथा कहते हैं, वे अट्ठाइस प्रकारके नरकोंको नहीं भोगते । तामिस्र, अन्यतामिस्र, महारौरव, रौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, कृमीभक्ष, अन्धकूप, सन्दंश, शाल्मली, लालाभक्ष, अवीचि, सारमेयादान, वज्रकणक, क्षार कर्दमपातन, राक्षसभक्ष, शूलाग्रस्थापन, तिरोधान, सूचीमुख, पूयशोणित-भक्ष और विषाग्निपीड़न, ये अट्ठाइस प्रकारके हैं, हे ब्राह्मणो ! स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य इनमें नहीं जाते हैं ॥ ८ ॥

वित्तापत्यकलत्राणां योऽन्येषामपहारकः ॥ स कालपाशबद्धोऽयं यमदूतैर्भयानकैः ॥ ९ ॥ तामिस्रे नरके घोरे पात्यते बहुवत्सरम् ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे स तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥ १० ॥ मातरं पितरं विप्रान्यो द्वेष्टि पुरुषाधमः ॥ स कालसूत्रनरके विस्तृतायुतयोजने ॥ ११ ॥ अधस्ता-दग्निसन्तप्ते उपर्यर्कमरीचिभिः ॥ खले ताम्रमये विप्राः पात्यते क्षुधयार्दि-तः ॥ १२ ॥ स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥

जो दूसरोंके धन, सन्तान और स्त्रीका हरण करता है, वह भयानक यमदूतोंसे कालपाशमें बंधा हुआ घोर तामिस्र नरकमें अनेक वर्ष तक गिरा दिया जाता है, यदि वह स्वामितीर्थमें स्नान करता है तो वह इसमें नहीं गिराया जाता । जो नीच पुरुष माता, पिता, और ब्राह्मणोंसे द्वेष करता है, वह दश हजार योजन तक फैले हुए, नीचेसे अग्निसे और ऊपरसे सूर्यकी किरणोंसे तपते हुए, ताम्रमय खलिहानरूपी कालसूत्र नामक नरकमें, हे ब्राह्मणो ! भूखा गिरा दिया जाता है । यदि वह इस पुष्करिणीमें स्नान करता है, तो वह इसमें नही गिराया जाता ॥ १२ ॥

यो वेदमार्गमुल्लङ्घ्य वर्तते कुपथे नरः ॥१३॥ सोऽसिपत्रवने घोरे पात्यते यमकिङ्करैः ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नासौ निपात्य-ते ॥ १४ ॥

जो मनुष्य वेदके मार्गको उल्लङ्घन करके बुरे रास्ते पर जाता है, वह यमदूतोंसे घोर असिपत्र वनमें गिराया जाता है । यदि वह स्वामितीर्थमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता ॥ १४ ॥

योऽश्नाति पङ्क्तिभेदेन पक्वं सूपादिकं नरः ॥ अकृत्वा पञ्चय-ज्ञान्वा भुङ्क्ते मोहेन स द्विजाः ॥१५॥ पात्यतेऽयं यमभटैर्नरके कृमिभो-जने ॥ भक्ष्यमाणः कृमिशतैर्भक्षयन्कृमिसञ्चयान् ॥ १६ ॥ स्वयं च कृमि-भूतः संतिष्ठेद्यावदघक्षयम् ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे वै तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥१७॥

जो मनुष्य पकी हुई दाल इत्यादिको पांतोमें भेद करके भोजन करता है, अथवा, हे ब्राह्मणो ! पांच यज्ञोंके विना किये हुए मोहसे भोजन करता है, वह यमदूतोंसे कृमिभोजन नामक नरकमें गिराया जाता है। और वह सैकड़ों कीड़ोंसे काटा जाता हुआ और कीड़ोंको ही भोजन करता हुआ एवं आप भी कीड़ा हो कर जबतक पापका नाश नहीं होता है तबतक रहता है। यदि वह स्वामितीर्थमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता है ॥१७

यो हरेद्विप्रवित्तानि स्नेहेन बलतोऽपि वा ॥ अन्येषामपि वित्तानि राजा तत्पुरुषोऽपि वा ॥ १८ ॥ अयोमयाग्निकुण्डेषु सन्दंशैः सोऽपि पीडितः ॥ सन्दंशे नरके घोरे पात्यते यमपूरुषैः ॥ १९ ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥

जो राजा अथवा राजाका मनुष्य स्नेह अथवा बलसे ब्राह्मणों अथवा दूसरोंके धनको अपहरण करता है, वह यमदूतोंसे अयोमय (लोहके) अग्निकुण्ड रूप सन्दंश नामक घोर नरकमें सन्दंश (काटने) से पीड़ित हो कर गिराया जाता है। यदि वह स्वामितीर्थमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता है ॥

अगम्यां योऽभिगच्छेत स्त्रियं वै पुरुषाधमः ॥२०॥ अगम्यं पुरुषं योषिदभिगच्छेत वा द्विजाः ॥ तावयोमयनारीं च पुरुषं चाप्ययोमयम् ॥२१॥ तप्तावालिङ्ग्य तिष्ठन्तौ यावच्चन्द्रदिवाकरम् ॥ सूच्याख्ये नरके घोरे पात्यते यमकिङ्करैः ॥२२॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे च तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥

जो नीच पुरुष, नहीं गमन करने योग्य स्त्रीसे गमन करता है अथवा हे ब्राह्मणो ! जो स्त्री नहीं गमन करने योग्य पुरुषसे गमन करती है, वे दोनों तपाये हुए लोहेकी स्त्री और पुरुषको आलिङ्गन करके जबतक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे, तबतक ठहरे रहेंगे और वे सूचीनामक घोर नरकमें यमदूतोंसे गिराये जाते हैं। यदि वह स्वामितीर्थमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता है ॥

बाधते सर्वजन्तून्यो नानोपायैरुपद्रवैः ॥ २३ ॥ शाल्मलीनरके घोरे पात्यते बहुकण्टके ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नासौ निपात्यते ।२४। राजा वा राजभृत्यो वा यः पाषण्डाननुद्रुतः ॥ भेदको धर्मसेतूनां वैतरण्यां निपात्यते ॥ २५ ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नाऽसौ निपात्यते ॥

जो अनेक प्रकारके उपाय और उपद्रवसे सब जन्तुओंको बाधा देता है वह अनेकों कण्टकवाले शाल्मली नामक घोर नरकमें गिराया जाता है। यदि वह स्वामितीर्थमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता। जो पाखण्डी राजा अथवा राजाका नौकर धर्मके सेतु (पुल) को तोड़ता है, वह वैतरणीमें गिराया जाता है। यदि वह स्वामितीर्थमें स्नान करता है, तो वह उसमें नहीं गिराया जाता ॥ २६ ॥

वृषलीसङ्गदुष्टो वा शौचाद्याचारवर्जितः ॥ २६ ॥ त्यक्तलज्जस्त्यक्त-
वेदः पशुचर्यारतः सदा ॥ स पूयविष्ठामूत्रास्रक्श्लेष्मपित्तादिपूरिते ॥२७॥
अतिबीभत्सनरके पात्यते यमकिङ्करैः ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्ना-
सौ निपात्यते ॥२८॥ यः श्वभिर्मृगयुर्वन्यान्बाणैर्वा बाधते मृगान् ॥ स
विध्यमानो बाणौघैः परत्र यमकिङ्करैः ॥ २९ ॥ प्राणरोधाख्यनरके पात्यते
यमकिङ्करैः ॥ स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥ ३०॥

जो वृषलीके संगका दोषी, अथवा शौच इत्यादि आचारसे रहित, निर्लज्ज, वेदसे हीन, सदा पशुओंकी तरह आचारवाला है वह यमदूतोंसे पीव, विष्ठा, मूत्र, असृक (लोहु) श्लेष्मा (कफ) पित्त इत्यादिसे भरा हुआ अत्यन्त बीभत्स नरकमें गिराया जाता है। यदि वह स्वामीतीर्थमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता। जो व्याध कुत्तोंके साथ शिकार करता हुआ वनके मृगोंको बाणोंसे वेधता है, वह बाणोंके समूहसे वेधा जा कर यमदूतोंसे प्राणरोध नामक नरकमें गिराया जाता है। यदि वह स्वामीतीर्थमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता ३०

दाम्भिको यः पशून्यज्ञे विध्यनुष्ठानवर्जितः ॥ हन्त्यसौ परलोकेषु
वैशसे नरके द्विजाः ॥ ३१ ॥ कर्त्यमानो यमभटैः पात्यते यमकिङ्करैः ॥
स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥३२॥ आत्मभार्यां सव-
र्णां यो रेतः पाययते यदि ॥ परत्र रेतःपायी स रेतःकुण्डे निपात्य-
ते ॥ ३३ ॥ स्नाति चेत्पुष्करिण्यां वै तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥

जो दम्भी मनुष्य विधि अनुष्ठानसे रहित यज्ञमें पशुओंको मारता है, हे ब्राह्मणो ! वह दूसरे लोकमें यमदूतोंसे काटा जाता हुआ वैशस नामक नरकमें गिराया जाता है। यदि वह पुष्करिणीमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता। जो अपने सवर्णा स्त्रीको वीर्यपान कराता है वह दूसरे लोकमें वीर्य पीनेवाला होकर वीर्य कुण्डमें गिराया जाता है। यदि वह पुष्करिणीमें स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता ॥३४॥

यो दस्युमार्गमाश्रित्य गरदो ग्रामदाहकः ॥ ३४ ॥ वणिग्द्रव्यापहारी
च स परत्र द्विजोत्तमाः ॥ वज्रदंष्ट्राभिधे घोरे नरके पात्यते चिरम् ॥३५
स्नाति चेत्स्वामितीर्थे तु तस्मिन्नासौ निपात्यते ॥ विद्यन्ते यानि चान्यानि
नरकाणि परत्र वै ॥३६॥ तानि नाप्नोति मनुजः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥

जो चोर मार्गमें रह कर विष देने, गांवको जलाने तथा बनियोंके द्रव्योंका हरण करनेवाला होता है, हे ब्राह्मणो ! वह परलोकमें वज्रदंष्ट्र नामक घोर नरकमें बहुत दिनों तक गिराया जाता है। यदि वह स्वामितीर्थमें

स्नान करता है, तो वह इसमें नहीं गिराया जाता। परलोकमें जो और भी नरक हैं, उनमें मनुष्यगण स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे नहीं जाते ॥३६॥

पुष्करिण्यां सकृत्स्नानादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ३७ ॥ आत्मविद्या भवेत्साक्षान्मुक्तिश्चापि चतुर्विधा ॥ न पापे रमते बुद्धिर्न भवेद्दुःखमेव वा ॥३८॥ तुलापुरुषदानेन यत्फलं लभ्यते नरैः ॥ तत्फलं लभ्यते पुम्भिः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ३९ ॥ गोसहस्रप्रदानेन यत्पुण्यं हि भवेन्नृणाम् ॥ तत्पुण्यं लभते मर्त्यः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४० ॥

पुष्करिणीमें एक बार स्नान करनेसे अश्वमेधका फल मिलता है, साक्षात् आत्मविद्या तथा चारों प्रकारकी मुक्ति (सालोक्य, साम्य, सारूप्य और सायुज्य) होती है। न पापमें बुद्धि लगती है और न दुःख ही होता है। तुला-पुरुष दानसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वह फल पुरुषोंको स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे मिलता है। हजार गोदानसे जो पुण्य मनुष्योंको मिलता है, स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य उस पुण्यको पाता है ॥४०॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां यं यमिच्छति पूरुषः ॥ तं तं सद्यः समाप्नोति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४१ ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ सद्यः पूतो भवेद्विप्राः स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४२ ॥ प्रज्ञा लक्ष्मीर्यशः सम्पज्ज्ञानं धर्मो विरक्तता ॥ मनःशुद्धिर्भवेन्नृणां स्वामितीर्थनिषेवणात् ॥ ४३ ॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें जिस जिसको पुरुष चाहता है, स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे वे सभी शीघ्र ही साक्षात् मिलते हैं। हे ब्राह्मणो! महापातकसे युक्त अथवा सभी पापोंसे युक्त पुरुष भी स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे साक्षात् पवित्र हो जाता है। स्वामितीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्योंको प्रज्ञा (ज्ञान), लक्ष्मी, यश, सम्पत्ति, धर्म, वैराग्य और मनकी पवित्रता प्राप्त होती है ॥ ४३ ॥

ब्रह्महत्याऽयुतं चापि सुरापानाऽयुतं तथा। अयुतं गुरुदाराणां गमनं पापकारिणाम् ॥ ४४ ॥ स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गश्च कोटिशः ॥ शीघ्रं विलयमायान्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४५ ॥ ब्रह्महत्यासमानानि सुरापानसमानि च ॥ गुरुस्त्रीगमनेनापि यानि तुल्यानि चास्तिकाः ॥४६॥ सुवर्णस्तेयतुल्यानि तत्संसर्गसमानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति स्वामितीर्थनिमज्जनात् ॥ ४७ ॥

दश हजार दफा ब्रह्म हत्या, दश हजार वार सुरापान, दश हजार वार गुरुपत्नी गमन, दश हजार वार सोनेकी चोरी और करोडों वार उनका संसर्ग भी स्वामितीर्थके स्नानसे शीघ्र ही नष्ट होते हैं। हे आस्तिको ! ब्रह्महत्या, सुरापान, गुरु-स्त्रीगमन, सुवर्णकी चोरी तथा उनके संसर्गके समान जो जो पाप हैं वे सब स्वामितीर्थके स्नानसे नष्ट हो जाते हैं ॥४७॥

अथ स्वामितीर्थमहिमाऽश्रद्धालूनां महानरकप्राप्तिः

उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्तव्यः कदाचन ॥ जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः ॥ ४८ ॥ अर्थवादमिमं सर्वं ब्रुवन्वै नरकं व्रजेत् ॥ सूकरः स हि विज्ञेयः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ ४९ ॥ अहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यमहो मौर्ख्यं द्विजोत्तमाः ॥ स्वामितीर्थाभिधे तीर्थे सर्वपातकनाशने ॥ ५० ॥ अद्वैतज्ञानदे पुंसां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनि ॥ इष्टकामप्रदे नित्यं तथैवाज्ञाननाशने ॥५१॥ स्थितेऽपि तद्विहायाऽयं रमतेऽन्यत्र वै जनः ॥ अहो मोहस्य माहात्म्यं मया वक्तुं न शक्यते ॥ ५२ ॥

इन सब बातोंपर कभी भी सन्देह नहीं करना चाहिये, सन्देह करनेसे यमदूत लोग जिह्वाके अग्रभागपर तपे हुए फरसेको रखते हैं। इन सबको अर्थवाद (प्रशंसामात्र या सार हीन) कहनेवाला नरकमें जाता है और सब कर्मोंसे निकाला हुआ वह सूकर समझा जाता है। हे ब्राह्मणो ! यह बडी मूर्खता है ! यह बडी मूर्खता है !! यह बडी मूर्खता है !!! कि सब पापोंको नाश करनेवाले पुरुषोंको अद्वैत ज्ञान, भुक्ति, मुक्ति और सदा इच्छित कामको देने और अज्ञानको नाश करनेवाले स्वामितीर्थ नामक तीर्थके रहते हुए भी उसको छोड कर मनुष्य दूसरी जगह रमण करते हैं। अहो ! मायाका माहात्म्य मुझसे नहीं कहा जा सकता है ॥ ५२ ॥

स्नातस्य स्वामितीर्थे तु नान्तकाद्भयमस्ति वै ॥ स्वामितीर्थं च पश्यन्ति तत्र स्नान्ति च ये नराः ५३ ॥ स्तुवन्ति च प्रशंसन्ति स्पृशन्ति च नमन्ति च ॥ पिबन्ति नहि ते स्तन्यं मातॄणां द्विजपुङ्गवाः ॥ ५४ ॥ एवं वः कथितं विप्राः स्वामितीर्थस्य वैभवम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणां सर्वपापनिबर्हणम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीस्वामिपुष्करिणी-
तीर्थमहिमानुवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

स्वामितीर्थमें स्नान किये हुएको यमदूतोंका भय नहीं रहता है। हे ब्राह्मणो ! जो मनुष्य स्वामितीर्थका दर्शन, उसमें स्नान, उसकी स्तुति या प्रशंसा, उसकी स्पर्श तथा उसको प्रणाम करते हैं, वे फिर माताका स्तन पान नहीं

करते (अर्थात् पुनर्जन्म नहीं पाते।) हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार भुक्ति और मुक्तिको देने और मनुष्योंके सब पापको मिटानेवाले स्वामितीर्थ के माहात्म्यको मैंने आपसे कहा ॥ ५५ ॥

इति द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

धर्मगुप्त सुत नन्दकी, कथा लिखी यहि ठाम।
राज समर्पण पुत्रको, नन्द गमन तप धाम ॥१॥
मृगया हित सुत वन गमन, मिलन केसरी कान्त।
मुक्त केसरी शापसे, हो गन्धर्व नितान्त ॥२॥
धर्मगुप्त उन्माद पुनि, जैमिनिका उपदेश।
स्नान स्वामिसर मुक्त गति, वर्णित याहि प्रदेश ॥३॥

अथ धर्मगुप्तचरित्रवर्णनम्

श्रीसूत उवाच—

भूयोऽपि सम्प्रवक्ष्यामि स्वामितीर्थस्य वैभवम् ॥ युष्माकमादरेणाहं नैमिषारण्यवासिनः ॥ १ ॥

श्री सूतजी बोले—हे नैमिषारण्यके रहनेवाले ! आपलोगोंसे आदरके साथ मैं फिर भी स्वामितीर्थकी महिमाको कहता हूं ॥ १ ॥

नन्दो नाम महाराजः सोमवंशसमुद्भवः ॥ धर्मेण पालयामास सागरान्तां धरामिमाम् ॥ २ ॥ तस्य पुत्रः समभवद्धर्मगुप्त इति स्मृतः ॥

राज्यरक्षाधुरं नन्दो निजपुत्रे निधाय सः ॥ ३ ॥ जितेन्द्रियो जिताहारः प्रविवेश तपोवनम् ॥

चन्द्रवंशमें पैदा हुआ नन्द नामका महाराजा समुद्रके अन्ततक इस पृथ्वीको धर्मसे पालन करता था। उसका पुत्र धर्मगुप्त नामक प्रसिद्ध राजा था। राज्यकी रक्षाका भार अपने पुत्रको दे कर जितेन्द्रिय और जिताहार हो कर वह नन्द तपोवनको चला गया ॥ ४ ॥

ताते तपोवनं याते धर्मगुप्ताभिधो नृपः ॥ ४ ॥ मेदिनीं पालयामास धर्मज्ञो नीतितत्परः ॥ ईजे बहुविधैर्यज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ५ ॥ ब्राह्मणानां ददौ वित्तं क्षेत्राणि च बहूनि सः ॥ सर्वे स्वधर्मनिरतास्तस्मिन् राजनि शासति ॥ ६ ॥ कदाचिन्नाभवन्पीडास्तस्मिंश्चोरादिसम्भवाः ॥

पिताके तपोवनको जाने पर धर्मको जाननेवाला, नीतिमे रत हो कर वह राजा धर्मगुप्त पृथ्वीको पालन करने लगा। उसने अनेक प्रकारके यज्ञोंसे इन्द्रादि देवताओंकी पूजा की, और ब्राह्मणोंको बहुत धन और पृथ्वी दी। उस राजाके शासन करते हुए सब कोई अपने अपने धर्ममें लगे हुऐ थे। उसके शासनके समयमें चोर इत्यादिकी कोई पीड़ा कभी न हुई ॥ ७ ॥

कदाचिद्धर्मगुप्तोऽयमारुह्य तुरगोत्तमम् ॥ ७ ॥ वनं विवेश विप्रेन्द्रा मृगयारसकौतुकी ॥ तमालतालहिन्तालकुरवाकुलदिङ्मुखे ॥ ८ ॥ विचचार वने तस्मिन् सिंहव्याघ्रभयानके ॥ मत्तालिकुलसन्नादसम्मूर्छितदिगन्तरे ॥ ९ ॥ पद्मकल्हारकुमुदनीलोत्पलवनाकुले ॥ तटाके रससम्पूर्णे तपस्विजनमण्डिते ॥ १० ॥

हे ब्राह्मणो! किसी समय वह धर्मगुप्त उत्तम घोड़े पर चढ कर आखेटमें रसिक होकर वनमें घुस गया। तमाल, ताल, हिंताल, तथा कुरवसे आच्छादित दिशाओंवाले, सिंह और व्याघ्रसे भयानक, मत्त भौंरोंके शब्दसे गुंजायमान हुए दिशाओं वाले, पद्म, कल्हार, कुमुद और नीले कमलसे भरे हुए, रससे पूर्ण एवं तपस्वियोंसे शोभित तड़ागवाले उस वनमें वह घूमने लगा ॥ १०॥

तस्मिन्वने सञ्चरतो धर्मगुप्तस्य भूपतेः ॥ अभूद्विभावरी विप्रास्तमसाऽऽवृतदिङ्मुखा ॥११॥ राजापि पश्चिमां सन्ध्यामुपास्य विनयान्वितः ॥ जजाप चा वने तत्र गायत्रीं वेदमातरम् ॥१२॥ सिंहव्याघ्रादिभीत्याऽस्मिन्वृक्षमेकं समाश्रिते ॥ राजपुत्रे तदभ्याशमृक्षः सिंहभयार्दितः ॥ १३ ॥

अन्वधावत वृक्षं तमेकः सिंहो वनेचरः ॥ अनुद्रुतः स सिंहेन ऋक्षो वृक्षमुपारुहत् ॥१४॥ आरुह्य ऋक्षो वृक्षं तं ददर्श जगतीपतिम् ॥ वृक्षस्थितं महात्मानं महाबलपराक्रमम् ॥ १५ ॥

हे ब्राह्मणो ! धर्मगुप्त राजाके उस वनमें घूमते हुए अन्धकारसे पूर्ण दिशाओंवाली रात्रि हो गई। राजाने भी सायं सन्ध्या करके विनयपूर्वक उस वनमें वेदोंकी माता गायत्रीका जप किया। सिंह और व्याघ्रके भयसे राजाके एक वृक्षपर आश्रय लेने पर सिंहके डरसे डरा हुआ एक भालू उसके पास आया। एक वनचर सिंह भी उस भालूके पीछे दौड़ता हुआ आया। सिंहसे भगाये हुए उस भालूने उस वृक्ष पर चढ़ कर वृक्ष पर बैठे हुए महात्मा बड़े बली और पराक्रमी राजाको देखा॥ १५॥

उवाच भूपतिं दृष्ट्वा ऋक्षोऽयं वनगोचरः ॥ मा भीतिं कुरु राजेन्द्र वत्स्यावो रजनीमिह ॥१६॥ महासत्त्वो महाकायो महादंष्ट्रो समाकुलः ॥ वृक्षमूलं समायातः सिंहोऽयमतिभीषणः ॥ १७ ॥ रात्र्यर्धं भज निद्रां त्वं रक्ष्यमाणो मयोद्यतः ॥ ततः प्रसुप्तं मां रक्ष शर्वर्यर्धे महामते ॥ १८ ॥

वह वनचर भालू राजाको देख कर बोला—हे राजेन्द्र ! भय मत करो, रात भर हम दोनों यहीं पर रहेंगे। बड़े शरीरवाला, बड़े बड़े दांतोंवाला, यह बहुत डरावना सिंह वृक्षके नीचे आ गया है। मुझसे रक्षित हो कर तुम रातके पहले आधे भागमें सोओ, और हे महाबुद्धिमान् ! रात्रिमें अर्धरात्रिके बाद निद्रामें तुम मेरी रक्षा करना।

इति तद्वाक्यमाकर्ण्य सुप्ते नन्दसुते हरिः ॥ प्रोवाच ऋक्षं सुप्तोऽयं नृपो मे त्यज्यतामिति ॥ १९ ॥ तं सिंहमब्रवीदृक्षो धर्मज्ञो द्विजसत्तमाः ॥ भवान् धर्मं न जानीते मृगराज वनेचर ॥२०॥ विश्वासघातिनां लोके महाकष्टं भवत्यहो ॥ नहि मित्रद्रुहां पापं नश्येद्यज्ञशतैरपि ॥ २१ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानां कथञ्चिन्निष्कृतिर्भवेत् ॥ विश्वासघातिनां पापं न नश्येज्जन्मकोटिभिः ॥२२॥ नाहं मेरुं महाभारं मन्ये पञ्चास्य भूतले ॥ महाभारमिमं मन्ये लोकविश्वसघातुकम् ॥ २३ ॥

उसकी इस बातको सुन कर नन्दके पुत्रके सो जाने पर सिंहने भालूसे कहा कि इस सोये हुए राजाको गिरा दो। हे ब्राह्मणो ! धर्मके जाननेवाले उस भालूने सिंहसे कहा—हे वनचर मृगराज ! आप धर्मको नहीं जानते हैं। अहो ! विश्वासघातियोंको इस संसारमें बहुत कष्ट होता है। मित्रद्रोहियोंका पाप [दश हजार यज्ञोंसे भी नष्ट नहीं होता है। ब्रह्महत्या इत्यादि पापोंसे किसी प्रकार छुटकारा हो सकता है, किन्तु विश्वास घातियोंका पाप करोड़ों जन्ममें भी



पात्यमानस्ततो राज्ञा समालम्बितपादपः । स ऋक्षो नृपमभ्येत्य कोपाद्वाक्यमभाषत ॥
ध्यानकाष्ठाभिधो नाम्ना ऋक्षरूपमधारयम् ॥ (पृष्ठ ३७५)

नहीं नाश होता है हे सिंह ! इस पृथ्वी पर मैं मेरुको बड़ा भार नहीं मानता हूं, किन्तु विश्वास घातियोंको ही बड़ा भार मानता हूं ॥ २३ ॥

एवमुक्तोऽथ ऋक्षेण सिंहस्तूष्णीं बभूव ह ॥ धर्मगुप्ते प्रबुद्धे तु ऋक्षः सुष्वाप भूरुहे ॥ २४ ॥ ततः सिंहोऽब्रवीद्भूपमेनमृक्षं त्यजस्व मे ॥ ॥ एवमुक्तोऽथ सिंहेन राजा सुप्तमशङ्कितः ॥ २५ ॥ स्वाङ्कन्यस्तशिरस्कन्धमृक्षं तत्याज भूतले ॥ पात्यमानस्ततो राज्ञा समालम्बितपादपः ॥२६॥ ऋक्षः पुण्यवशाद्वृक्षान्न पपात महीतले ॥ स ऋक्षो नृपमभ्येत्य कोपाद्वाक्यमभाषत ॥ २७ ॥

भालूसे ऐसा सुन कर सिंह चुप हो गया। धर्मगुप्तके जागने पर वह भालू वृक्षपर सो गया। तब सिंहने राजासे कहा कि इस भालूको मुझे छोड़ दो। सिंहसे ऐसा सुन कर राजाने अपनी गोदमें शिर रख कर सोये हुए भालूको बिना सन्देह पृथ्वीपर छोड़ दिया। तब राजासे गिराया हुआ वह भालू वृक्षके डालीको पकड़ कर अपने पुण्यके कारण पृथ्वीपर नहीं गिरा और राजाके पास आ कर क्रोधसे वचन बोला ॥२७॥

कामरूपधरो राजन्नहं भृगुकुलोद्भवः ॥ ध्यानकाष्ठाभिधो नाम्ना ऋक्षरूपमधारयम् ॥ २८ ॥ कस्मादनागसं सुप्तमत्याक्षीन्मां भवान्नृप ॥ मच्छापादतिशीघ्रं त्वमुन्मत्तश्चर भूतले ॥ २९ ॥

हे राजन् ! मैं अपनी इच्छासे जिस किसी रूपको धारण करनेवाला तथा भृगुके कुलमें उत्पन्न ध्यानकाष्ठ नामक ऋषि हूं। मैंने भालूके रूपको धारण किया था। हे राजन्! तुमने मुझ निरपराध सोये हुएको क्यों छोड़ दिया ? मेरे शापसे शीघ्र ही तुम पृथ्वीपर पागल हो कर घूमोगे ॥२९॥

इति शप्त्वा मुनिर्भूपं ततः सिंहमभाषत ॥ न सिंहस्त्वं महायक्षः कुबेरसचिवः पुरा ॥ ३० ॥ हिमवद्गिरिमासाद्य कदाचित्त्वं वधूसखः ॥ अज्ञानाद्गौतमाभ्याशे विहारमतनोर्मुदा ॥३१॥ गौतमोऽप्युटजाद्दैवात्समिदाहरणाय वै ॥ निर्गतस्त्वां विवसनं दृष्ट्वा शापमुदाहरत् ॥३२॥ यस्मान्ममाश्रमेऽद्य त्वं विवस्त्रः स्थितवानसि ॥ अतः सिंहत्वमद्यैव भविता ते न संशयः ॥ ३३ ॥ इति गौतमशापेन सिंहत्वमगमत्पुरा ॥

मुनिने इस प्रकार राजाको शाप दे कर फिर सिंहसे कहा—तुम सिंह नहीं हो, पूर्वमें तुम कुबेरके मन्त्री बड़े यक्ष थे और किसी समय स्त्रीके साथ हिमालय पर्वतपर आ कर अज्ञानसे गौतमके आश्रममें आनन्दसे विहार करने

लगे। दैववश गौतम भी समिधा लेनेको आश्रमसे बाहर आये और उन्होंने तुमको विना वस्त्र का (नंगा) देख कर शाप दिया जिससे तुम आज मेरे आश्रममें नंगा ठहरे हो इसलिये तुम अभी सिंह हो जाओ, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार गौतमके शापसे तुम पूर्वमें सिंह हो गये हो ॥३४॥

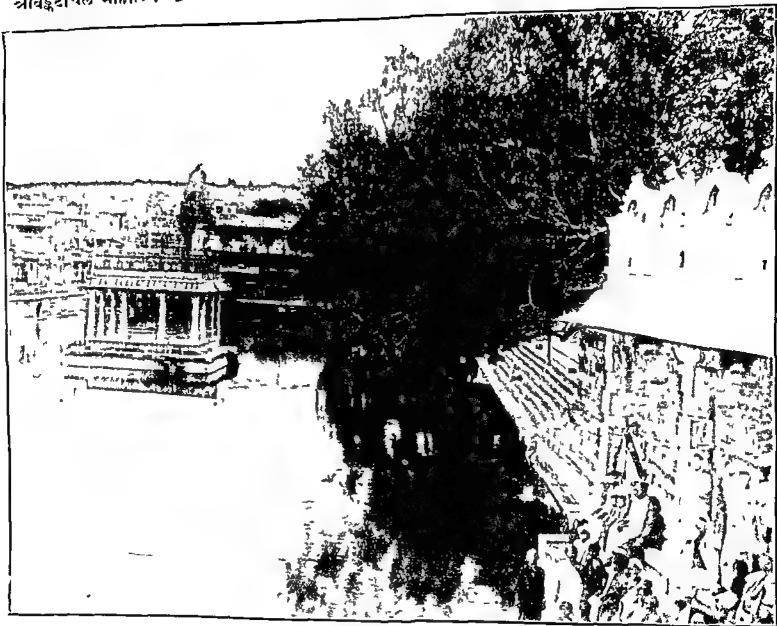
कुबेरसचिवो यक्षो भद्रनामा भवान्पुरा ॥ ३४ ॥ कुबेरो धर्मशीलो हि तद्भृत्याश्च तथैव हि ॥ अतः किमर्थं त्वं हंसि मामृषिं वनगोचरम् ।३५। एतत्सर्वमहं ध्यानाज्जानामि हि मृगाधिप ॥

पहले तुम कुबेरके मन्त्री भद्र नामक यक्ष थे। कुबेर धर्मात्मा है, उनके भृत्यगण भी ऐसे ही हैं। इसलिये वनमें चलनेवाले मुझ ऋषिको तू क्यों मारता है? हे मृगराज! यह सब मैं जानता हूं ॥ ३६ ॥

इत्युक्तो ध्यानकाष्ठेन त्यक्त्वा सिंहत्वमाशु सः ॥ ३६ ॥ यक्षरूपं गतो दिव्यं कुबेरसचिवात्मकम् ॥ ध्यानकाष्ठमसावाह प्राञ्जलिः प्रणतो मुनिम् ॥३७॥ अद्य ज्ञातं मया सर्वं पूर्ववृत्तं महामुने ॥ गौतमः शापकाले मे शापान्तमपि चोक्तवान् ॥३८॥ ध्यानकाष्ठेन संवाद ऋक्षरूपेण ते यदा ॥ तदा निर्धूय सिंहत्वं यक्षरूपमवाप्स्यसि ॥३९॥ इति मामब्रवीद् ब्रह्मन् गौतमो मुनिपुङ्गवः ॥ अद्य सिंहत्वनाशान्मे जानामि त्वां महामुने ॥४०॥ ध्यानकाष्ठाभिधं शुद्धं-कामरूपधरं सदा ॥ इत्युक्त्वा तं प्रणम्याथ ध्यानकाष्ठं स यक्षराट् ॥ ४१ ॥ विमानवरमारुह्य प्रययावलकापुरीम् ॥

ध्यानकाष्ठसे ऐसा कहे जाने पर वह सिंहशरीरको छोड़ कर शीघ्र ही कुबेरके मन्त्री भद्र नामक दिव्ययक्षके रूपको प्राप्त हुआ और इसने अञ्जलि बांध कर प्रणाम करके ध्यानकाष्ठ मुनिसे कहा। हे महामुनि! अब मैंने पूर्वकी सब बातें जानी, गौतमने मेरे शापके समय अन्तमें यह भी कहा था-भालूके रूपमें ध्यानकाष्ठके साथ तुम्हारा जब संवाद होगा, तब सिंह, शरीरको छोड़ कर तुम यक्षके रूपको प्राप्त होओगे। हे ब्राह्मण! उस श्रेष्ठ मुनि गौतमने मुझसे यह कहा था। आज अपने सिंहत्वके नाश हो जानेसे मैं आपको सदा कामरूपको धारण करनेवाले शुद्ध ध्यानकाष्ठ नामक जानता हूं। ऐसा कह कर उस ध्यानकाष्ठको प्रणाम करके वह यक्षराट् विमानपर चढ़ कर अलकापुरीको चला गया ॥ ४२ ॥

उन्मत्तरूपं तं दृष्ट्वा मन्त्रिणस्तु नृपोत्तमम् ॥ ४२ ॥ पितुः सकाशमानिन्यू रेवातीरे नृपोत्तमम् ॥ तस्मै निवेदयामासुर्मतिभ्रंशं सुतस्य च ॥ ४३ ॥



श्रीस्वामिपुष्करिणी (पृष्ठ ३६६)

मन्त्रीगण उस श्रेष्ठ राजाको उन्मत्तरूपमें देख कर रेवातीरपर उसके पिताके पास उसको ले आये और उन्होंने उसके पुत्रकी बुद्धिहीनताको कहा।

अथ जैमिनिवाक्यात्स्वामीतीर्थस्नातस्य धर्मगुप्तस्योन्मादनिवृत्तिः

ज्ञात्वा तु पुत्रवृत्तान्तं पिता वै नन्दनस्तदा ॥ ४४ ॥ पुत्रमादाय सहसा जैमिनेरन्तिकं ययौ ॥ तस्मै निवेदयामास पुत्रवृत्तान्तमादितः ॥४५॥ भगवञ्जैमिने पुत्रो ममाद्योन्मत्ततां गतः ॥ अस्योन्मादविनाशाय ब्रूह्युपायं महामुने ॥ ४६ ॥ इति पृष्टश्चिरं दध्यौ जैमिनिर्मुनिपुङ्गवः ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालं नृपनन्दनमब्रवीत् ॥ ४७ ॥ ध्यानकाष्ठस्य शापेन ह्युन्मत्तस्ते सुतोऽभवत् ॥ तस्य शापस्य मोक्षार्थमुपायं प्रब्रवीमि ते ॥ ४८ ॥

पुत्रके सब वृत्तान्तको जान कर उसका पिता नन्द अपने पुत्रको साथ लेकर शीघ्र ही जैमिनिके पास गया और उसने उसको अपने पुत्रका वृत्तान्त आदि कहा। हे भगवन् जैमिनि! मेरा पुत्र आज पागल हो गया है। इसके पागलपनके नाशके लिये, हे महामुनि! उपाय बताइये। ऐसा पूछे हुए जैमिनिने कुछ देरतक ध्यान किया, और बहुत देरतक ध्यान करके राजा नन्दनसे बोले—ध्यानकाष्ठके शापसे आपका पुत्र पागल हो गया है। उसके शापसे मुक्तिके लिये मैं आपसे उपाय बताता हूं ॥ ४८ ॥

सुवर्णमुखरीतीरे वेङ्कटे नाम पर्वते ॥ सर्वपापहरे पुण्ये नानाधातुविनिर्मिते ॥४९॥ स्वामिपुष्करिणी चेति तीर्थमस्ति महत्तरम् ॥ पवित्राणां पवित्रं हि मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ ५० ॥ श्रुतिसिद्धं महापुण्यं ब्रह्महत्यादिशोधकम् ॥ नीत्वा तत्र सुतं तेऽद्य स्नापयस्व महामते ॥५१॥ उन्मादस्तत्क्षणादेव तस्य नश्येन्न संशयः ॥

सुवर्णमुखरीके तीरपर सब पापोंको हरण करनेवाले, पवित्र, अनेक धातुओंसे बने हुए वेङ्कट नामक पर्वतपर स्वामिपुष्करिणी नामक श्रेष्ठ, पवित्रोंमें पवित्र, मङ्गलोंमें मङ्गल, श्रुतिप्रतिपादित, महापवित्र और ब्रह्महत्या इत्यादिको शुद्ध करनेवाला तीर्थ है। हे महाबुद्धिमान् राजा! पुत्रको वहां ले जाकर स्नान कराओ। उसका पागलपन उसी समय ही नष्ट हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है ॥५२॥

इत्युक्तस्तं प्रणम्यासौ जैमिनिं मुनिपुङ्गवम् ॥५२॥ नन्दः पुत्रं समादाय स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥ तत्र च स्नापयामास पुत्रं नियमपूर्वकम् ॥५३॥ स्नानमात्रात्ततः सद्यो नष्टोन्मादोऽभवत्सुतः ॥ स्वयं सस्नौ स नन्दोऽपि

स्वामिपुष्करिणीजले ॥ ५४ ॥ उपित्वा दिनमेकं तु सहपुत्रः पिता तदा ॥
सेवित्वा वेङ्कटेशं च श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ ५५ ॥ पुत्रमापृच्छ्य नन्दस्तं
प्रययौ तपसे वनम् ॥

ऐसा आदेश पा कर नन्द उस श्रेष्ठ मुनि जैमिनिको प्रणाम करके अपने पुत्रको ले कर स्वामिपुष्करिणीको गया और वहांपर उसने पुत्रको नियमसे स्नान कराया। स्नान करते ही उसका पुत्र पागलपनसे छूट गया। नन्दने भी स्वयं स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान किया। तब अपने पुत्रके साथ पिताने एक दिन वहां रह कर दयालु श्रीनिवास श्रीवेङ्कटेशकी सेवा की, और फिर नन्द अपने पुत्रसे पूछ कर तपस्या करनेके लिये वनको चला गया ॥५६॥

गते पितरि पुत्रोऽपि धर्मगुप्तो नृपो द्विजाः ॥५६॥ प्रददौ वेङ्कटेशस्य
बहुवित्तानि भक्तितः ॥ ब्राह्मणेभ्यो धनं धान्यं क्षेत्राणि च ददौ तदा ॥५७
प्रययौ मन्त्रिभिः सार्धं स्वां पुरीं तदनन्तरम् ॥ धर्मेण पालयामास राज्यं
निहतकण्टकम् ॥५८॥ पितृपैतामहं विप्रा धर्मगुप्तोऽतिधार्मिकः ॥

हे ब्राह्मणो ! पिताके चले जाने पर पुत्र धर्मगुप्तने भी, भक्तिके साथ श्रीवेङ्कटेशको बहुत धन दिया और तब ब्राह्मणोंको धन, धान्य और खेत दिया। उसके बाद अपने मंत्रियोंके साथ अपनी पुरीको गया। फिर हे ब्राह्मणो ! वह अत्यन्त धार्मिक धर्मगुप्त धर्मसे अपने पिता और पितामहके निष्कण्टक राज्यको पालन करने लगा ॥५९॥

उन्मादैरप्यपस्मारैर्ग्रहैर्दुष्टैश्च ये नराः ॥५९॥ ग्रस्ता भवन्ति विप्रेन्द्रा-
स्तेऽपि चात्र निमज्जनात् ॥ पुष्करिण्यां विमुक्ताः स्युः सत्यं सत्यं वदाम्य-
हम् ॥६०॥ स्वामिपुष्करिणीं त्यक्त्वा तीर्थमन्यद् व्रजेत्तु यः ॥ स्निग्धं स
गोपयस्त्यक्त्वा स्नुहीक्षीरं प्रयाचते ॥६१॥ स्वामितीर्थं स्वामितीर्थं स्वामिती-
र्थमिति द्विजाः ॥ त्रिः पठन्तो नरा एवं यत्र क्वापि जलाशये ॥ ६२ ॥
स्नान्ति सर्वे नरास्ते वै यास्यन्ति ब्रह्मणः पदम् ॥

हे ब्राह्मणो ! पागलपन, अपस्मार, अथवा दुष्ट ग्रहोंसे जो मनुष्य पकड़े जाते हैं वे भी यहां पुष्करिणीमें स्नान करनेसे उनसे छूट जाते हैं। मैं सत्य कहता हूं, सत्य कहता हूं। स्वामिपुष्करिणीको छोड़ कर जो दूसरे तीर्थको जाते हैं, वे गौके मधुर दूधको छोड़ कर स्नुही (गदहो) के दूधको चाहते हैं। हे ब्राह्मणो ! स्वामितीर्थ ! स्वामितीर्थ ! स्वामितीर्थ ! ऐसा तीन बार पाठ कर जो मनुष्य जहां कहीं जलाशयमे स्नान करते हैं, वे सब ब्रह्मपदको पाते हैं ॥ ६२ ॥

एवं वः कथिता विप्रा धर्मगुप्तकथा शुभा ॥६३॥ यस्याः श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्या विनश्यति ॥ ६४॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्ये श्रीस्वामिपुष्करिणी-
महिमानुवर्णने नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार आप लोगोंसे धर्मगुप्तकी अच्छी कथा मैंने कही, जिसके सुननेसे ही ब्रह्महत्या नष्ट हो जाती है ॥ ६४ ॥

॥ इति तृतीयोऽध्यायः

———

चतुर्थोऽध्यायः



कथा सुमति द्विजराजकी, अनाचार कर्म्मादि ।
भ्रष्ट किराती संगसे; वध ऋषि मुनि विप्रादि ॥१॥
यज्ञदेव द्विज जनकका, पातक मुक्ति प्रयत्न ।
दुर्वासा आदेशसे, स्नान स्वामिसर रत्न ॥२॥
मुक्ति सकल अघपुंजसे, प्राप्ति परम गति अन्त।
अघगज केसरि स्वामिसर, महिमा कथित अनन्त ॥३॥

अथ सुमत्याख्यद्विजवृत्तान्तः

श्रीसूत उवाच—

भो भो तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ स्वामितीर्थस्य माहा-

त्म्यं भूयोऽपि प्रवदाम्यहम् ॥१॥ पुरा किरातीसंसर्गात्सुमतिर्ब्राह्मणः सुरा-
म् ॥ पीतवान्पुष्करिण्यां स स्नात्वा पापाद्विमोचितः ॥ २ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे नैमिषारण्यके रहनेवाले सब तपस्वियो ! स्वामितीर्थका माहात्म्य मैं पुनः कहता हूं। पूर्वमें किरातीके संसर्गसे सुमति नामक ब्राह्मणने मदिरा पान कर लिया और वह स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करके उस पापसे छूट गया ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः

सुमतिः कस्य पुत्रोऽसौ कथं स च सुरां पपौ ॥ कथं किरात्यासक्तोऽ-
भूत्सूत पौराणिकोत्तम ॥३॥ सर्वेषां विस्तरादेतद्वद त्वं कृपयाऽधुना ॥४॥

ऋषि बोले—यह सुमति किसका पुत्र था ? उसने किस प्रकार मदिरा पी ली ? और किस प्रकार किरातीमें आसक्त हुआ ? हे पौराणिकोंमें श्रेष्ठ ! सूतजी ! आप कृपा करके इन सबोंको विस्तारसे कहिये ॥४॥

श्रीसूत उवाच—

महाराष्ट्राभिधे देशे ब्राह्मणः कश्चिदास्तिकः ॥ यज्ञदेव इति ख्यातो
वेदवेदाङ्गपारगः ॥५॥ दयालुरातिथेयश्च शिवनारायणार्चकः ॥ सुमतिर्नाम
पुत्रोऽभूद्यज्ञदेवस्य तस्य वै ॥६॥ पितरं स परित्यज्य भार्यामपि पतिव्रता-
म् ॥ प्रययावुत्कले देशे विटगोष्ठीपरायणः ॥ ७ ॥

श्री सूतजी बोले—महाराष्ट्र नामके देशमें वेदवेदाङ्गमें प्रवीण, दयालु, अतिथिसत्कारशील, शिव और नारायणके पूजन करनेवाला यज्ञदेव नामका कोई आस्तिक ब्राह्मण था। उस यज्ञदेवका सुमति नामका एक पुत्र था। पिता और पतिव्रता भार्याको भी छोड़ कर, वेश्याके संगमें आसक्त हो कर वह उत्कल देशमें चला गया ॥७॥

काचित्किराती तद्देशे वसन्ती युवमोहनी ॥ यूनां समस्तद्रव्याणि प्र-
लोभ्य जगृहे चिरम् ॥ ८ ॥ तस्या गृहं स प्रययौ सुमतिर्ब्राह्मणाधमः ॥
सुमतिं सा च जग्राह किराती निर्धनं द्विजम् ॥ ९ ॥

युवकोंको मोहने वाली कोई किराती उस देशमें रहती हुई युवकोंको लुभा कर उनके सब धनोंको बहुत दिनोंसे लेती रहती थी। वह नीच ब्राह्मण सुमति उसके घरको गया और उस किरातीने निर्धन ब्राह्मण सुमतिको ग्रहण कर लिया ॥ ९ ॥

अथ सुमत्याख्यद्विजस्य किरातीसङ्गान्महापातकप्राप्तिः

तया युक्तोऽथ सुमतिस्तत्संयोगैकतत्परः ॥ कुलस्तनश्चोरयित्वा बहुद्र-

व्याणि सन्ततम् ॥ १० ॥ दत्त्वा तया चिरं रेमे तद्गृहे बुभुजे च सः ॥ एकेन चषकेणासौ तया सह सुरां पपौ ॥ ११ ॥ एवं स बहुकालं वै रममाणस्तया सह ॥ पितरौ निजपत्नीं च नास्मरद्विषयातुरः ॥ १२ ॥

अब उसके साथ उसीके संयोगमें लगे हुए सुमतिने इधर उधरसे बहुत धनको चुरा कर उसको सदा देख कर उसके साथ बहुत दिनतक रमण किया, और उसीके यहां भोजन किया। इसने एक प्यालेसे इसके साथ मदिरा भी पी, इस प्रकार बहुत समयतक उसके साथ रमण करता हुआ वह विषयमें आतुर हो कर पिता और अपनी स्त्रीको याद नहीं करता था ॥ १२ ॥

स कदाचित्किरातैस्तु चौर्यं कर्तुं ययौ सह ॥ विप्रस्य कस्यचिद् गेहे सोऽपि कैरातवेषभृत् ॥ १३ ॥ ययौ चोरयितुं द्रव्यं साहसी खड्गहस्तवान् ॥ तद्गृहस्वामिनं विप्रं हत्वा खड्गेन साहसात् ॥ १४ ॥ समादाय बहु द्रव्यं किरातीभवनं ययौ ॥

फिर किसी समय वह किरातोंके साथ किसी ब्राह्मणके घर चोरी करनेके लिये गया। किरातका वेष धारण करके वह साहसी भी हाथमें खड्ग ले कर धन चुरानेको गया और साहससे उस गृहके स्वामी ब्राह्मणको खड्गसे मार कर बहुतसा द्रव्य ले कर किरातीके घरमें आया ॥ १५ ॥

तं यान्तमनुयाति स्म ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥१५॥ नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं रक्तशिरोरुहा ॥ गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्ती च रोदसी ॥ १६ ॥ अनुद्रुतस्तया सोऽयं बभ्राम जगतीतले ॥ एवं भ्रमन्भुवं सर्वां कदाचित्सुमतिः स्वयम् ॥ १७ ॥ स्वग्रामं प्रययौ भीत्या विप्रबन्धुर्दुरात्मवान् ॥ अनुद्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वगृहं प्रति ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्याप्यनुद्रुत्य तेन सार्कं गृहं ययौ ॥ पितरं रक्ष रक्षेति सुमतिः शरणं ययौ ॥ १९ ॥ मा भैषीरिति तं प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः ॥ तदानीं ब्रह्महत्येयं तत्तातं प्रत्यभाषत ॥२०॥

जाते हुए उसके पीछे पीछे डरावनी, नील वस्त्रको धारण की हुई, बडा शरीर तथा अत्यन्त लाल केशवाली, अट्टहासके साथ गरजती तथा संसारको कंपाती हुई एवं रोनेवाली ब्रह्महत्या भी चली। इससे पीछा किया जाता हुआ वह ब्राह्मण सारे संसारमें घूमा। इस प्रकार सब पृथ्वीमे घूमता हुआ वह सुमति स्वयं डर कर अपने गावको गया और दुष्टात्मा वह नीच ब्राह्मण ब्रह्महत्यासे पीछा किया जाता हुआ डर कर अपने घरको गया। ब्रह्महत्या भी उसके पीछे पीछे उसके घरको गई। रक्षा करो ! रक्षा करो ॥ इस प्रकार पिताकी शरणमे सुमति गिर

पडा। "मत डरो" यह कह कर उसका पिता उसकी रक्षा करनेको तैयार हुआ। तब वह ब्रह्महत्या उसके पितासे बोली ॥ २० ॥

ब्रह्महत्योवाच—

मैव त्वं प्रतिगृह्णीष्व यज्ञदेव द्विजोत्तम ॥ असौ सुरापी स्तेयी च ब्रह्महा चातिपातकी ॥ २१ ॥ मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागी च पातकी ॥ किरातीसङ्गदुष्टश्च ह्येनं मुञ्च दुरात्मकम् ॥२२॥ गृह्णासि चेदिमं विप्र महापातकिनं सुतम् ॥ त्वद्भार्यामस्य भार्यां च त्वां च पुत्रमिमं द्विज ॥ २३ ॥ भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च सुतं त्विमम् ॥ इमं त्यजसि चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि साम्प्रतम् ॥२४॥ नैकस्यार्थे कुलं हन्तुमर्हसि त्वं महामते ॥ इत्युक्तः स तथा तत्र यज्ञदेवोऽब्रवीच ताम् ॥

ब्रह्महत्या बोली—हे ब्राह्मणोंमे श्रेष्ठ यज्ञदेव। इसको आप मत ग्रहण कीजिये। यह मदिरा पीने, चोरी करने तथा ब्राह्मण मारनेवाला, अत्यन्त पापी, माता एवं पितासे द्रोह रखने और भार्याको त्याग करनेवाला, पापी एवं किरातीके संगसे दोषी है, इस दुष्टको छोडो। हे ब्राह्मण! यदि इस महापापी पुत्रको ग्रहण करोगे, तो तुम्हारी एवं इसकी स्त्री, तुम और इस पुत्रको खा जाऊंगी, हे ब्राह्मण! बहुत कहनेसे क्या? वंशमात्रको मैं खा जाऊंगी। इसलिये इस पुत्रको छोड दो। यदि तुम इस पुत्रको छोड़ दोगे, तो तुमको मैं भी छोड दूंगी। हे महा बुद्धिमन्! एकके लिये कुलनाश नहीं करना चाहिये। यह सुन कर वहा पर यज्ञदेव उससे बोले ॥ २५ ॥

यज्ञदेव उवाच—

बाधते मां सुतस्नेहः कथमेनं परित्यजे ॥ ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य द्विजोक्तं तमभाषत ॥ २६ ॥

यज्ञदेव बोले—मुझको पुत्रका स्नेह बाधा करता है। मैं इसको किस प्रकार छोड़ दूं? ब्राह्मणका यह कथन सुन कर वह ब्रह्महत्या उनसे बोली ॥ २६ ॥

ब्रह्महत्योवाच—

अयं हि पतितो भूत्वा वर्णाश्रमबहिष्कृतः ॥ पुत्रेऽस्मिन्मा कुरु स्नेहं निन्दितं तस्य दर्शनम् ॥२७॥ इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा यज्ञदेवस्य पश्यतः ॥ तलेन प्रजहाराऽस्य पुत्रं सुमतिनामकम् ॥ २८ ॥ रुरोद तात तातेति पितरं प्रब्रुवन्मुहुः ॥ २९ ॥

ब्रह्महत्या बोली---यह तो पतित हो कर वर्ण और आश्रमसे बाहर किया गया है। इस पुत्रमें स्नेह मत करो, इसको देखना भी निन्दित है। ऐसा कह कर उस हत्याने इस यज्ञदेवके देखते हुए इसके सुमतिनामक पुत्रको थप्पड़से (करतल) से मारा और वह ब्राह्मण बार बार पिता पिता पुकारता हुआ रोने लगा।

अथ सुमतिं प्रति दुर्वासःकथितब्रह्महत्यामुक्त्युपायः

रुरुदुर्जनको माता भार्यापि सुमतेस्तदा ॥ एतस्मिन्नन्तरे तत्र दुर्वासाः
शङ्करांशकः ॥ ३० ॥ दिष्ट्या समाययौ योगी धार्मिको मुनिसत्तमः ॥ यज्ञ-
देवोऽथ तं दृष्ट्वा मुनिं रुद्रावतारकम् ॥ ३१ ॥ स्तुत्वा प्रणम्य शरणं ययाचे
पुत्रकारणात् ॥ दुर्वासास्त्वं महायोगिन्साक्षाद्वै शङ्करांशकः ॥ ३२ ॥ त्वद्द-
र्शनमपुण्यानां भविता न कदाचन॥ ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी चाभूत्सुतो
मम ॥३३॥ एनं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्यापि वर्तते ॥ भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं
महापातकमोचितः ॥ ३४ ॥ घोरा च ब्रह्महत्येयं यथा शीघ्रं लयं व्रजेत् ॥
तमुपायं वदस्वाद्य मम पुत्रे दयां कुरु ॥३५॥ अयमेव हि पुत्रो मे नान्यो-
ऽस्ति तनयो मुने ॥ अस्मिन्मृते तु वंशो मे समुच्छिद्येत मूलतः ॥ ३६ ॥
ततः पितृभ्यः पिण्डानां दातापि न भवेद् ध्रुवम् ॥ ततः कृपां कुरुष्व त्व-
मस्मासु भगवन्मुने ॥ ३७ ॥

तब उसके माता पिता और स्त्री भी रोने लगी। इतने हीमें शङ्करका अंश, योगी,धार्मिक, और मुनियोंमें श्रेष्ठ दुर्वासा दृष्टिगोचर हुए। अब यज्ञदेवने रुद्रके अवतार उस मुनिको देख कर स्तुति और प्रणाम करके पुत्रकी रक्षाके लिये उनकी शरण मांगी। हे महायोगी! आप साक्षात् शङ्करके अंशसे उत्पन्न दुर्वासा हैं। आपके दर्शन पापियोंको कभी नहीं होते। मेरा पुत्र ब्राह्मणको मारने, मदिरा पीने और चोरी करने वाला हो गया है। इसको मारनेके लिये ब्रह्महत्या भी उपस्थित है। जिस प्रकार यह मेरा पुत्र महापापसे मुक्त हो जाय और जिस प्रकार यह घोर ब्रह्महत्या शीघ्र नष्ट हो जाय, वह उपाय आप कहिये। मेरे पुत्रपर दया कीजिये। हे मुनि! मेरा यही एक पुत्र है, दूसरा नहीं। इसके मरने पर मेरा वंश जड़से कट जायगा। तब पितरोंको पिण्ड देनेवाला कोई भी नहीं रहेगा, यह सत्य है। हे भगवन्! हे मुनि! इसलिये आप हम लोगोंके ऊपर कृपा कीजिये ॥ ३७ ॥

इत्युक्तः स तदोवाच दुर्वासाः शङ्करांशकः ॥ ध्यात्वाऽऽह सुचिरं कालं
यज्ञदेवं द्विजोत्तमम् ॥ ३८ ॥

ऐसा कहा जा कर शङ्करके अंश श्री दुर्वासा बहुत देर तक ध्यान करके श्रेष्ठ ब्राह्मण यज्ञदेवसे बोले ॥ ३८ ॥

दुर्वासा उवाच—

यज्ञदेव कृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते ॥ नास्य पापस्य शान्तिः स्यात्प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ ३९ ॥ तथापि ते सुतस्याहं तस्य पापस्य शान्तये ॥ प्रायश्चित्तं वदिष्यामि शृणु नान्यमना द्विज ॥४०॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ स्वामिपुष्करिणी चेति वर्तते मङ्गलप्रदा ॥ ४१ ॥ स्नाति चेत्तव पुत्रोऽयं पातकान्मुच्यते क्षणात् ॥

दुर्वासा बोले—हे यज्ञदेव ! तुम्हारे पुत्रसे किये हुए पाप अत्यन्त कठिन है। इसके पापकी शान्ति दश हजार प्रायश्चित्तोंसे भी नहीं होगी। तथापि तुम्हारे पुत्रके पापकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त कहूंगा। हे ब्राह्मण ! सावधान हो कर सुनिये, महापवित्र तथा सब पापोंको नाशकरने वाले श्री वेङ्कटाचलपर स्वामिपुष्करिणी नामक मङ्गलको देनेवाला एक तीर्थ है। यदि आपका यह पुत्र उसमें स्नान करे, तो क्षणभरमें पापसे छूट जायगा।

अथ सुमतेः स्वामिपुष्करिणीस्नानाद्ब्रह्महत्याविमुक्तिः

एवं श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं यज्ञदेवो महामतिः ॥४२॥ पुत्रमादाय सुमतिं स्वामिपुष्करिणीं गतः ॥ स्नापयामास सुमतिं हत्यया पीडितं सुतम् ॥४३॥ आकाशवाणी तं विप्रमुवाच मधुरस्वरा ॥ यज्ञदेव महाभाग स्नानेनानेन सुव्रत ॥ ४४ ॥ पूतोऽभवत्तव सुतः संशयं मा कृथा द्विज ॥ एवंप्रभावं तत्तीर्थं पापवृक्षकुठारकम् ॥ ४५ ॥

मुनिके इस प्रकारके वाक्यको सुन कर महा बुद्धिमान यज्ञदेव सुमति पुत्रको ले कर स्वामिपुष्करिणीको गया, और उन्होंने हत्यासे दुःखित पुत्र सुमतिको उसमें स्नान कराया। उस वक्त आकाश वाणीने मीठे स्वरसे उस ब्राह्मणसे कहा–हे सुव्रत ! यज्ञदेव ! महाभाग ! इस स्नानसे आपका पुत्र पवित्र हो गया। हे ब्राह्मण ! इसमें सन्देह मत करो। यह तीर्थराज इस प्रकारका प्रभावशाली पापरूपवृक्षकी कुल्हाड़ी ही है ॥ ४५ ॥

एवं वः कथितं विप्रा इतिहासं पुरातनम् ॥ शृण्वतां पठतां चापि वाजपेयफलं लभेत् ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये स्वामिपुष्करिणीतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकारसे आप लोगोंसे पुराने इतिहासको मैंने कहा। इसके सुनने और पढ़ने वाले वाजपेय यज्ञके फलको पाते हैं ॥ ४६ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः



रामकृष्ण तीरथ विमल, रामकृष्ण मुनि शुचि।
तपन उग्र तप तुष्ट प्रभु, प्रकट पूर्ण आकृति ॥१॥
वर प्रदान मुनि श्रेष्ठ, धाम नाम ऋषि नाम।
इन पञ्चम अध्यायमें, वर्णित सारे काम ॥२॥

अथ रामकृष्णतीर्थमाहात्म्यम्

सूत उवाच—

वेङ्कटाख्ये महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ कृष्णतीर्थस्य माहात्म्यं शृणु-
ध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥ यत्र मज्जनमात्रेण कृतघ्नोऽपि विमुच्यते ॥ पितॄ-
न्मातॄर्गुरूंश्चावमन्यन्ते मोहमोहिताः ॥२॥ ये चाप्यन्ये दुरात्मानः कृतघ्ना
निरपत्रपाः ॥ ते सर्वे कृष्णतीर्थेऽस्मिञ्छुद्ध्यन्ति स्नानमात्रतः ॥ ३ ॥

श्री सूतजी बोले—बहुत पवित्र तथा सब पापोंको नाश करनेवाले वेङ्कटाचलपर कृष्णतीर्थके माहात्म्यको सावधान हो कर सुनिये। जहांपर स्नान करनेहीसे कृतघ्न भी पापसे छूट जाता है। जो मोहसे मोहित हो, अपने पिता माता एवं गुरुकी अवज्ञा करता है, और जो भी निर्लज्ज, दुष्ट और कृतघ्न हैं, वे सब इस तीर्थमें स्नान मात्रहीसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३॥

कृष्णनामा मुनिः पूर्वं वेङ्कटाह्वयभूधरे ॥ अचरत्तप: कुर्वन्विष्णुं
ध्यायन् समाहितः ॥४॥ स तत्र कल्पयामास स्नानार्थं तीर्थमुत्तमम् ॥ तत्र
स्नात्वा सकृन्मर्त्यः कृतघ्नोऽपि विमुच्यते ॥५॥ अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं
पापनाशनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण नरो मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६ ॥

पूर्वमें वेङ्कट नामक पर्वतपर एकाग्रचित्त हो कर विष्णुको ध्यान करते हुए कृष्ण नामक एक मुनि थे। उन्होंने वहांपर स्नान करनेके लिये एक उत्तम तीर्थ बनाया। वहांपर एक बार भी स्नान करनेसे कृतघ्न मनुष्य भी मुक्त हो जाता है। पापको नाश करनेवाला एक पुराना इतिहास कहता हूं, जिसके श्रवणसे ही मनुष्य मुक्तिको पा जाता है॥ ६॥

पुरा बभूव विप्रेन्द्रो रामकृष्णो महामुनिः। सत्यवाक् शीलवान्वाग्मी
सर्वभूतदयान्वितः॥ ७॥ शत्रुमित्रसमो दान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः॥ परे
ब्रह्मणि निष्णातो ब्रह्मतत्त्वैकसंश्रयः॥ ८॥

पहले ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ, सत्य बोलनेवाले, शीलवान्, वक्ता, सब जीवोंपर दयाशील, शत्रु और मित्रमें सम, दान्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय, परब्रह्ममें मग्न तथा ब्रह्मतत्त्वपरायण रामकृष्ण नामक महामुनि थे॥८॥

एवंप्रभावः स मुनिस्तपस्तेपे सुदारुणम्॥ स वै निश्चलसर्वाङ्गस्तिष्ठन्
सर्वत्र भूतले॥ ९॥ परमाण्वन्तरं वापि न स्वस्थानाच्चचाल सः॥ स्थित्वा
तत्र तपस्यन्तमनेकशतवत्सरान्॥ १०॥ तं चाक्रमत वल्मीकं छादिताङ्गं
चकार वै॥ वल्मीकाक्रान्तदेहोऽपि रामकृष्णो महामुनिः॥ ११॥ अकरोत्तप
एवासौ वल्मीकं न त्वबुध्यत॥

ऐसे प्रभाववाले वह मुनि अति कठिन तपस्या करने लगे। पृथ्वीपर निश्चल हो अपने स्थानसे परमाणुके अन्तर भी नहीं टले। वे वहांपर ठहर कर अनेकों सौ वर्ष तक तपस्या करते रहे, उनके शरीरके ऊपर वल्मीक बढ़ गये और उनके सब अङ्गोंको ढंक दिया। वल्मीकसे आक्रान्त होने पर भी वे महामुनि रामकृष्ण तपस्या ही करते रहे और उन्होंने वल्मीक नहीं जाना॥१२॥

तस्मिंश्च तप्यति तपो वासवो मुनिपुङ्गवे॥ १२॥ विसृज्य मेघजा-
लानि वर्षयामास वेगवान्॥ एवं दिनानि सप्तायं ववर्ष च निरन्तरम्॥१३॥
धारावर्षेण महता छृष्यमाणोऽपि वै मुनिः॥ तद्वर्षं प्रतिजग्राह निमीलितवि-
लोचनः॥१४॥ महता स्तनितेनाशु तदा बधिरयञ्छ्रुती॥ वल्मीकस्योपरि-
ष्टाद्वै निपपात महाशनिः॥ १५॥ तस्मिन्वर्षति पर्जन्ये शीतवातादिदुः-
सहे॥ १६॥

उस श्रेष्ठ मुनिके तपस्या करते समय इन्द्र मेघजालको फैला कर वेगसे वर्षा करने लगे। इस प्रकारसे उन्होंने सात न तक निरन्तर वर्षा की। बड़ी बड़ी धाराओंसे सिञ्चित होते हुए भी उस मुनिने उस वर्षाको आंख मूंदे हुए सहन

कर लिया। तब शीघ्र ही बड़े शब्दसे कानोंको बहरा बनाते हुए वल्मीकके ऊपर महा वज्रपात हुआ। शीत, वायु इत्यादिसे दुःसह उस मेघके बरसते हुए, वज्रसे आहत हो उस वल्मीकका शिखर ध्वस्त हो गया॥ १६॥

अथ रामकृष्णाख्यमहर्षितपःप्रसन्नभगवदाविर्भावः

तदा प्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः॥ १७॥ विनतानन्दनारूढो वन-
मालाविभूषितः॥ रामकृष्णस्य तपसा तोषितो वाक्यमब्रवीत्॥ १८॥
तपोनिधे रामकृष्ण वेदशास्त्रार्थपारग॥ मदाविर्भावदिवसे यः स्नाति म-
नुजोत्तमः॥१९॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं शेषेणापि न शक्यते॥ मकरस्थे
रवौ विप्र पौर्णमास्यां महातिथौ॥ २०॥ पुष्यनक्षत्रयुक्तायां स्नानकालो
विधीयते॥ तद्दिने स्नाति यो मर्त्यः कृष्णतीर्थे महामतिः॥ २१॥ सर्व-
पापविनिर्मुक्तः सर्वान्कामांल्लभेत सः॥

तब रामकृष्णके तपसे प्रसन्न हो कर शङ्ख, चक्र और गदाको धारण करनेवाले, गरुड़के कन्धेपर चढ़े हुए एवं वनमालासे शोभित भगवान प्रकट हुए और उससे बोले—हे वेद-शास्त्रके अर्थको जाननेवाले तपोनिधि! रामकृष्ण! जो श्रेष्ठ मनुष्य मेरे प्रकट होनेके दिन इस तीर्थमें स्नान करेगा, उसके पुण्यके फलको कहनेमें शेष भी समर्थ नहीं है। हे ब्राह्मण! मकरके सूर्य होने पर पुष्य नक्षत्रसे युक्त महातिथि पूर्णिमासीको स्नानका समय कहा गया है। जो महा बुद्धिमान मनुष्य उस दिन इस कृष्णतीर्थमें स्नान करता है, वह सब पापोंसे छूट कर सब कामोंको प्राप्त करता है॥१६॥

मदाविर्भावदिवसे कृष्णतीर्थजले शुभे॥ २२॥ स्नातुं तत्र समा-
यान्ति स्वपापपरिशुद्धये॥ देवा मनुष्याः सर्वे च दिक्पालाश्च महौज-
सः॥ २३॥ एते सर्वे महात्मानः कोटिसूर्यसमप्रभाः॥ ते सर्वे कृष्णती-
र्थेऽस्मिन् स्नानात्पूता भवन्ति हि॥ २४॥ त्वन्नाम्नेदं महातीर्थं लोके
प्रख्यातिमेष्यति॥ इत्युक्त्वा श्रीनिवासश्च तत्रैवान्तरधीयत॥ २५॥

अपने पापोंकी शुद्धिके लिये देवता, सब मनुष्य और महा:पराक्रमी दिक्पाल भी मेरे प्रकट होनेके दिनमें कृष्णतीर्थके शुभ जलमें स्नान करनेको आते हैं। ये सब महात्मा कोटि सूर्यके समान प्रभावाले हैं, ये सब इस कृष्ण-तीर्थमें स्नान करनेसे पवित्र हो जाते हैं। तुम्हारे नामसे यह तीर्थ लोकमें प्रसिद्धि पावे, ऐसा कह कर श्रीनिवास वहींपर अन्तर्धान हो गये॥ २५॥

एवम्प्रभावं तत्तीर्थं महापापविशोधनम् ॥ बुद्धिशुद्धिप्रदं पुंसां सर्वै-
श्वर्यप्रदायकम् ॥२६॥

इस प्रकारके प्रभावका वह तीर्थ महापापको नष्ट एवं बुद्धिको शुद्ध करने तथा पुरुषोंको सब ऐश्वर्यका देने-वाला है ॥ २६ ॥

एवं वः कथितं विप्राः कृष्णतीर्थस्य वैभवम् ॥ शृण्वतां पठतां
चैव विष्णुलोकप्रदायकम् ॥ २७ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये रामकृष्णतीर्थ-
महिमानुवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

हे ब्राह्मणो ! इस प्रकार कृष्णतीर्थके माहात्म्यको तुमसे कहा, जो सुनने और पढ़नेवालेको विष्णुलोक देनेवाला है ॥ २७ ॥

॥इति पञ्चमोऽध्यायः॥

षष्ठोऽध्यायः



महिमा गिरि जल दानका, कथा भूप हेमाङ्ग ।
चरणोदक श्रुत देवसे, स्मरण भूप पूर्वाङ्ग ॥१॥
द्विज श्रुतदेव प्रतापसे, मुक्ति भूप प्रथमाङ्ग ।
इस छठवें अध्यायमें, वर्णित साङ्गोपाङ्ग ॥२॥

अथ श्रीवेङ्कटाद्रौ जलदानप्रशंसा

श्रीसूत उवाच—

वेङ्कटाख्ये महापुण्ये तृषार्तानां विशेषतः ॥ जलदानमकुर्वाणस्तिर्य-
ग्योनिमवाप्नुयात् ॥ १ ॥ तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रे यथाशक्त्यनुसारतः ॥ जल-

दानं हि कर्तव्यं सर्वेषां जीवनं महत् ॥ २ ॥ अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ विप्रस्य गृहगोधायाः संवादं परमाद्भुतम् ॥ ३ ॥

श्रीसूतजी बोले—महा पवित्र वेङ्कटाचलमें विशेष करके प्यासोंको जल नहीं देनेवाला तिर्यक् योनिको प्राप्त होता है। इसलिये पर्वतोंमें श्रेष्ठ वेङ्कटाचलपर सब किसीको बड़ा भारी जीवनरूप जलका दान करना चाहिये। इस विषयमें एक प्राचीन ब्राह्मण और गृहछिपकलीका अद्भुत संवादरूप इतिहास कहता हूं ॥ ३ ॥

अथ हेमाङ्गस्य जलदानाकरणेन गृहगोधिकात्वप्राप्तिः

पुरा चेक्ष्वाकुवंशेऽभूद्धेमाङ्ग इति भूमिपः ॥ ब्रह्मण्यो ब्रह्मभूयिष्ठो जितामित्रो जितेन्द्रियः ॥ ४ ॥ यावत्यो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा ददात्यसौ ॥ ५ ॥ येनेष्टयज्ञदर्भैश्च भूमिर्बर्हिष्मती स्मृता ॥ गोभूतिलहिरण्याद्यैस्तोषिता बहवो द्विजाः ॥ ६ ॥ तेनादत्तानि दानानि न विद्यन्त इति श्रुतम् ॥ तेनादत्तं जलं चैकं सुलभ्यधिया द्विजाः ॥ ७ ॥ बोधितो ब्रह्मपुत्रेण वसिष्ठेन महात्मना ॥ अमूल्यं सर्वतो लभ्यं तद्दातुः किं फलं लभेत् ॥ ८ ॥ इति दुर्बुद्धिर्हेतुवादैर्न जलं दत्तवान्विभुः ॥ अलभ्यदाने पुण्यं स्यादित्यवादीत्सयुक्तिकम् ॥ ९ ॥

पहले इक्ष्वाकु वंशमें ब्रह्मण्य, वैदिकश्रेष्ठ, शत्रुविजयी और जितेन्द्रिय हेमाङ्ग नामक राजा था। जितने पृथ्वीके कण हैं, जितने जलके बूंद हैं और जितने आकाशमें तारे हैं, उतनी (अर्थात् असंख्य) गौओंका दान उसने किया था जिसके किये हुए यज्ञके कुशासे यह पृथ्वी कुशवती कही गयी और जिससे गौ, भूमि, तिल, सुवर्ण इत्यादिसे बहुत ब्राह्मण सुसन्तुष्ट किये गये थे। ऐसा सुना गया है—कि उससे नहीं दिया हुआ दान कुछ भी नहीं है। हे ब्राह्मणो! किन्तु सुलभ होनेके कारण उसने एक जल हीका दान नहीं किया। ब्रह्माके पुत्र महात्मा वसिष्ठजीसे समझाये जाने पर भी उस दुष्ट बुद्धिवाला राजाने "जो बिना मूल्य सब जगह पाया जानेवाला है, उसके देनेसे क्या फल है" ऐसे हेतुवादसे जल नहीं दिया और "अलभ्यके दानमें ही पुण्य है" ऐसी युक्ति भी उसने कही ॥ ९ ॥

स आनर्च द्विजान् व्यङ्गान् दरिद्रान् वृत्तिकर्शितान् ॥ नानर्च श्रोत्रियान् विप्रान् ब्रह्मज्ञान् ब्रह्मवादिनः ॥ १० ॥ प्रख्यातान्पूजयिष्यन्ति सर्वलोकाः सदार्हणैः ॥ अनाथानामविद्यानां व्यङ्गानां च कुटुम्बिनाम् ॥ ११ ॥

दरिद्राणां गतिः का वा तस्मात्ते मद्दयास्पदाः ॥ इति दुष्टेषु पात्रेषु दत्त-
वान्किमपि स्वकम् ॥ १२ ॥

उसने विकल अङ्गवाले, दरिद्र तथा वृत्तिहीन ब्राह्मणोंकी तो पूजा की, किन्तु वेदज्ञ ब्रह्मज्ञानियों एवं श्रोत्रियब्राह्मणोंकी पूजा नहीं की, क्योंकि प्रसिद्धोंको तो सब लोग सत्कारसे पूजा करेंगे, अनाथों, मूर्खों, अङ्गहीनों और बहुत कुटुम्बवाले गरीबोंकी क्या गति होगी ? इसलिये वे ही मेरी दयाके पात्र हैं। इस प्रकार उसने कुपात्रोंमें ही अपना कुछ दान किया ॥ १२ ॥

तेन दोषेण महता चातकत्वं त्रिजन्मसु ॥ एकजन्मनि गृध्रत्वं श्वत्वं वा
सप्तजन्मसु ॥१३॥ प्राप्य पश्चाद् गृहे जातो भूपोऽयं गृहगोधिका ॥ श्रुत-
कीर्तेस्तु भूपस्य मिथिलाधिपतेर्द्विजाः ॥ १४ ॥ गृहद्वारप्रतोल्यां स्म वर्तते
कीटकाशनः ॥ अष्टाशीतिषु वर्षेषु स्थितं तेन दुरात्मना ॥ १५ ॥

वह राजा इस बड़े दोषसे तीन जन्ममें चातक, एक जन्ममें गृध्र और सात जन्ममें कुत्ता हो कर, हे ब्राह्मणो ! पीछे मिथिलाके स्वामी राजा श्रुतकीर्तिके घरमें छिपकली हो कर घरके द्वारके प्रतोलि (चौखट) में कीड़ोंको खाता हुआ अस्सी वर्ष वहां रहा ॥ १५ ॥

अथ श्रुतदेवपदोदकसेचनेन हेमाङ्गस्य जातिस्मरणम्

विदेहाधिपतेर्गेहं कदाचिद्दपिसत्तमः॥ श्रुतदेव इति ख्यातः श्रान्तो मध्याह्न
आगमत् ॥ १६ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय जातहर्षो नराधिपः ॥ मधुपर्कैः
सुसम्पूज्य तस्य पादावनेजनीः ॥१७॥ अपो मूर्ध्नाऽवहत्क्षिप्रं तदोत्क्षिप्तैश्च
बिन्दुभिः ॥ दैवोपदिष्टकालेन प्रोक्षिता गृहगोधिका ॥१८॥ सद्यो जातिस्मृ-
तिरभूत्कृतकर्मातिदुःखिता ॥ त्राहि त्राहीति चुक्रोश ब्राह्मणं गृहमागत-
म् ॥ १९ ॥

किसी समय श्रुतदेव नामसे प्रसिद्ध थके हुए एक श्रेष्ठऋषि मध्यान्हमें विदेह देशके स्वामीके घरमें आये। उनको देख कर शीघ्र ही उठ कर आनन्दित हो राजाने मधुपर्कसे पूजन करके उनके चरण धोये हुए जलको शिर पर शीघ्र ही धारण किया। तब ऊपर छिटके हुए बूंदोंसे देवयोगसे गृहगोधिका छिटक गई। शीघ्र ही उसको जातिका स्मरण हो गया। तब किये हुए कर्मसे दुःखी हो वह गृहगोधिका घरमें आये हुए ब्राह्मणको "त्राहि त्राहि" (रक्षा करो) ! रक्षा करो !! ऐसी चिल्लाई ॥१९॥

तिर्यग्जन्तुरयं श्रुत्वा ब्राह्मणो विस्मितोऽभवत् ॥ कुतः क्रोशसि

गोधे त्वं दशेयं केन कर्मणा ॥ २० ॥ उपदेवोऽथ देवो वा त्वं नृपोऽथ द्विजोत्तमः ॥ कस्त्वं ब्रूहि महाभाग त्वामद्याहं समुद्धरे ॥ २१ ॥

तिर्यक् जीवके शब्दको सुन कर वे ब्राह्मण आश्चर्ययुक्त हुए और बोले—हे गोधे ! तू क्यों चिल्लाती है ? किस कर्मसे तेरी यह दशा हुई है ? तू उपदेव, देव, ब्राह्मण, अथवा राजा, कौन है ? हे महाभाग ! कहो ! मैं तुम्हारा आज उद्धार करूंगा ॥ २१ ॥

इत्युक्तः स नृपः प्राह श्रुतदेवं महाप्रभुः ॥ अहमिक्ष्वाकुकुलजः शास्त्रविद्याविशारदः ॥ २२ ॥ यावन्तो भूमिकणिका यावन्तस्तोयबिन्दवः ॥ यावन्त्युडूनि गगने तावतीर्गा अदामहम् ॥ २३ ॥ सर्वैर्यज्ञैर्मया चेष्टं पूर्तान्याचरितानि मे ॥ दानान्यपि च दत्तानि धर्मजातं स्वनुष्ठितम् ॥ २४ ॥ तथापि दुर्गतिर्जाता न मे चोर्ध्वगतिर्विभो ॥ त्रिवारं चातकत्वं मे गृध्रत्वं चैकजन्मनि ॥ २५ ॥ सप्तजन्मसु च श्वत्वं प्राप्तं पूर्वं मया द्विज ॥ धरताऽनेन भूपेन चापः पादावनेजनीः ॥२६॥ बिन्दवो दूरमुत्क्षिप्तास्तैः सिक्तोऽहं कथञ्चन ॥ तदा जन्मस्मृतिरभूत्तेन मे हतपाप्मनः ॥२७॥ गोधाजन्मानि भव्यानीत्यष्टाविंशति मे द्विजाः ॥ दृश्यन्ते दैवदिष्टानि बिभ्यते जन्मभिर्भृशम् ॥ २८ ॥ न कारणं प्रपश्यामि तन्मे विस्तरतो वद ॥

इतना कहने पर उस महाप्रभु राजाने श्रुतदेवसे कहा—मैं शास्त्र और विद्यामें चतुर इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुआ था। पृथ्वीके जितने कण हैं, जलके जितने बून्द हैं, आकाशमें जितने तारे हैं, उतनी गायें मैंने दान कीं। मैंने सब यज्ञ किये, अपने धर्मका अनुष्ठान किया, कितने परोपकार कार्य किये। हे विभो ! तथापि मेरी अधोगति ही हुई, ऊंची गति नहीं। मैं तीन बार चातक, एक जन्म गृध्र, सात जन्मोंमें कुत्ता, पहले हो चुका हूं, इस राजाने आपके चरणका जल धारण करनेके वक्त कुछ जलके बून्द दूरतक छिडक गये। किसी प्रकार वे मेरे ऊपर भी छिटक पडे। उससे मेरा पाप नष्ट होकर मुझको पूर्वजन्मोंका स्मरण हुआ। कर्मफलसे मेरे अट्ठाइस गोधाके जन्म दिखाई पड रहे हैं। उससे हमको डर हो रहा है हे ब्राह्मण! इसका मैं कोई कारण नहीं देखता हूं, इसलिये आप उस कारणको मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये ॥ २८ ॥

अथ श्रुतदेवदत्तपुण्येन हेमाङ्गस्य गोधिकात्वविमुक्तिः

इत्युक्तः स द्विजः प्राह ज्ञातं विज्ञानचक्षुषा ॥ २९ ॥ शृणु भूप प्रवक्ष्यामि तव दुर्गतिकारणम् ॥ न जलं न त्वया दत्तं वेदशास्त्रपरे ॥३०

तज्जलं सुलभं मत्वा न मूल्यमिति निश्चितः ॥ नाध्वगानां द्विजातीनां घ-
र्मकालेऽप्यजानताम् ॥३१॥ तथा पात्रं समुत्सृज्य ह्यपात्रे प्रतिपादितम् ॥
ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य न हि भस्मनि हूयते ॥ ३२ ॥ तुलसीं तु समुत्सृज्य
बृहती पूज्यते नु किम् ॥ जनानां व्यङ्गपङ्गुत्वं न प्रयोजकतामियात् ॥३३॥
पङ्ग्वाद्या येऽप्यनाथा हि दयापात्रं हि केवलम् ॥ तपोनिष्ठा ज्ञाननिष्ठाः
श्रुतिशास्त्रपरायणाः ॥ ३४ ॥ विष्णुरूपाः सदा पूज्या नेतरे तु कदाचन ॥
तत्रापि ज्ञानिनोऽत्यर्थं प्रिया विष्णोः सदैव हि ॥ ३५ ॥

ऐसा कहने पर उस ब्राह्मणने कहा हे राजन्। मैं ज्ञानदृष्टिसे आपके दुर्गतिके कारण जाना उसको कहता हूं, सुनो ! वेङ्कटनामक पर्वत पर आपने सुलभ जान कर जलदान नहीं किया, जलदानका कोई मूल्य नहीं, ऐसा निश्चय किया। आपने अज्ञानसे गरमीके समयमे भी आये हुए पथिकों और द्विजातियोंको जल नहीं दिया, और आपने पात्रोंको छोड कर अपात्रमे ही दान दिया है। जलती हुई अग्निको छोड कर भस्ममें हवन नहीं किया जाता है, तुलसीको छोड़ कर क्या रेंगनीकी पूजा की जाती है ? अनाथ अङ्गहीन तथा पङ्गु होना ये ही दानके लिये गुण नहीं होते हैं। पङ्गु आदि जो अनाथ हैं, वे केवल दयाके पात्र हैं, किन्तु तपस्वी, ज्ञानी, और श्रुतिशास्त्रको जाननेवाले ही विष्णुके स्वरूप और सदा पूज्य हैं, दूसरे कभी नहीं। उसमें भी ज्ञानी तो विष्णुके अत्यन्त ही प्रिय हैं ॥ ३५ ॥

ज्ञानिनामपि भूपाल विष्णुरेव सदा प्रियः ॥ तस्माज्ज्ञानी सदा पूज्यः
पूज्यात्पूज्यतरः स्मृतः ॥ ३६ ॥ न जलं तु त्वया दत्तं साधवो वा न
सेविताः ॥ तेन ते दुर्गतिश्चेयं प्राप्ता चेक्ष्वाकुनन्दन ॥३७॥ वेङ्कटाद्रौ कृतं
पुण्यं तुभ्यं दास्यामि शान्तये ॥ भूतं भव्यं भवत्तेन कर्मजातं विजे-
ष्यसि ॥ ३८ ॥

हे राजन्! ज्ञानियोंको भी विष्णु सदा प्रिय होता है। इसलिये ज्ञानी सदा पूज्य है, वह पूज्यसे भी पूज्य कहा जाता है। आपने जल नहीं दिया अथवा साधुओंकी सेवा भी न की। हे इक्ष्वाकुके पुत्र ! उसीसे यह आपकी दुर्गति हुई है। वेङ्कटाचल पर किये हुए पुण्य मैं तुम्हें दूंगा, उससे भूत, वर्तमान और भविष्यके कर्मफलको जीत जाओगे ॥

इत्युक्त्वाऽप उपस्पृश्य ददौ पुण्यमनुत्तमम् ॥ यद्दत्तं ब्राह्मणे चापि
स्नानं चैकदिने कृतम् ॥ ३९ ॥ तेन ध्वस्ताखिलाऽऽगास्तु त्यक्त्वा च गृह-
गोधिका ॥ रूपं कर्मोचितं घोरं सद्योऽदृश्यत पूरुषः ॥ ४० ॥ दिव्यं

विमानमारूढो दिव्यस्रग्वस्त्रभूषणः ॥ पश्यतामेव साधूनां मैथिलस्य गृहा-
न्तरे ॥ ४१ बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा परिक्रम्य प्रणम्य च ॥ अनुज्ञातो ययौ
राजा स्तूयमानोऽमरैर्दिवम् ॥ ४२ ॥ तत्र भुक्त्वा महाभोगान्वर्षायुतमत-
न्द्रितः ॥ स एव चेक्ष्वाकुकुले ककुत्स्थोऽभून्महारथः ॥ ४३ ॥ सप्तद्वीप-
प्रतीपालो ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ॥ देवेन्द्रस्य सखा विष्णोरंश एवं महा-
प्रभुः ॥ ४४ ॥

ऐसा कह कर उसने जलको ले कर एक दिनमें ब्राह्मणको दान एवं स्नानसे उत्पन्न उत्तम पुण्य उसको दिया। उससे उसके सम्पूर्ण पापके नष्ट हो जानेसे गृहगोधाके घोर रूपको छोड़ कर वह पुरुष रूप हो गया। मिथिलाके राजाके घरमें साधुओंके देखते रहते वह पुरुष हाथ जोड़ कर श्रुतदेवको प्रदक्षिणा एवं नमस्कार कर और उनसे अनुज्ञा ले कर दिव्य वस्त्र और आभूषणोंसे भूषित हो कर, स्वर्गीय विमान पर चढ़ कर देवताओंसे स्तुति किया जाता हुआ स्वर्गको चला गया। वहाँ पर दश हजार वर्षों तक सावधानतासे महा भोगोंको भोग कर वह उत्तम इक्ष्वाकु कुलमें महारथ, सात द्वीपोंका पालन करनेवाला, ब्रह्मण्य, साधुओंसे सम्मानित, देवेन्द्रका सखा, भगवान विष्णुके अंश तथा महाप्रभु ककुत्स्थ राजा हुआ ॥ ४४ ॥

बोधितस्तु वसिष्ठेन सर्वान्धर्मान्मनोहरान् ॥ अनुष्ठायाखिलान् राजा
तेन ध्वस्ताशुभादिकः ॥ ४५ ॥ दिव्यं ज्ञानं समासाद्य विष्णोः सायुज्यमा-
सवान् ॥ तस्माद्वेङ्कटशैलेन्द्रः पुण्यपापविनाशनः ॥ ४६ ॥ तस्मिंश्च जलदानं
तु विष्णुलोकप्रदायकम् ॥

वह राजा वसिष्ठसे बताये हुए सब सुन्दर धर्मोंका अनुष्ठान कर और उससे सब अशुभको नाश कर और दिव्य ज्ञानको प्राप्त कर विष्णुके सायुज्यको प्राप्त हुआ, इसलिये पर्वतोंके राजा वेङ्कटाचल पुण्य और पापका (कर्मबन्धनका) नाश करनेवाले हैं। उनपर जलदान करना विष्णुलोकको देनेवाला है ॥४७॥

एवं वः कथितं विप्रा जलदानस्य वैभवम् ॥४७॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये
सर्वपातकनाशने ॥ ४८ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जलदानवै-
भववर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार महा पवित्र और सब पापोंको नाश करनेवाले वेङ्कटाचलपर जलदानके माहात्म्यको आप लोगोंसे मैंने कहा ॥४८॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः



वेङ्कट गिरिके प्रान्तके, गणना तीरथ क्षेत्र ।
स्नान दान तप जाप फल, यह देखो निज नेत्र ॥१॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलक्षेत्रादिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच—

वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं भूयोऽपि प्रवदाम्यहम् ॥ युष्माकं सावधानेन शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च ॥ तानि सर्वाणि वर्तन्ते वेङ्कटाह्वयभूधरे ॥ २ ॥ तस्मिन्नगोत्तमे पुण्ये वसन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ शङ्खचक्रधरं देवं पीताम्बरधरं शुभम् ॥ ३ ॥ कौस्तुभालङ्कृतोरस्कं भक्तानामभयप्रदम् ॥ देवदेवं विशालाक्षं वेदवेद्यं सनातनम् ॥ ४ ॥ अङ्गकोसलकर्णाटकाशीगुर्जरदेशगाः ॥ चोलकेरलपाण्ड्यादिसर्वदेशसमुद्भवाः ॥ ५ ॥ सकुटुम्बाश्च सेवार्थमायान्ति प्रतिवत्सरम् ॥ देवाश्च ऋषयःसिद्धा योगिनः सनकादयः ॥ ६ ॥

श्रीसूतजी बोले—श्रीवेङ्कटाचलके माहात्म्यको आप लोगोंसे मैं पुन कहता हू, सावधान हो कर सुनिये। ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जितने तीर्थ हैं, वे सब वेङ्कटाचल नामक पर्वतपर हैं। उस पवित्र पर्वतपर रहते, एवं शङ्ख, चक्र धारण किये हुए, शुभ पीताम्बरको धारण किये हुए, कौस्तुभसे शोभित हृदयवाले, भक्तोंको अभय देनेवाले, देवताओंके देव, विशाल नेत्रवाले, वेदवेद्य तथा सनातन देव पुरुषोत्तमके दर्शन और सेवा करनेके लिये प्रतिवर्ष, अङ्ग, कोसल, कर्नाट, काशी और गुर्जर, चोल, केरल, पाण्ड्य इत्यादि सब देशोंमें उत्पन्न मनुष्यगण, देवता, ऋषि, सिद्ध और सनकादि योगी आते हैं ॥६॥

ये भाद्रपदमासे तु वेङ्कटेशमहोत्सवे ॥ सेवां कुर्वन्ति ते सर्वे निष्पापा

उत्तमोत्तमाः ॥ ७ ॥ तत्र श्रीवेङ्कटेशस्य ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ चकार कन्यामासे तु ध्वजारोहमहोत्सवम् ॥ ८ ॥ प्रतिवर्षं च तत्सेवानिमित्तं सर्वमानवाः ॥ सर्वे देवाश्च गन्धर्वाः सिद्धाः साध्या महौजसः ॥ ९ ॥ ब्रह्मोत्सवे भगवतः समायान्ति द्विजोत्तमाः ॥

जो भाद्रपदमासमे श्रीवेङ्कटेशके महोत्सवमें सेवा करते हैं, वे सब पाप रहित और उत्तमसे भी उत्तम होते हैं। वहापर लोकपितामह ब्रह्माने भाद्रपद मासमें ध्वजारोहका महोत्सवःकिया था। हे ब्राह्मणो! प्रतिवर्ष उन भगवान की सेवाके वास्ते सब मनुष्य, सब देव गन्धर्व, सिद्ध और साध्य ब्रह्मोत्सवमें आते हैं ॥१०॥

विद्यानां वेदविद्येव मन्त्राणां प्रणवो यथा ॥१०॥ प्राणवत्प्रियवस्तूनां धेनूनां कामधेनुवत् ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ ११ ॥ शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ॥ देवानां तु यथा विष्णुर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा ॥ १२ ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ भूरुहाणां सुरतरुर्भार्येव सुहृदां यथा ॥ १३ ॥ तीर्थानां तु यथा गङ्गा तेजसां तु रविर्यथा ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ १४ ॥ आयुधानां यथा वज्रं लोहानां काञ्चनं यथा ॥ वैष्णवानां यथा रुद्रो रत्नानां कौस्तुभो यथा ॥ १५ ॥ तथा वेङ्कटशैलेन्द्रः क्षेत्राणामुत्तमोत्तमः ॥ नानेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविवर्धनः ॥ १६ ॥

विद्याओंमें वेदविद्याकी, मन्त्रोंमें प्रणवकी, प्रिय वस्तुओंमें प्राणकी एवं गौओंमे कामधेनुकी तरह सब तीर्थोंमे श्रीवेङ्कटाचल उत्तमसे उत्तम हैं। सब नागोंमें जैसे शेष, पक्षियोंमें जैसे गरुड, देवताओंमें जैसे विष्णु तथा वर्णोंमें जैसे ब्राह्मण उत्तम है, उसी प्रकार तीर्थोंमें श्रीवेङ्कटाचल उत्तमसे उत्तम है। वृक्षोमे जिस प्रकार कल्पवृक्ष, सुहृदोंमे जिस प्रकार भार्या, तीर्थोंमें जिस प्रकार गङ्गा तथा तेजोंमें जिस प्रकार सूर्य है, उसी प्रकार क्षेत्रोंमे श्रीवेङ्कटाचल उत्तमसे उत्तम हैं। आयुधोंमें जिस प्रकार वज्र, धातुओंमे जिस प्रकार सुवर्ण, वैष्णवोंमे जिस प्रकार शिवजी, रत्नोंमे जिस प्रकार कौस्तुभ है, उसी प्रकार क्षेत्रोंमे उत्तमसे उत्तम श्रीवेङ्कटाचल हैं। इसके समान विष्णुकी प्रीतिको बढानेवाला संसारमे दूसरा कोई नहीं है ॥१६॥

न माघवसमो मासो न कृतेन समं युगम् ॥ न च वेदसमं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम् ॥ १७ ॥ न जलेन समं दानं न सुखं भार्यया समम् ॥ न कृषेस्तु समं वित्तं न लाभो जीवितात्परः ॥१८ ॥ न तपोऽनशनादन्यन्न

दानात्परमं सुखम् ॥ न धर्मस्तु दयातुल्यो न ज्योतिश्चक्षुषा समम् ॥१९॥
न तृप्तिरशनात्तुल्या न वाणिज्यं कृषेः समम् ॥ न धर्मेण समं मित्रं न स-
त्येन समं यशः ॥२०॥ यथा तथा भगवतः स्थानेन सदृशं न हि ॥२१॥

जैसे वैशाखके समान मास नहीं, सत्ययुगके समान युग नहीं, वेदके समान शास्त्र नहीं, गङ्गाके समान तीर्थ नहीं, जलदानके समान दान नहीं, भार्याके सुखके समान सुख नहीं, कृषी (खेती) के समान धन नहीं, जीवनसे बढ कर लाभ नहीं, उपवासके समान तप नहीं, दानसे श्रेष्ठ सुख नहीं, दयाके समान धर्म नहीं, नेत्रके समान ज्योति नहीं, भोजनकी तृप्तिके समान तृप्ति नहीं, कृषीके समान वाणिज्य नहीं, धर्मके समान मित्र नहीं, सत्यके समान यश नहीं, उसी प्रकार भगवानके स्थानके समान स्थान नहीं है ॥२१॥

यत्कीर्तनं सकलपापहरं मुनीन्द्र यद्वन्दनं सकलसौख्यदमेव लोके ॥
यात्रापि यं प्रति सुरैरपि पूजनीया तादृङ्महान्भवति वेङ्कटशैलमुख्यः॥२२॥
तस्यानुभावं प्रवदामि भूयः समस्ततीर्थानि वसन्ति यत्र ॥ एवं समस्तेषु च
मुख्यतीर्थे श्रीस्वामिनामास्ति सरोवरं तत् ॥ २३ ॥

हे मुनीन्द्र! जिसके कीर्तन सब पापोंको नाश करनेवाला है, जिसका वन्दन संसारमे सब सुखोंको देनेवाला है, और जिसके प्रति यात्रा करना देवताओंसे भी पूज्य है, इस प्रकारके महान् श्रीवेङ्कटाचल पर्वतोंमे मुख्य है। इसलिये मैं उसके माहात्म्य पुनः कहता हु, जहापर सर्व तीर्थोंमे मुख्य श्रीस्वामिपुष्करणी नामक प्रसिद्ध सरोवर है ॥ २३ ॥

माहात्म्यमेतस्य मयोच्यते कथं यत्पश्चिमे रोधसि भूवराहः ॥ आ-
लिङ्ग्य कान्तामतिसौम्यमूर्तिर्विराजते विश्वजनोपकारी ॥२४॥ श्रीस्वामि-
पुष्करिण्याश्च दक्षिणे वेङ्कटेश्वरः ॥ आलिङ्गितवपुर्लक्ष्म्या वरदो वर्तते चि-
रम् ॥ २५ ॥ एवं वः कथितं विप्राः क्षेत्रमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यः शृणोति
सदा भक्त्या विष्णुलोके महीयते ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये क्षेत्रमहिमानु-
वर्णनं नाम सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

जिसके पश्चिम तीरमे कान्ताको आलिङ्गन करके, सुन्दर मूर्ति तथा संसारके मनुष्योंको उपकार करनेवाले भूवराह शोभित हैं, उस स्वामिपुष्करिणीके माहात्म्यको मैं किस प्रकार कहूं? श्रीस्वामिपुष्करिणीके दक्षिणमें

चिरकालसे लक्ष्मीसे आलिङ्गित हो कर वहां श्रीवेङ्कटेश विराजमान हैं। हे ब्राह्मणो! इस प्रकार आप लोगोंसे मेरे द्वारा कहे हुए शेषके उत्तम माहात्म्यको जो सदा भक्तिसे सुनता है, वह विष्णुलोकमें भी पूज्य होता है ॥ २६॥

॥इति सप्तमोऽध्यायः॥

अष्टमोऽध्यायः

श्रीवेङ्कट भगवानका, दिव्य विभवका स्रोत।
यह अष्टम अध्याय है, तेहिसे ओत प्रोत ॥१॥

अथ श्रीवेङ्कटेश्वरवैभववर्णनम्

श्रीसूत उवाच—

अथेदानीं प्रवक्ष्यामि वेङ्कटेश्वरवैभवम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो
मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥ श्रीवेङ्कटेश्वरं देवं यः पश्यति सकृन्नरः ॥ स
नरो मुक्तिमाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥ २ ॥

श्रीसूतजी बोले—अब इस समय श्रीवेङ्कटेश्वरके वैभवको कहता हूं, जिसको सुन कर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जो मनुष्य एक बार भी श्रीवेङ्कटेश्वरके दर्शन करता है, वह मुक्ति तथा विष्णुके सायुज्यको पाता है ॥२॥

दशवर्षैस्तु यत्पुण्यं क्रियते तु कृते युगे ॥ त्रेतायामेकवर्षेण यत्पुण्यं
साध्यते नृभिः ॥३॥ द्वापरे पञ्चमासेन तद्दिनेन कलौ युगे ॥ तत्फलं को-
टिगुणितं निमिषे निमिषे नृणाम् ॥४॥ निःसन्देहं भवेदेवं श्रीनिवासविलो-

किनाम् ॥ श्रीवेङ्कटेश्वरे देवे तीर्थानि सकलान्यपि ॥ ५ ॥ विद्यन्ते सर्वदेवाश्च मुनयः पितरस्तथा ॥ एककालं द्विकालं वा त्रिकालं सर्वदैव वा ॥६॥ ये स्मरन्ति महादेवं श्रीनिवासं विमुक्तिदम् ॥ कीर्तयन्त्यथवा विप्रास्ते मुक्ताः पापपञ्जरात् ॥ नारायणं परं देवं वेङ्कटेशं प्रयान्ति वै ॥ पूजितं शङ्खराजेन सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥८ ॥

कृतयुगमें मनुष्योंसे जो पुण्य दश वर्षोंमें किया जाता है, जो पुण्य त्रेतामें एक वर्षमें, द्वापरमें पांच मासमें, किया जाता है, वह पुण्य कलियुगमें एक ही दिनमें किया जाता है। और वही फल श्रीनिवासके दर्शन करनेवाले मनुष्योंको निमिष निमिषमें निःसन्देह करोड़ों गुना होता है। श्रीवेङ्कटेश्वरमें सब तीर्थ, सब देवता, पितर और सब मुनि हैं। हे ब्राह्मणो ! एक, दो या तीनों समय अथवा सर्वदा ही जो मुक्तिको देनेवाले महादेव श्रीनिवास को स्मरण अथवा कीर्तन करते हैं, वे पापके पींजरेसे छूट जाते हैं और शङ्खराजसे पूजित सच्चिदानन्दकी मूर्तिवाले उत्तम देव नारायण श्रीवेङ्कटेशको भी पाते हैं॥ ८ ॥

तस्य स्मरणमात्रेण यमपीडाऽपि नो भवेत् ॥ श्रीनिवासं महादेवं येऽर्चयन्ति सकृन्नराः ॥९॥ किं दानैः किं व्रतैस्तेषां किं तपोभिः किमध्वरैः ॥ वेङ्कटेशं परं देवं यो न चिन्तयति क्षणम् ॥ १० ॥ अज्ञानी स च पापी स्यात्स मूको बधिरस्तथा ॥ स जडोऽन्धश्च विज्ञेयश्छिद्रं तस्य सदा भवेत् ॥११॥ श्रीनिवासे महादेवे सकृद् दृष्टे मुनीश्वराः ॥ किं काश्या गयया चैव प्रयागेनापि किं फलम् ॥ १२ ॥

उसके स्मरण करनेहीसे यमपीड़ा भी नहीं होती। जो मनुष्य महादेव श्रीनिवासका एक बार भी पूजन करते हैं, उनको दान, व्रत, तपस्या, और यज्ञसे क्या प्रयोजन है ? उत्तम देव श्रीनिवासको जो क्षण भर भी स्मरण नहीं करता, वह अज्ञानी, पापी, मूक, बधिर, जड़ और अन्ध है। उसको सदा छिद्र (विपत्ति) होता है। हे मुनीश्वरो ! महादेव श्रीनिवासको एक बार भी देख लेने पर काशी, गया और प्रयागसे भी क्या प्रयोजन है ? ॥ १२ ॥

दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं मानवा इह भूतले ॥ वेङ्कटेशं परं देवं ये पश्यन्त्यर्चयन्ति वा ॥१३॥ जन्म तेषां हि सफलं ते कृतार्थाश्च नेतरे ॥ वेङ्कटेशे परं देवे दृष्टे वा पूजितेऽपि वा ॥ १४ ॥ शम्भुना ब्रह्मणा किं वा शक्रेणाप्यखिलामरैः ॥ वेङ्कटेशे महादेवे भक्तियुक्ताश्च ये नराः ॥ १५ ॥ तेषां प्रणामस्मरणपूजायुक्तास्तु ये नराः ॥ न ते पश्यन्ति दुःखानि नैव

यान्ति यमालयम् ॥१६॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि सुरापानाऽयुतानि च ॥ दृष्टे नारायणे देवे विलयं यान्ति कृत्स्नशः ॥ १७ ॥

जो मनुष्य इस पृथ्वी पर दुर्लभ मनुष्य जन्मको पा कर उत्तम, देव, श्रीवेङ्कटेशका दर्शन और पूजन करते हैं, उन्हींका जन्म सफल है, और वे ही कृतार्थ हैं, दूसरे नहीं। उत्तम देव श्रीवेङ्कटेशके दर्शन और पूजा करनेसे शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, अथवा सब देवताओंसे क्या प्रयोजन है ? जो मनुष्य महादेव वेङ्कटेशकी भक्ति, प्रणाम, स्मरण, और पूजा करनेवाले हैं, वे दुःखोंको नहीं देखते और न यमलोकको ही जाते हैं। नारायण देवके दर्शन करने पर हजारों बारकी ब्रह्महत्या तथा दशहजारों बारके मदिरापान सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १७ ॥

ये वाञ्छन्ति सदा भोगं राज्यं च त्रिदशालये ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं ते प्रणमन्तु सकृन्मुदा ॥ १८ ॥ यानि कानि च पापानि जन्मकोटिकृतानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति वेङ्कटेश्वरदर्शनात् ॥ १९ ॥ सम्पर्कात्कौतुकाल्लोभाद्भयाद्वापि च संस्मरन् ॥ वेङ्कटेशं महादेवं नेहामुत्र च दुःखभाक् ॥२०॥ वेङ्कटाचलदेवेशं कीर्तयन्नर्चयन्नपि ॥ अवश्यं विष्णुसारूप्यं लभते नात्र संशयः ॥ २१ ॥ यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात् ॥ तथा पापानि सर्वाणि वेङ्कटेश्वरदर्शनम् ॥ २२ ॥

जो सदा भोग और स्वर्गमें राज्य चाहते हैं, वे आनन्दसे एक बार श्रीवेङ्कटाचलमें रहनेवालेको प्रणाम करें। करोडों जन्मके किये हुए जो कुछ पाप हैं, वे सब श्री वेङ्कटेश्वरके दर्शनसे क्षणमात्रमें नष्ट होते हैं। कौतुकसे लोभ अथवा भयसे श्रीवेङ्कटेश महादेवको स्मरण या स्पर्श करनेसे मनुष्य यहां और परलोकमें दुःख नहीं पाता है और देवेश श्रीवेङ्कटेशके कीर्तन और स्मरण करनेसे भी अवश्य ही विष्णुके सारूप्यको पाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जिस प्रकार जलती हुई अग्नि लकडियोंको क्षण भरमें भस्म कर देती है, उसी प्रकार श्री वेङ्कटेश्वरका दर्शन सब पापोंको भस्म करता है ॥ २२ ॥

वेङ्कटेश्वरदेवस्य भक्तिरष्टविधा स्मृता ॥ तद्भक्तजनवात्सल्यं तत्पूजापरितोषणम् ॥२३॥ स्वयं तत्पूजनं भक्त्या तदर्थं देहचेष्टितम् ॥ तन्माहात्म्यकथावाञ्छा श्रवणेष्वादरस्तथा ॥ २४ ॥ स्वरनेत्रशरीरेषु विकारस्फुरणं तथा ॥ श्रीनिवासस्य देवस्य स्मरणं सततं तथा ॥ २५ ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं तमाश्रित्यैवोपजीवनम् ॥ एवमष्टविधा भक्तिर्यस्मिन् म्लेच्छेऽपि वर्तते ॥२६॥ स एव मुक्तिमाप्नोति शौनकाद्या महौजसः ॥

श्री वेङ्कटेश्वरकी भक्ति आठ प्रकारकी कही गई है—(१) उनके भक्तोंमें वात्सल्य भाव। (२) उनके भक्तोंको पूजासे सन्तुष्ट करना (३) स्वयं उनकी पूजा करना (४) उन्हींके लिये सब करना (५) उनके माहात्म्य कथामें वाञ्छा और श्रवणमें आदर (६) स्वर नेत्र और शरीरमें विकारकी स्फूर्ति (७) सदा वेङ्कटेश श्रीनिवास के ही स्मरण और उन्हीं श्रीवेङ्कटेश्वरके आश्रय ग्रहण कर जीना। इस प्रकारकी आठ प्रकारकी भक्ति जिस म्लेच्छमें भी होती है, हे श्रेष्ठ शौनकादि! वही मुक्तिको पाता है॥ २७॥

भक्त्या त्वनन्यया मुक्तिर्ब्रह्मज्ञानेन निश्चिता ॥२७॥ वेदान्तशास्त्रश्रवणाद्यतीनामूर्ध्वरेतसाम् ॥ सा च मुक्तिर्विना ज्ञानं वेदान्तश्रवणोद्भवम् ॥ यत्याश्रमं विना विप्रा विरक्तिं च विना तथा ॥२८॥ सर्वेषां चैव वर्णानामखिलाश्रमिणामपि ॥ वेङ्कटेश्वरदेवस्य दर्शनादेव केवलम् ॥ २९ ॥ अपुनर्भवदा मुक्तिर्भविष्यत्यविलम्बितम् ॥

योगिगण या संन्यासियोंको अनन्यभक्ति और वेदान्त शास्त्रोंके श्रवणसे उत्पन्न ब्रह्मज्ञानसे मुक्ति निश्चित होती है। वेदान्तके श्रवणसे उत्पन्न ज्ञानके बिना, बिना यतीके आश्रम और बिना वैराग्यके पुनर्जन्मको नाश करनेवाली वही मुक्ति, सब वर्णों तथा सब आश्रमियोंको भी श्री वेङ्कटेश्वरके केवल दर्शनसे ही शीघ्र ही होती है ॥३०॥

कृमिकीटाश्च देवाश्च मुनयश्च तपोधनाः ॥ ३० ॥ तुल्या वेङ्कटशैलेन्द्रे श्रीनिवासप्रसादतः ॥ पापं कृतं मयानेकमिति मा क्रियतां भयम् ॥३१॥ मा गर्वः क्रियतां पुण्यं मयाऽकारीति वा जनैः ॥ वेङ्कटेशे महादेवे श्रीनिवासे विलोकिते ॥ ३२ ॥ न न्यूना नाधिकाश्च स्युः किन्तु सर्वे महाजनाः ॥ वेङ्कटाख्ये महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ ३३ ॥ श्रीनिवासं परं देवं यः पश्यति सभक्तिकम् ॥ न तेन तुल्यतामेति चतुर्वेद्यपि भूतले ॥ ३४ ॥ वेङ्कटेश्वरदेवेशं यः पूजयति भक्तितः ॥ स कोटिकुलसंयुक्तः प्रयाति हरिमन्दिरम् ॥ ३५ ॥

श्रीवेङ्कटाचल पर्वतपर श्रीनिवासकी कृपासे कृमी, कीट देवता, मुनि और तपस्वी सब ही बराबर हैं। "मैंने अनेक पाप किये हैं" इस प्रकार न भय करें अथवा मनुष्य यह भी गर्व न करें, कि "मैंने पुण्य किया है" क्योंकि महादेव श्रीनिवास वेङ्कटेशके दर्शन करने पर न कोई कम या न कोई अधिक हैं, किन्तु सब ही पूज्य हैं। महा पवित्र, सब पापोंको नाश करनेवाले श्रीवेङ्कटाचलपर उत्तम देव श्रीनिवासका जो भक्तिके साथ दर्शन करता है, चारों वेदके जाननेवाले भी पृथ्वीपर उसके तुल्य नहीं हैं। श्रीवेङ्कटेश्वर देवको भक्तिपूर्वक जो पूजन करता है, वह करोड़ों कुलके साथ वैकुण्ठको जाता है॥ ३५॥

श्रीनिवासाच्च न समं नाधिकं पुण्यमस्ति वै ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं तं द्वेष्टि यो मोहमास्थितः ॥ ३६ ॥ ब्रह्महत्याऽयुतं तेन कृतं नरककारणम् ॥ तत्सम्भाषणमात्रेण मानवो नरकं व्रजेत् ॥ ३७ ॥

श्रीनिवासके समान पवित्र और अधिक पुण्य कोई नहीं हैं। जो कोई मोहके वशमें हो कर श्रीवेङ्कटाचलके रहनेवालोंसे द्वेष करता है, उसने नरक देनेवाली दश हजार महाहत्याएं कर ली। उसके साथ बोलनेसे भी मनुष्य नरकमें जाता है ॥ ३७ ॥

श्रीनिवासपरा देवाः श्रीनिवासपरा मखाः ॥ श्रीनिवासपराः सर्वे तस्मादन्यन्न विद्यते ॥ ३८ ॥ अन्यत्सर्वं परित्यज्य श्रीनिवासं समाश्रयेत् ॥ सर्वयज्ञतपोदानतीर्थस्नाने तु यत्फलम् ॥ ३९ ॥ तत्फलं कोटिगुणितं श्रीनिवासस्य सेवया ॥ वेङ्कटाद्रिनिवासं तं चिन्तयन् घटिकाद्वयम् ॥४०॥ कुलैकविंशतिं धृत्वा विष्णुलोके महीयते ॥

सब वेद, सब यज्ञ तथा सब ही श्रीनिवासके परायण हैं, उनसे दूसरा कोई नहीं हैं। अतएव सबको छोड़ कर श्रीनिवासका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। सब यज्ञ, तपस्या, दान तथा तीर्थोंके स्नानसे जो फल मिलता है, उसका करोड़ गुना फल श्रीनिवासकी सेवासे होता है। मनुष्य उस वेङ्कटाचल निवासीको दो घटिका पर्यन्त स्मरण करनेसे इकीस कुलको ले कर विष्णुलोकमें जाता है ॥ ४१ ॥

स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नानं देवस्य दर्शनम् ॥४१॥ यदि लभ्येत वै पुंसां किं गङ्गाजलसेवया ॥ वेङ्कटेशं परं देवं यः कदापि न पश्यति ॥४२॥ सङ्करः स तु विज्ञेयो न पितुर्बीजसम्भवः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ ४३ ॥ द्रष्टव्योऽतिप्रयत्नेन परलोकेच्छया द्विजाः ॥ एवं वः कथितं विप्रा वेङ्कटेशस्य वैभवम् ॥ ४४ ॥ यस्त्वेतच्छृणुयान्नित्यं पठते च सभक्तिकम् ॥ स वै वेङ्कटनाथस्य सेवाफलमवाप्नुयात् ॥ ४५ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये वेङ्कटेश्वर-
वैभवानुवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

स्वामिपुष्करिणी तीर्थमें स्नान एवं श्रीनिवासका दर्शन यदि पुरुषोंको प्राप्त हो, तो गङ्गाजलके सेवनसे क्या ?

उत्तम देव श्रीवेङ्कटेशको जो नहीं देखता है, वह वर्णसङ्कर माना जाता है, या पिताके वीर्यसे उत्पन्न नहीं है। हे ब्राह्मणो! इसलिये सब उपायोंसे, परलोककी इच्छासे दयालु श्रीवेङ्कटेशके दर्शन करना चाहिये। हे ब्राह्मणो! इस प्रकारसे श्रीवेङ्कटाचलके माहात्म्यको आप लोगोंसे मैंने कहा। जो इसको रोज रोज सुनता और भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह श्रीवेङ्कटेशकी सेवाका फल पाता है ॥ ४५ ॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः ॥

नवमोऽध्यायः

श्रीवेङ्कट गिरिपर सदा, ब्रह्मादिक सुखाप्ति।
गिरिपर तीरथ खोजना, भूमि दान फल प्राप्ति ॥१॥
दृढ़मति नामक शूद्रका, वर्णित यह आख्यान।
कुलपति मुनिका शूद्रको, शूद्र-धर्म व्याख्यान ॥२॥
दृढ़मतिसे द्विज सुमति कह, गतिकर्मानुष्ठान।
शूद्रहिं वेददिशासे, दुर्गति द्विजहिं प्रमान ॥३॥
सुमति कुगति अति नाशहित, ऋषि अगस्त्य उपदेश।
वेङ्कट गिरि सेवन चयन, पाप नाशिनी वेश ॥४॥
सुमति सुगति गति अनिदुरित, दृढ़मति दुर्गति प्राप्ति।
महामती यति सूतजी, कही ताहि निवृत्ति ॥५॥

अथ ब्रह्मादीनां नैरन्तर्येण श्रीवेङ्कटाचले स्थितिवर्णनम्

श्रीसूत उवाच—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि वेङ्कटाचलवैभवम् ॥ युष्माकं सावधानेन शृ-
णुध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥ लक्षकोटिसहस्राणि सरांसि सरितस्तथा ॥
समुद्राश्च महापुण्या वनान्यप्याश्रमा अपि ॥ २ ॥ पुण्यानि क्षेत्रजातानि
वेदारण्यादिकानि च ॥ मुनयश्च वसिष्ठाद्याः सिद्धचारणकिन्नराः ॥ ३ ॥
लक्ष्म्या सह धरण्या च भगवान् मधुसूदनः ॥ सावित्र्या च सरस्वत्या स-
हैव चतुराननः ॥ ४ ॥ पार्वत्या सह देवेशस्त्र्यम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥ हेरम्ब-

षण्मुखाद्याश्च देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥ ५ ॥ आदित्यादिग्रहाश्चैव तथाष्ट-
वसवो द्विजाः ॥ पितरो लोकपालाश्च तथान्ये देवतागणाः ॥६॥ महापात-
कसङ्घानां नाशने लोकपावने ॥ दिवानिशं वसन्त्यन्तर्वेङ्कटाचलमूर्ध-
नि ॥ ७ ॥

श्री सूतजी बोले—अब मैं श्रीवेङ्कटाचलके माहात्म्यको आप लोगोंसे कहता हूं, आपलोग सावधानीसे सुनिये। महापापोंके समूहोंको नष्ट करनेवाले, संसारमें पवित्र श्रीवेङ्कटाचलपर रात दिन लाखों, करोड़ों सर, नदियां महापवित्र समुद्र, वन, आश्रम, पवित्र क्षेत्रमें उत्पन्न वेदारण्य इत्यादि, वसिष्ठादि मुनिगण, सिद्ध, चारण, किन्नर, लक्ष्मी और धरणीके साथ भगवान मधुसूदन, सावित्री और सरस्वतीके साथ ब्रह्मा, पार्वतीके साथ देवेश, तीननेत्रवाले, तथा त्रिपुरान्तक शिव, गणेश, षण्मुख, इन्द्र इत्यादि देवता, आदित्यादि नवग्रह, आठो वसु, पितर, लोकपाल, और देवता गण, निवास करते हैं ॥ ७ ॥

तस्य दर्शनमात्रेण बुद्धिसौख्यं नृणां भवेत् ॥ तन्मूर्द्धनि कृतावासाः
सिद्धचारणयोषितः ॥८॥ पूजयन्ति सदाकालं वेङ्कटेशं कृपानिधिम् ॥ कोटयो
ब्रह्महत्यानामगम्यागमकोटयः ॥ ९ ॥ अङ्गलग्ना विनश्यन्ति वेङ्कटाचल-
मारुतैः ॥ १० ॥

उस वेङ्कटाचलके दर्शन मात्रसे ही मनुष्यको बुद्धिका सुख होता है। उसके शिखरपर रहनेवाली, सिद्ध और चारणोंकी स्त्रियां दयालु श्रीवेङ्कटेशकी सदा पूजन करती हैं। करोड़ों ब्रह्महत्या और करोड़ों गुरुस्त्रीगमनादि, शरीरमें वेङ्कटाचलकी हवा लगनेसे नष्ट हो जाते हैं ॥ १० ॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलारोहणसमयानुसन्धानक्रमः

वेङ्कटाद्रिं गिरिं तं तु प्रार्थयेत्पुण्यवर्धनम् ॥ "स्वर्णाचल महापुण्य स-
र्वदेवनिषेवित ॥११॥ ब्रह्मादयोऽपि यं देवाः सेवन्ते श्रद्धया सह ॥ तं भ-
वन्तमहं पद्भ्यामाक्रमेयं नगोत्तम ॥१२॥ क्षमस्व तदघं मेऽद्य दयया पाप-
चेतसः ॥ त्वन्मूर्धनि कृतावासं माधवं दर्शयस्व मे ॥ १३ ॥" प्रार्थयित्वा
नरस्त्वेवं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ ततो मृदुपदं गच्छेत्पावनं वेङ्कटाच-
लम् ॥ १४ ॥

पुण्यको बढ़ानेवाले उस वेङ्कटाचलकी प्रार्थना करे—'हे महापवित्र तथा देवताओंसे सेवित ! श्रीस्वर्णाचल !

हे पर्वतश्रेष्ठ ! जिसका ब्रह्मा इत्यादि देवता भी श्रद्धाके साथ सेवन करते हैं, उस आपके ऊपर मैं पैरोंसे चढता हूं, मुझ पापीके उस पापको दयासे आप क्षमा करें, आपके शिखरपर रहनेवाले माधवको आप मुझे दिखलाइये। मनुष्य इस प्रकार उत्तम पर्वत श्रीवेङ्कटाचलकी प्रार्थना कर हौले हौले पैरसे पवित्र वेङ्कटाचलपर चढ जाय ॥१४॥

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा नियमपूर्वकम् ॥ १५ ॥ पिण्डदानं ततः कुर्यादपि सर्षपमात्रकम् ॥ शमीदलसमानान्वा दद्यात्पिण्डान् पितृन् प्रति ॥ १६ ॥ स्वर्गस्था मोक्षमायान्ति स्वर्गं नरकवासिनः ॥ १७ ॥

सब पापोको नष्ट करनेवाले वेङ्कटाचल पर स्वामिपुष्करिणी तीर्थमें नियमपूर्वक स्नान करके फिर सरसोमात्र अथवा शमीके पत्रके परिणामका भी पितरोको पिण्डदान करे। उससे नरकमें जानेवाले पितर स्वर्ग और स्वर्गमे रहने वाले मुक्ति पा जाते हैं ॥ १७ ॥

अथ पापविनाशनाख्यतीर्थमाहात्म्यम्

ततस्तस्योपरि महत्सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ सर्वतीर्थोत्तमं पुण्यं नाम्ना पापविनाशनम् ॥ १८ ॥ अस्ति पुण्यतमे विप्राः पवित्रे वेङ्कटाचले ॥ यस्य संस्मरणादेव गर्भवासो न विद्यते ॥ १९ ॥ तत्प्राप्य तु नरः स्नायात्स्वामितीर्थस्य चोत्तरे ॥ तत्र स्नानान्नरा यान्ति वैकुण्ठं नात्र संशयः ॥ २० ॥

हे ब्राह्मणो ! पवित्र वेङ्कटाचल पर उसके ऊपर बहुत बडा, सब लोकोमें प्रसिद्ध, तीर्थोमे उत्तम तथा पवित्र पापविनाशन नामक एक तीर्थ है। जिसके स्मरण करनेसे ही गर्भवास (पुनर्जन्म) नहीं होता हैं। स्वामितीर्थके उत्तर उसको प्राप्त कर वहा मनुष्य स्नान करे, वहा पर स्नान करनसे मनुष्य वैकुण्ठको जाते है, इसमे संशय नहीं है ॥ २० ॥

ऋषय ऊचुः—

सूत पापविनाशाख्यतीर्थस्य ब्रूहि वैभवम् ॥ व्यासेन बोधितस्त्वं हि वेत्सि सर्वं महामुने ॥ २१ ॥

ऋषिगण बोले—हे सूतजी ! आप पापविनाशननामक तीर्थका माहात्म्य कहिये, क्योंकि हे महामुने ! आप व्याससे बताये हुए हैं और सब जानते हे ॥ २१ ॥

श्रीसूत उवाच—

ब्रह्माश्रमपदे वृत्तां पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥ वक्ष्यामि ब्राह्मणश्रेष्ठा

युष्माकं तु कथां शुभाम् ॥ २२ ॥ तदाश्रमपदं पुण्यं ब्रह्माश्रमपदं शुभम् ॥ नानावृक्षसमाकीर्णं पार्श्वे हिमवतः शुभे ॥२३॥ बहुगुल्मलताकीर्णं मृगद्विपनिषेवितम् ॥ सिद्धचारणसङ्घुष्टं रम्यं पुष्पितकाननम् ॥२४॥ यतिभिर्बहुभिः कीर्णं तापसैरुपशोभितम् ॥ ब्राह्मणैश्च महाभागैः सूर्यज्वलनसन्निभैः ॥ २५ ॥ नियमव्रतसम्पन्नैः समाकीर्णं तपस्विभिः ॥ दीक्षितैर्योगशीलैश्च यताहारैः कृतात्मभिः ॥ २६ ॥ वेदाध्ययनसम्पन्नैर्वैदिकैः परिवेष्टितम् ॥ वर्णिभिश्च गृहस्थैश्च वानप्रस्थैश्च भिक्षुभिः॥२७॥ स्वाश्रमाचारनिरतैः स्ववर्णोक्तविधायिभिः ॥ वालखिल्यैश्च ऋषिभिः समन्तात्परिवेष्टितम् ॥ २८ ॥

श्री सूतजी बोले--हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! हिमालयके पार्श्वमें ब्रह्माश्रममें हुई पवित्र और शुभ कथाको मैं आप लोगोंसे कहता हूं। हिमालयके पार्श्वमें ब्रह्माश्रम नामक, अनेकों वृक्षोंसे घिरा हुआ, अनेकों गुल्म और लताओंसे वेष्टित, मृगों और हाथियोंसे युक्त, सिद्धों और चारणोंसे पूर्ण, फूले हुए वनवाले, सुन्दर, बहुत यतियोंसे पूर्ण, तपस्वियोंसे शोभित, महाभाग सूर्यके समान प्रकाशवाले तथा नियम और व्रतोंसे युक्त ब्राह्मणोंसे भरा हुआ, दीक्षा लिये, यज्ञ करनेवाले और आहारको जीते हुए आत्मज्ञानी तपस्वियों एवं वेदके अध्ययनसे सम्पन्न वैदिकोंसे घिरा ब्रह्मचारियों गृहस्थों, वानप्रस्थों, भिक्षुकों, अपने अपने आश्रमके आचरणमें लगे हुए एवं विधियोंके पालन करनेवालों, वालखिल्य एवं ऋषियोंसे चारो ओरसे घिरा हुआ एक पवित्र आश्रम है ॥ २८ ॥

अथ दृढमत्याख्यशूद्रवृत्तान्तः

तत्राश्रमे पुरा कश्चिच्छूद्रो दृढमतिर्द्विजाः ॥ साहसी ब्राह्मणाभ्याशमाजगाम मुदान्वितः ॥ २९ ॥ आगतो ह्याश्रमपदं पूजितश्च तपस्विभिः ॥ नाम्ना दृढमतिः शूद्रः साष्टाङ्गं प्रणनाम वै ॥ ३० ॥ तान्स दृष्ट्वा मुनिगणान्देवकल्पान्महौजसः ॥ कुर्वतो विविधान्यज्ञान्सम्प्राहृष्यत शूद्रकः ॥ ३१ ॥ अथास्य बुद्धिरभवत्तपः कर्तुमनुत्तमम् ॥ ततोऽब्रवीत्कुलपतिं मुनिमागत्य तापसम् ॥ ३२ ॥

हे ब्राह्मणो ! उस आश्रममें पूर्वमें दृढमति नामक एक शूद्र, आनन्द और साहससे युक्त हो कर ब्राह्मणोंके पास आया। आश्रममें आये हुए दृढमति शूद्रने तपस्वियोंसे आदर पा कर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और देवताके समान उत्तम शरीरवाले उन मुनियोंको अनेक प्रकारके यज्ञ करते हुए देख कर वह शूद्र आनन्दित हुआ।

उसको उत्तम तपस्या करनेकी बुद्धि हुई, पुनः तपस्वी मुनि कुलपतिके पास आ कर बोला ॥३२॥

दृढमतिरुवाच—

तपोधन नमस्तेऽस्तु रक्ष मां करुणानिधे ॥ तव प्रसादादिच्छामि यागं कर्तुं प्रसीद मे ॥ ३३ ॥

दृढमति बोला—हे तपस्वी ! आपको प्रणाम है। हे करुणानिधि ! मेरी रक्षा कीजिये। आपकी कृपासे मैं यज्ञ करना चाहता हूं, मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥ ३३ ॥

एवमुक्तस्तु शूद्रेण समाह ब्राह्मणस्तदा ॥३४॥

तब शूद्रसे इस प्रकार कहे जा कर ब्राह्मणने उससे कहा ॥ ३४॥

अथ दृढमतिं प्रति कुलपत्याख्यमुन्युपदिष्टशूद्रमार्गः

कुलपतिरुवाच—

यागे दीक्षयितुं शक्यो न शूद्रो हीनजन्मभाक् ॥ श्रूयते यदि ते बुद्धिः शुश्रूषानिरतो भव ॥ ३५ ॥ उपदेशो न कर्तव्यो जातिहीनस्य कर्हिचित् ॥ उपदेशे महान्दोष उपाध्यायस्य विद्यते ॥३६॥ नाध्यापयेद्बुधः शूद्रं तथा नैव च याजयेत् ॥ न पाठयेत्तथा शूद्रं शास्त्रं व्याकरणादिकम् ॥३७॥ काव्यं वा नाटकं वापि तथाऽलङ्कारमेव वा ॥ पुराणमितिहासं च शूद्रं नैव तु पाठयेत् ॥३८॥यदि चोपदिशेद्विप्रः शूद्रस्यैतानि कर्हिचित् ॥ त्यजेयुर्ब्राह्मणा विप्रं तं ग्रामाद्ब्रह्मसङ्कुलात् ॥ ३९ ॥

कुलपति बोले—हीन जन्मवाला शूद्र यज्ञमें दीक्षाके योग्य नहीं है। यदि तुम्हारी राय है तो सेवाकर्ममें लग जाओ। जातिहीनको कोई भी उपदेश न करे, उपदेश करनेमें उपाध्यायको बड़ा दोष होता है। विद्वान लोग शूद्रको न पढ़ावें और न यज्ञ करावें और व्याकरणादि शास्त्र भी शूद्रको न पढ़ावें, अथवा काव्य, अलङ्कार, नाटक, पुराण तथा इतिहास भी शूद्रको न पढ़ावें। यदि कोई भी ब्राह्मण इन सब विषयोंको शूद्रको पढ़ावे तो ब्राह्मणसे पूर्ण नगरसे उसको ब्राह्मण लोग निकाल देवें ॥३९।

शूद्राय चोपदेष्टारं द्विजं चण्डालवत्त्यजेत् ॥ शूद्रं चाक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ॥४०॥ तच्छुश्रूषस्व भद्रं ते ब्राह्मणाञ्छ्रद्धया सह ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा मन्वादिभिरुदीरिता ॥ ४१ ॥ न हि नैसर्गिकं कर्म परित्यक्तुं त्वमर्हसि ॥

शूद्रको उपदेश करनेवाले ब्राह्मणको चाण्डालके समान छोड़ना चाहिये। अक्षरसे संयुक्त शूद्रको दूरसे छोड़ना चाहिये। इसलिये श्रद्धाके साथ ब्राह्मणोंकी सेवा करो, इसीमें तुम्हारा कल्याण है। मनु इत्यादिकोंने शूद्रका धर्म ब्राह्मणोंकी सेवा ही लिखा है। तुम अपने जातिकर्मको छोड़नेके योग्य नहीं हो ॥४२॥

एवमुक्तः स मुनिना स शूद्रोऽचिन्तयत्तदा ॥४२॥ किं कर्तव्यं मया त्वद्य व्रते श्रद्धा हि मे परा ॥ यथा स्यान्मम सुज्ञानं यतिष्येऽहं तथाऽद्य वै ॥ ४३ ॥ इति निश्चित्य मनसा शूद्रो दृढमतिस्तदा ॥ गत्वाऽऽश्रमपदाद्दूरं कृतवानुटजं शुभम् ॥ ४४ ॥ तत्र वै देवतागारं पुण्यान्यायतनानि च ॥ पुष्पारामादिकं चापि तटाकखननादिकम् ॥ ४५ ॥ श्रद्धया कारयामास तपःसिद्ध्यर्थमात्मनः ॥ अभिषेकांश्च नियमानुपवासादिकानपि ॥ ४६ ॥ बलिं कृत्वा च हुत्वा च देवतान्यभ्यपूजयत् ॥ सङ्कल्पनियमोपेतः फलाहारो जितेन्द्रियः ॥ ४७ ॥ नित्यं कन्दैश्च मूलैश्च पुष्पैरपि तथा फलैः ॥ अतिथीन्पूजयामास यथावत्समुपागतान् ॥ ४८ ॥ एवं हि सुमहान्कालो व्यतिचक्राम तस्य वै ॥ ४९ ॥

मुनिसे इस प्रकार कहा जा कर वह शूद्र चिन्ता करने लगा,—"अब मैं क्या करूं। व्रतमें मेरी उत्तम श्रद्धा है। जिस प्रकारसे मुझको सुन्दर ज्ञान हो, उस प्रकार मैं यत्न करूंगा।" ऐसा विचार करके उस शूद्र दृढमतिने आश्रमसे दूर जा कर सुन्दर झोपडी बनायी। वहांपर देवालय, पवित्र घर, पुष्पवाटिका एवं तडागोंका खोदना इत्यादि अपनी तपस्याकी सिद्धिके लिये श्रद्धासे करवाया। अभिषेक, नियम, उपवास एवं बलि तथा हवन इत्यादि करके संकल्पपूर्वक नियमोंमें लगा हुआ फलाहार करनेवाला हो जितेन्द्रिय उसने देवताओंका पूजन किया एवं प्रति दिन कन्द, मूल, फल और पुष्पोंसे आये हुए अतिथियोंकी पूजा करता था। इस प्रकारसे उसका बहुतसा समय व्यतीत हुआ ॥ ४९ ॥

अथ दृढमतये सुमत्याख्यविप्रप्रकाशितकर्मानुष्ठानक्रमः

अथाश्रममगात्तस्य सुमतिर्नाम नामतः ॥ द्विजो गर्गकुलोद्भूतः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ ५० ॥ स्वागतैर्मुनिमाराध्य तोषयित्वा फलादिकैः ॥ कथयन्वै कथाः पुण्याः कुशलं पर्यपृच्छत ॥ ५१॥

अथ उसके आश्रममें गर्ग कुलमें उत्पन्न, सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय सुमति नामक ब्राह्मण आया। स्वागतसे मुनिकी आराधना एवं फलादिकोंसे उसको प्रसन्न करके पवित्र कथाको कहते हुए उसने कुशल पूछा ॥ ५१ ॥

इत्थं सम्प्रति पाद्याद्यैरुपचारैस्तु पूजितः ॥ आशीर्भिरभिनन्द्यैनं प्रतिगृह्य च सत्क्रियाम् ॥५२॥ तमापृच्छत्प्रहृष्टात्मा स्वाश्रमं पुनराययौ ॥ एवं दिने दिने विप्रः शूद्रेऽस्मिन्पक्षपातवान् ॥५३ ॥ आगच्छदाश्रमं तस्य द्रष्टुं तं शूद्रयोनिजम् ॥ बहुकालं द्विजस्याभूत्संसर्गः शूद्रयोनिना ॥ ५४॥ स्नेहस्य वशमापन्नः शूद्रोक्तं नातिचक्रमे ॥

इस प्रकार उस समय पाद्य इत्यादि उपचारोंसे पूजित वह ब्राह्मण इसको आशिषोंसे अभिनन्दन कर, उसके सत्कारको ग्रहण करके उससे अनुमति ले, अपने आश्रमको आया। इस प्रकार प्रति दिन उस शूद्रमे पक्षपात युक्त वह ब्राह्मण उसको देखनेके लिये उसके आश्रमको आते थे। बहुत समय तक इस ब्राह्मणका सम्बन्ध शूद्रके साथ हुआ। स्नेहके वशमे होकर ब्राह्मण उस शूद्रकी कही हुई बातको नहीं उठाते थे ॥ ५४ ॥

अथाऽऽगतं द्विजं शूद्रः प्राह स्नेहवशीकृतम् ॥ ५५ ॥ हव्यकव्यविधानं मे ब्रूहि त्वं तु गुरुर्मतः ॥ एवमुक्तः स शूद्रेण सर्वमेतदुपादिशत् ॥ ५६ ॥

अब आये हुए एवं अपने स्नेहके वश भये ब्राह्मणसे वह शूद्र बोला—आप मेरे गुरु हैं, मुझको हव्य और कव्यकी विधि बताइये। शूद्रकी प्रार्थना पर उस ब्राह्मणने उस शूद्रको सब बता दिया ॥ ५६ ॥

कारयामास शूद्रस्य पितृकार्यादिकं तदा ॥ पितृकार्ये कृते तेन विसृष्टः स द्विजोत्तमः ॥ ५७ ॥

अब उस शूद्रसे पितृकार्य इत्यादिक उसने करवाये। पितृकार्यके करने पर वह ब्राह्मण उससे छोड दिये गये ॥ ५७ ॥

अथ शूद्रस्य वैदिककर्मोपदेशेन सुमत्यनुभूतदुर्गतिः

अथ दीर्घेण कालेन पोषितः शूद्रयोनिना ॥ त्यक्तो विप्रगणैः सोऽयं पञ्चत्वमगमत् द्विजः ॥५८॥ वैवस्वतभटैर्नीत्वा पातितो नरकेष्वपि ॥ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च ॥ ५९ ॥ भुक्त्वा क्रमेण नरकांस्तदन्ते स्थावरोऽभवत् ॥ गर्दभस्तु ततो जज्ञे विड्वराहस्ततः परम् ॥ ६० ॥ जज्ञेऽथ सारमेयोऽसौ पश्चाद्वायसतां गतः ॥ अथ चण्डालतां प्राप्य शूद्रयोनिमगात्ततः ॥ ६१ ॥

अब बहुत दिनसे शूद्रसे पोषण किया एवं ब्राह्मणोंसे छोड़ा हुआ वह ब्राह्मण मर गया। यमदूतोंने उसको ले जा कर नरकोंमे हजारों कोटि कल्पतक रहनेको छोड़ दिया। क्रमसे सैकड़ों कोटि कल्पतक एक एक नरकको भोग कर वह अन्तमें स्थावर, तब गदहा और उसके बाद ग्राम सूकर हुआ। अब क्रमशः कुत्ता, पीछे काक और चाण्डाल हो कर फिर शूद्र योनिमें उत्पन्न हुआ॥ ६१॥

गतवान्वैश्यतां पश्चात्क्षत्रियस्तदनन्तरम्॥ प्रबलैर्बाध्यमानोऽसौ ब्राह्मणो वै तदाऽभवत्॥ ६२॥ उपनीतः स पित्रा तु वर्षे गर्भाष्टमे द्विजः॥ वर्तमानः पितुर्गेहे स्वाचाराभ्यासतत्परः॥ ६३॥

पीछे वैश्य हुआ, इसके बाद क्षत्रिय और सब प्रबल शत्रुओंसे पीड़ित हो कर अन्तमें भी वह ब्राह्मण हुआ। तब वह ब्राह्मण गर्भसे आठवें वर्षमे पितासे उपनयन किया गया और अपने आचारमे लगा हुआ वह पिताके घरमें रहने लगा॥ ६३॥

गच्छन्कदाचिद्गहने गृहीतो ब्रह्मरक्षसा॥ रुदन् भ्रमन् स्खलन् मूढः प्रलपन् प्रहसन्नसौ॥६४॥ शश्वद्धाहेति च वदन् वैदिकं कर्म सोऽत्यजत्॥ दृष्ट्वा सुतं तथाभूतं पिता दुःखेन पीडितः॥ ६५॥ सुतमादाय च स्नेहादगस्त्यं शरणं ययौ॥ सुवर्णमुखरीतीरे तपस्यन्तं शिवाग्रतः॥ ६६॥ भक्त्या मुनिं प्रणम्यासौ पिता तस्य सुतस्य वै॥ तस्मै निवेदयामास स्वपुत्रस्य विचेष्टितम्। ६७॥

वह किसी समय वनमे जाते हुए किसी ब्रह्मराक्षससे पकड़ लिया गया और रोते, हंसते, प्रलाप करते, तथा "हा! हा!" ऐसा बोलते हुए उसने वैदिक कर्मोको छोड दिया। पुत्रको इस प्रकार हुआ देख कर पिता दुःखी हो कर स्नेहसे पुत्रको ले कर सुवर्णमुखरी नदीके तीरपर शिवके आगे तपस्या करते हुए अगस्त्यकी शरणमें गया और भक्तिसे मुनिको प्रणाम करके पिताने अपने पुत्रके सब कर्मोंको अगस्त्यजीसे कहा॥ ६७॥

अथागस्त्योक्त्या दुर्गत्यपनोदनार्थं सुमतेर्वेङ्कटाद्रिगमनम्

श्रीसूत उवाच—

अब्रवीच तदा विप्रः कुम्भजं मुनिपुङ्गवम्॥ एष मे तनयो ब्रह्मन् गृहीतो ब्रह्मरक्षसा॥ ६८। सुखं न लभते ब्रह्मन् रक्ष तं करुणादृशा॥ नास्ति मे तनयोऽप्यन्यः पितृणामृणमुक्तये॥ ६९॥ तस्य पीडाविनाशार्थमुपायं ब्रूहि कुम्भज॥ त्वत्समस्त्रिषु लोकेषु तपःशीलो न विद्यते॥७१॥

त्वां विनाऽस्य परित्राता न मे पुत्रस्य विद्यते ॥ पुत्रे दयां कुरु गुरो दया-
शीला हि साधवः ॥ ७१ ॥

तब ब्राह्मणने अगस्त्यजीसे कहा—हे ब्राह्मण ! यह मेरा पुत्र ब्रह्मराक्षसने पकड़ लिया गया है। हे ब्रह्मन ! यह सुख नहीं पाता है, आप इसको करुणाकी दृष्टिसे रक्षा कीजिये। पितृके ऋणसे मुक्तिके लिये मुझे दूसरा पुत्र नहीं है। हे अगस्त्य ! इसकी पीड़ाके नाशके लिये उपाय बताइये। आपके समान तपस्वी तीनों लोकमें नहीं है। आपके बिना मेरे इस पुत्रका बचानेवाला कोई नहीं है। हे गुरुजी ! आप पुत्रपर दया कीजिये, साधुलोग दयावान होते हैं ॥ ७१ ॥

एवमुक्तस्तदा तेन कुम्भजो ध्यानमास्थितः ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं
कालमब्रवीद् ब्राह्मणं ततः ॥७२॥

श्रीसूतजी बोले—उससे इस प्रकार कहे जाकर ध्यानमें बैठे हुए अगस्त्यजी बहुत समय तक ध्यान करके तब ब्राह्मणसे बोले ॥७२॥

अगस्त्य उवाच—

पूर्वजन्मनि ते पुत्रो ब्राह्मणोऽयं महामते ॥ सुमतिर्नाम विप्रोऽयं मतिं
शूद्राय वै ददौ ॥ ७३ ॥ कर्माणि वैदिकान्येष सर्वाण्युपदिदेश वै ॥ अतो-
ऽयं नरकान्भुक्त्वा कल्पकोटिसहस्रकम् ॥ ७४ ॥ जातो भुवि तदन्तेषु
स्थावरादिषु योनिषु ॥ इदानीं ब्राह्मणो जातः कर्मशेषेण ते सुतः ॥ ७५ ॥
यमेन प्रेषितेनात्र गृहीतो ब्रह्मरक्षसा ॥ क्रूरेण पातकेनाथ पूर्वजन्मकृतेन
वै ॥७६॥ उपायं ते प्रवक्ष्यामि ब्रह्मरक्षोविनाशने ॥ शृणुष्व श्रद्धया युक्तः
समाधाय च मानसम् ॥७७॥

अगस्त्यजी बोले—हे महामुनि ! पूर्व जन्ममें यह तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण था। इस सुमति नामके ब्राह्मणने शूद्रको विद्या दी थी। इसने सब वैदिक कर्मोंका उपदेश किया था, इसलिये यह हजारों कोटि कल्पतक नरकोंको भोग कर उसके अन्तमें पृथ्वीपर स्थावर इत्यादि योनियोंमें पैदा हुआ, कोई अच्छे कर्मोंके वश तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण हुआ है। पूर्व जन्ममें किये हुए कठिन पापके कारण यमसे भेजे हुए ब्रह्मराक्षससे यह पकड़ा गया है। ब्रह्मराक्षसका नाश करनेके लिये मैं तुमसे उपाय कहता हूं, मनको एकाग्र करके श्रद्धाके साथ सुनो ॥७७॥

सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो
वेङ्कटाचलः ॥ ७८ ॥ तस्योपरि महातीर्थं नाम्ना पापविनाशनम् ॥ अस्ति

पुण्यं प्रसिद्धं च महापातकनाशनम् ॥ ७९ ॥ भूतप्रेतपिशाचानां वेताल-
ब्रह्मरक्षसाम् ॥ महतां चैव रोगाणां तीर्थं तन्नाशकं स्मृतम् ॥८०॥ सुत-
मादाय गच्छ त्वं तत्तीर्थं गिरिमध्यगम् ॥ प्रयतः स्नापय सुतं तीर्थे पाप-
विनाशने ॥ ८१ ॥ स्नानेन त्रिदिनं तत्र ब्रह्मरक्षो विनश्यति ॥ नैवोपाया-
न्तरं तस्य विनाशे विद्यते भुवि ॥ ८२ ॥

ऋषियोंके समूहसे सेवित सुवर्णमुखरीके तीरपर देवताओंसे सेव्य पवित्र वेङ्कटाचल है। उसके ऊपर महापापको नष्ट करनेवाला, पवित्र और प्रसिद्ध पापविनाशन नामक महातीर्थ है। वह तीर्थ भूत, प्रेत, पिशाच, वेताल, ब्रह्मराक्षस और बड़े बड़े रोगोंको नष्ट करनेवाला है। पुत्रको ले कर पर्वतके मध्यमें उस तीर्थको जाओ और पापको नष्ट करनेवाले तीर्थमें पुत्रको यत्नसे स्नान कराओ। वहांपर तीन दिन स्नान करनेसे ब्रह्मराक्षस नष्ट होगा, उसके नाशका कोई दूसरा उपाय पृथ्वीपर नहीं है ॥ ८२ ॥

तस्माच्छीघ्रं प्रयाहि त्वं वेङ्कटाह्वयपर्वतम् ॥ तत्र पापविनाशाख्य-
तीर्थे स्नापय ते सुतम् ॥ ८३ ॥ मा विलम्बं कुरुष्वात्र त्वरया याहि वै
द्विज ॥ इत्युक्तः स द्विजोऽगस्त्यं प्रणम्य भुवि दण्डवत् ॥ ८४ ॥ अनुज्ञा-
तश्च तेनासौ प्रययौ वेङ्कटाचलम् ॥ सुतेन साकं विप्रोऽसौ गत्वा पापविना-
शनम् ॥ ८५ ॥ सङ्कल्पपूर्वं संस्नाप्य दिनत्रयमसौ सुतम् ॥ सस्नौ
स्वयं च विप्रेन्द्रः पिता पापविनाशने ॥ ८६ ॥

इसलिये शीघ्रही तुम वेङ्कटाचल नामक पर्वतपर जाओ, वहांपर पापनाशन नामक तीर्थमें अपने पुत्रको स्नान कराओ। हे ब्राह्मण! यहांपर विलम्ब मत करो, जल्दी जाओ। ऐसा कहा हुआ वह ब्राह्मण अगस्त्यको पृथ्वीपर दण्डवत करके उनसे बिदाई पाकर श्रीवेङ्कटाचल पर गया और पापविनाशनको जा कर संकल्पपूर्वक तीन दिन तक पुत्रको उसमें स्नान करा कर उसके पिता ब्राह्मणने स्वयं भी पापविनाशनमें स्नान किया ॥ ८६ ॥

अथ सुमतेः पापनाशनस्नानेन दुर्गत्यपनोदनम्

समागतः पपौ तोयं कृत्वा चाप्याह्निककर्मम् ॥ अथ तस्य सुत-
स्तत्र विमुक्तो ब्रह्मरक्षसा ॥ ८७ ॥ समजायत नीरोगः स्वस्थः सुन्दररूप-
धृक् ॥ सर्वसम्पत्समृद्धोऽसौ भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ८८ ॥ देहान्ते
प्रययौ मुक्तिं स्नानात्पापविनाशने ॥ पितापि तत्र स्नानेन देहान्ते मुक्ति-
मासवान् ॥ ८९ ॥

वहां उसने इस प्रकार आ कर आह्निक क्रिया करके जल पीया। अब उसका पुत्र वहांपर ब्रह्मराक्षससे छूट कर नीरोग, स्वस्थ और सुन्दर रूपवाला हुआ। उसने सब सम्पत्ति और उन्नतिसे युक्त हो कर अनेकों भोगोंको भोग कर पापविनाशनमे स्नान करनेसे अन्तमें मुक्तिको पाया। पिता भी वहांपर स्नान करनेसे देहके अन्तमें मुक्तिको प्राप्त हुआ ॥ ८९ ॥

वैदिककर्मानुष्ठातुर्दृढमतेर्दुर्गतिप्राप्त्यपनोदनम्

तेनोपदिष्टोऽयं शूद्रः स भुक्त्वा नरकान् क्रमात् ॥ अनेकास्तु जनित्वा च कुत्सितास्वपि योनिषु ॥ ९० ॥ गृध्रजन्माऽभवत्पश्चाद्वेङ्कटाचलभूधरे ॥ स कदाचिज्जलं पातुं तीर्थे पापविनाशने ॥ ९१ ॥ समायातः पपौ तोयं सिषिचे चात्मनस्तनुम् ॥ तदैव दिव्यदेहः सन्सर्वाभरणभूषितः ॥ ९२ ॥ दिव्यं विमानमारुह्य प्रययावमरालयम् ॥ ९३ ॥

उससे उपदेश किया हुआ वह शूद्र क्रमसे अनेको नरकोंको भोग कर, अनेकों योनियोंमें जन्म ले कर, पीछे वेङ्कटाचल पर्वतपर गृध्रकी योनिमे पैदा हुआ। वह किसी समय जल पीनेके लिये पापनाशन तीर्थमें आया, जल पीया और अपने शरीरको भिगो दिया उसी समय सब आभूषणोंसे भूषित दिव्य शरीरको धारण करके, दिव्य विमानपर चढ कर देवताओंके लोकमें गया ॥ ९३ ॥

श्रीसूत उवाच—

एवम्प्रभावमेतद्वै तीर्थं पापविनाशनम् ॥ पापानां नाशनाद्विप्राः पापनाशाभिधं हि तत् ॥९४॥ इदं रहस्यं कथितं मुनीन्द्रास्तद्वैभवं पापविनाशनस्य ॥ यत्राभिषेकात्सहसा विमुक्तौ द्विजश्च शूद्रश्च विनिन्द्यकृत्यौ ॥ ९५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशन-
तीर्थमहिमानुवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीसूतजी बोले—इस प्रकारका प्रभाववाला यह पापविनाशन तीर्थ है। हे ब्राह्मणो! पापोंको नष्ट करनेसे यह पापनाशन नामक है। हे मुनियो! मैंने पापविनाशनके रहस्य और वैभवको इस प्रकार कहा, जहांपर स्नान करनेसे निन्दित कर्मवाले ब्राह्मण और शूद्र मुक्त हो गये ॥ ९५ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

दशमोऽध्यायः

भद्रमती द्विज दीन गति, पाप विनाशन वृत्ति ।
रमणी प्रेरित गमन गिरि, भूमिदान फल प्राप्ति ॥१॥
उस सुघोषकी राद्रनी, भद्रमती भूदान ।
तेहि फल प्रभु दर्शन प्रगट, मोक्ष दान वरज्ञान ॥२॥

अथ पापविनाशनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीसूत उवाच—

पुनश्चाहं प्रवक्ष्यामि पापनाशयवैभवम् ॥ भगवद्भक्तिभावेन शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ १ ॥ इतिहासं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २ ॥

श्रीसूतजी बोले—फिर भी मैं पापनाशनके माहात्म्यको कहता हूं, सावधान हो कर भगवानकी भक्तिके भावसे सुनो। सब पापोंका नाश करनेवाला एक इतिहास मैं कहता हूं, जिसको सुन कर मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ २ ॥

अथ भद्रमत्याख्यदरिद्रद्विजवृत्तान्तः

आसीत्पुरा द्विजवरो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ दरिद्रो वृत्तिहीनश्च नाम्ना भद्रमतिर्द्विजः ॥ ३ ॥ श्रुतानि सर्वशास्त्राणि तेन विप्रेण धीमता ॥ श्रुतानि च पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः ॥ ४ ॥ अभवंस्तस्य षट् पत्न्यः कृता सिन्धूर्यशोवती ॥ कामिनी मालिनी चैव शोभा चैव प्रकीर्तिताः ॥५॥ तासु पत्नीषु तस्यासीत्पुत्राणां च शतद्वयम् ॥ ते सर्वे तस्य पुत्राद्याः क्षुधया परिपीडिताः ॥ ६ ॥

पूर्वमें वेद वेदाङ्गमें प्रवीण दरिद्र एवं वृत्तिहीन भद्रमति नामका एक ब्राह्मण था। उस बुद्धिमान ब्राह्मणने सब शास्त्रों, पुराणों और धर्मशास्त्रोंको अच्छी प्रकारसे सुना था। कृता, सिन्धु, यशोवती, कामिनी, मालिनी और शोभा ये छः उसकी स्त्रियां थीं। इन पत्नियोंमें उसके दो सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उसके पुत्र प्रभृति सब ही भूखसे दुःखी रहते थे ॥ ६ ॥

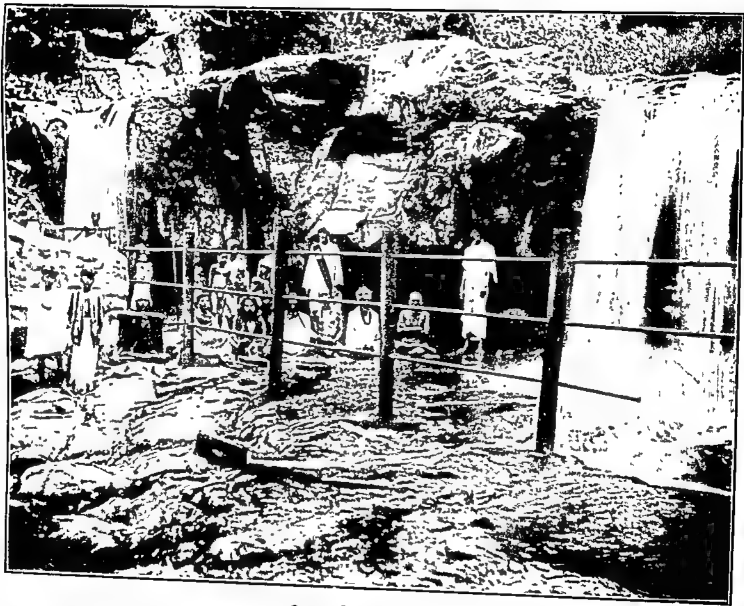
अकिञ्चनो भद्रमतिः क्षुधार्तानात्मजान्प्रियान् ॥ पश्यन्प्रियाः क्षुधार्ताश्च विललापाकुलेन्द्रियः ॥ ७ ॥ धिग्जन्म भाग्यरहितं धिग्जन्म धनवर्जितम् ॥ धिग्जन्म कीर्तिरहितं धिग्जन्मातिथ्यवर्जितम् ॥ ८ ॥ धिग्जन्माचाररहितं धिग्जन्म ज्ञानवर्जितम् ॥ धिग्जन्म यत्नरहितं धिग्जन्म सुखवर्जितम् ॥ ९ ॥ धिग्जन्म बन्धुरहितं धिग्जन्म ख्यातिवर्जितम् ॥

अपने प्रिय पुत्रों और स्त्रियोंको भूखसे दुःखी देख कर वह दरिद्र भद्रमति व्याकुल चित्तवाला हो कर विलाप करने लगा—कि भाग्य, कीर्ति, धन, अतिथिसेवा, आचार, ज्ञान, यत्न, सुख, बन्धु तथा ख्यातिसे रहित जन्मको धिक्कार है ॥ १० ॥

नरस्य बह्वपत्यस्य धिग्जन्मैश्वर्यवर्जितम् ॥१०॥ अहो गुणाः सौम्यता च विद्वत्ता जन्म सत्कुले ॥ दारिद्र्याम्बुधिमग्नस्य सर्वमेतन्न शोभते ॥११॥ विप्राः पुत्राश्च पौत्राश्च बान्धवा भ्रातरस्तथा ॥ शिष्याश्च सर्वे मनुजास्त्यजन्त्यैश्वर्यवर्जितम् ॥ १२ ॥

एवं बहुत सन्तानवाले, ऐश्वर्यसे रहित मनुष्योंको भी धिक्कार है। अहो ! गुण, सौन्दर्य, विद्वत्ता तथा अच्छे कुलमें जन्म ये सब दरिद्रताके समुद्रमें डूबे हुएको शोभा नहीं देते। हे ब्राह्मणो ! पुत्र, पौत्र, बंधु, भाई, शिष्य आदि सभी मनुष्य धनसे रहितको छोड़ देते हैं ॥ १२ ॥

इति निश्चित्य मतिमान्धीरो भद्रमतिर्द्विजः ॥ चण्डालो वा द्विजो वापि भाग्यवानेव पूज्यते ॥ १३ ॥ दरिद्रः पुरुषो लोके शववल्लोकनिन्दितः ॥ अहो सम्पत्समायुक्तो निष्ठुरो वाप्यनिष्ठुरः ॥ १४ ॥ गुणहीनोऽपि गुणवान्मूर्खो वापि स पण्डितः ॥ निष्ठुरो वा गुणो वापि धर्महीनोऽथ वा नरः ॥ १५ ॥ ऐश्वर्यगुणयुक्तश्चेत्पूज्य एव न संशयः ॥ अहो दरिद्रता दुःखं तत्राप्याशातिदुःखदा ॥ १६ ॥ आशाभिभूताः पुरुषा दुःखमश्नुवते क्षणात् ॥ १७ ॥ आशाया दासा ये दासास्ते सर्वलोकस्य ॥ आशा दासी



पापविनाशतीर्थम् (पृष्ठ ४३६)

येषां तेषां दासायते लोकः ॥ १८ ॥ सर्वशास्त्रार्थवेत्तापि दरिद्रो भाति मूर्खवत् ॥ आकिञ्चन्यमहाग्राहग्रस्तानां नास्ति मोचकः ॥ १९ ॥ अहो दुःखमहो दुःखमहो दुःखं दरिद्रता ॥ तत्रापि पुत्रदाराणां बाहुल्यमतिदुःखदम् ॥२०॥ एवमुक्त्वा भद्रमतिः सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा ॥२१॥ तूष्णीं स्थितो भद्रमतिर्महाक्लेशसमन्वितः ॥

ऐसा विलाप करके वह धीर और बुद्धिमान ब्राह्मण भद्रमति बोला—चाण्डाल हो अथवा ब्राह्मण हो, भाग्यवान ही पूजा जाता है। दरिद्र मनुष्य संसारमें मुर्देके जैसा लोगके निन्दित होता है। अहो! ऐश्वर्यसे सम्पन्न पुरुष निष्ठुर भी दयावान, गुणसे हीन भी गुणी एवं मूर्ख भी पण्डित कहा जाता है। निष्ठुर,अगुणी अथवा धर्महीन मनुष्य भी ऐश्वर्यरूप गुणसे युक्त होने पर पूजा जाता है, इसमें संशय नहीं है। अहो! दरिद्रता दुःख ही है और आशा तो उससे भी बढ़कर अति दुःख देनेवाली है। आशासे घिरे हुए पुरुष प्रतिक्षण दुःख पाते हैं। जो आशाके दास हैं, वे सारे संसारके दास होते हैं, आशा जिनकी दासी है, संसार ही उनका दास होता है। सब शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाला भी दरिद्र मनुष्य मूर्ख हीके ऐसा मालूम पड़ता है। दरिद्रतारूपी ग्राहसे पकड़े हुएको छुड़ानेवाला कोई नहीं है। अहो! दरिद्रता दुःख है! दुःख है!! दुःख है!!! इतना ही नहीं, पुत्र और स्त्रियोंका अधिक संख्यामें होना अत्यन्त अधिक दुःख देनेवाला है। ऐसा कह कर सब शास्त्रोंके अर्थको जाननेवाले भद्रमति अपने मनमें अत्यन्त ऐश्वर्यको देनेवाले धर्मको चिन्ता करता हुआ अत्यन्त दुःखसे युक्त हो चुपचाप बैठ गया।

अथ भद्रमतेः कामिनीकृतवेङ्कटाद्रिगमनप्रोत्साहनम्

तदानीं तासु भार्यासु कामिनी पतिदेवता ॥ २२ ॥ भार्या साधुगुणैर्युक्ता पतिं तं प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥

तब उसकी स्त्रियोंमें कामिनी नामकी सब उत्तम गुणसे युक्त पतिव्रता स्त्री अपने पतिसे बोली ॥ २३ ॥

कामिन्युवाच—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ मम नाथ महाभाग वाक्यं शृणु महामते ॥ २४ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ वर्तते दैवतैः सेव्यः पावनो वेङ्कटाचलः ॥ २५ ॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते ॥ वर्तते पावनं तीर्थं पापानां दाहकं शुभम् ॥ २६ ॥ तत्र गत्वा महाभाग पापनाशे महामते ॥ कुरु स्नानं प्रयत्नेन भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ २७ ॥

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं नारदेन श्रुतं मया ॥ बालभावे मम पितुरन्तिके प्रोक्तवान्मुनिः ॥२८॥

कामिनी बोली—हे भगवन् ! सब धर्मोंके जाननेवाले ! सब शास्त्रोंमें पारङ्गत ! महाभाग ! मेरे स्वामी ! मेरी बातको सुनिये। ऋषियोंके समूहसे सेवित सुवर्णमुखरीके तीरपर देवताओंसे सेव्य पवित्र वेङ्कटाचल है। देवताओं एवं राक्षसोंसे सेवित उस वेङ्कट पर्वत पर पापनाशन नाम एक पवित्र तीर्थ है। हे महाभाग ! स्त्री और पुत्रोंके साथ प्रयत्नसे वहां जा कर स्नान करो। इस तीर्थका माहात्म्य मैंने नारदसे सुना था। मुनिने मेरे बचपनमें मेरे पिताके पास कहा था ॥ २८ ॥

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ सर्वदुःखप्रशमने सर्वसम्पत्प्रदायके ॥ २९ ॥ पापनाशे महातीर्थे स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम् ॥ अत्यैश्वर्यप्रदं धर्मं मनसा चिन्तयंस्तदा ॥ ३० ॥ भूनिदानं विनिश्चित्य सर्वदानोत्तमोत्तमम् ॥ प्रापकं परलोकस्य सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३१ ॥ दानानामुत्तमं दानं भूदानं परिकीर्तितम् ॥ तद्दत्त्वा समवाप्नोति यद्यदिष्टतमं नरः ॥ ३२ ॥ इत्येवं नारदेनोक्तं श्रुत्वा मे जनको द्विजः ॥ सम्प्रहृष्टमना भूत्वा शेषाद्रिं प्राप्तवांस्तदा ॥ ३३ ॥

हे ब्राह्मण ! महापुण्यप्रद, सब पापोंको नष्ट करने वाले, सब दुःखोंका शमनकारी एवं सब सम्पत्तियोंको देने वाले, वेङ्कटाचल पर महातीर्थ पापनाशनमें संकल्पके साथ स्नान कर सब दानोंमें उत्तम भूमिदानको ही सब कामोंको पूरित करने, स्वर्ग और परम ऐश्वर्य देनेवाला धर्म समझ कर वह भूमिदानको देनेवाला मनुष्य अपने सब मनोरथोंको पाता है, क्योंकि भूमिदान सब दानोंमें उत्तम ही कहा गया है। इस प्रकार नारदके द्वारा कहे हुए माहात्म्यको सुन कर मेरे पिता आनन्द युक्त मन हो कर शेषाचलको आये ॥ ३३ ॥

तत्र गत्वा महाभागः सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ भूदानं विप्रवर्याय श्रोत्रियाय प्रदत्तवान् ॥ ३४ ॥ ततो मे जनको विप्रन्सर्वभाग्यसमन्वितः ॥ इह लोके सुखं प्राप्य चान्ते विष्णुपुरं ययौ ॥३५॥ त्वं च गत्वा महाभाग वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम् ॥ कुरु दानं प्रयत्नेन भूदानं सर्वकामदम् ॥ ३६ ॥

वहां पर जाकर उन महाभागने सब सम्पत्तियो देनेवाला भूमिदान श्रेष्ठ ब्राह्मण श्रोत्रियोंको दिया। हे विद्वान ! तब मेरे पिताजी, सब भाग्यसे युक्त हो कर इस लोकमें सुख पा, अन्तमें विष्णु लोकको गये। हे महाभाग ! आप भी इस उत्तम पर्वत वेङ्कटाचल पर जा कर सब मनोरथोंको देनेवाला भूमिदान कर दें ॥ ३६ ॥

अथ कामिनीकथितभूदानप्रशंसा

भूमिदानस्य माहात्म्यं शृणुष्व सुसमाहितः ॥ न कोऽपि गदितुं शक्तो लोकेऽस्मिन् भगवन्प्रभो॥३७॥ भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ परं निर्वाणमाप्नोति भूमिदो नात्र संशयः ॥ ३८ ॥ स्वल्पामपि महीं दत्त्वा श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३९ ॥ भूमिदः सर्वदः प्रोक्तो भूमिदो मोक्षभाग्भवेत् ॥ भूमिदानं वृषाद्रौ च सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४० ॥ महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ दशहस्तां महीं दत्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥

भूमिदानके माहात्म्यको सावधान हो कर सुनिये। हे भगवन्! प्रभो! इस लोकमें उस माहात्म्यको कोई भी नहीं कह सकता है। भूमिदानसे बढ़ कर दूसरा दान न हुआ, और न होगा। भूमिके दान करनेवाले उत्तम निर्वाणको प्राप्त करते हैं। थोड़ी भी पृथ्वी, आहिताग्नि श्रोत्रियको दे कर मनुष्य पुनर्जन्मसे रहित होकर ब्रह्मलोकको जाता है। भूमिका दान करनेवाला सब कुछ देनेवाला समझा जाता है। भूमिदान करनेवाला मोक्षका भागी होता है। वृषभाचलपर भूमिका दान करना सब पापोंका नाश करने वाला है। महापातक अथवा सब पातकोंसे युक्त भी दश हाथ पृथ्वी दे कर सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४१ ॥

सत्पात्रे भूमिदाता यः सर्वदानफलं लभेत् ॥ भूमिदस्य समो नान्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ॥ ४२ ॥ द्विजस्य वृत्तिहीनस्य यः प्रदद्यान्महीं शुभाम् ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं शेषो नार्हः कदाचन ॥ ४३ ॥ विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचारस्य कस्य चित् ॥ योऽल्पामपि महीं दद्यात्स विष्णुर्नात्र संशयः ॥ ४४ ॥

जो सत्पात्रोंमें भूमिदान करनेवाला है, वह सब दानके फलको पाता है। भूमिदान करनेवालेके समान त्रिलोकमें भी कोई नहीं है। वृत्तिहीन (जीविकाहीन) ब्राह्मणोंको जो अच्छी पृथ्वी देता है, उसके पुण्य फलको कहनेमें शेष भी समर्थ नहीं है। जीविकाहीन कोई भी सदाचारी ब्राह्मणको जो कोई थोड़ी भी भूमि देता है, वह विष्णु ही है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४४ ॥

इक्षुगोधूमकेदारपूगवृक्षादिसंयुता ॥ पृथ्वी प्रदीयते येन स विष्णुर्नात्र संशयः ॥ ४५ ॥ वृत्तहीनस्य विप्रस्य दरिद्रस्य कुटुम्बिनः ॥ स्वल्पामपि महीं दत्त्वा विष्णुसायुज्यमश्नुते ॥ ४६ ॥ सक्तस्य देवपूजासु विप्र-

स्यादविका महो ॥ दत्ता भवति गङ्गायां त्रिरात्रस्नानजं फलम् ॥ ४७ ॥
विप्रस्य वृत्तिहीनस्य सदाचाररतस्य च ॥ द्रोणिकां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलं
लभते शृणु ॥ ४८ ॥

ईख, गेहूं, केदार (खेत) पूगवृक्ष (सुपारी) इत्यादिसे संयुक्त पृथ्वी जो देता है, वह विष्णु ही है, इसमें संशय नहीं है। वृत्तिहीन, दरिद्र एवं कुटुम्बवाले ब्राह्मणको थोड़ी भी पृथ्वी दे कर विष्णुके सायुज्यको भोगता है। देवताके पूजनमें लगे हुए ब्राह्मणको वनादियुक्त पृथ्वी दे कर मनुष्यको तीन रात्रि गङ्गा स्नानका फल होता है। वृत्तिहीन ब्राह्मण सदाचारीको एक सेरमात्र धान्य देनेवाली पृथ्वी दे कर मनुष्य जो फल पाता है, सो सुनो ॥ ४८ ॥

गङ्गातीरेऽश्वमेधानां शतानि विधिवन्नरः ॥ कृत्वा यत्फलमाप्नोति
तदाप्नोति महत्फलम् ॥४९॥ ददाति भारिकां भूमिं दरिद्राय द्विजातये ॥
तस्य पुण्यं प्रवक्ष्यामि मन्नाथ भगवन्प्रभो ॥ ५० ॥ अश्वमेधसहस्राणि
वाजपेयशतानि च ॥ विधाय जाह्नवीतीरे यत्फलं तल्लभेत सः ॥ ५१ ॥

गङ्गाके तीरपर विधिपूर्वक सौ अश्वमेध करनेसे जो फल प्राप्त होता है उसको वही फल मिलता है। हे मेरे स्वामी! भगवन्! प्रभो! दरिद्र ब्राह्मणको जो भारयुक्त भूमि दान करता है मैं उसके पुण्यके फलको कहती हूं। गङ्गाके तीरपर हजार अश्वमेध, एवं सौ वाजपेय यज्ञ करके जो फल मिलता है वही फल उसे मिलता है ॥ ५१ ॥

भूमिदानं महादानमतिदानं प्रकीर्तितम् ॥ सर्वपापप्रशमनमपवर्गफ-
लप्रदम् ॥ ५२ ॥ यच्छ्रुत्वा श्रद्धया युक्तो भूमिदानफलं लभेत् ॥ भार्याया
वचनं श्रुत्वा त्वितिहाससमन्वितम् ॥५३॥ सन्तुष्टो मनसि ध्यात्वा शेषा-
चलनिवासिनम् ॥५४॥ गन्तुं प्रचक्रमे बुद्ध्या क्रीडाचलमनुत्तमम् ॥

भूमिका दान, महादान, अतिदान, सब पापोंको छुड़ानेवाला एवं अपवर्गके फलको देनेवाला कहा गया है श्रद्धापूर्वक जिसको सुन कर मनुष्य भूमिदानके फलको पाता है। इतिहाससे युक्त भार्याके वचनको सुन कर सन्तुष्ट मनसे शेषाचल निवासी भगवानका ध्यान कर वह उत्तम क्रीड़ाचल पर जाने का उद्योग करने लगा ॥ ५५ ॥

अथ भद्रमतये भूदानात्सुघोषस्य सद्गतिः

ततो भद्रमतिः सौम्यः सर्वधर्मपरायणः ॥ ५५ ॥ सुशालिं नाम
नगरीं कलत्रसहितो ययौ ॥ सुघोषं नाम विप्रेन्द्रं सर्वैश्वर्यसमन्वि-
तम् ॥ ५६ ॥ गत्वा याचितवान्भूमिं पञ्चहस्तायतां द्विजः ॥ सुघोषो

धर्मनिरतस्तं निरीक्ष्य कुटुम्बिनम् ॥५७॥ मनसा प्रीतिमापन्नं समभ्यर्च्यै-
नमब्रवीत् ॥ कृतार्थोऽहं भद्रमते सफलं मम जन्म च ॥ ५८ ॥ मत्कुलं
चानघं जातं त्वं हि प्राप्तोऽसि मे यतः ॥ इत्युक्त्वा तं समभ्यर्च्य सुघोषो
धर्मतत्परः ॥ ५९ ॥ पञ्चहस्तप्रमाणां तां ददौ तस्मै महामतिः ॥

तब सब धर्मोंमें लगा हुआ, सुन्दर, भद्रमति अपनी स्त्रियोंके साथ सुशालि नामक नगरमें गया और सब ऐश्वर्यसे युक्त सुघोष नामक श्रेष्ठ ब्राह्मणके पास जा कर उस ब्राह्मणसे पांच हाथ भूमि उसने मांगी। उस कुटुम्बवाले ब्राह्मणको देख कर, धर्ममें लगा हुआ वह सुघोष सन्तुष्टचित्त हो उस भद्रमतिसे सत्कारपूर्वक बोला—हे भद्रमति ! मैं कृतार्थ हूं, मेरा जन्म सफल है। मेरा कुल निष्पाप हो गया क्योंकि आप मेरे यहां अतिथि प्राप्त हुए हैं। ऐसा कह कर धर्ममें लगे हुए उस महामति सुघोषने उसकी पूजा करके उसको पांच हाथ पृथ्वी दी ॥ ६० ॥

"पृथिवी वैष्णवी पुण्या पृथिवी विष्णुपालिता ॥ ६० ॥ पृथिव्यास्तु
प्रदानेन प्रीयतां मे जनार्दनः ॥" मन्त्रेणानेन विप्रेन्द्राः सुघोषस्तं द्विजेश्वर-
म् ॥ ६१ ॥ विष्णुबुद्ध्या समभ्यर्च्य तावतीं पृथिवीं ददौ ॥ स भद्रमतये
विप्रा धीमांस्तां याचितां भुवम् ॥ ६२ ॥ दत्तवान् हरिभक्ताय श्रोत्रियाय
कुटुम्बिने ॥ सुघोषो भूमिदानेन कोटिवंशसमन्वितः ॥६३॥ प्रपेदे विष्णु-
भवनं यत्र गत्वा न शोचति ॥

पृथ्वी विष्णुमय है एवं पवित्र है, पृथ्वी विष्णुसे पालन की हुई है, पृथ्वीके दानसे भगवान मुझसे प्रसन्न हों, हे विप्रेन्द्रो ! इसी मन्त्रसे सुघोषने उस ब्राह्मणको विष्णुकी बुद्धिसे पूजन कर उतनी ही पृथ्वी दी। उस बुद्धिमानने मांगी हुई पृथ्वी हरिभक्त श्रोत्रिय, एवं कुटुम्बी ब्राह्मण, भद्रमतिको दी। सुघोष भी भूमिदान करनेसे कोटिवंशके साथ वैकुण्ठको पहुंचा, जहां जा कर शोक दुःख नहीं होता है।

अथ भद्रमतेः पापनाशनतीरे भूदानार्थं वेङ्कटाद्रिगमनम्

विप्रो भद्रमतिश्चापि पुत्रदारसमन्वितः ॥ ६४ ॥ गतो वेङ्कटशैलेन्द्रं
सुरासुरनमस्कृतम् ॥ गन्धर्वयक्षशैलादिसेवितं मेरुपुत्रकम् ॥ ६५ ॥ वैकु-
ण्ठादागतं दिव्यं क्रीडाचलमनुत्तमम् ॥

वह ब्राह्मण भद्रमति भी अपने पुत्र और स्त्रीके साथ देवताओं और राक्षसोंसे नमस्कृत, गन्धर्व, यक्ष, शैल इत्यादिसे सेवित, मेरुके पुत्र, वैकुण्ठसे आये हुए दिव्य एवं उत्तम क्रीडाचल श्री वेङ्कटाचलको गया ॥ ६६ ॥

तत्र स्वामिसरस्तोये निर्मले पावने शुभे ॥ ६६ ॥ दारपुत्रादिसंयुक्तः
स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वकम् ॥ तत्पश्चिमतटे श्वेतसूकरं वसुधाधरम् ॥ ६७ ॥
नत्वा तत्र विधानेन श्रीनिवासालयं गतः ॥

वहांपर वह ब्राह्मण स्वामिपुष्करिणीके निर्मल और शुभ पवित्र जलमें स्त्री पुत्रादिके साथ सङ्कल्प, तथा विधिपूर्वक स्नान कर उसके पश्चिम तटपर पृथ्वीको धारण करनेवाले श्रीश्वेतवराहको प्रणाम करके श्रीनिवासके मन्दिरको गया ॥ ६८ ॥

तत्र ब्रह्मादिदेवैश्च सेवितं वेङ्कटेश्वरम् ॥ ६८ ॥ दृष्टवान् सहपुत्राद्यै-
र्विष्णुभक्तो महामतिः ॥ भक्त्या प्रणम्य देवेशं श्रीनिवासं कृपानिधि-
म् ॥ ६९ ॥ पुत्रदारादिसंयुक्तः पापनाशनमाययौ ॥ तत्र स्नात्वा विधानेन
कृतधर्मादिसत्क्रियः ॥ ७० ॥ कस्मै चिद्विष्णुभक्ताय श्रोत्रियाय महाम-
तिः ॥ ७१ ॥ विष्णुबुद्ध्या स प्रददौ भूदानं मोक्षदं शुभम् ॥

वहां पर ब्रह्मादि देवताओंसे सेवित श्रीवेङ्कटेश्वरको पुत्र इत्यादिकोंके साथ उस महा बुद्धिमान विष्णुके भक्तने देखा और भक्तिसे कृपालु श्रीवेंकटेशको प्रणाम करके पुत्र स्त्री आदिकोंके साथ पापनाशनको आया। वहांपर विधिसे स्नान करके नित्य कर्मादि सत्क्रियाओंको कर उस बुद्धिमानने किसी विष्णुभक्त श्रोत्रियको विष्णुबुद्धिसे मोक्षको देनेवाला शुभ भूमिदान दिया ॥

अथ भूदानप्रभावेण भद्रमतेः भगवत्साक्षात्कारः

तदा प्रादुरभूद्देवः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७२ ॥ विनतानन्दनारूढो वन-
मालाविभूषितः ॥ पापनाशस्य तीरे तु भूदानस्य प्रभावतः ॥७३॥ तदा भ-
द्रमतिः सौम्यः स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ७४ ॥

तब शङ्ख, चक्र और गदाको धारण किये हुए, गरुड़के कन्धेपर चढ़े हुए तथा वनमालासे शोभित देव, पापनाशनके तीरपर भूदानके प्रभावसे प्रकट हुए। तब वह सौम्य भद्रमति स्तुति करने लगा ॥ ७४ ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमो नमस्तेऽखिलपालकाय ॥ नमो नम-
स्तेऽमरनायकाय नमो नमो दैत्यविमर्दनाय ॥७५॥ नमो नमो भक्तजनप्रि-
याय नमो नमः पापविदारणाय ॥ नमो नमो दुर्जननाशकाय नमोऽस्तु तस्मै
जगदीश्वराय ॥ ७६॥ नमो नमः कारणवामनाय नारायणायामितविक्रमा-
य ॥ श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥ ७७ ॥

सर्व कारण स्वरूप आपको प्रणाम है, सबको पालन करनेवाले आपको प्रणाम है, देवताओंके नेतास्वरूप आपको प्रणाम है, दैत्योंके नाश करनेवाले आपको प्रणाम है, भक्तजनोंके प्यारे आपको प्रणाम है। पापके नाश करनेवाले को प्रणाम है, दुष्टोंके नाश करने वालेको प्रणाम है, उस जगदीश्वरको प्रणाम है, अमित पराक्रमवाले कारणस्वरूप वामन नारायणको प्रणाम है, श्रीशङ्ख, चक्र, खड्ग और गदा धारण करनेवाले उन पुरुषोत्तमको प्रणाम है ॥ ७७ ॥

नमः पयोराशिनिवासकाय नमोऽस्तु लक्ष्मीपतयेऽव्ययाय ॥ नमोऽस्तु सूर्याद्यमितप्रभाय नमो नमः पुण्यगतागताय ॥ ७८ ॥ नमो नमोऽर्केन्दुविलोचनाय नमोऽस्तु ते यज्ञफलप्रदाय ॥ नमोऽस्तु यज्ञाङ्गविराजिताय नमोऽस्तु ते सज्जनवल्लभाय ॥ ७९ ॥ नमो नमः कारणकारणाय नमोऽस्तु शब्दादिविवर्जिताय ॥ नमोऽस्तु तेऽभीष्टसुखप्रदाय नमो नमो भक्तमनोरमाय ॥ ८० ॥

क्षीरसागरमें रहनेवालेको प्रणाम है, लक्ष्मीके पति अविनाशी भगवानको प्रणाम है, सूर्यसे भी अमित प्रभा(चमक) वालेको प्रणाम है, पुण्यकी उत्पत्ति और लयस्थानको प्रणाम है। सूर्य और चन्द्रमारूप नेत्रवालेको प्रणाम है, यज्ञके फलको देनेवालेको प्रणाम है, यज्ञके अङ्गोंसे शोभितको प्रणाम है, सज्जनोंके प्रिय आपको प्रणाम है, कारणोंके भी कारणको प्रणाम है, शब्दादि गुणोंसे रहितको प्रणाम है, अभीष्ट सुखको देनेवाले आपको प्रणाम है, भक्तोंके मनमें रमण करनेवालेको प्रणाम है ॥८०॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय नमोऽस्तु ते मन्दरधारकाय ॥ नमोऽस्तु ते यज्ञवराहनाम्ने नमो हिरण्याक्षविदारकाय ॥८१॥ नमोऽस्तु ते वामनरूपभाजे नमोऽस्तु ते क्षत्रकुलान्तकाय ॥ नमोऽस्तु ते रावणमर्दनाय नमोऽस्तु ते नन्दसुताग्रजाय ॥ ८२ ॥ नमस्ते कमलाकान्त नमस्ते सुखदायिने ॥ श्रितार्तिनाशिने तुभ्यं भूयो भूयो नमो नमः ॥ ८३ ॥

सब कारणस्वरूप आपको प्रणाम है, मन्दर पर्वतको धारण करनेवाले आप (कच्छप) को प्रणाम है, यज्ञ वाराह नामक आपको प्रणाम है, हिरण्याक्षको विदारण करनेवाले आपको प्रणाम है, वामनरूप आपको प्रणाम है, क्षत्रियोंके कुलको नाश करनेवाले आप (परशुराम) को प्रणाम है, रावणको मारनेवाले आपको प्रणाम है, नन्दके बड़े पुत्र आपको प्रणाम है, हे लक्ष्मीपति आपको प्रणाम है, सुख देनेवाले आपको प्रणाम है, शरणमें आये हुएके दुःखोंका नाश करनेवाले आपको प्रणाम है और बार बार प्रणाम है ॥८३॥

विप्रेण संस्तुतो देवो भगवान्भक्तवत्सलः ॥ वात्सल्येनाब्रवीद्वाक्यं

श्रीनिवासो दयानिधिः ॥ ८४ ॥ तात तुष्टोऽस्मि भद्रं ते स्तोत्रेण महतो द्विज ॥ सर्वभोगसमायुक्तः पुत्रपौत्रादिभिर्युतः ॥ ८५ ॥ इह लोके सुखं प्राप्य देहान्ते मुक्तिमाप्नुहि ॥ इत्युक्त्वा भगवान्विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ८६ ॥ एवं वः कथितं विप्राः पापनाशनवैभवम् ॥ तत्तीरे भूप्रदानस्य माहात्म्यं चापि वर्णितम् ॥ ८७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये पापविनाशनतीर्थे भूदानफलानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

ब्राह्मणसे स्तुति किये हुऐ भक्तवत्सल, भगवान तथा दयाके समुद्र श्री निवास वात्सल्यसे यह वचन बोले—हे वत्स ब्राह्मण ! तुम्हारा कुशल हो, मैं तुम्हारे इस स्तोत्रसे प्रसन्न हूं, सब भोगों तथा पुत्र पौत्रादिकोंसे युक्त हो इस लोकमें सुख भोग कर शरीरान्तके बाद मुक्तिको प्राप्त हो जाओ, ऐसा कह कर विष्णु भगवान् वहींपर अन्तर्धान हो गये । हे ब्राह्मणो ! इस प्रकारसे पापनाशनके माहात्म्यको आप लोगोंसे मैंने कहा और उसके तीरपर भूमिदान करनेका माहात्म्य भी कहा ॥ ८७ ॥

॥ इति दशमोऽध्यायः ॥

एकादशोऽध्यायः



नभ गङ्गा माहात्म्य अरु, रामानुज द्विज यज्ञ ।
द्विज तप उग्र परतापसे, प्रकट भये सर्वज्ञ ॥१॥
रामानुज कृत विनय बहु, प्रभु कथित माहात्म ।
पुनि वैकुण्ट स्वामि कथन, लक्षण प्रभु भक्तात्म ॥२॥



श्रीआकाशगङ्गातीर्थम् (पृष्ठ ४८५)

अथ रामनुजाख्यद्विजवृत्तान्तः

श्रीसूत उवाच—

भो भोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ आकाशगङ्गातीर्थस्य
माहात्म्यं प्रवदाम्यहम् ॥ १ ॥ आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥
रामानुज इति ख्यातो विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥ २ ॥ तपश्चकार धर्मात्मा
वैखानसमते स्थितः ॥ ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो विष्णुध्यानपरायणः ॥ ३ ॥
जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन् हृदि जनार्दनम् ॥ वर्षास्वाकाशगो नित्यं हेम-
न्तेषु जलेशयः ॥ ४ ॥ सर्वभूतहितो दान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ वर्षाणि
कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥ ५ ॥ कञ्चित्कालं जलाहारो वायु-
भक्षः कियत्समाः ॥ ६ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे नैमिषारण्यके रहनेवाले सब तपस्विगण ! मैं आकाशगङ्गा तीर्थके माहात्म्यको कहता हूं। सब शास्त्रके अर्थोंके जाननेवाला, विष्णुभक्त एवं जितेन्द्रिय रामानुज नामसे प्रसिद्ध वैखानस मतमें ठहरा हुआ धर्मात्मा ब्राह्मण, आकाशगङ्गाके निकटमें तपस्या करने लगा। विष्णुके ध्यानमें परायण, हृदयमें जनार्दनका ध्यान एवं अष्टाक्षर मन्त्रका जप करता हुआ, ग्रीष्मकालमें पञ्चाग्निमें बैठा, वर्षाकालमें बाहर शून्यस्थानमें रह कर, हेमन्तकालमें जलमें शयन करनेवाला, सब जीवोंका हितैषी, उदार एवं सब द्वन्द्वोंसे रहित वह कई वर्षतक केवल सूखे पत्तोंको खाता हुआ रहा और कुछ समयतक जलका आहार और कुछ कालतक वायुको भोजन करता रहा ॥ ६ ॥

अथाकाशगङ्गातीरे रामानुजतपस्तुष्टभगवदाविर्भावः

अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान् भक्तवत्सलः ॥ प्रत्यक्षतामगात्तस्य
शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ७ ॥ विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥ विनता-
नन्दनारूढश्छत्रचामरशोभितः ॥ ८ ॥ हारकेयूरमुकुटः कटकादिविभूषि-
तः ॥ विष्वक्सेनसुनन्दादिकिङ्करैः परिवारितः ॥ ९ ॥ वीणावेणुमृदङ्गादि-
वादकैर्नारदादिभिः ॥ गीयमानः सुविभवः पीताम्बरविराजितः ॥ १० ॥
लक्ष्मीविराजितोरस्को नीलमेघनिभच्छविः ॥ सनकादिमहायोगिसेवितः
पार्श्वयोर्द्वयोः ॥ ११ ॥ मन्दस्मितेन सकलं मोहयन्भुवनत्रयम् ॥ स्वभासा
भासयन् सर्वा दिशो दश विराजयन् ॥ १२ ॥ सुभक्तसुलभो देवो वेङ्क-

टेशो दयानिधिः ॥ पुनः सन्निदधे तस्य रामानुजमहामुनेः ॥ १३ ॥

अब उसकी तपस्यासे सन्तुष्ट हो कर भक्तवत्सल शङ्ख, चक्र एवं गदाको धारण किये, खिले हुए कमलके ऐसे नेत्रवाले, करोड़ों सूर्यके समान चमकवाले, गरुड़पर सवार, छत्र और चमरसे सुशोभित, हार, केयूर, मुकुट, कटक, इत्यादिसे शोभित, विष्वक्सेन, सुनन्द इत्यादि सेवकोंसे सेवित, वीणा, वेणु, मृदङ्ग इत्यादि बाजाओंके साथ नारद इत्यादिसे गाये जाते हुए, विभववाले, पीताम्बरसे शोभित, लक्ष्मीसे शोभित अङ्क (गोद) एवं नीलमेघके समान शोभावाले, दोनों पार्श्वमें सनकादि महायोगियोंसे शोभित, मन्द हास्यसे सम्पूर्ण त्रिभुवनको मोहित करते हुए, अपनी चमकसे दशों दिशाओंको प्रकाशित करते एवं शोभते हुए तथा अच्छे भक्तोंके सुलभ, दयालु भगवान् श्रीवेङ्कटेश प्रत्यक्ष हुए और पुनः उस महामुनि रामानुजके पास आये ॥ १३ ॥

आविर्भूतं तदा दृष्ट्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ पीताम्बरधरं देवं तुष्टिं प्राप महामुनिः ॥ १४ ॥ भक्त्या परमया युक्तस्तुष्टाव जगदीश्वरम् ॥ १५ ॥

तब कृपाके समुद्र तथा पीताम्बर धारण किये हुए देव श्रीनिवासको प्रकट देख कर वे महामुनि सन्तुष्ट हुए और परम भक्तिसे युक्त हो कर जगदीशकी स्तुति करने लगे ॥ १५ ॥

अथ रामानुजाख्यविप्रकृतभगवत्स्तुतिः

रामानुज उवाच—

नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते ॥ नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः ॥ १६ ॥ नमो भक्तार्तिहन्त्रे ते हव्यकव्यस्वरूपिणे ॥ नमस्त्रिमूर्तये तुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे ॥ १७ ॥ नमः परेशाय नमोऽतिभूम्ने नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये विधात्रे ॥ नमोऽस्तु सूर्येन्दुविलोचनाय नमो विरिञ्चाद्यभिवन्दिताय ॥ १८ ॥

रामानुज बोले—शङ्ख, चक्र गदाको धारण किये हुए, देवताओंके भी देवता आपको प्रणाम है। नित्य और शुद्ध आपको प्रणाम है, वेङ्कटेश आपको प्रणाम है। हव्य और कव्यस्वरूप एवं भक्तोंके दुःखोंको नाश करनेवाले आपको प्रणाम है। सृष्टि, स्थिति और नाश करनेवाले त्रिमूर्ति स्वरूप आपको प्रणाम है, परमेश्वर आपको प्रणाम है, सर्वव्यापक आपको प्रणाम है, लक्ष्मीके पति एवं विधाता आपको प्रणाम है. सूर्य और चन्द्रमारूप नेत्रवाले आपको प्रणाम है, ब्रह्मा इत्यादिसे वन्दित आपको प्रणाम है ॥१८॥

यो नामजात्यादिविकल्पहीनः समस्तदोषैरपि वर्जितो यः ॥ समस्तसंसारभयापहारिणे तस्मै नमो दैत्यविनाशकाय ॥ १९ ॥ वेदान्तवेद्याय

रमेश्वराय वृषाद्रिवासाय विधातृपित्रे ॥ नमो नमः सर्वजनार्तिहारिणे नारायणायामितविक्रमाय ॥२०॥ नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ॥ भूयोभूयो नमस्तुभ्यं वेङ्कटाद्रिनिवासिने ॥ २१ ॥

जो नाम, जाति आदि विकल्पसे हीन तथा समस्त दोषोंसे भी रहित हैं, समस्त संसारके भयको छुड़ानेवाले एवं दैत्योंके नाश करनेवाले हैं ऐसे आपको प्रणाम है। वेदान्तसे जानने योग्य, लक्ष्मीके पति, वृषभाचलके निवासी, ब्रह्माके पिता, सब मनुष्योंके दुःखको हरनेवाले तथा अमित विक्रमवाले आप नारायणको प्रणाम है। शार्ङ्गधारी वासुदेव भगवान् आपको प्रणाम है, वेङ्कटाचलपर रहनेवाले आपको बार बार प्रणाम है ॥२१॥

इति स्तुत्वा वेङ्कटेशं श्रीनिवासं जगद्गुरुम् ॥ रामानुजो मुनिस्तूष्णीमास्ते विप्रवरोत्तमः ॥ २२ ॥ श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां हरिस्तस्य महात्मनः ॥ अवाप परमं तोषं वेङ्कटाचलनायकः ॥ २३ ॥ अथालिङ्गय मुनिं शौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ॥ बभाषे प्रीतिसंयुक्तो वरं वै व्रियतामिति ॥२४॥ तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्य स्तोत्रेणापि महामुने ॥ नमस्कारेण च प्रीतो वरदोऽहं तवागतः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीनिवास जगद्गुरु श्री वेङ्कटेशकी स्तुति करके वे श्रेष्ठ ब्राह्मण रामानुज मुनि चुप हो गये। श्रवणको सुख देनेवाली उनकी स्तुतिको सुन कर श्रीवेङ्कटेश हरि परम सन्तुष्ट हुए। पुनः मुनिको अपने चारों भुजाओंसे आलिङ्गन करके भगवान् प्रीतिके साथ वचन बोले कि—हे महामुनि! मैं तुम्हारी तपस्या, स्तुति और प्रणामसे प्रसन्न हो कर तुमको वर देनेके लिये आया हूं, वर मांगो ॥२५॥

अथ रामानुजाख्यविप्रकृतभगवत्प्रार्थना

रामानुज उवाच—

नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय ॥ जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक ॥ २७ ॥ त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटाद्रिशिरोमणे ॥ त्वां नमस्यन्ति धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः ॥ २७ ॥ यं न वेत्ति भावो ब्रह्मा यं न वेत्ति त्रयी तथा ॥ त्वां वेद्मि परमात्मानं किमस्मादधिकं परम् ॥ २८ ॥

रामानुज बोले—हे नारायण! लक्ष्मीपति! श्रीनिवास! जगन्मय! जनार्दन! गोविन्द! जगद्धाम! नरकासुरको मारनेवाले! वेङ्कटाचलके शिखामणि! आपके दर्शनसे मैं कृतार्थ हो गया हूं। आपको धर्मात्मागण प्रणाम करते हैं, क्योंकि आप धर्मके पालन करनेवाले हैं। जिसको शिव और ब्रह्मा नहीं जानते हैं, जिसको त्रयी

(तीनों वेद) नहीं जानते हैं, उन आप परमात्माको मैं देखता हूं इससे बढ़ कर और क्या है ? ॥२६॥

योगिनो यं न पश्यन्ति यं न पश्यन्ति कर्मठाः ॥ पश्यामि परमात्मानं किमस्मादधिकं परम् ॥ २९ ॥ एतेन च कृतार्थोऽस्मि वेङ्कटेश जगत्पते ॥ यन्नामस्मृतिमात्रेण महापातकिनोऽपि च ॥ ३० ॥ मुक्तिं प्रयान्ति मनुजास्तं पश्यामि जनार्दनम् ॥ त्वत्पादपद्मयुगले निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥ ३१ ॥

योगिगण जिसको नहीं देखते और न कर्मनिष्ठ जिसको देखते हैं, मैं उस परमात्माको देखता हूं । इससे बढ़ कर और क्या है ? हे संसारके स्वामी वेङ्कटेश ! मैं केवल इसीसे प्रसन्न हूं कि जिसके नामको स्मरण करनेसे ही महापापी मनुष्य भी मुक्ति पा जाता है, उन जनार्दनको मैं देखता हूं । आपके दोनों चरणकमलमें मेरी अचल भक्ति हो ॥ ३१ ॥

अथ भगवद्वर्णिताकाशगङ्गातीर्थस्नानकालः

भगवानुवाच—

मयि भक्तिर्दृढा तेऽस्तु रामानुज महामते ॥ शृणु चाप्यपरं वाक्यमुच्यते ते मया द्विज ॥ ३२ ॥ मेषसङ्क्रमणे भानोश्चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ पौर्णमास्यां च गङ्गायां स्नानं कुर्वन्ति ये जनाः ॥३३॥ ते यान्ति परमं धाम पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ वियद्गङ्गासमीपे त्वं वस रामानुज द्विज ॥ ३४ ॥एतस्मारब्धदेहान्ते मत्स्वरूपमवाप्स्यसि ॥ बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे ॥३५॥ स्नान्ति ये वै जनाः सर्वे ते वै भागवतोत्तमाः ॥ भवन्ति मुनिशार्दूल नात्र कार्या विचारणा ॥ ३६ ॥

श्री भगवान बोले—हे महाबुद्धिमान ! रामानुज ! मुझमें तुम्हारी भक्ति दृढ़ हो । हे ब्राह्मण ! और एक दूसरी बात भी सुनो, मैं तुमसे कहता हूं । मेषकी संक्रान्तिमें चित्रा नक्षत्रसे संयुक्त पौर्णमासीको जो मनुष्य आकाशगङ्गामें स्नान करते हैं वे परम धामको जाते हैं जहांसे कोई लौटता नहीं है । हे ब्राह्मण ! रामानुज ! आकाशगङ्गाके पास तुम रहो । इस प्रारब्ध शरीरके अन्तमें तुम मेरे स्वरूपको पावोगे । बहुत कहनेसे क्या ? आकाशगङ्गाके शुभ जलमें जो स्नान करते हैं, हे मुनिश्रेष्ठ ! वे सब उत्तम भागवत हो जाते हैं । इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ३६ ॥

रामानुज उवाच

किंलक्षणा भागवता ज्ञायन्ते केन कर्मणा । एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः ॥ ३७ ॥

रामानुज बोले—किस लक्षण एवं किस कर्मसे भागवत जाने जाते हैं। यह मैं सुनना चाहता हूं क्योंकि इसमें हम विशेष उत्सुक हैं ॥ ३७ ॥

अथ भगवद्वर्णितभागवतलक्षणानि

वेङ्कटेश उवाच—

लक्षणं भागवतानां तु शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ वक्तुं तेषां प्रभावं तु शक्यते नाब्दकोटिभिः ॥ ३९ ॥

श्री भगवान बोले—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! भागवतोंके लक्षणको सुनो। जिनके माहात्म्यको कहनेके लिये करोड़ों वर्षोंमें भी समर्थ नहीं हो सकता हूं ॥ ३९ ॥

ये हिताः सर्वजन्तूनां गतासूया विमत्सराः ॥ ज्ञानिनो निःस्पृहाः शान्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४० ॥ कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते ॥ अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४१ ॥ सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ॥ मत्पादाम्बुजभक्ता ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥४२॥ मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वते ये नरोत्तमाः ॥ ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ॥ पूजां दृष्ट्वा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४३ ॥

जो सब जन्तुओंके हितैषी, ईर्ष्या और मात्सर्यसे रहित, ज्ञानी, निर्लोभ और शान्त हैं, वे ही उत्तम भागवत हैं। मन, वचन, एवं कर्मसे जो दूसरोंको पीड़ा नहीं देते, जो दान ग्रहण करनेवाले नहीं हैं, वेही उत्तम भागवत हैं। जिनकी सात्विक बुद्धि अच्छी अच्छी कथाओंको सुननेमें है, और जो मेरे चरणकमलके भक्त या सेवक हैं, वे ही उत्तम भागवत हैं। माता और पिताकी जो सेवा करते हैं, जो देवताओंको पूजामें लगे रहते हैं, जो उसके साधन करनेवाले हैं और जो पूजाको देख कर आनन्द लाभ करते हैं, वे श्रेष्ठ मनुष्य उत्तम भागवत हैं ॥४३॥

वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ॥ परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४४ ॥ सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ॥ ये गुणग्राहिणो लोके ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४५ ॥ आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ॥ तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु ते वै भागवताः स्मृताः ॥ ४६ ॥ धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये ॥ तेषां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४७ ॥

ब्रह्मचारी एवं यतियोंकी परिचर्यामें जो लगे रहते हैं और जो पराई निन्दा नहीं करते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो श्रेष्ठ मनुष्य सब किसीकी भलाईके वचन ही बोलते हैं, एवं जो संसारमें गुणको ही ग्रहण करनेवाले हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो उत्तम मनुष्य अपने समान सब जीवोंको देखते हैं, एवं जो शत्रुओं और मित्रोंको समभावसे देखते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो धर्मशास्त्रके बोलनेवाले और जो सत्यवाक्यमें लगे हुए या उनकी शुश्रूषा करनेवाले हैं, वे उत्तम भागवत हैं ॥४७॥

व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ॥ तद्वक्तरि च भक्ता ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥४८॥ ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः ॥ तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ४९ ॥ अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ॥ हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥५०॥ आरामारोपणरतास्तटाकपरिरक्षकाः ॥ कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५१ ॥

जो पुराणोंको कहते और जो उनको सुनते हैं, एवं जो उनके कहनेवालोंके भक्त होते, वे उत्तम भागवत हैं। जो मनुष्य गौ और ब्राह्मणोंकी सदा सेवा करते हैं, एवं जो तीर्थयात्रामें लगे रहते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो मनुष्य दूसरोंकी उन्नतिको देख कर आनन्दित होते हैं, एवं जो भगवन्नामपरायण होते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो आराम (बगीचा) के लगानेमें उत्सुक रहते, तड़ागोंकी रक्षा करते एवं कूपको बनानेवाले हैं, वे उत्तम भागवत हैं ॥ ५१ ॥

ये वै तटाककर्तारो देवसद्मानि कुर्वते ॥ गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५२ ॥ येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहर्षिताः ॥ रोमाञ्चितशरीराश्च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५३ ॥ तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ॥ तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥५४॥ तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये ॥ तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५५ ॥

जो तड़ागके बनानेवाले हैं, जो देवालय बनाते हैं, एवं जो गायत्रीमें लगे हुए हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो भगवानके नामोंको सुन कर आनन्दसे फूल जाते और रोमाञ्चसे युक्त होते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। तुलसीके वनको देख कर जो मनुष्य प्रणाम करते हैं, जो उसके काष्ठ युक्त कर्ण वाले हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो मनुष्य तुलसीके गन्धको सूंघ कर सन्तुष्ट होते हैं, एवं जो उसके मूलकी मृत्तिकाको धारण करते हैं, वे उत्तम भागवत हैं ॥ ५५ ॥

स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवातिथिपूजकाः ॥ ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५६ ॥ विदितानि च शास्त्राणि परार्थं प्रवदन्ति ये ॥ सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५७ ॥ पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये ॥ एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५८ ॥ गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ॥ मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ५९ ॥

जो मनुष्य अपने आश्रमके आचरणमें लगे हुए एवं अतिथिकी पूजा करनेवाले हैं, और जो वेदके अर्थको कहने वाले हैं वे उत्तम भागवत हैं। जो जाने हुए शास्त्रोंको दूसरोंके लिये कहते हैं और सब प्रकारके गुणके पात्र हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो जलदान एवं अन्नदानमें लगे हुए हैं और जो एकादशी व्रतको करने वाले होते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। जो गोदानमें लगे हुए एवं कन्यादान करनेवाले हैं, और जो मेरे लिये सब कामोंके करनेवाले हैं, वे उत्तम भागवत हैं ॥ ५९ ॥

मन्मानसाश्च मद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः ॥ मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६० ॥ बहुनात्र किमुक्तेन सङ्क्षेपात्ते ब्रवीम्यहम् ॥ सद्गुणाय प्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ॥ ६१ ॥ एते भागवता विप्राः के चिदत्र प्रकीर्तिताः ॥ ममापि गदितुं शक्या नाब्दकोटिशतैरपि ॥ ६२ ॥ रामानुज महाभाग मद्भक्तानां च लक्षणम् ॥ मयि भक्ते त्वयि प्रीत्या युक्तं किल महामते ॥ ६३ ॥

जो मेरे भक्त मेरे भजनके लोभी होकर मेरेमें मन लगाये और मेरे नाम स्मरणमें लगे हुए हैं वे उत्तम भागवत हैं। बहुत कहनेसे क्या मैं तुमको संक्षेपसे कहता हूं—जो अच्छे अच्छे गुणोंसे व्यवहार करते हैं, वे उत्तम भागवत हैं। ये कई ब्राह्मण भागवत यहां पर कहे गये हैं। मैं भी करोडों वर्षोंमें भी सबोंके लक्षण नहीं कह सकता हूं। हे महाभाग! रामानुज! महामति! मेरे भक्तोंके लक्षण मेरे भक्त तुममें भी होने चाहिये ॥ ६३ ॥

श्रीसूत उवाच—

एवं वः कथितं विप्राः शौनकाद्या महौजसः ॥ वृषाद्रौ च वियद्गङ्गातीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जलदानवैभवाऽऽकाशगङ्गामाहात्म्यरामानुजव्रतचर्यादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे शौनकादि ब्राह्मणो ! इस प्रकार मैंने आप लोगोंसे वृषभाचल पर आकाशगङ्गाके उत्तम माहात्म्यको कहा ॥ ६४ ॥

इति एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः



दानपात्र निर्णय उचित, नभ गंगा इतिहास।
वन्ध्या पति आह्वान, पुण्यशील खपथास ॥१॥
श्राद्ध निमन्त्रित पात्र गुण, पात्रापात्र विचार।
बारहवें अध्यायमें, लिखे गये सुविचार ॥२॥

अथ दानार्हपात्रनिर्णयः

ऋषय ऊचुः—

भगवन्सूत सर्वज्ञ वेदवेदान्तकोविद ॥ दानानि कस्मै देयानि दानकालश्च कीदृशः ॥ १ ॥ कश्च तत्प्रतिगृह्णीयात्सर्वं नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

ऋषि बोले—हे भगवन् ! सब कुछ जाननेवाले सूतजी ! वेद वेदान्तके पण्डित ! किसको दान देना चाहिये ? दानका समय किस प्रकारका होना चाहिये ? कौन उसको ग्रहण करे, वे सब आप कहिये ॥२॥

श्रीसूत उवाच—

महापुण्यप्रदे क्षेत्रे वेङ्कटाख्ये द्विजोत्तमाः ॥ सर्वेषामेव वर्णानां ब्राह्मणः परमो गुरुः ॥ ३ ॥ तस्मै दानानि देयानि स तारयति पण्डितः ॥ ब्राह्मणः प्रतिगृह्णीयाद्वर्जयित्वा त्ववर्णकम् ॥ ४ ॥ षण्डस्य पुत्रहीनस्य दम्भाचाररतस्य च ॥ वेदविद्वेषिणश्चैव द्विजविद्वेषिणस्तथा ॥ ५ ॥ स्वक-

मत्यागिनश्चापि दत्तं भवति निष्फलम् ॥ परदाररतस्यापि परद्रव्यरतस्य च ॥ ६ ॥ गायकस्यापि विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥ असूयाविष्टमनसः कृतघ्नस्य च मायिनः ॥ ७ ॥ ज्ञानशून्यस्य विप्रस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥

श्रीसूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! महापुण्यको देनेवाले वेङ्कट नामक क्षेत्रमें सब वर्णोंके उत्तम गुरु ब्राह्मण हैं, उन्हींको दान देना चाहिये। वह पण्डित तार देता है। वर्णसङ्कर जातिको छोड़ कर सबसे ब्राह्मण दान ग्रहण करे। नपुंसक, पुत्रहीन, दंभी, वेदके और ब्राह्मणोंके द्रोही या अपने कर्मके छोड़नेवालेको दिया हुआ दान निष्फल होता है। पराई स्त्रीमें रत, पराई द्रव्यमें रत, एवं गायक ब्राह्मणको भी दिया हुआ दान व्यर्थ हो जाता है॥ ईर्ष्यासे भरे हुए मनवाले, कृतघ्न, कपटी अथवा ज्ञानसे शून्य ब्राह्मणको दिया हुआ दान व्यर्थ होता है॥ ८॥

नित्यं याच्ञापरस्यापि हिंसकस्याबलस्य च ॥ ८ ॥ नामविक्रयिणश्चैव धर्मविक्रयिणस्तथा ॥ ९॥ परोपतापशीलस्य दत्तं भवति निष्फलम् ॥

नित्य भीख मांगनेवाले, हिंसक, निर्बल, नाम अथवा धर्मको बेचनेवाले और दूसरोंके दुःख ही देनेवालेको दिया हुआ दान व्यर्थ होता है ॥१०॥

केचिद्वै पापनिरता निन्दिताः सुकृतैस्तथा ॥१०॥ न तेभ्यः प्रतिगृह्णीयान्न देयं चापि किञ्चन ॥ सत्कर्मनिरतायैव श्रोत्रियायाहिताग्नये ॥ ११ ॥ वृत्तिहीनाय वै देयं दरिद्राय कुटुम्बिने ॥ देवपूजासु सक्ताय पुराणकथकाय च ॥ १२ ॥ देयं प्रयत्नतो विप्रा दरिद्रस्य विशेषतः ॥ बहुना किमिहोक्तेन शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥ १३ ॥ सर्वेषां ब्राह्मणानां च प्रदातुं शक्यते सदा ॥

जो कोई पापमें लगा हुआ, एवं पुण्यवानोंसे निन्दित है उससे न कुछ लेना चाहिये और न कुछ उसको देना चाहिये। अच्छे कर्ममें लगे हुए श्रोत्रिय, आहिताग्नि, वृत्तिहीन, तथा दरिद्र कुटुम्बवालेको ही दान देना चाहिये। हे ब्राह्मणो ! देवपूजामें लगे हुए तथा पुराण कहनेवाले, विशेष कर दरिद्रको प्रयत्नसे दान देना चाहिये। हे ब्राह्मणो ! बहुत कहनेसे क्या ? सुनिये सब ब्राह्मणोंको सदा दान दे सकते हैं ॥१४॥

वन्ध्याभर्त्रे प्रदत्तञ्चेद्रासभो जायते नरः ॥ १४ ॥ नास्तिकं भिन्नमर्यादं पुत्रहीनं जडं खलम् ॥ स्तेयिनं कितवं चैव कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १५ ॥ पाषण्डं पतितं व्रात्यं वेदविक्रयिणं यता ॥ कृतघ्नं पापनि-

रतं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ १६ ॥ तथा स्नानं प्रकुर्वन्तं समित्पुष्पकरं तथा ॥ उदपात्रधरञ्चैव भुञ्जन्तं नाभिवादयेत् ॥ १७ ॥

परन्तु वन्ध्याके पतिको दान देनेसे तो मनुष्य गदहा होता है। नास्तिक, यथेच्छाचारी, पुत्रहीन, मूर्ख, दुष्ट, चोर या छल करनेवालेको कभी भी प्रणाम न करे। पाखण्डी, पतित, व्रात्य (अनुपनीत) वेदको बेचनेवाले, कृतघ्न अथवा पापमें लगे हुएको कभी भी प्रणाम नहीं करे। स्नान करते हुए, हाथमें समिधा और पुष्प लिये हुए, जलके पात्रको धारण किये हुए या भोजन करते हुएको कभी भी प्रणाम नहीं करे ॥१७॥

विवादशालिनं चण्डं वमन्तं जनमध्यगम् ॥ भिक्षान्नधारिणं चैव शयानं नाभिवादयेत् ॥१८॥ वन्ध्याञ्च पुष्पिणीं जारां सूतिकां गर्भपातिनीम् ॥ व्रतघ्नीञ्च तथा चण्डीं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥१९॥ सभायां यज्ञशालायां देवतायतनेष्वपि ॥ प्रत्येकं तु नमस्कारो हन्ति पुण्यं पुरातनम् ॥२०॥

झगड़ालू, प्रचण्ड, वमन (उलटी) करते हुए, मनुष्यके मध्यमें बैठे हुए, भिक्षाके अन्नको धारण किये हुए अथवा सोये हुएको कभी भी प्रणाम नहीं करे। वन्ध्या, रजस्वला पुंश्चली, गर्भके पात करनेवाली, पुत्रके नष्ट करनेवालीको या प्रचण्डाको कभी भी प्रणाम नहीं करना चाहिये। सभा, यज्ञशाला तथा देवताके मन्दिरमें प्रत्येकको प्रणाम करना, पूर्वमें किये हुए पुण्यको नष्ट करना है ॥२०॥

श्राद्धव्रते नियुक्तञ्च देवताभ्यर्चकं तथा ॥ यज्ञं च तर्पणञ्चैव कुर्वन्तं नाभिवादयेत् ॥ २१ ॥ कुर्वते वन्दनं यस्तु न कुर्यात्प्रतिवन्दनम् ॥ नाभिवाद्यः स विज्ञेयो यथा शूद्रस्तथैव च ॥ २२ ॥ तस्मात्सर्वेषु कालेषु बुद्धिमान्ब्राह्मणोत्तमः ॥ वन्ध्यापतिं द्विजं क्रूरं कदाचिन्नाभिवादयेत् ॥ २३ ॥

श्राद्ध और व्रतमें लगे हुए, देवताकी पूजा करनेवाले, या यज्ञ और तर्पणको करते हुएको प्रणाम नहीं करना चाहिये। प्रणाम करते हुएको जो प्रतिवन्दन नहीं करता वह प्रणाम करनेके योग्य नहीं है, वह शूद्रके समान है, इसलिये सब समयमें उत्तम बुद्धिमान ब्राह्मण कभी भी वंध्याके पति, तथा क्रूर ब्राह्मणको प्रणाम नहीं करे ॥२३॥

अथाकाशगङ्गामाहात्म्यम्

श्रीसूत उवाच—

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुण्यशीलस्य धीमनः ॥ सनत्कुमारमुनये नारदेन प्रभाषितम् ॥२४॥ तद्वक्ष्यामि मुनिश्रेष्ठाः शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥

श्रीसूतजी बोले—यहांपर बुद्धिमान तथा पुण्यशीलका नारदसे सनत्कुमार मुनिको कहा हुआ इतिहास कहता हूं। हे श्रेष्ठ मुनियो। सावधान हो कर सुनिये ॥२५॥

पुरा गोदावरीतीरे सर्वधर्मपरायणः ॥ २५ ॥ पुण्यशीलो द्विजवरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥ दयावान्सर्वभूतेषु देवाग्निद्विजपूजकः ॥ २६ ॥ कर्मणा जन्मशुद्धश्च मातापितृहिते रतः ॥ गुरुभक्तिः सदाक्षिण्यो ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः ॥ २७ ॥

पहले गोदावरीके तीरपर सब धर्ममें परायण, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, सब जीवों पर दया करनेवाला, अग्नि, और ब्राह्मणकी पूजा करनेवाला, कर्म और जन्मसे शुद्ध, माता पिताके हितमें लगा हुआ, गुरुभक्त, उदार, ब्रह्मण्य, एवं साधुओंसे माना हुआ पुण्यशील नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण था ॥ २७ ॥

अथ पुण्यशीलस्य वन्ध्यापतिनिमन्त्रणेन गर्दभमुखत्वप्राप्तिः

एतादृशगुणैर्युक्तः पुण्यशीलस्य धीमतः ॥२८॥ गृहं सम्प्राप्तवान्विप्रो वेदवेदाङ्गपारगः ॥ प्रार्थितः पुण्यशीलेन पितृश्राद्धेऽतिवेगतः ॥ २९ ॥ तं विप्रं श्रोत्रियं शान्तं पितृश्राद्धे नियोज्य वै ॥ श्राद्धं चकार धर्मात्मा प्रत्याब्दिकमनुत्तमम् ॥ ३० ॥ ततः कालान्तरे तस्य पुण्यशीलस्य चानने ॥ वैरूप्यं प्राप्तमत्युग्रं रासभाननवत्तदा ॥ ३१ ॥

इस प्रकारके गुणोसे युक्त, बुद्धिमान तथा वेद वेदाङ्गका पारग एक ब्राह्मण, पुण्यशीलसे पिताके श्राद्धके निमित्त प्रार्थना किया हुआ पुण्यशीलके घरपर शीघ्रतासे आया। उस श्रोत्रिय तथा शान्त ब्राह्मणको पिताके श्राद्धमें लगा कर उस धर्मात्माने प्रतिवार्षिक पार्वण श्राद्धको किया। तब कुछ समयके बाद उस पुण्यशीलके मुखमें गर्दभमुखके समान कुरूपता प्राप्त हुई ॥

ततः खिन्नमना भूत्वा पुण्यशीलोऽतिधार्मिकः ॥ निःश्वस्य बहुधा खिन्नः प्रपेदेऽगस्त्ययोगिनः ॥ ३२ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे ऋषिसङ्घनिषेविते ॥ आश्रमं परमं दिव्यं सर्वकामफलप्रदम् ॥ ३३ ॥ तत्राश्रमे मुनिवरैः सेव्यमानमहर्निशम् ॥ दृष्ट्वाऽगस्त्यं महात्मानं सर्वलोकहितैषिणम् ॥ ३४ ॥ प्रणाममकरोत्तस्मै गर्दभास्योऽतिदुःखितः ॥ ३५ ॥

तब अत्यन्त खेदयुक्त हो कर धर्मात्मा पुण्यशील बहुत प्रकारसे चिन्ता करके ऋषि समूहसे सेवित सुवर्णमुखरीके तीरपर योगी अगस्त्य मुनिके सब कामफलको देनेवाले दिव्य उत्तम आश्रमको आया। अत्यन्त दुःखी

गर्दभ मुखवाले ब्राह्मणने उस आश्रममें श्रेष्ठ मुनियोंसे दिन रात सेवा किये जाते हुए तथा सब लोगोंकी भलाई चाहनेवाले महात्मा अगस्त्यको देख कर उनको प्रणाम किया ॥ ३५ ॥

पुण्यशील उवाच—

तपोनिधे नमस्तुभ्यमगस्त्य मुनिसेवित ॥ कुत्सितास्यं महापापं रक्ष रक्ष दयानिधे ॥ ३६ ॥ केन दोषेण मे चात्र मुखस्यासीद्विरूपता ॥ ३७ ॥ मयि प्रीत्या महाभाग वदस्व मुनिसत्तम ॥ ३८ ॥

पुण्यशील बोला—हे तपस्वी ! मुनियोंसे सेवित अगस्त्य ! आपको प्रणाम है। हे दयालु ! मुझ बुरे मुखवाले महापापीकी रक्षा कीजिये। किस दोषसे मेरे मुखकी कुरूपता हुई है ? हे महाभाग ! मेरे ऊपर कृपा करके आप कहिये ॥ ३६ ॥

अगस्त्य उवाच—

विप्रवर्य महाभाग पुण्यशील महामते ॥ आननस्य विरूपत्वं शृणु नान्यमना द्विज ॥ ३९ ॥

अगस्त्यजी बोले—हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! महाभाग ! पुण्यात्मा ! महाबुद्धिमान ! मुखकी कुरूपताको सावधान हो कर सुनो ॥ ३९ ॥

अथ वन्ध्यापतेः श्राद्धनिमन्त्रणानर्हत्ववर्णनम्

कञ्चिद्विप्रं गुणनिधिं वेदवेदाङ्गपारगम् ॥ श्रोत्रियं पुत्ररहितं श्राद्धे त्वं विनियुक्तवान् ॥ ४० ॥ तेन दोषेण महता मुखे तव विरूपता ॥ ये लोके हव्यकव्यादौ वन्ध्यायाः स्वामिनं द्विजम् ॥ ४१ ॥ नियोजयन्ति ते यान्ति मुखे गर्दभरूपताम् ॥ शुभकर्मणि वा विप्र पैतृके वापि कर्मणि ॥४२॥ वन्ध्यापतिं महापापं कदाचिन्न निमन्त्रयेत् ॥ वन्ध्यापतिं महाक्रूरं वृषलीपतिमेव वा ॥४३॥ श्रेयस्कामो हि विप्रेन्द्र श्राद्धे तु न निमन्त्रयेत् ॥

किसी वेद वेदाङ्गमें पारग, गुणके निधि तथापि पुत्र हीन श्रोत्रिय ब्राह्मणको तुमने श्राद्धमें निमन्त्रित किया था। उसी महान दोषसे तुम्हारे मुखमें कुरूपता छा गई है, जो लोग हव्य (देव कर्म) और कव्य (पितृकर्म) में वन्ध्याके पति ब्राह्मणको नियुक्त करते हैं उनके मुखमें गर्दभकीसी कुरूपता हो जाती है। हे ब्राह्मण ! शुभ कामों अथवा पितृ·

यायोंमें महापापी वन्ध्यापतिको कभी भी न निमन्त्रण देवें। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! महाक्रूर वन्ध्यापति अथवा वृषलीपतिको कल्याण चाहने वाला श्राद्धमें न निमन्त्रण देवे॥ ४४॥

वेदशास्त्रादियुक्तोऽपि कुलीनः कर्मठोऽपि वा॥ ४४॥ वन्ध्याभर्ता द्विजश्रेष्ठ श्राद्धे त्याज्यः कथञ्चन॥ ज्योतिष्टोमादियज्ञेषु व्रतेषु च तपःसु च॥ ४५॥ समर्थोऽपि द्विजश्रेष्ठः श्राद्धे वन्ध्यापतिं त्यजेत्॥ अलभ्ये द्विजपात्रे तु तन्तुमात्रोपजीविनम्॥ ४६॥ पुत्रवन्तं सदाचारं श्राद्धार्थं तु निमन्त्रयेत्॥ तदभावे द्विजश्रेष्ठ पुत्रं वाऽनुजमेव वा॥ ४७॥ आत्मानं वा नियुञ्जीत श्राद्धे वन्ध्यापतिं त्यजेत्॥

वन्ध्याका पति वेद शास्त्रादिसे सम्पन्न, कुलीन एवं कर्मनिष्ठ होनेपर भी श्राद्धमें त्यागने योग्य है। ज्योतिष्टोम इत्यादि यज्ञों, व्रतों, तथा तपस्याओंमें समर्थ, तथा श्रेष्ठ ब्राह्मण भी श्राद्धमें वन्ध्याके पतिको त्याग कर देवे। योग्य ब्राह्मणके नहीं मिलने पर यज्ञोपवीतमात्रधारी, सदाचारी और पुत्रवान ब्राह्मणको श्राद्धके लिये निमन्त्रण देवे। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! उसके अभावमें पुत्र, छोटे भाई अथवा स्वयं अपनेको ही श्राद्धमें निमन्त्रित करे, किन्तु वन्ध्याके पतिको छोड़ देवे॥ ४८॥

पुण्यशील महाभाग चोद्धृत्य भुजमुच्यते॥ ४८॥ सर्वथा पुत्रहीनं तु श्राद्धार्थं न नियोजयेत्॥ वन्ध्यापतिं द्विजं यस्तु श्राद्धकर्ता नियोक्ष्यति॥ ४९॥ तच्छ्राद्धमासुरं ज्ञेयं कर्ता च नरकं व्रजेत्॥ ५०॥

हे महाभाग पुण्यशील! भुजाको उठा कर कहा जाता है कि पुत्रहीनको सर्वथा ही श्राद्धके लिये नियुक्त न करे। जो श्राद्धकर्ता वन्ध्यापतिको श्राद्धमें नियुक्त करेगा, वह श्राद्ध तो आसुरी होगा और वह कर्त्ता नरक जायगा॥ ५०॥

अथाकाशगङ्गास्नानेन पुण्यशीलस्य तद्विकारनिवृत्तिः

बहुनात्र किमुक्तेन तद्दोषविनिवृत्तये॥ उपायं ते प्रवक्ष्यामि स्वर्णमुखरीतटे शुभे॥ ५१॥ वर्तते देवसङ्घैश्च सेवितो वेङ्कटाचलः॥ मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वकामफलप्रदः॥ ५२॥ तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे सुरासुरनमस्कृते॥ वियद्गङ्गेति नाम्ना वै तीर्थमस्ति महत्तरम्॥ ५३॥ सर्वपापप्रशमनमायुरारोग्यवर्धनम्॥ तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले॥ ५४॥ स्नात्वा सङ्कल्पपूर्वं तु गङ्गातीर्थमनन्तरम्॥ गत्वा तीर्थविधा-

नेन स्नानं कुरु महामते ॥ ५५ ॥ स्नानमात्रात्ततः सद्यो मुखस्यास्य महामते ॥ वैरूप्यं तत्क्षणादेव नश्यत्येव न संशयः ॥ ५६ ॥

बहुत कहनेसे क्या? उस दोषको छुड़ानेके लिये मैं तुमसे उपाय कहता हूं। स्वर्णमुखरीके शुभ तटपर देवताओंके समूहसे सेवित, सब काम फलको देनेवाला, तथा महापवित्र मेरुका पुत्र वेङ्कटाचल है। देवता और असुरगणसे नमस्कृत उस पर्वतराजपर आकाशगङ्गा नामका सब पापोंको छुड़ानेवला तथा आयु और आरोग्यको बढ़ानेवाला बहुत उत्तम तीर्थ है। हे महाबुद्धिमान्! तुम वेङ्कटाचलको जा कर संकल्पपूर्वक स्वामिपुष्करिणीके जलमें स्नान करके उसके अनन्तर गङ्गातीर्थ जा कर तीर्थकी विधिसे स्नान करो। हे महामति! वहां स्नान करने सेही तुम्हारे मुखकी कुरूपता क्षणभरमें नष्ट हो जायगी, इसमें सन्देह नहीं है ॥५६॥

एवमुक्तः पुण्यशीलो ह्यगस्त्येन महात्मना ॥ तं प्रणम्य महात्मानं वेङ्कटाद्रिं ततो ययौ ॥ ५७ ॥ तत्र गत्वा महाभागः स्वामिपुष्करिणीजले ॥ स्नात्वा नियमपूर्वं तु वियद्गङ्गासमीपगः ॥ ५८ ॥ तत्र स्नानेन धर्मात्मा कामवक्त्रोपमं मुखम् ॥ प्रापवान्पुण्यशीलस्तु अहो तीर्थस्य वैभवम् ॥५९॥

महात्मा अगस्त्यसे इस प्रकार कहा हुआ पुण्यशील उन महात्माको प्रणाम करके वेङ्कटाचल गया। वहां जा कर वह महाभाग स्वामिपुष्करिणीके जलमें नियमसे स्नान करके आकाश गङ्गाके पास गया। वहांपर स्नानसे धर्मात्मा पुण्यशीलने कामदेवके मुखके समान मुख पाया। धन्य है तीर्थका माहात्म्य ॥५९॥

श्रीसूत उवाच—

एवं वः कथितं विप्रा नारदेन प्रभाषितम् ॥ सनत्कुमारमुनये शौनकाद्या महौजसः ॥ ६० ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये आकाशगङ्गामाहात्म्यवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे महातेजस्वि शौनक इत्यादि ब्राह्मणों! मैंने इस प्रकार सनत्कुमारके प्रति नारदका कहा हुआ माहात्म्य आप लोगोंसे कहा ॥६०॥

इति द्वादशोऽध्यायः ॥ २ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः



चक्रतीर्थ माहात्म्य तहं, पद्मनाभ द्विज यज्ञ।
पद्मनाभ तप तुष्ट हो, प्रकट भये सर्वज्ञ ॥१॥
पद्मनाभ द्विज वमन हित, चक्रतीर्थ में नित्य।
तेहि हित प्रभु कृत योग्यता, महिमा नाहिं अनित्य ॥२॥
द्विजवध उद्यत दैत्य हित, प्रेषण निज चक्रेश।
दैत्य वधन चक्रेशका, वर प्रदान सर्वेश ॥३॥

अथ चक्रतीर्थमाहात्म्यम्

श्रीसूत उवाच—

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः सत्यवादिनः ॥ चक्रतीर्थस्य माहा-
त्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १ ॥ ये शृण्वन्ति महापुण्यं चक्रतीर्थस्य वैभव-
म् ॥ ते यान्ति विष्णुभवनं पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ २ ॥ अन्नदाने च विमु-
खा जलदाने तथैव च ॥ गोदानविमुखा ये च शुद्धास्तेऽत्र निमज्जना-
त् ॥ ३ ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं चक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ ४ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे सत्य बोलनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैं अब सब पापोंके नाश करनेवाले चक्रतीर्थके माहात्म्यको कहता हूँ। जो चक्रतीर्थके महापवित्र माहात्म्यको सुनते हैं, वे विष्णुलोकमें जाते हैं, जहांसे लौटते नहीं। जो अन्नदान, जलदान या गोदानसे विमुख हैं, यहां स्नान करनेसे वे शुद्ध हो जाते हैं। इसलिये चक्रतीर्थ महापवित्र एवं उत्तम तीर्थ है ॥ ४ ॥

अथ पद्मनाभाख्यद्विजकृततपःप्रकारः

श्रीसूत उवाच—

पुरा श्रीवत्सगोत्रीयः पद्मनाभो जितेन्द्रियः ॥ चक्रपुष्करिणीतीरे

सोऽतप्यत महत्तपः ॥ ५ ॥ दयायुक्तो निराहारः सत्यवादी जितेन्द्रियः ॥
आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यन्विषयनिःस्पृहः ॥ ६ ॥ सर्वभूतहितो दान्तः
सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥ वर्षाणि कतिचित्सोऽयं जीर्णपर्णाशनोऽभवत् ॥ ७ ॥

श्रीसूतजी बोले—पहले श्रीवत्सगोत्रके जितेन्द्रिय पद्मनाभ नामक ब्राह्मणने चक्रपुष्करिणीके तीरपर उत्तम तपस्या की। दयासे युक्त, निराहार, सत्यवादी, जितेन्द्रिय अपने जैसा सब जीवोंको देखता हुआ, विषयोंमे निस्पृह, सब जीवोंकी भलाई करनेवाला, शान्त तथा सब द्वन्द्वोंसे रहित वह कई वर्षतक सूखे पत्तोंको खाता रहा॥७॥

कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ॥ एवं द्वादशवर्षाणि
पद्मनाभो महामुनिः ॥ ८ अतप्यत तपो घोरं देवैरपि सुदुष्करम् ॥

कुछ समय तक जलाहार, एवं कितने वर्षतक वायु भक्षण करके इस प्रकारसे उस महामुनिने बारह वर्षतक देवताओंसे भी असाध्य घोर तपस्या की ॥ ९ ॥

अथ चक्रतीर्थे पद्मनाभाख्यद्विजकृततपस्तुष्टभगवदाविर्भावः

अथ तत्तपसा तुष्टो भगवान्कमलापतिः ॥ ९ ॥ प्रत्यक्षतामगात्तस्य
शङ्खचक्रगदाधरः ॥ विकचाम्बुजपत्राक्षः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥१०॥ उन्मी-
ल्य चक्षुषी तत्र दृष्टवान्वेङ्कटेश्वरम् ॥ शङ्खचक्रधरं शान्तं श्रीनिवासं कृपा-
निधिम् ॥ दृष्ट्वा देवं महात्मानं स्तोतुं समुपचक्रमे ॥ ११ ॥

अनन्तर उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो कर शङ्ख चक्रको धारण किये हुए, खिले हुए कमलके समान नेत्रवाले, करोड़ों सूर्यकी चमकवाले भगवान लक्ष्मीके पति प्रत्यक्ष हुए। वहांपर आखोंको खोल कर उसने शङ्ख चक्र धारण किये हुए, शान्त एव दयालु श्रीनिवासको देखा, और उनको देख कर स्तुति करने लगा ॥११॥

अथ पद्मनाभाख्यद्विजकृतश्रीनिवासस्तुतिः

नमो देवाधिदेवाय वेङ्कटेशाय शार्ङ्गिणे ॥ नारायणाद्रि वासाय श्रीनि-
वासाय ते नमः ॥ १२ ॥ नमः कल्मषनाशाय वासुदेवाय विष्णवे ॥ शेषा-
चलनिवासाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १३ ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय विश्वरू-
पाय साक्षिणे ॥ शिवब्रह्मादिवन्द्याय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमः
कमलनेत्राय क्षीराब्धिशयनाय ते ॥ दुष्टराक्षससंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते न-
मः ॥ १५ ॥

देवोंके देव, शार्ङ्गधारी, वेङ्कटेश, नारायणाचलपर वास करनेवाले श्रीनिवास आपको प्रणाम है, प्रणाम है। पापके नाश करनेवाले, वासुदेव, विष्णु, शेषाचलपर रहनेवाले, श्रीनिवास आपको प्रणाम है प्रणाम है। तीनों लोकके स्वामी, विश्वरूप तथा साक्षी, शिव, ब्रह्मा इत्यादिसे वन्दित श्रीनिवास आपको प्रणाम है प्रणाम है। कमलनयन, तथा क्षीरसमुद्रमें शयन करनेवाले, आपको प्रणाम है, दुष्टों एवं राक्षसोंके नाश करनेवाले श्रीनिवास आपको प्रणाम है ॥१५॥

भक्तप्रियाय देवाय देवानां पतये नमः ॥ १६ ॥ प्रणतार्तिविनाशाय श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १७ ॥ योगिनां पतये नित्यं वेदवेद्याय विष्णवे ॥ भक्तानां पापसंहर्त्रे श्रीनिवासाय ते नमः ॥ १८ ॥

भक्तोंके प्रिय, देव तथा देवताओंके स्वामी, शरणागतोंके दुःखको नाश करनेवाले श्रीनिवास आपको प्रणाम है, प्रणाम है। योगियोंके पति, वेदोंसे जानने योग्य, विष्णु तथा भक्तोंके पापोंके नाश करनेवाले श्रीनिवास आपको प्रणाम है ॥१८॥

अथ पद्मनाभस्य चक्रतीर्थे निरन्तरवासाय भगवन्नियमनम्

एवं स्तुतो महाभागः श्रीनिवासो जगन्मयः ॥ पद्मनाभाख्यऋषिणा चक्रतीर्थनिवासिना ॥ १९ ॥ सन्तोषं परमं प्राप्य वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ पद्मनाभं द्विजवरं शान्तं धर्मपरायणम् ॥ २० ॥ सुधाधारोपमं वाक्यमब्रवीत्पुरुषोत्तमः ॥ २१ ॥

इस प्रकार चक्रतीर्थके निवासी पद्मनाभ नामक ऋषिसे स्तुति किये हुए, पुरुषोत्तम, महाभाग, जगन्मय, दयानिधि श्रीवेङ्कटेश परम सन्तोष लाभ कर धर्मपरायण, शान्त तथा श्रेष्ठब्राह्मण पद्मनाभसे अमृतकी धाराके समान वचन बोले ॥२१॥

श्रीनिवास उवाच—

द्विजवर्य महाभाग मत्पादकमलार्चक ॥ चक्रतीर्थस्य तीरे त्वमाकल्पं पूजयन्वस ॥ २२ ॥ इत्युक्त्वा भगवान् विष्णुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ अन्तर्धानं गते देवे श्रीनिवासे जगद्गुरौ ॥ २३ ॥ चक्रतीर्थस्य तीरे तु वासं चक्रे महामतिः ॥

श्रीनिवास बोले हे श्रेष्ठब्राह्मण। मेरे चरणकमलको पूजन करनेवाले महाभाग! कल्पपर्यन्त मेरी पूजा

करते हुए तुम चक्रतीर्थपर रहो। ऐसा कह कर भगवान विष्णु वहींपर अन्तर्धान हो गये। जगद्गुरु श्रीनिवासके अन्तर्धान हो जानेपर वह महाबुद्धिमान् चक्रतीर्थके तीरपर रहने लगा ॥२४॥

ततः कालान्तरे कश्चिद्राक्षसो भीमदर्शनः ॥ २४ ॥ मुनिं तं पद्म-
नाभाख्यं नारायणपरायणम् ॥ आययौ भक्षितुं क्रूरः क्षुधया परिपीडि-
तः ॥ २५ ॥ ब्राह्मणं तरसा सोऽयं राक्षसो जगृहे तदा ॥

तब कुछ समयके बाद एक भयानक क्रूर राक्षस नारायणके भक्त पद्मनाभ नामक उस मुनिको खानेके लिये भूखसे दुःखी हो कर आया। उस राक्षसने उस ब्राह्मणको शीघ्रतासे पकड लिया ॥२६॥

गृहीतस्तरसा तेन विप्रो वेदाङ्गपारगः ॥ २६ ॥ प्रचुक्रोश दयाम्भो-
निधिमापन्नानां परायणम् ॥ नारायणं चक्रपाणिं रक्ष रक्षेति वै मुहुः ॥२७॥
वेङ्कटेश दयासिन्धो शरणागतपालक ॥ त्राहि मां पुरुषव्याघ्र रक्षोवशमु-
पागतम् ॥ २८ ॥ लक्ष्मीकान्त हरे विष्णो वैकुण्ठ गरुडध्वज ॥ मां रक्ष
राक्षसाक्रान्तं ग्राहाक्रान्तं गजं यथा ॥ २९ ॥ दामोदर जगन्नाथ हिरण्या-
सुरमर्दन ॥ प्रह्लादमिव मां रक्ष राक्षसेनातिपीडितम् ॥ ३० ॥

वेदवेदाङ्गमें पारग वह ब्राह्मण उससे शीघ्र पकड़ा हुआ दयाके समुद्र, दुःखियों एवं शरणागतोंके रक्षक, चक्रपाणि नरायणको बार बार पुकारने लगा कि रक्षा करो! रक्षा करो!! हे वेङ्कटेश दयाके समुद्र! शरणमें आयेकी रक्षा करने वाले! पुरुष श्रेष्ठ! राक्षसके वशमें आये हुए मेरी रक्षा करो। हे लक्ष्मीपति हरि! विष्णु, वैकुण्ठ, गरुड़ध्वज! माहसे आक्रान्त गजके जैसा राक्षससे आक्रान्त मेरी रक्षा कीजिये। हे दामोदर! जगन्नाथ! हिरण्याक्षको मारने वाले! राक्षससे अत्यन्त पीड़ित मेरी प्रह्लादके जैसी रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥

अथ पद्मनाभहननोद्युक्तासुरवधाय भगवत्कृतचक्रप्रेरणम्

इत्येवं स्तुवतस्तस्य पद्मनाभस्य हे द्विजाः ॥ स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा
चक्रपाणिर्दयानिधिः ॥ ३१ ॥ स्वचक्रं प्रेषयामास भक्तरक्षणकारणात् ॥
प्रेरितं विष्णुचक्रं तद्विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ३२ ॥ आजगामाथ वेगेन च-
क्रपुष्करिणीतटम् ॥ अनन्तादित्यसङ्काशमनन्ताग्निसमप्रभम् ॥ ३३ ॥ महा-
ज्वालं महानादं महासुरविमर्दनम् ॥ दृष्ट्वा सुदर्शनं विष्णो राक्षसोऽथ
प्रदुद्रुवे ॥ ३४ ॥



गृहीतस्तरसा तेन विप्रो वेदाङ्गपारगः । प्रचुक्रोश दयाम्भोधिमापन्नाना परायणम् ॥
स्वभक्तस्य भयं ज्ञात्वा चक्रपाणिर्दयानिधिः । स्वचक्रं प्रेषयामास भक्तरक्षणकारणात् (पृष्ठ४६४)

हे ब्राह्मणों! इस प्रकार स्तुति करते हुए, उस, अपने भक्त पद्मनाभके भयको जान कर दयानिधि चक्रपाणिने भक्तको रक्षा करनेके लिये अपने चक्रको भेजा। अनन्त अग्नि और अनन्त सूर्यके समान तेजवाला वह भगवानसे प्रेरित वह चक्र अत्यन्त वेगसे पुष्करिणीके तीरपर आया बड़ी ज्वाला और बड़े शब्दवाले, बड़े बड़े राक्षसोंको मारने वाले विष्णुके सुदर्शनको देख कर वह राक्षस भागने लगा॥ ३४॥

अथ भगवत्प्रेषितचक्रकृतासुरवधः

द्रवमाणस्य तस्याशु राक्षसस्य सुदर्शनम्॥ शिरश्चकर्त सहसा ज्वालामालादुरासदम्॥ ३५॥ ततो विप्रवरो दृष्ट्वा राक्षसं पतितं भुवि॥ मुदा परमया युक्तस्तुष्टाव च सुदर्शनम्॥ ३६॥

ज्वालाओंकी मालासे दुःसह उस सुदर्शनने भागते हुए उस राक्षसके शिरको काट लिया। तब उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने उस राक्षसको पृथ्वी पर गिरा हुआ देख कर परम आनन्दसे सुदर्शनकी स्तुति की॥ ३६॥

पद्मनाभ उवाच—

विष्णुचक्र नमस्तेऽस्तु विश्वरक्षणदीक्षित॥ नारायणकराम्भोजभूषणाय नमोऽस्तु ते॥ ३७॥ युद्धेष्वसुरसंहारकुशलाय महारव॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं भक्तानामार्तिनाशन॥ ३८॥ रक्ष मां भयसंविग्नं सर्वस्मादपि कल्मषात्॥ स्वामिन्सुदर्शन विभो चक्रतीर्थे सदा भवान्॥ ३९॥ सन्निधेहि हिताय त्वं जगतो मुक्तिकाङ्क्षिणः॥

पद्मनाभ बोले—हे विष्णुके चक्र! संसारकी रक्षा करनेमे कटिबद्ध! आपको प्रणाम है, नारायणके हस्त कमलके भूषण आपको प्रणाम है। हे युद्धमें राक्षसोंको नाश करनेमें कुशल! महाशब्दवाले! भक्तोंके दुःखोंके नाश करनेवाले! सुदर्शन! आपको प्रणाम है। हे स्वामी प्रभु! सुदर्शन! भयसे भीत मुझको सब पापोंसे रक्षा कीजिये। मुक्तिके चाहने वाले संसारके हितके लिये आप चक्रतीर्थमें ही सदा रहें॥

ब्राह्मणेनैवमुक्तं तद्विष्णुचक्रं मुनीश्वराः॥ ४०॥ तं प्राह पद्मनाभाख्यं प्रीणयन्निव सौहृदात्॥ ४१॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकारसे कहे हुए वे चक्र प्रेमसे सन्तुष्ट करते हुएकी तरह उस पद्मनाभ ब्राह्मणसे बोले॥४१

अथ द्विजप्रार्थनया चक्रकृतवरदानादिः

सुदर्शन उवाच—

पद्मनाभ महापुण्यं चक्रतीर्थमनुत्तमम्॥ अस्मिन्वसामि सततं

लोकानां हितकाम्यया ॥ ४२ ॥ त्वत्पीडां परिचिन्त्याहं राक्षसेन दुरात्मना ॥ ४३ ॥ प्रेरितो विष्णुना विप्र त्वरया समुपागतः ॥ त्वत्पीडकोऽपि निहतो मयाऽयं राक्षसाधमः ॥ ४४ ॥ मोचितस्त्वं भयादस्मात्त्वं हि भक्तो हरेः सदा । चक्रतीर्थे महापुण्ये सर्वपापहरे द्विज ॥ ४५ ॥ सततं लोकरक्षार्थं सन्निधानं करोमि ते ॥

सुदर्शन बोले हे पद्मनाभ ! यह उत्तम चक्रतीर्थ महापवित्र है, संसारकी भलाईकी कामनासे मैं इसमें रहता हूं। हे ब्राह्मण ! तुम्हारे दुःखको सोच कर विष्णुने आपको दुष्ट राक्षससे बचानेके लिये मुझको नियुक्त किया है और मैं त्वरा (शीघ्रता) से आया हूं, अब मैंने तुम्हारे दुःख देनेवाले दुष्ट राक्षसको भी मारा है, और इस भयसे तुम्हें छुड़ाया है। क्योंकि तुम सदा भगवानके भक्त हो। हे ब्राह्मण ! सब पापोंको हरण करनेवाले महापवित्र चक्रतीर्थमें सदा लोककी रक्षाके लिये मैं तुम्हारे पास रहता हूं ॥ ४६ ॥

अस्मिन्मत्सन्निधानात्ते तथाऽन्येषामपि द्विज ॥ ४६ ॥ इतः परं न पीडा स्याद्भूतराक्षससम्भवा ॥ अस्मिन्मत्सन्निधानात्स्यात् चक्रतीर्थमिति प्रथा ॥ ४७ ॥ स्नानं येऽत्र प्रकुर्वन्ति चक्रतीर्थे विमुक्तिदे ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च वंशजाः सर्व एव हि ॥ ४८ ॥ विधूतपापा यास्यन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥

हे ब्राह्मण ! मेरे यहां रहनेसे अबसे तुम अथवा दूसरोंको भी भूत एवं राक्षससे पीड़ा उत्पन्न नहीं होगी। इसमें मेरे रहनेसे यह चक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध होगा। इस मुक्ति देनेवाले चक्रतीर्थमें जो स्नान करते हैं उनके पुत्र, पौत्र अथवा वंशमें उत्पन्न सब ही पापसे छूट कर उस विष्णुके परम पदको जायंगे ॥ ४६ ॥

इत्युक्त्वा विष्णुचक्रं तत्पद्मनाभस्य पश्यतः ॥ ४९ ॥ अन्येषामपि विप्राणां पश्यतां सहसा द्विजाः ॥ चक्रपुष्करिणीं तां तु प्राविशत्पापनाशिनीम् ॥ ५० ॥

हे ब्राह्मणो ! ऐसा कह कर उस विष्णुके चक्रने पद्मनाभ तथा दूसरों ब्राह्मणोंको भी देखते रहते क्षणभरमें शीघ्रतासे पापके नाश करनेवाली उस चक्रपुष्करिणीमें प्रवेश किया ॥ ५० ॥

श्रीसूत उवाच—

चक्रतीर्थस्य माहात्म्यं विप्रेन्द्राः पापनाशनम् ॥ युष्माकं कथितं सर्वं शौनकाद्या महौजसः ॥ ५१ ॥ चक्रतीर्थसमं तीर्थं न भूतं न भविष्यति ॥



इममागस्य भस्मान्तं राक्षसस्य सुदर्शनम् ॥
शिरश्छित्त्वा सहसा ज्वालामालाद्भुतप्रभम् ॥ (पत्र ५६३)

अत्र स्नात्वा नरा विप्रा मोक्षभाजो न संशयः ॥५२॥ कीर्तयेदिममध्यायं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ चक्रतीर्थाभिषेकस्य प्राप्नोति फलमुत्तमम् ॥५३॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

श्री सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! शौनिकादिको ! आप लोगोंसे मैंने पापनाश करनेवाले चक्रतीर्थके माहात्म्यको कहा। चक्रतीर्थके समान तीर्थ नहीं हुआ है और न होगा ही। हे ब्राह्मणो ! इसमें स्नान करके मनुष्य मोक्षके भागी होते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस अध्यायको जो कहता अथवा सावधानतापूर्वक सुनता है, वह चक्रतीर्थमे स्नानके उत्तम फलको पाता है ॥ ५३ ॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

चतुर्दशोऽध्यायः

यह सुन्दर गन्धर्व की, राक्षसत्व की प्राप्ति ।
तेहि अधर्मसे कुपित अति, ऋषि वसिष्ठ अभिशाप्ति ॥१॥
किन्नर विनय प्रसन्न हो, श्राप मुक्ति हित यत्न ।
मज्जन तीरथ चक्रमें, निश्चर किन्नर रत्न ॥२॥

अथ सुन्दराख्यगन्धर्वस्य राक्षसत्वप्राप्तिनिवृत्त्योरुपोद्घातः

ऋषय ऊचुः—

भगवन् राक्षसः कोऽसौ सूत पौराणिकोत्तम ॥ विष्णुभक्तं महात्मानं यो ब्राह्मणमबाधत ॥ १ ॥

ऋषिगण बोले—हे भगवन् ! श्रेष्ठ पौराणिक सूत ! वह राक्षस कौन था, जिसने विष्णुभक्त महात्मा ब्राह्मण-को बाधा दी ॥ १ ॥

श्रीसूत उवाच—

वक्ष्यामि राक्षसं क्रूरं तं विप्राः शृणुतादरात् ॥ यथा च राक्षसो जा-
तो मुनीनां शापवैभवात् ॥ २ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे ब्राह्मणो ! मैं उस क्रूर राक्षसके सम्बन्धमे कहता हूं, आप लोग सावधानीसे सुनिये कि वह किस प्रकार मुनियोंके शापके प्रभावसे राक्षस हुआ ॥ २ ॥

पुरा वैकुण्ठसदृशे श्रीरङ्गे विष्णुमन्दिरे ॥ वसिष्ठात्रिमुखाः सर्वे वि-
ष्णुभक्ता महौजसः ॥ ३ ॥ श्रीरङ्गनाथं देवेशं भक्तानामभयप्रदम् ॥ उपा-
साञ्चक्रिरे मुक्त्यै श्रीरङ्गपुरवासिनः ॥ ४ ॥ कदाचित्तत्र गन्धर्वो वीरबाहु-
सुतो बली ॥ सुन्दरो नाम विप्रेन्द्रा विटगोष्ठीपरायणः ॥ ५ ॥ ललनाश-
तसंयुक्तो विवस्त्रः सलिलाशये ॥ चिक्रीड स विवस्त्राभिः साकं युवतिभि-
र्मुदा ॥ ६ ॥ कवेरजायास्तीर्थे तु वसिष्ठो मुनिभिः सह ॥ माध्याह्निकं
कर्तुमना ययौ श्रीरङ्गमन्दिरात् ॥ ७ ॥ तानृषीनवलोक्याथ रामास्ता भ-
यकातराः ॥ वासांस्याच्छादयामासुः सुन्दरो न तु साहसी ॥ ८ ॥ ततो
वसिष्ठः कुपितः शशापैनं गतत्रपम् ॥ ९ ॥

पहले वैकुण्ठके समान श्रीरङ्ग नामक विष्णुमन्दिरमे श्रीरङ्गपुरके रहनेवाले वसिष्ठ अत्रि इत्यादि उदार विष्णुभक्तोंने मुक्तिके लिये भक्तोंको अभय देनेवाले देवेश श्रीरङ्गकी उपासना की। किसी समय वीरबाहुका पुत्र सुन्दर नामक बलिष्ठ एवं लम्पटोंकी सभामें रहनेवाला गन्धर्व नंगे, सैकड़ों नंगी स्त्रियोंके साथ, जलाशयमे आनन्दसे क्रीड़ा करता था। उस वक्त मुनियोंके साथ वसिष्ठ ऋषि माध्याह्निक कर्म करनेकी इच्छासे श्रीरङ्गमन्दिरसे कावेरी गये। ऋषियोंको देख, उन स्त्रियोंने भयभीत हो कर अपने अङ्गको वस्त्रोंसे ढक लिया, किन्तु उस साहसी सुन्दरने वैसा नहीं किया, तब क्रोधित वसिष्ठने उस निर्लज्जको शाप दिया ॥९॥

वसिष्ठ उवाच—

यस्मात्सुन्दर गन्धर्व दृष्ट्वाऽस्माँल्लज्जया त्वया ॥ वासो नाच्छादितं
शीघ्रं याहि राक्षसतां ततः ॥ १० ॥ एवमुक्ते वसिष्ठेन रामाः प्राञ्जलय-

स्तदा ॥ प्रणिपत्य वसिष्ठं तं भक्तिनम्रेण चेतसा ॥ ११ ॥ मुनिमण्डल-
मध्ये तु वसिष्ठमिदमब्रवन् ॥ १२ ॥

वसिष्ठ बोले—"हे सुन्दर ! गन्धर्व ! मुझको देख कर लज्जासे तुमने वस्त्रसे अपनेको नहीं ढक लिया, इस-लिये तू राक्षस हो जाओ ।" वसिष्ठके इस प्रकार कहने पर उन स्त्रियोंने हाथ जोड़ कर उस वसिष्ठको भक्तिसे नम्र-चित्त हो कर प्रणाम किया और मुनियोंके मण्डलके मध्यमें विराजमान वसिष्ठसे इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥१२॥

वामा ऊचुः—

भगवन् सर्वधर्मज्ञ चतुराननन्दन ॥ दयासिन्धोऽवलोक्यास्मान्न
कोपं कर्तुमर्हसि ॥१३॥ पतिरेव हि नारीणां भूषणं परमुच्यते ॥ पतिहीना
तु या नारी शतपुत्रापि सा मुने ॥ १४ ॥ विधवेत्युच्यते लोके तासां जन्म
निरर्थकम् ॥ तत्प्रसादं कुरु मुने पत्यावस्माकमादरात् ॥ १५ ॥ एकोऽपरा-
धः क्षन्तव्यो मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ क्षमां कुरु दयासिन्धो युष्मच्छिष्ये-
ऽत्र सुन्दरे ॥ १६ ॥

स्त्रियां बोलीं—हे भगवन् ! सब धर्मोंको जाननेवाले, ब्रह्माके पुत्र ! दयासिन्धु ! हमलोगोंको देख कर आपको क्रोध नहीं करना चाहिये । पति ही स्त्रियोंके लिये उत्तम भूषण हैं । हे मुनि ! जो स्त्री पतिसे हीन है वह सौ पुत्रवाली होने पर भी संसारमें विधवा कही जाती है, उसका जन्म व्यर्थ है । हे मुनि ! इसलिये आप हम लोगोंके पति-पर प्रसन्न होइये । तत्त्वदर्शी मुनियोंसे एक अपराध क्षमा करनेके योग्य है, हे दयाके समुद्र ! आपलोग इस शिष्यके समान सुन्दरको क्षमा कीजिये ॥१६॥

श्रीसूत उवाच—

वसिष्ठः प्रार्थितस्त्वेवं सुन्दरस्याङ्गनाजनैः ॥ प्रोवाच वचनं भूयः प्र-
सन्नः स द्विजोत्तमः ॥ १७ ॥

श्रीसूतजी बोले—सुन्दरकी स्त्रियोंसे इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर प्रसन्न वह श्रेष्ठ ब्राह्मण वसिष्ठ बोले ॥१७॥

अथ सुन्दराख्यस्य वसिष्ठोक्तराक्षसत्वनिवृत्त्युपायः

वसिष्ठ उवाच—

न मे स्याद्वचनं मिथ्या कदाचिदपि सुभ्रुवः ॥ उपायं वः प्रवक्ष्यामि

शृणुध्वं श्रद्धया सह ॥ १८ ॥ षोडशाब्दावधिः शापो भर्तुर्वं भविता ध्रुव-
म् ॥ षोडशाब्दावधी चैव सुन्दरो राक्षसाकृतिः ॥ १९ ॥ यदृच्छया वेङ्क-
टाद्रिं सर्वपापहरं शुभम् ॥ गत्वासौ चक्रतीर्थं तद्गमिष्यति सुराङ्ग-
नाः ॥ २० ॥ आस्ते तत्र महायोगी पद्मनाभो मुनीश्वरः । भक्षार्थं तं
मुनिं सोऽयं राक्षसोऽभिगमिष्यति ॥ २१ ॥

वसिष्ठ बोले—हे सुन्दर औंवालियो ! मेरी बात कभी झूठी नहीं होती । फिर भी तुम लोगोंसे उसकी मुक्तिका उपाय कहता हूं, श्रद्धाके साथ सुनो । तुम्हारे पतिका शाप सोलह वर्षतक अवश्य रहेगा, सोलह वर्षतक यह सुन्दर राक्षसके आकारमें अवश्य रहेगा । हे देवस्त्रियो ! इच्छापूर्वक घूमता हुआ यह सब पापको हरण करनेवाले शुभ वेङ्कटाचलको जा कर, फिर चक्रतीर्थको जायगा । वहांपर महायोगी मुनीश्वर पद्मनाभ रहते हैं, यह राक्षस उन मुनिको खानेके लिये जायगा ।।२१।।

ततो ब्राह्मणरक्षार्थं प्रेरितं चक्रमुत्तमम् ॥ विष्णुनास्य शिरः काया-
द्धरिष्यति न संशयः ॥ २२ ॥ ततः स्वं रूपमासाद्य शापान्मुक्तः स सुन्द-
रः ॥ पतिर्वस्त्रिदिवं भूयो गन्ता नास्त्यत्र संशयः ॥ २३ ॥ ततस्त्रिदिवमा-
साद्य सुन्दरोऽयं पतिर्हि वः ॥ रमयिष्यति सुन्दर्यो युष्मान्सुन्दरवेष-
भृत् ॥ २४ ॥

तब ब्राह्मणकी रक्षा करनेके लिये विष्णुद्वारा भेजा हुआ चक्र इसके शिरको धड़से पृथक् कर देगा इसमें संशय नहीं है । तब शापसे मुक्त हो अपने रूपको पा कर यह सुन्दर स्वर्गमें तुम लोगोंको फिर प्राप्त होगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है । हे सुन्दरियो ! इसके बाद स्वर्गमें पहुंच कर तुम लोगोंका यह पति सुन्दर वेष धारण कर तुम्हारे साथ रमण करेगा ।। २४ ।।

श्रीसूत उवाच—

इत्युक्त्वा तु वसिष्ठस्ताः सुन्दरस्य वराङ्गनाः ॥ स्वाश्रमम्प्रययौ तूर्णं
श्रीरङ्गेश्वरभक्तिमान् ॥ २५ ॥

श्री सूतजी बोले—श्री रङ्गनाथके भक्त वसिष्ठजी सुन्दरके उन श्रेष्ठस्त्रियोंके इस प्रकार कह कर शीघ्र ही अपने आश्रमको आये ।। २५ ।।

अथ रामास्तमालिङ्गय सुन्दरं पतिमात्मनः ॥ रुरुदुः शोकसन्तप्ता
दुःखसागरमध्यगाः ॥ २६ ॥ दह्यमानासु तास्वेवं सुन्दरो राक्षसोऽभव-

त् ॥ महादंष्ट्रो महाकायो रक्तश्मश्रुशिरोरुहः ॥२७॥ तं दृष्ट्वा भयसंविग्ना जग्मू रामास्त्रिविष्टपम् ॥

शोकसागरमें निमग्न वे स्त्रियां अपने पतिको आलिङ्गन करके शोक सन्तप्त हो कर रोने लगीं। उनके देखते देखते ही वह सुन्दर गन्धर्व, बडे बडे दांतोंसे संयुक्त विशाल शरीर एवं लाल दाढी और केशवाला राक्षस हो गया। इसको देख कर सभी भयभीता स्त्रियां स्वर्गको चली गईं ॥ २८ ॥

ततो राक्षसवेषोऽयं सुन्दरो भैरवाकृतिः ॥ २८ ॥ भक्षयन् प्राणिनः सर्वान् देशादेशं वनाद्वनम् ॥ भ्रमन्ननिलवेगोऽयं वेङ्कटाद्रिं नगोत्तमम्॥२९॥ प्रविश्यासौ महापापी चक्रतीर्थं ततो ययौ ॥ एवं षोडशवर्षाणि भ्रमतोऽस्य ययुस्तदा ॥ ३० ॥

तब राक्षसरूप एवं भयङ्कर शरीरवाला सुन्दर गन्धर्व सब प्राणियोंको भक्षण करता और एक देशसे दूसरे देश और एक वनसे दूसरे वनमें घूमता हुआ वायुवेगसे श्रेष्ठ वेङ्कटाचलको पार कर चक्रतीर्थको गया। इस प्रकार इसको घूमते हुए सोलह वर्ष बीत गये ॥ ३० ॥

ततस्तु षोडशाब्दान्ते राक्षसोऽयं मुनीश्वराः ॥ भक्षितुं पद्मनाभं तं चक्रतीर्थनिवासिनम् ॥ ३१ ॥ उपाद्रवद्वायुवेगः स चास्तौषीज्जनार्दनम् ॥ योगिना च स्तुतो विष्णुस्तदा चक्रमचोदयत् ॥ ३२ ॥ रक्षितुं पद्मनाभं तं राक्षसेन प्रपीडितम् ॥ अथागत्य हरेश्चक्रं राक्षसस्य शिरोऽहरत् ॥ ३३ ॥

हे मुनियो! तब सोलहवें वर्षके अन्तमें वायुवेगगामी वह राक्षस चक्रतीर्थमें रहनेवाले पद्मनाभ ऋषिको खानेके लिये दौडा, इस पर उन्होंने जनार्दनकी स्तुति की। तपस्वी पद्मनाभ ऋषि द्वारा स्तुति किये जाने पर विष्णुने उस राक्षससे दुःखी पद्मनाभको बचानेके लिये अपने चक्रको छोडा (भेजा)। चक्रने आ कर राक्षसके शिरको काट डाला ॥ ३३ ॥

अथ सुन्दराख्यस्य राक्षसत्वविमुक्तिपूर्वकं स्वस्वरूपप्राप्तिः

ततोऽयं राक्षसं देहं त्यक्त्वा दिव्यकलेवरः ॥ विमानवरमारुह्य सुन्दरः पुष्पवर्षितः ॥ ३४ ॥ प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा ववन्दे तत्सुदर्शनम् ॥ तुष्टाव श्रुतिरम्याभिर्वाग्भिरग्र्याभिरादरात् ॥ ३५ ॥

तब राक्षसका शरीर छोड, दिव्यशरीर धारण करके उस सुन्दर गन्धर्वने श्रेष्ठ विमानपर चढ कर हाथ जोड़े

हुए नम्रता पूर्वक उन सुदर्शन चक्रको प्रणाम किया और आदर पूर्वक निम्नलिखित कर्णाभिराम बातोंसे उन्हें प्रसन्न किया ॥ ३५ ॥

सुन्दर उवाच—

सुदर्शन नमस्तेऽस्तु विष्णुहस्तैकभूषण ॥ नमस्तेऽसुरसंहर्त्रे सहस्रादित्यतेजसे ॥ ३६ ॥ कृपावेशेन भवतस्त्यक्त्वाहं राक्षसीं तनुम् ॥ स्वं रूपमभजं विष्णोश्चक्रायुध नमोऽस्तु ते ॥ ३७ ॥ अनुजानीहि मां गन्तुं त्रिदिवं विष्णुवल्लभ ॥ भार्या मे परिशोचन्ति विरहातुरचेतसः ॥ ३८ ॥ त्वन्मनस्को भविष्यामि यावज्जीवं यथा ह्यहम् ॥ तथा रूपं कुरुष्व त्वं मयि चक्र नमोऽस्तु ते ॥३९॥

सुन्दर बोला—विष्णुके हाथके भूषण हे ! सुदर्शन आपको प्रणाम है । हजार आदित्यके तेजवाले तथा राक्षसोंके संहार करनेवाले आपको मेरा प्रणाम है । आपकी दयाके प्रभावसे मैं राक्षसके शरीरको छोड़ कर अपने रूपको प्राप्त हुआ हूं । हे विष्णुके चक्रायुध ! आपको मेरा प्रणाम है । हे विष्णुवल्लभ ! मुझको आप स्वर्ग आनेकी आज्ञा दीजिये । विरहसे व्याकुल चित्तवाली मेरी स्त्रियां चिन्ता कर रही हैं । हे चक्र ! मैं जिस प्रकार जीवन-पर्यन्त आपका भक्त होऊं, मुझमें उसी प्रकारकी प्रकृति दीजिये, आपको प्रणाम है ॥ ३९ ॥

एवं स्तुतं विष्णुचक्रं सुन्दरेण सभक्तिकम् ॥ अनुजग्राह सहसा तथास्त्विति मुनीश्वराः ॥ ४० ॥ चक्रायुधाभ्यनुज्ञातः सुन्दरो ब्राह्मणोत्तमम् ॥ प्रणम्य तेनानुज्ञातो गन्धर्वस्त्रिदिवं ययौ ॥ ४१ ॥

हे मुनियो ! इस प्रकार सुन्दरद्वारा भक्तिपूर्वक स्तुति किये जाने पर उस चक्रने शीघ्रतासे कहा—ऐसा ही हो । चक्रकी आज्ञा पा कर वह सुन्दर गन्धर्व श्रेष्ठ ब्राह्मण (पद्मनाभ) को प्रणाम कर और उससे भी आज्ञा ले कर स्वर्गको चला गया ॥ ४१ ॥

सुन्दरे तु गते स्वर्गं पद्मनाभो मुनीश्वरः ॥ तच्चक्रं प्रार्थयामास विष्ण्वायुध नमोऽस्तु ते ॥ ४२ ॥ चक्रायुध नमामि त्वां महासुरविमर्दन ॥ सन्निधानं कुरुष्व त्वं चक्रतीर्थेऽमले शुभे ॥ ४३ ॥ त्वत्सान्निधानात्सर्वेषां स्नातानां पापिनामिह ॥ पापनाशं कुरुष्व त्वं मोक्षं च कुरु शाश्वतम् ॥ ४४ ॥ चक्रतीर्थमिति ख्यातिं लोकेऽस्य परिकल्पय ॥ त्वत्सन्निधानादत्रत्यमुनीनां भयनाशनम् ॥ ४५ ॥ इतः परं भवत्वार्य चक्रायुध नमो-

ऽस्तु ते ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्यो भयं मा भवतु प्रभो ॥ ४६ ॥ इति सम्प्रार्थितं चक्रं पद्मनाभेन योगिना ॥ तथैवास्त्विति सम्भाष्य तस्मिंस्तीर्थे तिरोहितम् ॥४७॥

सुन्दरके स्वर्ग चले जाने पर उस श्रेष्ठ मुनि पद्मनाभने सुदर्शनचक्रको स्तुति की। हे विष्णुके आयुध। आपको मेरा प्रणाम है। हे बड़े राक्षसको मारने वाले चक्र! आपको प्रणाम है। आप इस विमल शुभ चक्रतीर्थके समीप रहिये। आप यहांपर रह कर यहा स्नान करनेवाले सब पापियोंके पापको नष्ट कीजिये, स्थायी मोक्ष प्रदान कीजिये और संसारमें इस स्थानको चक्रतीर्थनामसे विख्यात कीजिये। आपके यहा रहनेसे इन तीर्थ निवासी मुनियोंका भय सबसे जाता रहे। हे आर्य चक्रायुध! आपको प्रणाम है। हे प्रभो! यहा भूत, प्रेत और पिशाचका भय नहीं हो। पद्मनाभसे इस प्रकार प्रार्थित हो वह चक्र "ऐसा हो" कह कर उस तीर्थमें अन्तर्धान हो गया ॥ ४७ ॥

श्रीसूत उवाच—

एवं वः कथितं विप्रा राक्षसस्योद्भवो मया ॥ माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य कथितं च मलापहम् ॥ ४८ ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥४९॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये चक्रतीर्थमहिमानुवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे ब्राह्मणो। इस प्रकार मैंने आप लोगोसे राक्षसकी उत्पत्ति, तथा चक्रतीर्थके विमल माहात्म्यको कहा है, जिसको सुन कर मनुष्य संसारमें सब पापोंसे छूट जाता है ॥४९॥

इति चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः



जाबाली तीरथ कथा, दुष्ट विप्र इतिहास।
जाबाली ऋषिसे कथित, पावन श्राद्ध विकाश ॥१॥
महिमा श्राद्ध अनन्त फल, उल्लङ्घनका पाप।
पन्द्रहवें अध्यायमें, वर्णित सूत कलाप ॥२॥

अथ जाबालितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीसूत उवाच—

भो भो तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ १ ॥ ततो जाबालितीर्थस्य माहात्म्यं वर्णयाम्यहम् ॥ दुराचाराभिधो यत्र स्नात्वा मुक्तोऽभवद् द्विजाः ॥ २ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे नैमिषारण्यके रहनेवाले सब तपस्वियो ! सब पापोंके नाश करनेवाले महा पवित्र वेङ्कटाचलपर जाबालितीर्थके माहात्म्यको वर्णन करता हूं। हे ब्राह्मणो ! जहांपर स्नान करनेसे दुराचार नामक ब्राह्मण मुक्त हो गया था ॥ २ ॥

ऋषय ऊचुः

दुराचाराभिधः कोऽसौ सूत तत्त्वार्थकोविद ॥ किञ्च पापं कृतं तेन दुराचारेण वै मुने ॥ ३ ॥ कथं वा पातकान्मुक्तस्तीर्थेऽस्मिन्स्नानवैभवात् ॥ एतच्छुश्रूषमाणानां विस्तराद्वद नो मुने ॥ ४ ॥

मुनि बोले—हे तत्त्वके अर्थको जाननेवाले पण्डित ! श्रीसूतजी ! यह दुराचार नामका कौन था ? हे मुनि उस दुराचारने कौनसा पाप किया था ? इस तीर्थके स्नानके माहात्म्यसे वह किस प्रकार पापसे छूट गया ? हे मुनि सुननेमें तत्पर हमलोगोंको यह वृत्तान्त कहिये ॥४॥

अथ कावेरीतीरवासिदुराचाराख्यद्विजोदन्तः

श्रीसूत उवाच—

मुनयः श्रूयतां तस्य दुराचारस्य पातकम् ॥ जाबालितीर्थस्नानेन यथा मुक्तश्च पातकात् ॥ ५ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे मुनियो ! आप लोग दुराचारके पापको सुनें और जिस प्रकार वह जाबालितीर्थमें स्नान करके पापसे छूट गया सो भी सुनें ॥५॥

दुराचाराभिधो विप्रः कावेरीतीरमाश्रितः ॥ कश्चिदास्ते द्विजः पापी क्रूरकर्मरतः सदा ॥ ६ ॥ ब्रह्मघ्नैश्च सुरापैश्च स्तेयिभिर्गुरुतल्पगैः ॥ सदा संसर्गदुष्टोऽसौ तैः साकं न्यवसद् द्विजाः ॥ ७ ॥ महापातकसंसर्गदोषेणास्य द्विजस्य वै ॥ ब्राह्मण्यं सकलं नष्टं निःशेषेण द्विजोत्तमाः ॥ ८ ॥

पापी एवं सदा क्रूर कर्ममें लगा हुआ दुराचार नामक कोई ब्राह्मण कावेरी तीरपर रहता था। सदा ब्राह्मण मारने, मदिरा पीने, चोरी करने एवं गुरु स्त्री-गमन करनेवालोंके संसर्गसे दोषी हो कर वह उन्हींके साथ रहता था। हे ब्राह्मणो ! महापापियोंके संसर्ग दोषसे उस ब्राह्मणका सब ब्राह्मणत्व समूल नष्ट हो गया था ॥८॥

महापातकिभिः सार्धं दिनमेकं तु यो द्विजः ॥ निवसेत्सादरं तस्य तत्क्षणाद्वै द्विजन्मनः ॥ ९ ॥ ब्राह्मण्यस्य चैकांशो नश्यत्येव न संशयः ॥ द्विदिनं सेवनात्स्पर्शाद्दर्शनाच्छयनात्तथा ॥ १० ॥ भोजनात्सह पङ्क्तौ च महापातकिभिर्द्विजाः ॥ द्वितीयभागो नश्येत ब्राह्मण्यस्य न संशयः ॥११॥ त्रिदिनाच्च तृतीयांशो नश्यत्येव न संशयः ॥ चतुर्दिनाच्चतुर्थांशो विलयं याति हि ध्रुवम् ॥ १२ ॥ अतः परं च तैः साकं शयनासनभोजनैः ॥ तत्तुल्यपातकी भूयान्महापातकिसङ्गवान् ॥ १३ ॥

जो द्विजाति महापापियोंके साथ एक दिन रहता है, शीघ्र ही उसके ब्राह्मणत्वका एक अंश नष्ट हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। दो दिन, सेवन, स्पर्श, सोने एवं महापापियोंके साथ एक पंक्तिमें भोजन करनेसे उसके ब्राह्मणत्वका दूसरा भाग नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। तीन दिनमें तीन अंश, और चार दिनोंमें चार अंश नष्ट हो जाते हैं। इससे बढ़ कर पांच पापियोंके साथ सोने, बैठने और भोजन करनेवाला ब्राह्मण उन्हींके बराबर पापी होता है ॥१३॥

तेन ब्राह्मण्यहीनोऽयं दुराचाराभिधो द्विजः ॥ ग्रस्तोऽभवद्कोपेन

व्यालेनेव बलीयसा ॥ १४ ॥ असौ परवशस्तेन वेतालेनातिपीडितः ॥ देशाद्देशं भ्रमन्विप्रो वनाच्चैव वनान्तरम् ॥ १५ ॥ पूर्वपुण्यविपाकेन दैवयोगेन स द्विजः ॥ वेङ्कटाद्रिं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १६ ॥ अनुद्रुतः पिशाचेन वेतालेन द्विजो ययौ ॥

इसलिये ब्रह्मबन्धु दुराचार नामक ब्राह्मणको एक भयंकर और बलवान किसी वेतालने इस प्रकार पकड़ लिया मानो किसी सर्पने पकड़ लिया हो। उस वेतालसे उत्पीड़ित एवं पीछा किया गया हुआ वह परवश ब्राह्मण देश देश एवं वन वनमें घूमता हुआ पूर्व पुण्यके परिपाक एवं दैवयोगसे, सब पापोंके नाश करनेवाले महापवित्र वेङ्कटाचलको चला गया ॥१७॥

अथ जाबालितीर्थस्नानाद् दुराचारवेतालयोर्महापातकादिनिवृत्तिः

न्यमज्जयत्स वेतालो महापातकनाशने ॥१७॥ जाबालितीर्थे विप्रेन्द्रा महापातकिसङ्गिनम् ॥ उदतिष्ठत्क्षणादेव वेतालेन विमोचितः ॥ १८ ॥ उत्थितोऽसौ द्विजो विप्रास्तस्मात्तीर्थात्तु पावनात् ॥ स्वस्थो व्यचिन्तयत्कोऽयं स्वर्णमुख्याः समीपतः ॥ १९ ॥ कथं मयाऽऽगतमहो कावेरीतीरवासिना ॥ इति चिन्ताकुलः सोऽयं जाबालेस्तीर्थमुत्तमम् ॥ २० ॥ जाबालिनं महात्मानं योगीन्द्रवरमुत्तमम् ॥ समागम्य प्रणम्यासौ दुराचारोऽभ्यभाषत ॥ २१ ॥

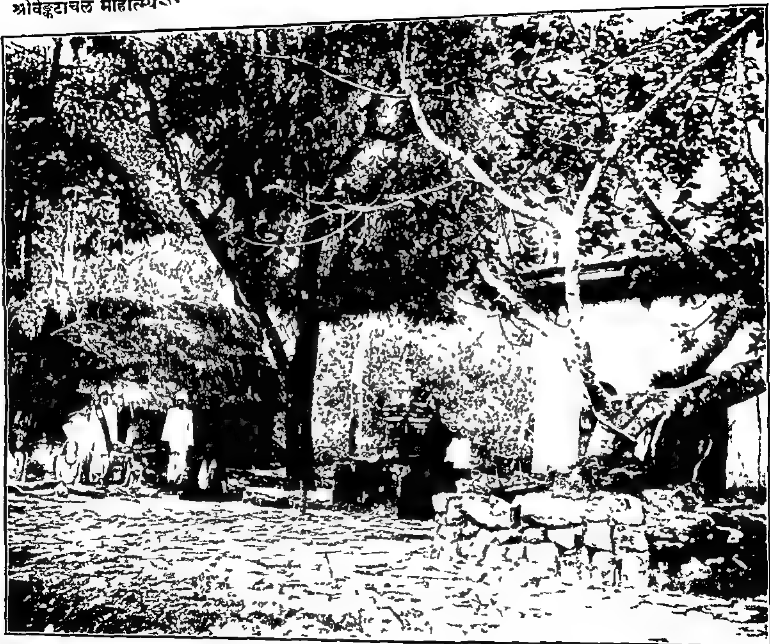
हे ब्राह्मणो ! उस महापापीके संगवाले वेतालने महापापके नाश करनेवाले जाबालितीर्थमें उसको धर डुबाया, जिससे वह वेतालसे छुटकारा पा कर क्षणभरमें उठ खड़ा हुआ। हे ब्राह्मणो ! वह ब्राह्मण उस पवित्र तीर्थसे उठ कर और स्वस्थ हो कर सोचने लगा कि स्वर्णमुखरीके समीप यह कौन है ? कावेरी तीरपर रहनेवाला मैं यहां कैसे आया ? इस प्रकारकी चिन्तासे घबड़ाया हुआ वह दुराचार उत्तम जाबालितीर्थपर आ कर योगियोंमें श्रेष्ठ महात्मा, जाबालिको प्रणाम कर उनसे बोला ॥२१॥

न जाने भगवन्विप्र पर्वतोऽयं वदाधुना ॥ कावेरीतीरनिलयो दुराचाराभिधो ह्यहम् ॥ २२ ॥ कृपया ब्रूहि मे ब्रह्मन्मयाऽत्र कथमागतम् ॥ इति पृष्टो मुनिस्तेन दुराचारेण सुव्रतः ॥२३॥ ध्यात्वा मुहूर्तमवदद् दुराचारं कृपानिधिः ॥ २४ ॥

हे विप्र ! भगवन् ! यह कौन पर्वत है और मैं कावेरीके तीरपर रहनेवाला दुराचार नामका ब्राह्मण हूं। मैं



जाबालितीर्थम् (पृष्ठ ४१४)



श्रीजाबालाश्रमः (पृष्ठ ४७५)

नहीं जानता कि मैं यहां किस प्रकार आया ? हे ब्रह्मन् ! कृपा करके आप कहिये । उस दुराचारके द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर उन दयालु एवं सुव्रत जाबालि मुनि एक मूहूर्त ध्यान करके दुराचारसे बोले ॥२४॥

अथ जाबालिवर्णितपार्वणश्राद्धाकरणदोषप्रशंसा

जाबालिरुवाच—

महापातकिसंसर्गाद्दुराचारस्य ते पुरा ॥ ब्राह्मण्यं नष्टमभवद्वेताल-
स्त्वां ततोऽग्रहीत् ॥ २५ ॥ तेनाविष्टस्त्वमायातो विवशोऽत्र विमूढधीः ॥
न्यमज्जयत्त्वां वेतालस्तीर्थेऽस्मिन्नतिपावने ॥ २६ ॥ अत्र मज्जनमात्रेण वि-
मुक्तः पातकाद्भयात् ॥ जाबालितीर्थे ये स्नानं पुण्यं कुर्वन्ति मानवाः ॥२७॥
तेषां नश्यन्ति वै सत्यं पञ्चपातकसञ्चयाः ॥ सत्कर्मसाधने पुण्यतीर्थेऽस्मि-
न्स्नानमात्रतः ॥ २७ ॥ महापातकिसंसर्गदोषस्ते विलयं गतः

जाबालि बोले—हे दुराचार ! पूर्वमें महापापियोंके संगसे तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया था । तब तुमको वेतालने पकड़ लिया । उससे पकड़े हुए विमूढ बुद्धिवाले तुम यहापर आये, वेतालने तुमको इस अत्यन्त पवित्र तीर्थमें धर डुबाया । यहांपर स्नान करने हीसे तुम पापसे छूट गये हो । जो मनुष्य पवित्र जाबालितीर्थमें स्नान करते हैं, क्षणभरमें उनके पांच पापोंका समूह नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है । इसलिये सत्कर्मोंके साधनरूप इस पवित्र तीर्थमें स्नान करने हीसे तुम्हारा महापापीके संगजनित दोष छूट गया है ॥ २८॥

त्वामग्रहीद्यो वेतालः पुराऽयं ब्राह्मणोऽभवत् ॥२९॥ मृतेऽहनि पि-
तृश्राद्धं नाकरोत्पार्वणेन वै ॥ तेन स्वपितृभिः शप्तो वेतालत्वमगादय-
म् ॥३०॥ सोऽपि जाबालितीर्थस्य जले स्नानप्रभावतः ॥ वेतालत्वं विहा-
यैव विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ३१ ॥ न कुर्याद्यो नरः श्राद्धं मातापित्रोर्मृते-
ऽहनि ॥ वेतालत्वमवाप्याशु पश्चान्नरकमश्नुते ॥ ३२ ॥

जिस वेतालने तुमको पकडा था, वह भी पूर्वमें ब्राह्मण था । पितृदिनमें इसने पितृश्राद्ध नहीं किया था, इसी कारण यह अपने पितरों द्वारा शापित हो कर वेताल हो गया था । वह भी इस जाबालितीर्थके जलमें स्नानके प्रभावसे वेतालत्वको छोड़ कर विष्णुलोकमें चला गया है। जो मनुष्य माता पिताकी मरणतिथिमें श्राद्ध नहीं करता है, वह शीघ्र ही वेतालत्वको प्राप्त हो कर पीछे नरक भोगता है ॥३२॥

श्रीसूत उवाच—

दुराचारो महापापी तीर्थेऽस्मिन् स्नानमात्रतः ॥ प्राप्तवान् विष्णुलो-

कं वै पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥ ॥ एवं वः कथितं पुण्यं दुराचारविमोक्ष-
णम् ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं सर्वपापहरं शुभम् ॥ यत्र हि स्नानमात्रेण
दुराचारो विमोचितः ॥ यानि निष्कृतिहीनानि पापान्यपि विनाशये-
त् ॥ ३५ ॥ शूद्रेण पूजितं लिङ्गं विष्णुं वा यो नमेद् द्विजः ॥ प्रायश्चित्तं
न स्मृतिषु तस्योक्तं परमर्षिभिः ॥ ३६ ॥ नश्येत्तस्यापि तत्पापं तीर्थे जा-
बालिसंज्ञके ॥ विप्रनिन्दाकृतां चैव प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥ ३७ ॥ विश्वास-
घातुकानां च कृतघ्नानां च निष्कृतिः ॥ भ्रातृभार्यारतानां च प्रायश्चित्तं न
विद्यते ॥ ३८ ॥ तेषां जाबालितीर्थे वै स्नानाच्छुद्धिर्भविष्यति ॥

श्री सूतजी बोले—महापापी दुराचार इस तीर्थमें स्नान करने हीसे विष्णु लोकको चला गया, जहांसे फिर लौटना नहीं पड़ता। इस प्रकार आप लोगोंसे दुराचारकी पवित्र मुक्तिके सम्बन्धमें कहा, इसलिये यह सबसे पवित्र शुभ, एवं पापको हरण करनेवाला है। यहांपर स्नान मात्र ही से दुराचार पापोंसे मुक्त हो गया। जो प्रायश्चित्तसे हीन दूसरे दूसरे पाप हैं, उनको भी यह तीर्थ नष्ट करता है। शूद्र द्वारा पूजित शिवलिङ्ग अथवा विष्णु मूर्तिको जो ब्राह्मण प्रणाम करता है, उसका प्रायश्चित्त महर्षियोंने स्मृतियोंमें नहीं कहा है। उसका भी वह पाप जाबालि नामक तीर्थमें स्नानकरनेसे नष्ट हो जाता है। ब्राह्मणोंकी निन्दा करनेवाले, विश्वासघातियों, कृतघ्नों एवं भाईकी स्त्रीमें रत होनेवालोंका प्रायश्चित्त नहीं है, किन्तु जाबालितीर्थमें स्नान करनेसे उनकी भी शुद्धि हो जाती है ॥ ३८ ॥

एवं वः कथितं विप्रा जाबालेस्तीर्थवैभवम् ॥ ३९ ॥ यच्छ्रुत्वा सर्व-
पापेभ्यो मुच्यते मानवो भुवि ॥ ४० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये जाबालितीर्थ-
महिमानुवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

हे ब्राह्मणो! इस प्रकार आप लोगोंसे जाबालितीर्थका माहात्म्य मैंने कहा, जिसको सुन कर संसारमें मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है ॥ ४० ॥

इति पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः



महिमा तीरथ घोणकी, उल्लङ्घनसे दोष।
तुम्बुरु किन्नरका चरित, स्नान माघ निर्दोष ॥१॥
निज रमणी अभिशाप पुनि, तुम्बरु कथित उपाय।
ऋषि अगस्त्य दर्शननस, रमणी हरि तन जाय ॥२॥
ऋषि अगस्त्यसे कथित यह, पातिव्रत उपदेश।
स्नाता तीरथ घोणके, अमित अमल फलेश ॥३॥

अथ तुम्बुरुघोणतीर्थमाहात्म्यम्

श्रीसूत उवाच—

अत्राहं संप्रवक्ष्यामि शौनकाद्या महौजसः ॥ घोणतीर्थस्य माहा-
त्म्यं सर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नानं जनानां तु जन्मान्तरतपः-
फलम् ॥ उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ २ ॥ तुम्बोस्तीर्थे मीनसं-
स्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः ॥ अपराह्ण समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ॥३॥

श्री सूतजी बोले—हे तेजस्वि शौनकादि ! यहांपर मैं सब पापोंके नाश करनेवाले घोणतीर्थके माहात्म्यको कहता हूँ। यहांपर स्नान करना मनुष्योंके जन्मान्तरकी तपस्याका फल है। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रसे युक्त शुक्लपक्षकी पूर्णिमाको सूर्य मीन राशिमें रहनेसे अपराह्णमें गङ्गा इत्यादि तीनों लोकके सब तीर्थ तुम्बुरु (घोण) तीर्थमें स्नान करनेके लिये आते हैं ॥ ३ ॥

ऋषय ऊचुः—

भगवन् सूत सर्वज्ञ सर्वशास्त्रार्थपारग ॥ गङ्गाद्याः सरितः सर्वा
घोणतीर्थेऽतिपावने ॥४॥ किमर्थं [illegible]

ऋषिगण बोले—हे सब शास्त्रोंके अर्थमें पारग ! भगवन् सूतजी ! अत्यन्त पवित्र घोणतीर्थमें गङ्गा इत्यादि सब तीर्थ सूर्यके मीन राशिमें होने पर क्यों स्नान करते हैं ? ॥ ५ ॥

श्रीसूत उवाच—

पापिनो मनुजाः सर्वे ह्यस्मासु स्नान्ति यत्नतः ॥ विसृज्य पापजा-
लानि कृतार्था यान्ति वै जनाः ॥ ६ ॥ अस्माकं पापजालं तत्कथं नश्यति
सर्वतः ॥ एवमालोच्य तीर्थानि गङ्गादीनि प्रयत्नतः ॥ ७ ॥ संस्मृत्य ब्रह्म-
पुत्रस्य नारदस्य महात्मनः ॥ वाक्यं मनोहरं दिव्यं सर्वपापनिषूदनम् ॥८॥
गत्वा श्रीवेङ्कटं शैलं ब्रह्महत्यादिशोधकम् ॥ तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वामि-
पुष्करिणीजले ॥९॥ अनन्तरं ततो विप्रा घोणतीर्थेऽतिपावने ॥ उत्तराफल्गु-
नीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ १० ॥ स्नान्ति तीर्थानि सर्वाणि मीनसंस्थे
प्रभाकरे ॥ तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ११ ॥ तस्मात्पु-
ण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं द्विजोत्तमाः ॥

श्री सूतजी बोले—गङ्गादि सब तीर्थ यत्नसे यह सोच कर कि "सब पापी मनुष्य हममें यत्नसे स्नान करते और सब पापके जालको छोड कर कृतार्थ हो जाते हैं, किन्तु हम लोगोंका पाप जाल किस प्रकार नष्ट होगा," ब्रह्माके पुत्र महात्मा नारदके वचनको स्मरण कर, सुन्दर, दिव्य, एवं ब्रह्महत्या इत्यादि सब पापोंको नष्ट करनेवाले श्री वेङ्कटाचल पर जा कर, वहा श्रेष्ठ तीर्थ स्वामिपुष्करिणीके जलमे स्नान कर, तब अत्यन्त पवित्र घोणतीर्थमे मीन राशिके सूर्यमें उत्तरा फल्गुनीयुक्त, पूर्णमामें स्नान करते हैं। उस तीर्थके माहात्म्यको तीनों लोकमे कौन जानता है ? हे ब्राह्मणो ! इसलिये घोणतीर्थ सबमे पवित्र तीर्थ है।

अथ घोणतीर्थस्नानविमुखानां महादोषवर्णनम्

आरामोच्छेदकं क्रूरं कन्यातुरगविक्रयम् ॥ १२ ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं
तमाहुर्ब्रह्मघातुकम् ॥ देवद्रव्यापहन्तारं तथा दत्तापहारकम् ॥ १३ ॥ घोण-
स्नानपरित्यक्तं तमाहुर्ब्रह्मघातुकम् ॥ तटाकसेतुभेत्तारं परस्त्रीसङ्गलोलुप-
म् ॥१४॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ ददामीति द्विजायो-
क्त्वा पश्चाद्यो नास्तिकोऽधमः ॥ १५ ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं सुरापं तं
विदुर्बुधाः ॥

महर्षिगण आराम (बगीचा) को काटनेवाले, क्रूर हृदयवाले, कन्या एवं घोडेको बेचनेवाले एवं उस घोणतीर्थ स्नानको छोड़े हुएको ब्रह्मघाती कहते हैं। पण्डितगण देवताके द्रव्यको नष्ट करनेवाले, दिए हुएको लेनेवाले, एव उस

घोण स्नानको छोड़े हुएको ब्रह्मघाती कहते हैं। विद्वान लोग उस घोण स्नानको छोड़े हुए, तडाग और सेतुको नष्ट करनेवाले, दूसरेकी स्त्रीके सङ्ग करनेमें लोभीको चोर कहते हैं। पण्डितगण, घोण स्नानको छोड़े हुए तथा "ब्राह्मणको दूंगा, ऐसा कह कर पश्चात् नहीं" कहनेवाले नीचको शराबी कहते हैं॥

गुरुविप्रजनद्वेष्यमात्मस्तुतिपरायणम् ॥ १६ ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ असंस्कृतान्नभोक्तारं पितृशेषान्नभोजिनम् ॥१७॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं द्विजाः ॥ पितृशेषान्नदातारं माता-पितृविरोधिनम् ॥ १८ ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः स्तेयिनं बुधाः ॥ पर-स्त्रीसङ्गनिरतं भ्रातृभार्यारतिप्रियम् ॥ १९ ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गु-रुतल्पगम् ॥ चण्डालभाषिणं विप्रं सदैवादर्भपाणिकम् ॥ २० ॥ घोणस्नान-परित्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम् ॥

गुरु और ब्राह्मण परिवारसे द्वेष करने वाले, अपने प्रशंसामें लगे हुए एवं उस घोग स्नानको छोड़े हुएको ज्ञानीगण चोर कहते है। विना संस्कार किये हुएके अन्नको खानेवाले पितृकर्मके शेष अन्नको भोजन करनेवाले एवं घोण स्नानको छोड़े हुएको ब्राह्मण चोर कहते हैं। पितृकर्मके शेष अन्नको दान करनेवाले, माता और पिताके विरोधी एवं उस घोण स्नानको छोड़े हुएको विद्वान लोग चोर कहते हैं। दूसरेकी स्त्रीके संगमें लगे हुए, भाईके स्त्रीमें रत रहनेवाले एवं उस घोण स्नानको छोड़े हुएको, गुरुस्त्रीगामी कहते हैं। हाथमें विना कुशके सदा रहने एवं चण्डालसे बोलनेवाले ब्राह्मण एवं उस घोण स्नानको छोड़े हुएको मुनिगण पाचवां पापियोंका संसर्गी कहते हैं॥ २१॥

रजस्वलाश्वचण्डालध्वनिं श्रुत्वाऽन्नभोजिनम् ॥ २१ ॥ घोणस्नानपरि-त्यक्तं तत्संसर्गं तु पञ्चमम् ॥ पुराणोद्वाहमौञ्ज्यादिधर्माणां विघ्नकारकम्॥२२॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुः पशुघातुकम् ॥ शरणागतहन्तारं सर्वतीर्थपरा-ङ्मुखम् ॥२३॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्भ्रूणहं बुधाः ॥ पितृयज्ञपरित्यागं त्यक्तभार्यं कुलाधमम् ॥ २४ ॥ घोणस्नानपरित्यक्तं तमाहुर्गोविघातुकम् ॥ महापापसमानानि क्षुद्रपापानि यानि च ॥ २५ ॥ घोणस्नानपरित्यक्तमा-श्रयन्ति द्विजोत्तमाः ॥ २६ ॥

रजस्वला और चण्डालके शब्दको सुन कर अन्न भोजन करनेवाले उन पापियोंका संसर्गी तथा उस घोण स्नानको छोड़े हुएको पाचवां महापापी कहते हैं। पुराण श्रवण, विवाह मौञ्जी कर्मइत्यादि धर्मोंमें विघ्न करनेवाले

एव उस घोण स्नानको छोड़े हुएको पशुघाती कहते हैं। शरणमें आये हुएको मारनेवाले, सब तीर्थोंसे विमुख एवं उस घोण स्नानको छोड़े हुएको पण्डित लोग शिशुघाती कहते हैं। ब्राह्मण पितृयज्ञ तथा भार्याको छोड़नेवाले, कुलमें अधम एवं उस घोण स्नानको छोड़े हुएको गोघाती कहते हैं। हे ब्राह्मणोत्तम! जो महापापके समान समपातक या छोटे, छोटे पाप हैं वे सब उस घोण स्नानको छोड़े हुएके आश्रयमें आते हैं॥ २६॥

अथ घोणस्नानस्य सर्वपापापनोदकत्ववर्णनम्

महापापरतं विप्राः श्वपचं वा कुलाधमम्॥ क्रूरं कुलान्तकं कष्टम-
दत्तं कर्मवर्जितम्॥ २७॥ पशुघ्नं च परद्रोहमाश्रितं पिशुनं तथा॥ अस-
त्यभाषिणं दम्भं परपाकरतं तथा॥ २८॥ मित्रद्रोहं कृतघ्नं च भ्रूणहं
चातिपातकम्॥ परदाररतं पापं पराणामर्थसूचकम्॥ २९॥ अनृतं
कृषिकर्माणं स्वामिद्रोहं च वञ्चकम्॥ सलोभं पितृहन्तारं सर्वदेवपराङ्मु-
खम्॥ ३०॥ आत्मप्रशंसां कुर्वाणं धर्मविघ्नकरं शठम्॥ अपात्रव्यय-
कर्तारं सानुकूल्यविभेदकम्॥ ३१॥ सुपल्लवफलोपेतवृक्षविच्छेदका-
रकम्॥ विश्वासघातुकं चैव वीरहत्यापरायणम्॥ ३२॥ अनग्निकमपुत्रं
च विषकर्मप्रयोगिणम्॥ गुरुद्वेषकरं पापं दम्पत्योर्विरसावहम्॥ ३३॥
ग्रामाधिपत्यं कुर्वाणं तथा देवालयस्य च॥ भृतकाध्यापकं विप्रं क्रूरकर्म-
परायणम्॥ ३४॥ प्रकटाकृतपापौघं गुह्याघौघपरायणम्॥ अज्ञानादघक-
र्तारं ज्ञानाद्दुष्कर्मकारकम्॥ ३५॥ एतान् सर्वांश्च विप्रेन्द्रा घोणतीर्थं
मनोहरम्॥ पुनाति स्नानपानाद्यैरहो तीर्थस्य वैभवम्॥ ३६॥

हे ब्राह्मणो! महा पापमें रत, श्वपच, कुल कलङ्क, क्रूर, कुलका अन्त करनेवाले, निर्दयी, दान नहीं देनेवाले, कर्मसे रहित, पशुघाती, परद्रोही, दुष्ट, असत्य भाषी, दम्भी, दूसरेकी रसोईमें लगे हुए, मित्रद्रोही, कृतघ्न,महापापी, बालघाती, पराई स्त्रीमें रत, पिशुन, झूठा, खेती करनेवाले, स्वामीका द्रोही, वञ्चक, लोभी, पिताको मारनेवाले, सब देवताओंसे विमुख, अपनी प्रशंसा करनेवाले, धर्ममें विघ्न करनेवाले, अपात्रको दान देनेवाले, मित्रोंमें भेद करने-वाले, सुन्दर पत्ते और फलसे युक्त वृक्षको काटनेवाले, विश्वासघाती, वीरोंको हत्या करनेवाले, हवनसे हीन, अपुत्र, विष प्रयोग करनेवाले, गुरुसे द्वेष करनेवाले, पापी, दम्पतिमें भेद करनेवाले, ग्रामके अध्यक्ष, देवालयके अध्यक्ष, नौक-रीसे अध्यापन करनेवाले, ब्राह्मण, क्रूरकर्म करनेवाले, पापके समूहको प्रकट करनेवाले गुप्त रूपसे पापोंके समूहमें रत, अज्ञानसे पाप करनेवाले तथा ज्ञानसे खोटे कर्मको करनेवालेको पवित्र घोण तीर्थ स्नान और पानसे पवित्र करता है, धन्य है तीर्थकी महिमा॥ ३६॥

अथ तुम्बुर्वाख्यगन्धर्वचरितम्

श्रीसूत उवाच—

अत्रेतिहासं वक्ष्यामि पुराणं पापनाशनम् ॥ सर्वपापप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ ३७ ॥

श्रीसूतजी बोले—यहांपर प्राचीन पापको नाश करनेवाले एवं सब पापोंको छुड़ा कर अपवर्ग फलको देनेवाले एक इतिहासको मैं कहता हूं ॥३७॥

पुरा गार्ग्यो महातेजाः सर्वविद्याविशारदः ॥ सर्वज्ञो नीतिमान्विप्रः प्राह चेत्थं जितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ देवलं च महात्मानं नमस्कृत्य प्रसन्नधीः ॥ कथयस्व महाभाग मयि कारुणिको भव ॥ ३९ ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं सर्वपापहरं शुभम् ॥ ४० ॥

पूर्वमें महातेजस्वी, सब विद्यामें विशारद, सर्वज्ञ, नीतिको जाननेवाले तथा जितेन्द्रिय ब्राह्मण गर्गने महात्मा देवलको प्रणाम करके प्रसन्न मनसे उनसे पूछा—हे महाभाग ! मेरे ऊपर कृपा करके सब पापोंके हरण करनेवाले घोणतीर्थके माहात्म्यको कहिये ॥४०॥

देवल उवाच—

तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां शप्त्वा पतिव्रताम् ॥ अत्र स्नात्वा समभ्यर्च्य वेङ्कटेशं दयानिधिम् ॥ ४१॥ प्राप्तवान्विष्णुलोकं वै पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥ ४२ ॥

देवल बोले—तुम्बुरु नामका गन्धर्व अपनी पतिव्रता स्त्रीको शाप दे कर, यहांपर स्नान एवं दयानिधि श्रीवेङ्कटेशकी पूजा करके विष्णुलोकमें गया, जहांसे फिर लौटना नहीं होता ॥४२॥

गार्ग्य उवाच—

किमर्थं देवल ऋषे भार्यां रूपवतीं स्त्रियम् ॥ तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः ॥ ४३ ॥ शप्तवान् केन दोषेण भार्यां सर्वगुणान्विताम् ॥ तद्वदस्व महाभाग श्रोतुं कौतूहलं हि मे ॥ ४४ ॥

गार्ग्य बोले—हे ऋषि ! देवल ! सब विद्याओंमें विशारद तुम्बुरु गन्धर्वने सुन्दरी, सब गुणोंसे युक्त अपनी स्त्रीको किस लिये शाप दिया था ? हे महाभाग ! वह मुझसे कहिये, मुझे सुननेकी उत्कण्ठा है ॥४४॥

अथ स्वभार्यायै तुम्बुरूपदिष्टमाघस्नानविधिप्रकारः

तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वो भार्यां प्रीत्या ह्युवाच ह ॥ माघत्रये मया साकं स्नानं कुरु मलापहम् ॥ ४५ ॥ माघमास्युदिते सूर्ये सर्वकल्मषनाशने ॥ तीरेऽस्मिन्विष्णुपूजार्थं गोमयालेपनं कुरु ॥ ४६ ॥ रङ्गवल्यादिभिः शुभ्रपद्मस्वस्तिकधातुभिः ॥ शुश्रूषां कुरु मे विष्णोर्मासेऽस्मिन्मङ्गलप्रदे ॥ ४७ ॥ माघेऽस्मिन्माधवस्यास्य कुरु त्वं दीपवर्तिकाम् ॥ सधूपं पावकं भक्त्या समर्पय हरेः पुरः ॥ ४८ ॥ कुरु पाकं शुचिर्भूत्वा माधवाय महात्मने ॥ प्रदक्षिणनमस्कारैर्भक्त्या माघे मया सह ॥ ४९ ॥ कुरुष्व देवदेवस्य सपर्यां विष्णवेऽन्वहम् ॥

तुम्बुरु नामक गन्धर्वने प्रसन्न हो कर अपनी स्त्रीसे कहा—माघमासके तीन दिनोंमें मेरे साथ पापको छुड़ानेवाले स्नानको करो। माघमासमें सूर्यके उगनेपर सब पापोंको नाश करनेवाले इस तीर्थके तीरपर विष्णुके पूजनके लिये गोबरसे चौका लगाओ। मङ्गलको देनेवाले इस मासमें रंगोंकी वल्ली (कूंची) इत्यादि स्वच्छ पद्म एवं शुभप्रद धातुओंसे विष्णुकी सेवा करो। इस माघमें माधवको दीप दान करो, और भक्तिपूर्वक धूपके साथ अग्निको श्रीहरिके आगे रखो। पवित्र हो कर महात्मा माधवके लिये पाक करो। प्रतिदिन मेरे साथ भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणा और नमस्कारसे देवदेव विष्णुकी सेवा करो ॥४९॥

पुराणश्रवणं विष्णोः कुरु नित्यमतन्द्रिता ॥ ५० ॥ नित्यं स्नात्वा प्रयत्नेन पिब पादोदकं हरेः ॥ कृष्ण विष्णो मुकुन्देति नारायण जनार्दन ॥ ५१ ॥ अच्युतानन्त विश्वात्मन्निति कीर्तय सन्ततम् ॥ क्रोधमात्सर्यलोभादींस्त्यक्त्वा त्वं व्रतमाचर ॥ ५२ ॥ तेन ते जायते मुक्तिर्विष्णुलोकश्च शाश्वतः ॥

नित्य ही आलस्यसे रहित हो कर विष्णुपुराणको श्रवण करो। नित्य स्नान करके प्रयत्नसे विष्णुके चरणामृत ग्रहण करो। कृष्ण! विष्णु! मुकुन्द! नारायण! जनार्दन! अच्युत! अनन्त! विश्वात्मन्! ऐसा सदा कीर्तन करो। क्रोध, मात्सर्य, लोभ इत्यादिको छोड़ कर तुम व्रतको करो। इससे तुमको स्थायी विष्णु लोक और मुक्ति होगी ॥५२॥

अथ भार्यां प्रति तुम्बुरुदत्तशापतद्विमुक्तिप्रकारो

इत्थं सा भर्तृगदितं श्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा ॥ भर्तारमब्रवीत्कोपाद-

सह्यं दुर्गतिप्रदम् ॥ ५३ ॥ माघे चोद्भूतशीते तु प्रातर्मन्दोदिते रवौ ॥ कथं निमज्जयेदस्मिन्माघे शीतार्तिदेऽनघ ५४ ॥ यत्त्वयोक्तानि कर्माणि न शक्यानि मया सकृत् ॥ न करोमि पते स्नानं प्रातःकाले त्वया सह ॥५५॥ मृते शीतातिपातेन न च मे रक्षको भवान् ॥

इस प्रकार पतिके कथनको सुन कर वह गन्धर्वकी स्त्री दुर्गति देनेवाला असह्य वचन बोली–माघके शीतमें प्रात काल सूर्यके थोडे उदय होने पर शीतको देनेवाले इस मासमे कैसे मुझे डुबायेंगे । आपने जो जो काम कहा है, वे मुझसे एक बार भी नहीं होगे। हे स्वामी । प्रात:काल आपके साथ मैं स्नान नहीं करूंगी, बहुत शीतके गिरनेसे मेरी मृत्युमे आप मेरी रक्षा करनेवाले नहीं होंगे ॥५६॥

इत्येवमुदितं श्रुत्वा पतिर्गन्धर्ववल्लभः ॥ ५६ ॥ स शान्तोऽपि शशापाथ भार्यां चाप्रियवादिनीम् ॥ पुत्रं च धर्मविमुखं भार्यां चाप्रियभाषिणीम् ॥ ५७ ॥ अब्रह्मण्यं च राजानं सद्यः शापेन दण्डयेत् ॥ इति न्यायं विचिन्त्यासौ शशापेत्थं सतीं तदा ॥५८॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वपातकनाशने ॥ घोणतीर्थसमीपे च पिप्पलद्रुमकोटरे ॥ ५९ ॥ तत्राम्बुरहिते मूढे मण्डूका भव केवलम् ॥

इस प्रकारके कथनको सुन कर उस गन्धर्व प्रियाने शान्तप्रकृति होने पर भी अप्रिय बोलनेवाली स्त्रीको शाप दिया। "धर्मसे विमुख पुत्र, अप्रिय बोलनेवाली स्त्री, और अब्रह्मण्य (ब्राह्मण विमुख) राजाको शीघ्र ही शापसे दण्ड देना चाहिये।" ऐसे न्यायको सोच कर तब उस साध्वीको इस प्रकार शाप दिया। हे मूर्ख। महापवित्र एवं सब पापोंको नाश करनेवाले वेङ्कटाचलपर घोणतीर्थके पास पीपलवृक्षके कोटरमें विना जलके वहांपर मण्डूक हो जाओ ॥६०॥

इत्येवं भर्तृवाक्यं तच्छ्रुत्वा गन्धर्ववल्लभा ॥ ६० ॥ पतित्वा पादयोस्तस्य तुम्बुरुं प्रार्थयत्ततो ॥ विशापमवदत्पश्चाद्धार्तो वै तुम्बुरुस्तदा ॥ ६१ ॥ अगस्त्यो वै महाभागस्तपस्वी विजितेन्द्रियः ॥ घोणतीर्थवरे स्नात्वा पौर्णमास्यां महातिथौ ॥ ६२ ॥ शिष्येभ्यो वै यदा तस्मिन्नश्वत्थद्रुमसन्निधौ ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं वक्ति वै ब्राह्मणोत्तमः ॥ ६३ ॥ तदा पिप्पलवृक्षस्य कोटरे त्वं समाहिता ॥ श्रुत्वा वै घोणतीर्थस्य माहात्म्यं मोक्षदायकम् ॥ ६४ ॥ विधूय सर्वपापानि मया साकं रमिष्यसि ॥

इस प्रकार पतिके वचनको सुन कर उस गन्धर्वकी स्त्रीने उस तुम्बुरुके चरणोंमें गिर कर शापमोक्षकी प्रार्थना की। तब पति तुम्बुरुने शापके परिहारको भी कहा—महाभाग, तपस्वी तथा जितेन्द्रिय अगस्त्य अपने शिष्योंके साथ महातिथि पूर्णिमाके दिन घोणतीर्थमें स्नान कर जब उस पीपलके पास घोणतीर्थके माहात्म्यको कहेंगे, तब पीपलके कोटरमें सावधान बैठी हुई तुम घोणतीर्थके मोक्षको देनेवाले माहात्म्यको सुन कर सब पापोंसे मुक्त हो कर मेरे साथ रमण करोगी ॥ ६५ ॥

इत्युक्त्वा विररमाथ धर्मपत्नी पतिव्रता ॥ ६५ ॥ भर्तृशापान्महाघो-
रान्मण्डूकतनुमाश्रिता ॥ शेषाद्रिशिखरे तस्मिन् घोणतीर्थस्य दक्षि-
णे ॥ ६६ ॥ शनैःशनैर्गता नारी पिप्पलद्रुमकोटरम् ॥ अब्दायुतं गतं त-
स्या अश्वत्थद्रुमकोटरे ॥ ६७ ॥

ऐसा कह कर वह चुप हो गया। अब वह पतिव्रता पतिके महाघोर शापसे मण्डूक शरीरको धारण की हुई उस शेषाचलके शिखरपर घोणतीर्थके दक्षिण पीपलके कोटरमें धीरे धीरे गई। पीपलके कोटरमें उसके हजारों (दश हजार) वर्ष बीत गये ॥६७॥

ततः कालान्तरेऽगस्त्यो वेङ्कटाद्रिं मनोहरम् ॥ गत्वा श्रीस्वामितीर्थे
च स्नात्वा नियमपूर्वकम् ॥ ६८ ॥ वराहस्वामिनं देवं नत्वा तीर्थस्य दक्षि-
णे ॥ वेङ्कटेशालयं गत्वा श्रीनिवासं कृपानिधिम् ॥ ६९ ॥ वेदवेद्यं विशा-
लाक्षं देवदेवं सनातनम् ॥ नत्वाऽगस्त्यो महाभागो घोणतीर्थं ततो
ययौ ॥ ७० ॥

तब बहुत दिनके बाद अगस्त्य मुनि सुन्दर वेङ्कटाचलको जा, नियमपूर्वक स्वामितीर्थमें स्नान कर, तीर्थके दक्षिण भागमें श्रीवाराह स्वामीको प्रणाम करके, श्रीवेङ्कटेशके मन्दिरमें जा कर, कृपाके निधि, वेदवेद्य, बड़े नेत्रोंवाले, देवदेव तथा सनातन श्रीनिवासको प्रणाम करके वह महाभाग अगस्त्यजी घोणतीर्थको गये ॥७०॥

तत्र स्नात्वा तीर्थवर्ये स्वशिष्यैर्योगिनां वरः ॥ पिप्पलद्रुमच्छा-
यायां शिष्येभ्यो भक्तिपूर्वकम् ॥ ७१ ॥ घोणतीर्थस्य माहात्म्यं ब्रह्महत्या-
विनाशकम् ॥ सर्वमङ्गलदं पुण्यं सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥७२॥ उक्तवान्योगिनां
श्रेष्ठो ह्यगस्त्यो भगवानृषिः ॥ ७३ ॥

वहांपर योगिश्रेष्ठ अगस्त्य अपने शिष्योंके साथ श्रेष्ठतीर्थमें स्नान करके, पीपल वृक्षकी छायामें भक्तिपूर्वक अपने शिष्योंसे ब्रह्महत्याको नाश करनेवाले, सब मङ्गलको देनेवाले, पवित्र एवं सब सम्पत्तिको देनेवाले घोणतीर्थके माहात्म्यको कहने लगे ॥७३॥

अथ घोणतीर्थे अगस्त्यदर्शनेन तुम्बुरुपत्न्या वर्षाभूत्वनिवृत्तिः

तदा श्रुत्वा तु वर्षाभूः पादयोस्तस्य योगिनः ॥ पतित्वा ज्ञानदीपेन विदित्वा वैभवं मुनेः ॥ ७४ ॥ पूर्वरूपं समासाद्य नारीरूपं मनोहरम् ॥ अगस्त्य योगिनां श्रेष्ठ रक्ष रक्ष दयानिधे ॥ ७५ ॥ मां रक्ष दयया ब्रह्मन्पतिवाक्यविरोधिनीम् ॥ इत्युक्त्वा तं विशालाक्षी विरराम ततः परम् ॥ ७६ ॥

तब वह सुन कर मेढ़क ज्ञानदीपसे मुनिके माहात्म्यको जान कर उस योगीके चरणोंमें गिर कर पहलेके अपने सुन्दर स्त्रीरूपको प्राप्त कर 'हे योगियोंमें श्रेष्ठ ! अगस्त्य ! दयाके निधि ! ब्रह्मन् ! मुझ पतिके वचनको विरोध करनेवालीको आप रक्षा कीजिये ।" ऐसा कह कर वह बड़े बड़े नेत्रोंवाली चुप हो गई ।।७६।।

अगस्त्य उवाच—

का त्वं सुश्रोणि भद्रं ते भेकजन्मप्रदायकम् । पापं पूर्वभवे चासीत्तद्वदस्व च मा चिरम् ॥ ७७ ॥

अगस्त्यजी बोले—हे सुन्दर कटिवाली ! तुम कौन हो ? मेढ़कके जन्मको देनेवाला पाप जो पूर्व जन्ममें हुआ है सो मुझसे शीघ्र कहो ।।७७।।

नार्युवाच—

तुम्बुरुर्नाम गन्धर्वः सर्वविद्याविशारदः ॥ तस्य भार्याऽस्म्यहं विप्र ह्यगस्त्य मुनिसेवित ॥७८॥ भर्ता मे सर्वधर्मज्ञस्तुम्बुरुर्मुनिसत्तमः ॥ सर्वधर्मान्मनोज्ञा त्वं कुरु नित्यं मया सह ॥ ७९ ॥ पतिवाक्यं तदा श्रुत्वा परलोकोपकारकम् ॥ असह्यं वाक्यमत्युग्रं दुर्गतिप्रदमेव हि ॥ ८० ॥ मया चोक्तं हि दुर्बुद्ध्या हे तात मुनिसत्तम ॥ ८१ ॥

नारी बोली—सब विद्याओंमें पण्डित तुम्बुरु नामका गन्धर्व था, हे मुनियोंसे सेवित ! ब्राह्मण ! अगस्त्यजी ! मैं उसकी स्त्री हूं । मुनिश्रेष्ठ, मेरा पति तुम्बुरु सब धर्मोंको जाननेवाला है । "हे प्यारी ! तुम मेरे साथ सब धर्मों को करो" ऐसे परलोकमें उपकार करनेवाले पतिके वचनको सुन कर मैंने, हे तात ! अत्यन्त कड़ी, दुर्गतिको देनेवाली क्रूद्ध बात, अपनी दुर्बुद्धिसे कही ।।८१।।

अथागस्त्यकथितपतिव्रताधर्माः

अगस्त्य उवाच—

कुशाग्रबुद्धिस्ते भर्ता शशाप त्वां रुषान्वितः ॥ एवं शापो युक्त एव
पतिवाक्यविरोधिनीम् ॥८२॥ पतिवाक्यमनादृत्य स्वेच्छया वर्तते तु या ॥
सा नारी निरये घोरे पतत्याचन्द्रतारकम् ॥ ८३ ॥ न स्वातन्त्र्यं तु नारीणां
नोल्लङ्घ्यं पतिभाषणम् ॥ पातिव्रत्येन पुण्येन पतिशुश्रूषणेन च ॥ ८४ ॥
स्त्रियो विष्णुपदं यान्ति न चान्यैरपि सुव्रतैः ॥ पतिर्माता पतिर्विष्णुः पति-
र्ब्रह्मा पतिः शिवः ॥ ८५ ॥ पतिर्गुरुः पतिस्तीर्थमिति स्त्रीणां विदुर्बुधाः ॥

अगस्त्यजी बोले—कुशाग्र बुद्धिवाले तुम्हारे पतिने क्रोधित हो कर पतिके वाक्यको विरोध करनेवाली तुमको शाप देकर अच्छाही किया है। पतिके वचनका अनादर करके जो स्त्री अपनी इच्छासे वर्ताव करती है, वह स्त्री चन्द्रमा और तारओंके रहने तक घोर नरकमें रहती है। स्त्रियोंको स्वतन्त्रता नहीं है, पतिके वचनका उलङ्घन स्त्रीको नहीं करना चाहिये। पवित्र पातिव्रत्य एवं पतिकी सेवासे ही स्त्रियां विष्णुपदको प्राप्त होती हैं, दूसरे व्रतोंसे नहीं ? यह विद्वान कहते हैं कि स्त्रियोंके लिये पति ही माता, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, गुरु और तीर्थ है ॥८६।

पतिवाक्यमपाकृत्य या नारी सुकृतैः परैः ॥ ८६ ॥ सदैव युज्यते
सापि नैव शुद्धा भवेत्सकृत् ॥ पतिहीना तु या नारी गुरुभिर्धर्मवित्त-
मैः ॥ ८७ ॥ सा कृतज्ञा विदध्यात्तु व्रतं धर्मफलप्रदम् ॥ पतिना प्रेरिता
सैव पतिबुद्धिपरायणा ॥ ८८ ॥ पतिपादाब्जतीर्थेन या स्नाता सा हरि-
प्रिया ॥ सा स्नाता सर्वतीर्थेषु गङ्गादिषु न संशयः ॥ ८९ ॥ तस्मात्त्वत्कृ-
तदोषस्तु त्वामायातीति तत्फलम् ॥ भुञ्जन्त्यास्तेऽत्र शृण्वन्त्या घोणतीर्थस्य
वैभवम् ॥९०॥ मुक्तिरासीच्छुभाङ्गं तन्नारीरूपं पुनर्यथा ॥ तस्माद् घोण-
स्य तीर्थस्य तुम्बुतीर्थमितीह वै ॥ ९१ ॥ लोके प्रसिद्धिरभवदहो तीर्थस्य
वैभवम् ॥ ९२ ॥

पतिके वचनका अनादर करके जो स्त्री दूसरे पुण्योंमें लगी रहती है वह एक बार भी शुद्ध नहीं होती। जो स्त्री पतिसे हीन हैं वह कृतज्ञा हो, धर्मके जाननेवाले गुरुओंके बताये हुए फलप्रद धर्मको करे, ऐसा करनेसे पतिकी आज्ञामें रहनेवाली होती है। पतिके चरणोदकसे जो स्नान करती है सो श्रीहरिको प्रिय होती है, उसने गङ्गा आदि सब तीर्थोंमें स्नान कर लिया, इसमें संशय नहीं है। इसलिये तुम्हारे किये हुए दोषका फल तुम्हींको

आना है, उसको भोगती हुई तुम घोणतीर्थके माहात्म्यको सुने कर मुक्ति एवं पुनः नारीके रूपको पा गई। इसलिये घोणतीर्थकी प्रसिद्धि तुम्बुरुतीर्थ ऐसी होगी, घोणतीर्थकी महिमा धन्य है ॥९२॥

अथ घोणतीर्थस्नातॄणां नानाविधफलप्राप्तिः

श्रीसूत उवाच—

घोणतीर्थे महापुण्ये सर्वपापविनाशिनि ॥ स्नान्ति ये पौर्णमास्यां वै शौनकाद्या महौजसः ॥ ९३ ॥ तेषां क्रतुफलं पुण्यं तीर्थायुतफलं भवेत् ॥ कपिलागोसहस्रं तु यो ददाति दिने दिने ॥ ९४ ॥ तत्फलं समवाप्नोति स्नानात्तुम्बुरुतीर्थके ॥ रत्नकोटिसहस्राणि यो ददाति दिने दिने ॥ ९५ ॥ मत्तेभानां सहस्राणि तथैवाश्वायुतान्यपि ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य गाहनात् ॥ ९६ ॥

श्री सूतजी बोले—हे उदार शौनकादि मुनिगण ! महापवित्र, सब पापोंको नाश करनेवाले घोणतीर्थमें जो कोई पूर्णिमाके दिन स्नान करते हैं उनको यज्ञ एवं दश हजार तीर्थोंका पवित्र फल प्राप्त होता है। हजारों कपिला गौ जो प्रति दिन देता है, वही फल मनुष्य तुम्बुरु तीर्थमें स्नान करनेसे पाता है और प्रतिदिन जो हजारों करोड़ रत्न, हजारों मत्तहाथी, और दश हजार घोड़े दान देता है, घोणतीर्थमें स्नान करनेवालेको वही फल प्राप्त होता है ॥९६॥

कन्याकोटिप्रदानेन यत्फलं ऋषिभिः स्मृतम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थाच्च पावनात् ॥९७॥ हेमाम्बरसहस्रं यः कुरुक्षेत्रे प्रयच्छति ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात् ॥९८॥ गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे वा स्वाम्यर्थे वा त्यजेत्तनुम् ॥ तत्फलं समवाप्नोति घोणतीर्थस्य वैभवात् ॥९९॥

करोड़ों कन्या दान करनेसे जो फल ऋषियोंने कहा है वही फल पवित्र घोणतीर्थके स्नानसे मिलता है। हजारों तोले सोना एवं हजारों वस्त्र जो कुरुक्षेत्रमें दान करता है, उसका फल घोणतीर्थके स्नानसे मिलता है। गुरु, ब्राह्मण, अथवा स्वामीके लिये जो शरीरको छोड़ देता है, उसका फल घोणतीर्थके माहात्म्यसे मिलता है ॥ ९९ ॥

आपन्नार्तिहराणां च तीर्थसेवापरात्मनाम् ॥ सत्यव्रतानां यत्पुण्यं घोणतीर्थाच्च तद्भवेत् १०० ॥

दुःखियोंके दुःख छुड़ाने, तीर्थोंकी सेवा करने एवं सत्य बोलने वालोंको जो फल होता है घोणतीर्थसे भी वही फल होते हैं ॥ १०० ॥

यत्फलं श्राद्धकर्तॄणां पितॄणामिन्दुसंक्षये ॥ तत्फलं समवाप्नोति

घोणतीर्थाद्धि पावनात् ॥१०१॥ गङ्गायां नर्मदायां च सरयूचन्द्रभागयोः ॥
सर्वेषु पुण्यतीर्थेषु यः स्नानं कुरुते नरः ॥ १०२ ॥ तत्फलं समवाप्नोति
घोणतीर्थाद्धि पावनात् ॥ तस्मात्पुण्यतमं तीर्थं घोणतीर्थं विदुर्बुधाः ॥१०३॥

अमावास्यामें पितरोंका श्राद्ध करनेवालोंको जो फल होता है, वही फल घोणतीर्थसे होता है। गङ्गा, नर्मदा, सरयू, चन्द्रभागा तथा सब पुण्यतीर्थोंमें जो स्नान करता है, उसका फल पवित्र घोणतीर्थसे मनुष्य पाता है। इसलिये पण्डितलोग, घोणतीर्थको सबसे पवित्र तीर्थ कहते हैं॥ १०६॥

य इमं शृणुतेऽध्यायं सर्वपापनिबर्हणम् ॥ वाजपेयफलं तस्य विष्णु-
लोकश्च शाश्वतः ॥ १०४॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये तुम्बुरुतीर्थ-
माहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सब पापोंको छुड़ानेवाले इस अध्यायको जो सुनता है उसको वाजपेयका फल तथा स्थायी विष्णुलोक मिलता है॥ १०४॥

इति षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

वेङ्कट गिरिके तीर्थका, अमित अमल फल पुण्य।
स्वामी पुष्कर तीर्थ पट, पुण्य माहात्म्य अनन्य ॥१॥
अघ गज केशरिकान्त सम, श्रीवेङ्कट माहातम।
शूद्र वैश्य राजन्य द्विज, सुनत होत शुद्धातम ॥२॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलस्य सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णनम्

ऋषय ऊचुः—

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वसङ्कटनाशने ॥ सन्ति वै कति तीर्थानि सूत पौराणिकोत्तम ॥ १ ॥ तेषां सङ्ख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानि तत्र वै ॥ तत्राप्यत्यन्तमुख्यानि वद मे मुनिसत्तम ॥ २ ॥ सद्धर्मरतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च ॥ कानि त्वज्ञानदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च ॥३॥ मुक्तिप्रदानि कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत ॥ ४ ॥

ऋषि बोले—हे पौराणिकोंमें श्रेष्ठ ! सूत ! महापवित्र, सब कष्टोंको नाश करनेवाले वेङ्कटाचलपर कितने तीर्थ हैं ? उनकी संख्या आप मुझसे कहिये। कितने उनमें मुख्य हैं, उनमें कितने अत्यन्त मुख्य हैं। हे मुनिश्रेष्ठ ! वह मुझसे कहिये। अच्छे धर्ममें प्रेम देनेवाले मुख्य कितने हैं ? कौन अज्ञानके नाश करनेवाले, कौन भक्ति तथा वैराग्यको देनेवाले और कौन मुक्तिको देनेवाले, यहां पर हैं। हे सुव्रत ! ये सब मुझसे कहिये ॥ ४ ॥

श्रीसूत उवाच—

षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यान्यत्र नगोत्तमे ॥ अष्टोत्तरसहस्राणि तेषु मुख्यानि सुव्रत ॥ ५ ॥ सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाष्टोत्तरं शतम् ॥ सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक् तेभ्यश्च तानि च ॥ ६ ॥ भक्तिवैराग्यदान्यत्र षष्टिरष्टोत्तरे शते ॥ ७ ॥

श्री सूतजी बोले—इस श्रेष्ठ पर्वत पर छियासठ (६६) करोड़ पवित्र तीर्थ हैं, उनमें एक हजार आठ मुख्य हैं। अच्छे धर्मोंमें प्रेम देनेवाले एक सौ आठ (१०८) मुख्य तीर्थ उन हजारोंसे पृथक् हैं। भक्ति और वैराग्यको देनेवाले एक सौ आठमें साठ (६०) हैं ॥ ७ ॥

अथ स्वामिपुष्करिण्यादिषट्तीर्थस्नाकालनिर्णयः

मुक्तिदान्यत्र षट् चैव वेङ्कटाचलमूर्द्धनि ॥ स्वामिपुष्करिणी चैव वियद्गङ्गा ततः परम् ॥ ८ ॥ पश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमतः परम् ॥ कुमारधारिकातीर्थं तुम्बोस्तीर्थमतः परम् ॥ ९ ॥

वेङ्कटाचलके शिखर पर मुक्ति देनेवाले तो छ ही तीर्थ हैं। (१) स्वामिपुष्करिणी, (२) आकाशगङ्गा, (३) पापनाशन, (४) पाण्डुतीर्थ, (५) कुमारधारिका और (६) तुम्बुरुतीर्थ हैं ॥ ९ ॥

कुम्भमासे पौर्णमास्यां मघायोगो यदा भवेत् ॥ कुमारधारिकां

यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः ॥१०॥ तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफलं भवेत् ॥ मुक्तिश्च भविता तत्र नात्र कार्या विचारणा ॥ ११ ॥ अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः ॥

(१) कुम्भमासकी पूर्णिमाको जब मघासे योग होता है तब हे ब्राह्मणो ! सब तीर्थ कुमारधारिकाको जाते हैं । हे ब्राह्मणो ! वहां पर जो स्नान करता है, वह राजसूयके फलको पाता है । वहां पर मुक्ति भी होती है, इसमे विचार नहीं करना चाहिये । हे ब्राह्मणो ! वहा पर दक्षिणाके साथ अन्नदानकी विधि है ॥ १२ ॥

उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ॥ १२ ॥ तुम्बोस्तीर्थं मीनसंस्थे रवौ तीर्थानि सर्वशः ॥ अपराह्णे समायान्ति तत्र स्नातो न जायते ॥१३॥ मौञ्जीबन्धं विवाहं च कारयेद् द्रव्यदानतः ॥

(२) मीनराशिके सूर्य्यमे उत्तरा फाल्गुनी युक्त पूर्णिमाको सब तीर्थ अपराह्णमें तुम्बुरु तीर्थको आते हैं । वहा पर स्नान करनेवालोंका पुनः जन्म नहीं होता । वहां पर द्रव्य दान करके मौञ्जी बन्धन एवं विवाह इत्यादि करवावे ॥ १४ ॥

मेषसङ्क्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ १४ ॥ पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव च ॥ तत्र स्नात्वा नरः सद्यः शतक्रतुफलं लभेत् ॥ १५ ॥ सुवर्णं तत्र दातव्यं कन्यादानं विशेषतः ॥

(३) मेषराशिके सूर्य्यमें चित्रानक्षत्रसे संयुक्त पूर्णिमाके दिन सब तीर्थ आकाशगङ्गाको आते हैं । वहांपर स्नान करके मनुष्य साक्षात् सौ यज्ञका फल पाता है । वहा पर मनुष्योंको सुवर्णदान करना चाहिये, विशेष कर तो कन्यादान ॥ १६ ॥

वृषभस्थे रवौ विप्रा द्वादश्यां हरिवासरे ॥ १६ ॥ शुक्ले वाप्यथ कृष्णे वा भौमेनापि समन्विते ॥ पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ॥ १७ ॥ तत्र स्नात्वा च गां दत्त्वा मुच्यते प्रतिबन्धकात् ॥

(४) वृषभराशिके सूर्य्यमें हे ब्राह्मणो ! शुक्ल अथवा कृष्ण पक्षमें मङ्गलसे युक्त हरिवासर (एकादशी) के दिन तीनोंलोकके गङ्गा इत्यादि तीर्थ पाण्डुतीर्थमें आते हैं । वहां पर स्नान कर गोदान करनेसे बन्धनसे छूट जाते हैं ॥ १८ ॥

आश्वयुक्छुक्लपक्षे च सप्तम्यां भानुवासरे ॥१८॥ उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम् ॥ उत्तराभाद्रयुक्तायां द्वादश्यां वा समागतः ॥ १९ ॥

शालग्रामशिलां दत्त्वा स्नात्वा च विधिपूर्वकम् ॥ मुच्यते सर्वपापैश्च जन्मकोटिशतोद्भवैः ॥ २० ॥

(५) उत्तराषाढ़के सहित आश्विनशुक्लपक्ष सप्तमी रविवार अथवा उत्तराभाद्रपदायुक्त द्वादशीको पाप विनाश-को आकर वहांपर विधिपूर्वक स्नान करके शालिग्राम दान करनेसे सैकड़ों अथवा करोड़ जन्मोंके पापोंसे छूट जाते हैं ॥ २० ॥

धनुर्मासे सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ॥ आयान्ति सर्वतीर्थानि स्वामिपुष्करिणीजले ॥ २१ ॥ तत्र स्नात्वा नरः सद्यो मुक्तिमेति न संशयः ॥ यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवार्जितं पुरा ॥ २२ ॥ तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः ॥ विभावानुगुणं दानं कार्यं तत्र यथाविधि ॥ २३ ॥ शालग्रामशिलादानं गां दद्याच्च विशेषतः ॥ २४ ॥

(६) धनुर्मास (पोष) के शुक्लपक्षकी द्वादशीको अरुणोदयके समय सब तीर्थ स्वामिपुष्करिणीके जलमें आते हैं। वहांपर स्नान करके मनुष्य साक्षात् मुक्तिको पाता है, इसमें संशय नहीं है। जिसका पहले हजारों जन्ममें पुण्य उपार्जन किया हुआ रहता है, हे ब्राह्मणो! उसीको यहां पर स्नान होता है, दूसरे अकर्मियोंका नहीं। वहांपर अपने विभवके अनुसार दान करना चाहिये। शालिग्रामका दान करे, विशेष कर गोदान करे ॥ २४ ॥

अथ पुराणश्रवणस्य विशेषतः प्राशस्त्यवर्णनम्

ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम् ॥ ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि ॥ २५ ॥ यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम् ॥ मुहूर्तं वा तदर्धं वा क्षणं वा विष्णुसत्कथाम् ॥२६॥ यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ॥ यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ॥२७॥ सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ॥ कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ॥२८॥ नास्ति धर्मः परः पुंसां नास्ति मुक्तिप्रदं परम् ॥

जो पृथ्वीको पवित्र करनेवाली विष्णुकी कथाको सदा सुनते हैं, वे इस मनुष्यलोकमें विष्णुभक्त होते हैं। पृथ्वीको पवित्र करनेवाली कथाको सदा सुननेमें असमर्थ हो, तो एक मुहूर्त, उसका आधा, अथवा क्षणभर भी विष्णुकी कथाको भक्तिसे जो मनुष्य सुनते हैं उनकी दुर्गति नहीं होती। सब यज्ञों एवं सब दानोंमें जो फल है, एक बार पुराण श्रवण करनेसे वे सभी फल मनुष्य पाता है। विशेष करके कलियुगमें पुराण श्रवणसे बढ़कर दूसरा धर्म पुरुषोंका नहीं है, दूसरा मुक्ति देनेवाला भी नहीं है ॥ २८ ॥

पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं परम् ॥ २९ ॥ उभे एव मनुष्याणां
पुण्यद्रुममहाफले ॥ पिबन्नेवामृतं यत्नादेकः स्यादजरामरः॥ ३० ॥ विष्णोः
कथामृतं कुर्यात्कुलमेवाजरामरम् ॥ ३१ ॥

पुराणका श्रवण और विष्णुके नामका संकीर्तन यही दो पुण्यरूपी वृक्षके बड़े बड़े फल हैं। यत्नसे अमृत पीनेसे अकेला ही देव अमर होता है, किन्तु विष्णुकी कथारूपी अमृत कुलमात्रको अजर और अमर कर देता है ॥ ३८ ॥

अथ पुराणवक्तुः सर्वजनीयत्ववर्णनम्

बालो युवाऽथ वृद्धो वा दरिद्रो दुर्भगाऽपि वा ॥ पुराणज्ञः सदा वन्द्यः
स पूज्यः सुकृतात्मभिः ॥३२॥ नीचबुद्धिं न कुर्वीत पुराणज्ञे कदाचन ॥
यस्य वक्त्रोद्गता वाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ॥ ३३ ॥ भवकोटिसहस्रेषु
भूत्वा भूत्वावसीदताम् ॥ यो ददात्यपुनर्वृत्तिं कोऽन्यस्तस्मात्परो गुरुः ॥३४॥
व्यासासनसमारूढो यदा पौराणिको द्विजः ॥ आ समाप्तेः प्रसङ्गस्य नम-
स्कुर्यान्न कस्यचित् ॥ ३५ ॥ न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ॥ देशे
न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ॥ ३६ ॥

बालक, युवा, वृद्ध, दरिद्र, अथवा अभागाही क्यों न हो, किन्तु पुराण जाननेवाला सदा प्रणामके योग्य है, और वह पुण्यात्माओंसे पूज्य है। पुराण जाननेवालों पर कभी नीच बुद्धि नहीं रखे। इनके मुखसे निकली हुई वाणी शरीर धारियोंके लिये कामधेनु है। हजारों जन्ममें पैदा हो कर दुःखभोगियोंको जो नही लौटनेवाली स्थिति (मुक्ति) को देते हैं; इनसे बढ़ कर कौन गुरु है। जब पौराणिक ब्राह्मण व्यासके आसन पर बैठते हैं, तबसे प्रसंगकी समाप्ति तक वे किसीको प्रणाम नहीं करे। दुर्ष्टोसे भरे हुए, और शूद्र एवं श्वापदोंसे पूर्ण स्थानमें अथवा जूएके घरमें बुद्धिमान पवित्र कथाको नहीं कहे ॥ ३६ ॥

सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये ॥ पुण्ये वाथ नदीतीरे वदेत्पु-
ण्यकथां सुधीः ॥ ३७ ॥ श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः ॥
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः ॥ ३८ ॥ अभक्त्या ये
कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः ॥ तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं जन्मनि
जन्मनि ॥ ३९ ॥ पुराणं ये तु सम्पूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः ॥ शृण्वन्ति च
कथां भक्त्या न दरिद्रा न पापिनः ॥ ४०॥

अच्छे मनुष्योंसे भरे हुए, अच्छे ग्राम, अच्छे क्षेत्र, देवायतन अथवा पवित्र नदी के तीरमे विद्वान पवित्र कथाको कहे। श्रद्धा और भक्तिसे युक्त, दूसरे कामोंमें नहीं लालसा रखनेवाले, वागिन्द्रियके संयमी, शुद्ध और शान्त श्रोता ही पुण्यके भागी होते हैं। जो नीच मनुष्य अभक्तिसे पवित्र कथाको सुनते हैं, उनको पुण्यका फल नहीं होता, किन्तु जन्मभर दुःखही होता है। ताम्बूल इत्यादि सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक पुराणकी पूजा करके जो कथाको सुनता है, वह न तो दरिद्र होता है और न पापी॥४०॥

कथायां कथ्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः॥ भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः॥४१॥ सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम्॥ ते बालकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः॥ ४२॥ ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम्॥ श्वविष्ठां भक्षयन्त्येते नरके च पतन्ति हि॥ ४३॥ ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः॥ अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः॥ ४४॥

कथा कहते समय बीचमे जो मनुष्य दूसरी जगह चले जाते हैं, भोगके बीचमें ही उनकी स्त्री और सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। मस्तकपर पगड़ी धारण किये हुए जो कथाको श्रवण करते हैं, वे जड़, नीच एवं पापी मनुष्य होते हैं। ताम्बूल भक्षण करते हुए जो पवित्र कथाको सुनते हैं, वे कुत्तेकी विष्ठाको भक्षण करते हैं और नरकमें गिरते है। जो दम्भी ऊंचे आसनोंपर बैठ कर कथा श्रवण करते हैं, वे अक्षय नरकको भोग कर काक होते हैं॥४४॥

ये च वीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिता॥ शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः॥ ४५॥ असम्प्रणम्य शृण्वन्तो विषवृक्षा भवन्ति हि॥ तथा शयानाः शृण्वन्तो भवन्त्यजगरा हि ते॥ ४६॥ यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः॥ गुरुतल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत्॥ ४७॥ ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथां पापहारिणीम्॥ ते वै जन्मशतं मर्त्याः शुनकाश्च भवन्ति हि॥ ४८॥

जो वीरासनसे या सिंहासनपर बैठ कर श्रेष्ठ कथाको सुनते हैं, वे अर्जुन वृक्ष होते हैं। बिना प्रणाम किये हुए सुननेवाले विषके वृक्ष होते हैं। शयन किये हुए सुननेसे अजगर होते हैं। कथा कहनेवालेके समान आसनपर बैठ कर जो कथा सुनता है, वह गुरुस्त्रीगमनके समान पापको पा कर नरकको जाता है। जो पुराण जाननेवालेकी

और पाप हरण करनेवाली अच्छी कथा की भी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मतक शुनक (कुत्ता) होते हैं ॥ ४८ ॥

कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ॥ ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्ततः परम् ॥ ४९ ॥ कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः ॥ ते भुक्त्वा नरकान् घोरान्भवन्ति वनसूकराः ॥५०॥ कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये नराः ॥ कोट्यब्दं नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ॥ ५१ ॥

कथा कहते हुएमें जो दुष्ट उत्तर करते हैं, वे गर्दभ और उसके बाद कृकलास (गिरगिट) होते हैं। जो मनुष्य कभी भी पवित्र कथाको नहीं सुनते हैं, वे घोर नरक भोग कर वनके सूकर होते हैं। कथा कहते हुएमें जो मनुष्य विघ्न करते हैं, वे करोडों वर्ष तक नरक भोग कर ग्रामके सूकर होते हैं ॥५१॥

ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः ॥ अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५२ ॥ ये श्रावयन्ति मनुजाः पुण्यां पौराणिकीं कथाम् ॥ कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे ॥ ५३ ॥ आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ॥ कम्बलाजिनवासांसि तथा मञ्चकमेव वा ॥ ५४ ॥ स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥ स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ॥ ५५ ॥

कही जाती हुई कथाको जो अनुमोदन करते हैं वे नहीं सुनने पर भी शाश्वत और अव्यय पदको पाते हैं। जो मनुष्य पुराणकी पवित्र कथाको सुनाते हैं, वे पूर्ण सौ करोड़ कल्पतक ब्रह्माके स्थानपर रहते हैं। जो मनुष्य पुराण जाननेवालेको कम्बल, अजिन (कृष्ण मृगचर्म) वस्त्र अथवा मंच (चौकी) बैठनेको देते हैं, वे स्वर्गलोकको पहुंच अपने इच्छित भोगोंको भोग करके ब्रह्मा इत्यादि लोकोंमें ठहर कर दुःखरहित स्थानको जाते हैं ॥५५॥

पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवं वरम् ॥ भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्ते भवन्ति भवे भवे ॥ ५६ ॥ ये महापातकैर्युक्ता ह्युपपातकिनश्च ये ॥ पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमं पदम् ॥ ५७ ॥

पुराण पुस्तकके लिये जो नवीन श्रेष्ठ रस्सी देते हैं, वे जन्म जन्ममें ज्ञानसे सम्पन्न भोगी होते हैं। जो महापाप अथवा उपपातकसे युक्त हैं, वे पुराण श्रवण हीसे परम पदको जाते हैं ॥५७॥

वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं श्रुत्वा ते ऋषयस्ततः ॥ व्यासप्रसादसम्पन्नं

सूतं पौराणिकोत्तमम् ॥ ५८ ॥ पूजयित्वा यथान्यायं प्रहर्षमतुलं ग-
ताः ॥ ५९ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहार-
पूर्वकपुराण श्रवणप्रक्रियाद्यनुवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

महर्षिगण व्यासको प्रसन्नतासे प्राप्त, वेङ्कटाचल माहात्म्यको सुन कर उत्तम पौराणिक सूतजीकी यथोचित पूजा करके अत्यन्त आनन्दित हुए ॥५९॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सर्वतीर्थमहिमोपसंहार-
पूर्वकपुराणश्रवणप्रक्रियाद्यनुवर्णनं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ।
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥





॥ श्री श्रीनिवासाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत-

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यस्य

उत्तरो भागः

अथ कटाहतीर्थमाहात्म्यम्

श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १।

अष्टादशोऽध्यायः

महिमा तीर्थ कटाहकी, श्रद्धा हीनन नर्क।
पान विधान कटाह जल, वृत केशव सम्पर्क ॥१॥
केशवको द्विज कठिन अघ, वैश्या सेवन रूप।
आकुलगे पितु निकट, यत्न करन अनुरूप ॥२॥
भरद्वाज आदेशसे, श्री कटाह जलपान।४
हरयों दोष विनाश-प्रभु, दर्शन मापण दान ॥३॥

ऋषय ऊचुः

सूत सर्वार्थतत्त्वज्ञ वेदवेदान्तपारग ॥ श्रीवेङ्कटाचले तीर्थं कटाहाख्यं सुपावनम् ॥१॥ श्रूयते तस्य माहात्म्यं घुष्यते च जगत्त्रये ॥ अस्माकमेतद् ब्रूहि त्वं कृपया व्यासशासित ॥ २ ॥

ऋषिगण बोले—हे सब अर्थके तत्त्वको जाननेवाले! वेद वेदान्तके पारग! सूतजी! श्रीवेङ्कटाचलपर सुपवित्र कटाह नामक तीर्थ सुना जाता है और उसका माहात्म्य तीनों लोकमें विघोषित है। हे व्यासके शिष्य आप कृपा करके हम लोगोंसे यह कहिये ॥२॥

पुरा वै नारदः श्रीमान्ब्रह्मपुत्रो महानृषिः ॥ द्रष्टुं वै नैमिषारण्यं सम्प्राप्तो द्विजसत्तमः ॥ ३ ॥ तदानीं ब्रह्मपुत्रं तमर्घ्यपाद्यादिभिः शुभैः ॥ पूजयित्वा यथान्यायं पवित्रे च कुशासने ॥ ४ ॥ सन्निवेश्य महाभक्त्या विनयानतकन्धराः ॥ प्रणम्य प्रार्थयामासुरिमे सर्वे महर्षयः ॥ ५ ॥

पहले महर्षि, द्विजश्रेष्ठ, ब्रह्माके पुत्र श्रीमान् नारद नैमिषारण्यको देख कर वहां आये। तब उस ब्रह्माके पुत्रको शुभ अर्घ्य पाद्य इत्यादिकोंसे यथोचित पूजा कर एवं पवित्र कुशासनपर महाभक्तिसे बैठा कर, विनयसे सिरको नीचे किये हुए उन सब महर्षिगणने उनको प्रणाम कर प्रार्थना की ॥५॥

त्वां विना नारदः श्रीमन्नस्माकं भुवनत्रये ॥ धर्मोपदेशकः कश्चिन्नास्ति नास्ति महर्षिषु ॥ ६ ॥ वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वदेवनिषेविते ॥ वैकुण्ठादागते दिव्ये सिद्धगन्धर्वसेविते ॥ ७ ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं वर्णयाद्य वनौकसाम् ॥ ८ ॥

हे श्रीमान नारदजी! आपके बिना हमलोगोंको धर्मका उपदेश देनेवाला तीनों लोकमें महर्षियोंके बीच कोई नहीं है। सब देवताओं और सब सिद्धोंसे सेवित, वैकुण्ठसे आये हुए, दिव्य, महापवित्र, श्रीवेङ्कटाचलपरके कटाह तीर्थके माहात्म्यको आप हम वनवासियोंसे कहिये ॥८॥

श्रीनारद उवाच—

शृणुध्वमृषयः सर्वे शौनकाद्या महौजसः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं को वेत्ति भुवनत्रये ॥ ९ ॥ महादेवो विजानाति तस्य तीर्थस्य वैभवम् ॥ यानि कानि च पुण्यानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि वै ॥ १० ॥ तानि गङ्गादितीर्थानि स्वपापपरिशुद्धये ॥ कटाहतीर्थसेवां च कुर्वन्ति द्विजसत्तमाः ॥ ११ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चेतरजातयः ॥ स्पृशन्ति तज्जलमिति न पिबेयो विमूढधीः ॥१२॥ स हि चण्डालतां प्राप्य कुम्भीपाके पतिष्यति ॥

श्रीनारदजी बोले—हे शौनक इत्यादि महर्षि ! सुनिये। कटाह तीर्थके माहात्म्यको तीनों भुवनमे कौन जानता है ? उस तीर्थके माहात्म्यको महादेवजी ही जानते हैं। हे ब्राह्मणो ! ब्रह्माण्डके अन्तर्गत जो कोई पवित्र गङ्गा इत्यादि तीर्थ हैं, वे सब अपने पापोंको शुद्धिके लिये कटाह तीर्थको सेवा करते हैं। "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और सब अन्य जातिया उस जलको स्पर्श करती हैं," ऐसा समझ कर जो मूर्ख उसका पान नहीं करेगा वह चाण्डाल हो कर कुम्भीपाक नरकमें गिरेगा ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थो यतीश्वरः ॥ १३ ॥ सेवया तस्य तीर्थस्य प्राप्नोति परमं पदम् ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणेषु तस्य तीर्थस्य शंसनम् ॥ १४ ॥ बहुधा वर्ण्यते पञ्चमहापातकनाशनम् ॥ अत्यद्भुततरं विप्राः सर्वलोकैकपावनम् ॥ १५ ॥

ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ अथवा यती, उस तीर्थकी सेवासे परम पदको पहुच जाते हैं। हे ब्राह्मणो ! श्रुति, स्मृति और पुराणोंमें पाच महापापोंको नाश करनेवाला, अत्यन्त अद्भुत तथा सब लोकोंको पवित्र करनेवाला उस तीर्थका माहात्म्य, अनेकों प्रकारसे कहा गया है ॥१५॥

ब्रह्महत्यायुतं चापि सुरापानायुतं तथा ॥ अयुतं गुरुदाराणां गमनं पापकारणम् ॥ १६ ॥ स्तेयायुतं सुवर्णानां तत्संसर्गाश्च कोटयः ॥ शीघ्रं विलयमायान्ति तस्य तीर्थस्य सेवया ॥ १७ ॥ यानि निष्कृतिहीनानि पापानि विविधानि च ॥ तानि सर्वाणि नश्यन्ति तीर्थस्यास्य निषेवणात् ॥ १८ ॥ इदं तीर्थं महापुण्यं भगवत्पादनिस्सृतम् ॥ कुष्ठादिरोगयुक्तो यः प्रत्यहं च पिबेदिदम् ॥ १९ ॥ सोऽपि रोगविहीनः सन्विष्णुलोकं च गच्छति ॥

दश हजार बार ब्रह्महत्या, दश हजार बार सुरापान, दश हजार बार पापोंका कारण गुरु स्त्रीगमन, दश हजार बार सुवर्णकी चोरी एवं करोडों बार उनका संसर्ग ये सब पाप उस तीर्थकी सेवासे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। प्रायश्चित्तसे हीन जो अनेकों प्रकारके पाप हैं, वे सब इस तीर्थकी सेवासे नष्ट हो जाते हैं। श्रीभगवानके चरणसे निकला हुआ इस महा पवित्र तीर्थके जलको कुष्ठ इत्यादि रोगोंसे युक्त जो कोई प्रति दिन पीता है वह भी रोगसे विहीन हो कर विष्णुलोकको जाता है ॥२०॥

अथ कटाहतीर्थमहिमश्रद्धाशून्यानां महानरकप्राप्तिः

भगवाञ्छङ्करो देवो रहस्यानुभवे पुरा ॥ २० ॥ पार्वत्यै कथयामास तस्य तीर्थस्य वैभवम् ॥ उक्तेष्वेतेषु सन्देहो न कर्तव्यः कदाचन ॥ २१ ॥ अर्थवादोऽयमिति च न वक्तव्यं कदाचन ॥ येऽर्थवादमिदं ब्रूयुस्तेषां वै नास्तिकात्मनाम् ॥ २२ ॥ जिह्वाग्रे परशुं तप्तं प्रक्षिपन्ति च किङ्कराः ॥ तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ सर्वदुःखप्रशमनमपवर्गफलप्रदम् ॥ यत्र पीत्वा नरो भक्त्या सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २४ ॥

भगवान श्रीशिवजीने प्राचीनकालमें रहस्य समयमें उस तीर्थके माहात्म्यको पार्वतीजी से कहा था। इन सब कहे हुए विषयोंमें कभी भी सन्देह नहीं करना चाहिये। यह अर्थवाद (प्रशंसा मात्र) है ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये। जो इसको अर्थवाद कहते हैं उन नास्तिक बुद्धिवालोंकी जिह्वाके अग्र भागको तपाये हुए फरसेसे यमदूत लोग दागते हैं। इसलिये सब दुःखोंको शान्त करने एवं अपवर्गके फलको देनेवाले कटाहतीर्थको यत्नसे सेवन करना चाहिये, जहांपर उसके जलको भक्तिसे पी कर मनुष्य सब मनोरथोंको पाता है ॥२४॥

एवमुक्त्वा महाभागः काशीं त्रैलोक्यपावनीम् ॥ सम्प्राप्तो नारदः श्रीमान् सूत पौराणिकोत्तम ॥ २५ ॥ सङ्क्षेपतश्च भगवान्नैमिषे ह्युक्तवान्खलु ॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामः कटाहस्य च वैभवम् ॥२६॥ सुविस्तरेण चास्माकं वद सूत कृपावशात् ॥ २७ ॥

हे श्रेष्ठ पौराणिक सूतजी! ऐसा कह कर महाभाग श्रीमान् नारदजी, तीनो लोकको पवित्र करनेवाली काशीपुरीको आये। आपने नैमिषारण्यमें संक्षेपसे इतना ही कहा था। हे सूत! अब हमलोग कटाह तीर्थके माहात्म्यको सुविस्तारसे सुनना चाहते हैं, कृपापूर्वक आप कहिये ॥२७॥

अथ कटाहतीर्थपानक्रमः

श्रीसूत उवाच—

भोभोस्तपोधनाः सर्वे नैमिषारण्यवासिनः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यं शृणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥२८॥ कटाहतीर्थं भो विप्राः सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ सर्वसम्पत्करं शुद्धं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २९ ॥ दुःस्वप्ननाशनं ह्येतन्महापातकनाशनम् ॥ महाविघ्नप्रशमनं महाशान्तिकरं नृणाम् ॥ ३० ॥ स्मृतिमात्रेण पत्पुंसां सर्वपापनिषूदनम् ॥

श्रीसूतजी बोले—हे नैमिषारण्यके रहनेवाले श्रेष्ठ ब्राह्मण तपस्वियो! कटाहतीर्थके माहात्म्यको सुनो। हे ब्राह्मणो! कटाहतीर्थ, सब लोकोंमें प्रसिद्ध है। सब सम्पत्तिको देने वाला, शुद्ध, सब पापों, दुःस्वप्नों एवं सब महापापों तथा मनुष्योंके महाविघ्नोंका नाश करनेवाला एवं महाशान्तिको देनेवाला है, जिसके स्मरणमात्र ही से पुरुषोंके सब पापोंका नाश हो जाता है ॥ ३१ ॥

मन्त्रेणाष्टाक्षरेणैव पिबेत्तीर्थं मनोहरम् ॥ ३१ ॥ अथवा केशवाद्यैश्च नामभिर्वा पिबेज्जलम् ॥ यद्वा नामत्रयेणाऽपि पिबेत्तीर्थं शुभप्रदम् ॥३२॥ आहोस्विद्वेङ्कटेशस्य मन्त्रेणाष्टाक्षरेण वै ॥ पिबेत्कटाहतीर्थं तद्भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥३३॥ विना मन्त्रेण यो विप्रः संपिबेत्तीर्थमुत्तमम् ॥ "पापं मे नाशय क्षिप्रं जन्मान्तरकृतं महत्" ॥ ३४ ॥ इत्युक्त्वा स पिबेन्नित्यं मोक्षमार्गैकसाधनम् ॥

अष्टाक्षर मन्त्रके उच्चारणके साथ उस सुन्दर जलको पान करे अथवा केशव इत्यादि चौबीस नामों या उनमें पहिलेके तीनों नामोंके उच्चारणके साथ उस सुख देनेवाले तीर्थजलको पीवे या वेङ्कटेशके अष्टाक्षर (श्रीवेङ्कटेशायनमः) मन्त्रके उच्चारणके साथ मुक्ति तथा भुक्तिको देनेवाले कटाह तीर्थके जलको पीवे। यदि कोई ब्राह्मण बिना मन्त्रके उत्तम जलको पीवे तो "मेरे जन्मान्तरके किये हुए बड़े पापको शीघ्र नष्ट करो"—ऐसा कह कर मोक्ष मार्गके एक ही साधन जलको पीवे ॥ ३५ ॥

स्वामिपुष्करिणीस्नानं वराहश्रीशदर्शनम् ॥ ३५ ॥ कटाहतीर्थपानं च त्रयं त्रैलोक्यदुर्लभम् ॥ बहुना किमिहोक्तेन ब्रह्महत्यादिनाशनम् ॥ ३६ ॥

स्वामिपुष्करिणीके स्नान, श्रीवराह भगवानके दर्शन एवं कटाह तीर्थके जलके पान ये तीनों तीनों लोकमें दुर्लभ हैं, बहुत कहनेसे क्या? ये ब्रह्महत्याको भी नष्ट करनेवाले हैं ॥ ३६ ॥

अथ केशवाख्यद्विजवृत्तान्तः

पुरा कश्चिद् द्विजो मोहात्केशवाख्यो बहुश्रुतः ॥ हत्वा खड्गेन दुर्बुद्ध्या ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ ३७ ॥ सोऽपि तस्मिन्महातीर्थे पीत्वा जलमनुत्तमम् ॥ केशवाख्यो महापापी विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ३८ ॥

प्राचीनकालमें बहुत विद्वान केशव नामका ब्राह्मण मोहके कारण खड्गसे ब्राह्मणको मार कर ब्रह्महत्याको प्राप्त हुआ था। वह उस महातीर्थका उत्तम जलको पी कर ब्रह्महत्यासे छूट गया ॥३८॥

ऋषय ऊचुः—

कस्य पुत्रः केशवाख्यः कथं प्राप्तो भयङ्करीम् ॥ ब्रह्महत्यामतिक्रूरामस्माकं वक्तुमर्हसि ॥ ३९ ॥

ऋषिगण बोले—केशव नामक ब्राह्मण किसका पुत्र था और किस प्रकार अत्यन्त कठिन और भयङ्कर ब्रह्महत्याको प्राप्त हुआ सो हम लोगोंसे कहिये ॥ ३९ ॥

श्रीसूत उवाच—

तुङ्गभद्रातटे रम्ये गन्धर्वैरुपसेविते ॥ अग्रहारो महानासीद्वेदाढ्य इति नामतः ॥ ४० ॥ तस्मिन्वेदपुरे रम्ये ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ शब्दशास्त्रपराः सर्वे ज्योतिःशास्त्रप्रवर्तकाः ॥ ४१ ॥ मीमांसातर्कशास्त्रज्ञाः सर्वे वेदान्तवादिनः ॥ धर्मशास्त्रेषु निरताः अन्नदानपराः सदा ॥४२॥ पुत्रवन्तश्च ते सर्वे ह्यग्रहारे महाजनाः ॥

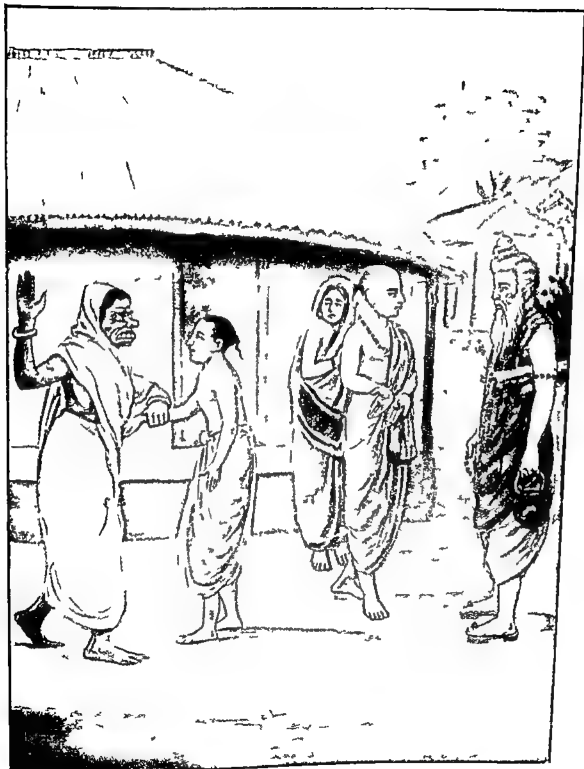
श्रीसूतजी बोले—गन्धर्वोंसे सेवित तुङ्गभद्राके सुन्दर तट पर वेदाढ्य नामका एक बड़ा अग्रहार (पूर्व दिशामें विष्णु मन्दिर और पश्चिम दिशामें शिवमन्दिरवाला बड़ा ग्राम) था। उस सुन्दर वेदपुरमें सब ब्राह्मण वेदके पारग, शब्द शास्त्रमें निपुण, ज्योतिः शास्त्रको बनाने, मीमांसा और तर्कशास्त्रको जानने एवं वेदान्तका प्रवचन करनेवाले, धर्मशास्त्रमें लगे हुए, अन्नदान करनेवाले, और पुत्रवान महापुरुष थे ॥ ४३ ॥

अथ गणिकालम्पटस्य केशवद्विजस्य ब्रह्महत्याप्राप्तिक्रमः

वेदाढ्येऽप्यग्रहारे वै पद्मनाभ इति श्रुतः ॥ ४३ ॥ तस्य पुत्रः केशवाख्यः सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥ मातरं पितरं त्यक्त्वा भार्यामपि पतिव्रताम् ॥ ४४ ॥ सर्वदा गणिकासक्तो वेश्यागारं विवेश ह ॥ दिनद्वये च तां वेश्यामनुभूय द्विजस्ततः ॥ ४५ ॥ निष्कद्वयं प्रदातव्यं हस्ते दत्त्वा गतः सुखम् ॥

उस वेद नामक अग्रहारमें पद्मनाभ नामसे प्रसिद्ध एक ब्राह्मण था। केशव नामक उसका पुत्र सब धर्मोंसे बहिष्कृत, हो माता, पिता, एवं पतिव्रता स्त्रीको भी छोड़ कर सदा गणिकामें आसक्त हो एक वेश्याके घरमें गया। तब वह ब्राह्मण दो दिनके लिये दो स्वर्ण मुद्रा उस वेश्याको दे कर सुखसे रहा ॥ ४६ ॥

वेश्यया याचनस्त्वरतस्तत्सम्पर्गैकतत्परः ॥ ४६ ॥ इतस्ततश्चोरयित्वा पट्टद्रव्याणि सन्ततम् ॥ दत्त्वा तया चिरं रेमे तद्गृहे बुभुजे च



इत्युक्त्वा ब्रह्म त्वा सा पद्मनाभमभाषत । हस्तेन प्रजहारास्य सुतं केशवनायकम् ॥
तस्मिन् काले महाभाग भरद्वाज समागतम् । स्तुत्वा प्रणम्य

सः ॥ ४७ ॥ एकेन चषकेणासौ तया सह सुरां पापौ ॥ स कदाचित्कि-
रातैस्तु द्रव्यं हर्तुं ययौ द्विजः ॥ ४८ ॥ विप्रस्य कस्यचिद् गेहे सोऽपि कैरा-
तवेषधृक् ॥ केशवो विप्रबन्धुर्वै साहसी खड्गहस्तवान् ॥ ४९ ॥ तद् गृह-
स्वामिनं विप्रं हत्वा खड्गेन साहसात् ॥ समादाय बहु द्रव्यं वेश्यागारं
विवेश ह ॥ ५० ॥

अन्तमें वह धनहीन ब्राह्मण वेश्या द्वारा परित्यक्त हो कर भी उसीके संयोगमें लगा हुआ इधर उधरसे बहुत धन चुरा कर सदा उसको दे कर उसके साथ बहुत दिन तक रमण करता रहा और उसीके घर खाता रहा। एक ही पात्र (प्याले) से वह उसके साथ मदिरा पीता था। किसी समय किरातोंके साथ द्रव्य हरण करनेके लिये वह भी किसी ब्राह्मणके घर गया। वह साहसी, खड्गधारी, भ्रष्ट केशव ब्राह्मण भी किरातका वेष धारण करके साहससे उस घरके स्वामी ब्राह्मणको खड्गसे मार बहुत द्रव्य ले कर वेश्याके घरमें घुसने लगा ॥ ५० ॥

तं यान्तमनुयाति स्म ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥ नीलवस्त्रधरा भीमा भृशं
रक्तशिरोरुहा ॥ ५१ ॥ गर्जन्ती साट्टहासं सा कम्पयन्ती च रोदसी ॥ अ-
नुद्रुतस्तया विप्रो बभ्राम जगतीतले ॥ ५२ ॥ एवं भ्रमन्धरां सर्वां विप्रबन्धु-
र्दुरात्मवान् ॥ स्वग्रामं प्रययौ भीत्या शौनकाद्या महौजसः ॥ ५३ ॥ अनु-
द्रुतस्तया भीतः प्रययौ स्वनिकेतनम् ॥ ब्रह्महत्याऽप्यनुद्रुत्य तेन साकं गृहं
ययौ ॥५४॥ जनकं रक्ष रक्षेति केशवः शरणं ययौ ॥ मा भैषीरिति स
प्रोच्य पिता रक्षितुमुद्यतः ॥५५॥ क्रूरेनं ब्रह्महत्या सा जनकं प्रत्यभा-
षत ॥५६॥

जाते हुए उस ब्राह्मणके पीछे पीछे भयङ्कर, नील वस्त्र धारण की हुई, बड़े शरीरवाली, अत्यन्त लाल केश वाली, अट्टहाससे गर्ज कर भूलोक और अन्तरिक्ष लोकको कम्पाती हुई एवं रोती हुई ब्रह्महत्या भी चली। उससे पीछा किया हुआ वह ब्राह्मण संसारमें घूमने लगा। हे शौनकादि महर्षि! इस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वीपर घूमता हुआ वह भ्रष्ट ब्राह्मण डर कर अपने ग्रामको आया और अपने घरमें घुस गया। वह ब्रह्महत्या भी उसके पीछे पीछे दौड़ कर घरमें घुस गई। "रक्षा करो! रक्षा करो!!" इस प्रकार वह केशव अपने पिताकी शरणमें गया। "मत डरो" ऐसा कह कर उसका पिता उसकी रक्षा करनेको तैयार हो गया। यह कठिन ब्रह्महत्या तब उसके पितासे बोली ॥ ५६ ॥

अथ स्वसुतरक्षणोद्युक्तं पद्मनाभं प्रति ब्रह्महत्योक्तिः

मैनं त्वं प्रतिगृह्णीष्व पद्मनाभ द्विजोत्तम ॥ अयं सुरापो स्तेयी च

ब्रह्महा चातिपातकी ॥ ५७ ॥ मातृद्रोही पितृद्रोही भार्यात्यागी च दुष्ट-
धीः ॥ गणिकासक्तचित्तश्च ह्येनं मुञ्च दुरात्मकम् ॥ ५८ ॥ गृह्णासि चेत्सु-
तं विप्र महापातकिनं वृथा ॥ त्वद्भार्यामस्य भार्यां च त्वां च पुत्रमिमं द्वि-
ज ॥ ५९ ॥ भक्षयिष्यामि वंशं च तस्मान्मुञ्च दुरात्मकम् ॥ इमं त्यजसि
चेत्पुत्रं युष्मान्मुञ्चामि साम्प्रतम् ॥ ६० ॥ नैकस्यार्थे कुलं हन्तुमर्हसि
त्वं महामते ॥ इत्युक्तः स तया तत्र पद्मनाभोऽब्रवीच्च ताम् ॥ ६१ ॥

ब्रह्महत्या बोली—हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! पद्मनाभ ! इसको तुम ग्रहण मत करो । यह सुरा पीनेवाला, चोर, अत्यन्त पापी, ब्रह्महत्यावाला, माता एवं पितासे द्रोह तथा भार्याको त्याग करनेवाला, दुर्बुद्धि, एवं गणिकामें आसक्तमनवाला है, इस दुष्टको छोड़ दो । हे विप्र ! यदि इस महापापी पुत्रको व्यर्थ ही ग्रहण करोगे, तो तुम्हारी और इसकी स्त्री, तुम, तुम्हारे पुत्र तथा वंशमात्रको भक्षण करूंगी, इसलिये दुष्टको छोड़ो । तुम इस पुत्रको छोड़ दोगे, तो तुमको भी अभी छोड़ दूंगी । हे महाबुद्धिमान ! एकके लिये कुलको नाश कराना तुम्हारे योग्य नहीं है । उसके कहने पर पद्मनाभने उससे कहा ॥६१॥

पद्मनाभ उवाच—

बाधते मां सुतस्नेहः कथं पुत्रं परित्यजे ॥ ब्रह्महत्या तदाकर्ण्य पद्म-
नाभं तमब्रवीत् ॥ ६२ ॥

पद्मनाभ बोला—पुत्र-स्नेह मुझको बाधा करता है, मैं पुत्रको किस प्रकार छोड़ूं । यह सुन कर वह ब्रह्महत्या उससे बोली ॥६२॥

ब्रह्महत्योवाच—

पुत्रोऽयं पतितोऽभूत्ते वर्णाश्रमबहिष्कृतः ॥ पुत्रेऽस्मिन्मा कुरु स्नेहं
निन्दितं तस्य दर्शनम् ॥ ६३ ॥ इत्युक्त्वा ब्रह्महत्या सा पद्मनाभस्य प-
श्यतः ॥ हस्तेन प्रजहारास्य सुतं केशवनामकम् ॥ ६४ ॥ रुरोद तात ता-
तेति जनकं प्रब्रुवन्मुहुः ॥ रुरुदुर्जनको माता भार्या तस्य दुरात्मनः ॥६५॥

ब्रह्महत्या बोली—यह तुम्हारा पुत्र पतित और वर्णाश्रम धर्मसे बहिष्कृत हो गया है । इस पुत्रमें प्रेम मत करो, इसको देखना भी निन्दित है । ऐसा कह कर उस ब्रह्महत्याने अपने हाथसे केशव नामक पुत्रको, उसके पिताके देखते ही पकड़ हाथसे मारा । पिताको बार बार "तात ! तात !!" पुकारता हुआ वह रोने लगा । उस दुष्टके पिता, माता, और स्त्री भी रोने लगी ॥६५॥

अथ पद्मनाभं प्रति भरद्वाजकथितः हत्याविमुक्त्युपायः

तस्मिन्काले महाभागो भरद्वाजो महामुनिः ॥ दिष्ट्या समाययौ योगी शौनकाद्या महौजसः ॥ ६६ ॥ पद्मनाभोऽथ तं दृष्ट्वा भरद्वाजं महामुनिम् ॥ स्तुत्वा प्रणम्य शरणं ययाचे पुत्रकारणात् ॥ ६७ ॥ भरद्वाज महाभाग साक्षाद्विष्णवंशको भवान् ॥ त्वद्दर्शनमपुण्यानां भविता न कदाचन ॥ ६८ ॥ ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी चाभूत्सुतो मम ॥ पुत्रं प्रहर्तुमायाता ब्रह्महत्या भयङ्करी ॥ ६९ ॥

हे शौनकादि महर्षि ! उसी समय महाभाग, महामुनि भारद्वाजजी दैवयोगसे वहां दृष्टिगोचर हुए। पद्मनाभने उन महामुनि भारद्वाजको देख कर, स्तुति और प्रणाम करके पुत्रके लिये शरण मांगी। हे महाभाग ! भारद्वाज ! आप साक्षात् विष्णुके अंशसे उत्पन्न हैं। जिनको पुण्य नहीं होता उनको आपके दर्शन भी कभी नहीं होते। मेरा पुत्र ब्रह्महत्या करनेवाला, चोर एवं सुरापान करनेवाला हो गया है। इस मेरे पुत्रको मारनेके लिये भयङ्कर ब्रह्महत्या आई हुई है ॥६९॥

भूयाद्यथा मे पुत्रोऽयं महापातकमोचितः ॥ घोरेयं ब्रह्महत्या च यथा शीघ्रं लयं व्रजेत् ॥ ७० ॥ तमुपायं वदस्वाद्य मम पुत्रे दयां कुरु ॥ एक एव हि पुत्रो मे नान्योऽस्ति तनयो मुने ॥ ७१ ॥ सुते मृते तु वंशो मे समुच्छिद्येत मूलतः ॥ ततः पितृभ्यः पिण्डानां दाताऽपि न भवेद् ध्रुवम् ॥ ७२ ॥ ततः कृपां कुरुष्व त्वमस्मासु भगवन्मुने ॥ इत्युक्तः स भरद्वाजः साक्षान्नारायणांशकः ॥ ७३ ॥ ध्यात्वा तु सुचिरं कालं पद्मनाभं वचोऽब्रवीत् ॥ ७४ ॥

जिस प्रकार यह मेरा पुत्र महापापसे छूट जाय, जिस प्रकार यह घोर ब्रह्महत्या शीघ्र नष्ट हो जाय, वह उपाय आज कहिये, मेरे पुत्रके ऊपर दया कीजिये। हे मुनि ! मेरा एक ही पुत्र है दूसरा नहीं। पुत्रके मर जानेसे मेरा वंश मूलसे नष्ट हो जायगा। तब पितरोंको पिण्डदान करनेवाला भी कोई नहीं रहेगा। हे भगवन् ! महामुनि ! इसलिये आप हमलोगों पर कृपा कीजिये। ऐसा कहा हुआ, साक्षात् नारायणके अंश, भारद्वाज, थोड़ी देरतक ध्यान करके पद्मनाभसे वचन बोला ॥७४॥

भरद्वाज उवाच—

पद्मनाभ कृतं पापमतिक्रूरं सुतेन ते ॥ नास्य पापस्य शान्तिः स्यात्

प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥ ७५ ॥ तथाऽपि ते सुतस्याहमस्य पापस्य शान्तये ॥
प्रायश्चित्तं वदिष्यामि पद्मनाभ शृणु द्विज ॥ ७६ ॥

भारद्वाज बोले—हे पद्मनाभ! तुम्हारे पुत्रने अत्यन्त भयंकर पाप किया है, दश हजार प्रायश्चित्तसे भी इसकी शान्ति नहीं है। तथापि तुम्हारे इस पुत्रके पापकी शान्तिके लिये मैं प्रायश्चित्त कहूंगा। हे पद्मनाभ ब्राह्मण! सुनो ॥७६॥

गङ्गाया दक्षिणे भागे द्विशतीयोजने द्विज ॥ पूर्वाम्भोधेः पश्चिमे तु पञ्चभिर्योजनैर्मिते ॥ ७७ ॥ सुवर्णमुखरीतीरे चोत्तरे क्रोशमात्रके ॥ वेङ्कटाद्रिरिति ख्यातः सर्वलोकनमस्कृतः ॥ ७८ ॥ मेरुपुत्रो महापुण्यः सर्वदेवाभिवन्दितः ॥ वैकुण्ठलोकादानीतो विष्णोः क्रीडाचलो महान् ॥ ७९ ॥ गरुत्मता वेगवता स्वर्णमुख्यास्तटे शुभे ॥ वर्तते देवसङ्घैश्च ऋषिसङ्घैश्च पूजितः ॥ ८० ॥

हे ब्राह्मण! गङ्गाके दक्षिण दिशामें दो सौ योजनपर पूर्व समुद्रके पश्चिममें पांच योजनपर सुवर्णमुखरीके उत्तर तीरपर एक कोसमें सब लोकोंसे नमस्कृत, मेरुका पुत्र, महापवित्र, सब देवताओंसे वन्दित, वैकुण्ठ लोकसे स्वर्णमुखरीके शुभ तटपर वेगवान गरुडके द्वारा लाया हुआ, विष्णुकी क्रीड़ाभूमि, वेङ्कटनामसे विख्यात तथा देवताओं और ऋषियोंके समूहसे पूजित एक पर्वत है ॥८०॥

तस्मिन्वेङ्कटशैलेन्द्रे साक्षान्नारायणः स्वयम् ॥ लक्ष्मीदेव्या च भूदेव्या नीलादेव्या समागतः ॥ ८१ ॥ वर्तते वेङ्कटेशः स साक्षान्मोक्षप्रदायकः ॥ तस्य वेङ्कटनाथस्य ह्यालयस्य तथोत्तरे ॥८२॥ कटाहतीर्थं विप्रेन्द्र वर्तते मङ्गलप्रदम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापघ्नं वाञ्छितार्थप्रदायकम् ॥ ८३ ॥ सुतेन सार्कं विप्रेन्द्र पिब तीर्थं मनोहरम् ॥ भरद्वाजस्य वाक्यं तच्छ्रुत्वा वै वेदसम्मितम् ॥ ८४ ॥ शिरसा तं प्रणम्याऽथ ययौ वेङ्कटपर्वतम् ॥ ८५ ॥

उस पर्वतराज वेङ्कटाचलपर, लक्ष्मीदेवी, भूदेवी और नीलादेवीके साथ साक्षात् मोक्षको देनेवाले वह वेङ्कटेश नारायण आये हैं। उन वेङ्कटेशके मन्दिरसे उत्तरमें हे विप्रेन्द्र! ब्रह्महत्या इत्यादि पापोंको नष्ट करने एवं वाञ्छित अर्थको देनेवाला तथा मङ्गलदायक कटाहतीर्थ है। हे विप्रेन्द्र! पुत्रके साथ उसके सुन्दर जलको पीओ। भारद्वाजके वेदसदृश उस वचनको सुन कर मस्तकसे उनको प्रणाम करके वह ब्राह्मण वेङ्कटाचलको गया ॥ ८५ ॥

अथ मद्यपजीवस्य कटाहतीर्थपानेन केशवस्य ब्रह्महत्याविमुक्तिः

तं गत्वा वेङ्कटं शैलं स्वामिपुष्करिणीजले ॥ सुतेन सार्कं विप्रेन्द्रः

सस्नौ नियमपूर्वकम् ॥ ८६ ॥ वराहस्वामिनं नत्वा श्रीनिवासालयं गतः ॥ प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विमानं सम्प्रणम्य च ॥ ८७ ॥ पद्मनाभोऽथ पुत्रेण केशवेन दुरात्मना ॥ पपौ कटाहतीर्थं तद्ब्रह्महत्याविनाशकम् ॥ ८८ ॥

उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने उस वेङ्कटाचलको जा कर अपने पुत्रके साथ नियमपूर्वक स्वामिपुष्करिणीमें स्नान किया। वराहस्वामीको प्रणाम कर श्रीनिवासके मन्दिरमें गया। तब उस विमानको प्रदक्षिणा एवं प्रणाम करके उस पद्मनाभने अपने दुष्ट पुत्र केशवके साथ, ब्रह्महत्याके नाश करनेवाले, कटाहतीर्थके जलको पीया ॥ ८८ ॥

तदानीं ब्रह्महत्या सा शीघ्रमेव लयं गता ॥ अनन्तरं ततो गत्वा वेङ्कटेशं कृपानिधिम् ॥८९॥ पुत्रेण सह विप्रेन्द्रः पद्मनाभो ददर्श सः ॥ तदा प्रादुरभूद्देवो वेङ्कटेशो दयानिधिः ॥ ९० ॥ कटाहतीर्थपानेन तोषितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ९१ ॥

उसी समय वह ब्रह्महत्या शीघ्रही नष्ट हो गयी। उसके अनन्तर अपने पुत्रके साथ जा कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मण पद्मनाभने कृपानिधि वेंकटेशके दर्शन किये। तब कटाहतीर्थके पानसे प्रसन्न दयानिधि वेंकटेश प्रकट हुए और बोले ॥ ९१ ॥

अथ ब्रह्महत्याविमुक्तसुतेन सहितं पद्मनाभं प्रति भगवदुक्तिः

श्रीभगवानुवाच—

पद्मनाभ महाबुद्धे वेदवेदान्तपारग ॥ भरद्वाजस्य वाक्येन प्राप्य वेङ्कटपर्वतम् ॥ ९२ ॥ कटाहतीर्थं त्वं पीत्वा कृतार्थोऽसि न संशयः ॥ तव पुत्रः केशवाख्यो विमुक्तो ब्रह्महत्यया ॥ ९३ ॥ तस्मात्कटाहतीर्थं तु सेवनीयं प्रयत्नतः ॥ तस्मिंस्तीर्थे महाभाग पीत्वा जलमनुत्तमम् ॥९४॥ पापिनोऽपि कृतार्थाः स्युः सत्यं सत्यं न संशयः ॥ मामकं लोकमागत्य सुखी भव महामते ॥ ९५ ॥ इत्युक्त्वा वेङ्कटेशोऽसावन्तर्धानं गतस्ततः ॥९६॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाबुद्धिमन् ! वेद वेदान्तके पारग ! पद्मनाभ ! भारद्वाजके कथनसे वेङ्कटाचलको पा और कटाहतीर्थके जलको पी कर तू कृतार्थ हो गया है, इसमें संशय नहीं है। तुम्हारा पुत्र केशव भी ब्रह्महत्यासे छूट गया। इसलिये यत्नपूर्वक कटाहतीर्थका सेवन करना चाहिये। हे महाभाग ! उस तीर्थमें उत्तम जलको पी कर पापीगण भी कृतार्थ हो जाते हैं, यह सत्य है, सत्य है, इसमें संशय नहीं। हे महाबुद्धिमन् ! मेरे लोकमें आकर सुखी होओ। ऐसा कह कर वह वेङ्कटेश अन्तर्धान हो गये ॥९६॥

श्रीसूत उवाच—

तस्मात्तपोधनाः सर्वे शौनकाद्या महौजसः ॥ कटाहतीर्थमाहात्म्यमितिहाससमन्वितम् ॥ ९७ ॥ यथा श्रुतं मया सम्यक्तथोक्तं भवतां द्विजाः ॥ ९८ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनक-
सम्वादे कटाहतीर्थप्रशंसनं नाम सप्तत्रिंशो-
ऽध्यायोऽत्रोत्तरभागेऽष्टादशः ॥१८॥

श्रीसूतजी बोले—हे शौनकादि, सब तपस्वी ! इतिहाससे युक्त कटाहतीर्थके माहात्म्यको मैंने जैसा सुना था, हे ब्राह्मणो ! वैसे ही अच्छी प्रकारसे उसको कहा ॥९८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सूतशौनक-
सम्वादे कटाहतीर्थप्रशंसनं नाम सप्तत्रिंशो-
ऽध्यायोऽत्रोत्तरभागेऽष्टादशः ॥१८॥

कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने ॥
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥



॥ श्री श्रीनिवासाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये

स्वर्णमुखरीमाहात्म्यम्

ॐश्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥

अथ प्रथमोऽध्यायः

कथा समाक्रम प्रथममें, पीछे वर्णन अन्य ।
तीरथ यात्राक्रम लिखी, किये धनञ्जय धन्य ॥१॥

अर्जुनस्य तीर्थयात्राक्रमः

ॐ पावने नैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः ॥ चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्रं द्वादशवार्षिकम् ॥१॥ तानभ्यागच्छत्कथको व्यासशिष्यो महामतिः ॥ मुनिरुग्रश्रवा नाम रोमहर्षणसम्भवः ॥ २ ॥ सम्यगभ्यर्चितस्तेषां सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ कथयामास तद्दिव्यं पुराणं स्कन्दनामकम् ॥ ३ ॥ सृष्टिसंहारवंशानां वंशानुचरितस्य च ॥ कथां मन्वन्तराणां च विस्तरात्स न्यवेदयत् ॥ ४ ॥

पवित्र नैमिषारण्यमें शौनक इत्यादि महर्षियोंने लोककी रक्षाके लिये बारह वर्षका सत्र (यज्ञ) किया। व्यासके शिष्य, महाबुद्धिमान तथा रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा नामक उत्तम कथा वाचक सूतजी उनके पास आये। उनके द्वारा अच्छी तरहसे पूजित हो कर उस उत्तम पौराणिक सूतने स्कन्दनामक दिव्यपुराणको कहा। सृष्टि, नाश,, वंश वंशानुचरित और मन्वन्तरकी कथा उन्होंने विस्तारसे कही ॥४॥

कथातीर्थप्रभावांस्तु श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः ॥ ऊचिरे वचनं सूतं कथाश्रवणकाङ्क्षया ॥ ५ ॥

कथाओंमें तीर्थके माहात्म्यको सुन कर वे सब मुनिश्रेष्ठ कथा सुननेकी इच्छासे सूतसे वचन बोले ॥ ५ ॥

ऋषय ऊचुः—

तीर्थानामिह सर्वेषां प्रभावः कथितस्त्वया ॥ नदीनां पर्वतानां च क्षेत्राणां सरसामपि ॥ ६ ॥ निदेशात्पद्मगर्भस्य सुवर्णमुखरी नदी ॥ नीता भुवमगस्त्येन व्याख्याता भवताऽनघ ॥७॥ तदुत्पत्तिप्रभावं च तीर्थौघांस्तत्समाश्रयान् ॥ श्रोतुं सम्प्रीतिरुत्पन्ना तन्नो वक्तुं त्वमर्हसि ॥ ८ ॥ प्रणम्य शम्भुं नन्दीशं षडास्यं व्यासमेव च ॥ मुनिभिः प्रार्थितः सूतस्तदा वक्तुं प्रचक्रमे ॥ ९ ॥

ऋषिगण बोले—यहांके सब तीर्थों, नदियों, पर्वतों, क्षेत्रों और सरोवरोंका भी माहात्म्य आपने कहा। हे अनघ ! आपने कहा कि पृथ्वीपर भगवान पद्मनाभके आदेशसे सुवर्णमुखरी नदी अगस्त्यके द्वारा लाई गई है। उसकी उत्पत्तिका माहात्म्य तथा उसके आश्रयके सब तीर्थ समूहोंको सुननेकी आकांक्षा हुई है, वह आप हम लोगोंसे कहिये। मुनियोंसे प्रार्थना किये जाने पर सूतजी, शिव, नन्दिकेश्वर, कार्तिकेय एवं व्यासको प्रणाम करके कथा कहने लगे ॥ ६ ॥

श्रीसूत उवाच—

साधु पृष्टं महाभागा भवद्भिर्मङ्गलावहम् ॥ आख्यानमेतदाम्नायश्रवणोद्भूतसिद्धिदम् ॥ १० ॥ शृणुतावहिता दिव्यां कथां कल्मषनाशिनीम् ॥ भरद्वाजेन कथितां पार्थाय कथयामि वः ॥ ११ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे भगवन्! आपने वेदके सुननेसे उत्पन्न सिद्धि एवं मङ्गलको देनेवाले आख्यानको अच्छा पूछा। भरद्वाजद्वारा अर्जुनको कही हुई तथा पापको नाश करनेवाली दिव्य कथाको मैं आप लोगोंसे कहता हूं, सावधान हो कर सुनिये।

अवाप्य द्रुपदात्प्राज्ञाद्याज्ञसेनीं पृथासुताः ॥ धृतराष्ट्रनिदेशेन जग्मुः करिपुरं शुभम् ॥ १२ ॥ भीष्मेण चाम्बिकेयेन तत्र सम्मानितास्तदा ॥ दुर्योधनादिभिः सार्द्धं न्यवसन् पञ्च वत्सरान् ॥ १३ ॥ ततोऽनुशिष्टो भीष्माद्यैर्धृतराष्ट्रो महायशाः ॥ सर्वेषां कुलवृद्धानां वासुदेवस्य चाग्रतः ॥ १४ ॥ प्रददौ पाण्डुपुत्रेभ्यस्तत्सेवाहृष्टमानसः ॥ सार्धराज्यं पुरवरं खाण्डवप्रस्थसंज्ञिकम् ॥१५॥

बुद्धिमान् द्रुपदसे याज्ञसेनी (द्रौपदी) को पा कर पञ्च पाण्डव धृतराष्ट्रकी आज्ञासे विवाह कर हस्तिनापुरको गये, और धृतराष्ट्र और भीष्मसे आदर पा कर दुर्योधन इत्यादिकोंके साथ वहां पांच वर्ष रहे। तब भीष्म इत्यादिकोंसे अनुशासन पा कर महायशस्वी धृतराष्ट्रने सब कुलवृद्धों एवं श्री कृष्णके सामने पाण्डुके पुत्रोंको आनन्द मनसे आधा राज्य और खाण्डव-प्रस्थ-नामक श्रेष्ठ नगर दिया॥ १५॥

आमन्त्र्य पाण्डुतनयाधृतराष्ट्रादिकान् कुरून् ॥ जग्मुस्ततः खाण्डवप्रस्थं पुरं कृष्णसमन्विताः ॥ १६ ॥ इन्द्रप्रस्थाह्वये तत्र रचिते विश्वकर्मणा ॥ वसन्पुरेऽशिषत्पृथ्वीं सानुजो धर्मनन्दनः ॥ १७ । गते कृष्णे निजपुरं नारदस्यानुशासनात् ॥ प्रतिज्ञां चक्रिरे पार्था धर्मज्ञा द्रौपदीं प्रति ॥ १८ ॥ यथा क्रमेण सा कृष्णा वर्षमेकैकमादरात् ॥ एकैकस्य गृहे तिष्ठेत्प्रतिनिर्णयपूर्वकम् ॥ १९ ॥ यः पश्येत्तां परगृहे स्थितां पाञ्चालनन्दिनीम् ॥ तेनैकहायनमितं विधेयं तीर्थसेवनम् ॥ २० ॥ एवं कृतप्रतिज्ञास्ते पाण्डुभूपालनन्दनाः ॥ व्यापारैर्लोकसामान्यैर्निन्युः कालमतन्द्रिताः ॥ २१ ॥

[illegible] धृतराष्ट्र इत्यादि कौरवोंसे अनुमति पा कर कृष्णके साथ पाण्डुके पुत्र उस खाण्डवप्रस्थको गये। वहां विश्व-

कर्माके बनाये इन्द्रप्रस्थ नामक नगरमें अपने छोटे भाईके साथ रहते हुए युधिष्ठिर पृथ्वीका शासन करने लगे। कृष्णके अपने नगरको जाने पर नारदके अनुशासनसे धर्मको जाननेवाले पाण्डवोंने द्रौपदीके प्रति यह प्रण किया कि प्रत्येकके घरमें यथाक्रमसे, उस प्रतिज्ञाके अनुसार एक एक वर्ष, आदर पूर्वक यह द्रौपदी रहे और दूसरेके घरमें ठहरी द्रौपदीको जो देखे, वह एक वर्ष तक तीर्थयात्रा करे। इस प्रकार प्रतिज्ञा किये हुए वे पाण्डुराजाके पुत्र संसारके सामान्य व्यापारोंमें आलस्यसे हीन हो कर समय बिताने लगे ॥ २१ ॥

अथार्जुनतीर्थयात्रोपोद्घातः

अथ जानपदो विप्रो राजगेहाङ्गणे स्थितः ॥ चुक्रोश बहुधा धेनुर्हृता मे तस्करैरिति ॥ २२ ॥ समाश्वास्य च तं विप्रं प्रविवेश धनञ्जयः ॥ आयुधानि समानेतुं त्वरया शस्त्रमन्दिरम् ॥२३॥ तत्रापश्यत्समासीनौ पाञ्चालीधर्मनन्दनौ ॥ जानन्नपि प्रतिज्ञां स धनुर्जग्राह सेषुधी ॥२४॥ स गत्वा तस्करानाजौ निहत्य नृपनन्दनः ॥ निवर्त्य धेनुं तां तस्मै ददौ विप्राय सादरम् ॥ २५ ॥

तब उसी देशका एक ब्राह्मण राजाके घरके आंगनमें खड़ा हो कर बहुत ओरसे चिल्लाने लगा, कि "मेरी गायको चोर लिये जाते हैं।" उस ब्राह्मणको आश्वासन करके आयुधोंको लानेके लिये शस्त्रके मन्दिरमें अर्जुन गया, वहांपर उन्होंने द्रौपदी और युधिष्ठिरको बैठे हुए देखा और प्रतिज्ञाको जानते हुए भी धनुष और इषुधीको ले लिया। राजाके पुत्र अर्जुनने जा कर युद्धमें तस्करोंको मार एवं लौट कर उसे गौको उस ब्राह्मणको आदरसे दे दिया ॥ २५ ॥

अथ विज्ञापयामास फाल्गुनो धर्मनन्दनम् ॥ तीर्थयात्रा मया कार्या समयोल्लङ्घनादिति ॥ २६ ॥ अनुजस्य वचः श्रुत्वा सर्वधर्मविदां वरः ॥ उवाच वचनं धीरः सादरं धर्मनन्दनः ॥ २७ ॥

तब अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा कि प्रतिज्ञाके उल्लङ्घन करनेके कारण मुझे तीर्थयात्रा करनी चाहिये। छोटे भाईकी बात सुन कर सब धर्मोंको जानने वालोंमें श्रेष्ठ एवं धीर धर्मपुत्रने आदर पूर्वक कहा ॥ २७ ॥

युधिष्ठिर उवाच—

ब्राह्मणार्थं गवार्थं च यद्वदेदनृतं वचः ॥ यदाचरेदसत्कर्म तत्सत्यं तत्समञ्जसम् ॥२८॥ ब्राह्मणार्थं गवार्थं च त्वया कर्मेदृशं कृतम् ॥ तदसद्भावमाप्नोति कथं कथय सुव्रत ॥ २९ ॥ प्रजापालनकृत्यस्य चौरोपेक्षणशिक्षणैः ॥

नूनं फलं भवेद्राज्ञो ब्रह्महत्याश्वमेघजम् ॥ ३० ॥ असाध्यान्वैरिणो ज्ञात्वा-
ऽप्यवनीशो न भद्रभाक् ॥ स्वदेशोपप्लवकरास्तस्करा यद्यशिक्षिताः ॥३१॥
अस्माकं भूभुजां लोकजालस्य च हितं हि यत् ॥ त्वयेदृशं कृतं कर्म
नास्ति दोषो यतस्तव ॥ ३२ ॥

युधिष्ठिर बोले—गो अथवा ब्राह्मणके लिये जो झूठी बात बोले, अथवा जो असत्कर्मका आचरण करे, वह सत्य और उचितही होता है। हे सुव्रत ! तुमने ब्राह्मण एवं गौके लिये इस प्रकारका काम किया है वह अनुचित या अधर्म कैसे हो सकता है सो कहो। राजाको प्रजाके पालन करनेमें अश्वमेधका फल होता है और चोरोंके शासनमें उपेक्षा करनेमें ब्रह्महत्याका दोष होता है। वैरियोंको असाध्य जान कर राजा कुशली नहीं होता। चोर यदि अशासित हो तो राजाके देशको नष्ट कर दें। हम राजाओं और लोकको यह भलाई हो है, जो तुमने किया है, इसलिये तुमको दोष नहीं हुआ ॥ ३२ ॥

श्रीसूत उवाच—

धर्मपुत्रस्य वचनमाकर्ण्य रचिताञ्जलिः ॥ पुनर्विज्ञापयामास धर्म-
नित्यो धनञ्जयः ॥ ३३ ।

श्रीसूतजी बोले—धर्मपुत्रके वचनको सुन अञ्जलि बांध कर धर्मनिष्ठ अर्जुनने पुनः बताया ॥ ३३ ॥

अर्जुन उवाच—

मैवं भूपाल वादीस्त्वं स्वप्रतिज्ञातिलङ्घनम् ॥ जानता धर्मसर्वस्वमु-
ज्ञसद्धर्ममूर्तिना ॥ ३४ ॥ कृत्याकृत्यविदा दक्षेणात्मना प्राक् समीरिता ॥
नोल्लङ्घनीया सततं प्रतिज्ञा पुरुषेण हि ॥ ३५ ॥ अशक्तानां गतिः सेयं
यद्बन्धुगुरुवाक्यतः ॥ धर्मं त्यजन्ति समयं त्यक्त्वा प्राक्स्वं समीरि-
तम् ॥ ३६ ॥

अर्जुन बोले—हे राजा ! आप अपनी प्रतिज्ञाका उल्लङ्घन करके इस प्रकार मत कहिये। धर्मके सर्वस्वको जानने वाले साक्षात् धर्मको मूर्ति कृत्य और अकृत्यको जानने वाले तथा समर्थ पुरुषको स्वयं की हुई प्रतिज्ञा कभी भी उल्लङ्घन नहीं करनी चाहिये। यह तो अशक्तोंकी गति है, जो गुरु और भाईके वचनसे पहले स्वयं किये हुए प्रणको छोड़ कर धर्मको छोड़ते हैं ॥ ३६ ॥

कृपया तीर्थगमनादार्यो यदि निवर्तयेत् ॥ हतप्रतिज्ञं मां लोकाञ्ज-
ल्पतः को निवारयेत् ॥ ३७ ॥ ममापि तीर्थयात्रायां कौतुकोत्तरलं मनः ॥

कर्तव्यं च स्मृतं राजन्नारदादिष्टशासनम् ॥ ३८ ॥ तत्प्रसीद महाराज यत्तीर्थगमनोद्यमे ॥३९॥ सम्माननीयः प्रभुभिः स मया ह्यनुजीविना॥४०॥

आप यदि मुझे प्रेमवश तीर्थयात्रासे वञ्चित करें तो मुझको प्रतिज्ञाका भङ्ग करने वाला कहने वाले लोगोंको कौन रोकेगा ? मेरा मन भी तीर्थयात्रामें कौतूहलसे तरल हो रहा है। हे राजन्! नारदजीके दिये हुए शासनको स्मरण करना चाहिये। मेरी तीर्थयात्राके लिये आप प्रसन्न होइये। मुझ अनुजीवी तथा आप प्रभुसे नारदजी आदर पानेके योग्य हैं ॥ ४० ॥

तथेति भ्रातृभिः सार्द्धं कृतानुमतिरर्जुनः ॥ अग्रजं तोषयामास प्रणामप्रश्रयादिभिः ॥ ४१ ॥ यथार्हं भीमसेनादीन्भ्रातॄनामन्त्र्य पाण्डवः ॥ कृतस्वस्त्ययनो भव्यैर्निर्ययौ धरणीसुरैः ॥ ४२ ॥ पौराणिका ज्योतिषिका भिषजो धरणीसुराः ॥ अनुजग्मुर्भृत्यगणाः शिल्पिनः सूतमागधाः ॥ ४३॥ युधिष्ठिराज्ञया तस्य भोगत्यागक्षमं धनम् ॥ गृहीत्वाऽनुययुः स्निग्धाः सभ्याः कोशाधिकारिणः ॥ ४४ ॥

अपने भाइयोंकी "तथास्तु" ऐसी सम्मति ले कर अर्जुनने बड़े भाईको प्रणाम विनय इत्यादिसे सन्तुष्ट किया। भीमसेन इत्यादि भाइयोंसे यथा योग्य विदा लेकर दिव्य ब्राह्मणोंके साथ स्वस्त्ययन किया हुआ पाण्डव (अर्जुन) बाहर निकला। पौराणिक, ज्योतिषी, वैद्य, ब्राह्मण, नौकर, कारीगर, सूत, एवं मागध भी उनके पीछे पीछे गये। युधिष्ठिरकी आज्ञासे उसके भोग त्यागके योग्य धनको ले कर प्रेमी एवं सभ्य कोशाधिकारी भी गये ॥ ४४ ॥

अथ अर्जुनस्य गङ्गादितीर्थावगाहनपूर्वकं सुवर्णमुखर्यां गमनम्

स राजपुत्रः प्रथमं प्राप्य भागीरथीं नदीम् ॥ गङ्गाद्वारं प्रयागं च सिषेवे काशिकामपि ॥ ४५ ॥ पश्यंस्तीर्थानि जाह्नव्यास्तत्तीरोपान्तवर्त्मना ॥ आससाद समुत्तुङ्गकल्लोलं दक्षिणोदधिम् ॥ ४६ ॥ महानदीं महापुण्यां प्रसिद्धपुरुषोत्तमम् ॥ सिंहाचलं च संवीक्ष्य प्राप्तवान्कृतकृत्यताम् ॥ ४७ ॥ ततो ददर्श कौन्तेयः पुण्यां गोदावरीं नदीम् ॥ समस्तदुरितव्रातशातनोत्तीर्णगौरवाम् ॥ ४८ ॥ कृताभिषेकस्तत्तोयैर्विधिवत्पाण्डुनन्दनः ॥ प्रमोदं विविधैर्दानैरकरोद्भूसुवर्णकैः ॥ ४९ ॥

उस राजपुत्रने पहले गङ्गा नदीको प्राप्त कर गङ्गोत्तरी, प्रयाग, और काशीको प्राप्त किया। उस गङ्गाके तीरके मार्गमें तीर्थोंके दर्शन करते हुए ऊंचे उठते हुए लहर वाले दक्षिण समुद्रको वह पहुंचा, और महापवित्र महानदी

प्रसिद्ध पुरुषोत्तम पुरी और सिंहाचलको देख कर कृतकृत्य हुआ। तब अर्जुनने पवित्र एवं समस्त पापके समूहको नाश करनेके कारण उत्तम प्रभावशाली गोदावरी नदीको देखा। उस तीर्थके जलमें विधिपूर्वक स्नान किये हुए उसने (पाण्डुपुत्रने) अनेकों सुवर्ण और भूमिके दानसे आनन्द लाभ किया ॥ ४९ ॥

नदीं मलापहाख्यां च दृष्ट्वा मोदं ययौ शुभम् ॥ ततः समाससादासौ कृष्णवेणीं सरिद्वराम् ॥५०॥ शिवस्य नियतावासं चतुर्द्वारसमन्वितम् ॥ नानातीर्थगणाकीर्णं श्रीपर्वतमवैक्षत ॥ ५१ ॥ नदीं पिनाकिनीं तीर्त्वा गत्वा देवर्षिसेवितम् ॥ नारायणप्रियावासमपश्यद्वेङ्कटाचलम् ॥५४॥ शृङ्गेऽस्य भूभृतस्तुङ्गे स्थितं लोकैकनायकम् ॥ अपूजयद्धरिं भक्त्या प्रसिद्धं शुभसिद्धये ॥ ५३ ॥

मलापहा नामक नदीको देख कर बड़े आनन्दको प्राप्त हुए, तब ये नदियोंमें श्रेष्ठ कृष्णवेणीको आये। श्रीशिवजीके नियत आवास, अनेकों तीर्थसे भरा हुआ तथा चार द्वारसे युक्त श्रीशैलको उन्होंने देखा। पिनाकिनी नदीको तैर कर जाते हुए देवताओं और ऋषियोंसे सेवित एवं नारायणके प्रिय आवास वेङ्कटाचलको उन्होंने देखा और मङ्गलकी सिद्धिके लिये इस पर्वतके ऊंचे शिखरपर स्थित, लोकके एक ही स्वामी तथा प्रसिद्ध हरिकी पूजा की ॥ ५३ ॥

अवरुह्य वेङ्कटमहाद्रिशृङ्गतः स ददर्श सिद्धमुनिसङ्घसेविताम् ॥
फलशोद्भवेन मुनिना समाहृतां तटिनीं सुवर्णमुखरीसमाह्वयाम् ॥ ५४ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरी-
माहात्म्ये अर्जुनतीर्थयात्रागमनवर्णनं
नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

बड़े पर्वत वेङ्कटाचलके शिखरसे उतर कर, सिद्ध एवं मुनियोंके समूहोंसे सेवित और अगस्त्य मुनिसे लायी हुई सुवर्णमुखरी नामक नदीको उन्होंने देखा ॥५४॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः



स्वर्णमुखी वर्णन विपुल, कालहस्तिका धाम ।
सेवन अर्जुनका वहां, पार्थ गमन ऋषि ठाम ॥१॥
भरद्वाज ऋषि श्रेष्ठकी, सेवा बहुविधि कीन ।
वहां धनञ्जय वीरने, सूत ताहि लिख दीन ॥२॥

अथ सुवर्णमुखरीवर्णनम्

तथा सर्वाणि तीर्थानि समालोक्यागतस्य च ॥ मुदं प्रगुणयाञ्चक्रे सा पार्थस्य महापगा ॥१॥ यस्यास्तटनिकुञ्जेषु मोदन्ते वनिताः सुखाः ॥ सिद्धाः संसेविता वातैः शीकरासारशीतलैः ॥ २ ॥ या समुद्यतहस्तेव गङ्गामाकाशवाहिनीम् ॥ आलिङ्गितुं समुत्तुङ्गैः कल्लोलैरप्रसङ्गिभिः ॥ ३ ॥ धूमैराहुतिसंभूतैस्तरुशाखोपलम्भिभिः ॥ वल्कलैश्च विराजन्ते यत्तटाश्रम-भूमयः ॥ ४ ॥

सब तीर्थोंको देख कर आये हुए अर्जुनके आनन्दको उस बड़ी नदीने कई गुना अधिक कर दिया, जिसके तटके निकुञ्जोंमें जलकणसे पूर्ण शीतल वायुको सेवित करती हुई सिद्ध स्त्रियां आनन्दित होती हैं, जो आकाश तक ऊंचे उठते हुए तरङ्गोंसे आकाशमें बहनेवाली गङ्गाको आलिङ्गन करनेको उठे हुए हाथकी जैसी शोभती है, जिसके तीरकी आश्रमभूमि आहुतियोंसे उठे हुए धूमसे एवं वृक्षोंकी शाखाओंसे मिले हुए वल्कलोंसे शोभित है ॥ ४ ॥

मुनीन्द्रैः सुरवर्यैश्च :स्थापितानि समन्ततः ॥ यत्तटद्वितये भान्ति दिव्यलिङ्गानि शूलिनः ॥ ५ ॥ यदीयसैकतावासविश्रान्ता मानसं सरः ॥ न स्मरन्ति निजावासं मराला विहगोत्तमाः ॥ ६ ॥ शमितायप्रहातङ्कैः

कुल्यामुखविनिर्गतैः ॥ पुष्णाति तोयैः सस्यानि लोकरक्षाक्षमाणि या ॥७॥

मुनियों और देवताओंसे चारों ओर स्थापित शिवजीके दिव्य लिङ्ग जिसके तटपर शोभित हैं, जिसके बालूपर विश्राम किये हुए श्रेष्ठ पक्षिराज हंस अपने आवासस्थान मानसरोवरको भी नहीं स्मरण करते हैं। जो दुष्ट ग्रहोंके भयके नाश करनेवाले कुल्या (कुण्ड) के मुखसे निकले हुए जलसे लोक रक्षामें समर्थ धान्योंको पोषण करती है ॥७॥

चक्रवाककुचोत्तुङ्गवीचीवलिविभूषिता ॥ आवर्तनाभिविलसत्सैकतश्रोणिमण्डला ॥ ८ ॥ प्रफुल्लपद्मवदना चलन्मीनयुगेक्षणा ॥ विलसत्फेनवसना हंसयानमनोहरा ॥९॥ जलपक्षिरवालापा नयनानन्दकारिणी ॥ अपूर्वकामिनीरूपा या विभात्यम्बुधिप्रिया ॥ १० ॥

जो चक्रवाकरूपी कुचोंसे युक्त एवं बड़े बड़े तरङ्गरूप वलीसे शोभित, आवर्तरूप नाभिसे शोभित सैकतरूप श्रोणिमण्डलसे युक्त, प्रफुल्ल पद्मरूप मुख, एवं चलती हुई मछलीरूप दोनों नेत्रवाली, चमकता हुआ फेनरूपी वस्त्रसे शोभित, हंसरूपी सवारीसे मनोहर, जल पक्षियोंके शब्द रूप आलापसे युक्त तथा नयनको आनन्द करनेवाली समुद्रकी प्यारी अपूर्व कामिनीके जैसी शोभती है ॥ १० ॥

रोधस्यन्तरवाहिन्या नद्याः प्राच्यां धनञ्जयः ॥ ददर्श शैलमुत्तुङ्गं कालहस्तिसमाह्वयम् ॥ ११ ॥ उदग्रशिखराभोगोल्लिखिताकाशमण्डलम् ॥ सप्तपातालमूलाधोरूढमूलोपलाञ्छितम् ॥ १२ ॥

किनारेके भीतर बहनेवाली उस नदीके पश्चिममें, ऊंचे उठे हुए शिखरसे आकाशको छूते हुए, सात पातालके भी नीचे गये हुए जड़वाले श्रीकालहस्ति नामक पर्वतको अर्जुनने देखा ॥१२॥

अथ अर्जुनस्य स्वर्णमुखरीतीरस्थकालहस्तीश्वरादिसेवाप्राप्तिः

स्नात्वा तस्यां महानद्यां तस्मिञ्छैले सुरार्चितम् ॥ अपश्यदर्जुनो देवं कालहस्तीशनामकम् ॥ १३ ॥ सम्पूज्य च महादेवं नगेन्द्रतनयासखम् ॥ मनसा भक्तियुक्तेन कृतार्थत्वमुपेयिवान् ॥ १४ ॥ ततो महागिरौ तस्मिन्नद्भुतैकनिकेतने ॥ चचाराभूतपूर्वाणां विशेषाणां दिदृक्षया ॥ १५ ॥ सिद्धानालोकयामास वसतो गिरिसानुषु ॥ गायतो देवदेवस्य चरित्राण्यघलायुतान् ॥ १६ ॥

उस महानदीमें स्नान करके अर्जुनने उस पर्वतपर देवताओंसे पूजित श्रीकालहस्तीश नामक देवके दर्शन किये और नगेन्द्रतनया (पार्वती) के पति महादेवका भक्तियुक्त मनसे पूजन करके कृतार्थ हुए। तब विचित्रताके

आलय उस बड़े पर्वतपर, अभूतपूर्व विशेषताओंके देखनेकी इच्छासे घूमने लगे और पर्वतपर देवदेवके चरित्रोंको गाते हुए स्त्रियोंके साथ रमनेवाले सिद्धोंको उन्होंने देखा ॥१६॥

अप्सरोललनाजुष्टान्पुष्पासवमदाकुलान् ॥ निकुञ्जेषु समासीना-
न्गन्धर्वानैक्षतादरात् ॥ १७ ॥ विविक्तेषु प्रदेशेषु शिवध्यानपरायणान् ॥
अपश्यद्योगिनो दिव्यानादरानन्दशालिनः ॥ १८ ॥ प्रशान्तान्याश्रमप-
दान्यवैक्षत समन्ततः ॥ बलिनीवारविलसद्द्वारभूमीश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥
निराहारान्वायुभुजः पर्णादनातपाशनान् ॥ शान्तानालोकयामास मुनी-
न्नियमितेन्द्रियान् ॥ २० ॥

पुष्पके आसव (मधु) पानसे व्याकुल, अप्सराओं और स्त्रियोंके समूहोंसे युक्त कुञ्जोंमें बैठे हुए गन्धर्वों-को आदरसे देखा। अनेक पवित्र देशोंमें शिव ध्यानमें लगे हुए आनन्दयुक्त दिव्य योगियोंको भी उन्होंने देखा। चारों ओरसे प्रशान्त आश्रमों तथा बलि एवं नीवारादि धान्यसे शोभित, द्वारवाली जमीनको भी पाण्डवने देखा। निराहारों, वायुभक्षियों, पर्णभक्षियों, आतप (धूप) भोजियों एवं नियमित इन्द्रियवाले शान्त मुनियोंको भी उन्होंने देखा ॥ २० ॥

मुदं वितेनिरे तस्य नेत्रयोः कमलाकराः ॥ फुल्लसौगन्धिकामोदसं-
वासितदिगन्तराः ॥२१॥ मृगयासम्भृतधियश्चरतोऽधिज्यकार्मुकान् ॥२२॥
ददर्शान्वेषिनमृगान्किरातान्वनितायुतान् ॥

फूले हुए कमलोंके सुगन्धोंसे दशों दिशाओंको वासित करनेवाले सरोवर उसके नेत्रोंको आनन्दित कर दिये। मृगयामें लगाये हुए मनवाले, धनुष ले कर चलते हुए एवं मृगोंको खोजते हुए स्त्रियोंसे युक्त किरातोंको उन्होंने देखा।

अथाऽर्जुनस्य सुवर्णमुखरीतीरस्थभरद्वाजाश्रमगमनम्

ततो दक्षिणदिग्भागे चरन्नद्रेर्मनोहरे ॥ २३ ॥ पुण्यमाश्रममद्राक्षी-
द्भरद्वाजस्य पाण्डवः ॥ कदलीनारिकेलाम्रकोलचम्पकचन्दनैः ॥२४॥ कपो-
लाशोकहिन्तालतालकेतकिदाडिमैः ॥ जम्बूकदम्बकनकखदिरार्जुनपाट-
लैः ॥२५॥ नागपुन्नागसरलदेवदारुकरञ्जकैः ॥ लवङ्गलुङ्गलवलीप्रियङ्गुतिल-
कैरपि ॥२६॥ बिभीतश्रीफलाश्वत्थमधूकप्लक्षकेसरैः ॥ पूगजम्बीरनारङ्गनि-
म्बामलककाश्मिकैः ॥ २७ ॥ अन्यैश्च फलपुष्पाढ्यैः शोभितं धरणीरुहैः ॥
वासन्तीकुन्दजात्यादिलताभिः परिवेष्टितम् ॥ २८ ॥ अपूर्वसौरभाकृष्ट-

भ्रमरीभिः समन्ततः ॥ चक्रवाकबकक्रौञ्चहंसकारण्डवाश्रयैः ॥ २९ ॥ सौगन्धिकोत्पलाम्भोजकैरवौघविराजितैः ॥ सरोभिरमृतस्यन्दिमधुरस्फारवारिभिः ॥ ३० ॥ समापादितलक्ष्मीककौतुकैकनिकेतनम् ॥ सिंहदन्तावलव्याघ्रतरक्षुरुरुरङ्कुभिः ॥ ३१ ॥ मृगैरन्यैः समाकीर्णमन्योऽन्यहितकारिभिः ॥ जितचैत्ररथोद्यानमधरीकृतनन्दनम् ॥ ३२ ॥ अतिवाङ्मनसोदारं परमानन्दकारणम् ॥ शिवागमानां दिव्यानामर्थजातमनुत्तमम् ॥ ३३ ॥ प्रकाशयन्ति शावानां यत्र मञ्जुगिरः शुकाः ॥ यस्मिन्हुताशनोदारधूमश्यामलितं नभः ॥ ३४ ॥ अकालजलदभ्रान्तिमातनोति शिखण्डिनाम् ॥ यस्मिन्विहारश्रान्तानां सिंहानां स्वेच्छया गताः ॥३५॥ निर्वापयन्ति गात्राणि करिणः करशीकरैः ॥

अनन्तर पर्वतके मनोहर दक्षिण दिशाकी ओर घूमते हुए अर्जुनने—केला, नारियल, आम, बेर, चम्पा और चन्दन, कङ्कोल, अशोक, हिन्ताल, ताल, केवडा, अनार, जामुन, कदम्ब, निर्मली, खैर, अर्जुन, पाटर या गुलाब, नाग, पुन्नाग, सरल देवदारु, करञ्ज, (कहऐनो) लवङ्ग, लुङ्ग, हरफरौरी, प्रियङ्गु, तिलक, बहेरा, श्रीफल, पीपल, महुआ, प्रक्ष, केसर, सुपारी, जम्बीर, नारङ्ग, आमलक, निम्ब, कौशिक तथा अन्यान्य फल या पुष्पोंसे युक्त वृक्षोंसे शोभित, अपूर्व सुगन्ध द्वारा चारो ओरसे आकृष्ट भ्रमरियोंसे युक्त, वासन्ती, कुन्द, जाती इत्यादि लताओंसे घिरे हुए चकवा चकैयी, बगुला, क्रौंच, हंस और कारण्डवोंके ठहरनेकी जगह, सौगन्धिक, कमल और कैरववाले एवं अमृतके तुल्य मधुर जलसे युक्त सरोवरोंसे शोभित, कौतूहलका घर, एक दूसरेकी भलाई करनेवाले सिंह, हाथी, व्याघ्र, तरक्षु हरिण, रङ्कु तथा अन्यान्य मृगोंसे पूर्ण, चैत्ररथको जीतनेवाले नन्दन वनको भी नीचे किये हुए, अत्यन्त उदार, परमानन्दका कारण, जहांपर मधुर वाणीवाले शुक अपने शिशुओंको उत्तम अर्थ सहित, मनोहर तथा दिव्य शैवशास्त्रोंके तत्त्वको उपदेश देते थे, जहां अग्निके गंभीर और श्याम धूमसे श्यामीकृत आकाश मयूरोंको अकाल मेघका भ्रम उत्पन्न करता था एवं जिसमे विहारसे थके हुए सिंहोंके शरीरको स्वेच्छासे आकर हाथीगण अपने सूंडके द्वारा जलसे आर्द्र करते थे। ऐसे वन और भारद्वाजके आश्रमको देखा ॥३६॥

तदाश्रमपदं पश्यन्विस्मयाक्रान्तमानसः ॥ ३६ ॥ प्रभावं पाण्डुतनयः प्रशशंस तपस्विनाम् ॥ निवार्य तत्र तत्रैव सकलाननुजीविनः ॥ ३७ ॥ मित्रैर्विप्रवरैः सार्धं प्रविवेश तमाश्रमम् ॥

उन आश्रमोंको देखते हुए ही आश्चर्य चकित हो कर पाण्डुपुत्रने तपस्वियोंके प्रभावकी प्रशंसा की और अपने अनुगामियोंको वहींपर रोक कर मित्रों और ब्राह्मणोंके साथ उस आश्रममें प्रवेश किया ॥३७॥

अथार्जुनकृतभरद्वाजसेवाक्रमः

अग्रे ददर्श कौन्तेयः स्फुरत्पावकतेजसम् ॥ ३८ ॥ भरद्वाजं मुनिव-
रैरनेकैः परिवारितम् ॥ भस्मानुलिप्तसर्वाङ्गं मृगचर्मोत्तरीयकम् ॥ ३९ ॥
नववारिदसंवीतं कैलासमिव भास्वरम् ॥ जटाभिर्लम्बमानाभिर्भास्वन्तं
स्वर्णकान्तिभिः ॥४०॥ स्थिरविद्युल्लताकीर्णमिव शारदनीरदम् ॥ श्रुतिस्मृ-
तिपुराणार्थैरेकीभूय समागतैः ॥४१॥ अङ्गीकृतमिवाकारं दिव्यज्ञानशुभा-
स्पदम् ॥ धृतिक्षान्तिदयातुष्टिशान्तिभिर्नित्यसेवितम् ॥४२॥ प्रियाभिरिव
रक्ताभिरखण्डब्रह्मवर्चसम् ॥ उपगम्य शनैः पार्थस्तत्पादाम्बुजयोः
पुरः ॥४३॥ चक्रे प्रणामं साष्टाङ्गं समालिङ्गितभूतलम् ॥ ४४ ॥

अर्जुनने ज्वलन्त अग्निके समान तेजवाले, अनेक मुनियोंसे घिरे हुए, समस्त शरीरमें भस्म लगाये हुए—, मृगचर्मके चादर धारण किये हुए, मानों नवीन मेघसे घिरे हुए प्रकाशमान, कैलाश हैं—, स्वर्णकी चमक जैसी लम्बी जटाओंसे सुशोभित, मानों स्थिर विद्युल्लताप्रकाशसे परिव्याप्त शरदकालके मेघ हैं और श्रुति, स्मृति एवं पुराणके अर्थोंका संयुक्त हो धारण किया आकाररूप, दिव्य और शुभ ज्ञानके आधार—, धृति, क्षान्ति, दया, तुष्टि, एवं शान्तिसे नित्य सेवित, मानों अनुरक्त प्रियाओंसेही सेवित है तथा अखण्ड ब्रह्मचर्यवाले, मुनिश्रेष्ठ भारद्वाजको आगे देखा। अर्जुनने उनके सन्मुख आ कर उनके चरणकमलोंमें, पृथ्वीको आलिङ्गन करते हुए साष्टाङ्ग प्रणाम किया ॥ ४४ ॥

अथार्जुनं प्रति भरद्वाजकृतातिथ्यप्रकारः

तमागतं पृथापुत्रमुत्थाप्य मुनिपुङ्गवः ॥ आशीर्भिर्वर्धयाञ्चक्रे प्रहर्षो-
त्फुल्लमानसः ॥ ४५ ॥ सम्पूज्य च यथान्यायं तमर्घ्याद्यैः प्रियातिथिम् ॥
विनिर्दिष्टासनासीनं तमपृच्छदनामयम् ॥ ४६ ॥ सम्माननमवाप्यास्मा-
न्मुनेः पाण्डवमध्यमः ॥ प्रियैर्वाक्यैर्मुनिपतेरकरोन्मनसो मुदम् ॥ ४७ ॥

आनन्दित चित्त वाले श्रेष्ठ मुनिने उन आये हुए पृथाके पुत्रको आशीर्वादोंसे बढ़ा दिया और अर्घ्य इत्यादिकोंसे प्रिय अतिथिकी यथोचित पूजा करके निर्दिष्ट आसन पर बैठ हुए उनसे आरोग्य पूछा। उन मुनियोंके प्रिय वाक्योंसे सम्मानित हो कर मध्यम पाण्डव (अर्जुन) मनमें अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ ४७ ॥

सस्माराथ भरद्वाजः स्वर्धेनुं कामदोहिनीम् ॥ साचितेनेऽतिमहतीं
भक्ष्यभोज्यादिकल्पनाम् ॥ ४८ ॥ भुक्त्वा पार्थः सऽनुचरस्तमुपास्य तपो-

निघिम् ॥ दिनशेषं कथालापकौतुकेनात्यवाहयत् ॥ ४९ ॥ ततः सायन्तनीं सन्ध्यामुपास्य हुतपावकः ॥ विप्रैरमात्यैः सहितो ययौ तस्य कुटीगृहान् ॥ ५० ॥

भरद्वाजने कामधेनुको स्मरण किया। उन्होंने अनेकों प्रकारके भोज्य पदार्थोंको अर्जुनके सामने फैला दिया। अपने अनुगामियोंके साथ भोजन करके तथा महामुनि तपस्वीकी सेवा करके शेष दिनके अंशको कौतूहल पूर्वक कथाओंके कहने-सुननेमें अर्जुनने बिताया। तब सायंसन्ध्याकी उपासना करके हवन किये हुए अर्जुन, ब्राह्मणों और अनुगामियोंके साथ उनकी कुटीमें गये ॥ ५० ॥

तत्रासीनो मुनिपतेराशीर्भिरभिनन्दितः ॥ आनन्द्यमानो मुमुदे तन्नदीशीतलानिलैः ॥५१॥ सम्पापिना केन भुवः प्रभूता कस्मान्महीध्रादधिकप्रभावा ॥ इति प्रभावं परिपृच्छ्य नद्याः श्रोतुं मुनीन्द्रान्मतिरस्य जज्ञे ॥ ५२ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे तीर्थखण्डे वें० मा० सुवर्णमुखरी-
माहात्म्ये भरद्वाजाश्रमवर्णनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वहां पर बैठे हुए मुनिपतिके आशीर्वादसे अभिनन्दित हो कर उस नदीके शीतल वायुसे आनन्दित होते हुए परम सन्तोषको प्राप्त हुए। किस पर्वतसे यह महाप्रभाव वाली नदी उत्पन्न हुई है? पृथ्वी पर किसके द्वारा लाई गई है? नदीके इस प्रकारके माहात्म्यको मुनिसे सुननेकी इन्हें इच्छा हुई ॥ ५२ ॥

इति द्वितीयोऽध्याय. ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

प्रश्न धनञ्जयका यहां, समाधान मुनि कीन।
वर्णन शङ्कर ब्याहका, गमनऽगस्त्य दक्षिण ॥१॥

अथ सुवर्णमुखरीप्रभावशुश्रूषया भरद्वाजं प्रत्यर्जुनप्रश्नः

श्रीसूत उवाच—

कृतसायन्तनविधिं हुताशनसमद्युतिम् ॥ सुखासीनं मुनिपतिं प्रणम्य भरतर्षभः ॥ १ ॥ तदीयशीतलामोदसुधापूरानुमोदितः ॥ गम्भीरं प्रश्रयोपेतमिदं वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

श्रीसूतजी बोले—सायंकर्मोंको समाप्त किये हुए, अग्निके समान प्रकाशवाले, सुखसे बैठे हुए मुनिपतिको प्रणाम करके तथा उन्हीके शीतल एवं अमृतसे पूर्ण वाक्यसे आनन्दित हो कर अर्जुन गम्भीर एवं नम्र वचन बोले ॥ २ ॥

अर्जुन उवाच—

मुनिपुङ्गव लोकेऽस्मिन्धन्य एकोऽहमेव हि ॥ पुत्राविशेषं भवता यदेवं सम्यगादृतः ॥ ३ ॥ भवदादरसञ्जातकौतुकं मम मानसम् ॥ भवद्वाक्यामृतं दिव्यं पातुं त्वरयतीव माम् ॥ ४ ॥ कस्माच्छैलादियं जाता केनानीता महानदी ॥ किं पुण्यं स्नानदानाद्यैः कृतैस्तत्रोपलभ्यते ॥ ५ ॥ अस्याः प्रभावं प्रभवं प्रह्वस्य मम सन्मुने ॥ वक्तुमर्हसि कार्यो हि भक्तानुग्रह एव ते ॥ ६ ॥ अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा भरद्वाजो द्विजोत्तमः ॥ तदाननं समालोक्य वाक्यं वाक्यविदब्रवीत् ॥ ७ ॥

अर्जुन बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! इस लोकमें एक मैं ही धन्य हूं कि आपने पुत्रसे भी बढ़ कर अच्छी तरहसे मेरा सम्मान किया है। आपके आदरसे उत्साही मेरा मन मुझको आपके दिव्य वचनामृतको पीनेके लिये जल्दी प्रेरित करता है। यह महानदी किस पर्वतसे उत्पन्न हुई है ? किसके द्वारा लाई गई है ? वहांपर स्नान दान इत्यादि करनेसे क्या पुण्य मिलता है ? हे मुनि ! इसके प्रभाव एवं उत्पत्तिको मुझ विनम्रसे कहना चाहिये। क्योंकि अपने भक्तोंपर अनुग्रह करना ही आपका कर्तव्य है। अर्जुनके वचनको सुन कर श्रेष्ठ ब्राह्मण, वाग्मि भरद्वाज उनके मुखकी ओर देख कर वचन बोले ॥ ७ ॥

भरद्वाज उवाच—

त्वमर्जुन महाबाहो कौरवान्वयपावनः ॥ विशेषान्मम मान्योऽसि धर्मपुत्रानुजो यतः ॥ ८ ॥ अनेके भूमिपा दृष्टा न ते त्वमिव फाल्गुन ॥ लीलार्जवदयौदार्यधैर्यगाम्भीर्यशालिनः ॥ ९ ॥ कुलं विद्या धनं चैव बलि-

नां मदकारणम् ॥ भवादृशानां भव्यानां तानि प्रश्रयकारणम् ॥ १० ॥

भरद्वाज बोले—हे महाबाहु अर्जुन ! तुम कौरवके वंशको पवित्र करने वाले एवं विशेष करके मेरे मान्य हो, क्योंकि धर्मपुत्र युधिष्ठिरके तुम छोटे भाई हो। अनेकों राजाओंको मैंने देखा, किन्तु वे तुम्हारे जैसे नहीं हैं। कुल, विद्या, और धन बलवानोंके अभिमानके कारण होते हैं, किन्तु वे ही तुम्हारे जैसे श्रेष्ठ पुरुषोंके लिये नम्रताके कारण बन जाते हैं ॥ १० ॥

प्राज्येषु राज्यभोगेषु विद्यमानेषु कौरव ॥ ऋते भवन्तं को वान्यो नोपैति विकृतेर्वशम् ॥११॥ परवानस्मि कौन्तेय गुणैर्लोकोत्तरैस्तव ॥ किमस्त्यकथनीयं ते कौतुकोपेतमानस ॥ १२ ॥ शृणु राजन्कथां दिव्यां मया मुनिमुखाच्छ्रुताम् ॥ यां श्रुत्वा पातकातङ्कान्मुच्यन्ते सर्वजन्तवः ॥ १३ ॥

हे कौरव। सम्पूर्ण राज्य भोगके रहते हुए तुम्हारे सिवाय और कौन है, जो विकारके वशमे नहीं हो जाता। हे कुन्तीके पुत्र। तुम्हारे लोकोत्तर गुणोंसे मैं पराधीन हू। कौतुकपूर्ण चित्त वाले तुमसे अकथनीय क्या है ? हे राजन्। दिव्य एवं श्रेष्ठ मुनियोंके मुखसे कही हुई कथाको सुनो, जिसको सुन कर पापके भयसे सब जीव मुक्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥

अथ भरद्वाजकथितशङ्करविवाहप्रक्रिया

पूर्वं दाक्षायणी देवी जनकेनावमानिता ॥ त्यक्त्वा तनुं तां नीहारगिरेरभवदात्मजा ॥ १४ सप्तर्षिभिरुपागम्य प्रार्थितो धरणीधरः ॥ मृत्युञ्जयाय स्वां पुत्रीं विवाहे दातुमुद्यतः ॥ १५ ॥ वृषभाङ्को जगत्स्वामी विवोढुं सर्वमङ्गलाम् ॥ प्राप्तो हिमवदावासमोषधिप्रस्थनामकम् ॥ १६ ॥ तच्छासनात्समाजग्मुः स्थावराणि चराणि च ॥ भूतानि भूतनाथस्य कल्याणमभिनन्दितुम् ॥ १७ ॥

पूर्वमे दक्षकी पुत्री सती अपने पितासे अपमानित हो कर शरीरको छोड कर, हिमाचलकी पुत्री हुई। आये हुए सप्तऋषियोंसे प्रार्थना किये जाने पर हिमाचल अपनी पुत्रीको शिवजीके साथ व्याहनेके लिये उद्यत हुए। जगत्स्वामी, वृषभाङ्क शिवजी सर्वमङ्गला पार्वतीको विवाहनेके लिये ओषधिप्रस्थ नामक हिमाचलके निवास स्थानको आये। शिवजीके कल्याण (विवाह) को अभिनन्दन करनेके लिये उनकी आज्ञासे स्थावर एवं जङ्गम सब वहा आये ॥ १७ ॥

तद्भूरिभारसम्भग्ना भूमिरुत्तरसंश्रया ॥ निम्नतामाययौ तावद्याव-

त्पातालमास्थिता ॥ १८ ॥ निर्भारलाघवादस्माद्भूर्दश दक्षिणगामिनी ॥ ऊ-
र्ध्वं गता च तं दृष्ट्वा सर्वेषामभवद्भयम् ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा तां विकृतिं भूमे-
र्दृष्ट्वागस्त्यं महेश्वरः ॥ इत एहि महाप्राज्ञेत्युक्त्वा वचनमब्रवीत् ॥२०॥

उस अत्यन्त भारसे दब कर उत्तर प्रान्तकी भूमि पातालतक नीची हो गई। बोझकी कमीके कारण दक्षिणकी भूमि अत्यन्त ऊपर हो गई, यह देख कर सबको भय हुआ। उस भूमिके विकारको जानकर एवं अगस्त्यको देख कर शिवजीने हे महाप्राज्ञ ! यहां आवो-ऐसा कह कर कहा ॥ २० ॥

आगतेषु समस्तेषु भूतेष्वत्र वसुन्धरा ॥ तद्भारेण समाक्रान्ता विकृ-
तिं समुपागता ॥ २१ ॥ तद्भुवः साम्यकरणे त्वमर्हसि महामते ॥ ऋते
त्वामत्र हि त्वत्तः परेणैतत्कथं भवेत् ॥ २२ ॥ मत्तेजःसम्भवो हि त्वं लो-
कसंरक्षणोद्यतः ॥ तस्मान्मद्वचनाद्वत्स भुवमेतां समीकुरु ॥ २३ ॥ मत्पा-
णिग्रहणाल्लोककौतुकायत्तबुद्धिषु ॥ आगतेष समस्तेषु स्थातव्यं भवताऽपि
च ॥ २४ ॥ त्वं न तिष्ठसि चेदत्र न कश्चिद्विकृतिं भुवः ॥ अपनेतुं हि
शक्नोति तद्गन्तव्यं त्वयाऽनघ ॥ २५ ॥ इमां गिरिसुतापाणिग्रहकल्याणभा-
सुराम् ॥ मूर्तिं प्रदर्शयिष्यामि यत्र तिष्ठसि तत्र ते ॥ २६ ॥

सब प्राणियोंके आने पर उनके भारसे दब कर यहां पर पृथ्वी विकारको प्राप्त हो गई है। हे महाबुद्धिमान् उस भूमिको बराबर करनेमें तुम्हीं योग्य हो। तुम्हारे बिना यहां पर दूसरेसे यह कार्य कैसे होगा। मेरे तेजसे उत्पन्न हुएके निमित्त तुम लोककी रक्षा करनेमें उद्यत हो। इसलिये हे वत्स ! मेरे कहनेसे इस पृथ्वीको बराबर करो। मेरे पाणिग्रहणके निमित्त समागत एवं दत्तचित्त बुद्धिवालोंमें तुम्हारी भी उपस्थिति आवश्यक ही है परन्तु तुम्हारे बिना पृथ्वीके इस विकारको कोई भी दूर नहीं कर सकता। हे अनघ ! इसलिये तुम जाओ। इस हिमाचलकी कन्याके पाणिग्रहण करनेवाली प्रकाशमान मूर्तिको तुम जहां रहोगे वहीं दिखाऊंगा ॥ २६ ॥

अथ भूसाम्यकरणायागस्त्यस्य हिमाद्रेर्दक्षिणदिग्गमनम्

इत्युक्त्वा तं परिष्वज्य विससर्ज महेश्वरः ॥ तथेति तं प्रणम्यासौ
ययौ याम्यां दिशं मुनिः ॥ २७ ॥ विन्ध्याद्रिं समतिक्रम्य दक्षिणामागते
दिशम् ॥ अगस्त्ये मुनिशार्दूले मही साम्यमुपाययौ ॥ २८ ॥ भुवोऽपनीय
विकृतिं स्थितं कलशजं मुनिम् ॥ तुष्टुवुर्देवनरलाः सुरगन्धर्वकिन्न-
राः ॥ २९ ॥ स ददर्श ततो गत्वा कञ्चिच्छैलं समुन्नतम् ॥ विततैर्गरणीं

पादैर्धृत्वा संस्थितमग्रतः ॥३०॥ महौषधीनां रत्नानामशेषाणां स्वयम्भुवा ॥
अखण्डतेजोदीप्तानां विनिर्मितमिवाकरम् ॥ ३१ ॥ समुन्नतैर्यः शिखरैर्नि-
पतद्व्योममूतले ॥ उदारधारासम्पन्नैर्दधातीव निरन्तरम् ॥ ३२ ॥

ऐसा कह कर एवं आलिङ्गन करके शिवजीने उनको विदा किया (भेजा) इसी प्रकार उनको प्रणाम करके यह मुनि दक्षिण दिशामें गये। विन्ध्याचलको पार कर दक्षिण दिशामें मुनि श्रेष्ठ अगस्त्यके आने पर पृथ्वी समान हो गई। पृथ्वीके विकारको दूर कर बैठे हुए अगस्त्य मुनिकी हर्षसे उत्फुल्लित हो कर देवता, गन्धर्व और किन्नरोंने स्तुति की। वहां जा कर उन्होंने (अगस्त्यजीने) फैलाये हुए चरणोंसे पृथ्वीको पकड़े हुए किसी ऊंचे पर्वतको, मानों ब्रह्मासे बनाया हुआ महौषधियों एवं अखण्ड तेजसे प्रकाशित सब रत्नोंका भण्डार हो—देखा और जो अपने उदार झरनोंसे युक्त ऊंचे शिखरोंसे गिरते हुए आकाशको सदा पकड़े हुए जैसा ज्ञात होता है ॥ ३२ ॥

शनैरारुह्य तं शैलमगस्त्यो मुनिपुङ्गवः ॥ निवासाय मतिं चक्रे रम्ये
तच्छिखरस्थले ॥ ३३ ॥ तस्यामृतोपमेयस्य पद्मोत्पलकुलश्रियः ॥ नानाद्रु-
मपरीतस्य कासारस्योत्तरे तटे ॥ ३४ ॥ मनोहरे महीभागे विधायाश्रममु-
त्तमम् ॥ आराध्य पितृदेवर्षीन्विधिवद्वास्तुदेवताम् ॥ ३५ ॥ उवास सुचिरं
तत्र मुनिसङ्घसमन्वितः ॥ देवतासिद्धगन्धर्वाप्सरोजुष्टमहीधरे ॥ ३६ ॥

उस पर्वत पर धीरेसे चढ़ कर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यने उसके शिखरपर रहनेकी इच्छा की। अमृततुल्य जलवाले पद्म एवं उत्पलोंसे शोभित तथा अनेकों वृक्षोंसे घिरे हुए तालावके उत्तर तटपर रमणीय पृथ्वी पर उत्तम आश्रम बनाकर विधिपूर्वक पितरों, देवताओं एवं वास्तु देवताओंकी आराधना करके, देवता, सिद्ध, गन्धर्व एवं अप्सराओंसे पूर्ण पर्वत पर मुनिके समूहसे युक्त हो कर वहां पर ये बहुत दिन रहे ॥ ३६ ॥

तपःसमावेशितचित्तवृत्तौ तपोधने तिष्ठति कुम्भजाते । प्रशान्तसौ-
भाग्यसमन्वितोऽद्रिरगस्त्यशैलाह्वयमाससाद ॥ ३७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे तीर्थखण्डे वे० मा० सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये अर्जुन-
भरद्वाजसंवादे शङ्करविवाहागस्त्यदक्षिणदिग्गमन-
वर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

तपस्यामें चित्तकी वृत्तिको लगाये हुए अगस्त्य ऋषिके वहां पर ठहरने पर प्रशस्त सौभाग्यसे युक्त वह पर्वत "अगस्त्य पर्वत" नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३७ ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः



गगन गिराऽगस्त्येशको, सरितोत्पादन हेतु।
स्वर्णमुखी हित प्रार्थना, तप अगस्त्य तेहि हेतु ॥१॥
ऋषि आश्रम ब्रह्मागमन, ब्रह्म ऋषि सम्वाद।
ऋषि प्रेरित मन्दाकिनी, सरितोद्भव अह्लाद ॥२॥

अथ नद्युत्पादनायागस्त्यं प्रति अशरीर्युक्तिः

भरद्वाज उवाच—

स कदाचिन्मुनिवरः कृतपौर्वाह्णिकक्रियः ॥ विवेश देवतागारं समाराधयितुं शिवम् ॥ १ ॥ अदृश्यरूपा वाग् दैवी तत्राश्रावि महात्मना ॥ तेनाद्भुतोपपन्नेन व्यक्तवर्णसमुज्ज्वला ॥ २ ॥ आकाशवाण्युवाचैनमगस्त्यं जपतां वरम् ॥ नदीहीनो ह्ययं देशः प्रसिद्धोऽपि न शोभते ॥ ३ ॥ ज्ञानविज्ञानविमुखः साकार इव भूसुरः ॥ दीक्षेव दक्षिणाहीना ज्योत्स्नाहीनेव शर्वरी ॥ ४ ॥

भारद्वाज बोले—किसी समय पूर्वाह्नकी क्रियाओंको समाप्त कर वह मुनि श्रेष्ठ शिवजीकी आराधना करनेके लिये देवालयमें गये। आश्चर्य चकित हो उस महात्माने, अदृश्यरूप, स्पष्ट वर्णवाली दिव्य वाणी बाहर सुनी। तपस्वियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीसे आकाशवाणी बोली—यह देश नदीसे हीन होनेके कारण प्रसिद्ध होनेपर भी ज्ञान विज्ञानसे हीन ब्राह्मणके जैसा, अथवा दक्षिणासे हीन दीक्षाके जैसा, अथवा चांदनीसे हीन रात्रिके जैसा, नहीं शोभता है ॥४॥

न विभाति नदीहीना पृथ्वीयं भूसुरोत्तम ॥ प्रवर्तय नदीं शश्वल्लोकानां हितकाम्यया ॥ ५ ॥ अगाधदुरितोद्भूतभीतिभञ्जनशालिनीम् ॥

हितमेतत्सुरौघानामेतन्मुनिवरार्थितम् ॥ ६ ॥ भद्रमेतन्मनुष्याणामेतदाचर सुव्रत ॥ देवानामृषिवर्याणां भूजनानां हितावहाम् ॥ ७ ॥ पापपङ्कप्रशमनीं प्रवर्तय महानदीम् ॥ ८॥

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! यह पृथ्वी नदीसे हीन नहीं शोभती है। अगाध एवं दुस्तर और भयको छुडानेवाली एक नदी, मनुष्योंके हितके लिये यहां ले आइये। देवताओंके समूहोंका इसमें हित है, श्रेष्ठ मुनिवरोंकी भी यही अभिलाषा है। हे सुव्रत ! इससे मनुष्योंका कल्याण होगा, इसको करो। देवताओं, ऋषियों एवं पृथ्वीके मनुष्योंकी हितकारिणी एवं पापपङ्कको धोनेवाली बड़ी नदीको ले आओ ॥८॥

श्रीभरद्वाज उवाच—

तदाकर्ण्य वचो विप्रः क्षणं चिन्तापरायणः ॥ समाप्य देवतापूजां बहिर्वेद्यामुपाविशत् ॥ ९ ॥ आनाययामास तदा तदाश्रमगतान्मुनीन् ॥ तेषामकथयच्चासौ दिव्यवाणीरितं वचः ॥ १० ॥ तदद्भुतमुपश्रुत्य मुनयो हृष्टमानसाः ॥ ११ ॥ अभिवन्द्य मुनिश्रेष्ठं मैत्रावरुणिमब्रुवन् ॥ १२ ॥

श्रीभारद्वाज बोले—इस वचनको सुन एक क्षण चिन्ता कर तथा देवताकी पूजा समाप्त कर महामुनि अगस्त्यजी बाहर वेदीपर आ बैठे। तब उन्होंने आश्रमके मुनियोंको बुलाया और उनको आकाशकी कही हुई वाणी सुनायी। इस आश्चर्यको सुन कर आनन्दसे युक्त सब मुनिगण उस श्रेष्ठ मुनिको अभिवन्दन करके उनसे (अगस्त्यसे) बोले ॥१२॥

अथ सुवर्णमुखर्युत्पादनायागस्त्यं प्रति महर्षिप्रार्थना

श्रीसूत उवाच—

आश्चर्याणां महाश्चर्यं मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ तवैव शोभते दिव्यं त्वच्चरित्रं कृपानिधे ॥ १३ ॥ तव हुङ्कारमात्रेण भ्रष्टो देवाधिराज्यतः ॥ नहुषः कीटतां प्राप तत्चित्रं न विद्यते ॥ १४ ॥ समावृतधराचक्रः कल्लोलताडिताम्बरः ॥ किं न्वतो विद्यते चित्रं यदब्धिश्चुलकीकृतः ॥ १५ ॥ सूर्यमार्गनिरोधार्थं प्रवृत्तो विन्ध्यभूधरः ॥ त्वया प्रशान्तिं गमितः किं न्वतो विद्यते परम् ॥ १६ ॥ तवाद्भुतानि कर्माणि कः स्तोतुं प्रभवेद्भुवि ॥ मन्महाभाग्ययोगात्त्वं प्राप्तोऽसीति शरीरिणाम् ॥ १७ ॥

मुनिगण बोले—हे कृपानिधि ! आपका दिव्य चरित्र ही आश्चर्य एवं मङ्गलोंमें भी मङ्गलके जैसा शोभता है।

आपके हुंकारमात्रसे ही नहुष इन्द्रपदसे भ्रष्ट हो कर अजगर हो गये इससे और क्या आश्चर्य है ! चारों ओर चक्रके जैसा गोलाकार, एवं लहरोंसे आकाशको छूने हुए समुद्रको आप चिल्लूमें पी गये, इससे और क्या आश्चर्य है ! सूर्यके मार्गको रोकनेके लिये बढ़ते हुए विन्ध्याचलको आपने एकदम नीचा कर दिया इससे बढ़ कर और क्या है । आपके अद्भुत कर्मोंको कौन प्रशंसा कर सकता है, हम देहधारियोंके भाग्यसे ही आप यहां आये हैं ॥१७॥

वयं कृतार्थाः सञ्जातास्त्रैलोक्ये यन्महामुने ॥ निवसामोऽत्र भवता सनाथा ह्याश्रमस्थले ॥१८॥ वर्ण्यो हि याम्यतो दूरे विषयोऽयं द्विजोत्तम ॥ समस्तवस्तुपूर्णोऽपि नदीहीनो न राजते ॥१९॥ किमलब्धनदीस्नानेनामुना हतजन्मना ॥ अनदीके जनपदे वासादजननं वरम् ॥ २० ॥ परिपाकस्तु भाग्यानामस्माकं समुपस्थितः ॥ यदादिष्टोऽसि विबुधैः प्रवर्तय महानदीम् ॥ २१ ॥

हे महामुनि ! हमलोग ही इस त्रिलोकमें कृतार्थ हो गये, जो हमलोग इस आश्रममें आपके साथ सनाथ हो कर रहते हैं । बहुत दूर दक्षिणमें यह विषय वर्णन किया जाता है कि समस्त वस्तुओंसे पूर्ण होनेपर भी यह देश बिना नदीके शोभा नहीं पाता है । नदी स्नानके बिना इस व्यर्थ जीवनसे क्या लाभ है ? बिना नदीके देशमें रहनेकी अपेक्षा जन्म ही न लेना अच्छा है । हमलोगोंके भाग्यका फल उदय हुआ है, जो आपको देवताओंने आदेश दिया है । उस महानदीको लाइये ॥२१॥

प्रवर्तितायां देशेऽस्मिन्महानद्यां तवानघ ॥ कदा नु खलु यास्यामः कृतस्नानाः कृतार्थताम् ॥२२॥ किं वितर्केण बहुना प्रयत्नः क्रियतां ध्रुवम् ॥ समानेतुं जगद्वन्द्यां शरण्यां सरिदुत्तमाम् ॥ २३ ॥

इस देशमें आपके द्वारा महानदीके लाये जानेपर हमलोग स्नान करके कृतार्थ होंगे । बहुत आडम्बर वाग्जाल से क्या ? संसारकी वन्दनीय एवं आश्रयदायिनी उत्तम नदीको लानेके लिये निश्चय ही प्रयत्न कीजिये ॥२३॥

श्रीभरद्वाज उवाच—

स तेषां वचनं हृद्यं मानयित्वा महाद्विजः ॥ समानेष्यामि सरितमिति चक्रे विनिश्चयम् ॥ २४ ॥

श्रीभारद्वाज बोले—उन ब्राह्मण लोगोंके वचनको हृदयसे मान कर ब्रह्मर्षि अगस्त्यजीने "नदीको ले आऊंगा" ऐसा निश्चय किया ॥२४॥

अथ सुवर्णमुखर्यानयनायागस्त्यकृततपःप्रकारः

मुनीश्वरैरनुज्ञातस्तानभ्यर्च्य सुरानपि ॥ विशेषपूजां विधिवद्विधाय
पुरविद्विषः ॥ २५ ॥ अङ्गीकृत्य व्रतं गाढं बहुलक्लेशदुःसहम् ॥ अनन्यसु-
लभं यत्नात्स चकार महत्तपः ॥ २६ ॥ घोरेषु घर्मदिवसेष्वन्तरस्थो हवि-
र्भुजाम् ॥ चतुर्णां सवितृन्यस्तदृष्टिर्नोपययौ क्लमम् ॥ २७ ॥ वार्षिकेषु
दिनेषूग्रवायुसम्पातदुःसहैः ॥ आसारैस्ताड्यमानोऽपि नोद्वेगमगमद्धृ-
दि ॥ २८ ॥ हेमन्ते समये तिष्ठन्कण्ठदघ्नेषु वारिषु ॥ जपध्यानपरो भूत्वा
न काञ्चिद्विकृतिं ययौ ॥ २९ ॥

मुनियोंसे आज्ञा पा, उन देवताओं और विशेषकर शिवजीकी पूजा करके तथा दुःसह एवं बहुत क्लेश-युक्त कठिन व्रतको अङ्गीकार करके, जो दूसरोंके लिये सुलभ नहीं, ऐसी कड़ी तपस्या बड़े यत्नसे वे करने लगे। घोर ग्रीष्मके दिनमें चार अग्नियोंके मध्यमें बैठे एवं सूर्यकी ओर दृष्टि लगाये रहनेपर भी उन्होंने क्लेश नहीं पाया। वर्षाके दिनोंमें प्रचण्ड वायुके बहनेसे दुःसह बून्दोंसे ताड्यमान होने पर भी उनके हृदयमें कुछ भी घबराहट नहीं हुई। हेमन्त-में कण्ठपर्यन्त जलमें रह कर जपध्यानमें परायण होने पर भी वे कुछ भी विकृत नहीं हुए ॥२९॥

ततः समीहितार्थस्य विलम्बमवलोक्य सः ॥ पुनर्गाढतरां निष्ठां
प्रपेदे लोकभीषणाम् ॥३०॥ निगृह्य मानसीं वृत्तिं निराहारो जितेन्द्रियः ॥
अविज्ञातबहिर्वृत्तिस्तस्थौ पाषाणवत्तदा ॥ ३१ ॥ एवं तपस्यतस्तस्य सर्वा-
ङ्गेषु हुताशनः ॥ अभ्रंलिहो ज्वलज्ज्योतिर्निश्चक्राम भयङ्करः ॥ ३२ ॥ त-
तोऽद्भुतशिखाजालैरावृताः सर्वतो दिशः ॥ समुदग्रभयोद्विग्ना जनौघाः
परिचुक्रुशुः ॥ ३३ ॥ तदा तथाविधं घोरं जगत्सङ्क्षोभमागतम् ॥ देवा
विज्ञापयामासुर्नमस्कृत्याब्जजन्मने ॥ ३४ ॥

तब अपने इच्छित फलके मिलनेमें विलम्ब देख कर पुनः संसारको डरानेवाली भीषण तपस्यामें वे लग गये। मनकी वृत्तियोंका निग्रह करके, निराहार, जितेन्द्रिय, एवं बाहरकी वृत्तियोंसे ज्ञानशून्य हो कर वे पत्थरके ऐसा हो गये। इस प्रकार तपस्या करते हुए उनके सब शरीरसे आकाशको छूती हुई जाज्वल्यमान एवं भयानक अग्नि-शिखा निकलने लगीं। तब उस अद्भुत शिखाओंकी जालसे सब दिशायें घिर गईं एवं चारों ओरसे भयसे व्याकुल जनता चिल्लाने लगी। तब उस प्रकार आई हुई संसारकी घोर विपत्तिको देवताओंने प्रणाम कर ब्रह्माको कहा ॥ ३४ ॥

अथागस्त्याश्रमं प्रति चतुर्मुखागमनम्

तानाश्वास्य ततो ब्रह्मा सिद्धगन्धर्वसेवितः ॥ प्रादुरासीत्कुम्भभुवः पु-
रोभागे तपस्यतः ॥ ३५ ॥ तमागतं समालोक्य ब्रह्माणं परमं द्विजः ॥
प्रणम्य विविधैस्तोत्रैस्तोषयामास तन्मनाः ॥३६॥ ततस्तं विनयानम्रमगस्त्यं
वीक्ष्य पद्मभूः ॥ प्रसादसुमुखो भूत्वा पूतां गिरमुपाददे ॥ ३७ ॥

उनको आश्वासन दे कर, सिद्ध, गन्धर्वोंसे सेवित ब्रह्माजी तपस्या करते हुए अगस्त्यके सम्मुख प्रकट हुए। आये हुए उस ब्रह्माको देख कर उस ब्राह्मणने प्रणाम कर विविध प्रकारके स्तोत्रसे उनको प्रसन्न किया। विनयसे नम्र उस अगस्त्यको देख कर ब्रह्मा प्रसन्नतासे पवित्र वचन बोले ॥ ३७ ॥

ब्रह्मोवाच—

परितुष्टोऽस्मि तपसा दुश्चरेण तवानघ ॥ वृणीष्व यद्यदिष्टं ते तत्त-
द्दास्यामि सुव्रत ॥ ३८ ॥

ब्रह्मा बोले—हे अनघ! तुम्हारी तपस्यासे मैं प्रसन्न हूं। हे सुव्रत! जो तुम्हारी इच्छा हो, मांगो। मैं दूंगा ॥ ३८ ॥

अगस्त्य उवाच—

तव प्रसादात्सकलमुपपन्नं मम प्रभो ॥ सम्प्रयच्छसि चेत्कामं याचे
निःशङ्कया धिया ॥ ३९ ॥ नदीहीनमिमं देशं दृष्ट्वा खिद्यति मे मनः ॥ अ-
र्थावबोधरहितं श्रुतिपाठमिवाधिकम् ॥ ४० ॥ उर्वीं पावयितुं दक्षां रक्षितुं
च महानदीम् ॥ प्रसादं कुरु देवेश ममेष्टमिदमेव हि ॥ ४१ ॥

अगस्त्य बोले—हे प्रभो! आपकी प्रसन्नतासे मुझको सब कुछ प्राप्त है। यदि आप मनोरथको पूर्ण कर देंगे तो मैं निःशङ्क बुद्धिसे मांगता हूं कि इस देशको नदीसे हीन, अर्थज्ञानसे रहित वेद पाठ जैसा, देख कर मेरे मनमें खेद हो रहा है। अत: हे देवेश! पृथ्वीको पवित्र तथा सुरक्षित करनेको समर्थ शीला नदीको देनेके लिये मेरे ऊपर कृपा कीजिये, यही मेरी अभिलाषा है ॥ ४१ ॥

अथागस्त्यप्रार्थनया गङ्गां प्रति चतुर्मुखचोदना

श्रीभरद्वाज उवाच—

अगस्त्यस्य वचः श्रुत्वा भूयादेवमिति ब्रुवन् ॥ सस्मार मनसा ब्र-
ह्मा सुरवर्त्माश्रयां नदीम् ॥ ४२ ॥ अथोपेत्य वियद्गङ्गा पुरस्तात्परमेष्ठि-

नः ॥ अतिष्ठन्मुकुटन्यस्तप्रशस्ताञ्जलिभासुरा ॥ ४३ ॥ स्वशासनात्समायातां विनयानतमस्तकाम् ॥ तां सर्वजगतां धात्रीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥

भारद्वाज बोले—अगस्त्यके वचनको सुन कर ब्रह्माने–ऐसा ही होगा—यह कहते हुऐ मनसे आकाशगङ्गाको स्मरण किया। उसी वक्त ब्रह्माके आगे आ कर आकाशगङ्गा मुकुटमें अञ्जलि लगा कर खड़ी हुई। अपनी आज्ञासे आई हुई तथा विनयसे मस्तक झुकाई हुई, उस सर्व संसारकी धात्री गङ्गासे ब्रह्माजी यह वचन बोले ॥ ४४ ॥

ब्रह्मोवाच—

गङ्गे मयानुशास्यासि कार्ये लोकोपकारके ॥ तवापि लोकरक्षायां ममेव नियता स्थितिः ॥ ४५ ॥ देशे नदीविहीनेऽत्र प्रवर्तयितुमापगाम् ॥ हितार्थं सर्वलोकानां कुम्भजन्मा समीहते ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वमवतीर्योर्वीं स्वांशेनैकेन भूजनान् ॥ पुनीहि गच्छ वसुधामेतद्दर्शितवर्त्मना ॥ ४७ ॥ भूर्लोके सम्प्रवृत्ते तु प्रवाहे सिद्धिकाङ्क्षिणः ॥ सेविष्यन्ते सुरवरा मुनिवर्याश्च सन्ततम् ॥ ४८ ॥ नद्युत्तमतां याहि त्राहि त्वत्संश्रयाञ्जनान् ॥ कुरु प्रियमगस्त्यस्य गच्छ भद्रे यथासुखम् ॥ ४९ ॥

ब्रह्मा बोले—हे गङ्गे ! लोकके उपकारके कार्यमें तुम मेरे द्वारा शासित होती हो क्योंकि मेरी तरह तुम्हारी भी स्थिति लोकरक्षाके लिये ही है। इस नदीविरहित देशमें, सब लोकोंकी भलाईके लिये, अगस्त्य नदी लाना चाहते हैं। इसलिये तुम एक अंशसे पृथ्वीपर अवतार ले कर इनके दिखलाये हुए रास्तेसे पृथ्वीको जाओ और भूवासियोंको पवित्र करो। पृथ्वी पर तुम्हारे प्रवाहके जाने पर सिद्धिको चाहनेवाले देवता और मुनिगण तुम्हारी सदा सेवा करेंगे। तुम नदियोंमें उत्तम हो जाओ। अपने आश्रित मनुष्यकी रक्षा करो, अगस्त्यका प्रिय कार्य्य करो। हे भद्रे ! यथा सुख जाओ ॥ ४९ ॥

भरद्वाज उवाच—

इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे ब्रह्मा तया नद्या च तेन च ॥ प्रणामपूजनस्तोत्रैर्विशेषैरभिनन्दितः ॥ ५० ॥ अथ गङ्गा मुनिपतेः पुरस्तात्स्वांशसंभवाम् ॥ दिव्यतेजोमयीं मूर्तिं दर्शयित्वा वचोऽब्रवीत् ॥ ५१ ॥

भारद्वाज बोले—ऐसा कह कर उस नदी और अगस्त्यसे प्रणाम, पूजन, एवं स्तोत्र विशेषसे अभिनन्दित हो कर ब्रह्मा अन्तर्धान हो गये। अब मुनिपतिके आगे गङ्गा अपने अंशसे उत्पन्न, दिव्य और तेजोमयी मूर्तिको दिखला कर वचन बोली ॥ ५१ ॥

अथागस्त्यसमीपे स्वांशत्वेन गङ्गाकृतनद्युत्पत्त्यभ्युपगमः

गङ्गोवाच—

मदीयांशोऽयमवनीं संप्राप्य मुनिवल्लभ ॥ पूरयिष्यति तेऽभीष्टं नदी-
रूपं समाश्रितः ॥५२॥

गङ्गा बोली—हे मुनिवल्लभ ! यह मेरा अंश नदीरूपमें पृथ्वीको प्राप्त हो कर तुम्हारी इच्छाको पूरा करेगा ॥५२॥

भरद्वाज उवाच

इत्युक्त्वा सिद्धवाहिन्यां गतायां तत्प्रयुक्तया ॥ गन्तव्यं वर्त्मना
केनेत्युक्तो मुनिरुवाच ताम् ॥ ५३ ॥

भारद्वाज बोले—ऐसा कह कर आकाश गङ्गाके चले जानेपर उसके द्वारा नियुक्त अंशके पूछनेपर कि किस मार्गसे जाना होगा, मुनि उस अंशमूर्तिसे बोले ॥ ५३ ॥

अगस्त्य उवाच—

गच्छन्पुरस्तात्कल्याणि त्वदीयगमनोचितम् ॥ अहं प्रदर्शयिष्यामि
मार्गं त्वं मामनुव्रज ॥ ५४ ॥ इत्युक्ता मुनिना तेन संप्रहृष्टा तवानघ ॥
यदिष्टं तत्करिष्येऽहमिति प्रोवाच सा शुभा ॥५५॥ अथ मुनिरवतार्य तां
नगेन्द्राद्धततटिनीतनुमभ्रसङ्गिशृङ्गात् ॥ मुदिततरमना ययौ पुरस्तात्तदभि-
मतां पदवीं प्रदर्शयन् सः ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे तीर्थखण्डे श्रीसुवर्णमुखरीमाहात्म्ये
सुवर्णमुखर्याविर्भाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अगस्त्य बोले—तुम्हारे आगे आगे चलता हुआ तुम्हारे चलनेके योग्य मार्गको मैं दिखलाऊंगा। तुम मेरे पीछे पीछे आओ। मुनिके इस प्रकार कहनेपर उसने मुनिसे कहा—हे अनघ। जो तुम्हारी इच्छा है मैं वही करूंगी। अब मुनि किनारोंको तोड़नेवाली शरीरधारिणीको, आकाशतक ऊंचे शृंगवाले पर्वतसे उतार कर, आनन्दित मनसे उसके योग्य मार्गको दिखलाते हुए उसके आगे आगे चले ॥५६॥

॥ इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः



इन्द्रादिक सुरकी स्तुती, स्वर्णमुखी कर लक्ष्य ।
नाम करन श्रीस्वर्णमुखी, मुनिवर्णन प्रत्यक्ष ॥१॥
भरद्वाज मुनिका कथन, मुखरी महिमा धन्य ।
प्रतिमा दान विधान पुनि, ऋषि अगस्त्य कृत पुन्य ॥

अथ सुवर्णमुखरीं प्रति शक्रादिस्तुतिः

भरद्वाज उवाच—

तदा दिव्या विमानस्थाः शक्रमुख्या दिवौकसः ॥ अगस्त्यमनुयान्तीं तामनुजग्मुर्महापगाम् ॥१॥ नवावतारां तां दिव्यां सर्वे च मुनिपुङ्गवाः ॥ कृताञ्जलिपुटाः स्तोत्रैरनुयाताः सिषेविरे ॥ २ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वाः सम्भूताश्च सहस्रशः ॥ तां नदीं तं मुनीन्द्रं च प्रशशंसुः शुभैः स्तवैः ॥३ ॥ सुधोपमानममलं दिष्ट्या लब्धमिदं जलम् ॥ इत्यौत्सुक्यरसायत्ता ननन्दुर्धरणीजनाः ॥ ४ ॥ तदा दिनेशाद्देवस्य पद्मयोनेः समीरणः ॥ शृण्वतां सर्वदेवानामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ५ ॥

भारद्वाज बोले—तब विमानपर बैठे हुए इन्द्र इत्यादि देवता अगस्त्यके पीछे पीछे जाती हुई उस महानदीके पीछे पीछे आये । नये और दिव्य अवतारवाली उस नदीको, हाथ जोड़ कर पीछे पीछे जाते हुए सब मुनिगण स्तोत्रसे प्रसन्न करने लगे । हजारों एकत्र हुए सिद्ध, चारण और गन्धर्व उस नदी और उस मुनिको शुभ स्तुतिसे प्रशंसा करने लगे । अमृतके तुल्य, विमल यह जल प्राप्त हुआ है, इस प्रकार उत्सुकतासे भरे हुए पृथ्वीके मनुष्य आनन्द करने लगे । तब महादेवकी आज्ञासे वायु सब देवताओंके सुनते रहते यह वचन बोले ॥५॥

अथ वायुकथितसुवर्णमुखरीनामनिष्पत्तिः

वायुरुवाच—

सुवर्णमिव लोकानां भागधेयादियं नदी ॥ नीता भुवमगस्त्येन

मुखरीकृतदिङ्मुखा ॥६॥ तस्माद्यास्यति विख्यातिं सर्वलोकाभिनन्दिताम्॥ सुवर्णमुखरीनाम्ना धाम्ना कैवल्यसम्पदः ॥ ७ ॥ एषा सुवर्णमुखरी सरित्सु सकलास्वपि ॥ विशिष्टा सेवनीया च ब्रह्मणो वचनं त्विदम् ॥ ८ ॥

वायु बोले—सुवर्णके जैसे संसारके भाग्यसे दशों दिशाओंको मुखरित करती हुई, यह नदी पृथ्वीपर अगस्त्यसे लायी गई है। इसलिये यह संसारमें, कैवल्यकी सम्पत्तिके आधार सुवर्णमुखरीके नामसे सब लोकोंसे वन्दित प्रसिद्धि पावेगी। यह सुवर्णमुखरी नदी सब नदियोंमें विशेष प्रकारसे सेवन करनेके योग्य है यह ब्रह्माका वचन है ॥ ८ ॥

अथागस्त्यकृतस्वानीतसुवर्णमुखरीमहिमानुवर्णनम्

भरद्वाज उवाच—

श्रुत्वेत्थं पवनेनोक्तं वचनं कुम्भसम्भवः ॥ तुतोष विस्मयाक्रान्तः स्वान्त पुलकिताङ्गकः ॥ ९ ॥ एवमेषा दिव्यनदी स्नानपानादिकल्पनैः ॥ सौख्यावहा मनुष्याणां प्रतिष्ठामगमद्भुवि ॥१०॥ आज्ञया पद्मगर्भस्य तद्दि-व्याकाशवाहिनी ॥ सुवर्णमुखरीनाम्ना पुनात्यात्मैकसंश्रयान् ॥

भारद्वाज बोले—वायुसे कहे हुए इस प्रकारके वचनको सुन कर अगस्त्य विस्मयसे आक्रान्त हो कर प्रसन्न हुए। इस प्रकारसे दिव्य एवं मनुष्योंको स्नान पान इत्यादिकोंसे सुख देनेवाली नदी पृथ्वीमे प्रतिष्ठाको प्राप्त हुई। ब्रह्माकी आज्ञासे आकाशगङ्गा नदी सुवर्णमुखरीके नामसे अपने अनन्य आश्रितोंको पवित्र करती है ॥११॥

वहन् गिरीन्द्रान्वनमण्डलं च देशाननेकान्सरिदुत्तमेयम् ॥ क्रमादति-क्रम्य निषेव्यमाणा महानदीभिर्गिरिसम्भवाभिः ॥ १२ ॥ रोगाहतानामथि-कातुराणामनामयैकप्रतिपादकानि ॥ अन्तर्बहिःसम्भृतभूरितापनिवारणानि प्रियकारणानि ॥१३॥ विहारलोलद्विरदप्रकाण्डशुण्डामहाधानरयोत्थितेन ॥ पुष्पोपहारं प्रपनोत्करेण हर्षाद्ददानीव दिवाकरस्य ॥ १४ ॥ सौगन्धिका-म्भोरुहकैरवाणां सौरभ्यसंवासितदिङ्मुखानाम् ॥ द्विरेफमात्रैकनिकेतना-नामाधारभूतान्यतिनिर्मलानि ॥ १५ ॥ लीलावगाहोत्सुकनाकनारीसीमन्त-सिन्दूररजोऽरुणानि ॥ तत्केशपाशच्युतपारिजातप्रसूनगन्धैरधिवासिना-नि ॥ १६ ॥ सा बिभ्रती सम्भृतमङ्गलानि स्वादून्यपङ्कान्यतिनिर्मलानि ॥ सुधोपमानानि सुरेन्द्रसूनोः पयांसि पापप्रतिघातुकानि ॥ ॥ १७ ॥ अ-

गस्त्यशैलात्समवाप्तजन्मा नीता भुवं कुम्भसमुद्भवेन ॥ प्रशस्ततीर्थौघविरा-
जमाना समाययौ दक्षिणवारिराशिम् ॥ १८ ॥

अनेकों पर्वतों, वनों एवं देशोंको क्रमसे पार कर, रोगसे पीड़ित अत्यन्त व्याकुल मनुष्योंको नीरोग करनेवाले—, बाहर और भीतरके अनेकों तापको निवारण करनेवाले—, प्रियके कारण, अपने सुगन्धसे दशो दिशाओंको सुगन्धित करनेवाले तथा भ्रमरके भाग्यका एक ही आलय सुगन्धित कमल और कुमुदिनीके आश्रय—, अत्यन्त निर्मल—, लीलापूर्वक स्नान करती हुई स्वर्गकी स्त्रियोंके सीमन्तके सिन्दूरके संसर्गसे लाल—, उनके केशपाशसे गिरे हुए पारिजातके पुष्पके गन्धसे सुवासित—, अत्यन्त मङ्गलदायक—, स्वादिष्ट, बिना पङ्कके—, अति निर्मल—, अमृतके तुल्य तथा इन्द्रके पुत्र (अर्जुन) के पापको नाश करनेवाले जल—को ले कर, अगस्त्यरूप पर्वतसे उत्पन्न हो कर अगस्त्यसे पृथ्वीपर लायी गयी हुई प्रशस्त, तीर्थसमूहोंसे शोभित, मानो जलक्रीडामें निमग्न हाथीके सूंड़द्वारा वेगके साथ प्रताड़ित करनेसे उत्पन्न अपने जल तरङ्गके स्फुरित जलकणोंसे सूर्यको अर्घ्य प्रदान करती हुई पर्वतोंसे उत्पन्न बड़ी नदियोंसे सेवित यह उत्तम नदी, दक्षिण समुद्रको आई ॥ १८ ॥

सीकराक्षतविन्यासैः रत्नदीपार्पणैरपि ॥ प्रत्युद्ययुस्तामम्भोधेर्वीचयोऽ
भिमुखागताः ॥१९॥ तरङ्गहस्तैरालिङ्ग्य संभाव्यैनां समागताम् ॥ चका-
र सरितां नाथः प्रियमाघोपभाषणैः ॥ २० ॥ प्राप्तायामनुकूलायां तदा त-
स्यामपांनिधेः ॥ प्रहृष्टेन तरङ्गेण जीवनं ववृधेतराम् ॥ २१ ॥ इत्थं सं-
सृज्य सरितमगस्त्यस्तामुदन्वता ॥ स्तुत्वा ययौ समामन्त्र्य कृतकृत्यो यदृ-
च्छया ॥ २२ ॥

तरङ्गोंकी छोटी छोटी बूंद रूपी अक्षतके प्रदान एवं रत्नरूप दीप अर्पण करते हुए समुद्र-तरङ्ग, उसका स्वागत करनेके लिये उसके आगे आये। तरङ्गरूपी हाथोंसे आलिङ्गन करके इस आई हुई नदीको समुद्रने अपनी गर्जनारूप भाषणसे सन्तुष्ट किया। उस अनुकूल नदीके आने पर उस समुद्रका जीवन आनन्दयुक्त तरङ्गोंसे उत्फुल्ल हो गया। इस प्रकार नदीको उत्पन्न कर और उसको समुद्रसे मिला कर, उससे सम्मति ले कर, कृतकृत्य हो, अपनी इच्छासे अगस्त्यजी चले गये ॥ २२ ॥

अर्जुन उवाच—

त्वयैष कथितो ब्रह्मन्महानद्याः समुद्भवः ॥ अस्याः प्रभावं भगवन्नि-
दानीं श्रोतुमुत्सहे ॥ २३ ॥

अर्जुन बोले—हे ब्रह्मन्! आपने इस नदीकी उत्पत्तिको कहा। हे भगवन्! अब इसकी महिमाको हमलोग सुनना चाहते हैं ॥ २३ ॥

अथ भरद्वाजवर्णितसुवर्णमुखरीमाहात्म्यम्

भरद्वाज उवाच—

अंहोनिबर्हणं सर्वश्रेयसामेककारणम् ॥ शृणु माहात्म्यमस्यास्ते कथयिष्यामि पाण्डव ॥ २४ ॥ पाश्चात्त्यं जन्म संप्राप्य ज्ञानिनां कर्मणः क्षये ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं सिद्ध्येद् ब्रह्मत्वकारणम् ॥ २५ ॥ एतां सुवर्णमुखरीं योजनानां शतैरपि ॥ स्मृत्वा मनुष्यः पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २६ ॥ निःक्षिप्तमस्थि जन्तूनां सुवर्णमुखरीजले ॥ सोपानतां समायाति ब्रह्मलोकाधिरोहणे ॥ २७ ॥ स्मरन्तः स्वर्णमुखरीं यत्र कुत्रापि मानवाः ॥ तोयान्तरेषु स्नात्वाऽपि लभन्ते फलमुत्तमम् ॥ २८ ॥

भारद्वाज बोले—हे पाण्डव ! पातकका नाशक एवं सब कल्याणोंका एकमात्र कारण इस नदीके माहात्म्यको मैं तुमसे कहूंगा, सुनो । ज्ञानियोंको जन्मान्तरमें ब्रह्मत्वका कारण सुवर्णमुखरीका स्नान कर्मके नाश होनेपर सिद्ध होता है । सौ योजनसे दूर भी इस सुवर्णमुखरीको स्मरण करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है । प्राणियोंकी अस्थियां सुवर्णमुखरीके जलमें पड़नेसे ब्रह्मलोकमें जानेके लिये सोपानकी तरह उसका साधन हो जाती हैं । जहां कहीं दूसरे जलमें भी सुवर्णमुखरीको स्मरण करते हुए स्नान करनेसे मनुष्योंको उत्तम फल मिलता है ॥२८॥

तावदेवाभिभूयन्ते नराः पातककोटिभिः ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं यावन्नो लभ्यते शुभम् ॥२९॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानि तीर्थानि निजसिद्धये ॥ स्मरन्त्यहरहः प्रातः सुवर्णमुखरीं नदीम् ॥ ३० ॥ अगस्त्याचलसंभूता दक्षिणोदधिगामिनी ॥ पापानि स्वर्णमुखरी स्मरणादेव नाशयेत् ॥३१॥ सुवर्णमुखरीस्नानलोलुपेनान्तरात्मना ॥ वाञ्छन्ति मर्त्यतामेव देवाः शक्रपुरोगमाः ॥३२॥ सुवर्णमुखरीतोयपुष्टसस्यान्नभोजिनः ॥ न लिप्यन्ते महापापैर्भोजनशतोद्भवैः ।३३। अपि निष्कमितं पीतं सुवर्णमुखरीजलम् ॥ नाशयेदद्रितुल्यानि ह्याशु पापानि देहिनाम् ॥३४॥

तभीतक मनुष्य करोड़ों पापोंसे डरता है जबतक उसको सुवर्णमुखरीका शुभ स्नान नहीं मिलता है । दिव्य अन्तरिक्ष और भौम तीर्थ अपने तीर्थत्वकी सिद्धिके लिये प्रतिदिन प्रातःकाल सुवर्णमुखरीको स्मरण करते हैं। अगस्त्याचलसे उत्पन्न एवं दक्षिणसागरमें जानेवाली सुवर्णमुखरी स्मरण करने हीसे पापोंको नाश करती है । शक्र

(इन्द्र) इत्यादि देवता भी सुवर्णमुखरीमें स्नानके लालचसे अन्तःकरणसे मनुष्यत्व चाहते हैं। सुवर्णमुखरीके जलसे पुष्ट अन्नको खानेवाले मनुष्य सैकड़ों दुर्भोजनोंसे उत्पन्न पापसे भी लिप्त नहीं होते। पीया हुआ सुवर्णमुखरीका एक तोला परिमाण जल भी मनुष्योंके पर्वततुल्य पापोंका विनाश कर देता है ॥३४॥

प्राप्यापि मानुषं जन्म सुवर्णमुखरीजले ॥ ये वा स्नानं न कुर्वन्ति
तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ ३५ ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं यदेकं विधिना कृतम् ॥
जाह्नवीस्नानकोटीनां समं भवति पर्वसु ॥ ३६ ॥ गोविन्द इव देवेषु नक्ष-
त्रेष्विव चन्द्रमाः ॥ नरेष्विव महीपालो भूरुहेष्विव कल्पकः ॥३७॥ महा-
भूतेष्विव वियन्मायेवाखिलशक्तिषु ॥ गायत्रीव च मन्त्रेषु वज्रं देवायुधे-
ष्विव ॥ ३८ ॥ तत्त्वेष्विवात्मनस्तत्त्वं रुद्राध्यायो यजुःष्विव ॥ अनन्त इव
नागेषु हिमाचल इवाद्रिषु ॥ ३९ ॥ पोत्रिक्षेत्रमिव क्षेत्रेष्विन्द्रियेष्विव
मानसम् ॥ नदीष्वपि च सर्वासु सुवर्णमुखरी वरा ॥४०॥

मनुष्य जन्मको पा कर भी सुवर्णमुखरीके जलमें जो स्नान नहीं करते हैं, उनका जन्म व्यर्थ है। सुवर्णमुखरीका विधिसे किया, एक भी स्नान वह पर्वकालमें करोड़ों गङ्गास्नानके तुल्य होता है। देवताओंमें गोविन्दके जैसी, नक्षत्रोंमें चन्द्रमाके जैसी, मनुष्योंमें राजाके जैसी, वृक्षोंमें कल्पवृक्षके जैसी, महाभूतोंमें आकाशके जैसी, सब शक्तियोंमें मायाके जैसी, मन्त्रोंमें गायत्रीके जैसी, देवताओंके आयुधोंमें वज्रके जैसी, तत्वोंमें आत्मतत्वके जैसी यजुर्वेदमें रुद्राध्यायके जैसी, सांपोंमें अनन्तके जैसी, पर्वतोंमें हिमाचलके जैसी, क्षेत्रोंमें वाराहक्षेत्रके जैसी, और इन्द्रियोंमें मनके जैसी, सब नदियोंमें सुवर्णमुखरी श्रेष्ठ है ॥४०॥

नित्यं स्मरेन्नमस्कुर्यात्कीर्तयेन्मनसाऽर्चयेत् ॥ शुद्धिक्षेमशिवापेक्षी
सुवर्णमुखरीं शुभाम् ॥ ४१ ॥ "अगस्त्याचलसम्भूतां दक्षिणोदधिगामि-
नीम् ॥ सर्वपापहन्त्रीं त्वां सुवर्णमुखरीं श्रये ॥ ४२ ॥ महापातकवि-
प्लुष्टं गात्रं मम तवोदकैः ॥ क्षालयामि जगद्धात्रि श्रेयसा योजयस्व
माम् ॥४३॥" इति सूक्तद्वयं सम्यगुच्चार्य नियतो नरः ॥ सुवर्णमुखरीतोये
स्नात्वा शुद्धः प्रमोदते ॥ ४४ ॥

शुद्धि क्षेम और कल्याणके चाहनेवाले मनुष्य सुवर्णमुखरीका नित्य स्मरण करे, उसको प्रणाम करे, उसका कीर्तन करे और मनसे उसकी पूजा करे। 'अगस्त्याचलसे उत्पन्न, दक्षिणसमुद्रमें जानेवाली तथा सब पापोंको शमन करनेवाली, सुवर्णमुखरीका मैं आश्रय ग्रहण करता हूं। हे जगन्माता! मैं महापापोंसे परिपूर्ण अपने शरीरको

तुम्हारे जलसे धोता हूं, तुम मुझको कल्याणके साथ मिलाओ।" इन दो मन्त्रोंको नियमपूर्वक उच्चारण करके सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करनेसे मनुष्य शुद्ध हो कर आनन्द लाभ करता है ॥४४॥

ब्रह्मणा निर्मिता पूर्वमगस्त्येन समाहृता ॥ स्वयं मन्दाकिनी मूर्ता सुवर्णमुखरी वरा ॥४५॥ एवंप्रभावा दिव्येयं कीर्तनीया शुभार्थिभिः ॥ मनसा भक्तियुक्तेन स्नातव्या शुभकाङ्क्षिभिः ॥ ४६ ॥ सोमसूर्योपरागेषु स्नानदानादिकं कृतम् ॥ स्यादमेयफलं पार्थ सुवर्णमुखरीतटे ॥ ४७ ॥

पूर्वमें ब्रह्मासे बनाई हुई अगस्त्यसे लाई हुई यह सुवर्णमुखरी श्रेष्ठ स्वयं मन्दाकिनीकी मूर्ति है। कल्याणको चाहनेवालेको इस प्रकारके प्रभाववाली इस दिव्य सुवर्णमुखरीका मनसे कीर्तन एवं भक्तिपूर्वक उसमें स्नान करना चाहिये। हे पार्थ! चन्द्र और सूर्यके ग्रहणोंमें सुवर्णमुखरीके तटपर किया हुआ स्नान दान इत्यादिक अनन्त फलवाले होते हैं ॥ ४७ ॥

सङ्क्रान्तावयने पुण्ये व्यतीपातेऽथ वासरे ॥ सुवर्णमुखरीस्नानं कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥ ४७ ॥ जन्मर्क्षे जन्मदिवसे सुवर्णमुखरीजले ॥ स्नात्वा विधिवदाप्नोति क्षेमारोग्यसुखश्रियः ॥४९॥ दुःस्वप्नविघ्नजं भूतग्रहदुःस्थानजं तथा ॥ सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा तरति किल्बिषम् ॥ ५० ॥

संक्रान्तिमें, अयनमें, व्यतिपातमें अथवा एकादशीमें सुवर्णमुखरीका स्नान करोड़ों कुलका उद्धार करता है। मनुष्य अपने जन्मनक्षत्र और अपने जन्मदिनमें सुवर्णमुखरीके जलमें, विधिसे स्नान करनेसे कुशल, आरोग्य, सुख, और श्री को पाते हैं। मनुष्य सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करके दुःस्वप्न और विघ्नसे उत्पन्न तथा भूत एवं ग्रहोंके दुष्ट स्थानमें स्थितिसे उत्पन्न अनर्थको पार हो जाता है ॥ ५० ॥

सुवर्णमुखरीतीरे गोपादप्रमितां भुवम् ॥ दत्त्वा सर्वमहीदानाद्यत्फलं तदवाप्नुयात् ॥५१॥ धेनुं सवस्त्रालङ्कारां सुवर्णमुखरीतटे ॥ दत्त्वा विप्राय विधिवद्याति ब्रह्म सनातनम् ॥५२॥ पुण्यकालेषु दानानि विधेयान्यखिलान्यपि ॥ इहामुत्र फलप्राप्त्यै सुवर्णमुखरीतटे ॥ ५३ ॥ जपो होमस्तपो दानं पितृकर्म सुरार्चनम् ॥ कृतं भवेच्छतगुणं सुवर्णमुखरीतटे ॥ ५४ ॥

सुवर्णमुखरीके तीर पर गौके खुर मात्र भूमि देनेसे वही फल मिलता है जो, फल सब पृथ्वीके दान करनेसे मिलता है। सुवर्णमुखरीके तटपर वस्त्र और अलङ्कारोंसे युक्त गौ, ब्राह्मणको देनेसे सनातन ब्रह्मपदको प्राप्त होता है। इस लोक और स्वर्ग लोकके फलके लिये सुवर्णमुखरीके तटपर पुण्यकालमें सभी दान करने चाहिये। जप, होम, दान, तप, पितृकर्म तथा देवताकी पूजा, सुवर्णमुखरीके तटपर करनेसे सौगुने हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

अन्यत्ते कथयिष्यामि विधेयं व्रतमुत्तमम् ॥ सुवर्णमुखरीतीरे प्रति-
वर्षं सुखार्थिभिः ॥ मेघकाले रविकरैस्तिरोधानमुपागतः ॥ यदोदेति मुनिः
श्रीमान्मित्रावरुणनन्दनः ॥५६॥ तस्मिन्दिने ये नियताः स्नानमस्यां प्रकुर्वते ॥
तैः कल्पं च सुरावासे स्थीयते कुरुनन्दन ॥ ५७ ॥ तदाऽगस्त्यस्य ये रूपं
सुवर्णेन विनिर्मितम् ॥ विधिना ददते पार्थ ते यान्ति ब्रह्म शाश्वत-
म् ॥ ५८ ॥

सुखके चाहने वालोंसे प्रतिवर्ष सुवर्णमुखरीके तटपर किये जाने योग्य दूसरा व्रत मैं कहता हूं। मेघके समयमें (वर्षा कालमें) सूर्यके किरणोंसे अस्तको प्राप्त हुए वरुणके पुत्र अगस्त्यका जब उदय होता है, उस दिन जो नियमपूर्वक इसमें स्नान करते हैं, हे कुरुनन्दन! वे कल्पपर्यन्त देवताओंके लोकमें (स्वर्ग लोक) रहते हैं। अगस्त्यके उदयके दिन जो कोई अगस्त्यको सुवर्ण निर्मित प्रतिमाका, विधिपूर्वक दान करते हैं, हे पार्थ! वे शाश्वत ब्रह्मपदको प्राप्त हो जाते हैं ॥ ५६ ॥

विधिना केन कर्तव्यं व्रतमेतन्महामुने ॥ तन्ममाचक्ष्व सकलं जिज्ञा-
सोस्तु महात्मनः ॥ ५९ ॥

अर्जुन बोले—हे महामुनि! महात्मा अगस्त्यका यह व्रत किस विधिसे करना चाहिये। हे महात्मा! यह सब आप सुननेकी इच्छा करनेवाले मुझसे कहिये ॥ ५९ ॥

अथागस्त्यप्रतिमादानविधिः

भरद्वाज उवाच—

अगस्त्यस्योदयदिनं ज्ञात्वा नियतमानसः ॥ स्वशक्त्या कारयेद्रूपं
तस्य हेम्ना महामुनेः ॥ ६० ॥ सुवर्णभास्वरच्छायं जटाबन्धमनोहरम् ॥
दधानं करपद्माभ्यामक्षमालां कमण्डलुम् ॥ ६१ ॥ वसानं मृदुलं वल्कं मृ-
गचर्मोत्तरीयकम् ॥ सौम्यं भस्माङ्करुचिरं रुद्राक्षकृतभूषणम् ॥ ६२ ॥ एवं
विधाय तद्रूपं स्नात्वा नियतमानसः ॥ आचार्यं गन्धपुष्पाद्यैरलङ्कृत्य य[था]-
विधि ॥ ६३ ॥ शालेयतण्डुलानां तामाढकस्योपरि स्थिताम् ॥ वस्त्रद्वयस-
मायुक्तां प्रतिमां प्रतिपूजयेत् ॥ ६४ ॥

भरद्वाज बोले—अगस्त्यके उदयका दिन जानकर मनुष्य संयत अन्तःकरणवाला हो अपनी शक्तिके अनुसार उस महामुनिकी सोनेकी प्रतिमा बनवावे। सुवर्णके समान रङ्गवाला, सुन्दर जटाबन्धनवाला, दोनों हाथोंसे अक्षमाला और कमण्डलु धारण किया हुआ मृदु वल्कल वस्त्रवाला, मृगचर्म उत्तरीय वाला, सुन्दर रुद्राक्षके भूषणवाला, [illegible]

भस्म धारण किया हुआ सुन्दर मूर्तिवाला—अगस्त्यके रूपको बना कर नियत मनसे स्नान कर, गन्ध, पुष्प इत्यादिसे आचार्यको यथाविधि अलंकृत कर, शालिधान्यके एक सेर तण्डुल (चावल) पर, दो वस्त्रके सहित स्थापित उस प्रतिमाका पूजन करे ॥ ६४ ॥

विन्ध्यसंस्तम्भनो वार्धिचुलकीकृतिपेशलः ॥ ब्रह्मादिसर्वदेवानां तेजसा सुप्रकाशितः ॥ ६४ ॥ अगस्त्यः कुम्भसम्भूतो देवासुरनमस्कृतः ॥ प्रीतिमाप्नोतु महतीं दानेनानेन मे प्रभुः ॥ ६६ ॥ इमं मन्त्रं समुच्चार्य धारापूर्वं सदक्षिणम् ॥ दत्त्वा विमुक्तः पापेभ्यो याति ब्रह्म सनातनम् ॥ ६७॥ जन्मान्तरकृतैर्नूनमिह जन्मकृतैरपि ॥ महापापोपपापौघैर्मुच्यते नात्र संशयः ॥ ६८ ॥ ब्रह्माद्याः सकला देवाः सनकाद्या महर्षयः ॥ चराचराणि भूतानि प्रीतिं यान्ति न संशयः ॥ ६९ ॥

"विन्ध्याचलकी वृद्धिको रोकने वाले, समुद्रको चुल्लुमें पीने वाले, ब्रह्मा इत्यादि सब देवताओंके तेजसे प्रकाशित, कुम्भसे उत्पन्न, देवताओं और असुरोंसे नमस्कृत, प्रभु अगस्त्य इस दानसे प्रसन्न होवें"। इस मन्त्रको उच्चारण करके जलधाराके साथ, इस प्रतिमाका दक्षिणाके सहित दान करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूट कर सनातन ब्रह्मको जाता है और जन्मान्तरके एवं इस जन्मके किये हुए महापाप और उपपापोंके समूहोंसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं है। और उससे ब्रह्मा इत्यादि सब देवता, सनक इत्यादि महर्षि तथा चर और अचर सब जीव प्रसन्न होते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ६६ ॥

कृत्वा व्रतमिदं पुण्यमगस्त्यस्य च सन्मुनेः ॥ प्रीत्यर्थं भोजयेद्विप्रान्यथाशक्ति सदक्षिणम् ॥ ७० ॥ तस्मिन्कर्मणि चाशक्तो यथाशक्ति महीसुरान् ॥ स्वर्णधान्यादिदानेन तोषयेद्भक्तिसंयुतः ॥ ७१ ॥ तिथिं न वितथीकुर्यात्तां यत्नेन समाचरेत् ॥ यत्किञ्चिदपि चावश्यं कर्म निर्मलपूरुषः ॥ ७२ ॥ महामुनेरगस्त्यस्य परिपक्वं तपःफलम् ॥ नदी सुवर्णमुखरी कीर्तनीया सुरासुरैः ॥७३॥ एवं ते कथितः सम्यङ् महानद्याः समुद्भवः ॥ प्रभावश्च तदाचक्ष्व यद्भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥ ७४ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे तीर्थखण्डे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सुवर्णमुखरीप्रभावप्रशंसा नाम पञ्चमोऽध्याय ॥५॥

श्रेष्ठ मुनि अगस्त्यके इस पवित्र व्रतको करके उनकी प्रीतिके लिये यथाशक्ति, दक्षिणाके सहित, ब्राह्मणोंको भोजन भी करावे। उस कर्ममें अशक्त होनेसे यथाशक्ति स्वर्ण और धान्य आदि दानसे भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट

करे। उस तिथिको व्यर्थ न जाने देवे, अपितु उसका यत्न पूर्वक आचरण करें। निर्मलचित्त हो जो कुछ भी आवश्यक कर्म हो, उसको भी करे। महामुनि अगस्त्यकी परिपक्व तपस्याका फल सुवर्णमुखरी नदी, देवताओं और राक्षसोंसे भी कीर्तन की जानी चाहिये। इस प्रकार महानदीकी उत्पत्ति और माहात्म्यको आप लोगोंसे मैंने कहा, अब पुनः जो सुनना चाहते हो सो कहो॥ ७४॥

इति पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः

अगस्त्येश महिमा कथन, तीर्थ पितर ऋषि देव।
मुखरी वेणी व्याघ्र यदि, सङ्ग शङ्ख पद सेव॥१॥

अथागस्त्यतीर्थागस्त्येश्वरयोः प्रभावः

अर्जुन उवाच—

श्रोत्राञ्जलिभ्यां पीत्वाऽपि भवद्वाक्यामृतं मुहुः॥ मनो नोपैति मे तृप्तिं भूयः श्रवणकाङ्क्षया॥१॥ क्रियासमभिहारो मे त्वद्वाक्याकर्णनैषिणः॥ मनःखेदाय मा भूत्ते करुणाभरितात्मनः॥ २॥ इदानीं श्रोतुमिच्छामि नद्यामस्यां महामुने॥ कुत्र कुत्र समर्थानि तीर्थान्यघनिर्हरणे॥३॥ काः काः पुण्यतरङ्गिण्यः सङ्गता अनया मुने॥ कुत्र स्नानेन कृत्ताघा नोपयन्ति यमाद्भयम्॥ ४॥

अर्जुन बोले—आपके वाक्यरूपी अमृतको श्रवणरूपी अञ्जलियोंसे पान कर भी मेरा मन पुनः सुननेकी इच्छासे तृप्त नहीं होता। आपके वचनको सुनने की अभिलाषा करनेवाले मेरे बार बार प्रश्नसे आप जैसे कृपासमुद्र महात्माके मनमें खेद न होवे। हे महामुनि! अब यह सुननेकी मैं इच्छा करता हूं कि इस नदीमें कहां कहां पर पापका नाश करनेमें समर्थ कौन कौन तीर्थ हैं। हे मुनि! कौन कौन पवित्र नदियां इसमें आ मिली हैं? किस स्थान पर स्नान करनेसे नष्ट पाप पुरुषोंको यमसे न डर होता है?॥ ४॥

हराच्युतादिदेवानां पुण्यान्यायतनानि च ॥ यानि यानि च पुण्यानि तिष्ठन्त्यस्यास्तटद्वये ॥ ५ ॥ तेषु क्षेत्रेषु मनुजैर्यत्फलं समवाप्यते ॥ विहितैर्विधिवत्स्नानदानादिशुभकर्मभिः ॥ ६ ॥ सोपाख्यानमिदं सर्वं वेदितुं वेदवित्तम ॥ सञ्जाता महती प्रीतिर्विस्तार्याचक्ष्व मे क्रमात् ॥ ७ ॥

इस नदीके दोनों तटपर शिव और विष्णुके पवित्र आयतन (मन्दिर) अथवा और भी जो जो पवित्र तीर्थ हैं, उन उन क्षेत्रोंमें विधि विहित स्नान, दान इत्यादि शुभ कर्मोंसे जो फल मनुष्योंको मिलते हैं, उन सबको उपाख्यानके साथ जाननेकी बड़ी इच्छा उत्पन्न हुई है। हे वेदके जाननेवाले! उन्हें आप क्रमसे विस्तार पूर्वक मुझसे कहिये ॥ ७ ॥

भरद्वाज उवाच—

यत्पृष्टं भवता पार्थ क्रमाद्विस्तार्य कथ्यते ॥ आरभ्यागस्त्यतीर्थेन्द्रादस्यास्तीर्थौघवैभवम् ॥ ८ ॥ अखण्डज्ञानरूपेण सर्वलोकहितैषिणा ॥ सुरासुराणां सम्भाव्येनागस्त्येन महात्मना ॥ ९ ॥ वसुधामवतीर्णायां प्रथमं तद्धराधरात् ॥ स्नात्वा यत्र महानद्यां सम्प्राप्नोति कृतार्थताम् ॥१०॥ अगस्त्यतीर्थमित्युक्तं पावनं तज्जगत्त्रये ॥ तत्र स्नानेन शुद्धिः स्यान्महापातकिनामपि ॥ ११ ॥

भारद्वाज बोले—हे पार्थ! आपने जो पूछा, उसको मैं अगस्त्यतीर्थसे आरम्भ करके उन तीर्थ समूहके माहात्म्यको विस्तार पूर्वक क्रमसे कहता हूं। अखण्ड ज्ञान रूप, सब लोककी भलाईको चाहनेवाले, देवताओं और असुरोंसे नमस्कृत महात्मा अगस्त्यने, जिसको पहले उस पर्वतसे उतारा था, जिस महानदीमें स्नान करनेसे मनुष्य कृतार्थ होता है, वही तीनों लोकमें पवित्र 'अगस्त्यतीर्थ" कहा गया है। वहांपर स्नान करनेसे महापापियोंकी भी शुद्धि होती है ॥ ११ ॥

अनेकजन्माचरितमहापातकसंहतिम् ॥ निरस्य दिवि मोदन्ते तत्र स्नानरता जनाः ॥ १२ ॥ ये तत्र तीर्थे यतिनः कृतस्नाना यतेन्द्रियाः ॥ गोभूतिलहिरण्यादिमहादानानि कुर्वते ॥ १३ ॥ ते प्राप्नुवन्ति सम्पूर्णं गङ्गाद्वारे समाहितैः ॥ विहितानां शतगुणं दानानां फलमर्जुन ॥१४ ॥ अत्रास्ति भगवानीशः ख्यातोऽगस्त्येशसंज्ञया ॥ स्थापितोऽगस्त्यमुनिना लोकानन्दविधायिना ॥ १५ ॥ स्नात्वा तस्यां महानद्यां तल्लिङ्गं पूजयन्ति ये ॥ दशानामश्वमेधानां फलं सम्प्राप्नुवन्ति ते ॥ १६ ॥

वहां पर स्नान करनेवाले मनुष्य अनेक जन्मोंके किये हुए महापापोंके समूहोंका नाश कर स्वर्गमें आनन्द करते हैं। जो जितेन्द्रिय और यति वहां पर स्नान करके गो, भूमि, तिल, सुवर्ण इत्यादि महादान करते हैं, वे गङ्गाद्वारमें विधियुक्त किये हुए दानोंके सौगुने फलको पाते हैं। यहां पर लोकको आनन्दित करनेवाले, अगस्त्य मुनिसे स्थापित अगस्त्येश नामसे प्रसिद्ध भगवान शिव विराजमान हैं। उस महानदीमें स्नान करके जो उस लिङ्गकी पूजा करते हैं, वे दश अश्वमेधके फल पाते हैं ॥ १६ ॥

अथ सुवर्णमुखरीस्नानकालनिर्णयः

धनूराशिं परित्यज्य यदा मकरमंशुमान् ॥ विशेत्तदयनं पुण्यमुत्तरं परिकीर्तितम् ॥ १७ ॥ तस्मिन्दिने ये नियता नद्यां स्नात्वा समाहिताः ॥ पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येशं सुरार्चितम् ॥१८॥ अग्निष्टोमसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ फलं सम्प्राप्य मोदन्ते दिवि देवगणार्चिताः ॥ १९ ॥ मृगसंक्रमवेलायां पुरुषैर्मङ्गलार्थिभिः ॥ अवश्यमेव कर्तव्यमगस्त्येशस्य दर्शनम् ॥ २० ॥

धनुराशिको छोड़ कर जब सूर्यदेव मकरराशिमें प्रवेश करते हैं, तब पवित्र उत्तरायण कहा जाता है। उस दिन जो मनुष्य उस नदीमें नियमपूर्वक स्नान करके, देवताओंसे पूजित पार्वतीपति अगस्त्येशके दर्शन करते हैं, वे हजारों अग्निष्टोम, सैंकड़ों वाजपेयके फलको पा और देवताओंसे पूजित हो कर स्वर्गमें आनन्द करते हैं। मङ्गलके चाहनेवाले पुरुषको मकर संक्रान्तिके समय अगस्त्येशके दर्शन अवश्य करना चाहिये ॥२०॥

अथ देवर्षिपितृतीर्थमाहात्म्यम्

ऐशान्यां तस्य तीर्थस्य देशे क्रोशमितेऽर्जुन ॥ अस्ति तीर्थत्रयं ख्यातं देवर्षिपितृनामभिः ॥ २१ ॥ देवर्षिपितरस्तत्र मुनिना तेन पूजिताः॥ प्रदद्युर्हृष्टमनसः सर्वान्समभिवाञ्छितान् ॥ २२ ॥ तदा देवर्षिपितृभिरिदं तीर्थत्रयं क्रमात् ॥ अस्मन्नामभिरीड्यं स्यादित्युक्तं तस्य सन्निधौ ॥ २३ ॥ तस्मिंस्तीर्थत्रये ये तु स्नात्वा विहिततर्पणाः ॥ ऋणत्रयविनिर्मुक्तास्ते यान्ति दिवमक्षयाम् ॥ २४ ॥

हे अर्जुन ! उस तीर्थके ईशान कोणमें एक कोशपर देव, ऋषि और पितृके नामके तीन तीर्थ हैं। वहांपर उस मुनिसे पूजे जाकर देवता, ऋषि और पितरोंने आनन्द मनसे सब इच्छाओंको पूर्ण किया था। उस वक्त उसके समीपमें उन्होंने कहा कि ये तीनों तीर्थ क्रमसे (देवतीर्थ, ऋषितीर्थ और पितृतीर्थ) हमारे नामसे प्रसिद्ध होवें। इन तीनों तीर्थोंमें स्नान करके जो तर्पण करते हैं, वे तीनों ऋणोंसे छूट कर अक्षय स्वर्गमें जाते हैं ॥२४॥

वेणासुवर्णमुखरीसङ्गमवर्णनम्

ततः प्रागुत्तरं क्षोण्या योजनद्वयसीमनि ॥ प्राप्ता सुवर्णमुखरीं वेणा नाम महानदी । २५ ॥ समुदग्ररयाघातनिपातिततटद्रुमा ॥ कुल्यानिर्गतवाःपूरसमाप्लावितकानना ॥ २६ ॥ उत्तुङ्गपुलिनोत्सङ्गखेलत्कोककुलाकुला ॥ अम्बुजामोदलोलालिमालालीलारवान्विता ॥ २७ ॥ अतिक्रम्य समुत्तुङ्गाननेकान्धरणीधरान् ॥ प्रभूततोयरुचिरा सुवर्णमुखरीं गता ॥ २८॥

उस जगहसे इशान दिशाके तरफ दो योजनकी दूरीपर सुवर्णमुखरीसे वेणा नामकी महानदी आ मिली है। अति वेगयुक्त आघातसे किनारेके वृक्षोंको गिराती हुई, कृत्रिम (नहर) से निकले हुए जलके प्रवाहसे जंगलको प्लावित करती हुई, ऊंचे ऊंचे वालुकामय रेतीमें खेल करते हुए चक्रवाक समूहसे युक्त, कमलोंके सुगन्धमें आसक्त चञ्चल भ्रमरगणके गुञ्जार शब्दसे युक्त अत्यन्त मधुर जलवाली यह वेणानदी अनेकों ऊंचे पर्वतोंको पार कर सुवर्णमुखरीसे मिल गई है ॥२८॥

नदीद्वयव्यतिकरे कृतस्नाना यथाविधि ॥ दशानामश्वमेधानामखण्डं प्राप्नुयुः फलम् ॥ २९ ॥ सङ्गता वेणया पुण्या सुवर्णमुखरी नदी ॥ गिरिदुर्गममार्गेण यथावुत्तरवाहिनी ॥३०॥ मध्यगेन महीध्राणां मार्गेण विषमेण सा ॥ गत्वा विरेजे तटिनी योजनानां चतुष्टयम् ॥३१॥ पूर्वतस्तस्य देशस्य विषये सार्धयोजने ॥ उदक्कूले महानद्याः प्राग्वाहिन्या मनोहरे ॥ ३२ ॥ अगस्त्येश्वरनामाऽऽस्ते ख्यातं लिङ्गं पुरद्विषः ॥ स्मरणं देवमर्त्यानां समस्ताघनिवारणम् ॥ ३३ ॥

मनुष्य दो नदियोंके सङ्गममें यथाविधि स्नान करके दश अश्वमेधोंके अखण्ड फलको पाते हैं। वेणा नदीके संगत हो कर सुवर्णमुखरी नदी पर्वतोंके दुर्गम मार्गसे उत्तरको ओर गई है। पर्वतोंके मध्यके विषम मार्गसे चार योजन तक जा कर शोभा पाती है। उस देशसे पूर्वमें डेढ़ योजन दूरपर पूर्व मुखको बहनेवाली उस नदीके सुन्दर उत्तर तटपर अगस्त्येश्वर नामक शिवका प्रसिद्ध लिङ्ग है। उसके स्मरणसे ही देवता और मनुष्योंके सब पापोंका नाश होता है ३३

स्नात्वा तस्यां महानद्यां ये नरा नियतेन्द्रियाः ॥ पश्यन्ति पार्वतीनाथमगस्त्येन प्रतिष्ठितम् ॥ ३४ ॥ अनेकैः पूर्वजननैरर्जितं पापसञ्चयम् ॥ ते निरस्य सुरावासे मोदन्ते कालमक्षयम् ॥ ३५ ॥ ततः सोदङ्मुखी भूत्वा सुवर्णमुखरी ययौ ॥ योजनार्धमिमं देशं तीर्थसङ्घसमन्विता ॥ ३६ ॥

यहांपर उस नदीमें स्नान करके जो जितेन्द्रिय मनुष्य, अगस्त्यसे प्रतिष्ठित पार्वतीपतिके दर्शन करते हैं वे

अनेकों जन्मोंके अर्जित पापराशिको छोड़ कर अक्षय कालतक स्वर्गमें आनन्द करते हैं। यह सुवर्णमुखरी आधा योजन उत्तर मुख हो कर तीर्थसमूहोंसे युक्त हो कर इस देशमें आई है ॥३६॥

अथ सुवर्णमुखर्यां व्याघ्रपदाह्वयनदीसङ्गमः

तस्मिन्देशे तु हिन्तालतालसालमनोरमे ॥ गता सुवर्णमुखरीं नदी व्याघ्रपदाह्वया ॥ ३७ ॥ दुर्वारभूरिदुरितविनिवारणपेशला ॥ नीरन्ध्रतीरवानीरवनमण्डलमण्डिता ॥ ३८ ॥ सिद्धगन्धर्वललनालीलागाहनशालिनी ॥ तपस्विकन्यानिःक्षिप्तबलिपुष्पविराजिता ॥ ३९ ॥ हंसकारण्डवक्रौञ्चकुलकोलाहलाकुला ॥ प्राक्प्रवाहा समागत्य शैलान्तरगताध्वना ॥४०॥ सङ्गमे सरितोस्तत्र कृतस्नाना नरोत्तमाः ॥ समग्रमश्वमेधानां दशानां प्राप्नुयुः फलम् ॥ ४१ ॥

हिन्ताल, ताल, और सालसे मनोहर उस देशमें, अत्यन्त कठिन अनेकों पापोंको छुड़ानेवाली, दोनों किनारे सुन्दर वनोंसे शोभित, सिद्ध और गन्धर्वोंकी स्त्रियोंकी स्नान लीला करनेकी भूमि, तपस्विनी कन्याओंके द्वारा प्रदत्त बलि एवं फूलोंसे शोभित, हंस, कारण्डव, क्रौंच कुलके कोलाहलसे पूर्ण, एवं पर्वतोंके बीच शब्द करती हुई व्याघ्रपदा नामक नदी, पूर्वप्रवाह मुख हो कर सुवर्णमुखरीसे मिली है। उन नदियोंके सङ्गममें स्नान किया हुआ श्रेष्ठ मनुष्य दश अश्वमेधोंका सम्पूर्ण फल पाता है ॥४१॥

अथ शङ्खतीर्थवर्णनम्

तत्र व्याघ्रपदाख्यायास्तटे लोकमलापहे ॥ अनघं सर्वपापघ्नं शङ्खतीर्थं विराजते ॥ ४२ ॥ ब्रह्मर्षिनियतावासं सुरगन्धर्वसेवितम् ॥ दर्शनस्नानपानाद्यैरमितानन्ददायकम् ॥ ४३ ॥ तत्रास्ते भगवानीशः शङ्खेशो नाम फाल्गुन ॥ शङ्खनाम्ना मुनीन्द्रेण लिङ्गरूपं प्रतिष्ठितम् ॥ ४४ ॥ ये तत्र तीर्थे सुस्नाताः पश्यन्ति वृषवाहनम् ॥ दशाश्वमेधजं पुण्यं लब्ध्वा यान्ति सुरालयम् ॥ ४५ ॥

वहां संसारके मलको छुड़ानेवाली व्याघ्रपदाके तटपर सब पापोंका नाश करनेवाला, निष्पाप, ब्रह्मर्षियोंका नियत आवास, सुरों और गन्धर्वोंसे सेवित तथा दर्शन स्नान और पानसे अत्यन्त आनन्दको देनेवाला शङ्खतीर्थ विराजमान है। हे अर्जुन! वहां शङ्ख नामक मुनिसे प्रतिष्ठित शंखेश नामक श्रीशिव लिङ्ग हैं। जो यहांपर अच्छे प्रकार स्नान कर शिवका दर्शन करते हैं, वे दश अश्वमेधके पुण्यको प्राप्त करके देवताओंके लोकमें जाते हैं ॥४५॥

युक्ता तया व्याघ्रपदाभिधानया गत्वा ततो योजनसम्मितां भुवम् ॥
ययौ मुनीन्द्रैर्वृषभाचलान्तिकं संसेव्यमाना शुभनिर्मलोदका ॥ ४६ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे तीर्थखण्डे वेङ्कटाचलमाहात्म्येऽगस्त्यतीर्थादिवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

मुनियोंसे सेवित निर्मल जलवाली यह स्वर्णमुखरी नदी इस व्याघ्रपदाके साथ मिल कर एक योजन तक जा कर वृषभाचलके पास पहुंची है ॥४६॥

॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः

स्वर्णमुखी कल्यानदी, अनुपम संगम देख ।
वेंकट मुखरी तट निकट, शोभा वर्णन लेख ॥१॥
श्री वेङ्कट भगवानका, वैभव वर्णन पूर ।
प्रभु रचना प्रभुता कथन, विस्मयसे भरपूर ॥२॥

अथ सुवर्णमुखर्याः कल्यानदीसङ्गमः

भरद्वाज उवाच—

सुवर्णमुखरीं तत्र सङ्गता मङ्गलप्रदा ॥ कल्या नाम नदी पुण्या कालिन्दी जाह्नवीमिव ॥ १ ॥ वृषभाचलसम्भूता तीर्थराजविराजिता ॥ नदीनामुत्तमा कल्या कलुषौघविनाशिनी ॥ २ ॥ नानातरुलताव्रातविभूषिततटद्वया ॥ मुनिसङ्घसुखावासा पुण्याश्रमसमुत्कटा ॥ ३ ॥ द्विजदत्तार्घ्यविलसत्कुशाक्षतलसत्तटा ॥ अप्सरःकुचकस्तूरीपङ्कक्षालनपङ्किला ॥ ४ ॥

दन्तावलकटच्योतन्मदाम्बुसुरभीकृता ॥ विप्रभूपालविततमखयूपशताञ्चि-
ता ॥ ५ ॥ अनाविलजलापूरतोषिताशेषमानवा ॥

भारद्वाज बोले—जिस प्रकार यमुना नदी गङ्गामें आकर मिली है,उसी प्रकार मंगलको देनेवाली, पवित्र वृष-भाचलसे उत्पन्न,तीर्थों से शोभित, नदियोंमें उत्तम, पापोंके समूहको नाश करनेवाली,अनेकों वृक्ष एवं लताओंके समूहों-से शोभित दोनों तीरवाली, मुनियोंके सुखका आवास, उनकी कुटियोंसे शोभित, ब्राह्मणोंके दिये हुए अर्घ्य, कुश एवं अक्षतोंसे शोभित तीरवाली, अप्सराओंके स्तनोंमें लगी हुई कस्तूरीके धोनेसे पङ्कयुक्त, हाथियोंके चूये हुए मदके जलसे सुगन्धित, ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके यज्ञसम्बन्धी सैकड़ों यूपस्तम्भोंसे शोभित, परिपूर्ण निर्मल जलसे सब मनुष्योंको सन्तुष्ट करनेवाली कल्या नामक नदी सुवर्णमुखरीमें आ कर मिली है ॥६॥

एकैवालं पराकर्तुं महानद्योस्तु पातकम् ॥६॥ तयोः सङ्गतयोः स्तोतुं
महिमानं क ईशते ॥ यत्र ब्रह्मशिला नाम सरिन्मध्ये च वर्तते ॥ ७ ॥
अगस्त्यतपसा पश्चाद्गयासान्निध्यमेति च ॥ नदीद्वयजले तत्र स्नाताः पुण्ये
कुरूद्वह ॥ ८ ॥ मखानां पौण्डरीकाणां शतस्य फलमाप्नुयुः ॥ ब्रह्महत्या-
दिपापानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ९ ॥ तत्राभिषेकपूतानां नदीद्वितयस-
ङ्गमे ॥ सङ्गता भवनाशिन्या कृष्णवेणीव पावनी ॥१०॥ राजते स्वर्णमुखरी
कल्यया सङ्गता तदा ॥ ११ ॥

इन दोनों महानदियोंमें एक ही पापको दूर करनेमें समर्थ है। तब उनके सङ्गमके माहात्म्यकी स्तुति करनेको कौन समर्थ है ? जहांपर जलके मध्यमें ब्रह्मशिला नामकी नदी है। हे कौरव ! (अर्जुन) अगस्त्यकी तपस्यासे यह पश्चिम मुख हो कर गयातक जाती है। उन दो पवित्र नदियोंमें स्नान करके मनुष्य सौ पुण्डरीक यज्ञोंके फलको पावेंगे। उनके पवित्र संगमपर स्नान करनेसे मनुष्योंके ब्रह्महत्या इत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं। भवनाशिनी नामकी नदीके साथ जिस प्रकार कृष्णवेणी मिली है, उसी प्रकार कल्या नदीसे मिल कर स्वर्णमुखरी विराजमान है ॥११॥

अथ सुवर्णमुखरीतीरस्थितश्रीवेङ्कटाचलवर्णनम्

अथोदीच्यां महानद्या योजनार्द्धे विराजते ॥ योजनोत्सेधसहितो
विख्यातो वेङ्कटाचलः ॥ १२ ॥ सर्वेषामेव तीर्थानामाश्रयोऽयं नगोत्तमः ॥
अञ्जनानन्तवृषभनीलकेसरिपोत्रिणः ॥१३॥ एतान्युपवनान्यद्रेः स्युर्नाराय-
णवेङ्कटे ॥ वराहवपुषा पूर्वं स्वीकृतत्वान्मधुद्विषा ॥१४॥ वराहक्षेत्रमित्यार्यैः

कीर्तितोऽयं महीधरः ॥ सुवर्णमुखरीतीरे विख्याते वेङ्कटाचले ॥ १५ ॥ नि-
वसत्यच्युतो नित्यमब्धीन्द्रतनयान्वितः ॥ तस्मिन्गिरौ श्रिया सार्धं वसन्तं
वेङ्कटाधिपम् ॥ १६ ॥ सेवन्ते सिद्धगन्धर्वमुनिमानवदानवाः ॥ तस्मिन्वि-
न्यस्तचित्तानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥ १७ ॥ वाञ्छितान्याशु सिध्यन्ति
नश्यन्ति विपदोऽर्जुन ॥ ये स्मरन्ति जगन्नाथं वेङ्कटाद्रिनिवासिनम् ॥१८॥
निरस्तदोषास्ते यान्ति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ १९ ॥

इसके उत्तर ओर आधा योजनपर एक योजन ऊंचा प्रसिद्ध श्रीवेङ्कटाचल विराजमान है। यह पर्वतश्रेष्ठ सब तीर्थोंका आश्रय है, अञ्जन, अनन्त, वृषभ, नील, केशरि इत्यादि इतने उपवन वेङ्कटाचलमें विराजमान हैं। पूर्वकी ओर वाराह शरीर धारण करनेवाले भगवानके द्वारा स्वीकार किये जानेके कारण यह पर्वत बड़े लोगोंसे वाराहक्षेत्र कहा जाता है। सुवर्णमुखरीके तीरपर प्रसिद्ध वेङ्कटाचलपर विष्णुभगवान लक्ष्मीके साथ सदा रहते हैं। उस पर्वत-पर श्रीलक्ष्मीके साथ रहते हुए भगवानकी सिद्ध, गन्धर्व, मुनि, मनुष्य, दानव इत्यादि सेवा करते हैं। हे अर्जुन! उस पुरुषोत्तममें मन लगाये हुए भक्तोंके मनोरथ शीघ्र ही सिद्ध होते हैं और विपत्ति नष्ट हो जाती है। जो वेङ्कटाचल-पर रहनेवाले भगवानका स्मरण करते हैं, वे निर्दोष हो कर शाश्वत और अविनाशी पदको प्राप्त हो जाते हैं ॥१९॥

अर्जुन उवाच—

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सुरासुरनमस्कृतः ॥ कथं प्रादुरभूद्देवो भगवान्क-
मलापतिः ॥ २० ॥ कस्य वा कृतिनस्तत्र प्रसन्नो निजमद्भुतम् ॥ रूपं प्र-
काशयामास भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ २१ ॥ विष्णोर्देवादिदेवस्य महिमानं
महामुने ॥ श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे कथय विस्तरात् ॥ २२ ॥

अर्जुन बोले—महा पवित्र वेङ्कटाचलपर देवताओं और असुरोंसे नमस्कृत भगवान लक्ष्मीपति किस प्रकार आविर्भूत हुए? अथवा किस पुण्यवानके प्रति प्रसन्न हो कर अपने अद्भुत, भोग एवं मुक्ति फलको देनेवाले रूपको भगवानने प्रकट किया? हे महामुनि! देवताओंके देव श्रीविष्णुके माहात्म्यको सुनना चाहता हूं, वह मुझसे विस्तारपूर्वक कहिये ॥२२॥

अथ श्रीवेङ्कटाचलवासिभगवदुद्भववर्णनम्

भरद्वाज उवाच—

शृणु वेङ्कटनाथस्य महिमानं समाहितः ॥ विस्तरेण समाख्यातुं ब्र-
ह्मणापि न शक्यते ॥ २३ ॥ धन्योऽसि देवदेवस्य माहात्म्यं मधुविद्विषः ॥

यद्भक्तियुक्ताऽभूत्तात श्रोतुं मतिररिन्दम ॥ २४ ॥ कृतपुण्योऽस्म्यहं पार्थ सर्वभूतपतेर्हरेः ॥ पवित्राणि चरित्राणि स्तोष्यन्ते यन्मयाऽधुना ॥ २५ ॥

भारद्वाज बोले—श्रीवेङ्कटनाथकी महिमाको ध्यानसे सुनो, उस महिमाको विस्तारसे कहनेमें ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं। हे शत्रुदमन ! तुम धन्य हो ! कि जो तुम्हारा मन देवदेव मधुसूदनके माहात्म्य सुननेकी भक्तिसे युक्त हुआ है। हे पार्थ ! मैं भी धन्य हूं कि जो सब जीवोंके स्वामी श्रीहरिके पवित्र चरित्र मुझसे अब वर्णन किया जायगा ॥२५॥

पुरा भागीरथीतीरे जनकाय महात्मने ॥ क्रतुदीक्षाप्रसक्ताय विशुद्धज्ञानशालिने ॥ २६ ॥ वामदेवेन कथितां कथां पापप्रणाशिनीम् ॥ कथयिष्यामि ते पार्थ विष्णुकीर्तनपावनीम् ॥ २७ ॥

पहले भागीरथीके तीरपर यज्ञकी दीक्षामें प्रवृत्त, विशुद्ध, ज्ञानी, महात्मा जनकको वामदेवके द्वारा कही हुई, पापको नष्ट करनेवाली, विष्णुके कीर्तनसे पवित्र कथा मैं तुमसे कहूंगा ॥२७॥

सर्वेषामेव भूतानामाद्यो नारायणः प्रभुः ॥ जगन्मयो जगत्कर्ता चित्स्वरूपो निरञ्जनः ॥ २८ ॥ सहस्रशीर्षा भगवान्सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ यस्य भासा जगदिदं विभाति सचराचरम् ॥ २९ ॥ तस्मात्परतरं तेजस्तस्मात्परतरं तपः ॥ तस्मात्परतरं ज्ञानं योगस्तस्मात्परो न च ॥३०॥ विद्या तस्मादपि परा नास्ति पार्थ नरर्षभ ॥ सर्वेष्वपि च भूतेषु सदा सन्निहितः प्रभुः ॥ ३१ ॥ सर्वाण्यपि च भूतानि तस्मिन्नेवासते सुखम् ॥ स एव यज्ञो यज्वा च साधनं स्रुक्स्रुवादिकम् ॥ ३२ ॥ फलं फलप्रदाता च तत्सम्प्राप्या गतिस्तथा ॥

श्रीनारायण प्रभु सब जीवोंके आदि हैं, जगन्मय हैं, जगतके कर्ता हैं, चित्स्वरूप एवं निरञ्जन हैं। वे भगवान हजार मस्तक, हजार नेत्र एवं हजार पैर वाले हैं। जिनके प्रकाशसे यह संसार (सचराचर) प्रकाशित है। उनसे बढ़कर तेज नहीं है, उनसे बढ़कर तप नहीं है और उनसे बढ़ कर योग नहीं है। हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ अर्जुन ! उनसे बढ़ कर विद्या भी नहीं है। भगवान सब जीवोंमें बैठे हुए हैं। सब जीव भी उन्हींमें सुखसे रहते हैं। वे ही यज्ञ, यजमान स्रुक, स्रुवा इत्यादि यज्ञ करनेके पात्र, फल, फलको देनेवाले, उसके पानेवाले और गति भी हैं ॥३३॥

वह्नौ प्रणीते पशुना प्रोक्षितेन प्रजुह्वति ॥ ३३ ॥ ये तं प्रयान्ति ते यान्ति गतिं तत्प्रतिपादिताम् ॥ कर्मबन्धं पशुं कृत्वा ज्ञानाग्नौ सम्प्रवर्धि-

ते ॥ ३४ ॥ ये जुह्वते तमुद्दिश्य ते तत्सायुज्यभागिनः ॥ हविः सदा शिवो ब्रह्मा महेन्द्रः परमः स्वराट् ॥ ३५ ॥ सर्वेश्वरस्य तस्यैते पर्यायाः परिकीर्तिताः ॥ समाहितोऽनुसन्धत्ते य इदं परमात्मनः ॥ ३६ ॥ नारायणस्य माहात्म्यं स न याति पुनर्भवम् ॥

जो आह्वनीयअग्निमें प्रोक्षण किये हुए पशुओंका हवन करते हैं, और जो उनको प्राप्त करते हैं वे भगवानके द्वारा प्रतिपादित गतिको प्राप्त करते हैं। ज्ञान रूप अग्निको प्रवर्द्धित कर, जो उसमें कर्म बन्धनको पशु बना कर, हवन करते हैं, वे उनके सायुज्यके भागी हैं। उन सर्वेश्वरके, हवि, सदाशिव, ब्रह्मा, और इन्द्र पर्याय हैं। जो ध्यानसे नारायण परमात्माके इस माहात्म्यका अनुसन्धान करते हैं, वे पुनः संसारमें जन्म नहीं लेते ।

चिदानन्दमयः साक्षी निर्गुणो निरुपाधिकः ॥ ३७ ॥ नित्योऽपि भजते तां तामवस्थां स यदृच्छया ॥ पवित्राणां पवित्रं यो ह्यगतीनां परा गतिः ॥ ३८ ॥ दैवतं देवतानां च श्रेयसां श्रेय उत्तमम् ॥ योध्यानां योध्य एकोऽसौ ध्येयानां ध्येय उत्तमः ॥३९॥ विनयानां समधिको विनयो नयसंयुतः ॥ तेजसां जनकं तेजः प्रकृष्टं तपसां तपः ॥ ४० ॥ आधारः सर्वभूतानामनाद्यन्तो जनार्दनः ॥ तस्येदम्भावविज्ञाने मूढा ब्रह्मादयोऽपि च ॥ ४१ ॥

चित्, आनन्दमय, साक्षी, निर्गुण, निरुपाधि एवं नित्य होने पर भी वे भगवान अपनी इच्छासे उन अवस्थाओंको प्राप्त करते हैं। जो पवित्रोंके पवित्र, गति-हीनोंकी उत्तम गति, देवताओंके देवता, कल्याणके भी उत्तम कल्याण, योध्योंके योध्य, ध्येयोंके एक ही ध्येय, विनयोंमें भी नीति युक्त उत्तम विनय, तेज (सूर्यचन्द्रादि) को प्रकाश देनेवाले तेजस्वरूप, कठिन तपस्याओंके तप, सब जीवोंके आधार, और आदि अन्तसे रहित जनार्दन हैं। उनके इस भावको जाननेमें ब्रह्मा इत्यादि भी मोहमें आ जाते हैं ॥ ४१ ॥

अजो गृह्णाति जननं सर्वात्मा हन्ति विद्विषः ॥ स्वतन्त्रोऽपि स्वभक्तानां परतन्त्रः प्रवर्तते ॥ ४२ ॥ स साक्षी कर्मणां देवः सर्वज्ञो गरुडध्वजः ॥ तस्य स्वरूपं मुनयो मृगयन्ते समाहिताः ॥ ४३ ॥ सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नश्च तथा पुनः ॥ अनिरुद्ध इति ख्यातं तन्मूर्तीनां चतुष्टयम् ॥ ४४ ॥ कीर्तितः प्रणवः पश्चाद्धृदयं तस्य भास्वरम् ॥ भगवान्वासुदेवश्च मन्त्रोऽयं तत्प्रकाशकः ॥ ४५ ॥ मन्त्रराजमिमं नित्यं प्रजपेद्यः

समाहितः स विष्णोः करुणायोगात्सिद्धीनां भाजनं भवेत् ॥ ४६ ॥

वे अजन्मा होने पर भी जन्म धारण (अवतार) करते हैं, सर्वात्मा होने पर भी शत्रुओंको मारते हैं एवं स्वतन्त्र होने पर भी भक्तोंके अधीन हैं। वे सर्वज्ञ गरुड़ध्वज देव सब कर्मोंके साक्षी हैं। उनके स्वरूपको मुनिगण सावधान हो कर ढूंढ़ते हैं। सङ्कर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, ये चार उनकी प्रसिद्ध मूर्तियां हैं। प्रणव उनका पश्चात् भाग है, भगवान वासुदेव उनका प्रकाशमान हृदय है। यही मन्त्र उसको प्रकाश करनेवाला है. इस मन्त्रराजको प्रतिदिन जो सावधान हो कर जपता है, वह विष्णुकी कृपासे सब सिद्धियोंका पात्र होता है ॥ ४६ ॥

अथ भगवत्कृतभूतसृष्ट्यादिवर्णनम्

आपन्निवारकः सम्पत्प्रापको भुक्तिमुक्तिदः ॥ यथा ससर्ज भूतानि कल्पादावेव माधवः ॥ ४७ ॥ तत्सर्वं कथयिष्यामि समाहितमनाः शृणु ॥ तस्य चिन्तयतः सर्गं तेजोरूपं परं हरेः ॥ ४८ ॥ विरिञ्च इति विख्यातं राजसं गुणमाश्रितम् ॥ तस्य देवस्य वदनाच्छक्रो देवः सपावकः ॥ ४९ ॥ जज्ञे यश्च त्रिलोकेशः पापकर्मणि यः प्रभुः ॥ मनसश्चाभवच्चन्द्रः करुणानित्यशीतलात् ॥ ५० ॥ अपां सर्वौषधीनां च मित्राणां रक्षकः सदा ॥ नेत्राभ्यामुदभूत्सूर्यस्तस्य विश्वप्रकाशकः ॥ ५१ ॥

आपत्तिको निवारण करने वाले, सम्पत्तिको देने वाले। एवं मुक्ति और भुक्तिको देने वाले, माधवने जिस प्रकार कल्पके आदिमें जीवोंकी सृष्टि की वह सब मैं कहूंगा—मन लगा कर सुनिये। सृष्टिकी चिन्ता करते हुए उन परमात्मासे रजो गुणके आश्रय 'विरञ्चि' ऐसे नामसे प्रसिद्ध परम तेज प्रकट हुआ और उन देवके वदनसे अग्निके साथ तीनों लोकोंके स्वामी एवं पाप कर्मोंके नियन्ता इन्द्रदेव प्रकट हुए। उनकी नित्य दयासे शीत मनसे जल और सब औषधियों एवं मित्रोंके रक्षक चन्द्रमा उत्पन्न हुए तथा संसारको प्रकाशित करनेवाले सूर्य्य उनके नेत्रोंसे उत्पन्न हुए ॥ ५१ ॥

शीतोष्णवर्षकृत्कालकारणं तेजसां निधिः ॥ प्राणेभ्योऽस्य जगत्प्राणः समीरः समजायत ॥ ५२ ॥ धर्ता ग्रहर्क्षस्वर्गङ्गाविमानानां महाबलः ॥ नाभिदेशात्समुत्पन्नमन्तरिक्षं महात्मनः ॥ ५३ ॥ तस्यासीच्छिरसो व्योम भूतसम्भवकारणम् ॥ पादाम्बुजाभ्यामुदभूद्भूमिर्भूतगणाश्रया ॥५४॥ विनिःसृता दिशः सर्वाः श्रोत्राभ्यां परमात्मनः ॥ भूर्भुवाद्यास्तथा लोकाः स्मरणात्तस्य जज्ञिरे ॥ ५५ ॥ रसातलादिलोकाश्च यक्षरक्षोगणाश्रयाः ॥

शीतल, उष्ण, वर्षा इत्यादिके कारण, ग्रहों, नक्षत्रों, आकाशगङ्गा, और विमानोंके धारण करनेवाले, महाबल,

जगत्प्राण पवन उनके प्राणोंसे उत्पन्न हुए। अन्तरिक्ष उन महात्माके नाभि देशसे उत्पन्न हुआ। जीवोंकी उत्पत्तिका धारण आकाश उनके शिरसे और जीवोंके आधार पृथ्वी उनके चरणकमलोंसे उत्पन्न हुई। सब दिशाएं उन परमात्माके कानोंसे, एवं भूः भुवः इत्यादि लोक; यक्ष राक्षस, इत्यादिकोंका आधार रसातल इत्यादि लोक, उनके स्मरणसे उत्पन्न हुए ॥ ५६ ॥

मुखबाहूरुपादेभ्यो जनयामास स क्रमात् ॥५६॥ ब्राह्मणान्क्षत्रिया-
न्वैश्याञ्छूद्रादींश्च कुरूद्वह ॥ छन्दांसि यज्ञस्तुरगा गावो मेषाविकाद-
यः ॥ ५७ ॥ अतर्क्यप्रभवां तस्मादुत्पत्तिं प्रतिपेदिरे ॥ सङ्कल्पाद्देवदेवस्य
तस्य स्थावरजङ्गमम् ॥५८॥ भूतजातमभूत्कालो भूतो भावी भवंस्तथा ॥
पिबत्यम्बु समुद्राणां वडवानलरूपधृक् ॥ ५९ ॥ कल्पान्तकाले तत्सर्वं वि-
सृजत्यात्मनि स्थितम् ॥ सञ्चारयति भूतानां वृत्तिं सूर्येन्दुरूपधृक् ॥६०॥
तमोनिरसनाच्चापि कालधर्मप्रवर्तनात् ॥ जगन्ति कल्पविरमे विन्यस्य स्वोद-
रान्तरे ॥ ६१ ॥ लीला बालाकृतिः शेते वटपत्रे महाम्बुधौ ॥

हे अर्जुन! उसने मुख, बाहु, ऊरु, और पैरसे क्रमशः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न किये, छन्द यज्ञ, अश्व, गौ, मेष इत्यादि उससे अचिन्त्य रीतिसे उत्पत्तिको प्राप्त हुए। स्थावर, जङ्गम तथा भूत, भविष्य और वर्तमान ये तीनों काल उस देवदेवके संकल्पसे उत्पन्न हुए और वड़वानल अग्निका रूप धारण कर समुद्रोंके जलको शुष्क करता है। कल्पके अन्त समयमें वही भगवान अपनेमें स्थित उन सबोंकी सृष्टि करता है, वही सूर्य और चन्द्रमाका रूप धारण करके तमोगुणका नाश करने एवं कालधर्मको चलानेसे जीवोंकी वृत्तिका सञ्चार करता है। कल्पके अन्तमें संसारको अपने उदरमें रख कर चञ्चल बालकका रूप धारण कर महासमुद्रमें वटके पत्रपर सोता है।

अथ चोदग्रभोगीन्द्रभोगतल्पे सुखोचिते ॥ ६२ ॥ योगनिद्रामवाप्नो-
ति सहितोऽब्जवासया॥ नाभिकासारसम्भूताज्जनयामास पङ्कजात् ॥६३॥
सर्वेषां जगतां नाथो विधातारं चतुर्मुखम् ॥ लीला ह्येषा मुकुन्दस्य स्वे-
च्छायोगप्रवर्तिनः ॥ ६४ ॥ विज्ञायते न केनाऽपि याथार्थ्येन स ईश्वरः ॥

तदनन्तर उन्नत शेषके सुखशय्यापर वह लक्ष्मीके साथ योगनिद्राको प्राप्त होता है। सब संसारके स्वामी अपनी नाभिसे उत्पन्न कमलसे कर्ता चतुर्मुख ब्रह्माको वह उत्पन्न करता है। अपनी इच्छाके अनुसार रहनेवाले मुकुन्दकी यह लीला यथार्थमें किसीसे ज्ञात नहीं होती है। वही वास्तविक ईश्वर है ॥६५॥

यदा धर्मस्य हानिः स्यादधर्मो वर्धते यदा ॥ ६५ ॥ यदा वा महतीं

पीडां भजन्ते देवतागणाः ॥ यदावलेपदुर्वारा यान्ति वृद्धिं सुरद्रुहः ॥६६॥
भूमेर्भूमिजनानां च यदोदेति महद्भयम् ॥ यदा वा निजभक्तानां साधूनाम-
निवारिता ॥६७॥ दुरन्तातङ्कजननी विपत्समुपजायते ॥ तदा तदनुरूपाणि
रूपाण्यास्थाय कौतुकात् ॥ ६८ ॥ अधर्ममवधूयाशु कुरुते जगतो हित-
म् ॥ ६९ ॥

जब धर्मको हानि होती है, जब अधर्म बढ़ने लगता है अथवा जब देवता लोग अत्यन्त कष्ट पाने लगते हैं, अथवा जब दुर्दान्त राक्षस बढ़ जाते हैं, अथवा जब पृथ्वी और पृथ्वीके मनुष्योंको अत्यन्त भय होता है, अथवा भक्तों और साधुओंको नहीं निवारण करने योग्य, दुःसह, एवं भयानक विपत्ति होती है, तब भगवान् कौतुकसे उसीके अनुसार अपने स्वरूपको बना कर अधर्मको शीघ्र नाश कर संसारकी भलाई करता है ॥६९॥

सृजति विधिसमाख्यो राजसेनात्मजोऽसौ वहति हरिसमाख्यः स-
त्त्वनिष्ठः प्रपञ्चम् ॥ हरति हरसमाख्यस्तामसीमेत्य वृत्तिं मधुमथनमहिम्ना-
मस्ति वेत्ता न कोऽपि ॥ ७० ॥

वे रजोगुणसे ब्रह्मा नामसे स्वयं उत्पन्न हो कर संसारको बनाते, सत्वगुणसे हरि हो कर संसारका पालन करते और तामसी वृत्तिसे महादेव हो कर संसारका नाश करते हैं। मधुसूदनके माहात्म्यको जाननेवाला कोई नहीं है ॥ ७० ॥

यज्ञाङ्गैः कृतसकलाङ्गसन्धिबन्धं वाराहं वपुरधिगम्य लोकनाथः ॥
शैलेऽस्मिन्नभजदसौ यथा निवासं तद्वक्ष्ये शृणु विबुधाधिनाथसूनो ॥७१॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये सृष्ट्यादि-
वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

हे इन्द्रके पुत्र अर्जुन ! जिस प्रकार यज्ञके अंगोंसे अपने सब सन्धि बन्धनोंको संगठित करके वाराहके शरीरको धारण करके भगवान इस पर्वतपर रहने लगे, वह मैं कहता हूं, तुम सुनो ॥७१॥

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

अष्टमोऽध्यायः



श्री वराह भगवानका, धरोद्धरण क्रम यत्र ।
वर्णन श्वेत वराहका, जो अवतरेउ सयत्र ॥ १ ॥

अथ वराहकृतधरण्युद्धरणक्रमः

भरद्वाज उवाच—

पुरा निशात्यये धातुः प्रबुद्धो मधुसूदनः ॥ पुनः प्रवृत्तिं भूतानाम-
न्विये धिया भृशम् ॥ १ ॥ विना वसुमतीमन्ये भूतौघधरणक्षमाः ॥ न
भवन्तीति हृदये तर्कस्तस्याजनि ध्रुवः ॥ २ ॥ अपश्यत्प्रणिधानेन महीं
पातालगोचराम् ॥ अतिमात्रभयोद्विग्नां परीतां महताऽम्बुना ॥३॥ प्रतिपेदे
तदा रूपं भूसमुद्धरणोचितम् ॥

भारद्वाज बोले—पहले ब्रह्माकी रात्रिके बीत जाने पर मधुसूदन जागे और अपने मनमें जीवोंकी पुनः सृष्टिका विचार करने लगे। इस प्रकारका सत्य विचार उनके हृदयमें उत्पन्न हुआ—कि पृथ्वीके बिना, जीव समूहोंको धारण करनेमें समर्थ कोई नहीं है, तब उन्होंने ध्यानसे महान् पृथ्वी को अत्यन्त भयसे व्याकुल एवं पातालमें जलराशिसे ढकी हुई देखा। तब पृथ्वीके उद्धारके लिये योग्य रूप धारण किया ॥ ४ ॥

उपाकर्मोष्ठमनलजिह्वं प्रणवघोषणम् ॥ ४ ॥ चतुराम्नायचरणं प्राय-
श्चित्तखुराश्रितम् ॥ प्राग्वंशकायं विलसद्दर्भरोमावलीयुतम् ॥५॥ प्रवर्ग्याव-
र्तसम्पन्नं दक्षिणाग्न्युदरान्वितम् ॥ स्रुक्तुण्डमखिलैः सत्रैः संविभक्ताङ्ग-
सन्धिकम् ॥ ६ ॥ दिव्यसूक्तसटाजालं परब्रह्मशिरस्तथा ॥ हव्यकव्यरयो-
पेतं विशुद्धपशुजानुकम् ॥ ७ ॥ उक्तात्युक्तादिकच्छन्दोमार्गमन्त्रबलान्वि-
तम् ॥ सर्वयज्ञमयं दिव्यं वाराहं रूपमास्थितः ॥८॥ अन्वेष्टुं धरणीमध्ये-
र्विवेश सलिलान्तरम् ॥

उपाकर्मरूपी ओष्ठ, अग्निरूप जिह्वा, प्रणवरूप शब्द, चारों वेद रूप चरण, यज्ञशालारूप शरीर, प्रकाशमान कुशरूपी रोमावली, प्रवर्ग्यरूप उत्तम आवर्त (भौंरी) दक्षिणाग्निरूपी उदर, स्रुक् रूप मुख, सम्पूर्ण यज्ञ-सामग्रियोंरूपी सन्धियों, दिव्य सूक्तरूपी केशसमूह, परब्रह्मरूपी शिर, हव्य और कव्यरूपी शब्द, विशुद्ध पशुरूप घुटने, उक्था और अत्युग्र इत्यादि छन्दों भाग और मंत्र रूप बलवाले सर्व यज्ञमय दिव्य वराह के रूपको धारण कर पृथ्वीको ढूंढनेके लिये समुद्रके जलमें घुस गये ॥ ६ ॥

दंष्ट्राग्रबालशशाङ्कोत्थलसत्कान्तिचयैर्हठात् ॥९॥ कल्पान्तसमयस्फीतं
तमिस्रमपसारयन् ॥ अभिभूताम्बुभृद्घोषैर्मुहुर्ब्रह्माण्डकन्दरान् ॥ १० ॥
निनादमुखरान्कुर्वन्गाढैर्घुरघुरस्वनैः ॥ खुरप्रखुरविन्यासैर्जर्जरीकृतविग्रह-
म् ॥११॥ इतस्ततो विलुठयन्नुरगाणामधीश्वरम् ॥ तीव्रैर्निःश्वासपवनैरापा-
तालं सरित्पतेः ॥ १२ ॥ प्रापयन्नतलस्पर्शमन्तरं दर्शनीयताम् ॥ अति-
दीर्घेण पोत्रेण मग्नोन्मग्नेन वारिधेः ॥ १३ ॥ सङ्क्षोभितानि पायांसि कु-
र्वन्नन्तर्ययौ तदा ॥

अपने दांतोंरूप बालचन्द्रकी ज्योति राशिसे हठपूर्वक कल्पान्त समयके घोर अन्धकारको दूर करते, मेघ गर्जनरूप अपनी प्रचण्ड घुरघुराहटसे ब्रह्माण्डरूपी कन्दराओंको पूर्ण करते, अपने खुरोंके प्रहारसे जर्जर किये हुए, शेषको इधर उधर डगमगाते, अपने तीव्र श्वास पवनसे उन्हें समुद्रके पाताल तक पहुंचाते एवं अतलमें पहुंचनेके अनन्तर दर्शन करनेके योग्य हो कर अपने डूबते तथा उतराते दीर्घ शरीरसे समुद्रसे जलको क्षुब्ध करते हुए वे वराहरूपी भगवान् भीतर गये ॥ १३ ॥

सप्तपातालमूलाधःस्थितां तोये भयाकुलाम् ॥ १४ ॥ वेपमानां स-
मालोक्य धरणीं हृष्टमानसः ॥ तामारोप्य स्वदंष्ट्राग्रमुन्ममज्ज सरित्प-
तेः ॥ १५ ॥ संस्तूयमानो मुनिभिर्जनोलोकनिवासिभिः ॥ तस्मिन्नुद्वहति
प्रेम्णा देवे वसुमतीं क्षणम् ॥ १६ ॥ प्रतिसीरा बभूवाम्भो वारिधेर्मङ्गलो-
चिता ॥ तदुत्तारणवेलायां वराहवपुषोऽर्जुन ॥ १७ ॥ गम्भीरघोषैरम्भोधिः
प्राप मङ्गलतूर्यताम् ॥ उद्वृत्तवीचिविक्षिप्तशीकरासारसङ्गतः ॥ १८ ॥ भेजे
मुक्ताफलचयो मङ्गलाक्षतविभ्रमम् ॥

सातों पातालके नीचे ठहरी हुई, भयसे व्याकुल, कांपती हुई धरणीको देख कर प्रसन्न मनसे उसको अपने दांतोंके ऊपर रख कर जन लोकमें रहने वाले मुनियोंसे स्तुति किये जाते हुए, वे समुद्रके ऊपर आये। उस पृथ्वीको वराहदेवके द्वारा प्रेमसे वहन करते समय, समुद्रका जल मङ्गलके योग्य पर्दा रूपमें हो गया। हे अर्जुन ! उसको

नीचे उतारनेके समय समुद्र अपने गम्भीर शब्दसे मङ्गलके शब्दको करने लगा। ऊंचे तरङ्गोंसे तीरपर फेंके हुए शीकर (जलबिन्दु) के समूहोंके साथ मोतियोंका समूह माङ्गलिक अक्षत होता गया ॥ १८ ॥

उदूढा तेन देवेन सा बभौ सलिलाप्लुता ॥ १९ ॥ गाढरागसमुत्पन्नस्वेदक्लिन्नतनूरिव ॥ इत्थमुद्धृत्य भगवान्महीं पातालमूलतः ॥ २० ॥ सुदृढं स्थापयामास मध्येऽम्बुनिधिपाथसाम् ॥ तेनोद्धृतायां मेदिन्यां पूर्णं तद्भूनभोऽन्तरे ॥२१॥ जलं तत्कृतमर्यादाऽव्यवच्छिन्नमभूत्तदा ॥ संस्थाप्य पृथिवीमित्थं तदुर्व्याधारसिद्धये ॥ २२ ॥ दिग्गजानहिराजं च कमठं च न्यवेशयत् ॥ तेषामपि च सर्वेषामाधारत्वेन सादरम् ॥२३॥ अव्यक्तरूपां स्वां शक्तिं युयोज च दयानिधिः ॥

जलप्लावित वह पृथ्वी अत्यन्त प्रेमसे शरीरमें उत्पन्न स्वेदवालेके समान उन देवसे परणीता हो गयी! भगवानने पृथ्वीको इस प्रकार पातालके मूलसे निकाल कर समुद्रके मध्यमें सुदृढता पूर्वक स्थापित किया। उनके द्वारा पृथ्वीका उद्धार किये जाने पर भूमि तथा आकाशके बीचमें पूर्ण जल उनसे मर्यादा किये जाने पर व्यवस्थित हो गया। पृथ्वीका इस प्रकार स्थापन करके उसके आधारके लिये दशों हाथियों, शेष और कमठका नीचे प्रवेश कराया। उन सबोंके आधार स्वरूप दयानिधिने अव्यक्त रूप अपनी शक्तिको लगा दिया ॥ २४ ॥

ततो धरां समुद्धृत्य स्थितं किटितनुं हरिम् ॥ २४ ॥ तुष्टुवुः सनकाद्यास्तं जनोलोकनिवासिनः ॥ तदा वराहवपुषमाराध्य पुरुषोत्तमम् ॥ २५ ॥ तदाज्ञया जगद्ब्रह्मा यथापूर्वमकल्पयत् ॥ २६ ॥

तब पृथ्वीको उद्धार करके ठहरे हुए वराह रूप धारी हरिको सनक इत्यादि जन लोकके निवासी स्तुति करने लगे। तब वराहरूपी हरिकी आराधना करके ब्रह्माने उनकी आज्ञामें संसारको पहलेके जैसा बनाया ॥ २६ ॥

अर्जुन उवाच—

कल्पान्तसलिले मग्ना कथं तिष्ठति भूरियम् ॥ सप्तपाताललोकाधः किमाधारा महामुने ॥ २७ ॥ कल्पकालः कियानेष स्यात्तद्वृत्तिश्च कीदृशी ॥२८॥ एतद्विस्तार्य सकलं मम ब्रह्मन्मुने वद ॥ २९ ॥

यह पृथ्वी कल्पान्त जलमें मग्न हो कर कैसे ठहरती है? सात पातालके नीचे उसका आधार क्या होता है। यह कल्पका समय कितना है? उसकी वृत्ति कैसी रहती है? हे मुनि! यह सब मुझसे विस्तारसे कहिये ॥ २९ ॥

अथ कल्पवृत्तान्तवर्णनपूर्वकं श्वेतवराहावतारवर्णनम्

भरद्वाज उवाच—

विनाडिकानां षष्ट्या स्यान्नाडिकैका दिनं भवेत् ॥ तत्षष्ट्या दिवसास्त्रिंशन्मासः पक्षद्वयात्मकः ॥ ३० ॥ मासौ द्वावृतुरित्युक्तस्तैः षड्भिर्वत्सरो भवेत् ॥ अयनद्वितयाकारः शीतवर्षोष्णसंश्रयः ॥३१॥ देवासुराणामन्योन्यमहोरात्रं विपर्ययात् ॥ उत्तरं दक्षिणं भानोरयने ते यथाक्रमम् ॥३२ मानुषाब्दैः खखव्योमखाक्षिपावकसागरैः ॥ महायुगं भवेत्पार्थ कृताद्याकारसंयुतम् ॥३३॥ ससत्या सैकया कालो युगानामन्तरं मनोः ॥

भारद्वाज बोले—साठ विनाड़ीसे एक नाडी होती है। साठ नाडीसे एक दिन होता है। तीस दिनका एक मास होता है। जिसमें दो पक्ष है। दो मासमे एक ऋतु होती है। छः ऋतुओंसे एक वत्सर होता है। जो शीत, वर्षा तथा उष्णका, आश्रय एवं दो अयनोंसे युक्त है। क्रमसे एवं विपर्ययसे सूर्यके उत्तर और दक्षिणके अयनसे देवताओं और राक्षसोंके दिन और रात्रि होती है। हे अर्जुन! मनुष्यके ४३२०००० वर्षोंसे कृत आदि युगचतुष्टय रूप महायुग होता है। एकहत्तर महायुगका मन्वन्तर होता है ॥३४।

अस्मिञ्छ्वेतवराहाख्ये कल्पे जातान्मनूञ्छृणु ॥ ३४ ॥ स्वायम्भुवः स्यात्प्रथमस्ततः स्वारोचिषो मनुः ॥ उत्तमस्तामसाख्यश्च रैवतश्चाक्षुषाह्वयः ॥ ३५ ॥ एते गताः प्राङ् मनवः षट् सेन्द्रसुरतापसाः ॥ वैवस्वतो वर्ततेऽद्य सप्तमो मनुरर्जुन ॥३६॥ आदित्यवसुरुद्राद्यास्तत्काले देवतागणाः॥ इष्ट्वाश्वमेधशतकं तेजस्वी प्राप शक्रताम् ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रोऽहमत्रिश्च जमदग्निश्च काश्यपः ॥ वसिष्ठो गौतमश्चैव ते वै सप्तर्षयोऽर्जुन ॥ ३८ ॥ इक्ष्वाकुप्रमुखाः शूरा मनुपुत्रा महाबलाः ॥ अवनीं पालयामासुर्नित्यं धर्मपरायणाः ॥ ३९ ॥

इस श्वेतवराह कल्पमें बीते हुए मनुओंको सुनो। प्रथम स्वायम्भुव मनु, तब स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष हे अर्जुन! ये छ मनु, इन्द्र देवता और तपस्वीके साथ बीत गये। अब सातवा वैवस्वत मनु वर्तमान है। उस समय आदित्य, आठ वसु, एकादश रुद्र इत्यादि देवता हो गये। उस तेजस्विने सौ अश्वमेध यज्ञ करके इन्द्रपदको प्राप्त किया। हे अर्जुन! विश्वामित्र, मैं (भारद्वाज), अत्रि जमदग्नि, काश्यप, वसिष्ठ और गौतम ये सात ऋषि हैं। इक्ष्वाकु इत्यादि शूर एवं महा बलवान, मनुके पुत्रने, निज धर्ममें लगे हुए पृथ्वीका पालन किया था।

सूर्यदक्षब्रह्मधर्मरुद्राणां पञ्च सूनवः ॥ सावर्णिरौच्यभौमाद्या भविष्यन्मनुसप्तकम् ॥ ४० ॥ चतुर्दश विधातुस्ते भवन्ति मनवोऽह्नि ॥ तत्कल्पसंज्ञं तस्यान्ते निशा स्यात्तत्समा शृणु ॥ ४१ ॥ दिनावसानसमये ब्रह्मणः पाण्डुनन्दन ॥ जायतेऽवग्रहो घोरः पृथिव्यां शतवार्षिकः ॥ ४२ ॥ तस्मिन्नवग्रहे पृथ्व्यां नीरसायां धनञ्जय ॥ चतुर्विधानि भूतानि समायान्ति परिक्षयम् ॥ ४३ ॥

सूर्य, दक्ष, ब्रह्मा, धर्म, रुद्रके पांच पुत्र सावर्णि रौच्य, भौम, इत्यादि सात मनु होने वाले हैं। ब्रह्माके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। यही "कल्प" कहा जाता हैं, उसके अन्तमें उसीके बराबर रात्रि होती है। हे अर्जुन! ब्रह्माके दिनके अन्त समयमें पृथ्वीमें सौ वर्षका घोर दुर्भिक्ष हो जाता है। हे धनञ्जय! उस दुर्भिक्ष बाधामें पृथ्वीके नीरस हो जाने पर चारों प्रकारके भूत नष्ट हो जाते हैं॥ ४३॥

तदा तप्तशिराकारैरुपेतो धर्मदीधितिः ॥ मयूखैरग्निसदृशैर्वमद्भिः पावकच्छटाः ॥ ४४ ॥ विनष्टग्रामनगरशैलवृक्षादिकानना ॥ कूर्मपृष्ठोपमोर्वी स्यात्तप्तायःपिण्डसन्निभा ॥ ४५ ॥ ततो विधातुर्गात्रेभ्यः समुत्पन्ना महाघनाः ॥ आच्छादयन्तो गगनं गर्जितध्वानबन्धुराः ॥ ४६ ॥ सितपीतारुणश्यामाश्चित्रवर्णाश्च भीषणाः ॥ शैलेभसौधवृक्षादिनानारूपसमन्विताः ॥ ४७ ॥ ते शताब्दमितं कालं महावृष्टिं वितन्वते ॥

तब उबलन्त शिरा (नाड़ी) के आकारसे युक्त अग्निके सदृश, अग्निको उगलते हुए, सूर्यके किरणोंसे यह पृथ्वी ग्राम, नगर, पर्वत, वृक्ष, वन इत्यादिसे हीन हो कर तप्त लोह पिण्डके समान एवं कूर्म पृष्ठके समान हो जाती है। तब ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न, गर्जित शब्दसे युक्त, श्वेत, पीत, लाल, श्याम इत्यादि वर्णवाले और चित्रवर्णवाले, भयङ्कर, पर्वत, सौध, वृक्ष इत्यादि अनेकों रूपसे युक्त वे महामेघ सौ वर्ष तक महावृष्टि करते हैं॥ ४८॥

तेनाम्भसा शमं याति सूर्योद्भूतो महानलः ॥ ४८ ॥ भूयश्च नव वर्षाणि वसन्त्युग्रं महाघनाः ॥ तदम्भसा समुद्वेला विकृतिं यान्ति वार्द्धयः ॥ ४९ ॥ कल्पान्ताम्बुदनिर्मुक्तं लोकान्व्याप्नोति तज्जलम् ॥ भूर्भुवः स्वर्गलोकानामावृणोति तमो महत् ॥ तदा निमग्ना सलिले मही पातालमूलगा ॥ ५० ॥ अनष्टा कथमप्यास्ते ब्रह्मशक्त्यवलम्बिता ॥ अथ निःश्वाससम्भूतो मारुतो ब्रह्मणोऽर्जुन ॥५१॥ उत्सारयति तान्सर्वान्कल्पान्तोत्पान्महाघनान् ॥

सूर्यसे उत्पन्न अग्नि उस जलसे शान्त हो जाती हैं। पुनः वे महामेघ नव वर्षतक उग्ररूप धारण करते हैं। उस जलसे समुद्रके किनारेको अतिक्रमण कर विकृत हो जाते हैं। कल्पान्तके उन मेघके जल लोकमें व्याप्त हो जाते हैं। भूः, भुवः, स्वः, महः आदि लोकोंको अन्धकार घेर लेता है। सब पातालके मूल तक जलमें डूब गई पृथ्वी ब्रह्मकी शक्तिको अवलम्ब करके किसी प्रकार बची रहती है। हे अर्जुन! अब ब्रह्माके निश्वाससे उत्पन्न वायु कल्पके अन्तमें उठे हुये उस महामेघको उड़ा देती है ॥ ५२ ॥

एवं प्रवृद्धः पवनः शतसंवत्सरात्मकम् ॥ ५२ ॥ कालं निरन्तरं याति दुर्निवाररयोत्थितः ॥ तमुग्रमनिलं हित्वा हरेर्नाभिसरोरुहे ॥ ५३ ॥ योगनिद्रामवाप्नोति तस्मिन्पाथसि पद्मभूः ॥ योगनिद्रानुपक्तस्य याति तस्य जगद्विभोः ॥ ५४ ॥ तावती शर्वरी पार्थ दिनं यावत्प्रमाणकम् ॥ निशायां समतीतायामुत्थितो वेगवान्पुनः ॥ ५५॥ सृजत्यखिलजन्तूंन्वै पूर्ववच्छासनाद्धरेः ॥ कल्पे कल्पे समुचितै रूपैः पाति जगद्धरिः ॥ ५६ ॥

तब नहीं निवारण करने योग्य वेगसे उठे एवं बढ़े हुए पवन सौ वर्ष समय तक निरन्तर बहते हैं। उस प्रचण्ड वायुको छोड़ कर ब्रह्मा उसी समुद्रमें हरिके नाभि कमल पर योगनिद्राको प्राप्त होते हैं। हे अर्जुन! योगनिद्रामें लगे हुए उस संसारके स्वामीकी उतनी हो बड़ी रात्रि होती है जितना बड़ा दिन। रात्रिके बीत जाने पर पुनः वेगसे उठ कर ब्रह्मा, हरिकी आज्ञासे, पहलेके जैसी सम्पूर्ण जीवोंकी रचना करते हैं। कल्प कल्पमें योग्य रूपको धारण कर हरि इस संसारकी रक्षा करते हैं ॥ ५६ ॥

अस्मिन्कल्पे श्वेतवर्णो प्राप्तवान्यज्ञपोत्रिताम् ॥ वराहवपुषा देवो विहरन्नवनीतले ॥ ५७ ॥ स्वपूर्वनियतावासं प्रपेदे वेङ्कटाचलम् ॥ स्वामिपुष्करिणीतीरे चरंश्चिरमधोक्षजः ॥ ५८ ॥ भक्त्या परमया युक्तमपश्यज्जलजासनम् ॥ सम्पूज्य प्रार्थयामास ब्रह्मा तं भूतभावनम् ॥ ५९ ॥

इस कल्पमें भगवानने श्वेतवर्णके यज्ञ वराह भगवानके रूपको धारण कर पृथ्वी पर विहार करते हुए अपने पहलेके नियत स्थान वेङ्कटाचलको पाया। स्वामिपुष्करिणीके तीर पर बहुत दिनतक घूमते हुए भगवानने अत्यन्त भक्तिसे युक्त ब्रह्माको देखा। ब्रह्माने उन भगवानका पूजन करके प्रार्थना की ॥ ५९ ॥

पुरातनीं निजां स्वामिन्भज दिव्यां तनूमिति ॥ गृहीत्वानुनयं तस्य त्यक्त्वा तां सकराकृतिम् ॥ ६० ॥ अनन्यभजनीयां स्वां प्राप विश्वात्मि-

कां तनुम्। तथा स्थितं गिरौ तत्र कृत्वाऽप्युत्साहमूर्जितम् ॥६१॥ द्रष्टुं न शेकुः सर्वेऽपि कालेन बहुनाऽपि च ॥ ६२ ॥

हे स्वामिन्! आप अपने पहले दिव्य शरीरको धारण कीजिये। इस प्रकार उनके अनुनयको सुन कर उन्होंने उस सूकरके शरीरको छोड़ कर भक्तोंकेही भजन करनेके योग्य अपने संसाररूपी शरीरको धारण किया। इस प्रकार उस पर्वत पर रहते हुए उनको सब कोई बहुत समयमें, उत्साहसे परिपूर्ण हो कर भी, नहीं देख सके॥ ६२ ॥

अर्जुन उवाच—

दर्शनस्मरणादीनां हरिरित्थमगोचरः॥ कथं प्रत्यक्षतां प्राप मानुषाणां महामुने॥ ६३ ॥ भाग्यभूतोऽथ जगतां यः को वाराध्य तं विभुम्॥ एवं प्रकाशयामास कथामेतां निवेदय॥ ६४ ॥

अर्जुन बोले—हे महामुनि! दर्शन और स्मरण इत्यादिसे अगोचर वह भगवान किस प्रकार मनुष्योंको दृश्य हुए?। जो संसारका भाग्य भूत है उस प्रभुको किसने आराधना करके इस प्रकार प्रकट करवाया—यह कथा कहिये?॥ ६४॥

हरिकथाश्रवणं दुरितापहं कथयतां सकलागमविद्भवान्॥ सुकृतिनां ननु सम्प्रति धुर्यता मुनिवरेण्य ममाद्य समागता॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये वराहावतार-
कीर्तनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८ ॥

हरिकी कथा सुनना पापोंका नाश करने वाला है। वक्ताओंमें आप सब शास्त्र जानने वाले हैं। हे मुनि-श्रेष्ठ! आज मुझे पुण्यात्माओंमें उत्तमता प्राप्त हुई॥ ६५॥

॥ इति अष्टमोऽध्यायः॥

नवमोऽध्यायः



शंखकथा आदेश प्रभु, वेंकट गमन महीप।
ऋषि अगस्त्य प्रभु दरशहित, आये ताहि समीप ॥१॥
ऋषि, गुरु, वसु संवादपुनि, शोभा गिरि रमणीय।
मुग्ध होय पुनि देखना, जोती अति कमनीय ॥२॥

अथ शंखाभिधाननृपवृत्तान्तः

भरद्वाज उवाच—

शृणु पार्थ प्रवक्ष्यामि कथामाश्चर्यकारिणीम् ॥ यथाऽसौ भगवानस्मिञ्छैले प्रासः प्रकाशताम् ॥ १ ॥

भारद्वाज बोले—हे अर्जुन! जिस प्रकार यह भगवान इस पर्वतपर प्रकट हुए, उस आश्चर्य करनेवाली कथाको मैं कहता हूं, सो सुनो ॥१॥

श्रुताभिधानो नृपतिरस्ति हैहयवंशजः ॥ यः प्रजाः स्वा इव चिरं शशास धरणीप्रजाः ॥ २ ॥ तस्य पुत्रो गुणनिधिः शङ्खो नाम महीपतिः ॥ पालयामास वसुधां सर्वशास्त्रविशारदः ॥ ३ ॥ तस्य विष्णौ जगन्नाथे पुण्डरीकायतेक्षणे ॥ बभूव निश्चला भक्तिः परित्यक्तान्यसंश्रया ॥ ४ ॥ देवदेवं जगन्नाथमनन्तं पुरुषोत्तमम् ॥ प्रगाढनिश्चयो नित्यं ध्यायन्नद्भुतवैभवम् ॥५॥ चक्रे व्रतानि दानानि पुण्यानि विविधानि च ॥ वेदवेद्यस्य नियतं प्रीत्यर्थं मधुविद्विषः ॥ ६ ॥

हैहय वंशमें उत्पन्न श्रुतनामक राजा था, जो प्रजाको अपनी सन्तानकी तरह शासन करता था। सब शास्त्रोंको जाननेवाला, गुणकी निधि, उसका पुत्र, शङ्ख नामक राजा पृथ्वीका पालन करता था। दूसरे आश्र-

योंको छोड़ी हुई, उसकी निश्चल भक्ति कमलाक्ष, जगन्नाथ, विष्णुमें ही हुई थी। प्रगाढ़ भक्तिवाला वह नित्य, देवदेव जगन्नाथ, अनन्त, पुरुषोत्तमका एवं उनके अद्भुत वैभवका ध्यान करता हुआ वेदसे जानने योग्य उस मधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये अनेकों प्रकारके व्रत एवं पवित्र दान करता था ॥६॥

तमुद्दिश्यैव विदधे वाजिमेधादिकान् क्रतून् ॥ यथोक्तदक्षिणायोगात्प्रीणिताशेषभूसुरः ॥७॥ इष्टापूर्त्तात्मकं चक्रे कर्मजातमतन्द्रितः ॥ विन्यस्तहृदयो नित्यं केशवे भक्तवत्सले ॥ ८ ॥ स्मरत्यजस्रं गोविन्दं जगत्यच्युतमव्ययम् ॥ पूजयत्यब्जनयनं सङ्कीर्तयति शार्ङ्गिणम् ॥ ९ ॥ शृणोति सततं राजा संसारार्णवतारिणीः ॥ पौराणिकैः समाख्याताः पवित्रा वैष्णवीः कथाः ॥ १० ॥ ब्राह्मणानर्चति स्मायं हरिप्रीत्यर्थमेव च ॥

उन्हींको उद्देश्य करके उसने अश्वमेध इत्यादि यज्ञ किये एवं यथोचित दक्षिणा दे कर उसने सब ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके भक्तवत्सल केशवके चरणमें अपने हृदयको लगा कर आलस्यसे रहित हो कर उसने वापी, तड़ाग इत्यादि परोपकारी कर्म किये थे। वह निरन्तर गोविन्द, अच्युत अव्यय कमलनयन और शार्ङ्गधारीका स्मरण, पूजन, कीर्तन करता था। वह राजा पौराणिकोंसे कही हुई, संसारसमुद्रको पार करनेवाली तथा पवित्र विष्णुकी कथाको सुनता था। वह हरिके प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणोंका पूजन करता था ॥११॥

इत्थं सर्वात्मना युक्तोऽप्यश्रान्तः पृथिवीपतिः ॥ १२ ॥ नापश्यच्छाश्वतैश्वर्यं स्वतन्त्रं पुरुषोत्तमम् ॥ अप्राप्य दर्शनं विष्णोः सर्वयज्ञमयात्मनः ॥ १२ ॥ स शोकाक्रान्तहृदयः परां चिन्तामुपागमत् ॥ १३ ॥

इस प्रकार सब अपने परिवारोंके साथ अविराम गतिसे भजन करने पर भी उस राजाने शाश्वत ऐश्वर्यवाले तथा स्वतन्त्र पुरुषोत्तमको नहीं देखा। सर्व यज्ञमय विष्णुके दर्शनको नहीं पा कर और शोकसे व्याकुल हृदयवाला वह अत्यन्त चिन्ताको प्राप्त हुआ ॥१३॥

शङ्ख उवाच—

परः सहस्रैर्जननैरतीतैर्दुष्कृतं बहु ॥ कृतं मया यदप्राप्तं हृषीकेशस्य दर्शनम् ॥ १४ ॥ उपार्जितानां तपसामनेकैः पूर्वजन्मभिः ॥ अखण्डं हि फलं विष्णोर्दर्शनं मधुघातिनः ॥ १५ ॥ कथं नु यायाद्भगवान्विषयं मम नेत्रयोः ॥ कदा वा लभ्यते श्रेयस्तद्वाक्याकर्णनात्मकम् ॥१६॥ हा धिङ् मां विहितागस्कं क्रियासाफल्यवर्जितम् ॥ नारायणकृपादूरं संसारक्लेशगोचरम् ॥ १७ ॥

राजा बोला—बीते हुए हजारों जन्ममें मैंने बहुत पाप किये हैं कि जो मुझको हृषीकेशके दर्शन नहीं मिले। अनेकों पूर्व जन्मोंमें की हुई तपस्याका ही फल मधुसूदनके अखण्ड दर्शन हैं। भगवान मेरे नेत्रोंका विषय कैसे होंगे और उनके वचन सुननेका श्रेय कब मिलेगा? निर्लज्ज, क्रियाकी सफलतासे हीन, नारायणकी कृपासे दूर रहनेवाले तथा संसारके क्लेशोंके पात्र मुझको धिक्कार है ॥१७॥

श्रीभरद्वाज उवाच—

इति चिन्ताकुले तस्मिन् राज्ञि जीवितनिःस्पृहे ॥ अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां
शृण्वतामाह केशवः ॥१८॥

भरद्वाज बोले—इस प्रकार जीवनसे निस्पृह उस राजाके चिन्तासे व्याकुल होने पर सब किसीको सुनते हुए अदृश्यमूर्ति भगवान बोले ॥१८॥

श्रीभगवानुवाच—

मा शोकस्य वशं यायाः शृणु वक्ष्यामि ते हितम् ॥ मदेकशरणं
साधुं त्वां त्यक्ष्यामि कथं नृप ॥ १९ ॥ अयं वेङ्कटनामाद्रिस्त्रिषु लोकेषु
विश्रुतः ॥ वैकुण्ठादपि मे राजन्नावासोऽतिप्रियावहः ॥ २० ॥ तं गत्वा
भूधरवरं तव भक्त्या तपस्यतः ॥ गते सहस्रे वर्षाणां यास्याम्यालोकनी-
यताम् ॥ २१ ॥ भवानिवोद्यतोऽगस्त्यो मम दर्शनमञ्जसा ॥ क वा सन्दृ-
श्यते विष्णुरेवमाह चतुर्मुखम् ॥२२॥ वृषभाद्रौ हरिर्द्रष्टुं लभ्यते नियता-
त्मभिः ॥ गच्छ तत्रेति मुनये कथयामास पद्मभूः ॥ २३ ॥

श्रीभगवान बोले—शोकके वशीभूत मत हो भो। मैं तुम्हारे हितकर वचनको कहता हूं, सुनो। हे राजा! तुम जैसे मेरे अनन्य भक्त एवं साधुको मैं कैसे छोडूंगा। हे राजन्! तीनों लोकमें प्रसिद्ध यह वेङ्कटाचल पर्वत वैकुण्ठसे भी मेरा अत्यन्त प्रिय है। उस पर्वतको जा कर तुम भक्तिपूर्वक तपस्या करते हुएको हजारों वर्ष बीतने पर मैं दर्शन देनेके योग्य होऊंगा। तुम्हारी तरह अगस्त्यने भी मेरे दर्शनके लिये आतुरतापूर्वक उद्यत हो कर विष्णुका दर्शन कहां होगा इस प्रकार ब्रह्मासे पूछा था और वृषभाचलके ऊपर नियतात्मा मनुष्य भगवानके दर्शन कर सकते हैं। वहीं जाओ इस प्रकार ब्रह्माने मुनिसे कहा था ॥२३॥

अम्भोजसम्भवेनेत्थमादिष्टः कुम्भसम्भवः ॥ अञ्जनाद्रौ महावासे
तपस्तप्तुं समेष्यति ॥ २४ ॥ तस्मिन्महीधरे पुण्ये कृतवासो भवानपि ॥
आराध्य मां तपोनिष्ठो मम दर्शनमाप्स्यसि ॥ २५ ॥

ब्रह्मासे इस प्रकार आदेश पा कर अगस्त्यजी महात्माओंके आवास अञ्जनाचलपर तपस्या करनेके लिये आवेंगे। उसी पवित्र पर्वतपर आवास करके तुमभी तपस्यामें निष्ठ हो, मेरी आराधना कर मेरे दर्शनको पाओगे।

अथ भगवदुक्त्या शङ्खनृपस्य श्रीवेङ्कटाचलागमनम्

श्रीभरद्वाज उवाच—

इत्याज्ञप्तो भगवता शङ्खो दानववैरिणा ॥ जगाम प्रीतिमतुलां धन्यो-
ऽस्मीति स्वचेतसि ॥ २६ ॥ विन्यस्य तनयं वज्रं प्रजापालनकर्मणि ॥ गो-
विन्ददर्शनापेक्षी नारायणगिरिं ययौ ॥ २७ ॥ अस्य शृङ्गे समुत्तुङ्गे स्वामि-
पुष्करिणीं शुभाम् ॥ दिव्यैः पयोभिरापूर्णामपश्यदमृतोपमैः ॥ २८ ॥

भारद्वाज बोले—दानवोंके शत्रु भगवानसे इस प्रकार आज्ञा पाकर वह शङ्खराजा—"मैं धन्य हूं" ऐसा विचार कर अपने मनमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अपने पुत्र वज्रको प्रजापालनके कर्ममें लगा कर गोविन्दके दर्शन चाहनेवाला वह राजा नारायण पर्वतको गया। इसके ऊंचे शृंगपर अमृतके समान दिव्य जलसे पूर्ण शुभ स्वामिपुष्करिणीको देखा ॥२८॥

अनेकसिद्धगन्धर्वदेवर्षिगणसेविताम् ॥ भवतापप्रशमनीं सर्वतीर्थस-
माश्रयाम् ॥ २९ ॥ जलकाकचक्रक्रौञ्चहंसकारण्डवाकुलाम् ॥ कुमुदोत्पल-
राजीवसौगन्धिकमनोहराम् ॥ ३० ॥ तां दृष्ट्वा पद्मिनीं दिव्यां तत्तीरे
विहितोटजः ॥ तोषितः स्नानपानाद्यैर्निर्विकल्पमनोगतिः ॥ ३१ ॥ सर्वक-
र्माणि विन्यस्य जगदीशे जनार्दने ॥ ३२ ॥ जपध्यानपरो नित्यं तपस्तेपे
सुदारुणम् ॥

अनेकों सिद्ध, गन्धर्व, देवता एवं ऋषिसे सेवित, संसारके तापको शमन करनेवाली, सब तीर्थोंका आश्रय, जलकाक, चक्र, क्रौंच, हंस और कारण्डवसे पूर्ण, कुमुद, उत्पल, राजीव इत्यादिके सुगन्ध पुष्पोंसे मनोहर उस दिव्य पुष्करिणीको देख कर, उसके तीरपर कुटी बना कर, मनकी गतिको रोक कर, स्नान पान इत्यादिसे प्रसन्न हो कर सब कर्मोंको जगदीश जनार्दनमें अर्पण कर, जप और ध्यानमें परायण हो कर वह अत्यन्त कठिन तपस्या करने लगा ॥३२॥

अथ भगवद्दर्शनार्थमगस्त्यस्य वेङ्कटाचलागमनम्

तस्मिन्नेव मुनिः काले शासनात्परमेष्ठिनः ॥३३॥ अगस्त्योऽप्यास-
साद्यं शैलं मुनिशतावृतः॥प्रतीचीं दिशमारभ्य कृतयत्नः प्रदक्षिणे ॥३४॥
पश्यंस्तीर्थानि पुण्यानि चचार सुचिरं गिरौ ॥ तत्र तत्र ददर्शासौ हरिदर्श-

नलालसान् ॥ ३५ ॥ विरिञ्चिगुहशक्रेशविष्वक्सेनादिकान्क्रमात् ॥ सनका-
द्यांश्च योगीन्द्रान्नारदप्रमुखानृषीन् ॥ ३६ ॥ सिद्धगन्धर्वदैतेययक्षराक्षसप-
न्नगान् ॥

उसी समय ब्रह्माके आदेशसे सैकड़ों मुनियोंसे युक्त होकर अगस्त्य मुनि उस पर्वतको आये। पश्चिम दिशासे यत्नपूर्वक प्रदक्षिणामें संलग्न हो कर पर्वतपरके पवित्र तीर्थोंको देखते हुए वे घूमने लगे। वहांपर उन्होंने भगवानके दर्शनकी लालसावाले ब्रह्मा, गुह, (कार्तिक) इन्द्र, शिव, विष्वक्सेन इत्यादिकोंको क्रमसे एवं सनकादि योगियों, नारदादि ऋषियों, सिद्ध, गन्धर्व, दैत्य, यक्ष, राक्षस तथा सर्पोंको देखा ॥३७॥

तैस्तैः सम्मान्यमानोऽसौ प्रश्रयप्रियभाषणैः ॥ ३७ ॥ पश्यन्नाश्चर्यभू-
तानि सर्वाणि विचचार ह ॥ स्नात्वा तीर्थेषु सर्वेषु स्कन्दधारादिकेषु
च ॥३८॥ तत्र तत्रार्चयामास गोविन्दं जगतां पतिम् ॥ एवं भ्रान्त्वा गते-
ऽब्दानां सहस्रे मुनिसत्तमः ॥३९॥ अपश्यत्पुण्डरीकाक्षं चिन्ताशोकपरोऽभ-
वत् ॥ ४० ॥

अभिनन्दन और प्रिय भाषणसे उन उनके द्वारा सम्मानित हो कर यह आश्चर्यसे पूर्ण हो सब कुछ देखते हुए घूमने लगा। कुमारधारा इत्यादि सब तीर्थोंमें स्नान कर वहांपर संसारके स्वामी गोविन्दकी पूजा की। इस प्रकार शोक एवं चिन्तापरवश हो घूम कर हजार वर्षके बीतने पर उस श्रेष्ठ मुनिने पुण्डरीकाक्ष भगवानको देखा ॥४०॥

अथ अगस्त्यं प्रति गुरुवस्वाद्युक्तिः

तस्मिन्काले समाजग्मुर्धिषणोशनसौ पुनः ॥ राजोपरिचरो नाम वसु-
श्च तमृषीश्वरम् ॥ ४१ ॥ अस्माकं सफलं जातं जीवितं मुनिसत्तम ॥
दृष्टो भवान् यदस्माभिर्नारायण इवापरः ॥४२॥ ब्रह्मणा लोकनाथेन यदा-
दिष्टा वयं मुने ॥ अच्युतालोकनपरास्तदिदं कथ्यते तव ॥ ४३ ॥

उसी समय शुक्र, बृहस्पति और उपरिचर नामक राजा वसु वहा उस मुनिके पास आये। हे मुनिश्रेष्ठ! हमलोगोंका जीवन सफल हो गया जो हमलोगोंने दूसरे नारायणके जैसा आपको देखा। हे मुनि! लोकके स्वामी ब्रह्माने भगवानके दर्शनके परायण हमलोगोंको जो कहा था वह हम आपसे कहते हैं ॥४३॥

अस्ति दक्षिणदिग्भागे वेङ्कटो नाम भूधरः ॥ श्वेतद्वीपादपि हरेरावा-
सोऽयमभीप्सितः ॥ ४४ ॥ तस्मिन्गिरावगस्त्यस्य शङ्खस्य च महीपतेः ॥
दर्शयिष्यति गोविन्दो निजरूपं जगद्गुरुः ॥४५॥ तदानीं सर्वदेवानामृषीणां

यक्षरक्षसाम् ॥ अस्माकं देवदेवस्य दर्शनं सम्भविष्यति ॥ ४६ ॥ अचिरे-
णैव तद्भावि ततः सन्त्यक्तकल्मषाः ॥ अन्वेष्टुं गच्छतागस्त्यं तस्मिन्नारा-
यणाचले ॥ ४७ ॥ इत्याज्ञप्ता वयं धात्रा समागम्यात्र भाग्यतः ॥ दृष्टवन्तो
महाभागं भवन्तं भूरितेजसम् ॥ ४८ ॥ भवता सहिता गत्वा स्वामिपुष्क-
रिणीतटे ॥ तमप्यालोकयिष्यामः शङ्खं भागवतोत्तमम् ॥ ४९॥

दक्षिण दिशामें वेङ्कटाचलनामक पर्वत, श्वेत द्वीपसे भी भगवानका इच्छित आवास है। उसी पर्वतपर संसारके गुरु गोविन्द अपना रूप अगस्त्य और राजा शङ्खको दिखलावेंगे। सभी देवताओं, ऋषियों, यक्षों, राक्षसों एवं हमलोगोंको देवदेवके दर्शन होंगे। यह अवसर शीघ्र ही प्राप्त होगा इसलिये पापसे हीन आप लोग उस नारायणाचलपर अगस्त्यको ढूंढ़नेके लिये जाइये। इस प्रकार ब्रह्मासे आज्ञा पाकर भाग्यसे यहां आकर हमलोगोंने अत्यन्त तेजस्वी आपको देखा। आपके साथ स्वामिपुष्करिणीके तटपर जाकर उत्तम भागवत (भक्त) शङ्खको भी देखेंगे ॥४६॥

अथागस्त्यादिकृत श्रीवेङ्कटाचलस्थरम्यवस्तुदर्शनम्

भरद्वाज उवाच—

गोष्पतिप्रमुखैरित्थमादिष्टः कुम्भसम्भवः ॥ शोकजालं परित्यज्य
ययौ तैः सहितो द्रुतम् ॥ ५० ॥ स ददर्श महावृक्षान्फलपुष्पभरानतान् ॥
प्ररूढशाखानिकरच्छायाच्छादितदिक्तटान् ॥५१॥ सिंहदन्तावलव्याघ्रवरा-
हमहिषादिकान् ॥ मृगानालोकयामास पन्थानं चान्तरान्तरा ॥ ५२ ॥
तैस्तदानीं ददृशिरे सानवोऽप्यम्बुभृद्वृताः ॥ सुवर्णरौप्यताम्रादिशोभितास्तत्र
तत्र तु ॥ ५३ ॥ उच्चलच्छीकरासारनिर्वाहितदिवौकसः ॥ वेगोद्धूतशिला
दृष्टाः शतशो गिरिनिर्झराः ॥५४॥ तेषामापादयामास प्रमोदं मन्दमारुतः ॥
कमलामोदसंवाही विचरन् गिरिसानुषु ॥ ५५ ॥

भरद्वाज बोले—बृहस्पति इत्यादिकोंसे इस प्रकार आदेश पा कर अगस्त्यजी शोकको छोड़ कर उनके साथ शीघ्र गये। उन्होंने फल और पुष्पोंके भारसे झुके हुए, एवं बढ़ी हुई डालियोंकी छायासे दिशाओंको छाये हुए बड़े बड़े वृक्षोंको देखा। मार्गके बीच बीचमें सिंह, हाथी, व्याघ्र, वराह, महिष इत्यादिकोंको भी देखा। वहां पर उन्होंने मेघसे घिरे हुए एवं सुवर्ण, रौप्य, ताम्र आदिसे शोभित, ऊंची शिलायें देखीं। उछलते हुए शीकरों (जल बिन्दुओं) से देवताओंको आनन्दित करते हुए एवं अपने अपने वेगसे शिलाओंको भी उखाड़ते हुए

पर्वतके सैकड़ों झरने देखे। कमलके सुगन्धसे युक्त मन्द पवनदेवने पर्वतोंके शिखर पर घूमते हुए उनको आनन्दित किया॥ ५५ ॥

शुकानां कोकिलानां च तदा शुश्रुविरे गिरः ॥ ५६ ॥ तत्र तत्र स-
मासीनान्विस्तीर्णासु दृषत्सु ते ॥ सिद्धानपश्यन्कृष्णस्य गायतो गुणवैभव-
म् ॥ ५७ ॥ अगस्त्यप्रमुखाः सर्वे परिक्रम्य मुनीश्वराः ॥ स्वामिपुष्करिणीं
दिव्यां ददृशुर्विमलोदकाम् ॥ ५८ ॥ तत्तीरे विहितावासमपश्यच्छङ्खभूपति-
म् ॥ वाङ्मनःकायजं कर्म सन्निवेश्य स्थितं हरौ ॥ ५९ ॥

तब उन्होंने शुकों और कोकिलोंके शब्दको सुना। वहां पर बैठे हुए, एवं कृष्णके गुणवैभवको गाते हुए सिद्धोंको देखा। अगस्त्य इत्यादि मुनीश्वरोंने उनकी परिक्रमा करके विमल जलवाली, दिव्य, स्वामिपुष्करिणीको देखा। उसीके तीरपर अपने आवासको बनाये हुए, वचन, मन और शरीरके कर्मोंको हरिमें समर्पण करके बैठे हुए शङ्ख राजाको उन्होंने देखा॥ ५९ ॥

स तानालोक्य सहसा मुनीन्द्रान् संशितव्रतान् ॥ यथोक्तमकरोत्पूजां
प्रणामस्तुतिपूर्विकाम् ॥ ६० ॥ आसीनास्तत्र ते सर्वे सम्भाव्यान्यो-
ऽन्यमुत्सुकाः ॥ गोविन्दकीर्तनपराः कृतार्थत्वं प्रपेदिरे ॥ ६१ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीवेङ्कटाचलं प्रति
शङ्खागस्त्याद्यागमनवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

उन दृढव्रत महर्षियोंको देख कर उस राजाने (शङ्ख) अर्पण प्रणाम, स्तुति पूर्वक उनकी यथा विधि पूजा की। वहां पर बैठे हुए, एक दूसरेको उत्सुक जानते हुए, गोविन्दके कीर्तनमें परायण हो कर उन सबोंने अपनेको कृतार्थ समझा॥ ६१ ॥

॥ इति नवमोऽध्यायः ॥

दशमोऽध्यायः



शंख, अगस्त्य, ऋषीशके, तप से हो सन्तुष्ट ।
प्रकट भये साक्षात प्रभु, सफल हुए सब तुष्ट ॥१॥
ब्रह्मा स्तुति प्रभु सौम्यवपु, सरसिहि दे अधिकार ।
सबको पुनि वरदान दे, लुप्त भये अविकार ॥२॥

अथागस्त्यशङ्खादितपस्तुष्टस्य भगवत आविर्भावः

भरद्वाज उवाच—

तेषां हरौ जगन्नाथे समावेशितचेतसाम् ॥ दिनत्रयं गतं तत्र पूजा-
स्तोत्रपरात्मनाम् ॥ १ ॥ तृतीये दिवसे प्राप्ते ते सर्वे निद्रिता निशि ॥
अन्ते चतुर्थयामस्य ददृशुः स्वप्नमुत्तमम् ॥ २ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं प्रस-
न्नं पुरुषोत्तमम् ॥ वरदानाय सम्प्राप्तमपश्यन्स्मेरलोचनम् ॥ ३ ॥ उत्थाय
मुदितात्मानो गृहान्निर्गत्य पावने ॥ स्वामिपुष्करिणीतोये सस्नुर्विधिवदा-
दरात् ॥ ४ ॥ विधाय विधिवत्कर्म सर्वं दिनमुखोचितम् ॥ गृहान्प्रत्याय-
युर्देवमाराधयितुमच्युतम् ॥ ५ ॥

भारद्वाज बोले—जगन्नाथ भगवानमें चित्तको लगाये हुए एवं पूजा स्तोत्रमें परायण उनको वहां पर तीन दिन बीत गये। तीसरा दिवस आने पर सोये हुए उन सबोंने रात्रिके चतुर्थ पहरके अन्तमें उत्तम स्वप्न देखा। शङ्ख चक्र और गदा हाथमें धारण किये हुए, प्रसन्न, अर्द्ध उन्मीलित नेत्रवाले, वरदान देनेको आये हुए पुरुषोत्तमको उन्होंने देखा। प्रसन्न मनवाले उन सबोंने उठ कर, गृहसे बाहर निकल कर स्वामिपुष्करिणीके जलमें आदर पूर्वक विधिसे स्नान किया। प्रातःकालके कर्मोंको विधिपूर्वक करके अच्युतदेवकी आराधना करनेके लिये घरको लौट आये ॥ ५ ॥

सद्यःश्रेयस्करं मार्गं निमित्तं पक्षिसूचितम् ॥ दृष्ट्वा प्रसादं देवस्य

करस्थं मेनिरे तदा ॥ ६ ॥ ततस्त्रिलोककर्तारं पूजयित्वा जनार्दनम् ॥ तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पवित्रैर्वेदवर्णितैः ॥ ७ ॥ स्तोत्रावसाने कौन्तेय मुनीन्द्रः कुम्भसम्भवः ॥ जजाप शङ्खसहितो मन्त्रमष्टाक्षरं हरेः ॥ ८ ॥ इत्थं तेषां जगत्स्वामिन्यच्युतेऽर्पितचेतसाम् ॥ अग्रभागे प्रादुरभूदेकं तेजो महाद्भुतम् ॥ ९ ॥ अनेककोटिसंख्यानामादित्येन्दुहविर्भुजाम् ॥ एकीभूयाम्बरतले ज्योतिर्जालमिव स्थितम् ॥ १० ॥

तत्काल श्रेष्ठवर पक्षीके शकुनको मार्गमें देख कर भगवानकी प्रसन्नताको उन्होंने करतल गत समझा। तत्र उन्होंने तीनो लोकोंके कर्ता जनार्दनका पूजन कर वेदमें वर्णित अनेको प्रकारके पवित्र स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की। हे अर्जुन! स्तोत्रके पूरा होनेके समय शङ्खके साथ अगस्त्य मुनिने हरिके अष्टाक्षर मन्त्रका जप किया। इस प्रकार संसारके स्वामी अच्युतमें समर्पण किये मनवाले उनके आगे एक अत्यन्त, अद्भुत, आकाशमें एकत्र हुए अनेकों करोडों सूर्य्य, चन्द्र और अग्निके प्रकाशके समान ठहरा हुआ तेज प्रकट हुआ॥ १० ॥

तत्तेजो वीक्ष्य ते सर्वे नितान्ताश्चर्यगोचराः ॥ दध्युर्नारायणं दिव्यं परमानन्दविग्रहम् ॥ ११ ॥ वाङ्मानसपथातीतं विश्रुतैश्वर्यभासुरम् ॥ सहस्रनेत्रं साहस्रबाहुपादैः समन्वितम् ॥ १२ ॥ तप्तकार्तस्वरनिभस्फुरत्कान्तिमनोहरम् ॥ दंष्ट्राकरालं दुर्दर्शं वमन्तं दहनच्छटाः ॥ १३ ॥ कौस्तुभेन विराजन्तं दधानमुरसि श्रियम् ॥ अविचिन्त्यमनाद्यन्तमत्यन्तभयदायकम् ॥ १४ ॥ प्रकाशयन्तं ब्रह्माण्डं सर्वमात्मनि सर्वगम् ॥

उस तेजको देख कर अत्यन्त आश्चर्ययुक्त मनवाले अगस्त्य प्रभृति सब ऋषिगणने दिव्य एवं परम आनन्दकी मूर्तिवाले, मन और वचनके परे, प्रसिद्ध तेज और ऐश्वर्यवाले, हजार नेत्र, बाहु और चरणवाले, तपाये हुए सुवर्णकी चमकके समान कान्तिवाले, सुन्दर, भयंकर दांतवाले, अग्निज्वालाको वमन करते हुए, कौस्तुभसे शोभित, हृदयमे लक्ष्मीको धारण किये हुए, नहीं चिन्ता करनेके योग्य, आदि अन्तसे रहित, अत्यन्त भयको देनेवाले समस्त ब्रह्माण्डको अपनेमे दिखाते हुए एवं सर्वव्यापी नारायणका ध्यान किया ॥१४॥

अगस्त्यशङ्खप्रमुखास्ते सर्वे हृष्टचेतसः ॥ १५ ॥ तमालोक्य जगन्नाथं भूयो भूयो ववन्दिरे ॥ भ्रमन्ति लोकरक्षार्थमायुधानि तदा हरेः ॥ १६ ॥ निजतेजोबलोपेतान्याजग्मुस्तं निषेवितुम् ॥ चक्रमर्कप्रभं

दिव्या गदा खङ्गश्च नन्दकः ॥ १७ ॥ पुण्डरीकं चोग्ररवः पाञ्चजन्यः शशि-
प्रभः ॥

उन परमात्माको देख कर सबने बार बार प्रणाम किया। लोकरक्षाके लिये इधर उधर संसारमें घूमते हुए सूर्य्यके समान चक्र, दिव्य गदा, नन्दक नामक खड्ग, पुण्डरीक, महाभयङ्कर शब्दवाले चन्द्रके समान पाँचजन्य ये सब हरि भगवानके आयुध अपनी अपनी शक्तिके साथ वहां आये ॥१७॥

तदा ब्रह्माण्डमखिलं पूरयामास निर्भरः ॥ १८ ॥ पाञ्चजन्यस्य
निनदः सर्वासुरभयङ्करः ॥ पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा नितान्ताश्चर्यभीषण-
म् ॥ १९ ॥ आययुर्देवताः सर्वाः स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ब्रह्मा रुद्रः
शतमखः सनकाद्याश्च योगिनः ॥ २० ॥ वसिष्ठमुख्या मुनयो गन्धर्वोरग-
किन्नराः ॥ विष्वक्सेनो गरुत्मांश्च विष्णुभृत्या जयादयः ॥ २२ ॥ सरू-
पाश्चैव ये नित्याः श्वेतद्वीपनिवासिनः ॥

तब सब असुरोंको भयभीत करनेवाला, पाञ्चजन्यके शब्दने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको भर दिया। पाञ्चजन्यके अत्यन्त आश्चर्यकारक और भीषण शब्दको सुन कर अपने अपने वाहनपर चढ़ कर सब देवता, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, सनकादि योगिगण, वसिष्ठ इत्यादि मुनि, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, विष्वक्सेन, गरुड़, जय विजय इत्यादि विष्णु किङ्कर और जो श्वेतद्वीपके निवासी नित्यस्वरूपवाले हैं, वे सब आये ॥ २२ ॥

सुमनोद्रुमसम्भूता सुमनोवृष्टिरद्भुता ॥ २२ ॥ पपात मेदुरामोदमो-
दिताशेपमानसा ॥ ननृतुर्दिव्यसुदृशो जगुः किन्नरपुङ्गवाः ॥ २३ ॥ तुष्टु-
वुर्हर्षतरलाः सुरगन्धर्वचारणाः ॥ दृष्ट्वा ते पुण्डरीकाक्षं प्रसन्नं भक्तवत्स-
लम् ॥ २४ ॥ प्रणम्य तोपयामासुः साष्टाङ्गं विविधैः स्तवैः ॥ २५ ॥

कल्पवृक्षसे उत्पन्न अद्भुत पुष्पवृष्टि अपने सुगन्धसे सबका मन प्रसन्न करती हुई गिर पड़ी। स्वर्गकी स्त्रियां नाचने लगीं, किन्नरगण गाने लगे। हर्षसे भरे हुए देवता, गन्धर्व और चारण कमलनयन, भक्तवत्सल भगवानको प्रसन्न देख, साष्टाङ्ग प्रणाम कर अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे प्रसन्न करने लगे ॥२५॥

ब्रह्मादय ऊचुः—

जय विष्णो कृपासिन्धो जय तामरसेक्षण ॥ जय लोकैकवरद
जय भक्तार्तिभञ्जन ॥२६॥ अनन्तमक्षरं शान्तमवाङ्मनसगोचरम् ॥ को
वा भवन्तं जनाति चिदानन्दमयात्मकम् ॥ २७ ॥ अणोरणुतरं स्थूलात्

स्थूलं सर्वान्तरस्थितम् ॥ त्वामामनन्ति पुरुषं प्रकृतेः परमच्युतम् ॥ २८ ॥
वेदान्तसाररूपं त्वां सर्वान्तर्बाह्यवर्तिनम् ॥ को हि वर्णयितुं शक्तो माया-
पत्तेषु देहिषु ॥ २९ ॥ भवदीयमिदं रूपं दृष्ट्वाऽतिभयदायकम् ॥ भयोद्विग्ना
वयं सर्वे शान्तं रूपं भजस्व ह ॥ ३० ॥

ब्रह्मा इत्यादि बोले—हे विष्णु ! कृपाके समुद्र ! आपकी जय हो। हे कमलेक्षण ! आपकी जय हो। हे लोक-के वर देनेवाले ! आपकी जय हो। अनन्त अक्षर (नाशरहित), शान्त, वचन या मनसे नहीं जानने योग्य, चिद्रूप और आनन्दमय आपको कौन जानता है। छोटेसे भी छोटे, बड़ेसे भी बड़े, सबके अन्तरमें ठहरे हुए, परम अच्युत एवं प्रकृतिसे भी परे पुरुष, आपको सब कोई मानते हैं। वेदान्तके साररूप एवं सबके भीतर और बाहर रहनेवाले आपको मायासे लिपटे हुए मनुष्योंमें कौन वर्णन कर सकता है ? आपके इस अत्यन्त भयानक स्वरूपको देख कर हम सब भयसे व्याकुल हैं, आप शान्त रूपको धारण कीजिये ॥३०॥

भरद्वाज उवाच——

इति स्तुतो विरिञ्चाद्यैः प्रसन्नो गरुडध्वजः ॥ मेघघोषप्रतिमया वाचा
सादरमब्रवीत् ॥ ३१ ॥

भारद्वाज बोले—ब्रह्मा इत्यादिसे इस प्रकार स्तुति किये जाने पर प्रसन्न भगवान मेघके गर्जनके समान गम्भीर शब्दसे आदरपूर्वक वचन बोले ॥ ३१ ॥

अथ ब्रह्मादिप्रार्थनया भगवद्गृहीतसौम्यरूपप्रकारः

भगवानुवाच—

भयावहामिमां मूर्तिमुत्सृज्याहं प्रियावहम् ॥ शान्तं रूपं भजिष्यामि
मां पश्यत निराकुलाः ॥३२॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्हितो भूत्वा तस्मिन्नेव क्षणा-
न्तरे ॥ विमाने रत्नखचिते बभूव सुखदर्शनः ॥ ३३ ॥ चन्द्रबिम्बाननः शा-
न्तो नीलोत्पलदलद्युतिः ॥ सुवर्णवर्णवसनो रत्नभूषणभूषितः ॥३४॥ शङ्ख-
चक्रगदापद्मलसत्करचतुष्टयः ॥

श्रीभगवान बोले—मैं इस भय देनेवाली मूर्तिको छोड कर प्रिय एवं शान्तरूपको धारण करूंगा, तुम लोग निर्भय हो कर मुझको देखो। ऐसा कह कर अन्तर्धान हो कर उसी क्षण, चन्द्रमण्डलके समान मुखवाले, शान्त, नील पद्मके समान प्रभावाले, सुवर्णके रंगके समान वस्त्रवाले, रत्नोंके भूषणोंसे शोभित, शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे शोभित चार हाथवाले वे सुख देनेवाले रूपको धारण कर रत्नोंसे जड़े हुए विमानमें प्रकट हुए ॥३५॥

तमालोक्य रमाकान्तं भूयो भूयो ववन्दिरे ॥ ३५ ॥ सन्तोषयित्वा
ब्रह्मादीनभीष्टप्रतिपादनैः ॥ अवोचद्विनयानम्रमगस्त्यं मुनिपुङ्गवम् ॥३६॥

उन लक्ष्मीपतिको देख कर उन सबोंने बार बार प्रणाम किया। ब्रह्मादि देवताओंके अभीष्टको पूर्ण कर विनयसे नम्र मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यसे वे वचन बोले॥ ३६ ॥

श्रीभगवानुवाच—

त्वं मुनीन्द्र व्रतैर्घोरैश्चीर्णैर्मां प्रति सम्प्रति ॥ परिक्लिष्टोऽसि दास्या-
मि वरांस्तेऽभीप्सितान्वद ॥ ३७ ॥

श्रीभगवान बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! तुम इस समय अत्यन्त घोर तपस्या करके क्लेशित हुए हो। इसलिये तुम्हारे अभिलषित वरको मैं दूंगा—तुम मांगो ॥ ३७ ॥

भरद्वाज उवाच—

निशम्य वाक्यं श्रीभर्तुः प्रणम्य च पुनः पुनः ॥ स रोमाञ्चितसर्वा-
ङ्गः कुम्भजन्मा वचोऽब्रवीत् ॥ ३८ ॥

भारद्वाज बोले—लक्ष्मीपतिके वचनको सुन कर उनको बार बार प्रणाम कर रोमाञ्चित हो कर अगस्त्यजी वचन बोले ॥ ३८ ॥

अथागस्त्यप्रार्थनया स्वर्णनद्या भगवद्दत्तसर्वाधिदत्वप्राप्तिः

अगस्त्य उवाच—

यद्धुतं यत्तपस्तप्तं यदधीतं श्रुतं मया ॥ तत्सर्वं सफलं जातमादृ-
तोऽस्मि यतस्त्वया ॥ ३९ ॥ एषोऽहमेव धर्मात्मा त्रिषु लोकेष्वपि प्रभो ॥
त्वां विचिन्वन्तमधुना मामन्विष्यागतोऽसि यत् ॥ ४० ॥ त्वत्प्रसादात्पु-
रैवाहं प्राप्ताखिलमनोरथः ॥ न पश्यामि विचिन्त्यापि प्राप्यं सम्प्रति मा-
धव ॥ ४१ ॥

अगस्त्य बोले—मैंने जो कुछ भी हवन किया, तपस्या की, पढ़ा, अथवा सुना वह सब अब सफल हो गया जो आपने मुझको आदर किया है। हे प्रभु! आज तीनों लोकोंमें मैं ही धन्य हूं क्योंकि आपको ढूंढ़ते हुए मुझ जैसेको आप ही ढूंढ़ते हुए आज आ गये। हे माधव! आपकी कृपासे पहले ही मेरे मनोरथ सब परिपूर्ण हैं। मैं सोच कर देखनेसे भी पाने योग्य कुछ नहीं देखता हूं॥ ४१ ॥

तथापि चापलादेतत्तव विज्ञाप्यते प्रभो ॥ त्वत्पादाम्बुजयोर्भक्तिमेयं

कुरु निरन्तरम् ॥ ४२ ॥ अवधारय चैतत्त्वं सुरप्रार्थनया मया ॥ नदी सुव-
र्णमुखरी स्नाताघौघविनाशिनी ॥ ४३ ॥ सा भवच्छैलकूटकसमासन्ना स-
मागता ॥ तां कृतार्थय लोके च त्वदनुग्रहवृत्तिभिः ॥ ४४ ॥

हे प्रभु ! तथापि अपनी चपलतासे मैं आपसे निवेदन करता हूं, कि आप अपने चरणकमलमें मुझको निरन्तर भक्ति दीजिये । मेरी और देवताओंकी प्रार्थनासे आप यह अपने मनमें रखें कि स्नान करनेवालोंके सब पापोंके समूहका नाश करनेवाली सुवर्णमुखरी नदी आपके पर्वतके निकट आई है । उसको अपनी कृपासे संसारमें कृतार्थ कीजिये ॥ ४४ ॥

सुवर्णमुखरीतोये स्नात्वा ये वेङ्कटे स्थितम् ॥ पश्यन्ति भुक्तिमु-
क्त्योस्तु भूयास्तुर्भाजनानि ते ॥४५॥ अल्पायुषो नरा मूढा ज्ञानयोगपरिच्यु-
ताः ॥ न शक्नुवन्ति त्वां द्रष्टुं व्रताध्ययनकर्मभिः ॥४६॥ सदास्मिन्नास्थितः
शैले सर्वेषां च जगद्गुरो ॥ प्रसादसुमुखो देव काङ्क्षितार्थप्रदो भव ॥४७॥

सुवर्णमुखरीके जलमें स्नान करके जो वेङ्कटाचलमें स्थित भगवानको देखते हैं, वे शीघ्र ही भुक्ति और मुक्तिके भागी हों। अल्प आयुवाले, मूर्ख और ज्ञान और योगसे गिरे हुए मनुष्य व्रत अध्ययनादि कर्मोंसे आपको नहीं देख सकते हैं। हे जगद्गुरु ! सदा इस पर्वतपर ठहर कर, हे देव ! प्रसन्नतासे अनुकूल हो कर सब किसीके अभिलषित फलको देनेवाले होइये ॥ ४७ ॥

श्रीभगवानुवाच—

यत्प्रार्थितं त्वया विप्र तत्तथैव भविष्यति ॥ नूनमप्रतिमा लोके मयि
भक्तिः कृता त्वया ॥ ४८ ॥ जाह्नवीव नदी सेयं सुवर्णमुखरी मुने ॥ स्या-
दाशास्या सुराणां च वाञ्छितश्रीविधायिनी ॥४९॥ स्वामिपुष्करिणी चेयं
नदी मूर्त्या समन्विता ॥ सङ्क्रमिष्यति तां दिव्यां नदीं तीर्थौघसंश्रया-
म् ॥ ५० ॥ वैकुण्ठनाम्नि शैलेऽस्मिन्नद्यप्रभृति सर्वदा ॥ कृतवासो भवि-
ष्यामि मुने प्रार्थनया तव ॥५१॥

श्रीभगवान बोले—हे ब्राह्मण ! आपने जो प्रार्थना की, वह ऐसा होगा । अवश्य ही तुमने मुझमें अलौकिक भक्ति की है । हे मुनि ! यह सुवर्णमुखरी नदी गङ्गाके समान माननीया एवं देवताओंको वाञ्छित फलको देनेवाली होगी । यह स्वामिपुष्करिणी मूर्तिसे युक्त हो कर उस दिव्य नदी (गङ्गा) और तीर्थ समूहोंको भी पार कर जायगी । हे मुनि ! वैकुण्ठ नामक इस पर्वतपर आजसे सर्वदा आपकी प्रार्थनासे मैं रहूंगा ॥ ५१ ॥

सुवर्णमुखरीस्नानक्षालिताघौघकर्दमाः ॥ अस्मिन्वैकुण्ठशैले मां ये पश्यन्ति समाहिताः ॥५२॥ भुवि पुत्रादिसम्पन्नाः सर्वैश्वर्यसमन्विताः ॥ मृतास्त्रिविष्टपे भोगानाकल्पमनुभूय च ॥ ५३ ॥ पुनरावृत्तिरहितं केवलानन्दभासुरम् ॥ मत्पदं समवाप्स्यन्ति नात्र कार्या विचारणा ॥ ५४ ॥

सुवर्णमुखरीके स्नानसे अपने पाप समूहोंके कर्दमको धोये हुए जो कोई इस वैकुण्ठ पर्वतपर चित्तको समाधान करके मेरा दर्शन करेंगे, वे पृथ्वीमें पुत्र इत्यादिकोंसे युक्त एवं सब ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो कर मरने पर स्वर्गमें नाना प्रकारके भोगोंका उपभोग करके पुनर्जन्मसे रहित केवल आनन्दमय मेरे पदको पावेंगे-इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ५४ ॥

मां द्रष्टुमागतान्सर्वान्मतीक्ष्याभीप्सितैः शुभैः ॥ योजयिष्यामि सततं त्वद्वचोगौरवान्मुने ॥ ५५ ॥ पुत्रार्थिनां बहून्पुत्रान्धनानि च धनार्थिनाम् ॥ तथैवारोग्यकामानां रोगशान्तिं गरीयसीम् ॥५६॥ तीव्रापत्परिभूतानां तथैवापन्निवारणम् ॥ दास्याम्यभीप्सितान्भोगान्दुर्लभानपि सर्वदा ॥५७॥ ये यान्कामानपेक्ष्येह प्रेक्षन्ते मां समागताः ॥ अवाप्नुवन्ति ते सर्वे तांस्तान्कामान्न संशयः ॥ ५८ ॥ स्थिता वा यत्र कुत्रापि मां स्मरन्ति नरोत्तमाः ॥ ते सर्वे वाञ्छितां सिद्धिं लभन्ते मत्प्रसादतः ॥ ५९ ॥

हे मुनि ! आपके वचनके महत्वसे मैं अपने दर्शनके लिये आये हुये सबको देख कर उनकी शुभ इच्छाको सदा पूर्ण करूंगा। पुत्रको चाहनेवालोंको बहुत पुत्र, धनके चाहनेवालोंको धन, आरोग्यता चाहनेवालोंको बड़ी आरोग्यता, उसी प्रकार कठिन आपत्तिसे दुःखीको उनकी आपत्तिका निवारण, अथवा अभिलषित दुर्लभ भोगोंको भी सदा मैं दूंगा। जो जिस कामको चाहना करके यहां आकर मेरा दर्शन करते हैं वे सब मनोरथोंको पाते हैं, इसमें संशय नहीं है। जहां कहीं भी ठहरे हुए श्रेष्ठ मनुष्य मेरा स्मरण करते हैं वे सब अपने वाञ्छित सिद्धिको मेरी प्रसन्नतासे पाते है ॥ ५९ ॥

अथ शङ्खनृपवरप्रदानपूर्वकं भगवदन्तर्धानम्

भरद्वाज उवाच—

इत्युक्त्वा तं मुनिं देवः शङ्खमालोक्य भूपतिम् ॥ शृण्वतां ब्रह्ममुख्यानामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६० ॥

भारद्वाज बोले—उस मुनिको यह कह कर राजा शङ्खको देख कर, भगवान ब्रह्मादिकोंके सुनते हुए वचन बोले ॥ ६० ॥

श्रीभगवानुवाच—

प्रीतोऽस्मि शङ्ख भक्त्या ते वृणीष्वाभीप्सितं वरम् ॥ ददामि वरदो-
ऽहं ते कशिष्ठस्य तपस्यतः ॥ ६१ ॥

श्रीभगवान बोले—हे शङ्ख ! तुम्हारी भक्तिसे मैं प्रसन्न हूं, अपना चाहा हुआ वर मांगो, मैं दूंगा। कठिन तपस्या किये हुए तुमको मैं वर देने वाला हूं ॥ ६१ ॥

शङ्ख उवाच—

न याचेऽन्यन्महाबाहो त्वत्पादाम्बुजसेवनात् ॥ यां प्राप्नुवन्ति त्वद्भ-
क्तास्तां याचे गतिमुत्तमाम् ॥ ६२ ॥

शङ्ख बोले—हे महाबाहु ! आपके चरणकी सेवाको छोड़ और कुछ मैं नहीं चाहता हूं। जिस गतिको आपके भक्त पाते हैं, उसी उत्तम गतिको मैं चाहता हूं ॥ ६२ ॥

श्रीभगवानुवाच—

यत्प्रार्थितं त्वया शङ्ख तत्तथैव भविष्यति ॥ मत्सेवायोगभव्यानाम-
लभ्यं किन्नु विद्यते ॥ ६३ ॥ आकल्पमिन्द्रलोकस्थो ह्यप्सरोगणसेवितः ॥
भुक्त्वा बहुविधान्भोगांस्ततो मल्लोकमेष्यसि ॥६४॥ एवं ददौ वरानिष्टा-
ञ्छङ्खाय पृथिवीपते ॥ नारायणो जगद्योनिर्भजतां कल्पभूरुहः ॥ ६५ ॥
ततो ब्रह्मादिकान्सर्वान्विसृज्य कमलेक्षणः ॥ संस्तूयमानस्तैर्भक्त्या तत्रैवा-
न्तर्दधे प्रभुः ॥ ६६ ॥

श्रीभगवान बोले—हे शङ्ख ! तुमने जो प्रार्थना की, वह ऐसा ही होगा। मेरी सेवामें लगे हुए सज्जनोंको अलभ्य क्या है ? कल्पपर्यन्त इन्द्रलोकमें अप्सराओंसे सेवित हो कर, अनेकों प्रकारके भोगोंको भोग कर तब मेरे लोकमें आओगे। भजन करनेवालोंके कल्पवृक्ष जगद्योनि नारायण, भगवानने राजा शङ्खको इस प्रकार अभिलषित वर दिया। तब ब्रह्मा इत्यादि सबोंको विदा कर भक्तिसे स्तुति किये जाते हुए, कमलनयन भगवान वहींपर अन्तर्धान हो गये ॥६६॥

अथ भरद्वाजवर्णित श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यनिगमनम्

श्रीभरद्वाज उवाच—

वेङ्कटाद्रेः प्रभावोऽयमाख्यातो भवतेऽर्जुन ॥ नराः पापैः प्रमुच्यन्ते श्रुत्वेमां पावनीं कथाम् ॥६७॥ वाराहं रूपमुत्सृज्य ब्रह्मणाभ्यर्थितो हरिः ॥ मुमोदात्राद्भुताकारो मायया मोहयञ्जगत् ॥ ६८ ॥ पश्चादगस्त्यशङ्खाभ्यां प्रार्थितः सुखदर्शनम् ॥ ददौ नितान्तसुभगं शान्तं भोगात्मकं वपुः ॥६९॥ नारायणं वेङ्कटाद्रिं स्वामिपुष्करिणीं तथा ॥ इमामाख्यां च संस्मृत्य मुच्यन्ते पातकैर्जनाः ॥ ७० ॥

भारद्वाज बोले—हे अर्जुन ! मैंने तुमसे वेङ्कटाचलके इस माहात्म्यको कहा। इस पवित्र कथाको सुन कर मनुष्य पापोंसे मुक्त होते हैं। ब्रह्मासे प्रार्थना किये हुए भगवान वाराहरूपको छोड़ कर अद्भुत शरीरको धारण कर अपनी मायासे संसारको मोहते हुए आनन्दसे रहने लगे। पीछे अगस्त्य और शङ्खसे प्रार्थना किये हुए भगवानने सुन्दर रूपवाले एवं अत्यन्त सुन्दर, भोग शरीरको धारण किया। नारायण, वेङ्कटाचल, स्वामिपुष्करिणी और इस कथाको स्मरण करके मनुष्य सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥७०॥

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन ॥ वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ ७१ ॥ वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं न भूतं न भविष्यति ॥ स्वामितीर्थसरस्तुल्यं न कुत्रापि च विद्यते ॥ ७२ ॥

वेङ्कटाचलके समान स्थान ब्रह्माण्डमे कोई दूसरा नहीं है, वेङ्कटेशके समान देवता नहीं हुए हैं, और न होंगे। वेङ्कटाचलके समान स्थान न हुआ है और न होगा ? स्वामिपुष्करिणीके समान तीर्थ कहींपर भी नहीं है ॥७२॥

प्रातरुत्थाय ये नित्यं वेङ्कटेशं स्मरन्ति वै ॥ तेषां करस्था मोक्षश्रीर्नात्र कार्या विचारणा ॥ ७३ ॥ स्वामिपुष्करिणीतीर्थे स्नात्वा सर्वात्मकं हरिम् ॥ ये वा पश्यन्ति नियता वराहाचलवासिनम् ॥ ७४ ॥ तेऽश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥ प्राप्नुवन्ति फलं पूर्णं नात्र कार्या विचारणा ॥ ७५ ॥

प्रातःकाल उठ कर जो प्रति दिन वेङ्कटेशका स्मरण करते हैं, मोक्षकी श्री उनके हाथोंमे रहती है, इसमें विचार नहीं करना चाहिये। स्वामिपुष्करिणीमें स्नान करके नियमपूर्वक जो सर्वरूप वाराहाचलके निवासी हरिका दर्शन

करते हैं, वे हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञके पूर्ण फलको पाते हैं, इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥७५॥

वेङ्कटाचलमाहात्म्यं ये शृण्वन्ति नरोत्तमाः ॥ तेषां मुक्तिश्च भुक्तिश्च इह लोके परत्र च ॥ ७६ ॥ वेङ्कटाचलमाहात्म्यं संक्षिप्य कथितं तव ॥ अतः परं महानद्याः प्रभावः कथ्यतेऽर्जुन ॥ ७७ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे तीर्थखण्डे सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये श्रीवेङ्कटाचल-
प्रशंसायामगस्त्यशङ्खादितपस्तुष्टश्रीवेङ्कटेशाविर्भावादि-
माहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०॥

जो श्रेष्ठ मनुष्य वेङ्कटाचलके माहात्म्यको सुनते हैं, उनको इस लोक और परलोकमें भुक्ति और मुक्ति होती है। हे अर्जुन वेङ्कटाचलके माहात्म्यको संक्षेपसे तुमसे मैंने कहा है, इसके बाद महानदीके प्रभावको कहता हूं ॥७७॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे तीर्थखण्डे सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये श्रीवेङ्कटाच-
लप्रशंसायामगस्त्यशङ्खनित्यतपस्तुष्टश्रीवेङ्कटेशाविर्भावादि-
माहात्म्यवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने ॥
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥





॥ श्री श्रीनिवासाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥

श्रीस्कान्दपुराणान्तर्गत

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यस्य

द्वितीयो भागः

ॐश्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥

श्रीवेङ्कटाद्रिनिलयः कमलाकामुकः पुमान् ॥
अभङ्गुरविभूतिर्नः तरङ्गयतु मङ्गलम् ॥ २ ॥

प्रथमोऽध्यायः

सुता केसरी वीरके, पुत्र हेतु तल्लीन ।
किया तपस्या अञ्जना, पुत्र केसरी दीन ॥ १ ॥

अथ पुत्रार्थमञ्जनाकृततपः प्रकारः

श्रीसूत उवाच—

पुत्रहीनाञ्जना पूर्वं दुःखिता तपसि स्थिता ॥ तां दृष्ट्वा मुनिशार्दूलो मतङ्गो विष्णुतत्परः ॥१॥ अञ्जनाख्यामुवाचेदमत्युग्रे तपसि स्थिताम् ॥२॥

श्रीसूतजी बोले – पूर्वमें पुत्रसे हीन अञ्जना दुःखी हो कर तपस्या करने लगी। अत्यन्त कठिन तपस्यामें लगी हुई उस अञ्जना नामकको देख कर मुनिश्रेष्ठ विष्णुभक्त मतङ्ग यह वचन बोले ॥२॥

मतङ्ग उवाच—

समुत्तिष्ठाञ्जने देवि किमर्थं तपसि स्थिता ॥ वद देवि महाभागे कार्यं तव वरानने ॥ ३ ॥

मतङ्ग बोले—हे अञ्जना देवि ! उठो ! किस लिये तपस्या कर रही हो। हे सुमुखि ! महाभागे ! देवि ! अपने कार्यको कहो ॥३॥

अञ्जनोवाच —

मतङ्ग मुनिशार्दूल वचनं मे शृणुष्व ह ॥ पिता मे केसरी नाम राक्षसः शिवतत्परः ॥ ४ ॥ शैवं घोरं तपश्चक्रे पुत्रार्थं तु सुदुष्करम् ॥ पार्वतीसहितः शम्भुर्वृषभोपरि संस्थितः ॥ ५ ॥ प्रादुरासीत्तदा देवो ददौ तस्मै वरं शुभम् ॥ ६ ॥

अञ्जना बोली—हे मुनिश्रेष्ठ ! मतङ्ग ! मेरे वचन सुनो, शिवभक्त मेरे पिता केसरी नामक राक्षसने पुत्रके लिये अत्यन्त कठिन शिवकी तपस्या की। तब पार्वतीके साथ श्रीशम्भु भगवान वृषभपर प्रकट हुए और उनको उन्होंने शुभ वर दिया ॥६॥

शम्भुरुवाच—

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि विधिना निर्मितं तव ॥ अस्मिञ्जन्मन्यपुत्रत्वं तथाप्यन्यद्ददामि ते ॥ ७ ॥ विश्रुता सर्वलोकेषु पुत्री तव भविष्यति ॥ तस्याः पुत्रो महाबुद्धिस्तव प्रीतिं करिष्यति ॥ ८ ॥ इति तस्मै वरं दत्त्वा तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ मां लब्ध्वा मत्पिता विप्रः कृतकृत्यो बभूव ह ॥ ९ ॥

शिवजी बोले हे राजन् ! मैं कहता हूं सुनो—ब्रह्माके द्वारा तुम्हारा यह जन्म पुत्रहीन किया गया है, तथापि तुमको दूसरा वर देता हूं। तुम्हें सब लोकमें प्रसिद्ध एक पुत्री होगी, उसीका महाबुद्धिमान पुत्र तुमको प्रसन्न करेगा। हे ब्राह्मण ! उनको यह वर दे कर शिवजी अन्तर्धान हो गये और मुझको पा कर मेरा पिता कृतकृत्य हो गये ॥ ९ ॥

ततः कालान्तरे विप्र केसर्याख्यो महाकपिः ॥ ययाचे मां ददस्वेति पितरं मे ततः पिता ॥ १० ॥ तस्मै मां दत्तवांश्चैव पारिबर्हं ददौ च सः ॥ गवां लक्षसहस्राणि गजलक्षं महात्मनः ॥ ११ ॥ वाजिनामर्बुदं चैव रथानामर्बुदं तथा ॥ वस्त्ररत्नान्यनेकानि दासीदासहस्रकम् ॥ १२ ॥ अन्तःपुरचरीर्नारीर्नृत्यगीतविशारदाः ॥ ददौ वासःसहस्रं च मया सार्कं महामते ॥ १३ ॥ पत्या मे रममाणाया भूयान्कालो गतो मुने ॥

कुछ समयके बाद केसरी नामक एक बड़े बन्दरने मेरे पितासे मांगा कि मुझको अपनी पुत्री दीजिये। तब मेरे पिताने मुझे उसको दे दिया और उन्होंने (दहेज) पारिबर्हमें हजारों लाख गौ, लाखों हाथी, अर्बुद घोड़े और रथ, वस्त्र और अनेकों रत्न तथा हजारों दासी दास दिये। हे महाबुद्धिमान्! अन्त पुरमें काम करनेवाली, नृत्य गीतमें विशारद, अनेकों दासिया भी मेरे साथ रहनेको दीं। हे मुनि। पतिके साथ रमण करते हुए मुझको बहुत समय बीत गये।

अपुत्रा दुःखिता विप्र व्रतानि विविधानि च ॥१४॥ कृतानि च मया तत्र किष्किन्धायां महापुरि ॥ माघे मासि च विप्रेन्द्र वैशाखे कार्तिके तथा ॥ १५ ॥ स्नानदानव्रतादीनि चातुर्मास्यव्रतं तथा ॥ नमस्कारं तथा विप्र प्रदक्षिणमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ शालग्रामान्नदानानि दीपदानं तथैवच ॥ गोदानं तिलदानं च वस्त्रदानं महामुने ॥ १७ ॥ भूदानं वारिदानं च दत्त्वा पुष्पादिकं मुने ॥ यानि यानि च मुख्यानि वैष्णवानि व्रतानि च ॥ १८ ॥ मया कृतानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया ॥ श्रवणादिषु यत्प्रोक्तं व्रतं विप्रैर्महात्मभिः ॥ १९ ॥ मया कृतं च विप्रेन्द्रतुष्ट्यर्थंमधुविद्विषः ॥

हे ब्राह्मण! महापुरी किष्किन्धामें अपुत्र होनेके कारण दु खी हुई और मैंने अनेकों प्रकारके व्रत किये। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ। माघ, वैसाख और कार्तिक मासमें स्नान, दान, व्रत इत्यादि, चतुर्मास्य व्रत, नमस्कार उत्तम प्रदक्षिणा, शालिग्राम और अन्नका दान, दीपदान, गोदान, तिलदान, वस्त्रदान, भूमिदान, जलदान करके पुष्पादि दे कर जो जो मुख्य वैष्णव व्रत हैं, मैंने उनको भी उत्तम पुत्र की इच्छासे किया। हे विप्रेन्द्र। महात्मा ब्राह्मणोंने श्रवण इत्यादिमें जो व्रत बताया था मैंने मधुसूदनकी प्रसन्नताके लिये उन सबोंको किया ॥ २० ॥

यानि यानि च मुख्यानि फलानि विविधानि च ॥ २० ॥ मया दत्तानि सर्वाणि सत्पुत्रफलकाङ्क्षया ॥ मया कृतान्यसंख्यानि व्रतानि विविधा-

नि च ॥ २१ ॥ पुत्रं तथाप्यलब्ध्वाहं दुःखिता तपसि स्थिता ॥ भविष्यति कथं विप्र पुत्रस्त्रैलोक्यविश्रुतः ॥ २२ ॥ ययाचेऽहं मुनिश्रेष्ठ प्रणता च तवाग्रतः ॥ वद त्वं मुनिशार्दूल दीनाऽहं तपसि स्थिता ॥२३॥

जितने मुख्य मुख्य अनेकों प्रकारके फल हैं, मैंने सुपुत्रकी इच्छासे उन सबोंको भी दान कर दिया। मैंने अनेकों प्रकारके असंख्य व्रत किये, तथापि पुत्र नहीं पा दुःखी हो कर मैं तपस्या करनेके लिये बैठ गई। हे विप्र! किस प्रकारसे तीनों लोकमें प्रसिद्ध पुत्र मुझको होगा? हे मुनिश्रेष्ठ! मैं आपके आगे प्रणत होकर याचना करती हूं। हे मुनि! मैं दीना हो तपस्यामें लगी हुई हूं। आप मुझसे कहिये ॥ २३ ॥

श्रीसूत उवाच—

एवं वदन्तीं तां प्राह मतङ्गो मुनिसत्तमः ॥ शृणु मद्वचनं देवि पुत्रपौत्रप्रदायकम् ॥ २४ ॥ इतो दक्षिणदिग्भागे दशयोजनदूरतः ॥ ॥ घनाचल इति ख्यातो नृसिंहस्य निवासभूः ॥ २५ ॥ तस्योपरि महाभागे ब्रह्मतीर्थं मनोहरम् ॥ तस्यापि पूर्वदिग्भागे दशयोजनमात्रतः ॥ २६ ॥ सुवर्णमुखरी नाम नदीनां प्रवरा नदी ॥ तस्या एवोत्तरे भागे वृषभाचलनामतः ॥ २७ ॥

श्रीसूतजी बोले—इस प्रकार बोलती हुई उसको मुनि श्रेष्ठ मतङ्गने कहा हे देवि! पुत्र और पौत्रको देनेवाले मेरे वचनको सुनो। यहांसे दक्षिण दिशामें दश योजन दूर घनाचल नामसे प्रसिद्ध श्री नृसिंहकी निवास भूमि है। हे महाभागे! उसके ऊपर सुन्दर ब्रह्मतीर्थ है, उसके भी पूर्वदिशामें दश योजन दूर सुवर्णमुखरी नामक नदियोंमें श्रेष्ठ नदी है, उसके उत्तरमें वृषभ नामक पर्वत है ॥ २७ ॥

तस्याग्रे सरसी नाम्ना स्वामिपुष्करिणी शुभा ॥ गत्वा दृष्ट्वा शुभं तोयं मनःशुद्धिं गमिष्यसि ॥२८॥ तत्र स्नात्वा विधानेन वराहं तं प्रणम्य च ॥ वेङ्कटेशं नमस्कृत्य ततो गच्छ वरानने ॥ २९ ॥ उत्तरे स्वामितीर्थस्य सिंहशार्दूलसंयुते ॥ चूतपुन्नागपनसैर्वकुलामलकैः शुभैः ॥ ३० ॥ चन्दनागुरुनिम्बैश्च तालहिन्तालकिंशुकैः ॥ कपित्थाश्वत्थबिल्वैश्च इङ्गुदैश्च वरानने ॥ ३१ ॥ एतादृशैर्महापुण्यैर्वृक्षैश्च विविधैः शुभैः ॥ वियद्गङ्गेति विख्यातं तीर्थमेकं विराजते ॥ ३२ ॥

उसके आगे शुभ स्वामिपुष्करिणी है; वहां जा कर शुभ जलके दर्शन कर मन पवित्र हो जायगा। वहांपर

विधिपूर्वक स्नान करके वराहको प्रणाम कर, वेङ्कटेशको नमस्कार करके तब जाओ, हे सुमुखि ! तब स्वामितीर्थके उत्तर सिंह और शार्दूलसे युक्त, आम्र, पुन्नाग, पनस (कटहल) आमलक, बकुल, चन्दन, अगर, निम्ब, ताल, हिन्ताल, किंशुक कपित्थ, अश्वत्थ, विल्व, इङ्गुदी इत्यादि अत्यन्त पवित्र वृक्षोंसे व्याप्त आकाशगङ्गा नामक एक प्रसिद्ध तीर्थ विराजमान है ॥ ३२ ॥

तस्मिंस्तीर्थेऽञ्जने देवि सङ्कल्पविधिपूर्वकम् ॥ स्नात्वा पीत्वा शुभं तीर्थं तीर्थस्याभिमुखी स्थिता ॥ ३३ ॥ वायुमुद्दिश्य हे देवि तपः कुरु वरानने ॥ देवैश्च राक्षसैर्विप्रैर्मनुजैर्मुनिसत्तमैः ॥३४॥ भृङ्गैः पक्षिभिरस्त्रैश्च शस्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥ अवध्यो भविता पुत्रस्तपसा ते न संशयः ॥ ३५ ॥

हे अञ्जनादेवि ! उस तीर्थमें संकल्प और विधिके साथ स्नान करके, उसके शुभ जलको पी कर उसी ओर मुख करके बैठी हुई तुम, हे सुमुखि देवि ! वायुको उद्देश्य करके तपस्या करो। देवताओं, भृङ्गों, पक्षियों, अनेको शस्त्रों और अस्त्रोंसे अवध्य पुत्र तुम्हारी तपस्यासे तुमको होगा—इसमें संशय नहीं है ॥ ३५ ॥

श्रीसूत उवाच—

इति प्रोक्ताऽञ्जना देवी तं प्रणम्य पुनः पुनः ॥ भर्त्रा साकं ययावाशु वेङ्कटाचलसंज्ञकम् ॥ कापिलं तीर्थमासाद्य स्नात्वा निर्मलमानसा ॥ वेङ्कटाद्रिं समारुह्य स्वामिपुष्करिणीं ययौ ॥३७॥ स्नात्वा वराहमानम्य वेङ्कटेशकृतानतिः ॥ मतङ्गस्य ऋषेर्वाक्यं स्मरन्ती च मुहुर्मुहुः ॥ ३८ ॥ वियद्गङ्गां ययावाशु चाञ्जना मञ्जुभाषिणी ॥ स्नात्वा पीत्वा शुभं तोयं तीरे तस्य तदुन्मुखी ॥ ३९ ॥ प्राणवायुं समुद्दिश्य तपश्चक्रे यतव्रता ॥ फलाहारा जलाहारा निराहारा ततः परम् ॥ ४० ॥

श्रीसूतजी बोले—इस प्रकार कही हुई अञ्जना उनको बार बार प्रणाम कर पतिके साथ शीघ्र ही वेङ्कटाचलको गई। कापिलतीर्थको पहुंच कर निर्मल मनवाली वह उसमें स्नान करके, वेङ्कटाचलके ऊपर चढ़ कर स्वामिपुष्करिणीको गई। वहां स्नान कर वराह एवं श्रीवेङ्कटेशको नमस्कार कर, मतङ्गऋषिके वचनको धीरे धीरे स्मरण करती हुई मधुर बोलनेवाली अञ्जना शीघ्र ही आकाशगङ्गाको गई। उसमें स्नान कर उसके शुभ जलको पी कर, उसके तीरपर उसीकी ओर मुंह कर बैठी हुई प्राण वायुको उद्देश्य करके नियमपूर्वक वह तपस्या करने लगी। वह पहले फलाहार करती रही, बादमें केवल जलका आहार करके क्रमसे निराहार भी रही ॥४०॥

सहस्राब्दं तपश्चक्रे न्यस्तनासाग्रदृष्टिका ॥ वयस्या विपुला नाम शुश्रूषामकरोच्छुभा ॥ ४१ ॥ वर्षाणां च सहस्रान्ते वायुर्देवो महामतिः ॥

प्रादुरासीत्तदा तां वै भाषमाणो महामतिः ॥ ४२ ॥ मेषसङ्क्रमणे भानौ स-
म्प्राप्ते मुनिसत्तमाः ॥ पूर्णिमाख्ये तिथौ पुण्ये चित्रानक्षत्रसंयुते ॥ ४३ ॥
तवेप्सितमहं दास्ये वरं वरय सुव्रते ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा ततः प्राहाञ्जना
सती ॥ ४४ ॥ पुत्रं देहि महाभाग वायो देव महामते ॥ तस्यास्तद्वचनं
श्रुत्वा मातरिश्वाऽब्रवीत्ततः ॥ ४५ ॥ पुत्रस्तेऽहं भविष्यामि ख्यातिं दास्ये
शुभानने ॥

सूतजी बोले हे श्रेष्ठमुनियों ! नासिकाके अग्र भागमें दृष्टि लगा कर उसने हजार वर्ष तपस्या की। विपुला नामक इसकी सखी उसकी शुभ सेवा करती थी। हजार वर्षके बाद महा बुद्धिमान् वायुदेव उससे प्रकटे बोले सूर्य्यके मेषराशिमें होने पर, चित्रा नक्षत्रसे संयुक्त पूर्णिमा तिथिमें तुम्हारी अभिलाषाको मैं पूर्ण करूंगा। हे सुव्रते ! तुम वर मांगो। इस प्रकार उसके वचनको सुन कर सती अञ्जना बोली—हे वायुदेव ! महामति ! महाभाग पुत्र मुझको दीजिये। उसके वचनको सुन कर तब वायु बोले—हे सुमुखि ! मैं ही तुम्हारा पुत्र हो कर ख्याति दूंगा ॥४६॥

इति तस्यै वरं दत्त्वा तत्रैवास्त महाबलः ॥ ४६ ॥ तदा ब्रह्मादयो
देवा इन्द्राद्या लोकपालकाः ॥ वसिष्ठाद्या महात्मानः सनकाद्याश्च योगि-
नः ॥ ४७ ॥ व्यासादयश्च विप्रेन्द्रा लक्ष्म्या साकं जगत्पतिः ॥ मुनिपत्न्यो
देवपत्न्य ऋषिपत्न्यस्तथैव च ॥ ४८ ॥ स्वं स्वं वाहनमारुह्य दारभृत्यसु-
तादिभिः ॥ आगतास्ते महात्मानो द्रष्टुं तां तपसि स्थिताम् ॥ ४९ ॥
आश्चर्यमाश्चर्यमिति ब्रुवाणा ब्रह्मादयो देवगणाश्च सर्वे ॥ आलोकयन्तो
दिवि दूरतस्ते स्थिताः स्तदा ब्रह्ममहेशमुख्याः ॥ ५० ॥

इति श्रीस्कन्दपुराण श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये द्वितीयभागे अञ्जना-
तपःकरणप्रकारादिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार उसको वर देकर वायुदेव वहींपर रहे। तब ब्रह्मा इत्यादि देवता, इन्द्र इत्यादि लोकपाल, वसिष्ठ आदि महात्मा, सनकादि योगी, व्यास आदि ब्राह्मण, लक्ष्मीके साथ विष्णु, मुनिपत्नी, देवपत्नी और ऋषिपत्नी भी अपने अपने वाहनपर चढ़ कर स्त्री, पुत्र और सेवकोंके साथ तपस्यामें बैठी उस अञ्जना देखने आये और आश्चर्य है ! आश्चर्य है ! ऐसा बोलते हुए ब्रह्मा इत्यादि सब देवता दूर हीसे उस यत्न देखने [illegible] स्वर्गमें ठहर गये ॥ ५० ॥

इति प्रथमोऽध्यायः

द्वितीयोऽध्यायः

नभ गङ्गा मज्जन समय, व्यास विहित सविधान ।
वेंकटगिरि पर जानको, लिखित अमित महिमान ॥१॥

अथ व्यासप्रोक्ताकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयः

श्रीसूत उवाच—

अञ्जनाऽपि वरं लब्ध्वा भर्त्रा सकं मुमोद ह ॥ ब्रह्मादीनागतान्दृष्ट्वा विस्मयाविष्टमानसा॥१॥ पत्या साकं ततः स्वस्था चाञ्जना मञ्जुभाषिणी ॥ ब्रह्मादिभिरनुज्ञातो व्यासो वेदविदां वरः ॥२॥ अञ्जनां तामुवाचेदं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३ ॥

श्रीसूतजी बोले - अञ्जना भी वर पा कर पतिके साथ आनन्द सागरमें मग्न थी । ब्रह्मादिकोंको आये हुए देख कर आश्चर्यसे व्याकुल हो कर मधुर बोलनेवाली अञ्जना अपने पतिके साथ स्वस्थ हुई । ब्रह्मा इत्यादिसे आज्ञा पा कर वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ व्यासमुनि मेघके ऐसा गम्भीर वचन अञ्जनासे बोले ॥ ३ ॥

व्यास उवाच—

अञ्जने शृणु मद्वाक्यं सर्वलोकोपकारकम् ॥ मतङ्गस्य मुनेर्वाक्यं श्रुत्वा निर्मलचेतसा ॥ ४ ॥ यस्मात्तु वेङ्कटं गत्वा तपः कृत्वा सुदुष्करम् ॥ प्रसूयते त्वया पुत्रः शूरस्त्रैलोक्यविक्रमः ॥ ५ ॥ इदं तीर्थोत्तरं तस्मात्प्रत्यक्षदिवसे तव ॥ स्नानार्थं ये समायान्ति चित्राऋक्षसमन्विते ॥ ६ ॥ मेषे पूषणि संप्राप्ते पूर्णिमायां शुभे दिने ॥ शृणु तेषां फलं देवि वक्ष्यामि तव सुव्रते ॥ ७ ॥

व्यास बोले—हे अञ्जने ! सब लोककी भलाई करनेवाले मेरे वचनको सुनो । मतङ्गऋषिके वचनको निर्मल-

मनसे सुन कर, वेङ्कटाचलको जा कर कठिन तपस्या करके तुमने त्रिलोकीमें बलवान् वीर पुत्र प्राप्त किया है, इसलिये तुम्हारे इस उत्तम तीर्थमें मतङ्गमुनिके प्रत्यक्ष होनेके दिन मेषके सूर्यमें चित्रा नक्षत्रसे युक्त शुभ पूर्णिमाको स्नान करनेके लिये जो लोक आवेंगे, उनके फलको हम तुमको कहते हैं, हे सुव्रते ! सुनो ॥७॥

गङ्गादिसर्वतीर्थेषु द्वादशाब्दं वरानने ॥ यत्फलं विद्यते देवि तत्फलं भवति ध्रुवम् ॥ ८ ॥ दानानि कुर्वतां पुंसां तेषां शृणु फलोन्नतिम् ॥ स्थाने तूलं फलं देवि विद्धि तेषां वरानने ॥ ९ ॥

हे सुमुखि ! देवि ! गङ्गा आदि सब तीर्थोंमें बारह वर्ष रहनेवालोंको जो फल प्राप्त होता है, वही फल उसको भी अवश्य होता है। दान करते हुए उन पुरुषोंके फलकी उन्नतिको सुनो। हे सुमुखि ! उनके फलको रुईके समान समझो ॥ ९ ॥

अञ्जनोवाच—

कार्याणि यानि दानानि वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे ॥ तानि सर्वाणि विप्रेन्द्र वद वेदविदां वर ॥ १० ॥

अञ्जना बोली—हे वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ! ब्राह्मण श्रेष्ठ ! श्रेष्ठ पर्वत वेङ्कटाचलपर जो जो दान करने चाहिये। वे सब मुझसे कहिये ॥ १० ॥

अथ व्यासप्रोक्तश्रीवेङ्कटाचलकरणीयदानप्रशंसा

व्यास उवाच—

अन्नदानं वस्त्रदानं द्वयमेतत्प्रशस्यते ॥ पितुः श्राद्धं विशेषेण वेङ्कटाद्रौ नगोत्तमे ॥ ११ ॥ सुवर्णं ये प्रयच्छन्ति प्रीतये मधुघातिनः ॥ सर्वलोकं समासाद्य मोदन्ते मुनिसत्तमाः ॥ १२ ॥ शालग्रामशिलादानं यः करोति नगोत्तमे ॥ अङ्गमङ्गमवाप्नोति स्वानुभूतिं च विन्दति ॥१३॥ यो ददाति द्विजेन्द्राय गोदानं च कुटुम्बिने ॥ रोमसंख्याप्रमाणेन विष्णुलोके विराजते ॥ १४ ॥

व्यास बोले—श्रेष्ठ पर्वत वेङ्कटाचलपर अन्नदान और वस्त्रदान ये दो और विशेष कर पितरोंको पिण्डदान ही प्रशंसाके योग्य है। हे श्रेष्ठमुनि! जो मधुसूदनको प्रसन्नताके लिये सुवर्ण देते हैं, वे सब लोकको पा कर आनन्द करते हैं। श्रेष्ठ पर्वतपर जो कोइ शालग्राम की शिलाको दान करते हैं वे अपने प्राकृत शरीरको नाश करके अपने स्वरूपको पहचान जाते हैं। जो कुटुम्बवाले ब्राह्मणको गौ देता है, वह उस गौकी रोमसंख्याके वर्षतक विष्णुलोकमें रहता है ॥ १४ ॥

भूमिं ददाति यो देवि ब्राह्मणाय कुटुम्बिने ॥ तस्य पुण्यफलं वक्तुं
कः शक्तो दिवि वा भुवि ॥ १५ ॥ कन्यां ददाति यो देवि श्रोत्रियाय
द्विजातये ॥ विष्णुलोकं समासाद्य मोदते पितृभिः सह ॥ १६ ॥ प्रपां
कुर्वन्ति ये देवि शीतलोदकसंयुताम् ॥ तेषां पुण्यफलं वक्तुं शेषेणापि न
शक्यते ॥ १७ ॥ तिलं ददाति विप्राय श्रोत्रियाय कुटुम्बिने ॥ सर्वपाप-
विनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १८ ॥ धान्यदानं प्रशंसन्ति विप्रा
वेदविदां वराः ॥ बहुपुत्रा भविष्यन्ति धान्यदानं प्रकुर्वताम् ॥ १९ ॥

हे देवि ! जो कुटुम्बवाले ब्राह्मणको भूमि देते हैं, उनके पुण्यके फलको स्वर्ग अथवा पृथ्वी पर कौन कह सकता है। हे देवि ! जो श्रोत्रिय ब्राह्मणको कन्या दान देते हैं, वे वैकुण्ठ लोकको पहुंच कर पितरोंके साथ आनन्द करते हैं। हे देवि ! जो शीतल जलसे युक्त प्याऊ बनाते हैं उनके पुण्य फलको शेष भी नहीं कह सकते हैं। कुटुम्बवाले श्रोत्रिय ब्राह्मणको जो तिल देते हैं, वे सब पापोंसे छूट कर विष्णु लोकमें जाते हैं, वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण धान्यदानकी प्रशंसा करते हैं। धान्य दान करनेवालोंको बहुत पुत्र होते हैं ॥ १९ ॥

गन्धचम्पकपुष्पादींश्छत्रव्यजनचामरान् ॥ ताम्बूलघनसारादीन्यो
ददाति द्विजातये ॥ २० ॥ भुक्त्वा भोगं चिरं कामं स्वर्गलोकं ततो व्रजे-
त् ॥ दिव्यवर्षसहस्रं च भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ २१ ॥ सार्वभौमस्ततो
भूत्वा तत्र भुक्त्वा चिरं महीम् ॥ ततो विप्रत्वमासाद्य वेदवेदान्तपार-
गः ॥ २२ ॥ ततो मुक्तिं समाप्नोति प्रसादाच्चक्रपाणिनः ॥ इत्येतत्कथितं
देवि वेङ्कटाचलवैभवम् ॥ २३ ॥

गन्ध, चम्पक इत्यादिका फूल छत्र, पंखा, चामर, ताम्बूल, कपूर आदि जो ब्राह्मणको देते हैं, वे बहुत समय तक अनेकों भोगोंको भोग कर स्वर्गको जाते हैं। तब देवताओंके वर्षमान हजार वर्षतक अनेक तरहसे भोगोंका भोग कर चक्रवर्ती राजा हो कर वहां बहुत समय पृथ्वीका भोग कर तब वेद वेदान्तमें पारग ब्राह्मणत्वको पा कर चक्रपाणि भगवानकी प्रसन्नतासे वे मुक्तिको पाते हैं। हे देवि ! इस प्रकार वेङ्कटाचलके इस माहात्म्यको मैंने कहा ॥२३

य एतच्छृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तो
विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २४ ॥ इत्येतत्कथितं पूर्वं व्यासेनैव महात्मना ॥

शृणुयाद्वा पठेद्वापि कृतकृत्यो भविष्यति ॥ २५ ॥ तस्यैव वंशजाः सर्वे मुक्तिं यान्ति न संशयः ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये द्वितीयभागे
आकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयादिवर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जो इसको रोज सुनता है, अथवा जो कीर्तन करता है वह सब पापोंसे छूट कर विष्णु लोकको जाता है। पूर्वमें महात्मा व्याससे यह इस प्रकार कहा हुआ वृत्तान्त जो सुनता है अथवा पढ़ता है, वह कृतकृत्य होता है और उसके वंशवाले सब मुक्तिको प्राप्त होते हैं। इसमें संशय नहीं है ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये द्वितीयभागे
आकाशगङ्गास्नानकालनिर्णयादिवर्णनं नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने ॥
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥



॥ श्री श्रीनिवासाय परस्मै ब्रह्मणे नमः ॥

आदित्यपुराणान्तर्गत-

श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यम्

ॐ श्रियः कान्ताय कल्याणनिधये निधयेऽर्थिनाम् ॥
श्रीवेङ्कटनिवासाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥ १ ॥

प्रथमोऽध्यायः

शौनकादि ऋषिवर्गसे, सूतकथन रस खान।
श्री निवास भगवान्‌का, अनुपम सुखमाधान ॥१॥
देवशर्म द्विज कृत विनय, श्री निवास गुण नाम।
वैभव महिमा विमल द्युति, पद नख शोभा धाम ॥२॥

अथ शौनकादीन्प्रति सूतप्रोक्त श्रीश्रीनिवासवैभवः

श्रीशौनकादय ऊचुः—

श्रीवेङ्कटेशमाहात्म्यं श्रीनिवासप्रसादतः ॥ श्रीप्रदं सर्वदा सूत दयया प्रोक्तवानसि ॥ १ ॥ इतः परं श्रीनिवासः श्रीपतिः सर्वशो हि नः ॥ कथं प्रीतो भवेत्सद्यो ह्यभीष्टानि प्रवर्षयन् ॥ २ ॥ तद्वदस्व कृपापूर्ण वेङ्कटेश-कथामृतम् ॥ भगवन्सर्वतत्त्वज्ञ दयापात्रं वयं तव ॥ ३ ॥

श्री शौनकादि बोले—हे सूत ! श्रीनिवासकी कृपासे सदा श्रीको देनेवाले, श्री वेङ्कटेशके माहात्म्यको आपने कृपा करके कहा है। इसके बाद—लक्ष्मीपति श्रीनिवास सब प्रकार हमलोगोंके वाञ्छित फलको देते हुए किस प्रकार साक्षात् प्रसन्न होंगे, हे कृपालु ! वेङ्कटेशकी उस अमृतके समान कथाको कहिये। हे सब तत्त्वोंके जानने वाले ! भगवन् ! हमलोग आपकी दयाके पात्र है ॥ ३ ॥

श्रीसूत उवाच—

शृणुध्वं मुनयो दिव्यं सावधानतया त्विदम् ॥ यथा पृष्टं तथैवाहं वक्ष्यामि वचनं शुभम् ॥ ४ ॥ वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्च-न ॥ वेङ्कटेशसमो देवो न भूतो न भविष्यति ॥ ५ ॥ अद्भुतं चास्य चरितं वर्णितुं केन शक्यते ॥ तथापि तारकं सर्वपापघ्नं पुण्यवर्धनम् ॥ ६ ॥ सुविचित्रमपूर्वार्थं देवर्ष्यादिभिरादृतम् ॥ लोकोत्तरं महाश्चर्यं वक्ष्येऽहं सर्वसिद्धिदम् ॥ ७ ॥

श्रीसूतजी बोले—हे मुनिगण ! आपलोग सावधान हो कर सुनिये। जैसा आपने पूछा है मैं वैसे ही शुभ कथाको कहूंगा। वेङ्कटाचलके समान स्थान ब्रह्माण्डमें कोई भी नहीं हैं, वेङ्कटेशके समान देवता नहीं हुए हैं और नहीं होंगे। इनके अद्भुत चरित्रको कौन वर्णन कर सकता है, तथापि तारनेवाले, सर्वपापोंको नाश करनेवाले, पुण्यको बढ़ानेवाले, विचित्र, अद्भुत, देवर्षि आदिसे भी आदर किये हुए लोकोत्तर महाश्चर्य जनक और सब सिद्धिको देने-वाले भगवानके माहात्म्य को कहूंगा ॥ ७ ॥

शेषाचले यन्माहात्म्यमन्यक्षेत्रे न तत्क्वचित् ॥ तद्गतश्रीनिवासस्य महिमाऽनन्यगः शुभः ॥८॥ वेदेषु च पुराणेषु वेङ्कटेशकथामृतम् ॥ वर्णि-तं चेतिहासेषु भारताद्यागमेषु च ॥ ९ ॥ मनोहरं तु सुश्राव्यमिहामुत्रेष्ट-दायकम् ॥ ज्ञानप्रदं विशेषेण महैश्वर्यस्य कारणम् ॥ १० ॥ वैराग्यभक्ति-

सत्त्वादिमदेन्द्रियवशप्रदे ॥ वेङ्कटाद्रौ शुचिक्षेत्रेऽशुचिदोषो न विद्यते ॥११॥ तस्माद्वेङ्कटनाथस्य नैवेद्यं ग्राह्यमुत्तमम् ॥ तेन क्षेमं प्रजानां हि:विपरीते विपर्ययः ॥ १२ ॥

शेषाचलमें जो माहात्म्य है, दूसरे क्षेत्रमें वह कहीं भी नहीं है। उसमें रहनेवाले श्रीनिवासकी महिमा भी अनुपम एवं मङ्गलमय है। वेदोंमें, पुराणोंमें, इतिहासोंमें, भारतादि आगमोंमें, मनोहर, सुनने योग्य, इसलोक और परलोकमें अभीष्टको देनेवाली, विशेष करके ज्ञानको देनेवाली, महान् ऐश्वर्यका कारण, वेङ्कटेशकी अमृत तुल्य कथा कही गई है। वैराग्य भक्ति आदि सत्वगुणोंको देनेवाले, इन्द्रियको वशमें करनेवाले वेङ्कटाचलके पवित्र क्षेत्रमें अपवित्रताका दोष नहीं होता। इसलिये वेङ्कटेशका उत्तम नैवेद्य लेना चाहिये। उससे परिवारोंका कुशल होता है और नहीं लेनेसे अमङ्गल होता है ॥ १२ ॥

कर्ता हि सृष्टिस्थितिसंयमादेर्धर्ता रजःसत्त्वतमांस्यनर्हः ॥ अनाद्यन्तो वचसाऽनिरुक्तः सदाश्रयो देववरो वरेण्यः ॥१३॥ नित्यं ब्रह्मा शिवः शेषगरुडेन्द्रादयो वराः ॥ पूजयन्ति महाभक्त्या वेङ्कटेशं श्रिया सह ॥१४॥ चराचरगुरुर्देवः सर्वसाक्षी महेश्वरः ॥ जप्यस्तप्योऽर्चनीयश्च स्मर्यो ध्येयोऽखिलैरपि ॥ १५ ॥ तन्मनास्तद्गतप्राणो भक्त्या तन्नाम संस्मरेत् ॥ गोदानान्यश्वमेधाद्याः कन्यादानान्यसङ्ख्यया ॥१६॥ असंख्यमेरुसौवर्णदानान्यन्यान्यनेकशः ॥ तन्नामस्मृत्यतुल्यानि माहात्म्यं किमुताद्भुतम् ॥१७॥

वह देव वरेण्य सृष्टि, स्थिति और नाशके करनेवाले, रज, सत्त्व और तमको धारण करनेवाले, अनुपम, आदि अन्तसे रहित, वचनसे परे, एवं सज्जनोंके एकमात्र आश्रय हैं। ब्रह्मा, शिव, शेष, गरुड, इन्द्र आदि महाभाग लक्ष्मीके साथ भक्तिपूर्वक श्रीवेङ्कटेशकी पूजा करते हैं। चराचरके गुरु, देव, सर्वसाक्षी, महेश्वर (श्रीवेङ्कटेश) सब किसीसे जप करने, तपस्या करने, पूजा करने, स्मरण करने और योग्य हैं। उन्हींमें मन लगा कर, उन्हींमें प्राणको अर्पण कर भक्तिपूर्वक उनके नामको स्मरण करे। गोदान, अश्वमेध आदि यज्ञ, असंख्य कन्यादान, असंख्य मेरुतुल्य सुवर्णदान और और भी अनेकों प्रकारके दान मिल कर उनके नाम स्मरणके तुल्य नहीं होते हैं। क्या ही अद्भुत माहात्म्य है ॥१७॥

इति शेषेण कथितं कपिलाय महात्मने ॥ कपिलाख्यमहायोगिसकाशात्तु मया श्रुतम् ॥ १८ ॥ तदुक्तं भवतामद्य सद्यः प्रीतिकरं हरेः ॥ अतो वो मङ्गलार्थं च शृणुध्वं यन्मयोच्यते ॥ १९ ॥ श्रीवेङ्कटेशयात्रार्थं

गच्छध्वं सुदृढव्रताः ॥ विष्णुसन्दर्शनं कृत्वा भक्तिमन्तो जितेन्द्रियाः ॥२०॥
स्तोत्रं कुरुध्वं बहुधा भगवद् गुणवर्णनैः ॥ स्वगुणोत्कर्षविज्ञानाद्यथा प्रीति-
र्निजा हरेः ॥ २१ ॥ न तादृशी प्रीतिरस्ति ह्यज्ञानादन्यथामतौ ॥

इस प्रकार माहात्म्य शेषने कपिलसे कहा, कपिल नामक महायोगीसे मैंने सुना। साक्षात् भगवान्में प्रीति करानेवाला यही माहात्म्य मैंने आज आपके मङ्गलार्थ कहा है। अतएव मङ्गलके लिये मैं जो कहता हूं सो सुनिये। श्रीवेङ्कटेशकी यात्राके लिये, दृढव्रतावलम्बी हो कर आप लोग जाइये। भक्तिमान और जितेन्द्रिय हो कर आप लोग भगवानके गुणवर्णन द्वारा बहुत प्रकारसे उनकी स्तुति कीजिये। उनके गुणोंके उत्तम ज्ञानसे जिस प्रकार-की भक्ति भगवानमें होती है, उस प्रकारकी भक्ति दूसरी प्रकारकी बुद्धिमें अज्ञानसे नहीं होती है ॥२२॥

भक्त्या स्तोत्रेण संतुष्टस्सर्वेष्टानि प्रवर्षति ॥ २२ ॥ भक्तिस्तोत्र-
विहीनेषु दयावान्न भवेत्तथा ॥ अत्र वः कथयामीष्टमितिहासं पुरातन-
म् ॥ २३ ॥ यस्य स्मरणमात्रेण भक्तिर्विष्णुपदाम्बुजे ॥

वे भक्तिपूर्वक स्तोत्रसे प्रसन्न हो कर सब इच्छाओंको पूर्ण करते हैं, भक्ति और स्तोत्रसे हीन जीवोंपर वह उस प्रकार दया नहीं करते हैं। यहां आप लोगोंसे एक प्रिय और प्राचीन इतिहासको कहता हूं, जिसके स्मरण करनेसे ही भगवान्के चरण कमलोंमें प्रीति होती है ॥२५॥

वायुशिष्यो देवशर्मा विष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ॥२४॥ तपस्वी बहुनिष्ठा-
वान्सर्वदा विष्णुचिन्तने ॥ ममताहङ्कारशून्यो विषयेषु विरागवान् ॥ २५ ॥
षड्वर्गविजयी शान्तः षड्तरङ्गसुभङ्गकृत् ॥ कुटुम्बे न मनःकारी दारिद्र्या-
त्पीडितोऽपि च ॥ २६ ॥ भार्यया प्रार्थितो नित्यं दारिद्र्यापगमेच्छया ॥

वायुका शिष्य, विष्णुभक्त, जितेन्द्रिय, तपस्वी सदा विष्णुके स्मरण करनेमें अत्यन्त निष्ठावाले, ममता और अहंकारसे शून्य, विषयोंमें विरागवाले, षट्शत्रु (काम क्रोधादियों) को विजय करनेवाले, शान्त, षट्शत्रुओंके वेगों-का नाश करनेवाले, दरिद्रतासे पीड़ित होने पर भी कुटुम्बमें मन नहीं लगानेवाले देवशर्मा अपनी स्त्री द्वारा अपने दारिद्र्यका नाश करनेकी इच्छासे प्रार्थित हुआ ॥२७॥

भो नाथ हे पते स्वामिन्प्रसीद करुणाकर ॥ २७ ॥ क्षुधया दुःखि-
ता बालास्तव पुत्राश्च केवलम् ॥ न शक्ताहमरण्येषु कन्दमूलार्जनादिषु ॥२८॥
रक्षको मम नान्योऽस्ति शिशूनां पालनेऽपि च ॥ कृपां कुरुष्व शिशुषु विज्ञा-
पनमिदं शृणु ॥२९॥ कुलस्वामीष्टदेवो नो जगद्रक्षणदीक्षितः ॥ शरणागतसं-

न्त्राणः श्रीनिवासः सतां गतिः ॥ ३० ॥ पालको हि बहूनां च भक्तानां भक्तवत्सलः ॥ तल्लक्ष्मीपतिपादाब्जं गत्वा तत्प्रार्थनां कुरु ॥ ३१ ॥ तेन प्रीतो भवेत्सद्यस्ततोऽस्मज्जीवनं भवेत् ॥ प्रसीद त्वं दयासिन्धो दयां कुरु दयां कुरु ॥ ३२ ॥

हे नाथ ! पति ! स्वामी ! करुणाकर ! आप कृपा कीजिये । आपके छोटे छोटे पुत्र भूखसे दुःखी हैं। मैं भी वनसे कन्द मूल लानेमें असमर्थ हूं। मेरी रक्षा एवं बच्चोंका पालन करनेवाला कोई दूसरा नहीं है । बच्चोंपर कृपा कीजिये । मेरी प्रार्थना सुनिये । हम लोगोंके कुलदेवता, इष्टदेवता, संसारकी रक्षा करनेमें दीक्षित, शरणागतकी रक्षा करनेवाले तथा सज्जनोंको आश्रय देनेवाले श्रीनिवास हैं । वे भक्तवत्सल अनेकों भक्तोंका पालन करनेवाले हैं, उन लक्ष्मीपतिके चरणकी शरणमें जा कर उनकी प्रार्थना कीजिये । इससे वे साक्षात् प्रसन्न हो जायंगे, तब हमलोगोंके जीवनका निर्वाह भी होगा । हे दयासिन्धु ! आप प्रसन्न होइये ! दया कीजिये ! दया कीजिये ॥ ३२ ॥

इति दैन्येन महता प्रार्थितोऽहर्निशं तया ॥ न स्वीचकार तद्वाक्यं तपोविघ्नभयात्तदा ॥ ३३ ॥ दिष्ट्या चादृष्टपाकेन तद्गुरुर्वायुरागमत् ॥ पतिव्रतायां शिशुषु प्रसन्नः करुणानिधिः ॥ ३४ ॥ तपोऽवसाने संप्राप्तं स्वगुरुं जपतां गुरुम् ॥ दृष्ट्वा मुदा देवशर्मा सहसोत्थाय चादरात् ॥३५॥ साष्टाङ्गं तं प्रणम्याथ बद्धाञ्जलिपुटोऽभवत् ॥ ततो वायुः प्राह शिष्यं मधुरं वचनं हितम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार अत्यन्त दीनतासे उसके द्वारा रात्रि दिन प्रार्थना किये जाने पर भी वह ब्राह्मण तपस्यामें विघ्न भयसे उसके वचनको नहीं स्वीकार करता था । पतिकी सेवा करती हुई उस पतिव्रता और उन बच्चों पर प्रसन्न ह कर उसके गुरु करुणानिधि वायुदेव भाग्यके वशसे वहां आये । यमियोंमें श्रेष्ठ अपने गुरुको तपस्याके अन्तमें आ हुए देख कर आनन्दसे उठ कर आदरपूर्वक उनको साष्टाङ्ग प्रणाम कर उनके आगे हाथ जोड कर देवशर्मा खड़ हो गया । तब वायुने अपने शिष्यसे मधुर और हितकर वचन कहे ॥३६॥

श्रीमद्वेङ्कटनाथस्य यात्रार्थं गच्छ मा चिरम् ॥ तेनेहामुत्र तेऽभीष्टसिद्धिर्भवति नान्यथा ॥ ३७ ॥ लक्ष्मीपतेर्दयासिन्धोर्ब्रह्मादिवरदायिनः ॥ यात्रायां माऽस्तु सन्देहः शीघ्रं गच्छ सुभक्तिमन् ॥३८॥

श्रीवेङ्कटेशकी यात्राके लिये शीघ्र चलो, उसीसे तुम्हारी अभिलाषा इस लोक और परलोकमें पूरी होगी

दूसरी तरहसे नहीं। लक्ष्मीके पति, दयाके समुद्र, ब्रह्मादि देवोंको वर देनेवालेके यात्रोत्सवमें सन्देह मत करो, भक्ति-पूर्वक शीघ्र चलो ॥३८॥

इति देवेनानिलेन गुरुणा स्वस्य चोदितः ॥ मुहुर्मुहुर्बोधितोऽथ विष्णुयात्रामहादरः ॥ ३९ ॥ गुरूक्तमर्थं जग्राह गुरुवाक्ये सदा रतः ॥ गुरूपदेशो बलवान्गुरोराज्ञां न लङ्घयेत् ॥४०॥ इत्यर्थमनुसन्धाय प्रतस्थे शेषपर्वतम् ॥ तत्र श्रीवेङ्कटेशस्य सुदर्शनमहादरः ॥४१॥ आनन्दज्ञानदं विष्णुमानन्दमयनामकम् ॥ आनन्देन ददर्शायमानन्दनिलयालये ॥ ४२ ॥ विहरन्तं श्रीधराख्यं नानालीलाविलासिनम् ॥ भक्तदर्शनमात्रेण प्रसादान्मन्दहासिनम् ॥ ४३ ॥ श्रीवेङ्कटेशं तं नत्वा भक्त्या चक्रेऽथ संस्तुतिम् ॥४४॥

इस प्रकार अपने गुरु वायुदेवसे प्रेरणा किये हुए और बार बार कहने पर विष्णुयात्रामें अत्यन्त आदर रखनेवाले हो कर गुरुके वचनमें सदा लगे हुए उन्होंने गुरुके कहे हुए वचनको ग्रहण कर लिया और "गुरुका उपदेश बलवान है, गुरुकी आज्ञा उल्लङ्घन नहीं करनी चाहिये" इस प्रकारके अर्थको विचार कर वे शेषाचलको गये। श्रीवेङ्कटेशके दर्शनमें आदर रखनेवाले उन्होंने वहां पर आनन्द और ज्ञानको देनेवाले, आनन्दमय नामक विष्णुको आनन्दके निलयमें आनन्दपूर्वक देखा। विहार करते हुए, श्रीधर नामक, अनेकों लीलाओंसे विलास करनेवाले, दर्शन करने ही से भक्तोंके ऊपर प्रसन्न होनेवाले तथा मन्द हास्यवाले उन श्री वेङ्कटेशको प्रणाम करके वे भक्तिसे उनकी स्तुति करने लगे ॥४४।

अथ श्रीश्रीनिवासमुद्दिश्य देवशर्माख्यविप्रकृतस्तुतिः

देवशर्मोवाच—

दयानिधे दयानिधे दयानिधे दयानिधे ॥ नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमो नमः ॥४५॥ श्रीपद्मनाभ पद्मेश पद्मजेशेन्द्रवन्दित ॥ पद्ममालिन्पद्मनेत्र पद्माभयदरारिभृत् ॥ ४६ ॥ पद्मपाणे पद्मपाद सर्वहृत्पद्मसंस्थित ॥ त्वत्पादपद्मयुगलं प्रणमाम्यतिसुन्दरम् ॥ ४७ ॥ त्वत्पादपद्ममाहात्म्यमप्यनन्तं त्रिविक्रम ॥ यत्कनिष्ठाङ्गुलिनखमण्यग्रगुणसंयुतान् ॥ ४८ ॥ अनन्तान्सुविशेषांश्च पश्यन्ती श्रीर्निरन्तरम् ॥ स्तोतुकामा क्षणादीक्षाहर्षादाश्चर्यसागरे ॥४९॥ गहने गाहमानाऽभूदनन्तश्रुत्यगोचरे ॥ त्वयोपदिष्टो यः पुत्रवात्सल्याच्चतुराननः ॥ ५० ॥ त्वद्गुणानां च गणनादानन्दमतुलं

भजन् ॥ नाद्यापि विररामासौ गणनादेवराडपि ॥ ५१ ॥ सहस्रवदनः शेषो-
ऽशेषवेदार्थकोविदः ॥ नाहं जाने इति ब्रूते यन्नखाग्राग्र्यवैभवम् ॥ ५२ ॥

देवशर्मा बोले—हे दयानिधि ! दयानिधि !! दयानिधि !!! आपको प्रणाम है ! प्रणाम है ! प्रणाम है ! प्रणाम है ! प्रणाम है ! प्रणाम है ! प्रणाम है ! प्रणाम है ! । हे पद्मनाभ ! लक्ष्मीपति ! लक्ष्मी और इन्द्रसे वन्दित ! कमलकी माला धारण किये हुए ! कमलनयन ! लक्ष्मीको अभय करनेवाले ! चक्रका धारण करनेवाले ! कमलके जैसे हाथ और चरणवाले ! सबके हृदय ! कमलमें रहनेवाले ! मैं आपके दोनों सुन्दर चरणकमलोंको प्रणाम करता हूं । हे त्रिवि-क्रम ! आपके चरणकमलका माहात्म्य अनन्त है, जिस कनिष्ठा अङ्गुलीके नखरूपी मणिके श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त, अनन्त गुणको निरन्तर देखती हुई, स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाली लक्ष्मी क्षण भरमें हर्ष और आश्चर्यके गम्भीर समुद्रमें मग्न हो गई । पुत्रके वात्सल्यके कारण आपसे उपदेश किये गये आपके पुत्र ब्रह्मा आपके गुणोंकी गिनती करनेसे अत्यन्त आनन्द लाभ करते हुए हे देवदेव ! अभीतक भी गिनती करनेसे नहीं अलग हैं । सब वेदोंके अर्थको जानने वाले, हजार मुखवाले शेष भी यह कहते हैं कि उनके नखोंके अग्रभागके वैभवको मैं नहीं जानता ।

अनन्तवेदा आपन्ते ह्यन्योन्यं प्रविचार्य च ॥ ५३ ॥ एकैकस्मिन्न-
धिकारे नियुक्ता एकैकशो ब्रह्मपूर्वाश्च विष्णोः ॥ सर्वे देवाः स्वाधिकारे नि-
युक्ताः सत्यादिलोकेषु यथाक्रमेण ॥ ५४ ॥ भुञ्जन्त इष्टानि महादरेण
भजन्ति शेषाचलगं रमेशम् ॥ वयं त्वनन्ता हरिणा नियुक्ता वेदाः
स्तोतुं स्वस्य गुणानुभावम् ॥ ५५ ॥ गुणास्त्वनन्ताः परमात्मनो यत्पदो
नखाग्रस्थगुणैकदेशम् ॥ स्तुतौ मिलित्वा वयमत्र शक्ता वेदास्त्वनन्ता
जनितास्मदर्थम् ॥ ५६ ॥

परस्पर विचार करके अनन्त वेद भी यही बताते हैं कि विष्णुके अधिकार (परिचर्या) में ब्रह्मा इत्यादि एक एक देवता अपने एक एक अधिकारमें नियुक्त हैं । क्रमसे सत्य आदि लोकोंमें अपने अपने अधिकारमें लगे हुए सब देवता अत्यन्त आदरसे अपने अभीष्टको भोगते हुए शेषाचल निवासी भगवानका भजन करते हैं । हम लोग अनन्तवेद तो शेषाचलके स्वामी लक्ष्मीपतिके गुणमाहात्म्यका ही गुणानुवाद करनेके लिये नियुक्त हैं, परमात्माके गुण तो अनन्त है । क्योंकि हम सब मिल कर जिसके चरणनखके अग्रभागके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ हैं, अतएव हम वेद अनन्त बनाये गये हैं ॥

एवं सुनिश्चित्य गुणैकदेशमाहात्म्यमेते त्वविजानन्त एव ॥ उपक्रा-
न्ताः स्तोतुमथो गुणैकदेशोऽप्यनन्तात्मनयाभिवृद्धः ॥ ५७ ॥ तं वीक्ष्य ते-
ऽन्योन्यमथोचुरेकं गुणं वदामो विसृजाम शेषान् ॥ आरेभिरे पूर्ववदेव तेऽपि

गुणा अनन्ता अभवच्च सोऽपि ॥ ५८ ॥ गुणैः सुपूर्णाः शुभदैरनन्तैः प्रत्येकशः किरणानीव पूष्णः ॥ विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधश्च वेदा दृष्ट्वा गुणान् व्याप्तानित्यवोचन् ॥ ५९ ॥ द्रष्टुं श्रोतुं कीर्तितुं वापि बोद्धुमशक्यं नः किमुत स्तोतुमेतान् ॥ अस्मानतीतान्वयमल्पसाराः किं वर्णयामोऽलमलं प्रशंसया ॥ ६० ॥

ऐसा निश्चय करके सारे माहात्म्यको भी नहीं जानते हुए वे गुणोंके एक अंशकी स्तुति करने लगे । तब गुणका एक अंश भी बढ़ कर अनन्त हो गया। यह देख कर वे एक दूसरेसे बोले—हम लोग एक ही गुणका वर्णन करेंगे और सबोंको छोड़ देंगे। ऐसा निश्चय करके उन्होंने गुणानुवाद करना आरम्भ किया किन्तु पूर्वकी तरह वह भी अनन्त हो गया, और इस प्रकार वे वेद भी अनन्त हो गये। प्रत्येक दिशाओं, विदिशाओं, ऊपर और नीचेको सूर्यकी किरणके जैसे, अनन्त और शुभ देनेवाले गुणोंको भरे हुए देख कर वेदोंने ऐसा कहा कि हम लोग अपने से भी बढ़े हुए इन गुणोंको देखने, सुनने, कीर्तन करने, अथवा समझनेमें भी असमर्थ हैं। फिर इनकी स्तुति करना तो क्या है ? हम लोग थोड़े तत्ववाले हैं । हम लोग इनका क्या वर्णन कर सकते हैं—अपनी अधिक प्रशंसा करना व्यर्थ है ॥ ६० ॥

इत्युक्तवन्तः स्वमनोऽनुसाराद् गुणानेतान्वर्णयामासुरञ्जसा ॥ तथापि ते पादनखाग्रगेषु गुणेष्वनन्तेषु विभाजितस्य॥ ६१ ॥ गुणैकदेशस्य गुणैकदेशकः प्रवर्णितोंऽशा बहवो न वर्णिताः ॥ एवं रमाजाहिपवेदमुख्याः शक्ता नासन्दर्शने त्वद्गुणानाम् ॥ ६२ ॥ यत्समस्तगुणान्विष्णोर्वर्णने शक्तिवर्जितः ॥ अनन्तवेदास्तद्भूमन्गुणास्ते त्वमिताद्भुताः ॥ ६३ ॥

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये देवशर्मकृतश्रीनिवासपादनखाग्रादिमहिमवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऐसा कहते हुए वे अपने मनके अनुसार इन गुणोंका थोड़ा कुछ वर्णन करने लगे। तथापि आपके चरणनखके अग्रभागमें स्थित अनन्त भागोंमें विभाग किये हुए अनन्त गुणोंके एक देशिक गुणोंका कुछ अंश तो वर्णन किया गया किन्तु बहुतसे अंशोंका वर्णन नहीं हो सका। इस प्रकारसे लक्ष्मी, ब्रह्मा, शेष, वेद इत्यादि आपके गुणोंका अनुभव नहीं कर सके। जिसलिये आप विष्णुके समस्त गुणोंका वर्णन करनेमें अनन्त वेद भी शक्तिसे हीन हैं, इसलिये आपके इस प्रकारके गुण अद्भुत हैं ॥ ६३ ॥

॥ इति प्रथमोऽध्यायः ॥

द्वितीयोऽध्यायः



श्रीनिवास भगवान्‌का, मंगल विग्रह ठाम।
नख शिख वर्णन अकथ यह, अङ्ग अङ्ग तुविकाम ॥१॥

अथ श्रीश्रीनिवासमङ्गलविग्रहसौन्दर्यादिवर्णनम्

देवशर्मोवाच—

इतोऽप्यथ त्वत्पादाब्जगतसौन्दर्यमद्भुतम् ॥ स्वामिंस्त्वया प्रेरित-श्चेद्यथामत्यनुवादये ॥ १॥ वक्षःस्थापि रमादेवी तव पादाम्बुजे स्थितम् ॥ सौन्दर्यमद्भुतं दृष्ट्वा सुन्दरी मोहिताऽभवत् ॥ २ ॥ विस्मिता द्रष्टुकामाथ स्वस्य नेत्रद्वयेन वै ॥ अशक्यं दर्शनं मत्वा त्रिरूपा साऽभवत्तदा ॥ ३ ॥ दक्षिणे श्रीरूपिणी च वामे भूरूपिणी स्थिता ॥ नीलारूपा च तत्रैव त्रिरू-पा नेत्रषट्कतः ॥ ४ ॥ पश्यन्त्यनन्यमनसा सौन्दर्याख्यरसायनम् ॥ पिब-न्त्यप्यन्वहं नापि निवृत्ता तृष्णयाऽधुना ॥ ५ ॥

देवशर्म्मा बोले—इतना होने पर भी आपके चरण कमलके अद्भुत सौन्दर्य्यका वर्णन करनेके लिये प्रेरित हो कर मैं, हे स्वामि! अपनी बुद्धिके अनुसार वर्णन करता हूं। सुन्दरी लक्ष्मी देवी आपके हृदयमें लगी हुई होने पर भी आपके चरण कमलके सौन्दर्य्यको देख कर मोहित हो गई। आश्चर्यसे युक्त हो कर देखनेकी इच्छावाली हो दो नेत्रोंसे दर्शन करना असम्भव जान कर तीन रूपोंमें परिणत हो गई। दक्षिणमें लक्ष्मीरूपिणी, वाममें धरणीरूपिणी, एवं हृदयमें नीलारूपिणी हो कर छः नेत्रोंसे एकान्त मनसे देखती हुई एवं सौन्दर्य्य नामक रसायनको प्रति दिन पीती हुई वह अबतक भी तृष्णासे निवृत्त नहीं हुई है ॥ ५ ॥

श्रीसुन्दर श्रीनिवास नाभिस्थश्चतुराननः ॥ तव पादाम्बुजे रम्यसौ-न्दर्ये लग्नमानसः ॥ ६ ॥ अष्टनेत्र्या दिवारात्रं पश्यन्सौन्दर्यमद्भुतम् ॥

नालं नेत्राष्टकमिति बहुरूपी तदाऽभवत् ॥ ७ ॥ कण्ठे च कौस्तुभं नाभौ वैकुण्ठादित्रिधामसु ॥ सत्यलोके च मेर्वादौ सर्वत्र चतुराननः ॥ ८ ॥ तत: पादाब्जसौन्दर्यरसं चामृतनैच्यदम् ॥ प्रीत्या पातुमहोरात्रमासाद्य सुखभोगिनः ॥ ९ ॥ तृष्णा शान्ताधुना नाऽपि पादसौन्दर्यमीदृशम् ॥

हे सुन्दर! श्रीनिवास! आपकी नाभिमें बैठे हुए एवं आपके सुन्दर चरणकमलके सौन्दर्य्यमें मन लगाये हुए ब्रह्मा आठ नेत्रोंसे आपके अद्भुत सौन्दर्य्यको रात्रि-दिन देखते हुए आठ नेत्रोंको अपर्याप्त समझ कर, कण्ठमें कौस्तुभ, नाभिमें, सत्यलोक मेरु आदि पर्वतमें और वैकुण्ठ आदि तीनों धामोंमें सर्वत्र ब्रह्मारूप इस प्रकार बहुत रूपवाले हो गये। तब अमृतको भी नीचा दिखानेवाले, चरणकमलकी सुन्दरतारूपी रसको प्रीतिसे दिन रात पान करने पर भी सुख भोग करनेवाले ब्रह्माजीकी तृष्णा अबतक भी शान्त नहीं हुई है। इस प्रकार आपके चरणोंका सौन्दर्य्य है॥

शय्यासनातपत्रादिरूपी त्वत्पादसेवकः ॥ १० ॥ शेषो बहुसहस्राक्षः सदान्तस्थो व्यचिन्तयत् ॥ अस्मत्स्वाम्यङ्घ्रिसौन्दर्यं विचित्रं सुमनोहरम् ॥ ११ ॥ अदृष्टश्रुतपूर्वं च महागाढं विलक्षणम् ॥ सुलक्षणं च सन्दृश्यं जगन्मोहनमोहकम् ॥ १२ ॥ बहूनि मम नेत्राणि समीपे सर्वदा हरेः ॥ वासश्चेशप्रसादेन त्वेवं भाग्यमभून्मम ॥ १३ ॥ इति सम्भ्रमसंयुक्तः सर्वदातिप्रियो हरेः ॥ नेत्रैर्बहुसहस्रैश्च लक्ष्मीपतिपदाम्बुजे ॥१४॥ असमं चित्रसौन्दर्यं दृष्ट्वा दृष्ट्वा पुनः पुनः ॥ महानन्दाम्बुधौ मग्न एवं मेने फणी तदा ॥ १५ ॥

शय्या और छत्र आसन इत्यादि हो कर आपकी सेवा करनेवाले, बहुत नेत्रोंवाले, एवं सदा अन्तःपुरमें ही रहनेवाले शेष अपने मनमें विचार करते थे। मेरे स्वामीका सौन्दर्य्य, विचित्र, अत्यन्त मनोहर, पहले नहीं देखा हुआ, अत्यन्त विलक्षण, सुन्दर लक्षण वाला, देखने योग्य तथा संसारके मोहनेवालेको भी मोहने वाला है। मेरे नेत्र बहुत हैं, ईश्वरकी कृपासे मेरा वास भी सदा भगवानके समीप ही में है। मेरा इस प्रकारका भाग्य है। इस प्रकार उत्सुकता युक्त श्रीनिवासके सदा प्यारे शेषने अनेकों हजार नेत्रोंसे लक्ष्मीपतिके चरणकमलोंके अत्यन्त अद्भुत सौन्दर्य्यको बार बार देख कर महा आनन्दके सागरमें डूबते हुए अपने मनमें ऐसा समझा ॥१५॥

वसाम्यहं सदैवात्र पादमूले च मत्पतेः ॥ वैकुण्ठं वा न गच्छामि त्यक्त्वा विष्णुपदाम्बुजम् ॥ १६ ॥ यस्त्वानन्दो भवेन्नित्यं पादसौन्दर्यदर्श-

नात् ॥ वैकुण्ठ ईदृशानन्दः कैवल्येऽपि न विद्यते ॥ १७ ॥ पातालमात्रं गन्तव्यं पादमूलं यतो हरेः ॥ न स्थास्यामि क्षणमपि यत्सौन्दर्यामृतं विना ॥ १८ ॥ इति निश्चित्य नागेन्द्रः पादसौन्दर्यमोहितः ॥ यत्र यत्रेन्दिरेशस्य पादमूलं प्रवर्तते ॥ १९ ॥ तत्र तत्र सदा पादसौन्दर्यामृतपाय्यभूत् ॥

मैं अपने स्वामीके चरणोंमें सदा यहां लीन रहता हूं। विष्णुके चरणकमलको छोड़ कर वैकुण्ठको भी नहीं जाता हूं। चरणकमलके सौन्दर्यको देखनेसे जो आनन्द होता है, इस प्रकारका आनन्द वैकुण्ठ और कैवल्यमें भी नहीं है। केवल पाताल लोकको ही जाऊंगा, क्योंकि वहां उनका चरण मूल है। उस सौन्दर्यरूपी अमृतके बिना मैं क्षणमात्र भी नहीं ठहर सकता हूं। इस प्रकार निश्चय करके चरणकी शोभासे मोहित हो वे शेष, जहां जहां पर लक्ष्मीपतिका चरण है, वहां वहां पर सदा चरणकमलकी सुन्दरतारूपी अमृतके पीने वाले हुए ॥

अथाचिन्तयदेवं हि शङ्करो लोकशङ्करः ॥ २० ॥ शेषस्य किमहो भाग्यं शेषागेशप्रसादजम् ॥ बहुनेत्राणि तत्पादसौन्दर्यामृतसेवनम् ॥२१॥ एतद् द्वयं दुर्लभं मे त्रिनेत्रत्वादहो बत ॥ भाविजन्मनि शेषत्वप्राप्त्यर्थं वा महत्तपः ॥ २२ ॥ करोमीत्यपि वैराग्याच्छम्भुः कैलासगोऽभवत् ॥

अब संसारके कल्याण करनेवाले शिवने मनमें विचार किया कि श्रीवेङ्कटेशकी कृपासे शेषका अहोभाग्य है कि उनके चरणके सौन्दर्यका सेवन करनेको उन्हें बहुत नेत्र हैं। अहो! तीन ही नेत्र होनेके कारण ये दोनों मुझको दुर्लभ हैं, अग्रिम जन्ममें शेष होनेके लिये मैं महान तप करूंगा। इस प्रकार अत्यन्त वैराग्यसे शिवजी कैलासमें रहने हैं ॥२३॥

श्रीवेङ्कटेशेन्दिरेश जिष्णुस्तव मुखाम्बुजात् ॥ २३ ॥ जातः सहस्रनयनोऽप्येवं तत्र पदाम्बुजे ॥ अदृश्याश्चर्यसौन्दर्यं संपश्यन्नप्यहर्निशम् ॥ २४ ॥ इत्यचिन्तयदत्यन्तं पादसौन्दर्यमोहितः ॥ अमृतस्य पुरा पाने मे नाभूदीदृशं सुखम् ॥ २५ ॥ सौन्दर्यमतिसामीप्यदोषात्सम्यङ् न दृश्यते ॥ इतोऽप्यतिशयानन्दः किञ्चिद्व्यवहिते भवेत् ॥ २६ ॥ अतः स्वर्गस्थोऽनिमेषो यावन्नेत्रैरहर्निशम् ॥ वीक्षे यावदलम्बुद्धिस्ततो मत्स्थानमाव्रजे ॥ २७ ॥

हे श्रीवेङ्कटेश ! लक्ष्मीपति ! हजार नेत्रवाले इन्द्रने आपके मुखकमलसे उदासन्न हो कर आपके कमलचरणके आश्चर्यमय सौन्दर्य्यको पान करते हुए ऐसी चिन्ता की—कि पहले अमृत पान करनेमें मुझको इस प्रकारका सुख नहीं मिला था। अत्यन्त समीप होनेके कारण सौन्दर्य अच्छी प्रकार नहीं दिखलाई पड़ता है, इससे भी अधिक आनन्द कुछ दूर होनेसे होगा। इसलिये स्वर्गमें जा कर निर्निमेष नयनसे रात्रि दिन तब तक दर्शन करूंगा, जब तक तृप्ति नहीं होगी, अतएव अपने स्थानको आ जाऊंगा।

इति स्वर्गगतस्यापि यावन्नेत्रैः श्रियः पते ॥ त्वत्तेजःपुञ्जपादाब्ज-
सौन्दर्यामृतपायिनः ॥ २८ ॥ तृष्णा शान्ताऽधुना नापि तस्मात्स्वर्गे स्थिरा
स्थितिः ॥ श्रीश ते पादसौन्दर्यं लेखानां महतामपि ॥२९॥ यद्येवं दुर्लभ-
मभूदितरेषां तु का कथा ॥ विष्णो ते पादरेखाणां माहात्म्यं लोकपावनम्
॥३०॥ विज्ञापनं करिष्यामि त्वपराधं क्षमस्व मे ॥

ऐसा समझ कर स्वर्गमें रहते हुए और सब नेत्रोंसे आपसे चरणकमलके सौन्दर्य्यका अमृतके पान करते हुएको अभी भी तृप्ति नहीं हुई, इसीलिये स्वर्गमें ही उनका स्थान स्थिर हुआ। हे लक्ष्मीपति ! आपके चरणकी शोभा वर्णन करता बड़े देवोंको भी इस प्रकार दुर्लभ हो गया तो औरोंकी क्या बात है ? हे विष्णु ! आपके चरणोंकी रेखाका माहात्म्य संसारको पवित्र करनेवाला है। मैं कुछ प्रार्थना करता हूं मेरे अपराधोंको आप क्षमा करेंगे ॥३१॥

पादमाहात्म्यश्रोतॄणां भक्तानां भक्तवत्सल ॥ ३१ ॥ महाज्ञानतमो
भित्त्वा कृत्वा ज्ञानप्रकाशनम् ॥ त्वन्मार्गदर्शनार्थाय चक्ररेखां पदेऽध-
रः ॥ ३२ ॥ पादमाहात्म्यमन्तॄणां साङ्गवेदचतुष्टयम् ॥ इतिहासपुराणानि
मन्त्रोपनिषदात्मिकाः ॥ ३३ ॥ सर्वविद्या ददानीति दररेखां पदेऽधरः ॥
पादमाहात्म्यध्यातॄणामुपद्रवकरान्खलान् ॥ ३४ ॥ दैत्यरक्षःपिशाचादीन्कू-
ष्माण्डब्रह्मराक्षसान् ॥ संचूर्णयामीति हरे गदारेखां पदेऽधरः ॥ ३५ ॥

हे भक्तवत्सल ! चरणोंके माहात्म्यके सुननेवाले भक्तोंके अज्ञानरूपी अन्धकारको नाश कर, ज्ञानके प्रकाशको फैला कर अपने मार्गको दिखलानेके लिये आपने अपने चरणोंमें चक्ररेखा धारण किया है। चरणके माहात्म्यके माननेवालोंको अङ्गोंके साथ चारों वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषदात्मक मन्त्र एवं सब विद्याओंको देंगे ऐसा विचार कर आप शङ्खरेखाको अपने चरणमें धारण किये हुए हैं। चरणके माहात्म्यके ध्यान करनेवालोंके लिये उपद्रव करनेवाले दुष्टों, दैत्यों, राक्षसों, पिशाचों, कुष्माण्डों एवं ब्रह्मराक्षसों इत्यादिका मर्दन कर दूंगा। ऐसा विचार कर आप गदा रेखाको चरणमें धारण किये हुए हैं ॥३५॥

पादमाहात्म्यवक्तॄणामुत्तमे मन्दिरे सदा ॥ पद्मया भार्यया साकं पद्म-

जेन सुतेन च ॥ ३६ ॥ कुटुम्बी पद्मनाभोऽहं वसामीत्येव सूचयन् ॥ पद्म-
रेखां पादपद्मे पद्मेश त्वं धरन्नसि ॥ ३७ ॥ विरजा मानससरो धनुष्कोटि-
र्महागदा ॥ गङ्गादिसर्वतीर्थानि त्वत्पादाब्जे वसन्ति हि ॥ ३८ ॥ सहस्रप-
त्रपूर्वाणि जायन्ते तेषु नित्यशः ॥ इति सूचयितुं पादे पद्मरेखां धरन्न-
सि ॥ ३९ ॥ पद्मा हृत्पद्मसंस्थापि पादपद्मस्य मूलगा ॥ पश्यन्तो नेत्रपद्मा-
भ्यां तत्सौन्दर्यमलौकिकम् ॥ ४० ॥ ध्यायन्तो च स्वहृत्पद्मे तन्माहात्म्यं
श्रुतोरितम् ॥ भजन्ती करपद्माभ्यामङ्केऽर्चनकरी सदा ॥ ४१ ॥ इति सूच-
यितुं पादे पद्मरेखां धरन्नसि ॥

चरणके माहात्म्यको कहनेवालोंके उत्तम मन्दिरमें, भार्या, लक्ष्मी, एवं पुत्र ब्रह्माके साथ कुटुम्बवाला मैं सदा निवास करूंगा, यह बताते हुए हे लक्ष्मीपति! आप अपने चरण कमलमें कमलरेखा धारण किये हुए हैं। विरजा, मानससरोवर, धनुष्कोटि, गदा, गङ्गा इत्यादि सब प्रसिद्ध प्रसिद्ध तीर्थ आपके चरण कमलमें वास करते हैं। उनमें कमल इत्यादि पुष्प प्रति दिन उत्पन्न होते हैं, यह बतानेके लिये आप चरणमें कमलरेखा धारण करते हैं। हृदयकमलमें रहनेपर भी लक्ष्मी चरणकमलोंके पास हो कर अपने नेत्रकमलोंसे उस अद्भुत सौन्दर्यको देखती है। वेदोंमें कहे हुए उसके माहात्म्यको अपने हृदयकमलमें ध्यान करती एवं अपने हस्तकमलोंसे उसको अपनी गोदमें रख कर सेवा करती है। यह बतानेको आप अपने चरणमें कमलरेखाको धारण किये हुए हैं ४१॥

पादपङ्कजमाहात्म्यं लिखित्वैव स्वहस्ततः ॥ ४२॥ दातृणां वैष्णवा-
द्येभ्यो महाघौघविभेदनम् ॥ करोमीति ज्ञापनाय पद्मरेखां पदेऽधरः ॥ ४३।
माहात्म्यस्यार्चकानां तु गजान्कामादिसंज्ञितान् ॥ अदम्यान्दमयानीति
ह्यङ्कुशाख्यां पदेऽधरः ॥४४॥ श्रुत्वाऽऽदरेण सन्तुष्टान्भक्तान्ध्वजवदुच्छ्रि-
तान् ॥ करोमीति ज्ञापनाय ध्वजरेखां पदेऽधरः ॥ ४५ ॥

चरण कमलके माहात्म्यको अपने हाथसे लिख कर देनेवालों वैष्णवोंके महापापके समूहको नाश करूंगा ऐसे बतानेके लिये आप अपने चरण कमलमें वज्र रेखा धारण किये हुए हैं। चरणकमलके माहात्म्यका पूजन करने वालोंके काम इत्यादि शत्रुरूपी दुर्दम हाथीको दमन करूंगा, ऐसा जान कर आप चरणमें अङ्कुश रेखा धारण किये हुए हैं। आदरपूर्वक सुन कर सन्तुष्ट होनेवाले भक्तोंको ध्वजाके समान ऊंचा करूंगा, यह बतानेके लिये आप चरणमें ध्वज रेखाको धारण किये हुए हैं ॥४५॥

अयमन्यनिलखाहङ्कृन्महत्तत्त्वगुणत्रयैः ॥ क्रमाद्दशगुणैरण्डमावृत्तं पर-

माद्भुतम् ॥ ४६ ॥ यन्नखाग्राद्विनिर्भिन्नं त्वत्पादं को नु वर्णयेत् ॥ शेषो
महत्तपस्तप्त्वा त्वामाराध्य जगत्पतिम् ॥ ४७ ॥ त्वत्प्रसादान्महद्भाग्यं यत
आप सुदुर्लभम् ॥ शय्यासनं पादुके तदातपत्रमभूत्तव ॥ ४८ ॥

क्रमसे दस गुना जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्व एवं सत्त्वादि तीनों गुणसे आवृत्त, यह अद्भुत ब्रह्माण्ड जिनके नखके अग्रभागसे उत्पन्न हुए हैं उस चरणका कौन वर्णन कर सकता है। शेषने अत्यन्त तपस्या करके, आप संसारके स्वामीकी आराधना करके आपकी कृपासे दुर्लभ बड़े भाग्यको पाया। तब वे आपकी शय्या, पादुका और छत्र हो गये॥४८॥

तत्सुखं तु रमा दृष्ट्वा मेने शेषैकभाजनम् ॥ अहमेवानुभोक्ष्यामि
मत्पतेरङ्गसङ्गजम् ॥ ४९ ॥ आतपत्रेण यत्प्राप्तं पादुकाभ्यां च यत्सुखम् ॥
सर्वभाग्यं ममैव स्यादिति वक्षःस्थितापि सा ॥ ६० ॥ वैकुण्ठादिषु लोकेषु
चतुर्दशसु वै तदा ॥ ब्रह्माण्डान्तर्बहिश्चापि सर्वहृत्कमलेष्वपि ॥ ६१ ॥ म-
द्धृत्पद्मे यदा यत्र वर्तते तत्र तत्र हि ॥ क्रीडावनमभून्मन्दवायुगन्धादिरञ्जि-
तम् ॥ ६२ ॥ मल्लिकाकेतकीजातिचम्पकैः कुसुमान्वितैः ॥ खर्जूरपनसद्रा-
क्षाकदलीनारिकेलकैः ॥ ६३ ॥ बदरीमातुलङ्गैश्च कपित्थैश्चूतदाडिमैः ॥ ज-
म्बूजम्बीरकमुकप्रमुखैः फलनायकैः ॥ ६४ ॥ पारिजातैः कल्पवृक्षैर्नित्यं तु
फलसान्द्रकैः ॥ श्रीचन्दनेक्षुमन्दारैः सङ्कुलं मधुकादिभिः ॥ ६५ ॥
तस्मिन्सरः स्वच्छनीरं स्वर्णसोपानमण्डितम् ॥ नवरत्नाभकमलैः सुव-
र्णाभकुशेशयैः ॥ ६६ ॥ पीतवर्णोत्पलैश्च रक्तनीलोत्पलान्वितम् ॥ म-
त्स्यकच्छपहंसाढ्यं मत्तषट्पदनादितम् ॥ ६७ ॥ तत्र रत्नमयं क्रीडामण्डपं
साऽभवद्रमा ॥ दिव्यं रत्नमयं तेजःपुञ्जपीठमभून्मुदा ॥ ६८ ॥

उनके सुखको देख कर लक्ष्मीजीने शेषको ही उसका पात्र समझा और विचार किया कि अपने पतिके अङ्गके संगसे उत्पन्न सुखको मैं भी भोगूंगी। छत्र और पादुकासे जो सुख प्राप्त हुआ है, वह सब मेरा ही होना चाहिये। ऐसा विचार कर लक्ष्मीने आपके वक्षस्थलमें स्थान ग्रहण किया। तब वैकुण्ठ आदि चौदहों लोकोंमें, ब्रह्माण्डके भीतर और बाहरमें भी, सबके हृदय कमलोंमें भी, एवं मेरे हृदय कमलमें, जहां कहीं भी आप हैं, सर्वत्र वह लक्ष्मीजी सुगन्धयुक्त मन्द वायुसे पूर्ण, मल्लिका, केतकी, जाती, चम्पा इत्यादि श्रेष्ठ फूलोंसे युक्त, खजूर, कटहल, दाख, केला, नारियल, बेर, मातुलुङ्ग, कैथ, आम्र, अनार, जामुन, जम्बीर (बिजौरा) इत्यादि श्रेष्ठ फलोंसे युक्त, पारिजात,

कल्पवृक्ष, (सदा फलसे युक्त) तथा श्रीचन्दन, बेल, मन्दार मधूक इत्यादिकोंसे पूर्ण जो क्रीड़ा वन है, उसमे जो स्वच्छ जलवाला, स्वर्ण सोपानसे शोभित, नवरत्नोंके प्रकाशवाले कमलों, स्वर्णके प्रकाशवाले कुशाओं, पीले, लाल और नीले कमलोंसे पूर्ण, मत्स्य, कच्छप और हंसोंसे परिपूर्ण, मत्त भौरोंसे शब्दायमान, तालाब है उसमें रत्नमयी सुन्दर क्रीड़ा मण्डपरूपमें एवं वहां आनन्दसे अद्भुत, रत्नजडित, तेजसमूहके पीठ (पीढ़ा) रूपमें हो गई ॥ ५८ ॥

तत्र त्वामर्चयन्त्यम्बा षोडशाद्युपचारकैः ॥ पायसान्नव्यञ्जनादिप-
ञ्चभक्ष्यामृतानि च ॥ ५९ ॥ नूतनानि पवित्राणि नानारुचिफलानि च ॥
आर्द्रकादीनि मूलानि स्वादूनि स्वर्णपात्रके ॥ ६० ॥ नित्यतृप्ता याऽर्पयन्ती
पूर्णकामाय चादरात् ॥ निरङ्कुसर्वसाराय सर्वसारात्मिका स्वयम् ॥ ६१ ॥
अथात्मानं कल्पयन्ती दोलामच्चं मनोहरम् ॥ सुवर्णशृङ्खलालम्बं सु-
विशालं सुलक्षणम् ॥ ६२ ॥ प्रवालपादसंयुक्तं सुवज्रफलकैर्युतम् ॥ ओतं
प्रोतं स्वर्णपट्टैर्माणिक्यस्तबकैर्युतम् ॥६३॥ जाम्बूनदवितानाढ्यं मुक्तास्तब-
करञ्जितम् ॥ भूरूपाऽभूत्स्वयं शय्या श्रीरूपा सोपबर्हणम् ॥६४॥ नीलाऽभू-
त्पादसेवार्थं ताम्बूलं भोगसाधनम् ॥ सुवर्णदण्डव्यजनं विद्युदाभसुचाम-
रे ॥ ६५ ॥ वैडूर्यस्तबकच्छत्रं पादुके रत्नपीठके ॥ सर्वराजोपचारौघा राज-
चिह्नानि यानि च ॥ ७६ ॥ सर्वाण्यभूद्रमा देवी देवायानन्ततेजसे ॥

वहांपर लक्ष्मी माता आपको षोडश उपचारोंसे पूजा करती हुई और पायस अन्न, व्यञ्जन इत्यादि पांच प्रकारके अमृतके समान भोजन, नये और पवित्र अनेको स्वादु फल, आर्द्रक आदि सुस्वादु मूल, सोनेके पात्रोंमें आदरसे नित्यतृप्त, पूर्णकाम निरहङ्कार, सर्वसार, आपको वह सर्वात्मिका स्वयं अर्पण करती हुई है, अपनेको सोनेके जंजीरसे लटकने हुए, सुन्दर लक्षणवाला, सुविशाल, मूंगेके पायेसे संयुक्त, वज्रके दण्डसे युक्त सुवर्णको पट्टियोंसे पिरोया हुआ, स्वर्णवितानके चन्दोवेसे शोभित माणिक्य और मुक्ताके झालरसे शोभित, मनोहर झूलारूपमें एवं अपनेको परिणत करती हुई स्वयं धरणीरूपसे शय्या, लक्ष्मीरूपसे तकिया एवं नीलारूपसे चरणसेविका हो गयीं और भोगका साधन ताम्बूल, स्वर्णकी छड़ी, व्यजन (पंखा) बिजलीकी चमकवाला सुन्दर चमर, वैडूर्यके झालरसे युक्त छत्र, रत्नोंके पीठवाला पादुका इत्यादि रूपमें, जो राजाके उपयुक्त राजचिन्ह हैं, उन अनन्त तेजवाले देवताके लिये वह स्वयं सब रूपमें हो गईं ॥६७॥

भोग्यवस्तुस्वरूपेण तव सेवाभिलाषिणी ॥ ६७ ॥ महानन्दाम्बुधौ
मग्ना रमते सा रमा त्वया ॥ रमसे रमयैव त्वं वैकुण्ठादिषु धामसु ॥६८॥
प्रत्येकावरणैः स्वस्वमूर्तिभिर्ब्रह्मपूर्वकैः ॥ त्रिदशैर्दशदिक्पालैः सेवितः पर-

मासने ॥ ६९ ॥ श्रीनिवास रमानाथ त्वन्नाभ्यब्जे चतुर्मुखम् ॥ गिरीशम-
न्तःकरणे ह्यङ्गेष्विन्द्रादिदेवताः ॥७० ॥ ऋष्यादींश्च यथावत्त्वं सर्वजीवांश्च-
तुर्विधान् ॥ सृष्ट्वा तेष्वन्तराविश्य बहिः स्थित्वासि पालकः ॥ ७१ ॥

भे रम्य वस्तुके स्वरूपसे आपकी सेवाकी इच्छा करनेवाली वह लक्ष्मी महा आनन्दके समुद्रमें मग्न हो कर आपके साथ रमण करती हैं, वैकुण्ठ इत्यादि धामोंमें ब्रह्मा इत्यादि देवताओंकी अपनी अपनी मूर्तियोंसे, एवं दश दिक्पालोंसे, प्रत्येक आवरणसे अपने आसन पर सेवित हो कर आप लक्ष्मी ही के साथ रमण करते हैं। हे श्रीनिवास लक्ष्मीपति! आपकी नाभिमें ब्रह्मा, अन्तः करणमें शिव, अङ्गोंमें इन्द्रादि देवताओं तथा ऋषि इत्यादि चार प्रकारके जीवोंको यथावत् रच कर उनके भीतर प्रवेश कर बाहर बैठ कर उनका पालन करते हैं॥ ७१ ॥

अत्यन्तभिन्नास्ते सर्वे पृथक्जीवा जडात्मकाः ॥ पारतन्त्र्यादिदोषो-
ज्झः स्वातन्त्र्यादिगुणोर्जितः ॥ ७२ ॥ निरपेक्षो नित्यतृप्तः पूर्णकामस्त्वमा-
र्तिहृत् ॥ सत्यकृत्सत्यसङ्कल्पो माब्रह्मेशेन्द्रवन्दितः ॥ ७३ ॥ सर्वेषां प्रेर-
कस्त्वं हि मुक्तामुक्तनियामकः ॥ अघट्यघटने शक्तो ह्यगण्यगुणमण्डि-
तः ॥ ७४ ॥ अचिन्त्याश्चर्यचर्यस्त्वं ब्रह्माण्डान्तर्बहिःस्थितः ॥ अणोरणी-
यान्महतो महीयान्सर्वज्ञः सर्वगः समः ॥७५॥ सर्वाधारः सर्वसाक्षी सर्वा-
पेक्ष्योऽतिसुन्दरः ॥ सर्वोत्तमश्च सर्वज्ञः सर्वस्वामी च सर्वदः ॥ ७६ ॥
सर्वशक्तिर्ज्ञेयचर्यो व्यक्ताऽव्यक्तः सनातनः॥ शेषोऽशेषश्च निर्लिप्तो ब्रह्मण्यः
शाश्वतः शुभः ॥ ७७ ॥ चतुर्वर्णैः सदा हीनश्चतुर्धर्मप्रदर्शकः ॥ चतुःपुम-
र्थदाता च चतुर्मोक्षप्रदः श्रुतः ॥ ७८ ॥ अधोक्षजोऽप्राकृतस्त्वमनन्तमहिमा
तपः ॥ मूलरूपो ह्यनन्तस्त्वमवतारास्तथा श्रुताः ॥ ७९ ॥ नामधेयान्यन-
न्तानि ज्ञानानन्दादयो गुणाः ॥ अनन्तवेदवेद्यस्तैरवेद्योऽनन्तसौख्य-
दः ॥ ८० ॥

आपमें अत्यन्त भिन्न ये सब जीव, जड़ात्मक हैं, आप परतन्त्रता आदि दोषोंसे मुक्त, स्वतन्त्रता इत्यादि [illegible]से युक्त, निरपेक्ष, नित्यतृप्त, पूर्णकाम, दुःखका नाश करने वाले, सत्यकाम, सत्यसंकल्प, रमा, ब्रह्मा, शिव [illegible]से वन्दित हैं। आप ही सब किसीके प्रेरक, मुक्त और बद्धके नियामक, अघटनको घटित करनेमें समर्थ, अनन्त [illegible]न शोभित हैं। अचिन्त्य, आश्चर्यको करनेवाले, ब्रह्माण्डके भीतर और बाहर रहनेवाले, अणुसे छोटे, बड़ेसे भी [illegible], सब कुछ जाननेवाले, सर्वव्यापक, एकरूप, सबके आधार, सबके साक्षी, सबसे सुन्दर, सबसे उत्तम, सब कुछ [illegible]ननेवाले, सबके स्वामी, सब कुछ देनेवाले, सर्वशक्तिमान, जानने योग्य चरित्रवाले, अप्रकट, शुभ, सनातन, शेष, अशेष

निरिम, अलण्य, अविनाशी, शुभ, चारों वर्णोंसे रहित, चारों धर्मोंके दिखानेवाले, चारों पुरुषार्थको देनेवाले, चारों मुक्तिको देनेवाले, प्रसिद्ध, इन्द्रियोंसे परे, अकृत अनन्त महिमावाले, तप, अधोक्षज, मूलरूप, अनन्त प्रसिद्ध अवतारवाले, अनन्त नामवाले, ज्ञान आनन्द आदिवाले, अनन्त वेदोंसे जानने योग्य, उनसे नहीं जानने योग्य, तथा अनन्त सुखको देनेवाले, सब आप ही हैं ॥ ८० ॥

अहो भाग्यमहो भाग्यं रमेश त्वत्पदाम्बुजे ॥ निविष्टमनसां सौख्य-
मिहामुत्राभिवर्धते ॥ ८१ ॥ तव प्रसादलेशस्य लेशलेशातिलेशतः ॥ ल-
वमात्रं यैः सुलब्धं तैरलब्धं न किञ्चन ॥ ८२ ॥ चरित्राण्यतिचित्राणि म-
हान्ति च बहून्यपि ॥ तव नानावतारेषु दर्शयस्यनुवर्तिनाम् ॥८३॥ कीटो-
ऽपि त्वद्दयालेशात्साम्राज्यमनुभुक्तवान् ॥ त्वत्पादपद्मसम्पर्कलेशलेशातिले-
शतः ॥८४॥ शिला दिव्याङ्गनाऽभूद्धि मनुष्याणां तु किं ब्रुवे ॥ अत एवा-
र्जुने सूतो बलेश्च द्वारपो ह्यभूः ॥ ८५ ॥

हे लक्ष्मीपति ! अहो भाग है ! अहोभाग्य है ! आपके चरणकमलमें लगाए हुए मनवालोंका सुख इस लोक और परलोकमें भी बढ़ता है । आपकी प्रसन्नताके लेश, उसका भी लेश, उसका अत्यन्त थोड़ा लवमात्र लेशांश जिनको कुछ भी मिलता है उनको मिलनेका बाकी कुछ नहीं रह जाता । आप अपने अनेकों अवतारोंमें अपने भक्तोंको अत्यन्त विचित्र, बहुतसे बड़े बड़े चरित्र दिखलाते हैं । कीड़ेने भी आपकी प्रसन्नताके लेशसे साम्राज्य भोग किया है और आपके चरणकमलके सम्पर्कके अत्यन्त ही थोड़ा लेशसे पत्थर भी दिव्य स्त्री हो गई । मनुष्योंकी क्या कहूं । इसलिये आप अर्जुनके सारथी एवं बलिके द्वारपाल हुए ॥ ८५ ॥

इन्द्रे त्वं दययात्यन्तं बलिं याचितवानपि ॥ गजेन्द्ररक्षणे दूतान्द्वा-
रपान्वाप्यनादिशन् ॥ ८६ ॥ अन्वधावः स्वयं शीघ्रं क्षुद्रनक्रोन्मुमुक्षया ॥
वैकुण्ठं वा परित्यक्ष्ये न भक्तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ८७ ॥ अतिप्रिया हि मे
भक्ता इति सङ्कल्पवानसि ॥

इन्द्र पर अत्यन्त दया करके बलिसे आपने याचना की, गजेन्द्रकी रक्षा करनेके लिये दूतों अथवा द्वारपालको आज्ञा नहीं देते हुए स्वयं ही छोटे ग्राहसे मुक्तिकी इच्छासे दौड़े । "वैकुण्ठको मैं छोड़ सकता हूं किन्तु भक्तोंको नहीं छोड़ सकता । मेरे भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय हैं" ऐसा आपका संकल्प है ॥ ८८ ॥

कामधेनुः कल्पवृक्षश्चिन्तामणिरिति त्रयम् ॥ ८८ ॥ चेद्भदेश त्वमे-
वासि शेषागे सर्वदानतः ॥ ददाति कामानन्नादीन्मणिर्धेनुश्च पादपः ॥८९॥

न चापवर्गं स्वर्गं वा तेषां शक्तिश्च तादृशी॥ यदि त्वं सुप्रसन्नोऽसि सर्वार्थान्सम्प्रदास्यसि ॥ ९० ॥

हे वेङ्कटेश ! कामधेनु, कल्पवृक्ष, और चिन्तामणि आप ही हैं। श्रीवेङ्कटाचल पर सबको देनेसे आप ही कामधेनु चिन्तामणि एवं कल्पवृक्ष हैं, ये तीनों काम एवं अन्नादि भोग वस्तुको देते हैं, और मुक्ति तथा स्वर्ग नहीं देते हैं। उनकी शक्ति इतनी ही है, किन्तु यदि आप प्रसन्न होते हैं तो सब कुछ दे सकते हैं ॥ ९० ॥

जात्यन्धानां च चक्षूंषि रासि त्वं मूर्तिदर्शनात् ॥ श्रोत्राणि बधिराणां च त्वत्कथाश्रवणात्तथा ॥ ९१ ॥ अनेडमूकं वाचालं करोष्यध्ययनान्वितम् ॥ मन्दबुद्धिं प्राज्ञतमं साङ्ख्ययोगसमाधिगम् ॥ ९२ ॥ अकरं च करौ दत्त्वा करोषि तव पूजकम् ॥ अपदं च पदौ दत्त्वा त्वत्तीर्थक्षेत्रगामिनम् ॥ ९३ ॥ यद्यद्दुःखं भवेद्भक्ते तत्तत्सद्यो हरिष्यसि ॥ कुब्जत्वकुष्ठनानारोगानप्याभिचारिकान् ॥ ९४ ॥ हृत्वा ददास्यङ्गदार्ढ्यं सौन्दर्यं च दयोदधे ॥

आपकी मूर्तिके दर्शनसे जन्मान्ध को नेत्र, और आपकी कथाके श्रवण करनेसे बधिरोंको श्रवण आप देते हैं। जन्मके मूक (गूंगे) को वाचा शक्तिशाली (बोलनेवाला) मूर्खको प्रकाण्ड पण्डित, मन्दबुद्धिको साङ्ख्ययोगके समाधिको जाननेवाला बुद्धिमान बनाते हो, बिना हाथवालेको हाथ देकर अपना पूजक, एवं बिना पैरवालेको पैर देकर अपने तीर्थोंमें गमन करनेवाला बना देते हो। भक्तके जो जो दुःख हो उसे साक्षात् हरण कर लेते हो, कुबड़ापन, कुष्ठ, नाना प्रकारके रोग, अभिचार (मन्त्रोंके द्वारा दिये हुए दुःख) को हरण कर हे दयानिधि ! उन अङ्गोंको दृढ़ता और सुन्दरता देते हो ॥९५॥

श्रीनिवास बहूक्त्या किं भक्तसर्वार्तिनाशने ॥ ९५ ॥ सर्वार्थपूरणे चापि त्वत्समोऽण्डे न कुत्रचित् ॥ प्रसन्नो नीलमेघस्त्वं श्रीभूविद्युत्समन्वितः ॥९६॥ हृद्व्योमगह्निनापन्नो भक्तसर्वेष्टवार्षुकः ॥ अभीष्टाष्टमवाराशौ निमज्जोन्मज्जनं चरन् ॥९७॥ आनन्दाष्टमसुद्वीपे संस्थापयसि चादरात् ॥ सर्वसौख्यं ददास्यत्र स्वमुक्तानन्दवृद्धिदः ॥ ९८ ॥

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये भगवद्गुण-
कथानुवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

हे श्रीनिवास बहुत कहनेसे क्या ? भक्तोंके सब दुःखोंके नाश करने, सब कार्मोंको पूर्ण करनेमें भी आपके समान ब्रह्माण्डमें कहीं भी कोई नहीं है। प्रसन्न होने पर लक्ष्मी और धरणीरूपी बिजुलीसे युक्त, हृदयरूपी आका-

शर्में रह कर तीनों तापोंको नाश करनेवाले, भक्तोंकी सब इच्छाओंको बरसानेवाले आप नील मेघ हैं. और आप अभीष्टरूपी आठवां समुद्रमें गोता लगाये हुएको निकाल कर आनन्दरूपी आठवें द्वीपमें आदरसे स्थापन करते हैं, एवं यहांपर स्वर्ग और मुक्तिके आनन्दको बढ़ानेवाले आप, उसको सब सुख देते हैं ॥६८॥

इति द्वितीयोऽध्यायः

तृतीयोऽध्यायः



देवशर्म द्विजराज कृत, स्तुति अपूर्व उल्लेख।
श्री निवास भगवानका, परम अनूपम देख ॥ १ ॥
नाम मन्त्र महिमा विभव, भगवत गुणसे पूर।
इस तृतीय अध्यायमें, भक्ती रस भर पूर ॥ २ ॥

अथ देवशर्मकृतश्रीश्रीनिवासस्तुतिः

देवशर्मोवाच—

अनन्तवेदसंवेद्य लक्ष्मीनाथान्तकारण ॥ ज्ञानानन्दैश्वर्यपूर्ण नमस्ते करुणाकर ॥ १ ॥ नक्षत्राणि च गण्यन्ते पांसवश्च क्षणादयः ॥ त्वद्वीर्याणि न गण्यन्ते ब्रह्मणा रमयापि वा ॥२॥ तथाप्यहं भक्तदासदासदासो यथामति ॥ स्तौमि त्वां वेङ्कटाधीश त्वद्भक्तः प्रेरितस्त्वया ॥ ३ ॥ श्रीवेङ्कटेश मत्स्वामिन्ज्ञानानन्द दयानिधे ॥ भक्तवत्सल भो विश्वकुटुम्बिन्नधुनाऽव माम् ॥ ४ ॥

देवशर्मा बोले– हे अनन्त ! वेदसे जानने योग्य ! लक्ष्मीपति ! अन्तके कारण ! ज्ञान, आनन्द और ऐश्वर्यसे पूर्ण ! दयासिन्धु ! आपको प्रणाम है। नक्षत्र, पृथ्वीकी धूलि एवं क्षण इत्यादि गिने जा सकते हैं किन्तु आपके वीर्य एवं पराक्रम ब्रह्मा और लक्ष्मीसे भी नहीं गिने जा सकते हैं। तथापि आपके द्वारा प्रेरित हो भक्तोंके दासका

दास मैं, हे वेङ्कटेश ! आपकी स्तुति करूंगा । हे श्रीवेङ्कटेश ! मेरे स्वामी ! ज्ञान, आनन्द और दयाके समुद्र ! भक्तवत्सल ! संसाररूप कुटुम्बवाले ! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

सत्येशं सत्यसङ्कल्पं सत्यं सत्यव्रतं हरिम् ॥ सत्यचर्यं सत्ययोनिं सत्यशीर्षमहं भजे ॥ ५ ॥ श्रवणात्सर्वपापघ्नं मननात्पुण्यवर्धनम् ॥ ध्यानात्सिद्धिदं विष्णुं प्रेक्षणान्मोक्षदं भजे ॥ ६ ॥ श्रीवेङ्कटेशं लक्ष्मीशमनिष्टघ्नमभीष्टदम् ॥ चतुर्मुखात्मतनयं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ७ ॥ यदपाङ्गलवेनैव ब्रह्माद्याः स्वपदं ययुः ॥ महाराजाधिराजं त्वां श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ८ ॥

सत्यके ईश, सत्यसंकल्प, सत्यसत्यव्रत हरि, सत्य, चरित्रवाले, सत्ययोनि, तथा सत्यशीर्षका मैं भजन करता हूं । श्रवणसे सब पापोंका नाश करनेवाले, मनन करनेसे पुण्यको बढ़ानेवाले, ध्यान करनेसे सिद्धिके देनेवाले, तथा दर्शन करनेसे मोक्षके देनेवाले आप विष्णुको मैं भजता हूं । श्री वेङ्कटेश, लक्ष्मीपति, अनिष्टके नाश करनेवाले, अभीष्टके देनेवाले, एवं ब्रह्मा जैसे पुत्रवाले, आप श्री निवासका मैं सदा भजन करता हूं । जिनकी कृपाकटाक्षके लेशमात्रसे ब्रह्मा आदि अपने अपने पदको प्राप्त हुए उन महाराजाओंके अधिराज आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं ॥ ८ ॥

अनन्तवेदसंवेद्यं निर्दोषं गुणसागरम् ॥ अतीन्द्रियं नित्यमुक्तं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ९ ॥ स्मरणात्सर्वदोषघ्नं श्रवणादिष्टवर्षिणम् ॥ दर्शनान्मुक्तिदं वीरं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ १० ॥ अशेषशयनं शेषशयनं शेषशायिनम् ॥ शेषाद्रीशमशेषं च श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ११ ॥ भक्तानुग्राहकं विष्णुं सुशान्तं गरुडध्वजम् ॥ प्रसन्नवक्त्रनयनं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ १२ ॥

अनन्त वेदसे जानने योग्य, निर्दोष, गुणके समुद्र, इन्द्रियोंसे परे तथा नित्यमुक्त आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं । स्मरण करनेसे सब दोषोंको नाश करनेवाले, श्रवण करनेसे सब इच्छाओंको पूरा कर देनेवाले, दर्शन करनेसे मुक्ति देनेवाले, एवं वीर श्रेष्ठ आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं । सबमें रहनेवाले, शेषकी शय्यावाले, शेषपर शयन करनेवाले, शेषाचलके स्वामी एवं सर्वस्वामी, आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं । भक्तों पर अनुग्रह करनेवाले, विष्णु, शान्त, गरुड़ध्वज, तथा प्रसन्नमुख और विशालनेत्रवाले आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं ॥ १२ ॥

भक्तभक्तिसुपाशेन बद्धसत्पादपङ्कजम् ॥ सनकादिध्यानगम्यं श्री·

निवासं भजेऽनिशम् ॥ १३ ॥ गङ्गादितीर्थजनकपादपद्मं सुतारकम् ॥ शङ्खचक्राभयकरं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ १४ ॥ सुवर्णमुखितीरस्थं सुवर्मेध्यं सुवर्णदम् ॥ सुवर्णाभं सुवर्णाङ्गं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ १५॥ श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीलोकं श्रीकरग्रहम् ॥ श्रीमन्तं श्रीनिधिं श्रीड्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ १६ ॥

भक्तोंकी भक्तिरूपी सुन्दर धाराते बंधे हुए चरणकमलवाले और सनकादिकोंके ध्यानसे गम्य आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। गङ्गादिको उत्पन्न करनेवाले, चरणकमलोंवाले विशेषरूपसे तारनेवाले, तथा हाथोंमें शङ्ख, चक्र और अभय धारण किये हुए आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। सुवर्णमुखरीके तीरपर स्थित, स्वर्गमें भी पवित्र, सुवर्णको देनेवाले, सुवर्णकी चमकवाले तथा सुवर्णशरीर आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। श्रीवत्ससे शोभित वक्षस्थलवाले, लक्ष्मीके पति, लक्ष्मीके दर्शनीय, लक्ष्मी का पाणिग्रहण करनेवाले श्रीमान्, श्रीनिधि एवं लक्ष्मीसे स्तुति किये जानेवाले, आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं ॥ १६ ॥

वैकुण्ठवासं वैकुण्ठत्यागं वैकुण्ठसोदरम् ॥ वैकुण्ठदं विकुण्ठाजं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ १७ ॥ वेदोद्धारं मत्स्यरूपं स्वच्छाकारं यदृच्छया ॥ सत्यव्रतोद्धरं सत्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥१८॥ महागाधजलाधारं कच्छपं मन्दरोद्धरम् ॥ सुन्दराङ्गं च गोविन्दं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ १९ ॥ वरं श्वेतवराहाख्यं संहृत्य धरणीहरम् ॥ दंष्ट्राकृतधरोद्धारं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ २० ॥

वैकुण्ठमें रहनेवाले, वैकुण्ठको छोडनेवाले, वैकुण्ठके भ्राता, वैकुण्ठ देनेवाले एवं विकुण्ठामें जन्म लेनेवाले आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। वेदोंके उद्धारक, मत्स्यरूप, अपनी इच्छासे स्वच्छ आकारवाले, सत्यव्रतोंका उद्धार करनेवाले, तथा सत्य आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। अत्यन्त अगाध जलके आधार मन्दराचलको धारण करनेवाले, सुन्दर शरीरवाले कच्छपरूप, गोविन्द, आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। श्रेष्ठ, श्वेतवराह रूपी हो कर पृथ्वीको हरण करनेवाला हिरण्याक्षका वध करके दांतोंसे पृथ्वीका उद्धार करनेवाले आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं ॥ २० ॥

प्रह्लादाह्लादकं लक्ष्मीनृसिंहं भक्तवत्सलम् ॥ दैत्यमत्तेभदमनं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ २१ ॥ वामनं वामनं पूर्णकामं वामनमाणवम् ॥ मायिनं बलिसंमोहं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ २२ ॥ इन्द्वाननं कुन्ददन्तं

कुराजघ्नं कुठारिणम् ॥ सुकुमारं भृगुऋषेः श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥२३॥ श्रीरामं दशदिग्व्याप्तं दशेन्द्रियनियामकम् ॥ दशास्यघ्नं दाशरथिं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥२४ ॥

दैत्यरूप मत्त हाथीको दमन करनेवाले, प्रह्लादको आनन्द देनेवाले, लक्ष्मी नृसिंह, भक्तवत्सल और आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। वामनरूप, मोहन करनेवाले, ब्रह्मचारी, मायावी तथा बलिको मोहनेवाले आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। चन्द्रमाके समान मुखवाले, कुन्दके समान दांतवाले, दुष्ट राजोंको मारनेवाले, कुठार धारण करनेवाले आप भृगुऋषिके पुत्र श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। दशो दिशाओंमें व्याप्त, दशो इन्द्रियोंको दमन करनेवाले, दशमुखको मारनेवाले और दशरथके पुत्र श्रीरामरूपी आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं ॥ २४॥

गोवर्धनोद्धरं बालं वासुदेवं यदूत्तमम् ॥ देवकीतनयं कृष्णं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ २५ ॥ नन्दनन्दनमानन्दमिन्द्रनीलं निरञ्जनम् ॥ श्रीयशोदायशोदं च श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥२६॥ गोबृन्दावनगं बृन्दावनजं गोकुलाधिपम् ॥ उद्गायं जगन्मोहं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥२७ ॥ पारिजातहरं पापहरं गोपीमनोहरम् ॥ गोपीवस्त्रहरं गोपं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ २८ ॥

गोवर्द्धनको धारण करनेवाले, बालक, यदुवंशमें श्रेष्ठ एवं देवकीके पुत्र कृष्णरूप आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। नन्दके नन्दन, आनन्द, इन्द्रनील, निरञ्जन तथा श्रीयशोदाके यशको देनेवाले आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। गौओंके समूहको वनमें ले जानेवाले, बृन्दावनमें रहनेवाले, गोकुलके स्वामी, वंशी बजानेवाले और संसारको मोहनेवाले विश्वरूप आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। पारिजातको हरण करनेवाले, पापको हरण करनेवाले, गोपियोंके मनको हरण करनेवाले एवं गोपियोंके वस्त्रोंको हरण करनेवाले, गोपवेष आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं ॥२८॥

कंसान्तकं शंसनीयं संशान्तिं संसृतिच्छिदम् ॥ संशयच्छेदिसंविल्कं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ २९ ॥ कृष्णापतिं कृष्णगुरुं कृष्णामित्रमभीष्टदम् ॥ कृष्णात्मकं कृष्णसखं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ३० ॥ कृष्णाहिमर्दनं कृष्णं कृष्णोपवनलोलुपम् ॥ कृष्णातातं महोत्कृष्टं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ३१ ॥ बुद्धं सुबोधं दुर्बोधं बोधात्मानं बुधप्रियम् ॥ विबुधेशं बुधैर्बोध्यं श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ३२ ॥

कंसको मारनेवाले, प्रशंसाके योग्य, शान्तिको देनेवाले, संसार बन्धनसे छुड़ानेवाले, संशयको नाश कर ज्ञान देनेवाले आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। कृष्णा (नीला) के स्वामी, कृष्ण (अर्जुन) के गुरु, कृष्णा (द्रौपदी) मित्र अभीष्ट देनेवाले, कृष्णस्वरूप तथा कृष्ण (अर्जुन) के सखा आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। काल सर्पको मर्दन करनेवाले, कृष्ण श्यामवनके लोभी एवं कृष्णा (द्रौपदी) के पिता (रक्षक) अत्यन्त उत्तम आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। बुद्धके अवतार, ज्ञानी, कठिनतासे जानने योग्य, बोधस्वरूप, बुद्धिमानोंके प्रिय, देवताओंके स्वामी और विद्वानोंके जानने योग्य आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं ॥३२॥

कल्किनं तुरगारूढं कलिकल्मषनाशनम् ॥ कल्याणदं कलिघ्नं च
श्रीनिवासं भजेऽनिशम् ॥ ३३ ॥ हरिं हंसं कृष्णं नरहरिमनन्तं मधुरिपुं
हृषीकेशं यज्ञं कपिलमृषभं वाजिवदनम् ॥ नरं व्यासं नारायणमनघमात्मा-
नममृतं भजे दत्तात्रेयं पुरुषमथ धन्वन्तरिमपि ॥ ३४ ॥

कल्किस्वरूप, घोड़ेपर चढे हुए, कलिके दोषको नाश करनेवाले, कल्याणके देनेवाले एवं कलिको नाश करनेवाले आप श्रीनिवासका मैं सदा भजन करता हूं। हरि, हंस, कृष्ण, नृसिंह, अनन्त, मधुसूदन, हृषीकेश, यज्ञ, कपिल, ऋषभ, हयग्रीव, नर, नारायण, व्यास, निष्पाप, आत्मा, अमृत, दत्तात्रेय धन्वन्तरिरूप आपका भी मैं सदा भजन करता हूं ॥३४॥

अनन्तरूपत्वमनन्तवीर्यमनन्तवेदैरनुवर्णनीयम् ॥ अनन्तनामानमन-
न्तदेवमनन्तकल्याणगुणाभिरामम् ॥ ३५ ॥ अनन्तशक्त्यंशमनन्तविक्रमं
ह्यनन्तदेहे च शयानमीश्वरम् ॥ अनन्तसौभाग्यमनन्तनेत्रमनन्तपादादिम-
नन्तसौख्यम् ॥३६॥ असुराचलौघहरचक्रधरं दुरिताचलौघहरवज्रधरम् ॥
करुणाचलौघभरचित्तवरं कनकाचलौघदरपद्मकरम् ॥ ३७ ॥ भुवनेषु वेङ्कटे-
श्वर बहुपुरुषार्थप्रदाननिपुणस्त्वम् ॥ नो चेद्व्यस्ततया त्वं बहून्नताद्रिस्थले
कुतो वससि ॥ ३८ ॥

अनन्त रूपको धारण करनेवाले, अनन्त चरित्रवाले, अनन्त वेदसे वर्णन करने योग्य, अनन्त नामवाले, अनन्त देव, अनन्त कल्याण गुणसे सुन्दर, अनन्त शक्तियुक्त अंशवाले, अनन्त बलवाले, अनन्त (शेष) के शरीरपर शयन करनेवाले, ईश्वर, अनन्त सौभाग्यरूप, अनन्त नेत्रवाले, अनन्त चरणवाले, अनन्त सुखस्वरूप, असुर-रूप पर्वतको नाश करनेके लिये चक्रको धारण किये हुए, पापरूप पर्वतको फोड़नेके लिये वज्र धारण करनेवाले करुणा-रूप पर्वतसे भरे हुए चित्तवाले तथा सुवर्ण पर्वतरूप शङ्खको हाथमें धारण करनेवाले, आप श्रीनिवासका भजन करता

हूं। हे वेङ्कटेश्वर ! आप समस्त संसारमें बहुत पुरुषार्थको देनेमें चतुर हैं, नही तो गुप्तरूपसे अत्यन्त ऊंचे पर्वतपर क्यों रहते हैं ॥३८॥

गुणौघैरपारं स्फुरद्रत्नहारं स्मरद्दोषहारं स्वभक्तेष्टपूरम् ॥ भजे वेङ्कटेशं फणीशाद्रिवासं सदा मन्दहासं श्रिया सद्विलासम् ॥३९॥ वेङ्कटेश चरणौ तव वन्दे सर्वतीर्थशरणौ शरणौ मे ॥ माविधातृशिववीशफणीशेन्द्रार्कसोमहुतभुङ्मुखवन्द्यौ ॥ ४० ॥ श्रीनिवास चरणौ तव वन्दे लोकपावन कुङ्कुमवर्णौ ॥ श्रीप्रदौ किल सुरर्षिनृपाणां श्रीऋगादिनिगमागमवेद्यौ ॥ ४१ ॥

अपार गुण समूहवाले रत्नोंके हारसे शोभित, स्मरण करनेवालोंके दोषको हरण करनेवाले, अपने भक्तोंके अभीष्टको पूर्ण करनेवाले, शेषाचलपर वास करनेवाले, मन्द हासवाले और लक्ष्मीके साथ विलास करनेवाले, आप श्रीवेङ्कटेशका मैं भजन करता हूं। हे वेङ्कटेश ! आपके चरण सब तीर्थोंकी तथा मेरी शरण, एवं लक्ष्मी, सरस्वती, शिव, शेष, सूर्य्य, चन्द्र, अग्नि इत्यादिसे वन्दित हैं तथा संसारको पवित्र करनेवाले हे श्रीनिवास ! कुंकुम वर्णवाले देवता, ऋषि और राजाओंको श्री देनेवाले तथा (श्री लक्ष्मी), ऋक् आदि वेदों और शास्त्रोंसे जानने योग्य आपके चरणोंको मैं प्रणाम करता हूं ॥४१॥

भजे भजकसौख्यकृन्निजकटाक्षसम्प्रेक्षणं परात्परतरं दरं दधतमब्जचक्रे गदाम् ॥ चतुर्भुजमधोक्षजं कमलजेशपूर्वार्चितं वरोद्धतखलान्बहून्झटिति संहरन्तं रिपून् ॥४२॥ अज्ञानसागरसमुत्तरणे प्रशस्तं सुज्ञानसेतुरचने निपुणं बुधेड्यम् ॥ लक्ष्मीपतिं सुरवरार्चितवेङ्कटेशं दारिद्र्यदुःखदुरितौघनिशाचरघ्नम् ॥ ४३ ॥ लक्ष्मीनाथं कमलनयनं हारकेयूरभूपं सर्वव्यापं बहुगुणभरं दोषदूरं दयाब्धिम् ॥ स्वानां तापत्रयहरमजं निर्विशेषं विशेषं लोकातीतं पुरुषमतुलं भावयामीष्टदेवम् ॥ ४४ ॥

अपने कटाक्षसे देखनेवाले, भक्तोंको सुख पहुंचानेवाले, परात्परतर, शङ्ख, चक्र, कमल और गदाको धारण करनेवाले चार भुजावाले, अधोक्षज, ब्रह्मा, शिव इत्यादिसे पूजित, एवं वरदानसे उद्धत अनेक दुष्ट शत्रुओंके शीघ्र नाश करनेवालेका मैं भजन करता हूं। अज्ञान समुद्रको पार करनेमें चतुर, ज्ञानरूप सेतुको रचनेमें चतुर, विद्वानसे पूजित, लक्ष्मीके पति, देवताओंसे पूजित, वेङ्कटेश, दरिद्ररूप दुःख और पापके समूह रूप निशाचरको मारनेवाले, लक्ष्मीके स्वामी, कमलनयन, हार केयूरसे शोभित, सर्वव्यापी, बहुत गुणको देनेवाले, दोषको दूर करनेवाले, दया-

के समुद्र, भक्तोंके तीनों तापोंको नाश करनेवाले, अजन्मा, निर्विशेष, अशेष, अशेष संसारसे परे और अनुपम पुरुष अपने इष्टदेवका भजन करता हूं ॥४४॥

श्रीमद्वेङ्कटनाथपादजनिता गङ्गा जगत्पावनी यस्यापाङ्गनिरीक्षणं विधिभवेन्द्रार्कादिसर्वेष्टदम् ॥ यन्नामस्मरणं महाघहरणं स्वर्ग्यं च मोक्षप्रदं यत्पादाम्बुजयुग्मसेवनरतो ब्रह्मादिभिः पूज्यते ॥ ४५ ॥ दृष्ट्याद्यत्यन्तदूरं निगमनिचयवेद्यात्ममाहात्म्यपूर्णं सर्वेषामादिमित्रं रविशशिनयनं पूर्णकारुण्यदेहम् ॥ निर्वाणं निष्प्रपञ्चं निरवधिकसमाम्नायसङ्घैरसङ्गैर्गीर्वाणाद्यैरजस्रं स्तुतिनतिनियमैकान्तभक्त्यैश्च पूज्यम् ॥ ४६ ॥

जिनकी कृपाका कटाक्ष, ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, सूर्य्य आदिके इष्टफलको देनेवाला है, जिनके नामका स्मरण करना महापापोंको नाश करनेवाला एवं स्वर्ग और मोक्षको भी देनेवाला है, जिनके चरण-कमलोंकी सेवा करनेवाले ब्रह्मा इत्यादिसे भी पूजे जाते हैं, ऐसे श्रीवेङ्कटेशके चरणसे उत्पन्न गङ्गा संसारको पवित्र करनेवाली है, इन्द्रियोंको अगोचर, वेद शास्त्रके समूहोंसे जानने योग्य, अपने माहात्म्यसे पूर्ण, सब किसीके आदि मित्र, सूर्य्य और चन्द्ररूप नेत्रवाले, करुणा पूर्ण शरीरवाले, निर्वाण, निष्प्रपञ्च, अनन्त वेदसमूहोंसे और सरस्वतीसे निरन्तर भक्तिपूर्वक स्तुति, प्रणाम इत्यादिसे पूजित आपका मैं भजन करता हूं ॥४६।

किङ्कर शङ्कर बहुकरुणा तव बहुचरितं समस्तभुवनेषु ॥ ज्ञापयसि भक्तिमद्भ्यः फणिपतिशुकपैलनारदप्रमुखैः ॥ ४७ ॥ वेङ्कटेशमनुसृत्य य आस्ते तस्य भूरि सुभगं दश दिक्षु ॥ ऐहिकं त्रिदिवसौख्यमतुल्यं मोक्षमाशु लभते गुणसाम्यम् ॥४८॥

हे शङ्कर स्वामिन् ! आपकी संसारमें बहुत ही करुणा है, समस्त संसारमें आपने अनेकों चरित्रोंको शेष, शुक, पैल नारद इत्यादि भक्तोंके द्वारा आप प्रकट करते हैं। वेङ्कटेशको अनुसरण करके जो रहता है, उसका सौभाग्य दशों दिशाओंमें बहुत रहता है। उसको ऐहिक और स्वर्गीय अतुल सौख्य प्राप्त होता है, एवं वह सर्व गुणोंकी समतारूपी मोक्षको शीघ्र ही पाता है ॥४८॥

श्रीनिधिं त्विह जहाति मदान्धो योऽस्य दुःखमसमं दश दिक्षु ॥ ऐहिकं भवति रौरवकुम्भीपाकपावकतमिस्रममुत्र ॥ ४९ ॥

जो मदान्ध लक्ष्मीनिधि श्रीनिवासको छोड़ देता है उसको इस लोकमें दशों दिशाओंमें अनुपम दुःख होता है और परलोकमें रौरव, कुम्भीपाक, अग्नि और अन्धतामिस्र नरक होता है ॥४९॥

विपद्घ्नं शुभदोग्धारं भक्तानां वशवर्तिनम् ॥ लोकपूज्यं रमानाथं भजेऽहं प्रतिजन्मसु ॥५०॥ भक्तौघानुग्रहार्थाय त्यक्त्वा वैकुण्ठमुत्तमम् ॥ धरण्यामवतीर्णोऽसि वरेण्यो वरदोऽर्चितः ॥ ५१ ॥

विपत्तिका नाश करने, शुभको देने एवं भक्तोंके वशमें रहनेवाले, संसारमें पूज्य लक्ष्मीके पतिका मैं प्रतिजन्ममें भजन करूंगा। भक्तसमूहोंपर कृपा करनेके लिये उत्तम वैकुण्ठको छोड़ कर पृथ्वीपर अवतार धारण करनेवाले आप श्रेष्ठ, वर देनेवाले और पूजित हैं ॥५१॥

अप्यल्पमात्रं परवस्तु लोके नैवापहार्यं किल सत्यसन्ध ॥ जनैरनेकैर्बहुजन्मयत्नैरायाससाध्यं बहुपापसञ्चयम् ॥ ५२ ॥ हरस्यशेषं स्मृतिमात्रतस्त्वं वाणीमनोदृष्टिपथाद्यगोचरः ॥ विलक्षणस्थावरजङ्गमात्मकं वीक्षे बहूपायविशारदं त्वाम् ॥ ५३ ॥

हे सत्यप्रतिज्ञ! अनेक मनुष्योंसे बहुत जन्मोंमे यत्नपूर्वक सञ्चित थोड़ा भी वस्तु नहीं हरण योग्य है, किन्तु वाणी,मन और दृष्टि पथसे परे आप उनके सम्पूर्ण पापसमूहको स्मरणमात्र हीसे हरण कर लेते हैं, बहुत उपायोंमें चतुर, अद्भुत स्थावर और जङ्गमस्वरूप आपको मैं देखता हूं ॥५३॥

तव रूपाण्यनन्तानि चरित्राणि तथैव च ॥ स्मरतां भक्तिपूर्वं तु महाविभवदानि च ॥ ५४ ॥ इहामुत्रातुल्यसौख्यप्रदानि महतामपि ॥ अल्पानां किमु वक्तव्यं स्वरूपोद्धारकाणि च ॥ ५५ ॥

आपके रूप और चरित्र अनन्त हैं। आप भक्तिके साथ स्मरण करनेसे बड़े बड़े विभवको देनेवाले माहात्माओंको भी इस लोक और परलोकमें अनन्त सुखके देनेवाले एवं उद्धार करनेवाले हैं, छोटोंके विषयमे क्या कहना है ॥५५॥

प्रपद्ये पुण्डरीकाक्षमीशं भक्तानुकम्पिनम् ॥ लोकोत्तरं लोकनाथं परात्परतरं विभुम् ॥ ५६ ॥ पुण्यात्वदयया लब्धं विशेषादकुतोभयम् ॥ भगवन्तं विश्ववन्द्यं भूतभव्यभवत्प्रभुम् ॥ ५७ ॥ यतो भूतानि जायन्ते येन सर्वमिदं ततम् ॥ येन जातानि जीवन्ति यं प्राप्स्यन्ति महालये ॥५८॥ दीपविद्युत्तारकाग्निचन्द्रसूर्यादिदीप्तिमान् ॥ यो योगैर्योगयोग्यैश्च दृश्योऽदृश्योऽश्रुतः श्रुतः ॥ ५९ ॥

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये भगवद्गुणनाममहिमानुवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

पुण्डरीकनयन, ईश, भक्तोंपर दया करनेवाले, संसारमें श्रेष्ठ, संसारके स्वामी, पर, विभु, दयारूपी अपने पुण्यसे प्राप्त, विशेष करके निर्भय, भगवान, संसारमें वन्दनीय, भूतभावन, प्रभु, जिनसे सब जीव उत्पन्न होते हैं, जिनसे यह सब संसार फैला है, उत्पन्न जीव जिनसे जीते हैं, और महाप्रलयमें जिनको प्राप्त करते हैं, दीप, बिजली, तारा इत्यादिके प्रकाशस्वरूप, जो यत्नमे योग सादृश्य और अदृश्य, एवं श्रुत और अश्रुत हैं, उन आपकी शरण में आता हूँ ॥५६॥

॥इति तृतीयोऽध्यायः॥



चतुर्थोऽध्यायः

छन्द प्रबन्ध विकाश सह, भक्तीरस भरपूर।
विश्वरूप विश्वेशका, अघतम मण्डल सूर ॥१॥
नाम रूप गुण विभव पुनि, प्रभुके करुणा भाव।
अकथ अनूपम रूपमें, वर्णित ईश प्रभाव ॥२॥

अथ भगवतः विश्वरूपादिवर्णनम्

देवशर्मोवाच—

श्रीवेङ्कटेश मत्स्वामिन्प्रणतार्तिप्रणाशन ॥ ज्ञानानन्ददयापूर्ण विज्ञापनमिदं शृणु ॥ १ ॥

देवशर्म्मा बोले—हे श्रीवेङ्कटेश! मेरे स्वामी! शरणागतोंके दुःखको छुड़ानेवाले! ज्ञान, आनन्द और दयासे पूर्ण! मेरे इस निवेदनको सुनिये ॥ १ ॥

यन्मुखं ब्रह्मजनकं यद्बाहू क्षत्रकारणे ॥ यदूरुभ्यां वैश्यकुलं यत्पभ्यां सेवकोऽभवत् ॥ २ ॥ शिरसा द्यौरभूत्तस्य सहस्रांशुश्च नेत्रजः ॥ मुखात्पुरन्दरोऽग्निश्च दिग्देवाः श्रोत्रतोऽभवन् ॥ ३ ॥ शीतांशुर्मनसो जातः प्राणाद्वायुरजायत ॥ अन्तरिक्षन्नाभितोऽभूत्पद्भ्यां भूमिरजायत ॥ ४ ॥ यत्कोमलाङ्गैरभवन्भुवनानि चतुर्दश ॥ कोमले नाभिकम-

ले ब्रह्माण्डं ब्रह्मसंश्रितम् ॥ ५ ॥ श्रियः पते कोऽपि जयेन्न मायां यया जनो मुह्यति वेदनातः ॥ विनिर्जितात्मानमनन्तमायिनं मायापहं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ६ ॥

जिनका मुख ब्राह्मणको पैदा करनेवाला जिनके बाहु क्षत्रियोंके जन्मदाता, जिनके उरूसे वैश्य हुए, जिनके चरणोंसे शूद्र हुए, आप उन्हींके मस्तकसे आकाश, नेत्रसे सूर्य्य, श्रवणसे दिक्पाल, मनसे चन्द्रमा, प्राणसे वायु, तथा चरणोंसे भूमि हुई। जिनके कोमल अङ्गोंसे चौदह भुवन हुए, जिनके कोमल नाभी कमलसे ब्रह्माका आश्रय ब्रह्माण्ड हुआ। जिन लक्ष्मीपतिकी मायाको कोई भी जीत नहीं सकता, जिनकी वेदनासे मनुष्य मोह जाते हैं, अनन्त माया करनेवाले, एवं मायाको हटानेवाले, स्वाधीन आत्मा आपकी शरणमें मैं आया हूं ॥६॥

मनोऽनवर्याय तर्क्याय सगुणायागुणाय च ॥ नमोऽनन्तायान्तकाय वेद्यावेद्यस्वरूपिणे ॥ ७ ॥

अतर्क्य (जिसमें तर्क नहीं किया जा सके), तर्क्य, सगुण तथा आप निर्गुणको नमस्कार है, अनन्त, काल स्वरूप, एवं जानने और नहीं जानने योग्य स्वरूपवाले, आपको प्रणाम है ॥ ७ ॥

सिद्धिप्रदस्त्वं किल देववर्य त्वत्प्रेरितोऽहं तव पादमाप्तः ॥ त्वत्पाद-भक्तो बहिरन्तरात्मनः किमस्ति विज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः॥८॥ सुखं नृपालाः सुरदेवतुल्या ब्रह्मादयस्ते पदपद्मसंस्थिताः ॥ त्वत्किङ्करास्तेऽपि पृथग्विभाविताः कुरुष्व शं भो मुनिदेवमित्र ॥ ९ ॥

हे देवश्रेष्ठ! आप सिद्धिके देनेवाले हैं, आपसे प्रेरित मैं आपके चरणोंमें प्राप्त हुआ हूं। मैं आपका चरण सेवक हूं। बाहर और भीतर रहने वाले, सर्वज्ञ आपसे क्या कहनेका है। हे मुनियों और देवताओंके मित्र! राजा, ब्रह्मा इत्यादि देवतागण आपके चरणकमलमें स्थित हैं, किन्तु वे आपके दास भी अलग अलग प्रकाशित होते हैं। आप कल्याण कीजिये ॥ ९ ॥

उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गान्तकोग्रव्यालोत्क्रुष्टे विषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः ॥ द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावे ज्ञसार्थे प्राप्तः पादौ शरणद कदा यामि ते कामवश्यः ॥ १० ॥ भवाब्धितारं कटिवर्तिहस्तं स्वर्णाम्बरं रत्नकिरीटकुण्डलम् ॥ प्रलम्बिसूत्रोत्तममाल्यभूषितं नमाम्यहं वेङ्कटशैलनायकम् ॥ ११ ॥जाम्बूनदैराभरणैः प्रदीप्तं वक्षःस्थले दक्षकुचोर्ध्वभागे ॥ श्रीवत्सलक्ष्म्यङ्कितदिव्यरूपं श्रीवेङ्कटाधीशमहं प्रपद्ये ॥ १२ ॥

अनेकों क्लेशोंसे दुर्गम कालरूपी भयङ्कर सर्पसे परिपूर्ण, झंझटोंके वातावरण विशिष्ट, दुष्टरूपी मृगोंसे व्याप्त उत्पत्तिरूप शोकाग्निमें शरणहीन, मृगतृष्णावत विषयरूप अपने घरके भारसे दबाया तथा कामके वशीभूत हुआ मैं कब आपके चरणोंमें प्राप्त हूंगा। संसार समुद्रको पार करनेवाले, कटिदेशपर हाथ रखे हुए, स्वर्णके वस्त्रवाले, रत्न जटित किरीट और कुण्डलवाले, लम्बे सूत्र (यज्ञ सूत्र) और उत्तम मालासे शोभित, श्रीवेङ्कटाचलके स्वामीको मैं नमस्कार करता हूं। स्वर्ण आभरणोंसे शोभित, वक्षस्थलपर दाहिने स्तनके ऊपर श्री वत्स और लक्ष्मीसे चिन्हित तथा दिव्य स्वरूपवाले श्री वेङ्कटाचलके स्वामीका मैं शरणागत होता हूं ॥ १२ ॥

संस्थितं सुविमानान्तर्विरिञ्च्याद्यैश्च सेवितम् ॥ चामरव्यजनच्छत्रैः
शरदिन्दुमुखं भजे ॥ १३ ॥ भक्तानुकम्पी गरुडध्वजस्तत्स्कन्धं त्वमारुह्य
किरीटकुण्डली ॥ पीताम्बरश्चारुसुमन्दहासः श्रीकौस्तुभश्चक्रवराभयाङ्कि-
तः ॥ १४ ॥ सजयो विजयश्चैव दृश्योऽदृश्यः श्रुतोऽश्रुतः ॥ सभाषणो-
ऽभाषणश्च वाच्योऽवाच्यो धृपोऽधृपः ॥ १५ ॥

सुन्दर विमानमे स्थित, ब्रह्मा इत्यादि द्वारा चमर, व्यजन और छत्रसे सेवित एवं शरत कालके चन्द्रमाके समान मुखवाले आपका मैं भजन करता हूं। आप भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं, गरुड़ आपकी ध्वजा पर हैं, आप गरुड़के कंधे पर चढ कर किरीट कुण्डलको धारण करनेवाले हैं, पीत वस्त्रवाले,एवं सुन्दर मन्द हास्यवाले हैं, कौस्तुभ और अभयदानसे युक्त हैं, आप जयसे युक्त जयसे रहित है, दृश्य और अदृश्य हैं, कहने और नहीं कहनेवाले हैं, धृप और अधृप हैं ॥ १५ ॥

त्वत्पादपद्मयुगलश्रेयआसक्तमानसाः ॥ विमृज्योभयतः सङ्गं ब्रह्मा-
द्याः समुपासते ॥ १६ ॥ माहात्म्यं केन सन्दृश्यं रमाया रमणस्य ते ॥
यत्किञ्चिद्द्रष्टुमिच्छामि मायिनोऽमायिनः शुभम् ॥ १७ ॥ सर्वप्राणिहृदा-
वासं वासुदेवं जगद्धितम् ॥ शरण्याग्र्यं देवदेवं प्रधानपुरुषं भजे ॥ १८ ॥

आपके दोनों चरणकमलोंकी श्रीमें लगाये हुए मनवाले ब्रह्मा इत्यादि देवता सुख दुःखादिके संगको छोड़ कर आपकी उपासना करते हैं। लक्ष्मीके साथ रमण करनेवाले आपके शुभ माहात्म्यको कौन जान सकता है, किन्तु मैं आप मायावी अथवा अमायावीके माहात्म्यको कुछ देखना चाहता हूं। सब प्राणियोंके हृदयमें रहनेवाले, वासुदेव, संसारके हित करनेवाले, शरण्योंमे श्रेष्ठ देव तथा आप प्रधान पुरुषका मैं भजन करता हूं ॥ १८ ॥

मनोऽव्यक्ताय सूक्ष्माय परात्परतराय च ॥ जगत्कारणकर्त्रे च साक्षिणे
ऽव्ययमूर्तये ॥ १९ ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नाया-

निरुद्धाय योगिहृत्पद्मवासिने ॥ २० ॥ पञ्चभूतविसृष्टाय पञ्चमात्रात्मकाय च ॥ ज्ञानकर्मेन्द्रियेशाय हृषीकेशाय ते नमः ॥ २१ ॥ विष्णवे वैष्णवेशाय जिष्णवे जयदायिने ॥ इष्टप्रियाय चेष्टाय कृष्णायोत्कृष्टकर्मणे ॥ २२ ॥ क्षराक्षरोत्तमायाथ स्वक्षरेशाक्षराय च ॥ कुक्षिस्थपक्षिसङ्घाय क्षयाक्षयकराय ते ॥ २३ ॥ नमो भवाय भावाय धीराय परमेष्ठिने ॥ वीराय वीरवपुषे ऋषये परमात्मने ॥ २४ ॥

अव्यक्त, सूक्ष्म, परसे भी पर, श्रेष्ठ, संसारको उत्पन्न करनेवाले, साक्षी एवं अव्यय मूर्ति आपको मेरा प्रणाम है। वासुदेव आपको प्रणाम है। संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा योगियोंके हृदय कमलमें वास करनेवाले आपको प्रणाम है। पञ्चभूतोंको उत्पन्न करनेवाले, सूक्ष्म पञ्चभूतस्वरूप, ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियके स्वामी आप हृषीकेशको प्रणाम है। विष्णु, वैष्णवोंके ईश, जिष्णु, जय देनेवाले, इष्टसे प्रिय, इष्ट, उत्तम कामवाले, कृष्ण, क्षर और अक्षरसे अतीत, क्षरके स्वामी, कुक्षिमें पक्षिसमूह रखनेवाले, क्षय और अक्षय करनेवाले, भव, भाव, धीर, परमेष्ठी, वीर, वीर शरीरवाले, परमात्मा तथा ऋषि आप परमात्माको मेरा नमस्कार है ॥ २४ ॥

नमो नारायणाभिख्याधारणोद्धरणाय च ॥ नमः समर्हणार्हाय धरणीधररूपिणे ॥ २५ ॥ अर्च्यार्च्यायाच्युतायापि वन्द्यवन्द्यपदाय च ॥ हिरण्यगर्भगर्भाय नमः शिवशिवाय च ॥ २६ ॥ स्कन्दाय शिपिविष्टाय सच्चिदानन्दरूपिणे ॥ कर्मज्ञानद्विरूपाय श्रुतिस्मृत्यालयाय ते ॥ २७ ॥ यमाय नियमायाथ दानव्रतकराय च ॥ तपस्विने च तप्याय तापत्रयहराय च ॥ २८ ॥ यज्ञाय विश्वाय सुमङ्गलाय सुतीर्थपादाय सुतारकाय ॥ प्रसन्नलोकानुगुणाय शम्भवे शुद्धाय शश्वद् गुणवर्ष्मणे नमः ॥ २९ ॥ -

नारायण नामके धारण करनेवालेका उद्धार करनेवाले, परम पूज्य, एवं वराहरूपधारी आपको नमस्कार है। पूज्योंके भी पूज्य, अच्युत, वन्द्योंके भी वन्दनीय चरणारविन्दवाले, गर्भमें ब्रह्माको रखनेवाले, कल्याणके कल्याण, आपको प्रणाम है। सच्चिदानन्दरूपी, स्कन्द, शिव, कर्म और ज्ञान दो रूपवाले, श्रुति और स्मृतिके आलय, यम, नियम, दान और व्रत करनेवाले, तपस्वी, तपस्या किये जाने योग्य, तीनों तापोंका हरण करनेवाले, यज्ञ, विश्वमङ्गल, सुन्दर, तीर्थस्वरूप चरणवाले, तारनेवाले, प्रसन्न लोकके अनुसारी, शम्भु, अविनाशी, गुणके स्वरूपवाले आपको नमस्कार है ॥२९॥

कार्माय कर्मलिप्ताय ज्ञानाय ज्ञानदायिने ॥ नित्यमुक्ताय हरये नित्य-

मुक्तिप्रदायिने ॥ ३० ॥ शुद्धं वपुः परमयोगमतुल्यसौख्यं भूमिं द्युलोकमुत तत्त्वमतिं सुभक्तिम् ॥ वैराग्यमन्यसुगुणान्भजतां ददानं श्रीशं दयोदधिमहं शरणं प्रपद्ये ॥ ३१ ॥ सुलभं दुर्लभं वन्दे भगवन्तं सनातनम् ॥ सदसत्क्षेत्रगं विष्णुं मूर्तामूर्तं शुभाशुभम् ॥ ३२ ॥ गोविन्दं गोगणातीतं कल्मषघ्नमकल्मषम् ॥ प्रतिकल्पेऽनल्पकल्पतरुं सर्वार्थकल्पकम् ॥३३॥

कर्मवाले, कर्मसे लिप्त, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानदेनेवाले, नित्यमुक्त, हरि, सदा मुक्तिदेनेवाले आपको प्रणाम है। भजन करनेवालोंको शुद्ध शरीर परमयोग, अतुल सौख्य, भूमि, स्वर्गलोक, तत्त्वज्ञान, शोभन भक्ति, वैराग्य और और गुणोंको देनेवाले, दयाके समुद्र, लक्ष्मीके पतिको शरणमें मैं आया हूं। सुलभ और दुर्लभ, सनातन भगवान, सत् और असत् क्षेत्रमे वर्तमान, विष्णु, मूर्तिवाले और विना मूर्तिके, शुभ और अशुभस्वरूप, गोविन्द, इन्द्रियोंसे परे, पापोंके नाश करनेवाले, निष्पाप, प्रतिकल्पमें सब अर्थोंके देनेवाले कल्पवृक्ष आपको नमस्कार करता हूं ॥३३॥

दुष्टभावप्रमत्तो वा नामाद्युच्चारकोऽपि यः ॥ ब्रह्महत्यादिपापानि दहत्येव च नान्यथा ॥३४॥ अज्ञानादथवा दम्भात्पुण्यश्लोकस्य नाम ते ॥ यो वदेत्तानि नश्यन्ति तूलराशिर्यथाऽनलात् ॥ ३५ ॥ क्षुधितो दुःखितः श्रान्तस्त्वन्नाम यदि संस्मरेत् ॥ तस्य दुःखानि सर्वाणि नश्यन्ति क्षणमात्रतः ॥३६॥ सर्वाण्यशुभजातानि दुरितान्यपि यानि च ॥ तानि सर्वाणि लभते मत्तस्त्वां यः स्मरेद्यदि ॥ ३७ ॥

दुष्टभावोंसे मत्त भी जो नामको उच्चारण करता है, वह ब्रह्महत्यादिको नाश करता है, यह झूठ नहीं है अज्ञानसे अथवा दम्भसे जो आप पुण्यश्लोकके पवित्र नामको कहता है, उसरे वे सब पाप इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे रुईका पर्वत आगकी चिनगारीसे नष्ट होता है। भूखा, दुःखी, अथवा थका हुआ पुरुष आपको जो स्मरण करता है, उसके सब दुःख क्षण भरमें नष्ट हो जाते हैं। यदि मत्त भी आपका स्मरण करे तो उसरे सब अशुभ कर्म और पाप नष्ट हो जाते हैं और वह आपको प्राप्त हो जाता है ॥ ३७ ॥

न तीर्थयात्रा न च दानयज्ञा व्रतं तपो नार्चनमन्यदैवनम् ॥ यच्छ्रीनिवासस्य च नामकीर्तनं तदेव सर्वार्थसुसृष्टिकारणम् ॥ ३८ ॥ यात्रा यज्ञा व्रता धर्मदानान्यन्यान्यसङ्ख्यया ॥ तव नामस्मृतेर्भक्त्या कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३९ ॥ अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुनामानुवर्तिनाम् ॥ तेषां दूरो याम्यलोकः स्वर्गो मोक्षश्च यत्पदम् ॥ ४० ॥ माहात्म्यं विष्णु-

नाम्नो हि वर्णितुं केन शक्यते ॥ अजामिलो मृत्युपाशान्मुक्तो वैकुण्ठगो
यतः ॥ ४१ ॥

तीर्थयात्रा सब मनोरथोंको देनेवाली नहीं है, दान यज्ञ भी वैसा नहीं है, व्रत, तपस्या और दूसरे देवताओंकी पूजा भी वैसी नहीं है–किन्तु श्रीनिवासका जो नाम कीर्तन है वही सब मनोरथको देनेवाला है। तीर्थयात्रा, यज्ञ, व्रत, धर्म, दान इत्यादि असंख्य ये सब कर्म, भक्तिपूर्वक आपके नाम स्मरण करनेके सोलहवें भागके भी समान नहीं हैं। विष्णुके नाम लेनेवालोंका अहोभाग्य है। अहोभाग्य है! यमलोक उनसे दूर रहते हैं। स्वर्ग और मोक्ष उनके चरणों-पर हैं। विष्णु नामके माहात्म्यको कौन वर्णन कर सकता है, जिससे अजामिल मृत्युपाशसे छूट कर वैकुण्ठको चला गया ॥ ४१ ॥

अयमेव महाधर्मो नराणां तारकः स्मृतः ॥ विष्णौ सदा भक्तियो-
योगस्तन्नामग्रहणादिभिः ॥ ४२ ॥ नैकोऽजामिल एव पापजलधिं सन्ती-
र्णवान्नामतः प्रह्लादोऽपि गजेन्द्रभूप्रभृतयो दुःखाम्बुधेस्तारिताः ॥ यन्नाम-
स्मरणामृताम्बुधिनिमग्नोऽद्यापि गौरीपतिर्यद्ध्याने निरताः प्रजापतिमुखाः
प्राप्ता महावैभवम् ॥ ४३ ॥ यन्नाम वै सर्वजगद्गुरुस्तद्दुष्कर्मभारांश्च बहूं-
श्छिनत्ति ॥ स सर्वशक्तिः स हि विश्वरूपः प्रसीद मेऽनन्तनिरुक्तश-
क्ते ॥ ४४ ॥

विष्णुके नामस्मरण आदिसे उनमें सदा भक्तियोग रखना यही मनुष्योंको तारनेवाला महाधर्म है। केवल अकेला अजामिल ही नाम स्मरणसे पाप समुद्रको नहीं पार हो गया, किन्तु प्रह्लाद, गजेन्द्र, पृथ्वी इत्यादि भी दुःख सागरसे पार हो गये। जिनके नाम स्मरणरूपी अमृत सागरमें आजतक शिवजी निमग्न हैं, और जिनके ध्यानमें लगे हुए ब्रह्मादिने महा विभवको पाया है, जिनके नाम संसारमें श्रेष्ठ गुरु हैं और उसके (संसार) बहुत पापके बोझका नाश करता है, वे विश्वरूपी एवं सर्वशक्तिमान है। हे अनन्त शक्तिवाले! मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥ ४४ ॥

अनुग्रहार्थं भजतां पदाब्जमनामरूपस्त्वगुणो ह्यजन्मा ॥ नामानि
रूपाणि गुणान् क्रियाश्च जन्मानि गृह्णासि नमः प्रसीद ॥४५॥ जन्मादिभि-
र्जने मोहानुग्रहावधिकारतः ॥ करोषि साम्प्रतं भूयोऽनुग्रहस्तु भवेन्म-
यि ॥ ४६ ॥ त्वदपाङ्गलवो भूयादिहामुत्रेष्टवर्षुकः ॥ अन्यथा नास्ति स-
न्देह इति चित्ते सुनिश्चितम् ॥ ४७ ॥

अपने चरणकमलोंके सेवकके ऊपर कृपा करनेके लिये, नाम, रूप, गुण और जन्मसे रहित आप नाम,

रूप, गुण और क्रिया एवं जन्मको धारण करते हैं। आपको प्रणाम है। प्रसन्न होइये। आप मनुष्यों पर जन्म आदिसे मोह और अनुग्रह यथायोग्य करते हैं। अभी आपका मेरे ऊपर भी अनुग्रह होवे। आपकी कृपा दृष्टिका लेशमात्र भी इस लोक और परलोकमें इष्टको देनेवाला है, इसमें संदेह नहीं है-ऐसा मनमें निश्चय है॥ ४७॥

ॐ नमो वेङ्कटेशाय पुरुषाय महात्मने॥ महानुभावाय महामायिनेऽमेयकर्मणे॥ ४८॥ स्थलेषु दुर्गेषु जलेषु खेषु गर्भेष्वरण्येषु च कैतवेषु॥ नाम्नैव भाव्यं खलु सर्वलक्षणं मायाविनो विश्वकुटुम्बिनस्ते॥ ४९॥ महाविपत्सु त्वन्नामस्मरणं तद्विनाशनम्॥ बहुसम्पत्सु ते नामविस्मृतिस्तद्विनाशिका॥ ५०॥ तस्मात्त्वन्नामसक्तोऽहं सर्वदा त्वदनुग्रहात्॥ त्वत्प्रेरितस्त्वदीयत्वान्मत्पुण्यं त्वद्दयायत्तम्॥ ५१॥

वेङ्कटेश, महात्मा, पुरुष, महानुभाव, महामाया करनेवाले, तथा नहीं अचिन्त्य कर्मवाले आपको प्रणाम है। माया करनेवाले, विश्वकुटुम्बी आपके नाम हीसे स्थलमें, जलमें, दुर्गमें, आकाशमें, वनमें, गर्भमें, कपटके स्थानमें सब कल्याण प्राप्त होता है। महाविपत्तिमें आपका नाम स्मरण करना उन विपत्तिका नाश करता है और सम्पत्तिमें आपका नामका भूल जाना सम्पत्तिको नाश करता है। इसलिये आपके ही होनेके कारण आपसे प्रेरित हो कर मैं आपका नाम जपनेमें सदा अनुरक्त हुआ हूं, मेरा पुण्य आपकी दयाके अधीन है॥ ५१॥

न कदाचिद्भयं मेऽस्ति दिव्यनामरतो यतः॥ तथापि ते कृपालेशलेशलेशोऽस्ति मय्यहो॥ ५२॥ श्रीश चित्रं चरित्रं ते न जाने बहुदुष्कृतिः॥ सर्वज्ञं सर्वदा किं त्वां वदामि कृपयाऽव माम्॥ ५३॥ नाम्ना महाघौघहानिर्मनःकायौ ततः शुची॥ तं दृष्ट्वा प्रीयसे विष्णो ततः सत्कर्मसङ्ग्रहः॥ ५४॥ कर्मणा ज्ञानसिद्धिश्च तेन प्रीतिस्तवाद्भुता॥ अपरोक्षमदूरे च मुक्तिरानन्दवर्धिनी॥ ५५॥

मुझको कभी भी भय नहीं है क्योंकि मैं आपके अलौकिक नाममें रत हूं, तथापि मेरे ऊपर आपकी कृपाका लेशका भी अत्यन्त लेश है। हे लक्ष्मीनाथ! आपके अद्भुत चरित्रको अत्यन्त पापी मैं नहीं जानता हूं। आप सदा सर्वज्ञसे मैं क्या कहूं? कृपापूर्वक मेरी रक्षा कीजिये। हे विष्णु! आपके नाम लेनेसे महापापका भी नाश होता है, तब शरीर और मन पवित्र होते हैं, उसको देख कर आप प्रसन्न होते हैं, तब पुण्यका सञ्चय होता है। उस पुण्य (सत्कर्म) से ज्ञानसाधन होता है, उससे आपकी अद्भुत प्रीति होती है। तब आनन्दको बढ़ानेवाली मुक्ति प्रत्यक्ष और पास हीमें आ जाती है॥५५॥

गोदानकन्यादानानि पृथिवीरेणुसङ्ख्यया ॥ दुर्भिक्षे जाह्नवीतीरे प्रत्यहं कोटिभोजनम् ॥ ५६ ॥ त्वन्नामस्मरणात्तुल्यं नाममाहात्म्यमीदृशम् ॥ तस्मान्नामस्मृतिः सिद्धा सुलभा पुरुषार्थदा ॥ ५७ ॥ लोकोत्तरस्त्वयं मार्गः प्रजानामकुतोभयः ॥ यत्र भक्तिवशाः सर्वे नमःस्मृतिपरायणाः ॥ ५८ ॥ येनैकदा विष्णुपदाब्जयुग्मे समर्पितं चित्तमनन्यबुद्ध्या ॥ यमोऽपि तद्दूतगणाः सपाशाः पश्यन्त्यघौघाश्रयमप्यंहो न तम् ॥ ५८ ॥

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये भगवद्गुणनाममहिमानुवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पृथ्वीकी रेणुसंख्याके गोदान और कन्यादान, दुर्भिक्षमें प्रति दिन गङ्गाके तीरपर करोड़ोंको भोजन कराना आपके नाम स्मरणके तुल्य हैं,इस प्रकार आपके नामका माहात्म्य है। इसलिये आपका नामका स्मरण सिद्धि और पुरुषार्थको सुलभ देनेवाला है। प्रजाओंके लिये आपका यह मार्ग निर्भय एवं लोकोत्तर है। जहांपर नमस्कार और और स्मरणमें लगे हुए सभी भक्तिके वशमें है, जो एक बार भी विष्णुके चरण कमलोंकी पूजा एकान्त मनसे करता है, पापके समूहका आश्रयी होनेपर भी उसको यमराज और हाथमें रस्सी लिये उनके दूत भी नहीं देख सकते ॥ ५६ ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः

पञ्चमोऽध्यायः



देवशर्मके विनयसे, हो प्रसन्न भगवान।
मुक्तिकाम धन धर्म सब, सकलाभीष्ट प्रदान ॥१॥
पुनि वेङ्कट माहात्म्यके, पठनश्रवण फल लेख।
अघ दल कुञ्जर केसरी, निज नयननसे देख ॥२॥

अथ देवशर्माणं प्रति स्तुतिप्रसन्नश्रीनिवासकृतवरप्रदानादिवर्णनम्

देवशर्मोवाच—

सर्वलोकजननी कमला या देशकालविनता रमणी ते ॥ सातिमृद्वत-
सिकाकुसुमाभोत्सङ्गगा च तव हृत्कमलस्था ॥ १ ॥ ब्रह्मशङ्करपदार्पणदक्षा
सर्वलोकशुभदा द्रवचित्ता ॥ यत्कटाक्षलवमात्मपदस्थाः प्रार्थयन्त्यजशिवे-
न्द्रमुखा हि ॥ २ ॥ भारतीप्रमुखसुन्दरयोषिज्जालजैत्रबहुसुन्दररूपाम् ॥
आलिलिङ्गिषसि यां करपद्मैर्मन्दहासवदनां सरसस्त्वम् ॥ ३॥ नित्यमुक्ता
दोषदूरा त्वदूनाधिकसद्गुणा ॥ त्वत्पादपूजने नित्यं बद्धकङ्कणभूषिता ॥४॥
अभीष्टदाने भक्तानां कल्पवृक्षायिता रमा ॥ चिन्तामणिः कामधेनुः क-
रुणासागरायुता ॥ ५ ॥

देवशर्म्मा बोले—सब लोकोंकी माता जो लक्ष्मी हैं वह सब कालमें सर्वत्र आपकी स्त्री हैं। वह अत्यन्त सुकुमार, अतसीपुष्पके वर्णवाली, आपके हृदय कमल तथा आपकी गोदमें रहनेवाली हैं। वह ब्रह्मा और शिवके पदको देनेमें दक्ष, सब लोकोंको शुभ देनेवाली तथा करुणायुक्त मनवाली हैं। जिसके कटाक्षके लेशको अपने अपने पदपर स्थित ब्रह्मा, शिव इत्यादि चाहते हैं। सरस्वती आदि सुन्दरी स्त्रियोंको जीती हुई सुन्दर रूपवाली, मन्दहासयुक्त मुखवाली जिसको सरस हो कर आप अपने हस्त कमलोंसे आलिङ्गन करनेको चाहते हैं, नित्यमुक्त, दोषसे दूर, आपसे छोटी, अधिक अच्छे गुणवाली, आपके चरण कमलोंकी पूजा करनेको सदा कङ्कण बाँधी शोभती हुई, अपने भक्तोंके अभीष्ट देनेमे, करुणासागरसे पूर्ण वह रमा कल्पवृक्ष, चिन्तामणि और कामधेनुकी जैसी है ॥५॥

लक्ष्मीः पुरस्तात् पश्चाच्च दक्षिणोत्तरतश्च या ॥ ऊर्ध्वाधरादिभागस्था
जगत्सृजति पाति हि ॥६॥ गुणैस्तता प्रसवितृवरणीयगुणोर्जिता ॥ प्रका-
शमतिमूर्तिश्च ध्येया बुद्धिप्रचोदिता ॥ ७ ॥ दुरन्नाद्दुर्ग्रहत्वाच्च पातकादुप-
पातकात् ॥ स्वगायकत्राणदक्षा गायत्रीत्युदिता रमा ॥८॥ सवितुर्द्योतक-
त्वाच्च भक्तेष्टप्रसवे रता ॥ चराचरप्रसवतः सावित्री कमला स्मृता ॥९॥
वागीशत्वात्प्रचोदनात्कीर्तिता च सरस्वती ॥ कान्तिरत्यादिदानाच्च भार-
तीत्यादिनामिका ॥ १० ॥

जो लक्ष्मी आगेसे, पीछेसे, दक्षिणसे, उत्तरसे ऊपर और नीचे ठहरी हुई संसारको उत्पन्न करती और पालन करती है, गुणोंसे विख्यात, उत्पन्न करनेवाली, श्रेष्ठ गुणोंसे व्याप्त, प्रकाशमान मूर्तिवाली, ध्यान करने योग्य,

बुद्धिकी प्रेरणा करनेवाली, दुष्ट अन्नसे दुष्ट ग्रहण (प्रतिग्रह) तकसे पाप और उप पातकोंसे अपने नामके गान करनेवालोंका त्राग (रक्षा) करनेवाली वह रमा गायत्री कही जाती है। सूर्य्यको प्रकाशित करनेके कारण मर्त्योंके इष्टदान करनेमें लगी हुई तथा चर और अचरको उत्पन्न करनेवाली लक्ष्मी सावित्री कही जाती हैं। वाणीकी स्वामिनी होने एवं वाणीका दान करनेके कारण सरस्वती और कान्ति, रति आदिके देनेके कारग भारती आदि नामवाली है ॥ १० ॥

गुणपूर्णत्वयोगेन ब्रह्मात्रब्रह्मवशे स्थिता ॥ ब्रह्माण्डान्तर्बहिर्व्याप्ता स्थू-
ला सूक्ष्मा च मध्यमा ॥११॥ कर्मणां गुरुरूपाणां सर्वेषां च नियामिका ॥
यद्दयापाङ्गलेशेन त्वैहिकीः सर्वसम्पदः ॥ १२ ॥ स्वर्विरक्तीशसद्भक्तिज्ञप्ति-
मुक्तीर्व्रजन्ति हि ॥ लोकातीता लोकपूज्या तवात्यन्तप्रिया मता ॥ १३ ॥
सर्वशक्ता सर्वसुखा सर्वलक्षणसंयुता ॥ अनेकगुणसम्पूर्णा पूर्णकामा च
सर्वदा ॥ १४ ॥ अप्रमेया प्रमेयापि समस्तपुरुषार्थदा ॥ सुमहैश्वर्यसौभा-
ग्या तथापि त्वानुवर्तिनी ॥ १५ ॥

गुणके पूर्ण योगसे जो ब्रह्म, और ब्रह्मेतरके वशमें स्थित, ब्रह्माण्डके बाहर और भीतर व्याप्त, स्थूल, सूक्ष्म और मध्यम है, जो गुरु स्वरूप समस्त कर्मोंको चलानेवाली है, जिसकी कृपा कटाक्षके लेशसे इस लोककी सब सम्पत्ति होती है, स्वर्ग, वैराग्य, भगवद्भक्ति, ज्ञान और मुक्ति होती है, वह लक्ष्मी संसारसे परे, संसारमें पूज्य आपकी अत्यन्त प्यारी, सर्वशक्ति, सब सुखों और सब लक्षणोंसे युक्त, अनेक गुणोंसे पूर्ण सदा पूर्णकाम, अज्ञेय और ज्ञेय सब पुरुषार्थको देनेवाली, महा ऐश्वर्य और सौभाग्यसे युक्त, तथापि आपके वशमें रहनेवाली है ॥१५ ॥

स्मरति ध्यायति स्तौति नमत्यर्चति पश्यति ॥ तपति त्वां जपति च
सेवते त्वां प्रतीक्षते ॥ १६ ॥ नित्यानपायिनी नम्रा सम्प्रार्थयति सर्वदा ॥
किमुतान्येऽल्पजीवाश्च मादृशा वृत्तिवर्जिताः ॥ १७ ॥ दरिद्रा बन्धुरहिता
अनाथा जीवनार्थिनः ॥ तेषां त्वत्प्रार्थनाकाङ्क्षा नाश्चर्यं भुवनत्रये ॥१८॥

और यह लक्ष्मी आपका स्मरण करती, ध्यान करती, स्तुति करती,नमस्कार करती, पूजा करती, दर्शन करती, तपस्या करती है, आपका जप करती सेवा करती और आपकी प्रतीक्षा करती है। सदा अनपायिनी वह नम्र होकर सर्वदा आपकी प्रार्थना करती है, फिर मेरे जैसे वृत्तिसे हीन, दरिद्र, बन्धुसे हीन, जीवनकी इच्छावाले, जो क्षुद्र हैं, उनको आपकी प्रार्थना करनेकी ही इच्छा होना, तीनों लोकमें आश्चर्य जनक नहीं है ॥ १८ ॥

श्रीवेङ्कटेश मत्स्वामिञ्ज्ञानानन्ददयानिधे ॥ शरणागतसन्त्राण-
कारणाभीष्टवर्षुक ॥ १९ ॥ श्रीश ते रूपकर्माणि ब्रह्मरुद्राहिपादिभिः ॥

अगण्यानि ह्यवेद्यानि ह्यचिन्त्यान्यद्भुतानि च ॥२०॥ एवंपूर्वे त्वन्महिम्नि नाहं शक्तोऽस्मि वर्णने ॥ कश्चाहं का च मे शक्तिः किमिति स्तौमि मन्द-धीः ॥२१ ॥ अलसोऽहमहङ्कारी चाज्ञो मूर्खः शठः खलः ॥ ज्ञानभक्त्यादि-हीनश्च कामक्रोधादिपूरितः ॥२२॥ मनोजयविहीनश्च सदा विषयलम्पटः ॥ पांसूनां वृष्टिविन्दूनां मद्दोषाणां मितिर्न हि ॥ २३ ॥

हे श्रीवेङ्कटेश ! मेरे स्वामी ! ज्ञान आनन्द और दयाके निधि ! शरणागतोंकी रक्षा करनेवाले ! अभीष्टोंकी वर्षा करनेवाले ! लक्ष्मीनाथ ! आपके अद्भुत रूप और कर्म ब्रह्मा, शिव, शेष, आदिसे न गणना करनेके योग्य, न जानने योग्य, न चिन्ता करनेके योग्य है । इस प्रकारके आपके रूप, माहात्म्यका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूं। मैं कौन हूं ? मेरी क्या शक्ति है ? मन्द बुद्धिवाला मैं क्या स्तुति करूं। मैं अलस, अहङ्कारी, अज्ञ, मूर्ख, शठ, दुष्ट, ज्ञान और भक्ति आदिसे हीन, काम, क्रोध आदिसे पूर्ण, मनको जीतनेमें असमर्थ एवं सदा विषयोंमें लम्पट हूं । पृथ्वीके कणकी, वर्षाके बून्दोंकी एवं मेरे दोषोंकी गिनती नहीं होती है ॥२३॥

गुणास्त्वयि यथा पूर्णा दोषा पूर्णास्तथा मयि ॥ अलसत्वादहङ्कारा-दज्ञानाल्लोभतो मया ॥ २४ ॥ दम्भात्प्रमादाद्दाक्षिण्यात्स्वभावात्सङ्गतः कृतान् ॥ असङ्ख्यानपराधान्मेऽगणयित्वा क्षमस्व माम् ॥ २५ ॥ पिता माता गुरुर्भ्राता सखा बन्धुस्त्वमेव मे ॥ विद्या सत्कर्म वित्तं च पुरः पृष्ठे च पार्श्वयोः ॥२६॥ मूर्ध्नि हृत्कमले योऽन्तर्बहिर्जन्मनि जन्मनि ॥ कुलस्वा-मीष्टदेवो नो धृतः पितृपितामहैः ॥ २७ ॥ सर्वं त्वमेव लक्ष्मीश न जाने त्वां विना परम् ॥ दुःस्मृतिं हर दूरान्मे विस्मृतिं ते विलोपय ॥ २८ ॥ त्वत्स्मृतिं सम्प्रदेह्यद्य त्वत्समो नास्ति मे प्रियः ॥ त्वन्मनास्त्वद्गतप्राणस्त्व-त्पादाम्बुजसंश्रितः ॥ २९ ॥ तव भक्तोऽस्मि दासोऽस्मि शिष्यः पुत्रोऽस्मि केवलम् ॥ भृत्यस्त्वमेव विश्वस्य स्मरामि त्वामहर्निशम् ॥३०॥

आप जिस प्रकार गुणसे पूर्ण हैं उसी प्रकार मैं दोषपूर्ण हूं। आलस्यसे, अहङ्कारसे, अज्ञानसे, लोभसे, दम्भसे, प्रमादसे, दाक्षिण्यसे, स्वभावसे, अथवा संगसे मैंने जितने अपराध किये हैं उन मेरे असंख्य अपराधोंको नहीं गिन कर आप मुझे क्षमा कीजिये । मेरे, पिता, माता, गुरु, भ्राता, सखा, बन्धु, विद्या, पुण्य और धन आप ही हैं । आगे, पीछे, बगल बगलमें, शिर पर, हृदयमें, बाहर, भीतर, अनेक जन्मोंमें, पिता और पितामहोंसे धरण किये हुए इष्ट देव भी आप ही हैं। हे लक्ष्मीनाथ! ये सब आप ही हैं। आपके बिना दूसरेको मैं नहीं जानता । दूसरे

ही मेरे दुष्ट वस्तुके स्मरणको हरण कर लो एवं आपको भूल जानेकी प्रवृत्तिको हटाओ। आपके स्मरण करनेकी शक्ति मुझे दो, आपके समान प्रिय मेरा कोई नहीं है। आपमें मन लगाये हुए आपमें प्राण दिये हुए, आपके चरणकमलोंका आश्रित मैं आपका भक्त हूं, शिष्य हूं, पुत्र हूं, सारे संसारका केवल दास हूं। आपका रात दिन स्मरण करता हूं॥३०॥

श्रीहरिर्मम हृत्पद्मकर्णिकास्थोऽतिसुन्दरः॥ पद्मासनसमासीन इन्द्रनीलसमद्युतिः ॥ ३१ ॥ कञ्जकोमलपादाग्रः कुङ्कुमाधिकवर्णवान् ॥ वज्राङ्कुशध्वजाब्जाङ्कपादाब्जनखरत्नवान् ॥३२॥ क्वणन्नूपुरसन्नादवलयाद्यपदाम्बुजः ॥ अतसीपुष्पसङ्काशतेजःपुञ्जोरुरञ्जितः ॥ ३३ ॥ नितम्बपीतवसनः स्वर्णकाञ्च्याश्रितोऽच्युतः ॥ विरिञ्च्याधारसौवर्णगम्भीराब्जाभनाभिकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्माण्डगृहकमृदुश्लक्ष्णरेखात्रयोऽधरः ॥ धर्मस्तनोऽधर्मपृष्ठः श्लक्ष्णसूक्ष्मतनूरुहः ॥ ३५ ॥ श्रीवत्साङ्कः कौस्तुभाढ्यो वैजयन्तीहृदम्बुजः ॥ उन्नतांसाजानुलम्बिबाहुर्भीतिवरप्रदः ॥३६॥ कुङ्कुमाभकरन्यस्तशङ्खचक्रसुलक्षणः ॥ किङ्किणीकङ्कणलसद्वलयाङ्गदभूषितः ॥ ३७ ॥ कम्बुग्रीवः सुबिम्बोष्ठः कुन्दकुड्मलदंष्ट्रवान् ॥ आदर्शवद्दृश्यसूक्ष्मगण्डयुग्मसुमण्डितः ॥ ३८ ॥ सुनासोऽनिमिषः शुभ्रः करुणापूर्णलोचनः ॥ शरत्पूर्णेन्दुवदननतनीलसुकुन्तलः। ३९। अतुल्यतिलकोपेतो रत्नकुण्डलमण्डितः ॥ स्फुरद्रत्नकिरीटश्च सर्वलक्षणसंयुतः ॥ ४० ॥ जगद्विलक्षणः श्रीमान्मद्विम्बो नित्यचित्सुखः ॥ सूर्यकोटिप्रतीकाशश्चन्द्रकोटिसुशीतलः ॥ ४१ ॥ अनन्तदेवैर्ब्रह्माद्यैरवेद्योऽप्राकृतो हरिः। भूरमाभ्यां समाश्लिष्टो ब्रह्मरुद्रेन्द्रसेवितः ॥४२॥ पूर्णानन्दज्ञानदयामूर्तिः परममङ्गलः ॥ मङ्गलाङ्गो मङ्गलाङ्को भक्तमङ्गलदायकः ॥ ४३ ॥ करुणामृतपूर्णाभ्यां मां नेत्राभ्यां समीक्षते ॥

मेरे हृदयरूप कमलकी कर्णिकामें स्थित, सुन्दर, पद्मासनमें बैठे हुए, इन्द्र नीलके समान कान्तिवाले, कमल से भी कोमल, कुंकुमके वर्णके चरण तलवाले, वज्र, अङ्कुश, ध्वजा एवं कमलरेखासे अङ्कित, नखरूप रत्नोंसे शोभित चरणवाले, शब्दको करते हुए नूपुरके वलयसे शोभित चरणवाले एवं तीसीके फूलके समान तेजसे शोभित वर्णवाले, पीत वस्त्र धारण किये हुए, सुवर्णकी कांची (करधनी) से शोभित, अच्युत, ब्रह्माका आधार गम्भीर, सुन्दर एवं कमलके जैसे नाभिवाले, ब्रह्माको मोहनेवाले मन्द हास्यकी तीन रेखा धारण किये हुए, धर्मरूप स्तनवाले, अधर्मरूप

पीठवाले, चिकने और छोटे रोमवाले, श्रीवत्स और कौस्तुभसे शोभित, हृदय कमलमें वैजयन्ती धारण किये हुए उन्नत (ऊंचे) कन्धा, लम्बजानु और अभय दान देनेवाले हाथोंसे युक्त, कुङ्कुम वर्णसे हाथोंमें सुन्दर लक्षणके शङ्ख और चक्रको धारण किये हुए, किंकिणी, कङ्कण वलय, (बेरा) और अङ्गद (बिजायठ)से भूषित, शङ्खके समान ग्रीवा-वाले, लाल ओष्ठवाले,कुन्दकी कलीके समान दांतवाले,दर्पणकी जैसी चमकवाले दो गालोंसे शोभित, सुन्दर नासावाले, सुन्दर भौं युक्त करुणा पूर्ण नेत्रवाले शरतकालके पूर्ण चन्द्रके समान मुखमें लगे हुए लम्बे नील केश वाले, अनुपम तिलकसे शोभित, रत्न कुण्डलसे शोभित, चमकते हुए रत्नके किरीटवाले, सब लक्षणसे संयुक्त, संसारसे विलक्षण, श्रीसे युक्त, नित्य चित् और सुखरूपी करोड़ों सूर्यके प्रकाशवाले, करोडों चन्द्रमाके समान शीतल, अनन्त वेद और ब्रह्मादिसे नहीं जाने हुए अशकुन, हरि भूमि और लक्ष्मीसे आलिङ्गित, ब्रह्मा और इन्द्रसे सेवित, पूर्ण आनन्द, ज्ञान और दयाकी मूर्ति, परम मङ्गलमय अङ्गवाले एवं भक्तोंके मङ्गलको देनेवाले, हरि करुणारूप अमृतके पूर्ण नेत्रोंसे मुझको देखते हैं ॥ ४४ ॥

का चिन्ता मे इहामुत्र सर्वारिष्टं हरत्यसौ ॥४४॥ तत्पदाम्बुजविश्वासे सर्वाभीष्टं ददाति हि ॥ इति स्मरन्नहोरात्रं तं त्वाहं शरणं गतः ॥ ४५ ॥ भोः स्वामिन्पूर्णकामस्त्वं सम्पूर्णैश्वर्यवानपि ॥ स्वप्रयोजनहीनोऽपि मायया बहुरूपवान् ॥ ४६ ॥ लोकोपकरणायैव त्वितरासाध्यकृत्यवान् ॥ बहुद्री-नुद्धरन्सेतुमनायासादकल्पयः ॥ ४७ ॥ क्षणेनोत्पादितं चापि स्थूलब्रह्मा-ण्डमद्भुतम् ॥ वहसि त्वमुपायेन बहुसूक्ष्ममृदूदरे ॥ ४८ ॥

मुझको क्या चिन्ता है, ये मेरे इस लोक और परलोकमें सब अरिष्टको हरण करेंगे। उनके चरणकमलमें विश्वास होनेसे वह सब अभीष्टको देते हैं ऐसा दिनरात स्मरण करता हुआ मैं आपकी शरणमें आया हूं। हे स्वामी आप पूर्णकाम हैं, सम्पूर्ण ऐश्वर्यसे युक्त होने एवं अपना कुछ प्रयोजन नहीं रहने पर भी मायासे बहुत रूप धारण करनेवाले हैं। आप संसारको उपकार करनेहीके लिये औरोंसे असाध्य कार्यको करनेवाले हैं। आपने बहुतसे पाप पहाड़ोंको उखाड़ कर अनायास सेतुको बांधा है। क्षणमें उत्पन्न किये हुए स्थूल अद्भुत ब्रह्माण्डको आप उपायसे अपने अति सूक्ष्म, कोमल उदरमें वहन करते हैं ॥४८॥

एवं महाभारवहस्य विश्वकुटुम्बिनः कारुणापूर्णसिन्धोः ॥ मम त्वदीयस्य सुसूक्ष्मलेशलवाल्पकस्योद्धरणं क्रियते ॥ ४९ ॥ श्रीवेङ्कटेश मत्स्वामिञ्ज्ञानानन्द दयानिधे ॥ दुःखसागरमग्नं मां स्वीयं नोद्धरसे कुतः ॥५०॥ श्रीनिवास कृपापूर्ण भक्तपोषणदीक्षित ॥ संसारारण्यपतितं दयया नेक्षसे कुतः ॥५१॥ भक्तबन्धो दयासिन्धो त्वत्पादाब्जे नमाम्यहम् ॥ सूक्तासूक्त-

मिदं सर्वमपराधं क्षमस्व मे ॥५२॥ वरं वरं च वरये भक्तिं त्वत्पादयोः स्मृतिम् ॥ सदा नानार्थविज्ञानं देहीहामुत्र सौख्यदम् ॥५३॥ श्रीस्वामितीर्थदुग्धाब्धौ श्वेतद्वीपसुमण्डपे ॥ श्रीभूभ्यां विहरन्विष्णो मुक्तिं भक्ताय देहि मे ॥ ५४ ॥

इस प्रकार बड़े भारको वहन करनेवाले, संसाररूप कुटुम्बवाले, करुणाके पूर्ण समुद्र, आपके लिये मुझ जैसा अत्यन्त छोटेका उद्धार करना क्या बड़ा भारी है ? हे श्रीवेङ्कटेश ! मेरे स्वामी ! ज्ञान और आनन्दस्वरूप ! दयानिधि ! दुःखके समुद्रमें डूबे हुए अपने भक्त मुझको आप क्यों नहीं उद्धार करते हैं। हे श्रीनिवास ! कृपापूर्ण ! भक्तोंके पालन करनेमें तत्पर ! संसाररूपी वनमें पड़े हुए मुझको आप दयासे क्यों नहीं देखते ? हे भक्तबन्धु ! दयासिन्धु ! आपके चरण कमलोंमें मैं प्रणाम करता हूं, भला या बुरा कहा हुआ मेरा अपराध क्षमा कीजिये और आपके चरणोंमें भक्ति, आपका स्मरण, सदा लोक और परलोकमें सुख देनेवाले अनेकों अर्थ विज्ञान, यह श्रेष्ठ वर मैं मांगता हूं, दीजिये। श्रीस्वामिपुष्करिणीरूपी क्षीरसागरमें, श्वेतद्वीपरूप मण्डपमें श्री और भूमि देवीके साथ विहार करते हुए विष्णु ! मुझ भक्तको मुक्ति दीजिये ॥५४॥

श्रीसूत उवाच—

इति स्तुत्वा वेङ्कटेशं रमेशं तूष्णीम्भूतो देवशर्मा सुभक्तः ॥ भक्तेभ्योऽभीष्टार्थवर्षप्रबुद्धं साष्टाङ्गं तं प्राणमत्स्वेष्टदेवम् ॥ ५५ ॥ अथ स्तोत्रेण सन्तुष्टः श्रीनिवासः सतां गतिः ॥ मेघगम्भीरया वाचा वरदानमथाब्रवीत् ॥ ५६ ॥

श्री सूतजी बोले—लक्ष्मीपति श्रीवेङ्कटेशको इस प्रकार स्तुति करके श्रेष्ठभक्त देवशर्मा चुप हो गये और भक्तोंके अभीष्टकी पूर्ति करनेमें जागृतरूप अपने इष्टदेवको उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अब स्तुतिसे प्रसन्न सन्तोंकी गति श्रीनिवास मेघके समान गम्भीर वचनसे वरदान देनेका वचन बोले ॥५६॥

श्रीभगवानुवाच—

प्रीतोऽहं ते द्विजश्रेष्ठ मदुपासनकर्मणा ॥ यन्महैश्वर्यसंसिद्धिकारणं स्तोत्रमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ कृतवानसि तस्मात्त्वं भवेर्मान्योऽत्र परत्र च ॥ मद्भक्तवायुशिष्यस्य गुरुपादावलम्बिनः ॥ विपन्नाशः सम्पदाप्तिर्भूयात्ते मदनुग्रहात् ॥ मम भक्तस्य ते गेहे स्वर्णवृष्टिर्दिने दिने ॥ ५९ ॥ अयुतायुश्च ते दत्तं पुत्रपौत्रास्तथायुषः ॥ शतपूरुषपर्यन्तं भुक्त्वा भोगाननेकशः ॥ ६० ॥ ततो मत्पदमाप्नोषीत्युक्त्वाऽदृश्यो बभूव ह ॥ ६१ ॥

श्रीभगवान बोले—तुम्हारी उपासनासे मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूं, तुमने महा ऐश्वर्यकी सिद्धिके कारण उत्तम स्तुति की है, इसलिये तुम इस लोक और परलोकमें भय न करो। मेरे भक्त वायुके शिष्य, गुरुके चरणमें आश्रय करनेवाले, तुम्हारी विपत्तिका नाश और सम्पत्तिकी प्राप्ति हो। मेरे भक्त तुम्हारे घरमें प्रति दिन सुवर्णकी वर्षा हो। मैंने तुमको दश हजार वर्षकी आयु तथा उतनी आयुके पुत्र पौत्रों भी दिया है। सौ पुरुष (पीढ़ी) तक अनेकों भोग भोग कर तुम मेरे पदको प्राप्त होगे। ऐसा कह कर भगवान अदृश्य हो गये ॥ ६१ ॥

श्रीसूत उवाच—

भोः शौनकाद्या मुनयो निःसङ्गाश्च तपस्विनः ॥ भक्तवश्यो वेङ्कटेशः प्रसन्नो भवति ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ यूयं गत्वा वेङ्कटेशं रमेशं नत्वा स्तुत्वा वेदवेद्यं सुभक्त्या ॥ भक्तेभ्योऽभीष्टार्थवर्षप्रवृद्धं सम्प्रीणीध्वं तेन वोऽभीष्टसिद्धिः ॥ ६३ ॥ श्रीवेङ्कटेशस्य कथामृतं त्विदं माहात्म्यसारं सुतपस्विमृग्यम् ॥ श्रीवेङ्कटेशस्य महाप्रियप्रियं लोकोत्तरं देवऋषिप्रियं च ॥६४॥

श्रीसूतजी बोले—हे शौनक आदि मुनियो ! निःसङ्ग तपस्वियों ! भक्तपरवश श्रीवेङ्कटेश ही प्रसन्न होते हैं। आप लोग जाकर वेद वेद्य, लक्ष्मीपति, भक्तोंके अभीष्टकी वर्षा करनेमे प्रवृद्ध वेङ्कटेशको प्रणाम और स्तुति करके उनको प्रसन्न करें। इससे आप लोगोंकी अभीष्टकी सिद्धि होगी। श्रीवेङ्कटेशकी यह कथारूपी अमृत श्रेष्ठ तपस्वियोंसे ढूढे जानेके योग्य, श्रीवेङ्कटेशके भक्तोंका प्रिय, संसारमें उत्तम, देवता एवं ऋषियोंका प्रिय एवं माहात्म्यका सार है ॥६४॥

समस्तपापौघविनाशकारणं समस्तपुण्यौघसमृद्धिकारणम् ॥ श्रीवेङ्कटेशस्य पदारविन्दं सद्भक्तिवृद्धेरसमानकारणम् ॥ ६५॥

श्रीवेङ्कटेशके युगल चरणकमल समस्त पाप समूहोंको नाश करनेवाला, समस्त पुण्यसमूहोंको बढ़ानेवाला एवं श्रेष्ठभक्तिको बढ़ानेका महान् कारण है ॥६५॥

वक्तुः श्रोतुः पाठकस्य पारायणपरस्य च ॥ परात्परो वेङ्कटेशः प्रसन्नो भवति क्षणात् ॥ ६६ ॥ स्तोत्रेणानेन सन्तुष्टो वेङ्कटेशो रमापतिः ॥ यान्यान्कामान्कामयन्ते तांस्तान्मुक्तिं ददाति च ॥ ६७ ॥

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीवेङ्कटेशस्य सकलाभीष्टप्रदानमहिमानुवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इसको कहनेवाले, सुननेवाले, पाठ करनेवाले एवं इसका पारायण करनेवालेको परात्पर श्रीवेङ्कटेश क्षणमात्रसे प्रसन्न होते हैं और इस स्तोत्रसे सन्तुष्ट होकर रमापति वेङ्कटेशजी जिन मनोरथोंको मनुष्य चाहते हैं उनको तथा मुक्तिको भी देते हैं। मनुष्य जिन वस्तुओंकी इच्छा करते हैं, उन सब वस्तुओं और मुक्तिको भी देते हैं ॥६७॥

इति श्रीमदादित्यपुराणे श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्ये श्रीवेङ्कटेशस्य सकलाभीष्ट-
प्रदानमहिमानुवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीपाद्मादिपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यस्य
द्वितीयो भागः समाप्तः ॥

कल्याणाद्भुतगात्राय कामितार्थप्रदायिने ॥
श्रीमद्वेङ्कटनाथाय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥



* श्रीवेङ्कटेशार्पणमस्तु *

ॐ श्रीवेङ्कटेशतापिन्युपनिषत्प्रारभ्यते ॥

तत्र पूर्वतापिनी—



ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः । भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः । व्यशेम देवहितं यदायुः । स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हरिः ॐ जनको ह वै नाम राजा वैदेहो राज्ये अमात्यादीन् भ्रातॄंश्च निधापयित्वेदमशाश्वतं मन्यमानः शरीरं वैराग्यमुपेतोऽरण्यं निर्जगाम । स तत्र परमं तप आस्थायादित्यमुदीक्षमाण ऊर्ध्वबाहुस्तिष्ठत्यन्ते सहस्रस्य मुनिरन्तिकमाजगामाग्निरिवाऽधूमकस्तेजसा निर्दहन्निव । सदा तेषां सम्मत आत्मविच्छाकायन्योऽब्रवीदुत्तिष्ठोत्तिष्ठ वरं वृणीष्वेति राजानम् । स तस्मै नमस्कृत्योवाच भगवन्नाहमात्मवित्त्वं तत्त्ववित्, श्रृणुमो वयं त्वत्तः स्वात्मवेदनसाधनं प्रत्यक्षं प्रत्यक्षसिद्धिदमिति, उदाहैतद्वृत्तं पुरस्तादशक्यं कथं पृच्छस्येतत्प्रदनं वैदेहान्यान्कामान्वृणीष्वेति । शाकायन्यस्य तदनु शिरसाऽस्य चरणावभिमृशमानो राजेमां गाथां जगाद ॥

इत्याथर्वणे मन्त्ररहस्ये श्रीवेङ्कटेशपूर्वतापनीये प्रथमः प्रपाठकः ॥ १ ॥

भगवन्नस्थिचर्मस्नायुरोमनाडीमांसमेदोमज्जाशुक्रशोणितश्लेष्माऽसृक्पूरिते विण्मूत्रवातपित्तसङ्घाते दुर्गन्धे निस्सारेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः ॥ १ ॥ कामक्रोधलोभमोहमदमात्सर्यविपदृष्टवियोगानिष्टसम्प्रयोगक्षुत्पिपासाजरामृत्युरोगशोकाद्यैरभिभूतेऽस्मिञ्छरीरे किं कामोपभोगैः ॥ २ ॥सर्वं चेदं क्षयिष्णु पश्यामो यथेमे दंशमशकादयस्तृणवनस्था उभये प्रध्वंसिनः ॥ ३ ॥ अथ किमेतैर्वा परे महाधनुर्धराश्चक्रवर्तिनः केचित्प्रद्युम्नश्रुतिद्युम्नेन्द्रद्युम्नाः, कुवलयाश्वयौवनाश्वबध्याश्वाश्वपतिशशिबिन्दुहरिश्चन्द्राम्बरीषा अथो अनुन्मत्ताः स्वर्यातिययात्यनरण्योग्रसेनादयो मरुद्भरतप्रभृतयो राजानो मिषन्तो बन्धुवर्गं महतीं श्रियं त्यक्त्वा अस्माल्लोकादमुं प्रयाता इति ॥ ४ ॥ अथ किमेतैर्वा परैः अन्यैर्गन्धर्वाऽप्सरोयक्षराक्षसभूतगणपिशाचोरगग्रहादीनां निरोधनं पश्यामः ॥५॥ अथ किमेतैर्वा शोषणं महार्णवानाम्, शिखरिणां प्रपतनम्, ध्रुवस्य चलितम्, पातः कल्पकपादपानाम्, निमज्जनं पृथिव्याः, स्थानादपसरणं सुराणामित्येतद्विधेऽस्मिन्संसारे किं कामोपभोगैः ॥६॥ अर्थेष्वेवासक्तस्यासकृत्पुरावर्तनं दृश्यत इत्युद्धर्तुमर्हसि । अन्धोदपानस्थभेक इवाहमस्मिन्संसारे, भगवंस्त्वं नो गतिस्त्वं नो गतिः ॥ ७ ॥

अथ जन्मजरामरणदुःखप्रधानेऽस्मिन्संसारे भगवद्भक्तियोगं विना नान्यत्परायणमित्यतो वेङ्कटेशस्य सर्वसुलभस्य सर्वप्रत्यक्षानितरलभ्यस्यास्य सङ्कल्पवशाज्जातप्रपञ्चे यत्सारभूतं तदेव ते प्रदर्शयिष्ये वैदेह शृणुष्वैतद्भगवतेनैव चेत्यस्येति ॥ ८ ॥

इत्याथर्वणे मन्त्ररहस्ये श्रीवेङ्कटेशपूर्वतापनीये द्वितीयः प्रपाठकः ॥ २ ॥

अथ भगवाञ्छाकायन्यस्त्वब्रवीद्राजन् जनक वैदेह मैथिलवंशध्वजशीर्ष आत्मज्ञः कृतकृत्यस्त्वं राजर्षे ब्रह्मविच्छ्रेष्ठ इति विश्रुतो भवसीत्ययं वा खलु पन्थास्ते नो भगवान् पुरा समुपदिदेश । अथ वै तेऽहं तद्वक्ष्याम्येतत्सर्वं विदितं भवति ॥१॥ अथ य एषोऽत्यवष्टम्भेनेत्यूर्ध्वमुत्क्रान्तो व्यथमानो व्यथनमीतस्तस्य तमः प्रणुदत्येष आत्मेत्याह भगवान् ॥२॥ अथ य एष सम्प्रेत्यास्माच्छरीरात्स-

मुत्थाय परं ज्योतिरूपसम्पद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एव आत्मेति होवाचैतद्मृतमभयमेतत्परायणमेतद्ब्रह्मेति ॥ ३ ॥ अथ खल्वियं ब्रह्मविद्या सर्वा सर्वोपनिषद्विद्या राजन्नस्माकं भगवता मैत्रेयेण व्याख्याताऽहं ते कथयिष्यामि ॥

तद्यथाऽपहतपाप्मानस्तिग्मतेजस ऊर्ध्वरेतसो वालखिल्या वैखानसाश्चेति श्रूयन्ते । अथ ते प्रजापतिमब्रुवञ्छकटमिवाचेतनमिदं शरीरम्, तस्यैष खल्वीदृशो महिमाऽतीन्द्रियेण येन तद्विधमेतच्चेतनवत्प्रतिष्ठापितम् । प्रचोदयिता वैषोऽस्य को भगवन्निदमस्माकमादौ ब्रूहीति । स तानुवाच ॥ ४ ॥

एतत्खलु वा व सर्ववरिष्ठः श्रूयते उत्तमपुरुषः स एष शुद्धः पूतः शान्तोऽप्राणोऽनिशमात्मा नो ज्ञेयः शाश्वतश्च स्थिर ईशः स्वतन्त्रः स्वमहिम्नि तिष्ठति । अनेनेदं शरीरं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैषोऽस्येति तदधीनोऽयमात्मा पराधीनचेतनोऽनादिकर्मबद्धः पुरुषसंज्ञो बुद्धिपूर्वमिहैवावर्ततेंऽशेन सुप्तस्येव बुद्धिपूर्वं वियोधयत्यग्रे । यो ह खलु वावांशांशिनामात्रः प्रतिपुरुषं क्षेत्रज्ञः सङ्कल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिर्विश्वोऽक्षरस्तेन चेतनेनेदं शरीरं चेतनवत्प्रतिष्ठापितं प्रचोदयिता वैषोऽस्येति ॥५॥

ते होचुर्भगवन्नीदृशस्य कथमंशीभूतस्यानुरूपस्यात्मनः पराधीनचैतन्यत्वेन, तस्य तु स्वाधीनचैतन्यत्वेन च वर्णनमिति ॥ ६ ॥

प्रजापतिर्वा एकोऽग्रे तिष्ठन्स नारमतैकः स आत्मानमभिध्यायन् बह्वीः प्रजा असृजत । अस्मै वा प्रबुद्ध अप्राणः स्थाणुरिव तिष्ठमाना अपश्यत् स आरभतान्यथैतासां प्रतिबोधनायाऽभ्यन्तरं विशामीति । स चतुर्भुजः करवरदरारिपो वेङ्कटेशचित्प्रभारूपो दहरवैकुण्ठरथभूतसङ्गः स्वस्थः स्वतन्त्रः । पुनः स वायुमिवात्मानं कृत्वाभ्यन्तरं प्राविशत् स एको नाशकत्स पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्योच्यते यः प्राणोऽपानस्समानो व्यान उदान एवैताः शिरा अनुव्याप्ता एष वाव स व्यानः॥७॥

अथोपांशुरन्तर्याम्यभिभवत्यन्तर्यामो उपांशुमनयोरन्तराले चौष्ण्यमप्रासघद्यदौष्ण्यमुरुपोदयः पुरुषस्सोऽग्निर्वैश्वानरोऽसौ । अन्यत्राप्युक्तम् अग्निर्वैश्वानरो योऽयमन्तः पुरुषो येनेदमन्नं पच्यते यदिदमद्यते तस्यैष घोषो भवति । यदेनत्कर्णौ च पिधाय शृणोति च यदाक्रमिष्यन् भवति नैनं घोषं तं शृणोति । स एष

पञ्चधात्मानं विभज्य निहितो गुहायां मनोमयोऽशरीरो भारूपः सत्यसङ्कल्प आत्मा दिव्यशरीरः श्रीवेङ्कटेश इति ॥ ८॥

स वा एषोऽस्य हृदन्तरे तिष्ठन्नकृतार्थो मन्यते यत्त्वोदनमश्नातीत्यथेमानि भित्त्वौदिनः पञ्चभी रश्मिभिर्विषयानत्तीति। बुद्धीन्द्रियाणि यानीमान्येतान्यस्य रश्मयः कर्मेन्द्रियाण्यस्य हया रथः शरीरं मनोऽभियन्ता प्रकृतिमयोऽस्य प्रचोदनेन खल्वीरितं परिभ्रमतीदं शरीरञ्चेतनवत्प्रतिष्ठितं प्रचोदयिता चैषोऽस्येति॥९॥ स वा योऽयं हृद्यन्तः पुरुषो भगवान् वेङ्कटेशस्तुरीयो वासुदेवात्मा स एष दहराकाशमादित्यरूपः शरीरमित्थं रथीकृत्य स्वयं रथिको भूत्वैवमेव पिण्डब्रह्माण्डरथरथिको बभूव ॥ १० ॥

स वा एष आत्मेहात्मनिवसितानि तैः कर्मफलैः परिभूयमान इव शरीरे वा विवरत्यव्यापकत्वात्सूक्ष्मत्वाददृश्यत्वादग्राह्यत्वान्निर्ममत्वाच्च नावस्थाकर्त्ता कर्तेह नपश्यः ॥११॥ स वा एष शुद्धः स्थिरोऽचलसालेपोऽव्यग्रोऽप्रेक्षकवदस्थितः स्वस्थश्चरितभूगुणमयेन पटेन नात्मानमन्तर्धायावस्थित इत्यवस्थितः ॥ १२ ॥

इत्याथर्वणे मन्त्ररहस्ये श्रीवेङ्कटेशपूर्वतापिनीये तृतीयः प्रपाठकः ॥३॥

ते होचुर्भगवन् यद्येवमात्मनो महिमानं सूचयसि, तर्ह्ययं वाव जीवात्मा कथं सितामितैः कर्मफलैरभिभूयमानः सदसद्योनिमापद्यते अवाचीं वोर्ध्वां वा गतिं द्वन्द्वैरभिभूयमानः परिभ्रमतीति। अस्योपव्याख्यानम्—पञ्चतन्मात्राणि भूतशब्देनोच्यन्ते। पञ्चमहाभूतानि भूतशब्देनोच्यन्ते। अथ तेषां समुदायस्तच्छरीरमित्युक्तम्। अथ यो ह खलु वाव अशरीर इत्युक्तः, स भूतात्मेत्युक्तोऽथास्ति तस्यात्मबिन्दुरिव पुष्कर इति ॥ १ ॥ स वा एषोऽभिभूतः परकृतैर्गुणैरित्यंशाभिभूतत्वात्सम्मूढः प्रयातः। सम्मूढत्वादात्मानं प्रभुं भगवन्तं कारयितारं नापश्यत्। गुणौघैस्तप्यमानः कलुषीकृतहृच्चित्तश्चञ्चलो लुप्यमानः सस्पृहो व्यग्रश्चाभिमानित्वं प्रयात इत्याह सोऽहं ममेदमिति। एवं मन्यमानो निबद्धो ह्यात्मनात्मानं जानन्नेव खचरः कृतस्वानुचरैः पत्रैरभिभूयमानः परिभ्रमतीति ॥ २ ॥

अथाप्यन्यत्राप्युक्तम्—यथा लोहपिण्डस्त्वग्निसम्पर्काल्लोहमयो लोहगन-

प्रहारादीननुभवतीति, तद्वद्देहेन्द्रियभूतगुणैरयं पुरुषोऽभिभूयत इव ॥ ३ ॥

अथाप्यन्यत्राप्युक्तम्—शरीरमिदं मैथुनादेवोद्भूतं संविद्व्यपेतं निरय एव मूत्रद्वारेण निष्क्रान्तमस्थिभिश्चितं मांसेनावलिप्तं चर्मणाऽवबद्धं विण्मूत्रपित्तकफमज्जामेदोवसाभिरन्यैश्च मलैर्बहुभिः परिपूर्णं कोशैरिव निर्मितम् ॥ ४ ॥

अथान्यत्राप्युक्तम्—संमोहो भयं विषादो निद्रा तन्द्रा व्रणो जरा शोकः क्षुत्पिपासा कार्पण्यं क्रोधो नास्तिक्यमज्ञानम्मात्सर्यं वै कारुण्यं मूढत्वन्निर्व्रीडत्वन्निकृतत्वमुद्धतत्वमसमत्वमिति तामसान्वितः। तृष्णा स्नेहो रागो लोभो हिंसाऽरतिर्दृष्टिव्यापृतत्वमित्यस्थिरत्वं चलत्वं व्यग्रत्वं जिहीर्षाऽर्थोपार्जनं मित्रानुग्रहणं परिग्रहावलम्बोऽनिष्टेष्विन्द्रियार्थेषु द्विष्टिरिष्टेष्विन्द्रियार्थेष्वभिषङ्ग इति राजसान्वितः परिपूर्ण एतैरभिभूत इत्ययं भूतजीवात्मा तस्मान्नानारूपाण्याप्नोत्याप्नोतीति ॥५॥

अथान्यत्राप्युक्तम्— महानदीपूर्मय इवानिवर्तकमस्यत्पुरा कृतं समुद्रवेलेव दुर्निवार्यमस्य मृत्योरागमनं सदसत्फलमयैः पाशैः पङ्गुरिव बन्धनम्, बन्धनस्थस्यैवास्वातन्त्र्यम्, यमविषयस्थस्यैव बहुतरावस्थम्, मदिरोन्मत्त इव मोदमदिरोन्मत्तम्, पाप्मना गृहीत इव भ्राम्यमाणम्, महोरगदष्ट इव विषदष्टम्, महान्धकार इव रागान्धम्, इन्द्रजालमिव मायामयम्, स्वप्न इव मिथ्यादर्शनम्, कदलीगर्भ इवासारम्, नट इव क्षणवेषम्, चित्रभित्तिरिव मिथ्यामनोमयमिति। यथोक्तम्—

"शब्दस्पर्शादयो ह्यर्था अनर्था इव ते स्थिताः ॥
एषां सक्तस्तु भूतात्मा न स्मरेच्च परं पदमिति" ॥ ६ ॥

ते ह खलु वा ऊर्ध्वरेतसोऽतिविस्मितमभिसमेत्योचुर्भगवन्नमस्ते त्वं नः शाधि, त्वमस्माकं गतिरन्या न विद्यतेऽस्य को विधिर्भूतजीवात्मनो येनेदं हित्वा सायुज्यमुपैति तं होवाचेति ॥७॥

अयं वाव खल्वस्य प्रतिविधिर्भूतात्मनो यद्विद्याधिगमः, स्वधर्मस्यानुचरणम्, स्वाश्रमेष्वेवानुक्रमणम्, स्वधर्म एव सर्वं धत्ते, विशाखेव नराणां तेनोर्ध्वभाग् भवत्यन्यथाधःपतत्येष स्वधर्मोपदेशेषु स्वधर्मातिक्रमेण नासमभवद्‌ाश्रमेष्वेवावस्थितस्तपस्वी मुच्यते ॥ एतदप्युक्तं नः—

तस्यात्मज्ञानेऽधिगमः कर्मबुद्धिर्वै हृद्दृम् ॥
तपसा प्राप्यते सत्त्वं सत्त्वात्संप्राप्यते मनः ॥
मनसा प्राप्यते ह्यात्मा आत्मना न निवर्तत इति ॥ ८ ॥

अथाह भृशविस्मितास्ते ह्यूर्ध्वरेतसः समुत्थाय पादयोः पितामहस्य दण्डवत्पुनः पतन्ति । पुनरुत्पतन्तस्तिष्ठन्तो भगवन्कृपालुस्त्वमसि सर्वज्ञो हि जगतां धाताऽसि पिताऽसि । वयं किञ्चिज्ज्ञाः प्रमाथिनो बहुभव्यपराङ्मुखाः संसारभीता हि । अस्माकं सर्वेषां च यत्सारतरं तत्त्वज्ञानं सूक्ष्मोपदेशेनैवानायासेन मननाय दृढं भवति, यदनुष्ठानमात्रेण चैकस्मिन्नेव जन्मनि परा गतिर्भवति, तद् ब्रूहीति । अथ वा शिष्यानुजिघृक्षुः परमसाधनं परमसुलभं परमश्रेष्ठं परमरहस्यं प्रतिज्ञां चकार । तेन ते कृतकृत्या अभूवन् । तज्ज्ञानादेव पूर्वे वर्तमाना भविष्यन्तश्च मुक्ता मुच्यमाना मोक्ष्यन्ते च । तदेवारोपयाम्यनेनैव विमोक्षाय भवत्यस्मिन्निष्ठा परा देहे गेहे राज्ये वा सुखासीनो विमना न क्लिश्यतीति तद्वक्तुमुपक्रमते ॥९॥

इत्यथर्वणमन्त्ररहस्ये वेङ्कटेशपूर्वतापिन्युपनिषदि चतुर्थः प्रपाठकः ॥ ४ ॥

तमो वा इदमेक आसीत्तस्मात्परेण नोदितः विषमत्वं यात्येतद्वै रजसो रूपं तेजः खल्वीरितं विषमत्वं प्रयात्येतद्वै सत्त्वस्य रूपं तत्सत्त्वमेवेरितं रजसोऽपाद्रवत्सोंऽशोऽयं यश्चैतन्यमात्रः प्रतिपुरुषं क्षेत्रज्ञः सङ्कल्पाध्यवसायाभिमानलिङ्गः प्रजापतिस्तस्य प्रोक्तोऽस्यास्तनवो ब्रह्मरुद्रौ विष्णुरिति । अथ यो ह खलु वावास्य राजसांशोल्लासेन योऽयं विष्णुः स वा एकस्त्रिधा भूत्वा दशधा अपरमितभूतोद्भूतत्वाद्भूतेषु चरति प्रतिष्ठितः स देवानामधिपतिर्बभूवेत्यसावात्मान्तर्बहिश्चान्तर्बहिश्च ॥ १ ॥

यो ह वै भगवानात्मा यथान्तर्बहिर्व्योमः प्रसिद्धस्तथा स्वं रूपं परमं द्वेधा चकार विष्णुर्वेङ्कटेशाख्यं नारायणाख्यमिति । अथैतन्नारायणाख्यस्य वैकुण्ठन्नित्यनिवासं चकार, वेङ्कटेशाख्यस्य तु वेङ्कटाचलं नित्यनिवासम् । यथा बिम्बादिवोद्भूतं बिम्बं तद्वन्नारायणाद् वेङ्कटेशो वैकुण्ठयोर्वेङ्कटाचलस्तदनु वेङ्कटाचलनामकं संस्थानं वेङ्कटेशोऽहमधिष्ठाय सकलदृग्गोचरत्वेन सकलतारणाय स्वयं व्यक्तरूपी

वक्षःस्थितरमाख्यं मङ्गलं रूपमादाय स्वामिपुष्करिणीतीरे सन्निहितः समास्ते ।
अत्रायं श्लोको भवति—

मायावी परमानन्दस्त्यक्त्वा वैकुण्ठमुत्तमम् ॥
स्वामिपुष्करिणीतीरे रमया सह मोदते ॥ इति ॥

स्वयं भगवानद्यापि परिदृश्यतेऽद्यापि परिदृश्यते । ततस्सर्वं सुलभं तदुपासनं यत्र कुत्र वा स्थितस्य सकृद्दर्शनमात्रेण सर्वज्ञो भक्तस्तदुपासनयैव मुच्यत एवेति तत्सर्वं यथाविभवविस्तरं समासेनैव वक्ष्यामीति भगवान् प्रजापतिः ॥२॥

श्रुत्वेह ऊर्ध्वरेतसो भगवान् भक्तानुजिघृक्षया यथायोग्यमन्तर्यामिरूपाण्यदधत्तदनु तत्सर्वं विशिष्टाधिकरणमेवोपासनाविषयमेवेति मन्वानः पुनर्दिव्यास्तेऽर्द्धमानुपमयं व्यक्तिभेदभिन्नानि वा अवतारसहस्राण्यदधत्तेभ्योऽभिमुख्यं वेङ्कटेशाख्यं भगवद्वपुरित्यत एवागम्योऽप्रतर्क्यश्च तन्महिमेत्यत्र सम्प्रदायविदो मुनय एवमामनन्त्येवं खलु व्यवसायिनो रागिणां सांख्यो योगो रागिणां कर्मयोगो रागिणि रागिणां भक्तियोग एवं परमतरणोपायः । भक्तियोगिनां भगवदवताररूपगुणकर्मनामजालं विना नोपासनैव सञ्चच्छत इति । तत्राद्यावताररूपा अप्रत्यक्षा तदुपासनातीव गहनेत्यथ दयालुर्भगवानर्चावतारकोटिकोटिश्रेष्ठं सर्वसिद्धिदमित्युक्त्वोपरराम । तदद्योर्ध्वरेतसोऽभितः किमियं तूष्णीमुपासेति तस्य पदमभिमृश्यमाना श्रीवेङ्कटेश्वरस्य रहस्यमुपासनायाः प्रकारं सर्वमान्यमुपदिशन्तं प्रार्थयमाना अभवन् । तदनुपूर्वकृतां श्रीवेङ्कटेश्वरस्याज्ञां स्मरन् भक्तेभ्योऽवश्यमनुग्रहयोग्यमेवेति वालखिल्यान्प्रतिभूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुत्वा यावत्संवत्सरं वत्सरानन्तरं रहस्यत्रयं सर्वं ह वो वक्ष्यामीति प्रजापतिः प्रतिज्ञां चकार ॥
ॐ भद्रं कर्णेभिः । आयुः हरि ॐ ॥

इत्याथर्वणे मन्त्ररहस्ये श्रीवेङ्कटेशपूर्वतापिन्युपनिषदि पञ्चमः प्रपाठकः ॥

तन्त्रोत्तरतापिन्युपनिषत्—



ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः। व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

प्रजापतिरुवाचोर्द्ध्वरेतसः ॐ आपो वा इदमासन् सलिलमेव। स प्रजापतिरेकः पुष्करपर्णे समभवद्भगवतोऽस्यान्तर्मनसि कामस्समवर्तत इदं सृजेयमिति ॥१॥ स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा। स एतं संसृष्टं वेङ्कटेशेति चतुरक्षरं समलभत। ततः कालेन आदितः श्रीबीजं च खादेवालभत एवं पञ्चाक्षरं स्मरणीयमभवत् ॥२॥

तं पञ्चाक्षरं मन्त्रं स्मरन् स्थित्वा ततः कालेन तन्मन्त्रमहिम्ना सहस्रशीर्षादिलक्षितं पुरुषं प्रत्यक्षीचकार। तथाच यजूंषि—सहस्रशीर्षा पुरुष इत्यादीनि षोडश प्रसिद्धानि॥ ३ ॥

ततो ब्रह्मा विस्मयाञ्चकार अलौकिकमप्रतिमं रूपं वीक्ष्य। स तमाश्वासयत्। ततो भगवान् तस्य दिव्यदृष्टिं प्रददौ च ॥ ४ ॥

ततो ब्रह्मा कस्त्वं कोऽहमित्युवाच नारायणः क एवाहं कस्त्वमेवासीति। तस्माद्भगवतो नारायणस्य क इति मुख्यनाम तथैव क इति ब्रह्मणश्च नामासीत्। अतः क इति नारायणकृतं ब्रह्मनाम जानीयात्, यो जानीते सोऽश्वमेधफलमाप्नोति।

अथ नारायणो ब्रह्मणे नाभिपद्मगताय वेङ्कटेशाख्यं रूपं दर्शयामास। इद-

मतिरहस्यं गोप्याद्गोप्यनरम्। एतत्परं नवाक्षरं "ॐ नमः श्रीवेङ्कटेशाय" इत्युपादिशत्।

तज्जपानुद्धृद्दतत्त्वः स्रष्टुमुपाक्रामत्। भगवन् किमिदमादौ चतुरक्षरमनु पञ्चाक्षरं तदनु नवाक्षरं मन्त्रं परमुपदिष्टवानिति। सोऽब्रवीत्। ब्रह्मात्वत्तः सृष्टिकामोऽहमद्य त्वं तद्विधानेनानुष्ठानं विना तस्य न शक्नोपि किम्बहुना अहमपि। मम तद्रूपानुसन्धानं प्रेक्षितुं न शक्नुया इति। अथ विस्मितो महाप्रसाद इति ब्रह्मा प्राणमत्।

तमनु ततः शिरः स्पृष्ट्वा हृदये वेङ्कटेशाख्यं दिव्यं रूपं चतुर्भुजं वक्षःस्थलस्थितदिव्यमङ्गलदीप्यमानं कटिवरदशङ्खचक्रकरचतुष्टयं पीताम्बरं नीलमेघश्याममप्रतर्क्यप्रत्यङ्गशोभाभिरामं ध्यानगोचरं कारयित्वा मुख्याष्टाक्षरमहामन्त्रमुपदिदेश। तस्य ब्रह्मा ऋषिः। गायत्री छन्दः। सकलचराचरनियामिका वेङ्कट देवतेति। पूर्वोक्तमेव ध्यानमिति।

आदौ प्रणवं दक्षिणे कर्णे व्याहरत्, नम इति पश्चात्, वेङ्कटेशायेत्युपरिष्टात्। ॐ इत्येकाक्षरम्, नम इति द्वे अक्षरं, वेङ्कटेशायेति पञ्चाक्षराणि। एतद्वेङ्कटेशस्याष्टाक्षरं पदम्। यो ह वै श्रीवेङ्कटेशस्याष्टाक्षरं पदमध्येति, अनुपद्रवः सर्वमायुरेति, विन्दते प्राजापत्यं रायस्पोषङ्गौपत्यम्। ततोऽमृतत्वमश्नुत इति। प्रत्यगानन्दं ब्रह्मपुरुषं प्रणवस्वरूपम् अकारः—उकारः—मकारः—इति। तदेकं समभवत्तदोमिति—

यमुक्त्वा मुच्यते योगी जन्मसंसारबन्धनात्॥

ॐ नमो वेङ्कटेशायेत्यष्टाक्षरमूलमन्त्रोपासकः श्रीवेङ्कटेशसकृद्दर्शनपरः श्रीवैकुण्ठभवनमेकस्मिन्नेव जन्मनि गमिष्यति।

तदिदं पुरुषं पुण्डरीकं विज्ञानघनम्। तस्मात्तटिदाभमात्रो ब्रह्मण्यो देवकीपुत्रो ब्रह्मण्यो मधुसूदन इति। सर्वभूतस्थमेकं वै वेङ्कटेशं कारणपुरुषमकारणं परं ब्रह्म। ॐकारेण सहितं भवत्योमित्येतदक्षरमिदं सर्वमित्याद्येतदथर्वणशिखा वेङ्कटेशमन्त्रवैभवं योऽधीते स सर्वमहापातकोपपातकात्प्रमुच्यते, तस्य श्रीवेङ्कटेशस्य नारायणस्य सायुज्यमाप्नोति, य एवं वेदेत्युपनिषत्॥ १॥

अथाहाष्टाक्षरं वै वेङ्कटेशं ध्यायञ्जपंस्तन्महिम्ना मन्त्रराजमानुष्टुभं वेङ्कटेशमपश्यत् । तेन च वै सर्वमिदमसृजदष्टाक्षरेण यदिदं किञ्च । तत एवाष्टाक्षरेण वा इमानि भूतानि जायन्ते, अष्टाक्षरेणैव जातानि जीवन्ति, अष्टाक्षरं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तेनैव सर्वा वाचोऽपि सम्पद्यन्ते । तस्मात्सर्वात्मकमष्टाक्षरं य एवं वेद स सर्वात्मवान् भवति ॥ २ ॥

अथाह श्रीमन्नारायणाष्टाक्षरं ब्रह्मणे समुपदिश्य तन्महिम्ना प्रपञ्चं तन्मुखाद्विरचय्य तदनुजिघृक्षुः पुनः कदाचिदागत्य ब्रह्मन् वत्स त्वं प्रपन्नोऽसि रहस्यद्वयं न गृहीत्वा भगवानसीति, तदा निगर्वितः पुत्रः प्रणिपातादि कुर्वन्ननुशाधि मामिति, ततो मूर्धानमभिमृश्य शृणु वत्स महाचक्रविधानमिदं ब्रह्माहोमिति ।

अथाह नारायणः इदं सार्वकामिकं मोक्षद्वारं यथोगिन उपदिशन्ति षडारम्वा एतत्सुदर्शनं महाचक्रं तस्मात्सहस्रारं हुंफडिति षडक्षरं भवति षट्कोणं चक्रं भवति । षड् वा ऋतवः ऋतुभिः सम्मितं भवति । मध्ये नाभिर्भवति । वृत्ताकारेण नाभ्यां वा एते अराः प्रतिष्ठिताः मायया वेष्ठितवद्भवन्ति । अत एव माययात्मानं स्पृशति । तन्मध्ये श्रीं ॐ नमो वेङ्कटेशाय ग्लैमिति लेखनं भवति ।

अथाष्टाक्षरमष्टपत्रं चक्रं भवति । तन्मध्ये श्री वेङ्कटेशाय नमः, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमः श्रीवेङ्कटेशाय, ॐ नमो वेङ्कटेशायेति मालाष्टाक्षरो मन्त्रः प्रधानतया लेख्यो भवति । अष्टाक्षरा वै गायत्री । गायत्र्या सम्मितं भवति । बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति । क्षेत्रं क्षेत्रं वै मायया सम्पद्यते ।

अथ द्वादशारं द्वादशपत्रं चक्रं भवति । तन्मध्ये श्रीनिवासाय वेङ्कटेशाय नमः, ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति च लेख्यो भवति । द्वादशाक्षरा वै जगती । जगत्या सम्मितं भवति । बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति । स्थूलदेहं मायया स्पृशति ॥

अथ षोडशाक्षरं षोडशपत्रं चक्रं भवति । तत्र कादिस्वरा लेख्या भवन्ति । क्रमात्पुनः कादयः षोडशकला वै पुरुषः । पुरुष एवेदं सर्वं पुरुषेण सम्मितं भवति । बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति । सूक्ष्मदेहं मायया स्पृशति ॥

अथ चतुर्विंशत्यरं चतुर्विंशतिपत्रं भवति । श्रीवेङ्कटेशाय परमात्मने नमो

महाभीष्टकामानां प्रयच्छ भवति। तद्दलेषु मालामन्त्रो लेख्यो भवति। चतुर्विंशतिमूर्तयः ताभिस्सम्मिता भवन्ति। बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति। कारणदेहं मायया स्पृशति॥

अथ द्वात्रिंशत्पत्रं भवति। तद्दलेषु—

नमः श्रीवेङ्कटेशाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे॥
वासुदेवाय शान्ताय श्रीनिवासाय मङ्गलम्॥

इति लेखनीयं भवति। द्वात्रिंशदरा वा अनुष्टुभा सम्मितं भवति। अष्टोत्तरनवतिभिर्वा। एतत्सर्वतः सङ्क्रामति। छन्दांसि वै पत्राणि॥

अथ तदुत्तरं भूपुरत्रयेण वेष्टितं भवति। द्वारेषु मुखे क्षं क्षेत्रपालाय नमः इति, पृष्ठे तं तण्डुभैरवाय नमः इति, दक्षिणे दुं दुर्गायै नम इति, वामतो गं गणपतये नम इति द्वारदेवतास्थापनं भवति। तद्वाव एतच्छ्रीवेङ्कटेश्वरं महाचक्रं सार्वकामिकं मोक्षद्वारमृङ्मयं यजुर्मयं साममयं ब्रह्ममयममृतमयं भवति। तस्य पुरस्ताद्वसव आसते, रुद्रा दक्षिणतः, आदित्याः पश्चाद्विश्वे देवा उत्तरतो ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा नाभ्याम्। सूर्याचन्द्रमसौ, पार्श्वयोः।

तदेतदृचाभ्युक्तम् - ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्। यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः। यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति। य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इति।

तदेतच्छ्रीवेङ्कटेश्वरं महाचक्रं बालो वा युवा वा वेद, स महान् भवति। अष्टाक्षरेण होमं कुर्यादष्टाक्षरेणार्चनम्। तदेतद्रक्षोघ्नं मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्ठे बाहौ शिखायां वा बध्नीत। सप्तद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते। तस्माच्छ्रद्धया यां काञ्चिद्गान्दद्यात्सा दक्षिणा भवति।

अथाह नारायणः कृतकृत्यमात्मानं मन्यमानं वत्स ब्रह्मन् रहस्यं त्वं यदन्तर्भूतं तृतीयम्,तन्न वेत्सि तदुह तमुपदेक्ष्यामि, यदनुपदेक्ष्य नैतद्विद्यायाः पूर्तिर्भवति। जन्मकोट्यापि देवो न प्रसीदति। न यज्ञदानमात्रेण सर्वपूर्तिर्भवति। ततः खेचरीं मुद्रां तेऽहं दास्यामि। देयं राज्यम्, देयं शिरः, नाविचार्यैषा मुद्रा खेचरी देया भवति। खेचरीमुद्रायां सद्यः प्रकाशकं परिभासते। अभ्यासात्पवनमनःक्षयमूलादेवस्य प्रत्यक्षं भवति। देहान्ते निस्संशयेन देवोऽपरोक्षो भवति। ऋजकाय-

अथाहाष्टाक्षरं वै वेङ्कटेशं ध्यायञ्जपंस्तन्महिम्ना मन्त्रराजमानुष्टुभं वेङ्कटेशमपश्यत् । तेन च वै सर्वमिदमसृजदष्टाक्षरेण यदिदं किञ्च । तत एवाष्टाक्षरेण वा इमानि भूतानि जायन्ते, अष्टाक्षरेणैव जातानि जीवन्ति, अष्टाक्षरं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तेनैव सर्वा वाचोऽपि सम्पद्यन्ते । तस्मात्सर्वात्मकमष्टाक्षरं य एवं वेद स सर्वात्मवान् भवति ॥ २ ॥

अथाह श्रीमन्नारायणाष्टाक्षरं ब्रह्मणे समुपदिश्य तन्महिम्ना प्रपञ्चं तन्मुखादिरचय्य तदनुजिघृक्षुः पुनः कदाचिदागत्य ब्रह्मन् वत्स तं प्रपन्नोऽसि रहस्यद्वयं न गृहीत्वा भगवानसीति, तदा निगर्वितः पुत्रः प्रणिपातादि कुर्वन्ननुशाधि मामिति, ततो मूर्धानमभिमृश्य शृणु वत्स महाचक्रविधानमिदं ब्रह्माहोमिति ।

अथाह नारायणः इदं सार्वकामिकं मोक्षद्वारं यद्योगिन उपदिशन्ति षडारम्वा एतत्सुदर्शनं महाचक्रं तस्मात्सहस्रारं हुंफडिति षडक्षरं भवति षट्कोणं चक्रं भवति । षड् वा ऋतवः ऋतुभिः सम्मितं भवति । मध्ये नाभिर्भवति । वृत्ताकारेण नाभ्यां वा एते अराः प्रतिष्ठिताः मायया वेष्ठितवद्भवन्ति । अत एव माययात्मानं स्पृशति । तन्मध्ये श्रीं ॐ नमो वेङ्कटेशाय ग्लैमिति लेखनं भवति ।

अथाष्टाक्षरमष्टपत्रं चक्रं भवति । तन्मध्ये श्री वेङ्कटेशाय नमः, ॐ नमो नारायणाय, ॐ नमः श्रीवेङ्कटेशाय, ॐ नमो वेङ्कटेशायेति मालाष्टाक्षरो मन्त्रः प्रधानतया लेख्यो भवति । अष्टाक्षरा वै गायत्री । गायत्र्या सम्मितं भवति । बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति । क्षेत्रं क्षेत्रं वै मायया सम्पद्यते ।

अथ द्वादशारं द्वादशपत्रं चक्रं भवति । तन्मध्ये श्रीनिवासाय वेङ्कटेशाय नमः, ॐ नमो भगवते वासुदेवायेति च लेख्यो भवति । द्वादशाक्षरा वै जगती । जगत्या सम्मितं भवति । बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति । स्थूलदेहं मायया स्पृशति ॥

अथ षोडशाक्षरं षोडशपत्रं चक्रं भवति । तत्र कादिस्वरा लेख्या भवन्ति । क्रमात्पुनः कादयः षोडशकला वै पुरुषः । पुरुष एवेदं सर्वं पुरुषेण सम्मितं भवति । बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति । सूक्ष्मदेहं मायया स्पृशति ॥

अथ चतुर्विंशत्यरं चतुर्विंशतिपत्रं भवति । श्रीवेङ्कटेशाय परमात्मने नमो

महाभीष्टकामानां प्रयच्छ भवति । तद्दलेषु मालामन्त्रो लेख्यो भवति । चतुर्विंशतिमूर्तयः ताभिस्सम्मिता भवन्ति । बहिर्मायया वृत्ताकारेण वेष्टितं भवति । कारणदेहं मायया स्पृशति ॥

अथ द्वात्रिंशत्पत्रं भवति । तद्दलेषु—

नमः श्रीवेङ्कटेशाय शुद्धज्ञानस्वरूपिणे ॥
वासुदेवाय शान्ताय श्रीनिवासाय मङ्गलम् ॥

इति लेखनीयं भवति । द्वात्रिंशदरा वा अनुष्टुभा सम्मितं भवति । अष्टोत्तरनवतिभिर्वा । एतत्सर्वतः सङ्क्रामति । छन्दांसि वै पत्राणि ॥

अथ तदुत्तरं भूपुरत्रयेण वेष्टितं भवति । द्वारेषु मुखे क्षं क्षेत्रपालाय नमः इति, पृष्ठे तं तण्डुभैरवाय नमः इति, दक्षिणे दुं दुर्गायै नम इति, वामतो गं गणपतये नम इति द्वारदेवतास्थापनं भवति । तद्वाव एतच्छ्रीवेङ्कटेश्वरं महाचक्रं सार्वकामिकं मोक्षद्वारमृङ्मयं यजुर्मयं साममयं ब्रह्ममयममृतमयं भवति । तस्य पुरस्ताद्वसव आसते, रुद्रा दक्षिणतः, आदित्याः पश्चाद्विश्वे देवा उत्तरतो ब्रह्माविष्णुमहेश्वरा नाभ्याम् । सूर्याचन्द्रमसौ, पार्श्वयोः ।

तदेतदृचाभ्युक्तम् - ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् । यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः । यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति । य इत्तद्विदुस्त इमे समासत इति ।

तदेतच्छ्रीवेङ्कटेश्वरं महाचक्रं बालो वा युवा वा वेद, स महान् भवति । अष्टाक्षरेण होमं कुर्यादष्टाक्षरेणार्चनम् । तदेतद्रक्षोघ्नं मृत्युतारकं गुरुणा लब्धं कण्ठे बाहौ शिखायां वा बध्नीत । सप्तद्वीपवती भूमिर्दक्षिणार्थं नावकल्पते । तस्माच्छ्रद्धया यां काञ्चिद्गान्दद्यात्सा दक्षिणा भवति ।

अथाह नारायणः कृतकृत्यमात्मानं मन्यमानं वत्स ब्रह्मन् रहस्यं त्वं यदन्तर्भूतं तृतीयम्,तन्न वेत्सि तदुह तमुपदेक्ष्यामि, यदनुपदेक्ष्य नैतद्विद्यायाः पूर्तिर्भवति । जन्मकोट्यापि देवो न प्रसीदति । न यज्ञदानमात्रेण सर्वपूर्तिर्भवति । ततः खेचरीं मुद्रां तेऽहं दास्यामि । देयं राज्यम्, देयं शिरः, नाविचार्यैषा मुद्रा खेचरी देया भवति । खेचरीमुद्रायां सद्यः प्रकाशकं परिभासते। अभ्यासात्पवनमनःक्षयमूलाद्देवस्य प्रत्यक्षं भवति । देहान्ते निस्संशयेन देवोऽपरोक्षो भवति । ऋजुकाय-

रिसद्वासनोऽधोमुखमुन्नमय्य नासाग्रे षण्मुखीमुद्रया तेजः पश्येत्। कुलं पवित्रं तस्य कृतार्था जननी पुण्यवती विश्वं भारतेन। तस्मान्नित्यमेककालं वा खेचरीमभ्यसेत्॥ २॥

अथ कैर्मन्त्रैः स्तुतो देवः प्रीतो भवति? येन प्रत्यहं श्रेत्रेण खेचर्यादिरहस्यत्रयानुसन्धानेन विना वैकल्यसिद्धिर्भवति, तं ते वदामीति नारायणः। ब्रह्माहोमीति। ॐ यो ह वै श्रीवेङ्कटेश्वरो देवो भगवान् भूर्भुवस्सुवरेतस्मै वै नमो नमः। ॐ यो ह वै श्रीवेङ्कटेश्वरो देवो भगवान् यश्च ब्रह्मा तस्मै वै नमो नमः। यच विष्णुः, यश्च महेश्वरः, यश्च पुरुषः, यश्चेश्वरः, या सरस्वती, या श्रीर्या गौरी, या प्रकृतिर्या विद्या, यश्चौङ्कारः, याश्च तस्यार्धमात्रा वेदास्साङ्गाः सशाखाः, ये पञ्चाग्नयः, ये चाष्टौ लोकपालाः, ये चाष्टौ वसवः, ये च रुद्राः, ये चादित्याः,ये चाष्टौ ग्रहाः, यानि च पञ्चमहाभूतानि, यश्च कालः, यश्च मनुः, यश्च मृत्युः, यश्च यमः, यश्चान्तको यश्च प्राणः, यश्च सूर्यः, यश्च सोमः, यश्च विराट्, यश्च जीवः, यश्च सर्वम् तस्मै वै नमो नमः। एतैर्वा मन्त्रैर्देवं स्तुहि। ततो देवः प्रीतो भवति। स्वात्मानं दर्शयत्यन्ते खेचरीप्रकाशके चक्रराजे। तस्मादेतैर्मन्त्रैः नित्यं देवं स्तुत्वा देवं पश्यति, सोऽमृतत्वं गच्छति खेचरीप्रकाशश्च सर्वपूर्तिश्च सिध्यति —य एवं वेदेति महोपनिषत्॥ ३॥

नारायणो ब्रह्माणमुपदिदेश रहस्यत्रयानुसन्धानस्य फलमाकर्णयेति। एतद्रहस्यत्रयमेककालं वा नित्यमनुसन्धत्ते सोऽग्निपूतो भवति, स आदित्यपूतो भवति, स सोमः,स सत्यम्, स विष्णुः, स रुद्रः, स देवः, स सर्वम्, स मृत्युपूतो भवति, स सर्वपाप्मानं तरति, स भ्रूणहत्यां तरति स सर्वं तरति। य एतं मन्त्रराजमनुसन्धत्ते, सोऽग्निं स्तम्भयति, स वायुं स्तम्भयति, स आदित्यं स्तम्भयति, स सोमं स उदकं स सर्वान् ग्रहान्, स विषं स्तम्भयति। य एतं मन्त्रराजं नित्यमधीते, देवानाकर्षयति, स यक्षान्, स नागान्, स सर्वानाकर्षति। य एतं मन्त्रराजं नित्यमधीते स भूर्लोकञ्जयति, भुवः, स सुवः, स महः, जनः, स तपः, स सर्वलोकाञ्जयति। य एतं मन्त्रराजं नित्यमधीते, सो-

ऽग्निष्टोमेन यजते, स उक्थेन, स षोडशिना, स वाजपेयेन, सोऽतिरात्रेण, स अप्तोर्यामेन, स सर्वैः क्रतुभिर्यजते ॥

य एतं मन्त्रराजं नित्यमधीते, स ऋचोऽधीते, स यजूंषि, स सामानि, सोऽथर्वणम्, सोऽङ्गिरसः सशाखाः, पुराणानि, स कल्पान्, स गाथाः, स नाराशंसीः, स प्रणवम्, स सर्वमधीते। अनुपनीतशतमेकेनोपनीतेन समम्, उपनीतशतं गृहस्थेन रुद्रसूक्तजापकेन, पुरुषसूक्तजापकेन, अथर्वणशिरोजापकेन तापनीयोपनिषज्जापकेन मन्त्रराजजापकेन। तद्वा एतत्परमं धाम मन्त्रराजाध्यापकस्य चक्रपूजकस्य च खेरीमुद्राप्रकाशकस्य ॥

यत्र न सूर्यस्तपति च यत्र न वायुर्वाति, यत्र न चन्द्रमा भाति, यत्र न क्षत्राणि भान्ति, यत्र नाग्निर्दहति, यत्र न मृत्युः प्रविशति, यत्र न दुःखम् सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परमपदं वेङ्कटेशाख्यं वैष्णवम्, यद्गत्वा न निवर्तन्ते योगिनः।

तदेतदृचाभ्युक्तम्—"तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्। तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसस्समिन्धते। विष्णोर्यत्परमम्पदम्।" "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः? तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति। तदेतन्निष्काममन्भवतीति।"

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिः। व्यशेम देवहितं यदायुः। स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति न स्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः॥ स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

इति श्रीवेङ्कटेशतापिन्युपनिषत्समाप्ता ॥





॥ ॐ ॥

श्रीपद्मपुराणान्तर्गतश्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका

श्रीवामनपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका

श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका

श्रीगरुडपुराणान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका

श्रीहरिवंशान्तर्गत श्रीवेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका

श्रीब्रह्मोत्तरखण्डान्तर्गत वेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका



श्रीस्कान्दपुराणान्तर्गत वेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका



श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत वेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका



उत्तरभागे—

तत्र सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये

श्रीस्कन्दपुराणान्तर्गत वेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका



उत्तरभागे—

तत्र सुवर्णमुखरीमाहात्म्ये

आदित्यपुराणान्तर्गत वेङ्कटाचलमाहात्म्यविषयानुक्रमणिका

—॥ श्रीवेङ्कटेशार्पणमस्तु ॥—